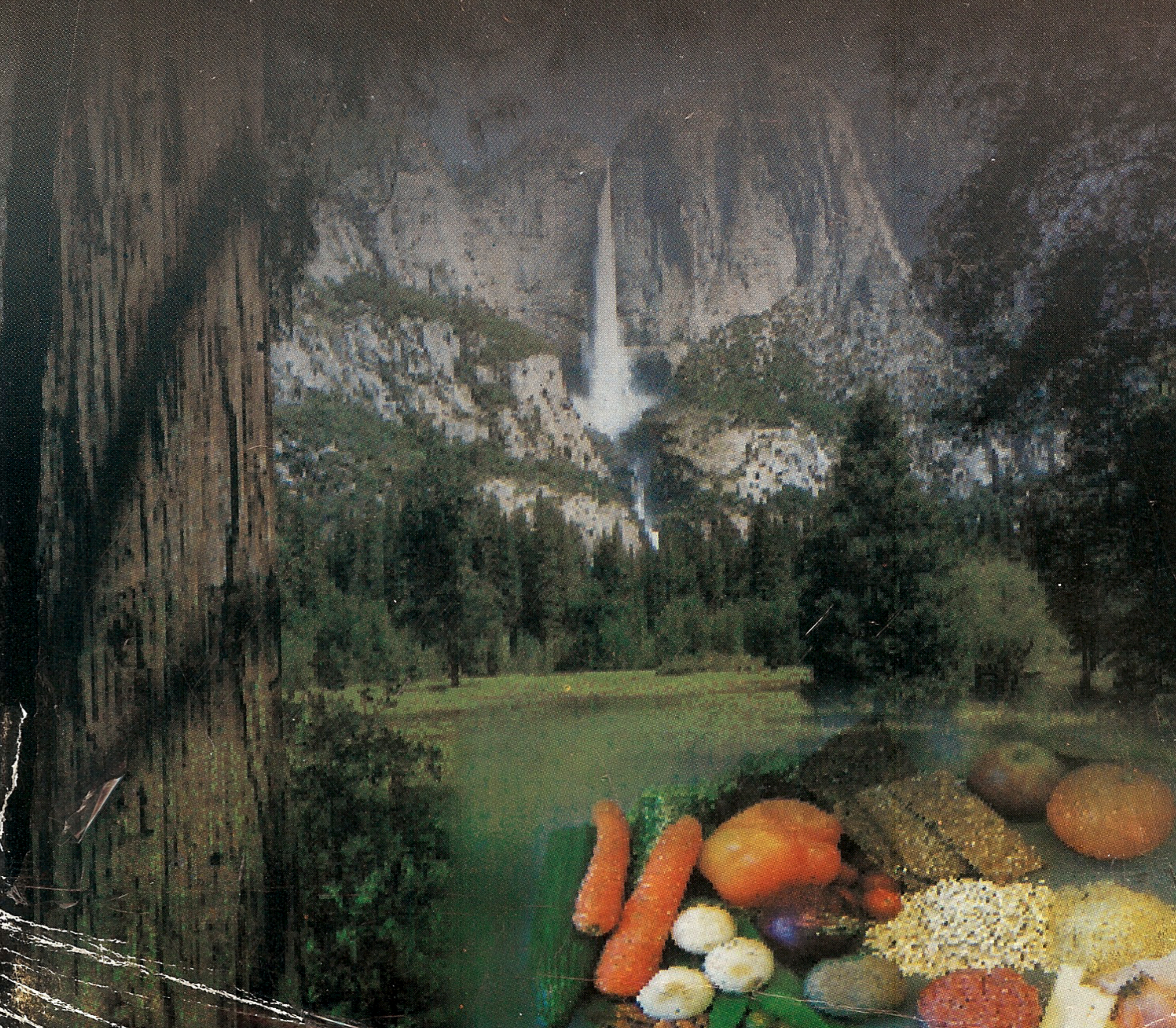
वाल्मीकि रामायण
तथा
आयुर्वेद

डॉ. प्रेरणा माथुर



वाल्मीकि रामायण
तथा
आयुर्वेद

डॉ. प्रेरणा माथुर
प्राच्य संस्कृत विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

पीयूष प्रकाशन
दिल्ली-110094

ISBN : 978-81-88622-20-6

प्रकाशक : पीयूष प्रकाशन
ए-140 कबीर नगर, गली नं.-3
शाहदरा, दिल्ली-110094
संस्करण : 2012
मूल्य : 1500.00
मुद्रक : शिवानी आर्ट प्रेस, वेस्ट गोरख पार्क
शाहदरा, दिल्ली-110032

समर्पण



परमपूजनीय
पिताश्री आचार्य मुक्तेश माथुर
तथा
माता श्रीमती चन्द्रकान्ति माथुर

प्रेरणा

डॉ. राकेशधर त्रिपाठी
मंत्री
उच्च शिक्षा, उ.प्र.

दूरभाष : का. 2239251
सी. एच. नं. : 3279
विधान भवन : लखनऊ

"सन्देश"

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आप द्वारा रचित पुस्तक **"वाल्मीकि रामायण तथा आयुर्वेद"** का प्रकाशन किया जा रहा है। जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं आदि काल से ही **'आयुर्वेद'** का अमूल योगदान समाज के व्यक्तियों के स्वस्थता के विकास में अग्रणी रहा है।

आप द्वारा रचित इस पुस्तक में अन्य विशिष्ट विषयों पर विद्वत्तापूर्ण आलेख निश्चित रूप से योग के महत्व को चरितार्थ करेगी। यह निर्विवाद है कि आयुर्वेद समाज की आदि-आदि काल से सेवा करता आ रहा है। आपके अतुलनीय सहयोग से लोगों को प्राचीन काल में प्रचलित आयुर्वेदिक पद्धति से परिचित कराने में उपयोगी सिद्ध होगी। यह पुस्तक समाज के लिये उन्नति एवं प्रगति के नये आयाम उपलब्ध कराते हुए उन्हें भविष्य में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करेगी।

मैं पुस्तक के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

डॉ. राकेशधर त्रिपाठी

डॉ. प्रेरणा माथुर,
प्रवक्ता,
प्राच्य संस्कृत विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
उत्तर प्रदेश।



प्रो. राजेन्द्र मिश्र
पूर्व - कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-221002

दूरलेख : 'श्रुतम्'
कार्यालय : (0542) 2204089
: (0542) 2204213
निवास : (0452) 2206617
: (0452) 2207457
फैक्स : (0452) 2206617
E-mail: vcssvv_vns@satyam.net.in

नान्दीवाक्

संस्कृत कविता का जन्म प्रकृति की गोद में हुआ, यह मेरी दृढ़ आस्था है। दार्शनिक पदावली में कहूँ तो कविप्रतिभा कविता का यदि निमित्त कारण है तो प्रकृति उसका 'अपादान कारण'। इस सत्य के दर्शन हमें वेदमंत्रों में ही होते हैं जब उषस्-सूक्त में ऋषि उषा के विलक्षण-सौन्दर्य को नाना प्रतिमानों एवं अप्रस्तुत विधानों से आँकता है। सुन्दरी उषा का अनुगमन करता तरुण सूर्य उसे वरमण्डप का 'दूल्हा' दिखाई पड़ता है। मण्डूकसूक्त में वर्षागम से आह्लादित टरटराते मेढक उसे वेदपाठी वटु से प्रतीत होते हैं।

प्रकृति-रस से अभिषिक्त यह कविता आर्षकाव्यों में पहुँचते ही पूर्ण समरस हो उठती है निसर्ग से। संस्कृत के अदिकाव्य रामायण में तो प्रकृति जड़ता का कञ्चुक उतार, पूर्ण चेतन बन जाती है। महर्षि वाल्मीकि को लाल रंग वाली, आकाश से विलीन होती तथा समदित-तारका संध्या एक सुन्दरी नायिका सीही परिलक्षित होती है जो नायक के संस्पर्शमात्र से पुलकित एवं शिथिलवसना हो उठती है—

चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शा हर्षोन्मीलिततारका।
अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम्।।

वाल्मीकि-कविता में कन्दलित प्रकृति की यहीं नित्वचेतना'

महाकवि कालिदास के कवित्व का आभूषण बन जाती है।

डॉ. प्रेरणा माथुर ने वाल्मीकिरामयण में निहित आयुर्वैदिक सामग्री को केन्द्र में रखकर विगत शताब्दी के अन्तिम दशक (1994 ई.) में एक प्रशंसनीय शोधकार्य सम्पन्न किया था जिसके अवलोकन का अवसर मुझे प्राप्त हुआ था। आज यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि विदुषी अनुसन्धात्री का वह शोधश्रम ग्रन्थरूप में प्रकाशित हो रहा है। अतिशय विलम्ब से निर्व्यूढ इस सारस्वत उपक्रम का मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ तथा डॉ. प्रेरणा माथुर को साधुवाद एवं आशीः प्रदान करता हूँ।

वाल्मीकि रामायण लौकिक संस्कृत-कविता का उत्स है। वह रामकथा की प्रस्तुति के बहाने, भारत राष्ट्र की समूची आध्यात्मिक आधिदैविक एवं अधिभौतिक उपलब्धियों को समेट कर, आगे प्रवृत्त होता है। अरण्य में बिखरी प्रकृति रामायण में मात्र उद्दीपन-विभाव के रूप में नहीं प्रत्युत 'अलङ्कार्य' के रूप में, आंलम्बन के भी रूप में अवतीर्ण होती है। आयुर्वैदिक वैशिष्ट्य तो उस अनेकान्त प्रकृति का मात्र एक 'अन्त' (पक्ष Phase) माना जा सकता है।

डॉ. प्रेरणा माथुर का यह ग्रन्थ जिस दृष्टि से लिखा गया है, उसकी उपादेयता, प्रासंगिकता तथा गुणधर्मिता को कथमपि नकारा नहीं जा सकता। हमारे चारों ओर बिखरी प्रकृति में कितना 'जीवनामृत' भरा है यह आयुर्वेद बताता है। उस भूले-बिसरे आयुर्वेद को नये सिरे से प्राणप्रतिष्ठा में आज राष्ट्र के अनेक मनीषी दत्तचित्त हैं। ऐसी स्थिति में विदुषी लेखिका का प्रकाशन एक 'सन्दर्भग्रंथ' की प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा, यह मेरी शुभाशंसा है।

शिमला | सस्नेह
24 दिसम्बर, 2010 ई. | **अभिराज राजेन्द्र मिश्र**



डॉ. सनत्कुमार शास्त्री
पूर्व ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग
ने.मि.शि.ना. दास कॉलेज, बदायूँ
पत्राचार : मारुति निलयम, विजयनगर कॉलोनी,
बदायूँ-243601/उ.प्र.
मो. 9410428876

पुराण भारतीय साहित्य के गौरव ग्रन्थ है। बिना पुराण के अध्ययन के कोई भी व्यक्ति विचक्षण एवं शास्त्र कुशल नहीं हो सकता। पुराण तो हमारे सनातन धर्म के प्रामाणिक तथा प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेद का उपबृंहण करने वाला पुराण इसीलिए वेद का पूरक माना जाता है।

प्राचीन भारत का काल और विज्ञान, पशु तथा पक्षी विज्ञान, वनस्पति, आयुर्वेद सब एकत्र कर पुराणों में भर दिया गया है। इसका परिणाम यह है कि पुराण विश्वविद्या का कोष हैं। अग्नि, नारद, गरुड़ पुराणों की रचना ज्ञान-विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिये की गई है। पुराण जनता का ग्रन्थ है विद्वानों का नहीं। पुराण सरल भाषा में रचित ग्रन्थ है शास्त्रीय भाषा में नहीं। आजकल के पापूलर-एजूकेशन की दृष्टि इस विषय में पौराणिक दृष्टि का अनुगमन करती है।

पुराण वास्तविक अर्थ-प्राचीन या पुराना है, इसमें प्राचीन कथानक, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी प्राचीन तत्त्वों का समवेश है, अतः इसे पुराण नाम दिया गया। प्राचीन परम्परा के प्रतिपादक ग्रन्थों को पुराण, विश्वरचना के इतिहास को भी पुराण ही कहा है।

इनकी रचना काल के अन्तर्गत पुराणों की पूर्व सीमा 600 ई. पूर्व के लगभग और अन्तिम सीमा 500 ई. के लगभग मानी जा सकती है।

पुराणों में मुख्य काल रूप से प्रतिपाद्य विषयों का विवरण इस प्रकार मिलता है यथा--(1) किसी देव या देवी की उपासना एवं उसी को सबसे बड़ी शक्ति मानना तथा देवों से बड़ा मानना। (2) ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से किसी एक को इष्टदेव मानना (3) सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का वर्णन करना (4) देवों, ऋषियों और महर्षियों की वंशावली तथा उनका जीवनवृत्त देना (5) प्रत्येक मनु का नाम उसका समय तथा प्रमुख घटनाएं (6) नन्द, मौर्य-शुंग, आन्ध्र और गुप्त आदि सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन (7) तीर्थों, भौगोलिक स्थानों एवं तीर्थ यात्राओं का वर्णन (8) व्रत, जप, उपवास, प्रार्थना उपासना एवं विविध इष्टियों का अनुष्ठान सहित वर्णन (9) अवतारवाद, मूर्ति पूजा एवं देवी देवताओं में अतिशय श्रृद्धा की स्थापना (10) सगुणोपासना एवं भक्ति मार्ग की प्रमुखता का वर्णन (11) दार्शनिक, धार्मिक, राजनीति एवं आचार शास्त्रीय विषयों का

विश्लेषण (12) व्याकरण, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, शरीर-विज्ञान, आयुर्वेद आदि शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषयों से सम्बद्ध तथ्यों का संकलन।

पुराणों के ग्राह्य विषयों में सर्वप्रथम धार्मिक विषय आते हैं, सनातन धर्म इनको वेदों के तुल्य ही अप्राप्त एवं प्रामाणिक मानता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य की उपासना पद्धति का प्रमाणिक बोध पुराणों से ही ग्राह्य है।

राजा परीक्षित से लेकर पद्मनन्द तक का अज्ञात इतिहास पुराणों से ही मिलता है। मौर्य वंशावली के लिये विष्णु पुराण, आन्ध्रवंशावली के लिये मत्स्य पुराण, गुप्त वंशावली के लिये वायु पुराण अत्यन्त प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। इनके अन्त में आभीर गर्दनभ, शक, यवन, तुषार हूण आदि राजवंशों की वंशावली इसके ऐतिहासिक महत्व को प्रकट करते हुए साहित्य के लिये ग्राह्य विषय माने जा सकते हैं।

पुराणों में चतुर्द्वीपा वसुमती, सत्पद्वीपा वसुधा 18 द्वीप 14 भुवन, क्षीर सागर आदि भू-विभाजन, तीर्थों, समुद्रों-नदियों पर्वतों एवं भौगोलिक महत्व के स्थानों का यत्र-तत्र वर्णन मिलता है जिससे काव्यों में इनका वर्णन साहित्य श्री वृद्धि को ही प्रकट करता है।

पुराणों में वर्णाश्रम के गुण-कर्म विविध संस्कार आश्रम पारिवारिक सम्बन्ध गुरु-शिष्य परम्परा एवं धर्म राजधर्म आदि का महत्वपूर्ण विवेचन पुराणों के ही ग्राह्य विषय हैं। इसके अतिरिक्त व्याकरण छन्द ज्योतिष, धर्मशास्त्र, दर्शन, आयुर्वेद शरीर-विज्ञान आदि शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषयों का महत्वपूर्ण विवेचन उपलब्ध है।

पुराणों का एक और ग्राह्य विषय है अवतारवाद- जिसका अर्थ पुराणों में आविर्भाव का प्रयोग पाया जाता है। अवतार की बात किसी अलौकिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति भगवान विष्णु, शंकर या इन्द्र आदि के लिये ही उपयुक्त मानी जाती है। कार्यवंश व भगवान का बिना रूप परिवर्तन किये ही आविर्भाव होना अवतार के भीतर ही माना जाता है।

पुराणों ने सभी वर्णो के लिये लोक-परलोक में आनन्द से जीवन प्राप्त करने का सबसे सुगम उपाय बतलाया है। पुराणों में प्रतिपादित एकादशी व्रत का अनुष्ठान सुखपूर्वक अल्प-धन से तथा स्वल्प क्लेश से किया जा सकता है। फल की महानता हेतु यमलोक से निवृत्ति पाने की अभिलाषा से प्रत्येक मनुष्य को यावज्जीवन एकादशी व्रत करना चाहिये।

जनता के कल्याण के लिये, नाली, कूप, तालाब का खुदवाना, मन्दिर का निर्माण करना, याचकों को अन्न प्रदान करना पूर्त कहलाता है। और इसी धर्म का अनुष्ठान पुराणों के द्वारा बहुशः पतिष्ठित है। परोपकार को ही मुख्य धर्म बतलाने वाले कतिपय मुख्य दृष्टव्य एवं ग्राह्य है। पुराणों में तीर्थो का महत्व एवं महिमा

का विपुल वर्णन मिलता है। तीर्थ यात्रा के पौराणिक प्रसंगों को भूगोल का पूरक माननना चाहिये। किसी स्थान पर किसी विशिष्ट द्वारा की गई तपश्चर्या से परिपून स्थान विशेष की संज्ञा तीर्थ है।

अतः यह सर्वविदित है कि पुराण बहुविद्या के आकर-ग्रन्थ हैं। वाल्मीकिरामायण का वर्ण्य भी विविधिवर्णी है। भूगोल, राजधर्म, राजनीति, लोकनीति, समाज-धर्म पारिवारिक-दायित्व मानव-मूल्य, देव-माहात्म्य, स्वास्थ्य-रक्षा, आयुर्वेद सहित ऐसा कौन सा विषय है जो इसमें सविस्तार वर्णित न हो।

मेरी अतिशय प्रिय डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माथुर ने कठोर श्रम करके इस ग्रन्थ का आयोजन किया है। मेरा विश्वास है कि यह ग्रन्थ भारतीय-चिकित्सा शैली एवं भारतीय चिकित्सकों का पाथेय बनेगा। इस ग्रन्थ के माध्यम से हमारी वर्षों पुरानी मान्यता 'जीवेमः शरद शतम्' का परिपाक हो ऐसी माँ वागेश्वरी से मैं याचना करता हूँ।

और अन्त में ग्रन्थकर्त्री डॉ. प्रेरणा माथुर को अनगिन आशीष देते हुए उनके शुभ की कामना करता हूँ।

इत्यलम्

दिनांक : 15-12-2010 सस्नेह

डॉ. सनत्कुमार शास्त्री

दो शब्द

वाल्मीकि रामायण तथा आयुर्वेद

वाल्मीकि रामायण के आभ्यन्तर निर्हत आयुर्वेदिक सामग्री के मूल्यांकन का चिर-प्रतीक्षित प्रयास है। संस्कृत वाङ्मय में 'वाल्मीकि रामायण' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य के सभी लक्षणों के अतिरिक्त इसमें अनेक विषयों का समावेश है। 'रामायण' भारतीय साहित्य का पहला महाकाव्य और विश्व साहित्य के प्राचीनतम महाकाव्यों की तुलना में भाषा भाव व छन्द रचना विधान एवं रस व्यंजना सभी दृष्टियों से एक उत्कृष्ट कृति प्रमाणित हो चुकी है। यदि कवि के इस असामान्य व्यक्तित्व का परिचय 'रामायण' एक ऐसी कृति है, जिसकी प्रत्येक बात, अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है। उसकी सर्वांगीण भावना का परिचय उसके कलेवर में ही परोक्ष रूप से मिलता है उसकी इस सर्वाङ्गीण भावना को लक्ष्य करते हुए स्थान-स्थान पर कभी उसे 'काव्य' कभी 'आख्यान' कभी 'गीता' और कभी 'संहिता' कहकर स्मरण किया गया है।

रामायण सम्बन्धी आख्यान काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद इक्ष्वाकु वंश के सूतों ने आरम्भ की। इन्हीं आख्यान काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना की इस 'रामायण में अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथावस्तु का वर्णन था और उसमें सिर्फ 12000 श्लोक थे।

महामुनि वाल्मीकिकृत 'रामायण' के कलेवर का मूल रूप क्या था और उसमें कितने श्लोक थे, इस सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों से लेकर आधुनिक विद्वानों तक अलग-अलग स्थापनाएँ देखने को मिलती हैं। यह प्रवाद है कि वाल्मीकि मुनि ने रामायण कथा को 100 करोड़ श्लोकों में निवृत्त किया था। 'रामायण' के बाल काण्ड में 'रामायण' के कलेवर के सम्बन्ध में जो 500 सर्गों और 24000 श्लोकों

का उल्लेख है वह भी प्रक्षिप्त अंश होने से विश्वास योग्य नहीं है। 'पद्मपुराण' के शेषांश है—

ततः स वर्णयामास राघवं-ग्रन्थकोटिभिः

महामुनि वाल्मीकि के नाम से उपलब्ध 'रामायण' की वर्तमान प्रति सात खण्डों में एवं 24,000 श्लाकों में मिलती है। 'रामायण' की जो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं उनके साथ मिलान करने पर वर्तमान प्रति का कलेवर-विस्तार ठीक-ठीक नहीं मिलता। 'रामायण' के संप्रति चार प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध एवं प्रचलित हैं :

1. औदीच्च : गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बंबई, और निर्णय सागर प्रेस बंबई से प्रकाशित है। यह पाठ अधिक प्रचलित एवं प्रामाणिक है। इसी पर नागेश भट्ट की 'रामीया व्याख्या' टीका है।
2. गौडीय : दूसरा संस्करण डॉ. जी. गोरेसियो ने 1843-67 के बीच कलकत्ता संस्कृत सीरीज से प्रकाशित किया और उन्होंने ही इटेलियन में अनुवाद कर उसको पेरिस से भी प्रकाशित किया।
3. पश्चिमोत्तीय : इसको काश्मीरी संस्करण कहा जाता है, जिसका प्रकाशन 1923 ई. में डी. ए. वी. कॉलेज लाहौर से हुआ। इसका प्रचलन उत्तर-पश्चिम में है।
4. दाक्षिणात्त्य : चौथा दाक्षिणात्त्य संस्करण माध्यविलास बुक डिपो कुमकोवम, मद्रास से 1929-30 के बीच दो जिल्दों में प्रकाशित हुआ। बम्बई के संस्करण से यह अभिन्न है।

'रामायण' जैसे लोकप्रिय ग्रन्थ पर अनेक टीकाएं लिखी गयीं, जिनमें से कुछ ही सम्प्रति उपलब्ध हैं। इन टीकाओं में रामवर्मन् 'तिलक' टीका अधिक प्रमाणित एवं विख्यात है। रामवर्मन से पहले भी 'रामायण' पर एक टीका लिखी गयी थी, जिसका नाम 'कतक' था और जिसको बड़े सम्मान के साथ उन्होंने अपनी 'तिलक' टीका में उद्धृत किया है; किन्तु वह आज प्राप्त नहीं है।

इसके अतिरिक्त माहेश्वरी तीर्थ कृत 'रामायण-तत्त्व-दीपिका; श्री राम कृत 'अमृत-कटक; गोविन्द राज कृत 'शृंगांर' (भूषण), रामानन्द तीर्थ-कृत 'रामायण-कूट' अहोबल कृत 'वाल्मीकि हृदय; अप्पय-दीक्षित कृत 'रामायण-तात्पर्य संग्रह; त्र्यम्बक माखिंन कृत 'धर्माकूत; विश्वनाथ कृत 'वाल्मीकि-तात्पर्य तरणि;' और वरदराज मैथिल भट्ट कृत 'विवेक तिलक' उल्लेखनीय टीकाएं हैं। नागेश भट्ट ने भी 'रामायण' पर 'रामीया व्याख्या' नामक एक सुंदर टीका लिखी।

प्रस्तुत ग्रन्थ का आधार 'वाल्मीकि रामायण' का दाक्षिणात्य संस्करण

(औदीच्य भी वही है) है। इसी का सर्वत्र प्रचार तथा प्रामाण्य है। गीता प्रेस, गोरखपुर का तीसरा संस्करण (सं. 2033) जो दाक्षिणात्य संस्करण तथा औदीच्य संस्करण पर पूर्णतया आधारित है, इस ग्रन्थ का प्रमुख मार्ग-दर्शक है।

'वाल्मीकि-रामायण' के सभी संस्करणों में आयुर्वेद विषयक सामग्री प्रायः समान ही है। महर्षि की दृष्टि में ज्योतिष, तन्त्र, आयुर्वेद शकुन आदि शास्त्रों की प्राचीनता एवं समीचीनता ज्ञात होती है। यथा त्रिजटा के स्वप्न, श्री राम का यात्रा कालिक मुहूर्त विचार, विभीषण द्वारा लंका के अपशकुनों का प्रतिपादन (लंका कांड 10 वां सर्ग) आदि ज्योतिर्विज्ञान के ज्ञापक तथा समर्थक हैं। श्री राम जब अयोध्या से चलते हैं तब नौ ग्रह एकत्र हो जाते हैं-इससे लंका युद्ध होता है। दशरथ जी श्री राम से ज्योतिषियों द्वारा अपने अनिष्ट फलादेश की बात बतलाते हैं। (अयो.4/18।) युद्ध काण्ड 102/32-34 के श्लोकों में रावण-मरण के समय की गृह स्थिति भी ध्येय है। युद्ध काण्ड सर्ग में आयुर्वेदविज्ञान की बातें हैं। युद्ध 18 वें सर्ग तथा 63/2 से 25 श्लोक तक राजनीति है। यु. कां. 73/24-28 में तन्त्र शास्त्र की भी प्रक्रियाएँ हैं। इसमें रावण तथा मेघनाद को भारी तान्त्रिक दिखलाया गया है। मेघनाद की सब विजय तन्त्र मूलक है। जब वह जीवित कृष्णछाग की बलि देता है, तब तप्तकाञ्चन के तुल्य अग्नि की दक्षिणावर्त शिखाएँ उसे विजय सूचित करती हैं—'प्रदक्षिणावर्त-शिखस्तप्तकाञ्चन संनिभः।' (6/73/23) रावण भी भारी तान्त्रिक है। उसकी ध्वजा पर (कौल-चिन्ह) नरशिरकपाल-मनुष्य की खोपड़ी का चिन्ह था। (6/100/14) किंतु उसके पराभव आदि द्वारा ऋषि वाम-मार्ग के इन बलि मांस-सुरादि क्रियाओं की असमीचीनता ही प्रदर्शित करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'तजि श्रुति पंथ बाम मग चलही'-अयो. 168/7-8, 'कौल काम बस कृपन बिमूढा (लंका) आदि से इसी बात का समर्थन किया है, भगवान श्री राम समयमार्ग के उपासक दीखते हैं। इस प्रकार हमें महर्षि की दृष्टि में ज्योतिष, तन्त्र आयुर्वेद, शकुन आदि शास्त्रों की प्राचीनता एवं समीचीनता ज्ञात होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 10 परिवर्तों में विभाजित किया गया है।

प्रथम परिवर्त शीर्षक "विषयावतरण-संस्कृत साहित्य एवं आयुर्वेद विवेचन है" जिसमें संस्कृत साहित्य की विशालता, वाल्मीकि रामायण का स्वरूप, साहित्यिक ग्रन्थों का आयुर्वेद दृष्टि से महत्त्व, आयुर्वेद का स्वरूप एवं अष्टाङ्ग, आयुर्वेद का साहित्य-विभाजन एवं वाल्मीकि रामायण के समक्ष विद्यमान आयुर्वेद आदि विषयों पर विचार किया गया है।

द्वितीय परिवर्त का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण में शरीर-विज्ञान प्रकरण" है जिसमें आयु और उसका आधार, आत्म-तत्त्व, शरीर की रचना, प्रणिभाग अन्तःकरण

इन्द्रियां, प्रकृति भेद, प्रशस्त सामुद्रिक लक्षण, स्वास्थ्य का महत्त्व, स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्व माँस तत्त्व, स्वस्थवृत्त एवं सद्वृन्त आदि विषयों पर विचार किया गया है।

तृतीय परिवर्त का शीर्षक "शरीर शुद्धि एवं वैयक्तिक स्वस्थ वृत्त की सामग्री है जिसमें दिनचर्या, सन्ध्योपासना, सामाजिक स्वस्थवृत्त, सद्वृत्त या आचार-परक स्वस्थवृत्त भक्ष्याभक्ष्यविचार, आहार, भोजन के गुण, प्रकार, षट्रस पेय-भोजन, भोजनोत्तर कर्म, माध्यनिन्दनीयकर्म, रात्रिचर्या मधुपान, मदिरापान, ऋृतुचर्या आदि विषयों पर विचार किया गया है।

चतुर्थ परिवर्त का शीर्षक वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध औषध-परिचय एवं द्रव्य-गुण शास्त्र की सामग्री है। इसके अन्तर्गत भौतिक एवं प्राकृतिक औषधियों यथा पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आदि वानस्पत्य औषधियों यथा अगर, अर्जुन, अनार, अश्वत्थ आदि, धातुज औषधियों यथा हिरण्य पिङ्गः नमः वज्रः आदि पर विचार किया गया है।

पञ्चम परिवर्त का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण में रोगोत्पत्ति के कारण" है इसके अन्तर्गत शारीरिक कारण यथा वात-पित्त-कफ आदि, मानसिक कारण यथा काम, क्रोध, मोह आदि, आगन्तुक कारण-आघातजन्य, ऋतु सम्बन्धी, स्थान सम्बन्धी आदि विषयों पर विचार किया गया है।

षष्ठ परिवर्त का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण में वर्णित रोग एवं उनका निदान" है इसके अन्तर्गत शारीरिक रोग यथा अतिसार ज्वर, अंग-भेदन, शिरो-रोग, राज यक्ष्मा, कुष्ठ, गुल्म व्रण आदि, मानसिक रोग-मूर्च्छा उन्माद अपस्मार आदि, आगन्तुक रोग अर्दित-आघात, वमन विरेचन आदि, स्त्री रोग एवं गर्भावक्रान्ति यथा रजस्वला, गर्भह्रास गूढ़ गर्भ आदि उदर-पाटन द्वारा गर्भ निकालना। आदि विषयों पर विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त विष-विधान यथा सर्प विष कन्द विष एवं कृत्रिम विष आदि पर भी विचार किया गया है।

सप्तम परिवर्त का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण में प्राकृतिक चिकित्सा विधान" है जिसमें अग्नि द्वारा, चिकित्सा जल द्वारा, मृत्तिका द्वारा एवं वायु द्वारा चिकित्सा आदि विषयों पर विचार किया गया है।

अष्टम परिवर्त का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण में तान्त्रिक चिकित्सा एवं भूत-विद्या विषयक सामग्री" है। इसमें मणि बन्धन अभिमार्जन, कृत्या आशीर्वाद तंत्र-मंत्र, अपमृत्यु निवारक उपचार, शकुन-विज्ञान, स्वप्न विज्ञान आदि का वर्णन किया गया है।

नवम् परिवर्त का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण में शल्य-चिकित्सा विधान" है

जिसके अन्तर्गत शल्य अवस्था उपकरण, विधियाँ, रोगीः परिचर्या, मेषवृषण आदि विषयों पर विचार किया गया है।

दशम परिवर्त अंतिम परिवर्त है। इसका शीर्षक "उपसंहार-निष्कर्ष एवं मूल्यांकन" है। इसमें ग्रन्थ का सार दोहन कर उपलब्धियों की उपस्थापना की गई है। इसी में परिशिष्ट भी वर्णित किया गया है।

6 परिशिष्टों में रामायण-उपन्यस्त वनस्पतियों, औषधियों, रोगों, खनिज द्रव्यों, जाङ्गम द्रव्यों शरीर विशेषज्ञों एवं शरीरावयवों आदि की ससन्दर्भ तालिका भी प्रस्तुत की गयी है।

प्रस्तुत अध्ययन परिपूर्ण हो जाने पर मेरा अपना यह नम्र निवेदन है कि साहित्य-काव्य में कुछ एक काव्यग्रन्थों के अतिरिक्त रामायण ही प्रमुख काव्यग्रन्थ है जिसमें आयुर्वेद की प्रचुर सामग्री विद्यमान है। यह केवल आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों के विशिष्ट अंश का संग्रह मात्र ही नहीं है अपितु लुप्त-गुप्त एवं अद्यावधि अप्रकाशित आयुर्वेद के तथ्य पर भी प्रकाश डालने वाला है। इस काल में शल्य-चिकित्सा की उपलब्धि हो गयी थी तथा संजीवनी विशल्यकरणी जैसी अचूक औषधियाँ भी प्राप्त होती थीं।

वाल्मीकि रामायण का राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा अन्य विविध दृष्टि कोणों से सम्बन्धित अध्ययन किया जा चुका है, किन्तु इसमें निहित आयुर्वेदिक तत्त्वों की ओर किसी भी विद्वज्जन का ध्यान नहीं गया है।

मेरी बाल्य-काल से ही वाल्मीकि रामायण तथा आयुर्वेद दोनों के प्रति विशेष रूचि थी। इसी कारण मैं इसी क्षेत्र में कुछ शोध-पूर्ण कार्य करना चाहती थी, किन्तु दो अलग-अलग तथा व्यापक क्षेत्र होने के कारण निर्णय नहीं कर पा रही थी किन्तु पिताश्री का आयुर्वेद के प्रति लगाव एवं माता जी की धार्मिक प्रवृत्ति ने शीघ्र ही मुझे प्रस्तुत विषय प्रदान किया। अतः परिवार में आयुर्वेद का वातावरण होने के कारण 'वाल्मीकि रामायण' में आयुर्वेदिक सामग्री को खोजने के प्रति किया गया प्रयास विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करने का दुस्साहस किया जा रहा है। इस आधार पर आयुर्वेदिक सामग्री को संकलित कर उनका भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना भारतीय साहित्य, आयुर्वेद और इतिहास दोनों के लिये बहुमूल्य है। इसी आधार पर मुझे 'वाल्मीकि रामायण' में प्रतिपादित आयुर्वेदिक सामग्री पर कार्य करने की प्रेरणा मिली। रामायण का आयुर्वेदिक दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन करना अधिक उपयोगी है, क्योंकि अभी तक उसकी आयुर्वेदिक सामग्री का समीक्षात्मक दृष्टि से कहीं भी सर्वाङ्गीण अध्ययन नहीं हुआ है।

इस ग्रन्थ का वैशिष्टय इस प्रकार है—

1. रामायण में उपन्यस्त आयुर्वेदिक विषयों के पाठों को तत्तत् स्रोत विषयों से तुलना कर उनकी पाठ शुद्धि की गयी है तथा यह पाठ शुद्धि अभी तक रामायण के किसी भी प्रकाशित संस्करण या उस पर किये गये किसी भी अध्ययन ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है।
2. चरक, सुश्रुत, अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्ग हृदय, भाव प्रकाश आदि में उपलब्ध अनेक विषयों का परीक्षण रामायण के प्रकाश में किया गया है।
3. परिशिष्ट में आगामी शोध कार्यकारणार्थ विभिन्न वनस्पतियों, धातु उपधातुओं, खनिजों, रत्नों, खाद्यद्रव्यों, शरीरावयव-पर्यायों, रोगों एवं स्रोतोभूत समान श्लोकों की तुलनात्मक तालिका ससन्दर्भ प्रस्तुत कर दी गयी है ताकि सम्बन्ध क्षेत्र के तद्विद, विद्वान उनका लाभ उठा सकें।
4. रोगो में वैदिक एवं तान्त्रिक प्रक्रियाओं का उपस्थापना

इस ग्रन्थ की पूर्णता हेतु— मैं सर्व प्रथम अपने श्रेष्ठ गुरुदेव डॉ. सनत्कुमार शास्त्री जी के प्रति कृतज्ञता पूर्वक आभार प्रकट करती हूँ कि उन्होंने अपने व्यस्ततम जीवन में मुझे सदैव अमूल्य समय दिया तथा मुझ निरुत्साहित को सदा उत्साह प्रदान करते हुए कार्य पथ पर चलने की प्रेरणा दी तथा समय-समय पर मेरा मार्ग प्रशस्त किया- गूढ़ रहस्य युक्त तथ्यों एवं गुत्थियों को सुलझाने में भी मेरी सहायता की। आज उन्हीं के चिराशीष से मैं इसको विद्वानों के समक्ष इस भावना से प्रस्तुत कर रही हूँ कि इस विषय पर विशेष कार्य करने की इच्छा अभी भी मुझमें है।

इस ग्रन्थ को लिखने में जिन-जिन स्वनामधन्य महानुभावों से सहयोग मिला उनमें मेरे परम पूजनीय पिता श्री आचार्य मुक्तेश माथुर का नाम सर्वाग्रणी है, उन्हीं के प्रयासों एवं आशीर्वाद से मैं आज सफलता की इस सीपान पर पहुँची हूँ। मेरे पूर्व जन्मों में किये गये सत्कर्मों का ही यह परिणाम है, जो मैंने उन्हें पिता के रूप में पाया। जीवन के जिस क्षेत्र में और इस प्रबन्ध को लिखते समय जहाँ भी मैं उत्साहहीन या परेशान होती दिखाई दी, उन्होंने सदैव मुझे समझाया तथा कर्त्तव्यबोध कराया उनकी यहाँ प्रशंसा करते हुए आज मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

इस ग्रन्थ की पूर्ति में मेरी प्रेरणास्रोत माता श्रीमती चन्द्रकान्ति माथुर का वरदहस्त भी सदा मुझे प्राप्त होता रहा है जिन्होंने मेरे कार्य में होने वाली त्रुटियों का सूक्ष्म अवलोकन कर मुझे सदैव श्रेष्ठ कार्य के लिये प्रेरित किया और इस कार्य की पूर्ति में मेरा सहयोग किया। सरस्वती स्वरूपा माँ को प्राप्त कर आज मैं स्वयं

को सर्वाधिक भाग्य-शालिनी अनुभव कर रही हूँ।

मैं अपने परम आदरणीय गुरु श्री बी. बी. एल. अग्रवाल प्राचार्य, सम्माननीय अंकल डॉ. यू. सी. सक्सैना (एलोपैथिक चिकित्सक) गुरु तुल्य सम्माननीय बाबा-वैद्य श्री तेज पाल शर्मा (आयुर्वेदिक चिकित्सा) के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना परम कर्त्तव्य समझती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझावों से मेरा पथ-प्रदर्शन किया।

कर्त्तव्य-पथ का बोध कराने में सदैव अग्रणी अपनी नानी जी श्रीमती आनन्दी देवी को विस्मृत कर देना मेरी महान मूर्खता ही होगी, जिन्होंने सदा अपने आशीर्वाद एवं स्नेह से मेरा मार्ग प्रशस्त किया।

गुरु परिवार के प्रेम की मैं चिरऋणी रहूँगी। गुरु पत्नी श्रीमती राकेश शर्मा, प्रणव शर्मा, सोनी (पीयूष) एवं बहिन प्रत्यूषा एवं पल्लवी का स्नेह एवं सम्मान भाव सदैव मुझे सत्कार्य के लिये प्रेरित करता रहेगा, जिन्होंने सदैव मुझे बड़ी बहिन के समान सम्मान एवं सत्कार दिया।

इस ग्रन्थ को अंतिम चरण तक पहुँचाने में जिन आदरणीय महानुभवों से सहयोग मिला उनमें, जहाँ मुझे स्वयं से एक पल भी न दूर कर पाने वाले अपरिमित प्रेम वर्षक श्रद्धेय एवं पूजनीय पतिदेव "श्री राजीव माथुर" का नामोल्लेख करते हुए सौभाग्य का अनुभव हो रहा है, वहीं अपने आदरणीय पिता श्री (श्वसुर) श्री राम किशोर जी माथुर एवं माता जी (सास) श्रीमती कृपा माथुर की कृपा, स्नेह एवं पथ-प्रदर्शन का उल्लेख करते हुए भी अपार हर्ष हो रहा है। इस कार्य की पूर्ति हेतु मेरी छोटी बहिन पूनम (नन्द) एवं छोटे भाई संजीव (देवर) भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस कार्य को पूरा कराने में मेरी सहायता की।

मेरे कार्य में अनेक अवरोध और प्रतिरोध उत्पन्न हुए जिनसे मैं कई बार किंकर्त्तव्यविमूढ जैसा आचरण करने लगी, किंतु उनके निवारण में मेरे छोटे भाई मयंक माथुर ने मुझे अविस्मरणीय प्रेरणा दी तथा मेरे कार्य में हर सम्भव मेरी सहायता की। मेरा आशीर्वाद एवं शुभ कामनाएँ सदैव उसके साथ रहेंगी।

इस ग्रन्थ की पूर्ति के लिये मैं अपने मौसेरे भाई स्व. श्री योगेश माथुर की भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने विविध पुस्तकालयों एवं चिकित्सालयों आदि में मुझे स्वयं ले जाकर मेरी विविध प्रकार से सहायता की।

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु मैं अब उन नये लोगों की भी हृदय से आभारी हूँ जो इसके लेखन काल में नहीं थे, पर प्रकाशन में उन्होंने मेरा हर सम्भव सहयोग किया जिनमें सर्वप्रथम मैं अपने दोनों पुत्रों 'मेधज माथुर' एवं 'शिवांग माथुर' को अनेकशः आशीष देना चाहूंगी क्योंकि उन्हीं के समय में से समय लेकर

मैं इस कार्य का प्रकाशन करा सकी। मैं अपने छात्र डॉ. शिवशंकर, डॉ. बिन्दु की भी आभारी हूँ। अन्त में मैं भैया सुरेश चौधरी जी का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अत्यन्त अल्प समय में इसका सुन्दर प्रकाशन किया।

इस ग्रन्थ में मानव सुलभ अनेक न्यूनताओं का रह जाना स्वाभाविक है अतः मैं उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। आशा है इस दिशा में मुझसे उत्तरकालीन व्यक्तियों द्वारा और भी सुन्दर कार्य सम्पन्न हो सकेंगे।

—प्रेरणा माथुर

संकेत सूची

संकेत	विस्तृत रूप
1. च. सू.	चरक सूत्र
2. अ. सं. सू.	अष्टाङ्ग संग्रह सूत्र
3. सु. सू.	सुश्रुत सूत्र
4. अ. हृ.	अष्टाङ्ग हृदय
5. च. सू. नि.	चरक सूत्र निदान
6. च. सू. वि.	चरक सूत्र विमान
7. सु. सू. पू.	सुश्रुत सूत्र (संहिता) पूर्वार्द्ध
8. सु. सू. उ.	सुश्रुत सूत्र (संहिता) उत्तरार्द्ध
9. शा. सं.	शारङ्गधर संहिता
10. वा. रा. कि.	वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा
11. बा. 20/30	बालकाण्ड 20 वाँ सर्ग 30 वाँ श्लोक
12. अयो.	अयोध्या काण्ड
13. अर.	अरण्य काण्ड
14. कि.	किष्किन्धा काण्ड
15. सु.	सुन्दर काण्ड
16. यु.	युद्ध काण्ड
17. उ.	उत्तर काण्ड
18. प्र. 1/2	प्रक्षिप्त सर्ग 1/2
19. 13 / प्रा.	13वें सर्ग का प्रारम्भ
20. न्या. सू.	न्याय सूत्र
21. आ. वै. इ.	आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास

अनुक्रम

प्रथम परिवर्त

विषयावतरण-संस्कृत साहित्य एवं आयुर्वेद विवेचन

प्रथम परिच्छेद

संस्कृत साहित्य की विशालता

संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा है और इसका देव-वाणी नाम इसकी इसी पुरातनता को द्योतित करता है। संस्कृत भाषा के वाङ्मय में हम भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं राजनीतिक जीवन की समग्र झाँकी पा सकते हैं।

प्राचीन काल में संस्कृत का प्रयोग केवल पठन-पाठन में ही नहीं होता था, वरन् जन सामान्य अपने दैनिक व्यवहार में भी इस भाषा का प्रयोग करते थे। रामायण में इल्वल राक्षस ने ब्राह्मण का रूप धारण कर ब्राह्मणों को निमंत्रित करने के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग किया था। अशोक वाटिका में पहुँचकर बहुत सोच-विचार कर हनुमान जी ने सीता से संस्कृत भाषा में ही बोलने का निश्चय किया।[1]

यास्क ने वैदिक संस्कृत से इतर संस्कृत को भाषा कहकर उसका जन साधारण द्वारा प्रयुक्त होना सूचित किया है। पाणिनी ने भी संस्कृत को लौकिक भाषा कहा है। संस्कृत का प्रचार ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्णों में भी पाया जाता था। महाभाष्य में एक सारथि के द्वारा एक वैयाकरण से सूत शब्द की व्युत्पति पर विवाद किया जाना दिखाया गया है। उस समय संस्कृत बोलने वालों को शिष्ट कहा जाता था, किन्तु उसे न बोलने वाले भी उसे समझते अवश्य थे। उस समय राज-कार्य में संस्कृत का ही व्यवहार होता था।

भारत के प्राचीन इतिहास का पर्यवेक्षण करने के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन नितान्त अपेक्षणीय है।

संस्कृत साहित्य में कालिदास, माघ, भारवि आदि की चुनी हुई रचनाएँ ही नहीं हैं, वरन् वह तो विस्तृत क्षेत्र में लौकिक एवं पारलौकिक सभी विषयों का सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। क्या दर्शन, क्या ज्योतिष, क्या

आयुर्वेद, क्या विज्ञान, क्या व्याकरण, क्या धर्म, क्या संगीत और क्या अन्य, अनेकों विषय-सभी की चर्चा संस्कृत साहित्य में सर्वाङ्गरूपेण की गयी है। खोज करने पर पता चला है कि संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों की संख्या ग्रीक और लेटिन के ग्रन्थों की मिली हुई संख्या से भी बहुत अधिक है। यदि किसी देश का साहित्य उस के समाज एवं संस्कृति का दर्पण कहा जा सकता है तो संस्कृत साहित्य भारतीय समाज एवं संस्कृति का वह विमल दर्पण है जिसमें अपने अतीव गौरव की झाँकी देखकर हम आज भी गर्व से अपना सिर ऊँचा कर सकते हैं। संस्कृत साहित्य की सहस्र वर्षों की अजस्र रचना के समक्ष अंग्रेजी साहित्य की अजस्रता अत्यधिक अल्प ही है।

इन्हीं सब कारणों से हमारे प्राचीन महर्षियों ने संस्कृत भाषा को देवीवाक् अर्थात् देवताओं की वाणी कहा था।

संस्कृत साहित्य में काव्य की प्रथम झलक ऋग्वेद में देखने को मिलती है। पुनश्च ब्राह्मण-ग्रन्थों के कतिपय प्रसंगों तथा इतिहास, पुराण काल में काव्य की रचना का कुछ अधिक परिपाक हुआ। परन्तु महाकाव्य की रचना की दृष्टि से यह काल भी विवेचनीय नहीं है। वस्तुतः वाल्मीकि कृत रामायण ही हमें आदि महाकाव्य के रूप में उपलब्ध होती है।

संस्कृत साहित्य दो भागों में विभक्त है

1. वैदिक साहित्य
2. लौकिक साहित्य

वैदिक वाङ्मय प्राचीनता, उत्कृष्टता एवं साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वैभव की दृष्टि से न केवल भारतीय साहित्य का उत्तमांश है, अपितु इसे भारतीय साहित्य का प्राचीनतम अवशेष और विश्व साहित्य की अमूल्य निधि माना जा सकता है। भारतीय प्रज्ञा और सारस्वत साधना का परमोज्ज्वल रूप वैदिक साहित्य में प्रतिष्ठित है। इसे न केवल भारतीय वाङ्मय का मूर्धन्य होने का श्रेय है अपितु यह विश्व-साहित्य की उपलब्ध सर्वथा प्राचीन एवं महान रचना है। इसे भारतीय प्रतिभा एवं पाण्डित्य का महासागर कहा जा सकता है।

वेद और वैदिक साहित्य दो भिन्न एवं निरपेक्ष अर्थों के द्योतक हैं। वेद से केवल चार मंत्र-संहिताओं का बोध होता है—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद इस प्रकार वैदिक साहित्य वेद विषयक समस्त वाङ्मय का द्योतक है, जिसके विस्तृत परिवेश में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदांग समाविष्ट हो जाते हैं। संहिता भाग में मंत्रों का संग्रह है, जिसमें कान्तदृष्टा ऋषियों द्वारा की गयी स्तुतियों का संकलन है। इनमें विभिन्न ऋषियों-मुनियों के अनुभव सिद्ध आध्यात्मिक विचार संगृहीत हैं। संहिता भाग के चार खण्ड हैं—ऋक्, साम, यजुः एवं अथर्व। कालान्तर में कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के आधार पर ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में विधि-भाग का वर्णन किया गया है आरण्यक उन व्यक्तियों के लिये उपयोगी है जो वीतराग होकर, अरण्य का सेवन करते हुए शांत वातावरण में भगवद् उपासना में लीन रहते हैं। इनमें ब्राह्मण-ग्रन्थों में वर्णित वैदिक कर्मों या याज्ञिक कर्मों के आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन किया गया है। उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग हैं और वे ज्ञान-काण्ड से सम्बद्ध हैं, इनमें वैदिक मंत्रों की दार्शनिक व्याख्या हुई है।

वेदांग की संख्या छः है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। वेदों की भाषा की शुद्धता एवं उच्चारण को सुरक्षित रखने के लिए शिक्षा ग्रन्थों की रचना हुई है। कल्प के चार विभाग हैं—श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र तथा शुल्व सूत्र।

प्रत्येक वेद के अलग-अलग कल्प सूत्र हैं। श्रौत सूत्रों में विविध यज्ञों का विधान तथा गृह्य सूत्रों में सामाजिक संस्कारों—विवाह, उपनयन, श्राद्ध आदि का वर्णन है। धर्म सूत्रों में चारों वर्णों एवं आश्रमों के कर्तव्य-कर्म का विवेचन एवं शुल्व सूत्रों में वेदिका मापन विधि का वर्णन या अनुचिंतन है। व्याकरण के अन्तर्गत वेदों का व्याकरण प्रस्तुत किया गया है। सम्प्रति वैदिक व्याकरण उपलब्ध नहीं है, पाणिनी व्याकरण में ही वेदों का व्याकरण निर्मित हुआ है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की व्युत्पति दी गयी है, निघण्टु की टीका का नाम निरुक्त है और निघण्टु में चुने हुए वैदिक शब्द हैं। छन्द के अन्तर्गत वैदिक छन्दों का विवेचन हुआ है। वेदों की रचना छन्दोबद्ध है। इसमें कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका विश्लेषण प्रतिशाख्यों तथा पिङ्गलकृत 'छन्द सूत्र' में किया गया है। यज्ञ सम्पादन के लिये काल ज्ञान की आवश्यकता को देखकर ज्योतिष ग्रन्थों की रचना हुई है। इनमें रात, दिन, ऋतु, माह, वर्ष, नक्षत्र आदि का सम्यक् अनुशीलन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना गद्य में हुई है और प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् ब्राह्मण हैं। इनका प्रधान विषय है—कर्मकाण्ड, जिसमें यज्ञीय कर्मों तथा मंत्रों का यज्ञ-सम्बन्धी विनियोग वर्णित है तथा अनेकानेक लौकिक एवं आध्यात्मिक आख्यानों का कथन किया गया है। आरण्यक तो ब्राह्मण-ग्रन्थों के परिशिष्ट हैं और इनमें दर्शन सम्बन्धी विचार भरे पड़े हैं। वेद के अन्तिम भाग को उपनिषद् कहा जाता है जिसका प्रधान प्रतिपाद्य ब्रह्म-विद्या है। इनकी संख्या 108 से भी अधिक है, जिनमें 11 प्रधान हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैतिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक एवं श्वेताश्वतर।

वेद

मौलिक अर्थ में वेद ज्ञान का प्रत्यापक है किन्तु 'विद्या' शब्द से 'विद्' के इसी धातु से उत्पन्न होने के कारण मूलतः विद्या और वेद शब्द समानार्थक हैं। 'आश्वलायन गृह्य-सूत्र' नें (10-7) वेद शब्द अनेक विद्याओं के साथ प्रयुक्त हुआ

है। 'यजुर्वेदोवेदः', 'अथर्वाणोवेदः', 'असुरविद्यावेदः', 'पुराणविद्यावेदः', 'इतिहासोवेदः' ।[2]

प्राचीन वाङ्मय में भी वेद, ब्रह्म और विद्या तीनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं। अनेक स्थलों पर तीनों वेदों के लिये 'त्रयं ब्रह्म', 'त्रयीविद्या' तथा 'त्रयोवेदाः' तीनों ही प्रकार के प्रयोग उपलब्ध होते हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' (4/6/7/1) में त्रयी के साथ विद्या शब्द भी प्रयुक्त हुआ है—

''त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि।''

''त्रयं ब्रह्म सनातनम्.............त्र्ग्यजुः सामलक्षणम्'' ।—मनुस्मृति 1/23

''एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना''—गीता—9/21[3]

वेद विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ तथा भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। प्राचीन धर्म, साहित्य, सभ्यता तथा दर्शन सभी की आधारशिला वेदों के राजप्रासाद पर अधिष्ठित है। 'वेद' का व्याकरण लब्ध अर्थ है 'ज्ञान'। मनु के अनुसार 'वेद' पितृगण, देवता तथा मनुष्यों का सनातन तथा निरन्तर विद्यमान रहने वाला चक्षु है। सायण के अनुसार प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान कराने में वेद की वेदता है।

वेद का प्रयोग मंत्र और ब्राह्मण के लिए हुआ है जिसका मनन किया जाये उसे मंत्र कहते हैं। इनके द्वारा यज्ञानुष्ठान एवं देवता की स्तुति का विधान होता है—मननात् मंत्रः। ब्राह्मण शब्द ग्रन्थ विशेष का द्योतक है, ब्रह्मन के कई अर्थ होते हैं, उनमें एक अर्थ यज्ञ भी है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ उन्हें कहा जायेगा जिनमें यज्ञ की विविध क्रियाओं का वर्णन हो।

ब्राह्मण के तीन विभाग किये जाते हैं

1. ब्राह्मण।
2. आरण्यक।
3. उपनिषद्।

वेदों के रूप में भारत वर्ष की अखण्ड साहित्यिक परम्परा छः सहस्र वर्षों से सतत् प्रवाहमान है वैदिक युगीन ऋषियों ने प्रकृति के वाह्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपने हृदय की भावधारा की जो तीव्र अभिव्यक्ति की है, वह वैदिक साहित्य की ही नहीं, विश्व वाङ्मय की अपूर्व निधि है।

वेद का समय-निरूपण

भारतीय परम्परा वेदों को अपौरुषेय, अनादि, नित्य तथा कालावच्छिन्न मानती है। इस दृष्टि से इसके अनुसार वैदिक-काल-निर्णय का प्रश्न ही नहीं उठता। वेद ब्रह्म की वाणी के रूप में समावृत हैं, अतः इनकी प्राचीनता सृष्टि की प्राचीनता से अनुस्यूत है। पर, आधुनिक युग के विद्वान वैज्ञानिक आधार पर उक्त विचार को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और वे प्राचीन भारतीय आचार्यों के काल सम्बन्धी मतों के प्रति श्रद्धा नहीं रखते। वे वेदों को ऋषि प्रणीत या उनकी कृति मानकर उन्हें पौरुषेय स्वीकार करते हैं। उन्होंने इन्हें मनुष्यकृत कहकर इनकी जो

सीमा निर्धारित की उसमें निष्पक्षता का भाव अनुगुंजित नहीं होता और वह पूर्वाग्रहग्रस्त दीख पड़ते हैं। इनके निष्कर्षों को अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता, पर इनकी शोधात्मक पद्धति एवं निष्कर्षों को सर्वथा निर्मूल एवं उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता और न इनके मतों का अवमूल्यन किया जा सकता है।

पाश्चात्य पण्डितों में सर्वप्रथम मैक्समूलर ने इस प्रश्न की छान-बीन में जीवन-पर्यन्त शोध-कार्य किया। उन्होंने 1859 ई. में अपने ग्रन्थ 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' में सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' का निर्माण काल खोजने का प्रयत्न किया और अपना निर्णय दिया कि इसकी रचना ईस्वी पूर्व बारह सौ वर्ष हुई है। उन्होंने अपने निर्णय का 'केन्द्रीय तिथि बिन्दु बौद्ध-धर्म के उदय को मानकर बताया कि उस समय तक सभी वैदिक साहित्य (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदाङ्ग) का निर्माण हो चुका था, ब्राह्मणों और श्रौत सूत्रों में वर्णित यज्ञानुष्ठान का ही बुद्धदेव द्वारा घोर विरोध किया गया था। मैक्समूलर ने समस्त वैदिक वाङ्मय को चार युगों या भागों में विभक्त किया—छन्दकाल, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल एवं सूत्रकाल तथा प्रत्येक काल के लिये दो-दो सौ वर्षों का समय निश्चित करते हुए सूत्रकाल को छः सौ वर्ष ईस्वी पूर्व ब्राह्मण को छः सौ से आठ सौ ईस्वी पूर्व और मन्त्रकाल को एक हजार ईस्वी पूर्व स्वीकार किया। उनके विचारानुसार वैदिक संहिताओं का रचनाकाल बारह सौ ईस्वी पूर्व माना गया।'

पाश्चात्य विद्वानों को मैक्समूलर के इस अवैज्ञानिक और भ्रम पूर्ण निर्णय का भान हुआ और उन्होंने उनके विचारों का खण्डन किया। ह्विटनी ने उनकी इस अंध परम्परा की निंदा की तथा श्रेडर ने अपनी खोजों के आधार पर संहिताकाल को 1500 ईस्वी पूर्व से 2000 ईस्वी पूर्व पहुँचाने का प्रयास किया, उसी समय हर्मन याकोबी ने ज्योतिष विज्ञान की गणना के आधार पर वेदों का समय चार सहस्र वर्ष ईस्वी पूर्व निर्धारित किया तथा भारतीय विद्याविद् लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष विज्ञान के साक्ष्य पर वेदों का रचनाकाल 6000 वि० पू० से 2500 विक्रम पूर्व तक निश्चित किया। तिलक के पूर्व प्रसिद्ध महाराष्ट्री विद्वान शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय ज्योतिष' में (पूना 1896) ज्योतिष गणना के आधार पर ऋग्वेद का काल 3500 वर्ष विक्रम पूर्व निर्धारित किया। जर्मन विद्वान हर्मन याकोबी ने कल्पसूत्रा के विवाह प्रकरण में वर-वधू को ध्रुव दिखाने के वर्णन 'ध्रुव इव स्थिरा भव' का काल 2600 ईस्वी पूर्व माना है। याकोबी ने ऋग्वेद का काल 4000 ईस्वी पूर्व निश्चित किया है।

भारतीय पण्डितों में डॉ० अविनाश चन्द्र व्यास ने 'ऋग्वेदिक इण्डिया' नामक ग्रन्थ की रचना भौगोलिक तथा भूगर्भ सम्बन्धी घटनाओं के आधार पर की और बताया कि वैदिक सभ्यता का आविर्भाव ईसा पूर्व 25000 वर्ष हुआ था। उनके इस मन्तव्य की खिल्ली उड़ाते हुए पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इसे अवैज्ञानिक एवं भावुक ऋषियों की कल्पना की उक्ति प्रदान की। एक अन्य विद्वान पण्डित

दीनानाथ शास्त्री 'चुलेट' ने 'वेद काल निर्णय' नामक ग्रन्थ में ज्योतिष शास्त्र को आधार ग्रहण करते हुए वेदों का निर्माण काल आज से तीन लाख वर्ष पूर्व सिद्ध किया है।

इस प्रकार वेदों के रचना काल के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के परस्पर विरोधी मत प्रचलित हैं जिनमें समन्वय स्थापित करना सम्भव नहीं है। डॉ. विण्टरनिट्स ने भी इस विषय में अपने विचार रखे हैं।

ऋग्वेद या वैदिक संहिताओं के काल-निर्णय के सम्बन्ध में पाश्चात्य पण्डितों के ये ही विचार हैं, जो वेदों का निर्माण काल ईस्वी पूर्व 2500 वर्ष से अधिक स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं, पर इस सम्बन्ध में अभी अनुसंधान अपेक्षित है। अनेक भारतीय विद्वानों के मतों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ईसा से 4000 वर्ष पूर्व वैदिक संहिताओं का निर्माण काल निश्चित करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है फिर भी इस सम्बन्ध में प्रामाणिक साक्ष्य के आधार पर कुछ भी 'इदमित्थं' नहीं कहा जा सकता।

वेदों के भाष्य

वेद के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये अथवा इसके निगूढ़ तत्वों की विवृति के लिये भाष्यों की रचना हुई है। जब वेद मन्त्रों की दुरूहता स्पष्ट होने लगी तब सभी वैदिक ग्रन्थों का आधार ग्रहण कर वेद भाष्यों का निर्माण होने लगा। प्रसिद्ध भाष्यकारों में स्कन्द स्वामी, वेंकट माधव, आनन्द तीर्थ, भट्ट भास्कर, नारायण, माधव भट्ट, धानुष्कयज्वा, आत्मानन्द तथा सायण के नाम उल्लेखनीय हैं।

1. स्कन्द स्वामी

ये ऋग्वेद के भाष्य कर्ता हैं। इनका समय 625 ईस्वी है। इन्होंने 'निरुक्त' पर भी टीका की रचना की थी।

2. नारायण

स्कन्द स्वामी, नारायण तथा उद्गीथ ने क्रमशः सम्मिलित रूप से ऋग्वेद भाष्य का प्रणयन किया है।

3. उद्गीथ

उद्गीथ ने ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य किया है।

4. माधव भट्ट

ऋग्वेद के माधव नामक चार भाष्यकारों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें एक का सम्बन्ध सामवेद से तथा शेष का सम्बन्ध ऋग्वेद से है। एक माधव तो सायणाचार्य ही हैं और दूसरे वेंकट माधव। तीसरे मद्रास के हैं जिन्होंने प्रथम अष्टक की टीका की।

5. वेंकट माधव

इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्संहिता पर भाष्य की रचना की है।

6. धानुष्कयज्वा

यह 1300 वि. सं. के पूर्ववर्ती हैं। इन्होंने तीन वेदों पर भाष्य की रचना की है।

7. आनन्द तीर्थ

प्रसिद्ध द्वैतवादी आचार्य मध्व का नाम ही आनन्द तीर्थ था। इन्होंने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चालीस सूक्तों पर पद्यबद्ध व्याख्या लिखी है।

8. आत्मानन्द

इन्होंने ऋग्वेद के अन्तर्गत 'अस्यवामीय' सूक्त पर भाष्य की रचना की है।

9. सायणाचार्य

वेदार्थानुशीलन के विचार से सायणाचार्य के भाष्यों का अत्यधिक महत्व है इसके भाष्यों को 'वेदार्थ प्रकाश' के नाम से अभिहित किया जाता है।

साम-भाष्य

सायण द्वारा सामवेद का भाष्य लिखने से पूर्व दो भाष्यों का उल्लेख मिलता है। इसके प्रथम भाष्य-कर्ता के रूप में माधव (1) का नाम माधव आता है। इन्होंने सामवेद के दोनों ही खण्डों—छन्द आर्चिक तथा उतरार्चिक पर अपने भाष्य की रचना की थी। इनके भाष्य को क्रमशः (छन्दसिका विवरण) एवं (उतर विवरण) कहा जाता है।

2. भरत स्वामी

इन्होंने भी सामसंहिता पर भाष्य की रचना की थी, जो प्रकाशित नहीं हुआ है। इन्होंने सामवेद की सभी ऋचाओं का भाष्य लिखा है, इन्होंने साम संहिता के अतिरिक्त साम ब्राह्मणों पर भी भाष्य लिखा है।

3. गुणविष्णु

इन्होंने 'साम-मन्त्र व्याख्यान' नामक सामवेद का भाष्य लिखा है। इनका 'छान्दोग्य-मन्त्र-भाष्य' कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है, जो सामवेद की कौशुमशाखा पर है।

शुक्ल-यजुर्वेद भाष्य

माध्यन्दिन संहिता

इसके दो भाष्यकार थे—

1. उव्वट।
2. महीधर।

1. उव्वट

माध्यन्दिन संहिता के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—'ऋक्प्रतिशाख्य की टीका', 'यजुः प्रतिशाख्य की टीका', 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' पर

भाष्य तथा ईशावास्य उपनिषद् पर भाष्य।

2. महीधर

इन्होंने 'वेददीप' नामक भाष्य की रचना की है जो कि उव्वट भाष्य की छाया से छायान्वित है। इन्होंने तन्त्र विषयक 'तन्त्र महोदधि' नामक ग्रन्थ की रचना की।

काव्य संहिता भाष्य

1. हलायुध

इनके भाष्य का नाम 'ब्राह्मण सर्वस्व' है। इन्होंने काण्व संहिता के उत्तरार्द्ध पर भाष्य की रचना की है।

कृष्णयजुर्वेद की तैतिरीय संहिता

इस पर सर्व-प्रथम सायण ने भाष्य लिखा। कुण्डिन ने भी 'तैतिरीय संहिता' पर भाष्य की रचना की है।

भवस्वामी—ने तैतिरीय संहिता पर भाष्य की रचना की।

गुहदेव—देवराज्यज्वा के निघण्टुभाष्य में गुहदेव को तैतिरीय संहिता का भाष्यकार कहा गया है।

क्षुर—इन्होंने भी तैतिरीय संहिता पर भाष्य की रचना की।

'संहिता ऋग्वेद'

वैदिक ग्रन्थों पर भाष्य लिखने के बाद संहिता युग आया जिसमें प्रत्येक वेद पर संहिता ग्रन्थ लिखे गये।

'ब्राह्मण युग'

वैदिक संहिताओं के पश्चात् संस्कृत या वैदिक साहित्य के इतिहास में एक ऐसा युग आया जो वर्ण्य-विषय या शैली की दृष्टि से सर्वथा भिन्न था। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् ब्राह्मण हैं जैसे—ऋग्वेद के ब्राह्मण ऐतरेय तथा शांखायन, शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण, कृष्णयजुर्वेद के—तैतिरीय ब्राह्मण, सामवेद के ताण्ड्य, षडविंश, सामविधान, आर्षेय, दैवत, उपनिषद् ब्राह्मण, संहितोपनिषद् तथा जैमिनीय ब्राह्मण। अथर्ववेद का-गोपथ ब्राह्मण है।

'आरण्यक'

आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों के परिशिष्ट माने जाते हैं। इनमें ब्राह्मणों से सर्वथा भिन्न विषयों का चिंतन किया जाता है। सायणाचार्य ने अरण्य में पठ्यमान होने के कारण इनकी संज्ञा आरण्यक दी है।

आरण्यकों का आध्यात्मिक तत्व उपनिषदों के तत्व चिंतन का पूर्वरूप है, जिसका पूर्ण-विकास उपनिषदों में प्रदर्शित होता है। प्रत्येक वेद में पृथक्-पृथक् आरण्यक हैं। ऋग्वेद के तीन आरण्यक हैं—

1. एतरेय

2. शांखायन

3. तैत्तिरीय

अथर्ववेद का कोई आरण्यक प्राप्त नहीं होता है।

सामवेद का आरण्यक 'तलवकार' है।

'उपनिषद्'

भारत के आध्यात्मिक इतिहास में उपनिषदों का महनीय योग है, जिनसे यहाँ का साहित्य, दर्शन और धर्म सहस्रावधियों से शासित होता रहा है।

उपनिषदों की संख्या के विषय में पर्याप्त मत भेद हैं। साधारणतः उनकी संख्या 108 मानी जाती है। जिनमें 10 या 12 उपनिषद् प्रधान हैं। 'मुक्तिकोपनिषद्' में उनकी संख्या 108 दी गयी है, जिनमें 10 का सम्बन्ध ऋग्वेद से है, 19 का शुक्ल यजुर्वेद से, 12 का कृष्ण यजुर्वेद से, 16 का सामवेद से तथा 31 का अथर्ववेद से है।

आचार्य शंकर ने दस उपनिषदों पर भाष्य की रचना की है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैतिरीय, एतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक। इनके अतिरिक्त कौषीतकि, श्वेताश्वतर तथा मैत्रायणीय उपनिषद् भी प्राचीन हैं।

'वेदाङ्ग'

वैदिक संहिता एवं उनसे सम्बद्ध साहित्य के विधिवत् अध्ययन के क्रम म जिस साहित्य का विकास हुआ उसे वेदाङ्ग के नाम से जाना जाता है। वेदाङ्ग नाम इस बात का द्योतक है कि वेदानुशीलन के अंग रूप में इस साहित्य का प्रणयन हुआ या वेद का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये वेदाङ्गों की रचना हुई, जिसके द्वारा वस्तु के स्वरूप का परिज्ञान होने में सहायता मिले, उसे 'अंग' कहा जाता है। वेद के अर्थ की दुरूहता को दूर करने तथा कर्मकाण्ड सम्बन्धी तथ्यों के प्रतिपादन में वेदाङ्गों की उपयोगिता असंदिग्ध है। ऐसे ग्रन्थों के छः वर्ग हैं।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष।

'अनुक्रमणी'

'अनुक्रमणी' का अर्थ सूची है। प्रत्येक वेद की पृथक्-पृथक् अनुक्रमणियों की रचना हुई। शौनक एवं कात्यायन अनुक्रमणी के प्रसिद्ध लेखकों में हैं। शौनक ने ऋग्वेद की रक्षा के लिये 10 अनुक्रमणियों की सृष्टि की है। 1. आर्षानुक्रमणी, 2. 2. छन्दोऽनुक्रमणी, 3. देवतानुक्रमणी, 4. अनुवाक्, 5. सूक्तानुक्रमणी, 6. ऋग्विधान, 7. पादविधान, 8. वृहद्देवता, 9. प्रातिशाख्य एवं 10. शौनकस्मृति।

कात्यायन ने 1. वृहद्देवता, 2. सर्वानुक्रमणी 3. सामवेदीय अनुक्रमणी 4. वृहत्सर्वानुक्रमणी की रचना की।

इस प्रकार संक्षेप में वैदिक साहित्य का सार प्रस्तुत किया गया।

वैदिक संस्कृत साहित्य की पूर्ण जानकारी संक्षेप में करने के पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य का प्रारम्भ रामायण से करते हैं—

रामायण

रामायण भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य एवं सम्पूर्ण जातीय जीवन की महागाथा है। भारतीय साहित्य में वाल्मीकि 'आदि कवि' के रूप में प्रतिष्ठित हैं और उनका काव्य **'रामायण'** 'आदि काव्य' के नाम से अभिहित किया जाता है। 'वैदिक साहित्य' के समापन के पश्चात् संस्कृत में जिस साहित्य की अवधारणा हुई उसे क्लासिक या श्रेण्य साहित्य कहते हैं और उसका विभाजन इतिहास, काव्य, पुराण के अन्तर्गत किया गया है। ऐसे काव्यों में रामायण सर्वाधिक महनीय रचना के रूप में समादृत है। वस्तुतः वाल्मीकि रामायण से ही संस्कृत में कवित्वमय सर्जनात्मक काव्यधारा का प्रवर्तन हुआ, जो साहित्यिक संवेदनशीलता से अभिप्रेरित था।

इसमें राम रावण के दुर्घोष एवं भीषण युद्ध का वर्णन है और राम के चरित्र का काव्यात्मक वर्णन किया गया है। वाल्मीकि रामायण को भारत का गौरव मानकर इसे बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। यह लौकिक संस्कृत साहित्य की सर्वप्रथम रचना है, जिसमें कवि का मुख्य अभिप्रेत केवल राम, रावण के युद्धों एवं विजयों का ही वर्णन नहीं है अपितु यह अलंकृत भाषा के माध्यम से समस्त मानव जीवन का चित्रण प्रस्तुत कर उसे प्रकृति की रमणीय पृष्ठभूमि में सजाता है।

वस्तुतः रामायण के द्वारा ही संस्कृत साहित्य में वैदिक शैली से सर्वथा भिन्न एक नई काव्य शैली का सूत्रपात हुआ, जिसमें सर्वप्रथम मानव चरित्र का अंकन किया गया था। वाल्मीकि रामायण का आधार—फलक अत्यन्त विस्तृत एवं मानव की विराट तथा प्रबुद्ध सांस्कृतिक चेतना से परिपुष्ट है। यह लौकिक साहित्य की प्रथम काव्य-धारा है जिसने अनन्त काल तक मानव मन को आप्लावित किया है, और भविष्य में भी करता रहेगा। इसमें निषाद के बाण से बिद्ध क्रौञ्च पक्षी की करुणावस्था देखकर कवि का भावाकुल हृदय द्रवीभूत होकर काव्य के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ है या यह कवि की करुणा विगलित भावों की द्रवणशील अभिव्यक्ति है, जिसमें न केवल राम के जीवन को अंकित किया गया है अपितु यह भारतीय संस्कृति, समाज, धर्म, एवं चिंतन पद्धति का आकर ग्रन्थ है। इसमें भारतीय जीवन-पद्धति एवं सांस्कृतिक चेतना को भावात्मक रूप प्रदान किया गया है अर्थात् रामायण भारतीय जीवन का मंजुल उद्गीथ है।

रामायण 'चतुर्विंशति संहिता' के नाम से विख्यात है, क्योंकि इसमें 24000 श्लोक हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार आदि कवि ने त्रेता-युग के प्रारम्भ में, राम के जन्म के पूर्व ही रामायण की रचना की थी।

सम्पूर्ण रामायण सात काण्डों में विभक्त है—बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड,

अरण्य काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्ध काण्ड एवं उत्तर काण्ड।

महाभारत

महाभारत भारत का राष्ट्रीय ऐतिहासिक काव्य तथा आर्य-जीवन की विराट और सार्व-भौमिक महत्त्व से युक्त महागाथा है। इसके विशाल कलेवर का इस प्रकार निर्माण किया गया है, जिसमें पुराण, इतिहास, महाकाव्य, धर्म-शास्त्र तथा नीति दर्शन का मिश्रित स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। प्रसिद्ध विद्वान भारतीय विद्याविद् डॉ. विन्टरनिट्स ने इसे अत्यन्त सीमित अर्थ में इतिहास और काव्य कहा है, किन्तु वास्तव में वे इसे अपने में एक पूर्ण साहित्य मानते हैं। भारतीय मनीषा ने शताब्दियों से प्रवहमान जिस ज्ञान एवं विचारणा का अन्वेषण किया था और युग-युग से भारत ने सुचिंतित ढंग से जीवन की जो व्याख्या प्रस्तुत की थी उन सब का अखण्ड रूप एक प्राण होकर महाभारत में उत्कीर्ण है। यह ऐसा ज्ञान कोश है जिसमें मानव मस्तिष्क की समस्त चिंतन परम्परा एवं सांस्कृतिक चेतना आकर समाहित हो गयी है। एक शब्द में यह एक महान विश्व कोश है। इसमें ज्ञान के प्रत्येक पक्ष का केवल संस्पर्श ही नहीं किया गया है अपितु यह अपने सर्वांगीण कलेवर में विभिन्न विषयों की सर्वोच्च मान्यताओं और चिंतन सरणियों को गुम्फित कर भारत का ज्ञान सर्वस्व होने के कारण आर्ष-ग्रन्थ या पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठित है।

भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों को देने वाला, समस्त कार्यों का साधक एवं कोकिल के मधुर स्वर की भांति शीतल एवं ताप नाशक है। इसे कौरवों एवं पाण्डवों की केवल युद्ध गाथा ही नहीं कहा जा सकता, यह सनातन धर्म के समस्त स्वरूप का निरूपक पवित्र धर्म-ग्रन्थ भी है और गीता के रूप में इसने भारतीय-तत्व-चिंतन का नवनीत प्रस्तुत किया है। भारतीय जीवन-मूल्य को समझने में महाभारत के द्वारा अत्यन्त सुविधा प्राप्त होती है। संस्कृति को विद्वानों ने किसी जाति के जीवनगत वैशिष्ट्य की संज्ञा दी है। ''संस्कृति से तात्पर्य व्यक्तित्व की वे विशेषताएँ हैं, जिनका उपयोग वांछित मूल्यों के प्रकाशन व उत्पादन से होता है।''[4]

महाभारत के अन्तर्गत हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का समेकित रूप प्राप्त होता है—विशेषतः इसकी सांस्कृतिक गरिमा अत्यन्त प्रौढ़ है।

महाभारत में एक लाख श्लोक प्राप्त होते हैं, उसकी पुष्टि गुप्तकालीन एक शिलालेख से होती है जहाँ इसके लिये 'शतसाहस्री-संहिता' का प्रयोग हुआ है।

महाभारत का प्रणयन 18 पर्वों में हुआ है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहण।

महाभारत के रचयिता व्यास जी हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार महर्षि व्यास ही महाभारत के प्रणेता हैं और इसके प्रमाण ग्रन्थ में उपलब्ध होते हैं। ये

कृष्णद्वैपायन व्यास महाभारत के रचयिता होते हुए भी उसके एक प्रधान पात्र के रूप में चित्रित हैं और कौरवों तथा पाण्डवों के दादा कहे गये हैं।

पुराण

पुराण भारतीय संस्कृति और साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं इनमें कवित्वपूर्ण रचनात्मकता के साथ ही साथ भारतीय इतिहास का गौरवमय अंग उपन्यस्त है। पुराणों में कुल चार लाख श्लोक हैं और उनकी संख्या 18 मानी गयी है तथा उतने ही उप-पुराण हैं। इनमें महाकाव्यीय पुराकथाओं का बृहत् भण्डार संचित है तथा धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, मानव-सृष्टि और संहार के अतिरिक्त मनुष्यों के उत्तरदायित्वों के सिद्धान्त की शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। उप-पुराणों में महाकाव्यीय स्वरूप की मंदता और याज्ञिक तत्व की सर्वाधिक प्रधानता दिखाई पड़ती है। आधुनिक युग के विद्वान् सम्प्रदायिकता के वैशिष्ट्य के कारण पौराणिक साहित्य को विशेष महत्त्व नहीं देते, पर परम्पराओं तथा ऐतिहासिकता के विचार से ये भारतीय वाङ्मय के अत्यधिक उपादेय अंग सिद्ध होते हैं।

पुराणों को पंचलक्षण समन्वित माना जाता है। स्वयं पुराणों में भी इस बात का उल्लेख है कि पुराणों के प्रतिपाद्य विषय हैं—सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशानुचरित। सर्ग का अभिप्राय सृष्टि की रचना या उत्पति से है। संसार या उससे सम्बद्ध नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति ही सर्ग है।

पुराणों की संख्या

पुराण और उप-पुराण के नाम से दो प्रकार के पौराणिक ग्रन्थ हैं। 'देवी भागवत' में पुराणों के आद्य अक्षर के अनुसार 18 प्रकार कहे गये हैं। मकरादि से दो मत्स्य तथा मार्कण्डेय-पुराण, भकरादि से दो-भागवत् तथा भविष्य ब्र अक्षर से तीन-ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त तथा ब्रह्माण्ड पुराण। व अक्षर से चार-वामन, विष्णु, वायु तथा वाराह पुराण। अ, ना, पद्म, लिं, ग, क, स्क, के अनुसार—अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुण, कूर्म तथा स्कन्द-पुराण।

विष्णु तथा भागवत में एक विशेष क्रम से ये ही नाम प्राप्त होते हैं—ब्रह्म, प्रद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुण तथा ब्रह्माण्ड।

जैन दर्शन

आदिकाल से ही भारतीय-विचारधारा हमें दो रूपों में विभक्त हुई मिलती है। पहली परम्परामूलक, ब्राह्मण्य या ब्रह्मवादी, जिसका विकास वैदिक साहित्य के बृहत्स्वरूप में प्रकट हो चुका था और दूसरी पुरुषार्थ मूलक, प्रगतिशील, श्रामण्य या श्रमण-प्रधान, जिसमें आचरण को प्रमुखता दी गयी है।

जैन साहित्य

श्वेताम्बर संप्रदाय के अंग-ग्रन्थ

श्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्यों ने 12 आगमिक या अंग-ग्रन्थों का संग्रह

किया था उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. आचारांग सुत।
2. सूयगडंग।
3. थाणंग।
4. समवायांग।
5. भगवती सूत्र।
6. नायाधम्मकहाओ।
7. उवासग दसाओ।
8. अन्तगड दसाओ।
9. अणुतरोव वाइय दसाओ।
10. पण्हावागरणि आइ।
11. विवाग-सुयं।
12. दिढ़ठिवाय।

प्रकीर्ण ग्रन्थ

1. चतुःशरण।
2. आतुरप्रत्याख्यान।
3. भक्ति-परिज्ञा।
4. संस्तार।
5. ताण्डुलवैतालिक।
6. चंद्रवेध्यक।
7. देवेन्द्रस्तव।
8. गणित-विद्या।
9. महाप्रत्याख्यान।
10. वीरस्तव।

यापनीय सम्प्रदाय और उसका साहित्य

प्रमुख आचार्य	**ग्रन्थ का नाम**
1. उमास्वाति	तत्वार्थाधिगम सूत्र।
2. शिवाचार्य	आराधना।
3. शाकटायन	शब्दानुशासन, अमोघवृति, सिद्धिमुक्ति।
4. स्वयंभू	पउमचरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ।
5. त्रिभुवन स्वयंभू	पउमचरिउ, रिट्ठणेमि पंचमिचरिउ।
6. वादि राज	पार्श्वनाथ चरित, यशोधरचरित, एकीभावस्त्रोत, न्याय विनिश्चय, विवरण, प्रमाण निर्णय

पंचस्तूपान्वय और उसका साहित्य

जैन साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्र पंचस्तूपान्वय सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान हुए, उनका साहित्य इस प्रकार है।

वीरसेन

इन्होंने तीन ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें धवल टीका, जयधवल टीका दो ही उपलब्ध हैं।

जिनसेन

संयुक्त कृति 'जयधवला' के अतिरिक्त जिनसेन ने 'पार्श्वाभ्युदय' और 'आदि पुराण' की भी रचना की है।

गुणभद्र

इन्होंने 'उत्तर पुराण' एवं 'आत्मानुशासन' नामक दो ग्रन्थ लिखे।

श्रावक धर्म एवं उसकी आचार्य परम्परा

जैन धर्म में श्रावकाचार की आचार्य परम्परा बहुत पुरातन है। इस उपलब्ध आचार्य परम्परा का क्रम इस प्रकार है—आचार्य कुन्द-कुन्द, स्वामी कार्तिकेय, आचार्य उमास्वाति, आचार्य यतिवृषभ, स्वामी समन्तभद्र, आचार्य जिनसेन, आचार्य सोमदेव, आचार्य देवसेन, आचार्य अमितगति, आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य वसुनन्दि और पं. आशाधर।

बौद्ध युग

बौद्ध धर्म--प्राचीन भारत का राजधर्म

भगवान तथागत के जीवन-दर्शन के दो ही प्रमुख आधार रहे हैं :

एक व्यष्टिमय और दूसरा समष्टिमय।

प्राचीन भारत के राजवंशों में मौर्य साम्राज्य का प्रतापी सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का सबसे बड़ा अनुयायी और आश्रयदाता रहा है।

बौद्ध साहित्य

पालि

पालि साहित्य की रचना तथागत से लेकर आज तक अबाध गति से हो रही है। पालि के इन 2500 वर्षों के इतिहास को बौद्ध साहित्य के दिग्गज विद्वान् श्री भरत सिंह उपाध्याय ने दो मोटे भागों में विभाजित किया है।

1. पालि या पिटक साहित्य
2. अनुपालि या अनुपिटक साहित्य

त्रिपिटक साहित्य

भगवान के बुद्धत्व प्राप्त करने से लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने के बीच उन्होंने जो कुछ भी कहा उसी का संग्रह-संकलन त्रिपिटक में है। त्रिपिटक अर्थात् तीन पिटारियाँ। जिनका नाम है—सुतपिटक, विनयपिटक एवं अभिधम्मपिटक।

1. विनय पिटक

इसमें निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं–

1. पतिमोक्ख 2. सुक्तविभंग
3. खंधकस 4. परिवार

सुतपिटक

इसमें निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं–

1. दिघनिकाय 2. मज्झिम निकाय
3. संयुक्त निकाय 4. अङ्गतर निकाय
5. खुद्दक निकाय

इनमें भगवान बुद्ध के प्रवचन संग्रहीत हैं।

अभिधम्म पिटक

इसमें निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं–

1. धम्म संगनी 2. विभंग
3. कथा-वत्थु 4. पुग्गल पनती
5. धातु कथा 6. यमक
7. पत्थनि

अनुपिटक साहित्य

पिटक साहित्य के बाद अनुपिटक साहित्य की रचना हुई, जिसकी स्थिति आज तक बनी हुई है।

प्रथम 'प्राग्बुद्धघोषयुग' में रचे गये अनुपिटक-साहित्य के ग्रन्थों में 'नेतिप्रकरण' 'पेटकोपदेश', 'सुतसंग्रह', 'मिलिचन्दपञ्ह' और इतिहास प्रसिद्ध 'दीपवंश' का नाम प्रमुख है। दूसरे 'बुद्धघोषयुग' का आरम्भ आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थ विशुद्धिभग्ग तथा उनके द्वारा रचित 'अर्थकथाओं' से होता है। इसके अतिरिक्त बुद्धदत, धम्मपाल की 'अर्थकथाएँ' लंका में रचित बृहद्ग्रन्थ 'महावंश' 'कच्चान व्याकरण' और अनिरुद्ध का 'अभिधम्मत्थ' संग्रह, आदि की गणना की जाती है। तीसरा 'उत्तर बुद्धघोष युग' बृहद् अर्थकथा-साहित्य की टीकाओं एवं अनुटीकाओं का युग है, जिसमें रचे गये ग्रन्थों में आचार्य बुद्धघोष कृत 'अर्थ-कथाओं' का मगध भाषा में लिखित टीका कार्य प्रथम है जिसका निर्माण लंका के राजा पराक्रमबाहु के समय बारहवीं शताब्दी में हुआ। बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी में सिंहल के भिक्षु सारिपुत एवं उनके शिष्यों ने भी इस दिशा में कार्य किया। 'महावंश' का 'चूलवंश' भाग भी इसी युग में निर्मित हुआ। बरमी भिक्षुओं ने अनिरुद्ध के 'अभिधम्मत्थ' संग्रह की परम्परा में अनेक ग्रन्थों की रचना इसी समय की। वर्तमान सदी में रचे गये आचार्य धर्मानन्द कोशाम्बी के ''विशुद्धिमग्गदीपिका'' और 'अभिधम्मत्थ संग्रह-टीका' भी उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

निष्कर्ष यह है कि पालि साहित्य के इस तीसरे युग में बर्मा, आदि देशों में

अनेक अच्छी कृतियों का निर्माण हुआ।

संस्कृत के ग्रन्थकार

जिस प्रकार बौद्ध धर्म की स्थविरवादी शाखा के प्रायः सम्पूर्ण ग्रन्थ पा॰ भाषा में लिखित हैं उसी प्रकार सर्वास्तिवादी शाखा के प्रवर्तक और अनुवर्तक विद्वानों की प्रायः समग्र कृतियाँ संस्कृत भाषा में लिखी हुई मिलती है। बौद्ध विद्वानों की यह एक बड़ी दूरदर्शिता थी कि उन्होंने अपनी कृतियों का प्रणयन पालि को छोड़कर संस्कृत भाषा में किया।

अश्वघोष

इस प्रकार के संस्कृतानुरागी बौद्ध-विद्वानों में पहला नाम अश्वघोष का है। अश्वघोष संस्कृत साहित्य के एक सुपरिचित महाकवि एवं बौद्ध न्याय के प्रकाण्ड दार्शनिक भी थे। संस्कृत साहित्य में उनकी गणना भास एवं कालिदास जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थकारों से की जाती है।

नागार्जुन

बौद्ध-न्याय के यशस्वी निर्माता होने के कारण बौद्ध-साहित्य के इतिहास में एवं शीर्ष-स्थानीय भारतीय दर्शनकारों की कोटि में आचार्य नागार्जुन के बहुमुखी व्यक्तित्व एवं उनकी असामान्य प्रतिभा को आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

कृतियाँ

1. माध्यमिक कारिका।
2. दशभूमिविभाषा शास्त्र।
3. महाप्रज्ञापारमिता सूत्र कारिका।
4. उपाय-कौशल्य।
5. प्रभाव विध्वंसन।
6. विग्रह व्यावर्तिनी।
7. चतुःस्तव।
8. युक्ति षष्ठिका।
9. शून्यता-सप्तति।
10. प्रतीत्यसमुत्पादहृदयम्।
11. महायान विंशक।
12. सुहृल्लेख।

असंग

'महायान-संपरिग्रह', 'प्रकरण आर्यवाचा', 'योगाचार भूमि-शास्त्र' 'महायानसूत्रलंकार'।

वसुबन्धु

हीनयान संप्रदाय विषयक कृतियां–
'सद्धर्भपुण्डरीकटीका'।
'महापरिनिर्वाणसूत्र-टीका'।

'वज्रछेदिका-प्रज्ञापारमिता टीका'।

'विज्ञप्ति मात्रता सिद्धि'।

आचार्य दिङ्नाग

आचार्य दिङ्नाग ने न्याय-दर्शन पर लगभग 100 पुस्तकें लिखीं।

चन्द्र गोमिन्

इन्होंने 'शिष्यलेख-धर्मकाव्य', आर्यसाधन-शतक, आर्य-तारान्तर-वलिविधि, लोकानंद, चांद व्याकरण लिखीं।

धर्मकीर्ति

'प्रमाण-विनिश्चय', 'न्याय-बिन्दु', 'संबंध-परीक्षा', 'हेतुबिंदु', 'वाद-न्याय', 'समानान्तर सिद्धि' आदि लिखीं।

दर्शन शास्त्र

भारतीय दर्शनों की विकास परम्परा को अभ्युदय, भाष्य और वृति, इन तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है। सूत्रकाल दर्शनों का अभ्युदय युग है, जिसकीं सीमा ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी तक पहुँचती है। तदन्तर लगभग 15वीं शताब्दी तक सूत्र ग्रन्थों की निरन्तर व्याख्या होती रही। यही उनका भाष्य-काल है। भाष्य-काल का कुछ भाग और उसके बाद की कुछ शताब्दियाँ उनके वृतिकाल की सूचक हैं।

भारतीय दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण युग उनका भाष्य युग है। इस युग में भारतीय दर्शनों पर जो व्यापक प्रकाश डाला गया, उसके कारण उसका महत्व विश्वविश्रुत हुआ। पारलौकिक जीवन की श्रेष्ठता के सम्मुख ऐहिक जीवन की निष्क्रियताओं को हेय बताने वाले भारतीय दर्शन मानव की बौद्धिक पराकाष्ठा के उज्ज्वल प्रमाण इसी समय सिद्ध हुए।

नास्तिक दर्शन

नास्तिक वादियों ने वेदों को भाँड, धूर्त और निशाचरों की रचनाएँ बताया है तथा उन पर चलने या विश्वास करने वाले लोगों को अज्ञानी कहा है। चार्वाक्-दर्शन घोर जड़वादी दर्शन है। नास्तिक दर्शन की पंचतत्वों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात ध्यान देने की है। पंचतत्व की जिन सूक्ष्मताओं का विश्लेषण और वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा उनके मौलिक पक्षों का प्रतिपादन इन आचार्यों ने किया है वह सचमुच अद्भुत एवं विचारणीय है।

चार्वाक् दर्शन

यह षड् नास्तिक दर्शनों में शीर्षस्थानीय है।

साँख्य दर्शन

इसके प्रवर्तक महर्षि कपिल हुए।

योग दर्शन

योग दर्शन के प्रवर्तक आचार्य पतंजलि हुए।

न्याय दर्शन

पदार्थ-मीमांसा के प्रणेता महर्षि गौतम तथा उनकी कृति न्याय-सूत्र है। प्रमाण मीमांसा का अभ्युदय मिथिला के सुप्रसिद्ध नैयायिक गंगेश उपाध्याय ने (12वीं श.) में 'तत्व चिन्तामणि' ग्रन्थ को लिखकर किया।

वैशेषिक दर्शन

इसके प्रवर्तक महर्षि कणाद् हुए, जिनका नाम उलूक तथा कणभुक् भी था, इनके कणाद्-सूत्र को औलूक्य दर्शन भी कहते हैं।

मीमांसा दर्शन

इसके प्रवर्तक महर्षि जैमिनी हैं।

व्याकरण शास्त्र

भाषा और विचारों के तारतम्य के इतिहास को बाँधने वाली भाषा व्याकरण है। व्याकरण एक शास्त्र है, जिसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और जो अपने आप में सर्वांगपूर्ण है।

व्याकरण शास्त्र के आदिम सृष्टा वक्ता एवं प्रवक्ता

संस्कृत साहित्य का यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है कि सभी विद्याओं एवं सारे शास्त्रों के आदिम वक्ता महाज्ञानी ब्रह्मा थे। यद्यपि यह "ब्रह्मा" शब्द कर्तृत्व के कारण अनेक व्यक्तियों का अभिधान वाची रहा है। किन्तु यह प्रायः निश्चित सा हो गया है कि सर्व-विद्या-विद् महा-मेधावी आदि में ब्रह्मा नाम से एक ही व्यक्ति था और वह ऐतिहासिक व्यक्ति था।

ब्रह्मा के बाद व्याकरण शास्त्र के प्रवक्ता बृहस्पति हुए, ब्राह्मण ग्रन्थों में जिन्हें देवों का पुरोहित कहा गया है। वह अर्थशास्त्रकार थे और अगद-तन्त्र का रचयिता भी उन्हें ही कहा जाता है।

इन्द्र भी व्याकरण के प्रवक्ता थे, उन्होंने बृहस्पति से प्रतिपदपाठ द्वारा शब्दोपदेश का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था, किन्तु उनके सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि उन्होंने पदों के प्रकृति प्रत्यय विभाग द्वारा तथा शब्दोपदेश प्रक्रिया की कल्पना द्वारा परम्परागत व्याकरण ज्ञान का संस्कार भी किया। उन्होंने पूरा आगत अव्याकृत वाणी को प्रकृति प्रत्यादि संस्कार युक्त किया। व्याकरण के लिये इन्द्र की यह विशेष देन थी।

इस दृष्टि से व्याकरण के आदिम वक्ता ब्रह्मा हुए तथा प्रवक्ता बृहस्पति, इन्द्र, भारद्वाज आदि ऋषि एवं ब्राह्मण।

वर्तमान उपलब्ध साहित्य में पाणिनी की अष्टाध्यायी सर्व-विदित है। कुछ आचार्यों का उल्लेख अष्टाध्यायी में किया गया है किन्तु कुछ उससे पूर्व के भी हैं, जिनमें वायु, भारद्वाज, भृगुरि, पौष्करसादि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

ज्योतिष शास्त्र

ज्योतिष-शास्त्र अपने मूल रूप में बहुत प्राचीन है, उसकी व्यापकता और

प्रभाव-वेदमंत्रों तक विस्तृत है। ज्योतिष का अस्तित्व वेदों में जितना पुराना है। वेद-मंत्रों और वैदिक साहित्य में हमें उसके सूत्र बिखरे हुए मिलते हैं। इन सूत्रों की व्याख्या और उन पर आगे के विचारकों द्वारा किये गये अनुसंधान के ही फलस्वरूप इतने वृहद् शास्त्र का निर्माण हुआ।

काल-विभाजन

1. अंधयुग	आदिकाल से	10000 ईस्वी पूर्व तक
2. उदयकाल		10000-500 ईस्वी पूर्व तक
3. आदिकाल		500 ईस्वी पूर्व से 500 ईस्वी तक
4. पूर्वमध्यकाल		500-1000 ईस्वी तक
5. उत्तरमहमध्यकाल		1000-1600 ईस्वी तक
6. आधुनिककाल		1600 ईस्वी से अब तक

भारतीय ज्योतिष के क्षेत्र में महाराज सवाई जयसिंह का नाम आदर के साथ लिया जाता है। जयसिंह का जन्म 1686 ईस्वी में हुआ और 1699 ईस्वी के लगभग 13 वर्ष की उम्र में ही वे गद्दी पर बैठे। उनके प्रोत्साहन से भारतीय ज्योतिष में अन्वेषण की नवीन दिशाएँ प्रकाश में आयीं।

भारतीय ज्योतिष का प्रचार-प्रसार अरब तथा अरब से यूरोप और फिर अमेरिका आदि देशों में हुआ।

शब्दांकों का प्रयोग

भारत में शब्दांकों को प्रयोग का प्रचलन वैदिक युग में ही विद्यमान था।

अक्षर संकेतों का प्रयोग

अंकों की संख्या को सूचित करने के लिये शब्द संकेतों के अतिरिक्त अक्षर संकेतों या वर्ण संकेतों का भी प्रचलन भारतीय ज्योतिष में सर्वत्र मिलता है। शब्द संकेतों की पद्धति कुछ जटिल, विस्तृत और दुःसाध्य होने के कारण ही सम्भवतः अक्षर संकेतों का प्रयोग हुआ।

आयुर्वेद शास्त्र

आयुर्वेद के महान ज्ञान का इतिहास बहुत लम्बा है। आयुर्वेद शास्त्र के पहले उपदेष्टा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हुए। युगक्रम के अनुपात से बुद्धि विवेक को दृष्टि में रखकर बाद में इन्द्र से भारद्वाज, धन्वन्तरि आदि ने जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह अष्टाङ्ग पूर्ण होता हुआ भी किसी एक अंग पर अधिक केन्द्रित था। उदाहरणार्थ धन्वन्तरि ने भिषक् क्रिया पर अधिक बल दिया, तो पुनर्वसु ने काय-चिकित्सा पर और कश्यप ने केवल कौमार-भृत्य पर।

एक जीवनोपयोगी शास्त्र होने के नाते आयुर्वेद ने यथेष्ट लोकप्रियता और प्रसिद्धि प्राप्त की। उसने अपना स्वतन्त्र सर्वाङ्गीण विकास किया और दूसरे शास्त्रों का प्रपूरक होने के कारण बड़ी मान्यता प्राप्त की। स्मृतियों और पुराणों की विधियों में शरीर शास्त्र की पर्याप्त चर्चाएँ मिलती हैं। साँख्य एवं योग प्रभृति

दर्शन के सम्प्रदायों से आयुर्वेद विषय का बौद्धिक पक्ष प्रभावित है। इसी प्रकार वेदांत दर्शन ने उसको आध्यात्म बल दिया।

आयुर्वेद में यद्यपि शरीर-विज्ञान की विधियाँ बतायी गयी हैं तथापि उसकी आयु सहस्रों वर्ष प्राचीन है। ऋग्वेद में आयुर्वेद के जन्मदाता दिवोदास, भारद्वाज और अश्विनी कुमार आदि आचार्यों और परमर्षियों का उल्लेख मिलता है। काश्यप संहिता में आयुर्वेद का उद्भव 'अथर्व-उपनिषद्' के रूप में कहा गया है। आयुर्वेद के उपयोगी ज्ञान से संस्कृत के सभी प्रमुख ग्रन्थकारों की कृतियाँ प्रभावित हैं।

धर्म-शास्त्र

स्मृतियों का निर्माण हिन्दू धर्म की चरमोन्नति का सूचक है। 'श्रुति' और 'स्मृति' ये दोनों शब्द व्यापक अर्थ के पर्यायवाची शब्द हैं। श्रुति से जिस प्रकार वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि ग्रन्थों का बोध होता है, उसी प्रकार स्मृति शब्द के अन्तर्गत षड्वेदांग, धर्म-शास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थ-शास्त्र और नीति-शास्त्र इन सभी विषयों का अन्तर्भाव हो जाता है। श्रुति और स्मृति का यही व्यापक अर्थ-बोध है। विशिष्ट रूप से स्मृति शब्द को, बाद के ग्रन्थकारों ने धर्म-शास्त्र का पर्यायवाची मान लिया, किन्तु 'श्रुति' के साथ जहाँ भी 'स्मृति' शब्द को संयुक्त करके कहा जाता है, वहाँ उसका अर्थ धर्म-शास्त्र तक सीमित न रहकर वह व्यापक अर्थ का बोध कराता है। धर्म-शास्त्र उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें राजा-प्रजा के अधिकार, कर्तव्य, सामाजिक आचार-विचार, व्यवस्था, वर्णाश्रमधर्म, नीति, सदाचार और शासन-सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था का वर्णन होता है।

स्मृतियों के निर्माता हुए हैं—मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशसन्, अंगिरा, यम, कात्यायन, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद, भृगु।

'मानव-धर्म-शास्त्र' इस विषय का सर्वाधिक प्राचीन अंग था। मनु को मानव जाति के आदि पुरुष के रूप में संहिता और ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में स्मरण किया जाता है। इस दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि बहुत सम्भव है कि वर्तमान मनु स्मृति की रचना 'मानव-धर्म-शास्त्र' के सूत्रों के आधार पर की गयी हो।

संगीत शास्त्र

भारतीय संगीत के पहले आचार्य भरत हुए। भरत के नाट्य-शास्त्र मे ज़ातियों का जो वर्णन दिया गया है, प्रकारान्तर से वह राग-रागनियों का सूचक है। राग-रागनियों की चर्चा सर्वप्रथम नारदकृत 'संगीत मकरन्द' में मिलती है। तत्पश्चात् शिवमत, कृष्णमत, भरतमत और हन्मुन्मत का आविर्भाव हुआ। इन सबके पश्चात् 'संगीत रत्नाकर' इस दिशा का उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

शब्द कोश

प्राचीन समय में व्याकरण और कोश का विषय लगभग एक ही श्रेणी में

गिना जाता था। यही कारण था कि जिन पुरातन आचार्यों ने व्याकरण की रचना की, वही प्रायः कोशकार भी थे। व्याकरण और कोश, दोनों एक ही शब्द शास्त्र के अंग थे।

सभी प्राचीन कोश प्रायः विलुप्त हैं।

वैदिक शब्दकोश

निघण्टु और निरुक्त, प्राचीन वैदिक शब्द कोशों के सम्बन्ध में यथा स्थान उल्लेख किया जा चुका है। निघण्टु और निरुक्त का एक संस्करण डॉ. लक्ष्मण स्वरूप ने लाहौर से प्रकाशित कराया था। 'वेदार्थ-शब्दकोश' नाम से भी चमूपति ने एक सुन्दर शब्दकोश तीन भागों में लाहौर से प्रकाशित कराया था।

लौकिक शब्दकोश

लौकिक संस्कृत में कोश ग्रन्थों के निर्माण का प्रारम्भ, वैदिक शब्द कोश निघण्टु के ही आधार पर एवं उसी की शैली अनुसार हुआ। लौकिक संस्कृत के शब्दकोश एक ही प्रकार के नहीं हैं। कुछ कोशों में तो संज्ञा शब्दों एवं धातु शब्दों का ही संग्रह है और कुछ शब्द कोश संज्ञा शब्दों तथा अवयवों को ही लेकर रचे गये। ऐसे शब्द कोशों का क्रम अकारादि वर्णों से न होकर पद्यबद्ध रूप से हुआ है। इन शब्द कोशों में समानार्थक और नानायिक, दो प्रकार के शब्दों पर विचार किया गया है।

आधुनिक कोश

कोश-ग्रन्थों का कार्य आज भी उत्कर्ष पर है। आधुनिक कोश ग्रन्थों में तारानाथ तर्कवाचस्पति का वाचस्पत्यं, राधाकांत देव का 'शब्द कल्पद्रुम', विजयराजेन्द्रसूरि का 'अभिधान राजेन्द्र-कोश', सुखानन्द नाथ का 'शब्दार्थचिन्तामणि' आदि विश्व-कोश के स्तर के वृहद् ग्रन्थ हैं।

नाटक

संस्कृत-साहित्य में नाटकों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। ऋग्वेद के निर्माण तक, जो कि वैदिक साहित्य का प्राचीनतम भाग और विश्व-साहित्य के क्षेत्र में पहला ज्ञान संग्रह है, नृत्यकला पर्याप्त प्रकाश में आ चुकी थी। संस्कृत के नाटकों की अति प्राचीनता के सम्बन्ध में ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद में भी कुछ विस्तार से चर्चा की गयी है। यजुर्वेद की 'वाजसनेईसंहिता' के एक प्रसंग से अवगत होता है कि वैदिक युग में एक शैलूष नामक जाति के लोग व्यावसायिक रूप से नाटकों का आयोजन कर जीविकोपार्जन किया करते थे।

संस्कृत साहित्य में नाटकों की व्यवस्थित परम्परा का अनुवर्तन भास से होता है। आधुनिक विद्वानों को भास का परिचय यद्यपि हाल ही में प्राप्त हुआ है, किन्तु उनके व्यक्तित्व की महिमा बाण, दण्डी, भामह, वाक्पतिराज, वामन, राज-शेखर, अभिनव गुप्त, पृभृति काव्यकारों एवं काव्य-शास्त्रियों की रचनाओं में सर्वत्र बिखरी हुई थी।

भास

भास की कृतियों का प्रसिद्ध अर्थशास्त्री बृहस्पति और कौटिल्य के साथ भाषा वैज्ञानिक परीक्षण के बाद इतिहासकारों ने यहाँ तक सिद्ध किया है कि भास का स्थितिकाल पाँचवीं से चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व था।

भासकृत 13 नाटक कृतियों का रचनाक्रम विद्वानों ने इस प्रकार बताया है—दूतवाक्य, कर्ण-भार, दूतघटोत्कच, ऊरुभंग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, अभिषेक, बाल-चरित, अविमारक, प्रतिमा, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त, चारूदत्त।

कालिदास

नाटकों के निर्माण की परम्परा में भास के बाद कालिदास महाकवि का नाम आता है। कुछ विद्वानों ने कालिदास से भी पहले 'मृच्छकटिकम्' के रचयिता शूद्रक का उल्लेख किया है किन्तु हम कालिदास को शूद्रक के पूर्ववर्ती मानते हैं।

नाटकों के क्षेत्र में महाकवि ने 'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोर्वशीयम्', 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' इन कृतियों का प्रणयन किया है।

अश्वघोष

कालिदास के बाद अश्वघोष का नाम उल्लेखनीय है। इनका 'शारिपुत्र-प्रकरण' या 'शरद्वतीपुत्र-प्रकरण' उपलब्ध होता है।

शूद्रक

संस्कृत नाटकों की समृद्ध परम्परा के क्रम में शाकुन्तल के बाद 'मृच्छकटिकम्' का नाम आता है जिसका लेखक शूद्रक नामक कोई राजा या कवि था।

हर्षवर्धन

शूद्रक के बाद हर्षवर्धन का क्रम आता है। सम्राट हर्ष वर्धन के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के बारे में विद्वान् एक मत होने पर भी उनके नाम से संबद्ध नाटकों का रचयिता उन्हें न मानकर उनके नाम पर लिखे हुए, उनके किसी आश्रित कवि को मानते हैं, किन्तु इस कारण की पुष्टि के लिये कोई प्रमाण नहीं है।

'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली' और 'नागानन्द' ये तीन कृतियाँ हर्ष के नाम से प्रचलित हैं।

भवभूति

भवभूति ने रामायण की कथा के आधार पर 'उत्तररामचरितम्, मालतीमाधवम्, नागानन्द, रामाभ्युदय' नामक नाटक लिखे।

विशाख दत

भवभूति के बाद विशाख दत का क्रम आता है। 'मुद्राराक्षस' 'देवीचन्द्रगुप्त' के अतिरिक्त विशाखदत ने एक तीसरी नाट्यकृति 'राघवानन्द' का भी निर्माण किया, जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसके उद्धरण सुभाषित ग्रन्थों में विद्वानों को मिले हैं।

नारायण भट्ट

नारायण भट्ट के 'वेणी-संहार' का स्थान भवभूति एवं विशाख दत के नाटकों के बाद आता है।

मुरारि

इन्होंने 'अनर्धराघव' की रचना की है।

अनंगहर्ष

अनंगहर्ष 'मातृराज' ने 'तापसवत्सराज' नाटक लिखा, जिसका समय अविदित है।

मायुराज

एक अज्ञात लेखक मायुराज ने रामायण की कथा के आधार पर 'उदातराघव' नाटक की रचना की, जो अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है।

शक्ति भद्र

आठवीं शताब्दी में विद्यमान शक्तिभद्र नामक एक नाटककार का नाम मद्रास में प्रकाशित उनके 'आश्चर्य-चूड़ामणि' नामक नाटक से ज्ञात हुआ है। 'कीथ' ने इसका नाम 'आश्चर्य-मंजरी' लिखा था।

हनुमन्नाटक का रचियता

आठवीं शताब्दी के बाद दक्षिण में एक 'हनुमन्नाटक' या 'महानाटक' लिखा गया। आज उसके दो बहुत भिन्न पाठ उपलब्ध होते हैं। पहला दामोदर कृत और दूसरा मधुसूदन कृत। इन दोनो में दामोदर मिश्र की रचना मूल ग्रन्थ के अधिक निकट है।

राजशेखर

'बाल-रामायण' से विदित होता है कि राजशेखर ने छः प्रबंधों की रचना की थी, जिनमे 5 ही उपलब्ध हैं। उनके नाम हैं– कर्पूर मंजरी, विद्धशालाभम्जिका, 'बाल-रामायण' और 'बाल-भारत'। ये उनकी नाट्य कृतियाँ हैं और ' काव्य-मीमांसा' अलंकार-ग्रन्थ है। उनके छठे महाकाव्य ' हर विलास' का भी उल्लेख हेमचन्द्र ने किया है। अपने अलंकार ग्रन्थ में उन्होने स्वरचित एक भूगोल विषयक ग्रन्थ 'भुवन-कोश' का उल्लेख किया है।

राजशेखर ने भीम कृत पाँच नाटकों का उल्लेचा किया है, जिनके लेखक का समय राजशेखर से पहले होना चाहिए था वे सभी नाटक सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं। उनमें तीन के नाम हैं– 'स्वप्न दशानन', 'प्रतिज्ञा चाणक्य' और 'मनोरमावत्सलराज'।

क्षेमीश्वर

क्षेमीश्वर ने 'चण्डी शतक' और 'नैषधानन्द' नामक दो नाटक लिखे।

दिङ्नाग

राजशेखर के बाद दिङ्नाग की 'कुन्द माला' में सस्कृत नाटकों की परम्परा पुनरुज्जीवित हुई। सन 1923 ई० में 'कुन्द माला' का प्रकाशन हो चुकने के बाद

दिङ्नाग के सम्बंध में उनके आलोचकों ने कुछ बाते कहीं—जो भ्रमपूर्ण थी किन्तु अब यह सर्वथा निराकृत हो चुका है कि न तो 'कुन्द माला' के रचियता दिङ्नाग भवभूति के पूर्ववर्ती थे, और न ही कालिदास 'मेघदूत' में उद्धृत दिङ्नाग, नाटककार दिङ्नाग थे। साथ ही यह भी निश्चित हो चुका है कि बौद्ध दिङ्नाग, नाटककार दिङ्नाग से भिन्न एवं पूर्ववर्ती थे।

11 वीं शताब्दी के अन्य नाटक

क्षेमेन्द्र 'चित्र-भारत', 'कनकजानकी' विल्हण 'कर्णसुन्दरी' कृष्णमिश्र प्रबोध चन्द्रोदय'।

12 वीं शताब्दी के नाटक

यशचन्द्र — 'मुदितकुमुतद-चन्द्र'
कनकाचार्य — 'धन्ञ्जयविजय'
रामचन्द्र — 'नलविलास', 'निर्भय भीम', 'सत्यहरिश्चन्द्र' 'कौमुदीमित्रा नन्द', 'यादवाभ्युदय' आदि।
विग्रहराजदेव विशालदेव — हरकेलि नाटक
सोमदेव — विग्रहराज
सुभट कवि — दूतांगद

13 वीं शताब्दी के नाटक

जयदेव — प्रसन्नराघव
मदनकवि — परिजातमंजरी
यशपाल — मोह-पराजय
मोक्षादित्य — भीमविक्रम
रामभद्रमुनि — प्रबुद्ध रौहिणेय
रविवर्मा — प्रद्युम्नाभ्युदय
बालकवि — रन्तुकेतूदय, रविवर्माविलास
हस्तिमल्ल — विक्रान्तकौरव, मैथिली कल्याण, अंजनापवनञ्जय, सुभद्रा, उदयनराज भरतराज, अर्जुनराज, मेघेश्वर
राजरुद्रदेव — उषर्गेदियं नाटिका, ययातिचरित नाटक।

14 वीं शताब्दी के नाटक

विद्यानाथ — प्रतापरुद्रीयकल्याण
विश्वनाथ — सौगन्धिकांहरण
विरुपाक्ष — नारायण विलास
मणिक — भरतानन्द
उदण्ड — मल्लिकामारुत

15 वीं शताब्दी के नाटक

वामन भट्ट बाण	—	'पार्वती परिणय', 'कनकलेखा कल्याण' 'श्रृंगारभूषण'
ब्रह्मसूरि	—	ज्योति-प्रभा कल्याण
गंगा धर	—	गंगादासप्रताप विलास
हरिहर	—	भर्तृहरि-निर्वेद
रूपगोस्वामी	—	'दानकेलिकौमुदी','विदग्धमाधव',' 'ललित-माधव'
श्री रामदेव	—	'सुभद्रापरिणय','रामाभ्युदय', 'पाण्डवाभ्युदय'
जीवरामयाज्ञिक	—	'मुरारि-विजय'

16 वीं शताब्दी के नाटक

शेषकृष्ण	—	कंसवध
रत्नखेट श्री निवास दीक्षित	—	'भौमिपरिणय'
यज्ञनारायण दीक्षित	—	'रघुनाथ विलास'
लक्ष्मण माणिक्य देव	—	'कुवलयाश्चरित', 'विख्यात-विजय'
विलिनाथ	—	'मदनमंजरी महोत्सव'
गोकुलनाथ	—	'मुदितमालसा', 'अमृतोदय'
सठकोप	—	'वसन्तिकापरिणय'
कुमारवाताचार्य	—	'परिजात नाटक'
रामानुज	—	'वसुलक्ष्मी कल्याण'

17वीं शताब्दी के नाटक

नेपाल नरेश जगज्योतिर्मल्ल	—	'हर गौरी विवाह'
गुरुराम	—	'सुभद्रा धनजय', 'रतनेश्वर प्रसादन'
रत्नचूड़ामणिदीक्षित	—	'आनन्द राघव', 'कमलिनी-कलहंस'
नीलकण्ठ दीक्षित	—	'नल चरित' (अपूर्ण)
वेंकटाध्वरि	—	'प्रद्युम्नानन्द'
रुद्रदास	—	'चन्द्रलेखासट्टक'
महादेव	—	'अद्भुतदर्पण'
रामभद्र दीक्षित	—	'जानकी परिणय'
नल्लिका कवि	—	'सुभद्रा परिणय'
साम-राज दीक्षित	—	'श्री दाम चरित', 'चितवृति कल्याण', 'जीवन मुक्ति-कल्याण', तथा 'शृगांर सर्वस्व भाण'।

18वीं शताब्दी के नाटक

विश्वेश्वर कवि	—	'रुक्मणि-परिणय', 'नवनाटिका',

'शृगांरमंजरी'

देवराज	—	'बालमार्तण्डविजय'।
राजवर्मन्	—	'रुक्मणि-परिणय', शृंगार सुधाकर'।
विश्वनाथ	—	'मृगांक लेखन'।
देवकवि	—	'विद्या-परिणय', 'जीवानन्दनम्'।
भूदेवशुक्ल	—	'धर्म-विजय'।

19वीं शताब्दी के नाटक

पद्मनाभ	—	'त्रिपुर विजय' व्यायोग
बल्लिशाय	—	'ययातितरुण नन्दन'
शिवेन्द्र के राजकवि	—	'रामराज्यभिषेक', 'बालि परिणय', 'कुण्डिनगोत्रीय' रामचन्द्र का 'शृंगार सुर्धाणव'।
ईश्वरसेन के राजकवि	—	'चैत्रयज्ञ'
पंचानन	—	'अमरमङ्गल'
श्री अम्बिकाक्षत्त व्यास	—	'सामवतम्'

20वीं शताब्दी

महामहोपाध्यायशंकरलाल	—	'सावित्री चरित्', 'ध्रुवाभ्युदय', 'भद्रयुवराज', 'वामनविजय', 'पार्वती-परिणय'।
मूलशंकर मणिकलाल	—	'क्षत्रपति साम्राज्य', 'प्रतापविजय', 'संयोगिता-स्वयंवर'।

इस प्रकार संस्कृत में नाटक-रचना की स्थिति को देखकर निश्चय ही यह विश्वास होता है कि पूर्णसंतोषजनक न सही, पर इस दिशा में कुछ कार्य अवश्य हो रहा है। संस्कृत साहित्य की अन्य विचार-वीथियों की तरह यह दिशा नितान्त सूनी नहीं है। फिर भी संस्कृत के समर्थक एवं उन्नायक विद्वानों के लिये यह आवश्यक है कि वे द्रुतगति से संस्कृत की परम्परा को आधुनिक प्रतिमानों में ढालकर उसे सम सामयिक रूप देने तथा उसकी अवरुद्ध समृद्धि को आगे बढ़ाने के लिये अपनी मौलिक कृतियों को लेकर इस क्षेत्र में अवतरित हों।

रूपक के भेद

भाण

भाण रचना एकांकी होती है। उसमें भाव, भाषा और सरणि की श्रेष्ठता रहती है। हाल ही में कुछ भाण रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जो इस प्रकार हैं—वररुचि ने 'उभयाभिसारिका', शूद्रक ने 'पद्मप्राभृतक', श्यामलिक ने 'पादताड़ित' और ईश्वरदत्त ने 'धूर्तविट-संवाद' भाण लिखे।

प्रहसन

संस्कृत के प्रहसनों में एक मार्मिक व्यंग्य होने की वजह से उनकी बड़ी

ख्याति और लोक-प्रियता भी रही है। इनमें यद्यपि अश्लीलता भी कहीं-कहीं दिखाई देती है, किन्तु चार्वाक्, जैन, बौद्ध, कापालिक आदि वेद-विरोधी धर्मानुयायियों के प्रति उनमें जो आक्षेप किये गये हैं वे बड़े ही मार्मिक हैं।

बोधायन-कृत 'भगवदज्जुक' ईसा की प्रथम दो शताब्दियों के आस-पास लिखा गया सबसे प्राचीन प्रहसन है।

एकांकी

एक अंक में समाप्त होने वाले रूपक—उपरूपकों को संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने अनेक श्रेणियों में विभाजित किया है। डॉ. कीथ ने एक अंक में परिसमाप्य इन नाटकों को एकांकी (One-Act-Play) कहा है। 14वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में विजय-नगर के हरिहर द्वितीय के पुत्र विरुपाक्ष ने एक एकांकी 'उन्मत्त-राघव' लिखा। इस प्रकार 'विक्रमोर्वशीय' के चौथे अंक का प्रभाव है।

व्यायोग

व्यायोग रचनाओं में भासकृत 'मध्यम व्यायोग', 'दूतवाक्य', 'दूतघटोत्कच', 'कर्ण-भार', 'उरुभंग' प्रमुख हैं।

रूपक के कुछ अप्रचलित भेद

रूपक के भेदों में नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन और व्यायोग पर पर्याप्त कृतियाँ रची गयीं और वे लोक-प्रिय भी सिद्ध हुईं। इनके अतिरिक्त डिम, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग इन पांच भेदों का प्रचलन प्रायः बहुत कम रहा है। रूपक के प्रायः इन सभी अप्रचलित भेदों पर वत्सराज ने एक-एक कृति का निर्माण कर अपने पाण्डित्य का परिचय दिया और संस्कृत साहित्य की एक अपूरणीय क्षति को भी पूर्ण किया।

प्रतीकात्मक शैली के नाटक

अश्वघोष—'शारिपुत्र-प्रकरण', कृष्ण-मिश्र-प्रबोध चन्द्रोदय।

छाया नाटक

इस परम्परा में सुभटकवि (12वीं शताब्दी) का दूतागंद प्रतिनिधि रचना है। तत्पश्चात् 15वीं शताब्दी में व्यास श्री रामदेव ने 'सुभद्रापरिणय', 'रामाभ्युदय', 'पाण्डवाभ्युदय' नाटक लिखे, जिनमें 'सुभद्रा परिणय', सुभट की शैली पर लिखा गया छाया नाटक है।

महाकाव्य

'रामायण', 'महाभारत', 'डलियड' और 'ओडेसी' आदि ग्रन्थ आज प्रथम महाकाव्य कहे जाते हैं। महाकाव्यों की परम्परा को सामान्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी में वे महाकाव्य आते हैं जो विशुद्ध संस्कृत में लिखे गये, जैसे कि कालिदास, माघ, श्री हर्ष आदि के ग्रन्थ तथा दूसरी श्रेणी में पालि तथा प्राकृत भाषा के महाकाव्य आते हैं और तीसरी श्रेणी के महाकाव्य अपभ्रंश में हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य में काव्य-परम्परा का प्रवर्तन हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत महाकाव्यों की लम्बी परम्परा को हमने तीन विभिन्न युगों में विभाजित किया है। पहला उद्‌भव युग—कालिदास से पहले, दूसरी अभ्युत्थान युग—कालिदास से श्री हर्ष तक तीसरा ह्रास युग—तेरहवीं शती से अब तक। उद्‌भव युगीन महाकाव्य-रामायण, महाभारत हैं। अभ्युदय युग में—सर्व—प्रथम कालिदास का नाम आता है।

कालिदास

इनकी कृतियां इस प्रकार हैं—'ऋतुसंहार', 'कुमार-सम्भव', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'मेघदूत', 'रघुवंश' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'।

अश्वघोष

महाकवि कालिदास के बाद अश्वघोष का स्थान है। अश्वघोष की जिन कृतियों के सम्बन्ध में सभी विद्वान् एक मत हैं उनके नाम हैं : 'बुद्ध चरित', 'सौन्दरनन्द', 'शारिपुत्र प्रकरण' इनमें आदि की दोनों कृतियां महाकाव्य हैं।

बुद्धघोष

बौद्धाचार्य बुद्धघोष ने दस सर्गों की एक कृति 'पद्म-चूड़ामणि' नाम से लिखी। इनका पहला ग्रन्थ 'विसुद्धिमग्ग' है।

भीम या भीमक

बुद्धघोष के बाद महाकवि भीम या भीमक ने 27 सर्गों की एक कृति 'रावणार्जुनीय' या 'अर्जुन रावणीय' लिखी।

भर्तृमेंठ

इन्होंने 'हृयग्रीववध' लिखा जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

भारवि

भारवि की कवित्व कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने वाला उनका एक मात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीयम्' है। इसकी गणना बृहत्त्रयी (किरात, माघ, नैषध) में की जाती है।

भट्टि

महाकाव्यों के क्षेत्र में भारवि के बाद भट्टि का क्रम आता है। महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य 'भट्टिकाव्य' या 'रावणवध' की रचना की।

कुमारदास

कुमारदास भट्टि के अनुवर्ती महाकवि हैं। इन्होंने 25 सर्गों के 'जानकी हरण' नामक महाकाव्य की रचना की थी, जिसके अब 15 सर्ग ही उपलब्ध हैं। इस काव्य में रामकथा का बड़ा ही हृदय-ग्राही चित्रण है।

माघ

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को समृद्धिशाली रूप देने वालों में महाकवि माघ का नाम आता है। महाकवि माघ की कवित्वकीर्ति का अमर

स्मारक उनका 'शिशुपाल वध' या 'माघकाव्य' है। माघ शब्दार्थवादी कवि थे।

रत्नाकर

इन्होंने 'हरविजय' नामक महाकाव्य की रचना की है।

शिव स्वामी

काश्मीर के ही दूसरे महाकवि शिव-स्वामी ने 'कप्फिणाभ्युदय' नामक महाकाव्य का निर्माण किया।

अभिनन्द

इन्होंने 36 सर्गों में एक 'रामचरित' महाकाव्य लिखा।

शंकुक

इन्होंने 'भुवनाभ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की।

क्षेमेन्द्र

इन्होंने 'दशावतारचरित' की रचना की है।

मंखक

क्षेमेन्द्र के ही समकालीन एवं एक देशीय महाकवि मंखक हुए हैं, इनके महाकाव्य का नाम 'श्री कंठचरित' है।

हरिश्चन्द्र

इन्होंने 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य लिखा।

हेमचन्द्र

इन्होंने 'द्वयाश्रय काव्य' और 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्र' नामक दो महाकाव्यों की रचना की।

माधव भट्ट

इन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' के आधार पर 13 सर्गों का एक महाकाव्य 'राघव पाण्डवीय' लिखा।

चण्डकवि विल्वमंगल

चण्डकवि ने 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य लिखा, जो केवल आठ-सर्गों में ही अपूर्ण प्राप्त होता है।

वाग्भट

जैन कवि ने 'नेमिनिर्वाण' महाकाव्य लिखा। वाग्भट नामक चार ग्रन्थकारों का उल्लेख श्रद्धेय श्री नाथूराम जी प्रेमी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में किया है।

श्री हर्ष

बारहवीं शताब्दी में लिखे गये महाकाव्यों की परम्परा का अवसान श्री हर्ष के 'नैषधचरित' में जाकर होता है। इसी के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने निम्न आठ अन्य ग्रन्थ भी लिखे—स्थैर्यविचार प्रकरण, विजय प्रशस्ति, खंडनखंडकाव्य, गौडोवीराकुल-प्रशस्ति, अर्णववर्णन, छिन्द प्रशस्ति, शिवभक्ति सिद्धि। नवसाहसांक चरित-चम्पू।

ऐतिहासिक महाकाव्य

संस्कृत साहित्य में इतिहास विषयक सामग्री प्रायः चार रूपों में उपलब्ध होती है। कुछ ग्रन्थकारों ने अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है, किन्तु वे सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं। दूसरी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री हमें दान-पात्रों, अन्तर्लेखों, प्रशस्तियों आदि में मिलती है। तीसरी प्रकार की सामग्री 'रामायण', 'महाभारत' एवं 'पुराण' आदि महाग्रन्थों में प्राप्त होती है और चौथी प्रकार की यथेष्ट सामग्री काव्य-परक इतिहास ग्रन्थों में संकलित है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों के क्षेत्र में लिखी गयी सर्वाधिक प्रौढ़ कृति कल्हण की राजतरंगिणी है। अपनी इस महानतम कृति का निर्माण कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती 11 इतिहास-ग्रन्थों के परिशीलन के फलस्वरूप किया था। काश्मीर के राजा जयसिंह के राज्य काल में 'राज-तरंगिणी' का निर्माण हुआ।

महाकवि कल्हण के ये आँखों देखे वर्णन पूर्णतया सत्य हैं, और इस दृष्टि से यह मानने में तनिक भी संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि संस्कृत-साहित्य में इतिहास विषय पर ग्रन्थ-निर्माण की परम्परा का अभाव था।

'पालि' भाषा का विकास प्राकृत बोलियों के रूप में हुआ है। इन प्राकृत बोलियों की प्रमुख शाखाएँ हैं, मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची और महाराष्ट्री।

विषय की दृष्टि से पालि में दो प्रकार के काव्यों का निर्माण हुआ—वर्णनात्मक और आख्यात्मक। पहली श्रेणी के काव्यों में कस्सप का 'अनागत वंश' और बरमी भिक्षु मेघंकर कृत 'लोकप्पदीपसार' या 'लोकदीपसार' आदि का नाम उल्लेखनीय है।

संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक विषय अत्यन्त ही विवाद और अनेक मुखी सिद्धान्तों का विषय रहा है। संस्कृत के ग्रन्थों और ग्रन्थकारों की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में आज भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। बहुत सारी सामग्री मन गढ़न्त और अज्ञानता वश इतिहास-ग्रन्थों में ऐसी भी देखने को मिलती है, जिसके वास्तविक-ज्ञान मूल्य कुछ और ही थे।

काव्य-साहित्य की समृद्धि (काव्य-साहित्य)

संस्कृत का सम्पूर्ण काव्य-साहित्य विषय और रचना-शैली के विकास की दृष्टि से तीन श्रेणियों या तीन युगों में अलग-अलग किया जा सकता है। पहली श्रेणी के काव्य 'रामायण' और 'महाभारत' हैं। ये लौकिक एवं वैदिक संधिकाल के काव्य हैं। दूसरे युग का प्रतिनिधित्व अकेले महाकवि कालिदास की कृतियाँ करती हैं और तीसरी श्रेणी में कालिदास के बाद की कृतियों को रखा जा सकता है।

काव्य का विषय बहुत व्यापक है। संस्कृत साहित्य का लगभग अर्धांश एक ही काव्य—विषय के भीतर समा जाता है। खंड काव्य, महाकाव्य, गीति काव्य,

चम्पूकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, कथा काव्य, सुभाषित काव्य, गद्य काव्य और नाटक आदि अनेक विषयों का एक ही काव्य विषय के भीतर समावेश हो जाता है। नाटक और महाकाव्यों के प्रपूरक अंग होने पर भी उनको स्वतंत्र प्रकरणों में रखा गया है। उसका कारण काव्य के अन्य अंगों की अपेक्षा उनके रचना विधान का वैशिष्ट्य और उनका व्यापक प्रभाव है।

जिनकी कीर्तिकथा प्रस्तरखण्डों पर उत्कीर्णित है

संस्कृत साहित्य के कुछ सिद्ध हस्त कवियों की उज्ज्वल कथा पाषाण खण्डों पर उत्कीर्णित प्रशस्तियों एवं अन्तर्लेखों के रूप में जीवित है। ऐसे काव्यकारों में हरिशेण, वीरसेन, वत्सभट्टि, रविशांति, वासुल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गीति काव्य

'गीत' या 'गीति' का अर्थ सामान्यतया गाना समझ लिया जाता है, जिसमें साज श्रृगांर, गायन, वादन की प्रधानता हो, कन्तु यहाँ गीति या गीत से तात्पर्य हृदय की रागात्मक भावना को छन्दबद्ध रूप से प्रकट करना अभिप्रेत है। गीतिकाव्य में रागात्मकता या ध्वन्यात्मकता होना धूम्र में अग्नि की भाँति अनिवार्य है।

गीति काव्य की भावना की उद्भूति

गीति काव्यों के प्रणयन में संस्कृत के कवियों में विशेष उत्सुकता दिखाई देती है। इस प्रकार की स्फुट संदेश रचनाओं का अनुवर्तन लगभग वैदिक युग में ही हो चुका था, और उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद में सरमा नामक एक कुत्ते को पणियों के निकट संदेश वाहक रूप में भेजने का प्रसंग यहां स्मरण किये जाने योग्य है। 'रामायण', 'महाभारत' और उनके परवर्ती काव्यों में भी इस प्रकार के स्फुट प्रसंग प्रचुर रूप से मिले हैं।

गीति काव्य के भेद

संस्कृत के यह गीति काव्य कई प्रकार से लिखे गये हैं यथा—

1. स्त्रोत काव्य या भक्ति काव्य।
2. श्रृंगार काव्य या संदेश काव्य।

संदेश काव्य

संदेश काव्य या दूत काव्य की परम्परा में 'मेघदूत' और 'घटकर्पर' काव्य आरम्भिक कृतियां हैं। इन दोनों के रचयिता क्रमशः महाकवि कालिदास और घटकर्पर कवि हुए।

कथा काव्य

संस्कृत के कथा साहित्य का विकास वैदिक संस्कृत लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि कई स्थितियों एवं युगों में से होकर गुजरता रहा है। इन सभी युगों में कथा-साहित्य का अपना एक ही जैसा दृष्टिकोण या एक ही जैसा शिल्प सौन्दर्य एवं मान्यताएँ नहीं रही हैं।

पौराणिक युग ने कथा साहित्य को अधिक लोकव्यापी बनाया। पुराणों की कथाओं का अस्तित्व बहुत समय तक समाज में मौखिक रूप में बना रहा और इसलिये एक ओर तो उनमें अनेक प्रक्षेप जुड़े और दूसरी ओर उनके स्वत्व पर स्वतंत्र दन्त कथाओं का निर्माण हुआ।

सुभाषित काव्य

सुभाषित काव्य संस्कृत साहित्य के शृगांर हैं। संस्कृत के छोटे-बड़े सभी तरह के सुभाषित काव्यों की सूक्तियों को अपने-अपने ग्रन्थों में उद्धृत कर, उनके प्रति अपना अनुराग प्रकट किया। विभिन्न ग्रन्थों में विकीर्णित इन सुभाषित ग्रन्थों की सूक्तियों से एक बड़ा भारी लाभ संस्कृत के ग्रन्थकारों का इतिहास जानने में हुआ है।

ग्रन्थ रूप में प्रमाणिकता से उपलब्ध होने वाला पहला सुभाषित काव्य 'गाथा सप्तशती' है, जो महाराष्ट्री प्राकृत के सात सौ श्लोकों में लिखित है।

नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य

ग्रन्थ रूप में 'चाणक्य शतक' पहला नीति ग्रन्थ है जिसमें 340 श्लोक संगृहीत हैं और सम्भवतया उसके लेखक सुप्रसिद्ध 'अर्थशास्त्र' के निर्माता एवं चन्द्रगुप्त मौर्य (400 ईस्वी पूर्व) के प्रधान सचिव कौटिल्य, चाणक्य या विष्णुगुप्त ही हैं। इसी चाणक्य ने 'राजनीति समुच्चय' एवं 'वृद्ध चाणक्य' नामक दो ग्रन्थ लिखे। बौद्धों का 'धम्मपद' भी इसी कोटि का ग्रन्थ है।

गद्य काव्य

आचार्य दण्डी संस्कृत के प्रथम ग्रन्थकार हैं 'दण्डी' सम्भवतः एक उपाधिनाम था। दण्डी को तीन ग्रन्थों का प्रणेता बताया गया है। 'काव्यादर्श' 'दशकुमारचरितम्' तथा 'अवन्ति सुंदरी कथा' उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

आचार्य दण्डी के बाद कथा-काव्य के क्षेत्र में सुबन्धु का नाम प्रमुख रूप से उपलब्ध होता है। इनकी कृतियों में (800 पेज) 'वासवदता' ही गद्य काव्य की एक मात्र कृति है।

दण्डी और सुबन्धु के बाद बाण का क्रम आता है। बाण ने 'कादम्बरी', 'हर्षचरित' दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ दिये।

तत्पश्चात् धनपाल (1000 ईस्वी) की 'तिलक मंजरी', वादीभ सिंह (1100 ईस्वी) की 'गद्यचिन्तामणि' साढल्ल (1100 ईस्वी) की 'उदयसुन्दरीकथा' अगस्त्य (1400 ईस्वी) का 'कृष्ण चरित' और वामन भट्ट बाण (1600 ईस्वी) का 'बेमभूपाल चरित' आदि का नाम उल्लेखनीय है।

काव्य शास्त्र

संस्कृत साहित्य के काव्य या कविता अंग की विधि-व्यवस्थाओं का विवेचन, समीक्षण करने वाला शास्त्र ही काव्य-शास्त्र है। उससे हमें काव्य का स्वरूप,

लक्षण, स्वभाव, प्रवृति और उसकी विभिन्न समस्याओं एवं विचार-विभेदों का वैज्ञानिक निरूपण देखने को मिलता है।

मेधाविन

काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में मेधावी या मेधाविन् अथवा मेधाविरुद्र नाम के एक प्राचीन आचार्य हुए हैं, जिनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, किन्तु जिन्हें इतिहास में भामह और दण्डी के समकक्ष रखा गया है।

भामह

आचार्य भामह से काव्य-शास्त्र की उन्नत परम्परा का आरम्भ माना जाता है। इनके ग्रन्थ 'काव्यालंकार' से, नाट्यशास्त्र की चाहरदीवारी से आबद्ध 'काव्य-शास्त्र' की बंदी आत्मा को सर्वथा स्वतंत्र-दिशा में विकसित होने का सुयोग मिला।

दण्डी

दण्डी काव्य-शास्त्र के प्रमुख आचार्यों में से हैं। 'दण्डी' के तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—'काव्यादर्श', 'दशकुमारचरितम्' और 'अवन्ति सुंदरी कथा'। अंतिम दोनों ग्रन्थ काव्य के हैं। 'काव्यादर्श' इनका आचार्य श्रेणी का ग्रन्थ है।

उद्‌भट भट्ट

आचार्य उद्‌भट प्रथम कोटि के काव्य-शास्त्री हुए। उद्‌भट का प्रधान ग्रन्थ 'काव्यालंकार सार संग्रह' है। जिसको बूलर साहब ने 'जैसलमेर' से प्राप्त किया था।

वामन

आचार्य वामन रीति सम्प्रदाय के जन्मदाता थे। वामन का एक काव्य-ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' है, जिस पर गोपेन्द्र त्रिपुररहल भूपाल की टीका 'कामधेनु' है। इसकी एक महेश्वर प्रणीत 'साहित्य-सर्वस्व' नामक टीका का भी पता लगा है।

रुद्रट

'अलंकार सम्प्रदाय' के अनुयायी आचार्यों में रुद्रट का स्थान प्रमुख है। रुद्रट का एक ही उपलब्ध ग्रन्थ है 'काव्यालंकार', यह पहला ग्रन्थ है, जिसमें अलंकारों का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण हुआ है।

आनन्द-वर्धन

भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास में आनन्द वर्धन का बड़ा नाम है। उन्हें ध्वनि सम्प्रदाय का जन्मदाता कहा जाता है। आनन्द-वर्धन का प्रमुख ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' वृति है।

राजशेखर

इनका आचार्य श्रेणी का ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' है।

धनंज्जय

धनज्जय महामुनि भरत की परम्परा के आचार्य हुए। उनका ग्रन्थ नाट्य-शास्त्र की श्रेणी का ग्रन्थ है।

धनिक

धनंज्जय के अनुज धनिक ने 'दशरूपक' की तरिकाओं पर 'अवलोक' नामक टीका लिखी।

अभिनव गुप्त

यह ध्वनि समर्थक आचार्य आनन्द वर्धन की परम्परा में हुए वे कवि, काव्य-शास्त्री और उद्भट दार्शनिक भी थे। काव्य-शास्त्र पर उन्होंने 'अभिनव भारती', 'ध्वन्यालोक लोचन' और 'काव्यकौस्तुभ-विवरण' नामकटीका ग्रन्थ क्रमशः भरत के 'नाट्य-शास्त्र', आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' और अपने गुरु भट्तौत के 'काव्यकौस्तुभ' पर लिखे।

कुंतक या कुंतल

कुंतक एक नये 'वक्रोक्ति सम्प्रदाय' के पिता हुए, इनका 'वक्रोक्ति-काव्यजीवित' ग्रन्थ अपूर्ण ही उपलब्ध है।

महिम भट्ट

महिम भट्ट अद्भुत तार्किक और प्रखर आलोचक थे। इनका एक मात्र ग्रन्थ 'व्यक्ति विवेक' उपलब्ध है। काव्य-शास्त्र पर इन्होंने एक दूसरा ग्रन्थ 'तत्वोक्ति कोश' भी लिखा था, जो उपलब्ध नहीं है।

क्षेमेन्द्र

क्षेमेन्द्र ने अपना दूसरा नाम व्यासदास लिखा है। इनके दो ग्रन्थ 'औचित्य विचार चर्या' और 'कविकंठाभरण' प्रकाशित हैं।

भोजराज

भोजराज उन-विरले भाग्यशाली लोगों में से थे जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपा रहती है। भोज के ज्योतिष ग्रन्थ 'राज-मृगांक' का रचनाकाल 964 शक (1042 ईस्वी) है। इनके काव्य-शास्त्र विषयक दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। 'सरस्वती-कंठाभरण' और 'शृंगार प्रकाश'।

मम्मट

'काव्य-शास्त्र' के इतिहास में राजानक मम्मट बड़े सम्मान से याद किये जाते हैं। 'मम्मट' के ग्रन्थ का नाम 'काव्यप्रकाश' है। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र का प्राण है।

रुय्यक

राजानक रुय्यक भी काश्मीरी थे। इनके काव्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थों के नाम हैं—'अलंकार सर्वस्व', 'व्यक्ति विवेक विचार', 'काव्यप्रकाश संकेत', 'सहृदय लीला', 'अलंकार मंजरी', 'अलंकारानुसारणी', 'साहित्य मीमांसा' 'नाटक मीमांसा' और 'अलंकार वार्तिक'।

मखंक

इन्होंने 'अलंकार सर्वस्व' के वृति भाग की रचना की।

वाग्भट प्रथम

इन्होंने 'वाग्भटालंकार' की रचना की है। इस ग्रन्थ पर लगभग आठ टीकाएँ लिखी गयी हैं।

हेमचन्द्र

'काव्य-शास्त्र' पर इन्होंने 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ लिखा और उस पर 'अलंकार-चूड़ामणि' नामक वृति तथा 'विवेक' नामक टीका लिखी।

जयदेव

इनके ग्रन्थ का नाम 'चन्द्रालोक' है। इसके पंचम्मयूख को परिवर्धित करके अप्पयदीक्षित ने 'कुवलयानन्द' लिखा।

विश्वनाथ

राजानक मम्मट के बाद कविराज विश्वनाथ को ही स्मरण किया जाता है। 'साहित्य-दर्पण' विश्वनाथ का आचार्य श्रेणी का ग्रन्थ है। 'साहित्य-दर्पण' काव्य-शास्त्र का विश्वकोश है।

भानुदत

'रसमंजरी' और 'रसतरंगिणी' दोनों इनके आचार्य श्रेणी के ग्रन्थ हैं।

अप्पयदीक्षित

काव्य-शास्त्र विषयक उनके तीन ग्रन्थ हैं—'कुवलयानंद', 'चित्रमीमांसा' और 'वृति-वार्तिक'।

जगन्नाथ

काव्य-शास्त्र के इतिहास में पण्डित राज का स्थान बहुत ऊँचा है। काव्य के क्षेत्र में इन्होंने 'भामिनी-विलास', 'आसफ-विलास' 'गंगा-लहरी', 'करुणा-लहरी', 'अमृत-लहरी', 'लक्ष्मी-लहरी' आदि तथा काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में 'चित्रमीमांसा खण्डन' तथा 'रसगंगाधर' लिखे।

काव्य–शास्त्र में सम्प्रदाय चिंतन

आचार्य नन्दिकेश्वर और भरत (ईस्वी पूर्व प्रथम शतक) से लेकर पण्डित राज जगन्नाथ (1700 ईस्वी) तक काव्य-शास्त्र की परम्परा निरन्तर आगे बढ़ती रही। सम्प्रदायों और इनके प्रवर्तकों का विवरण इस प्रकार है—

1. रस सम्प्रदाय — नन्दिकेश्वर, भरत
2. अलंकार सम्प्रदाय — भामह, उद्भट, रूद्रट।
3. रीति सम्प्रदाय — दण्डी, वामन।
4. वक्रोक्ति सम्प्रदाय — कुन्तक।
5. ध्वनि सम्प्रदाय — आनन्द वर्धन।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य की विशालता को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया।

उपजीव्य काव्य वाल्मीकि रामायण

प्रत्येक साहित्य में प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से प्रसूत कतिपय ऐसे

मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तर कालीन कविगण अपने काव्यों को सजाया करते हैं। ऐसे काव्यों को हम व्यापक प्रभाव सम्पन्न होने के हेतु 'उपजीव्य काव्य' के नाम से पुकार सकते हैं। संस्कृत साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं जिनसे संस्कृत भाषा तथा अर्वाचीन प्रान्तीय भाषाओं के कवियों ने अपने विषय के निर्देश के लिये तथा काव्य शैली के विमल विधान के निमित्त सतत् उत्साह तथा अश्रान्त स्फूर्ति ग्रहण की और आज भी वे कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य संख्या में तीन हैं—

1. रामायण 2. महाभारत 3. श्रीमद्भागवत्

इन तीनों का अवान्तर काव्य साहित्य के ऊपर बड़ा ही विशाल मार्मिक तथा आभ्यन्तर प्रभाव पड़ा है।

वाल्मीकि समग्र कविसमाज के उपजीव्य हैं—विशेषतः कालिदास तथा भवभूति के। इन दोनों महाकवियों ने रामायण का गाढ़ अनुशीलन किया था और इनकी कविता में हमें जो रस मिलता है, उसमें रामायण की भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदास का शृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु इनका करुण रस कम प्रभावशाली नहीं है। 'कालिदास' ने उभयविध 'करुण' को उपस्थित कर उसे साङ्गोपाङ्ग रूप से दिखलाया है। पत्नी के लिये पति की करुणा का रूप रघुवंश के 'अज-विलाप' में पाते हैं और पति के निमित्त पत्नी की करुण परिवेदना 'रति-विलाप' के रूप में हमें रुलाती है। ताप से लोहा भी पिघल उठता है, तब कोमल हृदय मानव-चित्त संताप से मृदु बन जाये क्या इस विषय में संदेह के लिए स्थान है? 'अभितप्त मयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु'।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि रामायण एक उपजीव्य काव्य है। अर्थात् परवर्ती काव्यकारों को इससे प्रेरणा मिलती है।

आदि काव्य रामायण

संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण **'आदि काव्य'** समझा जाता है तथा 'वाल्मीकि' **'आदि कवि'** माने जाते हैं।

तामस-हारिणी तमसा कल-कल करती हुई बह रही थी, उसका पावनतट वृक्षों की स्निग्ध छाया से शीतल था। तीर में न तो पङ्क कलङ्क की तरह व्याप्त था और न शैवाल दुष्ट-जनों की चित्त-वृति के समान उसे कलङ्कित कर रहा था। मनोभिराम जल सज्जनों के चित्त की भाँति नितान्त प्रसन्न था। महर्षि वाल्मीकि के हृदय को इस दृश्य ने लुभा दिया, उन्होंने स्नानकर, वल्कल पहनकर इस प्रकार के शांत वन में भ्रमण करना शुरू किया। इसी समय क्रोञ्ची के करुण क्रन्दन ने उनकी दया दृष्टि को अपनी ओर खींचा। उनके सामने क्रौञ्ची का मृत कलेवर खून में लथपथ हो रहा था। इस दृश्य को देखकर ऋषि के कोमल चित में नैसर्गिकी करुणा का स्रोत प्रवाहित होने लगा, सुप्त करुणा इस दृश्य से बलात् जाग पड़ी। अकस्मात् उनके मुँह से यह श्लोकात्मक वाग् वैखरी प्रस्खलित हुई—

मा निषाद! प्रतिष्ठाम् त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चीमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

सम अक्षर युक्त चार पदों से मण्डित 'श्लोक' का जन्म हो गया। संस्कृत काव्य-कुमार का यही उदय है। महाकाव्य की भाविनी परम्परा का यही मूल स्रोत है।

महाकाव्य का प्रथम तथा भव्य निदर्शन है—यही वाल्मीकि रामायण। रामायण का ही विश्लेषण कर आलङ्कारिकों ने 'महाकाव्य' का लक्षण प्रस्तुत किया है 'सर्गबन्धोमहाकाव्यं' लक्षणं का प्रथम तथा सबसे सुन्दर लक्ष्य है—रामायण। दण्डी का यह प्रसिद्ध लक्षण 'रामायण' को ही आदर्श मानकर लिखा गया है—

"अलङ्कृतमसंक्षिप्त रसभाव निरन्तरम्
सर्वैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः।।
सर्वत्रभिन्नवृतान्तैरूपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलङ्कृति।।"

उपरोक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण आदि काव्य एवं काव्य-परम्परा का प्रेरणा स्रोत है।

रामायण का आकार

वाल्मीकि कृत 'रामायण' में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के जीवन का काव्यमय वर्णन है। उसकी वर्तमान प्रति में सात काण्ड हैं, जिनमें कुल 24000 श्लोक हैं। यद्यपि 'वाल्मीकि रामायण' का प्रचार सम्पूर्ण भारत में है तथापि सब प्रान्तों में रामायण का पाठ एक सा नहीं है। पाठ-भेद के अतिरिक्त रामायण की कुछ प्रतियों में कई ऐसे श्लोक, वृत्तान्त और सर्ग पाये जाते हैं जिनका अन्य-प्रतियों में अस्तित्व ही नहीं है।

रामायण में प्राप्त सात काण्ड इस प्रकार हैं—

1. बालकाण्ड	—	77 सर्ग।
2. अयोध्याकाण्ड	—	119 सर्ग।
3. अरण्यकाण्ड	—	75 सर्ग।
4. किष्किन्धाकाण्ड	—	67 सर्ग।
5. सुन्दरकाण्ड	—	68 सर्ग।
6. युद्धकाण्ड	—	128 सर्ग।
7. उत्तरकाण्ड	—	111 सर्ग।
		645

24000 श्लोकों से युक्त होने के कारण ही रामायण को 'चतुर्विंशति संहिता' कहा जाता है।

विषय वस्तु

वाल्मीकि रामायण आदि कवि की आदि रचना है, विषय वस्तु की दृष्टि से इसे सीमा में बांधना असम्भव है। रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम

के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है। इसमें श्री राम के जन्म, रावण-राम युद्ध एवं भगवान का राज्याभिषेक तथा उनका स्वर्ग-गमन ये मुख्य बिन्दु हैं जिनके आधार पर सम्पूर्ण रामायण का रचना कार्य सम्पन्न हुआ है। इनके अतिरिक्त और भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनका वर्णन रामायण में प्राप्त होता है किन्तु रामायण का मूल उद्देश्य पाप पर पुण्य की विजय ही है। रामायण में प्राप्त होने वाले अन्य विषय कुछ इस प्रकार हैं—आदि कवि के विषय में कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा है कि रामायण के लक्षणों के आधार पर ही दण्डी आदि ने काव्यों की परिभाषा बतलाई। त्रयम्बकराज मखानी ने सुन्दर काण्ड की व्याख्या में प्रायः सभी श्लोकों को अलंकार, रसादियुक्त मानकर काण्ड नाम की सार्थकता दिखलाई है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। सुन्दर काण्ड का पाँचवाँ सर्ग तो नितान्त सुन्दर है ही। श्री मखानी ने सभी के उदाहरण भी दिये हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी प्राचीन काव्य को बिना देखे ही उन्होंने सर्वोत्तम ग्रन्थ का निर्माण कर दिया। इनका प्राकृतिक चित्रण भी बहुत सुन्दर है। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र को भी परम प्रमाण माना है। त्रिजटा के स्वप्न, श्री राम की यात्रा-कालिक मुहूर्त विचार, विभीषण द्वारा लंका के अपशकुनों का प्रतिपादन आदि ज्योतिर्विज्ञान के ज्ञापक तथा समर्थक हैं। इसके अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र, राजनीति, आयुर्वेद, विज्ञान आदि सभी से सम्बन्धित सामग्री रामायण में प्राप्त होती है। महर्षि की दृष्टि में ज्योतिष तन्त्र, आयुर्वेद, शकुन आदि शास्त्रों की प्राचीनता एवं समीचीनता ज्ञात होती है। वस्तुतः यही परम आस्तिक की दृष्टि होती है। धर्म-शास्त्र के लिये तो यह ग्रन्थ परम प्रमाण है ही, अन्य ऐतिहासिक कथाएँ भी बहुत हैं, अर्थ-शास्त्र की भी पर्याप्त सामग्री है। व्यवहार तथा आचार की भी बातें हैं, कुशल मार्ग का भी प्रदर्शन है।

रामायण की उत्पत्ति एवं रचनाकाल

यह माना जाता है कि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना राम के राज्य काल में ही पूर्ण कर ली थी। पर्टिजर महोदय का कथन है कि राम 1660 ई० पूर्व हुए थे दूसरी ओर कुछ आधुनिक अनुसंधान कर्ताओं ने 'महाभारत' में द्रोणपर्व एवं शान्ति पर्व तथा अन्य निर्देशों से अनुमान लगाया है कि वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण की रचना पहले से प्रचलित राम-कथा सम्बन्धी आख्यानों के आधार पर ही की और वाल्मीकि राम के समकालीन नहीं थे। इन्हीं अनुसंधान कर्ताओं के अनुसार प्रारम्भ में 'रामायण' का आकार बहुत छोटा था, किन्तु वह समय के प्रवाह के साथ-साथ बढ़ता गया।

समुचित प्रमाणों के आधार पर 'रामायण' का रचना काल निर्धारित करने का प्रयास करना चाहिये। यदि ध्यान से देखा जाये तो हमारे समक्ष 'रामायण' के दो रूप पूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाते हैं। पहला तो मौलिक रामायण का प्रक्षेप रहित रूप जो महर्षि वाल्मीकि जी की प्रामाणिक रचना है तथा दूसरा वर्तमान प्रचलित

'रामायण' का रूप जिसमें अनेक प्रक्षिप्तांश हैं। इन दोनों रूपों का रचनाकाल अलग-अलग माना जाता है। याकोबी ने मूल रामायण का रचना काल 800-600 ईस्वी पूर्व निर्धारित किया है तथा प्रक्षेप युक्त रूप 'रामायण' का रचना काल अधिकांश यूरोपीय विद्वान द्विशताब्दी ई० पू० के बाद का नहीं मानते हैं। 'रामायण' में केवल एक ही स्थान पर बुद्ध का नाम आया है किन्तु वह भी प्रक्षिप्त ही है क्योंकि यह सब प्रतियों में नहीं पाया जाता है इसके अतिरिक्त मूल रामायण के रचनाकाल से परवर्ती ग्रन्थकार पाणिनी, भास, कौटिल्य और पतन्जलि रामायण के मुख्य कथानक से पूर्णतया परिचित जान पड़ते हैं। यद्यपि पाणिनी ने रामायण में आये हुए अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति दिखलाई है, तथापि 'रामायण' में अनेक ऐसे आर्ष प्रयोग भी पाये जाते हैं जिनका पाणिनीय व्याकरण से कोई समन्वय नहीं दीखता। 'रामायण' को अलंकृत एवं परिष्कृत शैली तथा 'महाभारत' की ऊबड़-खाबड़ शैली के अध्ययन से विद्वान् इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे हैं कि 'रामायण' में एक पूर्ववर्ती कथानक को 'महाभारत' की अपेक्षा अधिक परवर्ती भाषा और शैली में चित्रित किया गया है। बौद्ध ग्रन्थों में 'दशरथ-जातक' इत्यादि की उपलब्धि भी बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व राम कथा की प्रसिद्धि में प्रमाण स्वरूप उपस्थित होती है। दूसरी ओर रामायण में बौद्ध प्रभाव खोजने पर भी नहीं मिलता।

इन सबके अतिरिक्त 'रामायण' के कुछ अन्तर्वर्ती साक्ष्यों के आधार पर भी 'रामायण' का 600 ईस्वी पूर्व ही रचा जाना सिद्ध होता है। 500 ईस्वी पूर्व में पाटलिपुत्र की स्थापना मगध-नरेश अजात शत्रु के द्वारा गंगा और शोण नदियों के संगम पर की गयी थी। 'रामायण' में राम वन जाते समय गंगा और शोण के संगम पर से तो जाते हैं किन्तु वहां पाटलिपुत्र नाम का उल्लेख नहीं है। इस आधार पर भी रामायण का कम से कम अजातशत्रु के प्रादुर्भाव से पूर्व बनना अवश्य सिद्ध होता है। बौद्धग्रन्थों में श्रावस्ती का नाम प्रसेनजित की राजधानी के रूप में मिलता है किन्तु अयोध्या का नाम साकेत मिलता है जो निश्चय ही 'रामायण' की बौद्धग्रन्थों की अपेक्षा प्राचीनता सिद्ध करता है। तीसरे, 'रामायण' से विशाला तथा मिथिला इन दो स्वतन्त्र राज्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। विशाला इक्ष्वाकुपुत्र विशाल द्वारा स्थापित की गयी थी तथा मिथिला राजा जनक की राजधानी थी। बौद्ध ग्रन्थों में इन दोनों राज्यों का वैशाली के रूप में सम्मिलित वर्णन किया गया है तथा यहाँ गणतंत्र शासन प्रणाली का प्रचलित होना दिखलाया गया है। इस कारण से भी 'रामायण' का बौद्धों से पहले बना होना सिद्ध होता है। चौथे, रामायण में उत्तरी भारत में कौशल अंग, कान्य-कुब्ज, मगध, मिथिला आदि अनेक छोटे-छोटे आर्य राज्यों का उल्लेख किया गया है। ऐसी राजनीतिक स्थिति भगवान बुद्ध के पूर्व ही थी। अतः रामायण की रचना भगवान बुद्ध से पूर्व हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त प्रो० सिलवां लेवी ने 'सद्धर्ममृत्युत्थान' नामक बौद्ध

ग्रन्थ का अध्ययन कर सिद्ध किया है कि यह ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि का ऋणी है तथा जम्बू द्वीप वर्णन 'रामायण' के दिग्वर्णन से पूर्णतः मिलता है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ में नदियों, समुद्रों, देशों और द्वीपों का वर्णन बिल्कुल उसी शैली में किया गया है जैसा कि 'रामायण' के अन्तर्गत मिलता है।

इन सबके आधार पर रामायण बौद्धों से पूर्व किसी समय पूर्ण हो चुकी थी।

रामायण के प्रक्षिप्ताँश

लोकप्रिय होने के कारण रामायण में निरन्तर कुछ न कुछ प्रक्षेप होते हैं। उनके प्रायः सभी आलोचकों का मत है कि बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड मूल ग्रन्थ में नहीं थे, वे बाद में जोड़ दिये गये। प्रो. याकोबी के मतानुसार 'रामायण' के मूलपाठ में अयोध्या काण्ड से युद्ध काण्ड तक पाँच ही काण्ड थे। युद्ध काण्ड के अन्त में दी गयी फलश्रुति से रामायण की समाप्ति यहीं पर स्पष्ट जान पड़ती है। उत्तरकाण्ड की रचना-शैली अन्य प्रामाणिक काण्डों की शैली से भिन्न है, इसकी आधी से अधिक सामग्री रामचरित से सम्बन्ध नहीं रखती और जो सम्बन्ध रखती है, उसमें भी एकता नहीं है। उत्तरकाण्ड में अन्य काण्डों को देखते हुए पुनरुक्ति दोष तथा अन्य विरोधी बातें भी मिलती हैं। उदाहरणार्थ—युद्ध काण्ड के अन्तिम सर्ग में सुग्रीव, विभीषण आदि के चले जाने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, फिर भी उत्तरकाण्ड में पुनः उनके प्रस्थान का वर्णन किया गया है। उत्तरकाण्ड के 17वें सर्ग में वेदवती की कथा आती है, जिसके अनुसार सीता अपने पूर्वजन्म में वेदवती ही थीं। यदि यह वृत्तान्त प्रक्षिप्त न होता तो उसका उल्लेख 'रामायण' के अन्य काण्डों में जहाँ सीता जन्म का प्रसंग आया है, अवश्य किया जाता। साथ ही, यह भी उल्लिखित है कि महाभारत के 'रामोपाख्यान' में तथा संस्कृत के अनेक रामकाव्यों में उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित नहीं है।

बाल-काण्ड की शैली भी बहुत कुछ उत्तर-काण्ड की शैली जैसी है। उसका भी प्रायः आधा भाग रामचरित से सम्बन्ध नहीं रखता। उसकी भी अनेक उक्तियाँ बाद में पाँच काण्डों से मेल नहीं खातीं। उदाहरणार्थ—बाल-काण्ड में लक्ष्मण और उर्मिला का विवाह वर्णित है, किन्तु अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा के प्रसंग में लक्ष्मण को अविवाहित बताया गया है। केवल बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में राम हमारे सामने विष्णु के अवतार के रूप में आते हैं। अन्य काण्डों में, कुछ प्रक्षिप्त स्थानों को छोड़कर वे एक आदर्श मानवीय महापुरुष की भाँति ही चित्रित किये गये हैं। इन प्रक्षिप्त दो काण्डों में महाभारत की भाँति कथानक का स्वाभाविक प्रवाह भी आनुषंगिक आख्यानों से बहुधा अवरुद्ध हो गया है। अन्य काण्डों में ऐसे आख्यानों की संख्या बहुत थोड़ी है।

इसका तात्पर्य यह है कि अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक प्रक्षिप्त अंश है ही नहीं। इन पाँचों काण्डों में भी कई प्रक्षेप हैं पर वे भिन्न प्रकार के हैं। इन प्रक्षेपों की सृष्टि सूतों और कुशीलवों द्वारा हुई, जिन्होंने इन काण्डों के हृदय-ग्राही-अंशों

का विस्तार कर दिया। जब सहृदय श्रोतागण दशरथ, कौशल्या या सीता के करुण विलापों का वर्णन सुन नेत्रों से अश्रु-विमोचन करने लगते, या राम-रावण के प्रचण्ड पराक्रम पूर्ण युद्ध-वर्णन से प्रभावित होने लगते, अथवा नीतियुक्त या शील-सौन्दर्य परिचालक शक्तियों पर मन्त्र-मुग्ध होने लगते, तब इन कुशीलवों को वाग्विस्तार और अपनी कल्पना के प्रसार का अच्छा अवसर मिल जाता। इस प्रकार 'रामायण' के प्रक्षेपों की सृष्टि हुई।

महाभारत की भाँति 'रामायण' का नियतरूप लेखबद्ध होने पर ही निर्धारित हो सका। परन्तु यह तभी हुआ होगा जब 'रामायण' इतनी प्रसिद्ध हो गयी होगी कि उसका श्रवण और परायण पुण्य-कर्म माना जाने लगा और उसे लिपिबद्ध करने वाला स्वर्ग का अधिकारी समझा जाने लगा। इसलिये 'रामायण' के प्रथम संग्रह कर्ताओं तथा संपादकों के समक्ष जो कुछ भी रामायण के नाम से निर्दिष्ट सामग्री प्रस्तुत की गयी उसका उन्होंने स्वागत किया और उसे आलोचक की दृष्टि से नहीं अपितु भक्ति-भावना पूर्वक लिखित रूप दिया। यदि सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रचलित पाठ-भेदों को छोड़ दिया जाये तो 'रामायण' के मूल रूप का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा करने से 'रामायण' के 24,000 श्लोकों में से केवल एक चौथाई बचे रहते हैं।

रामायण का महाकाव्यत्व

'रामायण' संस्कृत का प्रथम महाकाव्य माना जाता है, किन्तु महाकाव्य के आधुनिक स्वरूप के आधार पर उसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता है और न ही उसके रचयिता को यह आशा रही होगी कि उसकी रचना कभी महाकाव्य की कोटि में गिनी जायेगी। यदि हम 'रामायण' को प्रथम काव्य न कहकर युग विशेष का प्रतिनिधि महाकाव्य कहें तो असंगत न होगा। इसमें अन्य अद्‌भुत वर्णनों के साथ ही वीर-भावना का प्राधान्य है। जो इस बात का परिचायक है कि यह महाकाव्य भारत के प्राचीनतम इतिहास के किसी वीर-युग का प्रतिनिधित्व करने वाला है।

'रामायण' महाकाव्य के विषय में विद्वानों का मत है कि वह अनेक आख्यानों का संग्रह है। वैदिक काल से ही प्रचलित कुछ गाथाओं तथा देवी-देवताओं, दैत्यों, राक्षसों, नागों और ऋषि-मुनियों की कथाओं के आधार पर इस वृहत्काय काव्य-ग्रन्थ की रचना की गयी। यही नहीं समयानुसार इसमें वीरों की स्तुतियों को भी सम्बद्ध कर दिया गया। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि रामायण-काल से भी पूर्व सूत, चारणादि लोग रामचरित सम्बन्धी वीर-स्तुतियों का प्रचार करते रहे होंगे उनके द्वारा राजसभाओं में इन स्तुतियों का गायन तथा कुशीलवों द्वारा विविध-स्थानों में जाकर सर्व-साधारण को स्तुतियाँ गाकर प्रसन्न करने से भी इनका अत्यधिक प्रचार हुआ होगा।

वाल्मीकि ने प्राचीन काल से मौखिक रूप में चले आ रहे अनेक आख्यानों

और उपाख्यानों का सार समेटकर उसको इस रूप में प्रस्तुत किया। विशेष रूप से उसकी प्रधान विषय वस्तु उसके निर्माण काल से बहुत पूर्व की है। पूर्वागत कथाएँ ही इस महाकाव्य में अपनी सिद्धावस्था को प्राप्त हो गयी हैं। पूर्वागत आख्यान और उपाख्यान ही संस्कृत महाकाव्यों के उद्भव रूप हैं और इन्हीं का संकलन, संशोधन एवं परिवर्तन करके 'रामायण' का विशाल कलेवर निर्मित किया गया उसके द्वारा महाकाव्यों की एक प्रौढ़ परम्परा का अनुवर्तन हुआ।

रामायण के विषय में विद्वानों का यह विचार यथार्थ ही है कि वाल्मीकि ने इस महाकाव्य की उस रूप में रचना नहीं की जिसमें कि आज यह प्राप्त होता है, प्रत्युत यह कई शताब्दियों की रचना है। अनेक कवियों द्वारा समय-समय पर उसमें परिवर्तन, परिवर्धन तथा संशोधन किये गये। स्थान-स्थान पर क्षेपकों का समावेश तथा भाषा शैली के आधार पर सम्पूर्ण महाकाव्य से उनकी भिन्नता इस कथन का पुष्ट प्रमाण है। वर्तमान रामायण के अनेक संस्करणों की भिन्न रूपता का भी इसके किसी एक समय में किसी एक कवि द्वारा न रचे जाने की ओर स्पष्ट संकेत करती है। अतः स्पष्ट है कि रामायण का जो स्वरूप आज हम देखते हैं—उसका निर्माण अनेक शताब्दियों के अनन्तर हुआ है। इस महाकाव्य में हमारी जातीय संस्कृति और सभ्यता का यथार्थ दिग्दर्शन हुआ। विकास क्रम में रचित यह ग्रन्थ निःसन्देह विकसित महाकाव्यों की कोटि में आता है और अपनी आलंकारिक शैली के कारण यह अपने उत्तरवर्ती महाकाव्यों का जनक भी है।

'रामायण' में महाकाव्य के लक्षणों का उच्चतम रूप मिलता है, सच तो यह है कि 'रामायण' को देखकर ही परवर्ती आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं। भारतीय साहित्य इस महाकाव्य से अत्यधिक अनुप्राणित हुआ है। महाकाव्य के लक्षण आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इस प्रकार हैं—

1. यह सर्गों में विभक्त होता है।
2. इसका नायक, देवता, कुलीन, क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं।
3. श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से एक प्रधान रस होता है और अन्य उसके सहायक।
4. इसमें सभी नाटकीय संधियाँ होती हैं।
5. इसका कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध।
6. इसमें चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन होता है।
7. प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तु-निर्देश होता है। कहीं दुर्जन निन्दा और सज्जन-प्रशंसा भी रहती है।
8. प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं, किन्तु अन्त में छन्द परिवर्तन हो जाता है।
9. इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं, जो न बहुत छोटे और न बड़े होते हैं।

10. कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग भी होते हैं।
11. सर्ग में भावी-कथा का संकेत होता है।
12. इसमें इन प्रधानतः के वर्णन रहते हैं—सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातः, मध्यान्ह, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मन्त्र, पुत्र, उदय आदि।
13. ग्रन्थ का नाम कवि, कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिये।
14. आर्ष महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) में सर्गों का नाम आख्यान पर निर्भर होता है।

रामायण में उपर्युक्त सभी तत्वों का समावेश है। रामायण में अनेक नायक हैं। कथानक ऐतिहासिक है। सूर्योदय, चन्द्रोदय, प्रातःकाल, सायंकाल, मृगया, विवाहादि का वर्णन है। रामायण नायक के नाम पर है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में विद्वानों द्वारा वर्णित महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं।

रामायण कालीन समाज और संस्कृति

वाल्मीकि रामायण भारत का राष्ट्रीय आदि काव्य है। धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों का भंडार होने के साथ-साथ यह एक महत्त्व पूर्ण मानवीय समाजशास्त्र भी है, जो सहस्रों शताब्दियों पूर्व के भारतीयों के जीवन यापन का रोचक वृतान्त उपस्थित करता है। एक पुरातन युग की जीवित परम्पराओं, धारणाओं, चिन्ताओं, आकाँक्षाओं और भावनाओं का चित्रण करने के कारण यह प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की एक बहुमूल्य निधि है। उसकी उपमा एक ऐसे पर्वत से दी जा सकती है जिसकी चोटी से हम प्राचीन आर्यों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं कला सम्बन्धी क्रिया कलाप का सम्यक् दर्शन कर सकते हैं।

सामाजिक जीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर वाल्मीकि ने रोचक और स्थायी महत्त्व की सामग्री प्रस्तुत की है।

वाल्मीकि रामायण काल में समाज में दो ही जातियाँ मूल रूप से निवास करती थीं—एक आर्य और दूसरी अनार्य। आर्यों और अनार्यों की सामाजिक व्यवस्था में अन्तर था। जहाँ आर्यों का समाज वर्णाश्रम के ढाँचे में ढला हुआ था, वहाँ अनार्यों का समाज जातिरहित था। आर्यों ने अपनी श्रेष्ठ सभ्यता एवं संस्कृति के बल पर धीरे-धीरे प्रायः सारे देश पर अधिकार कर लिया। अनार्य जातियों में से कुछ ने आर्यों को सहयोग दिया और कुछ ने डटकर उनका विरोध किया। इनको भी अन्त में पूर्ण परास्त होकर आर्यों की प्रभुता स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा। अनार्यों के मध्य में एक राक्षस जाति[5] निवास करती थी, इसी के विरुद्ध राम ने संघर्ष किया।

राक्षसों के बाद रामायण में वानरों[6] का उल्लेख है। राक्षसों एवं वानरों के अतिरिक्त तत्कालीन भारत में निषाद[7], गृध[8] किन्नर[9] तथा यक्ष[10] और नाग[11] जैसी अन्य अनार्य जातियाँ भी निवास करती थीं।

प्राचीन भारत की कुछ घुमंतू जातियाँ अपने पर्यटन शील स्वभाव के कारण पक्षियों-गृधों[12] या सुपर्णों—के नाम से सम्बोधित की जाती थीं। रामायण काल में गृध जाति भारत के पश्चिमी समुद्रतट और उसके आस-पास की पर्वत श्रेणियों पर रहा करती थीं। इस जाति के मुखिया सम्पाति और जटायु नाम के दो भाई थे, जिनकी मृत्यु के बाद गृधों का राजनीतिक अस्तित्व समाप्त हो गया। इन दोनों के विभिन्न कर्मों द्वारा यह ज्ञात होता है कि इन्होंने आर्यों की धार्मिक रीतियों को अपना लिया था।

राम और लक्ष्मण शबरी के आश्रम में पहुँचे, यह शबर जाति अधिकांशतः आखेट-प्रिय होती थी। यक्ष जाति राक्षसों की ही समकालीन थी। यक्षों की एक और समकालीन जाति सर्प-चिन्ह वाले नागों की थी। यह भी दक्षिण भारत में पनपी थी। यह एक समुद्री जाति थी।

जहाँ तक असुरों का प्रश्न है, रामायण में उनको और राक्षसों को अलग-अलग माना गया है।

इनके अतिरिक्त रामायण में देवों, गन्धर्वों, चारणों, गिद्धों, किन्नरों और अप्सराओं की भी चर्चा आती है। जब कभी कवि किसी आश्चर्य जनक घटना को देखने के लिये इकट्ठे हुए जन समूह का आभास कराना चाहता है तब वह इन जातियों का सामूहिक रूप से उल्लेख करता है। देवों को स्वर्ग का देवता माना गया है।

गन्धर्व लोग अलौकिक संगीतज्ञों के रूप में समादृत थे। किन्नर एक स्त्रैण जाति थी जो सदा शृंगारिक गीतों और क्रीड़ाओं में मग्न रहती थी। सिद्धों और चारणों को वाल्मीकि ने अन्तरिक्ष का निवासी बताया है जो वीरता पूर्ण कृत्यों के संपादन पर प्रशंसा की बौछार किया करते थे।

रामायण में अप्सराओं का उल्लेख बार-बार आता है। पौराणिक दृष्टि से अप्सराओं की उत्पत्ति समुद्र मंथन से हुई पर देवों और दानवों दोनों ने ही उन्हें पत्नी मानने से इन्कार कर दिया। अतः वह साधारणाः (सबके लिये) स्त्रियाँ बन गयीं।[13]

अप्सराएँ नृत्य-ज्ञान में विशेष दक्ष होती थीं, जिनके बल पर वे संसारी प्राणियों के चित्त को लुभाया करती थीं।

वाल्मीकि ने मूलतः उत्तरी भारत की आर्य-सभ्यता का चित्रण किया है। प्रसंगवश उन्होंने ऐसी अन्य जातियों की संस्कृति पर भी प्रकाश डाला है। इन जातियों में मुख्य रूप से उल्लेखनीय राक्षस और वानर हैं। रामायण में राक्षसों की तीन शाखाओं का स्पष्ट रूप से पता चलता है, जिनमें प्रत्येक का अपना अलग-अलग वंश था यद्यपि वह सभी राक्षस के नाम से जानी जाती थीं। इनमें

से पहली विराध शाखा थी, जो दण्डकारण्य के उत्तरी भाग में रहती थी, दूसरी शाखा दनु की संतति होने के कारण दानवों के नाम से प्रसिद्ध हुई। तीसरी शाखा, जो 'राक्षस' अथवा 'रक्ष' के नाम से विख्यात थी, सबसे अधिक क्रूर और शक्तिशाली थी।

कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि वानर जाति एक पौराणिक अथवा काल्पनिक जाति थी और वाल्मीकि ने उसके कार्य-कलाप का जो वर्णन किया है, वह निरर्थक विचित्रताओं का एक ब्यौरा मात्र है। कुछ विद्वान वानरों को निरा बन्दर मानकर उन्हें महत्त्व नहीं देते और यह इसलिये कि कवि ने उन्हें बन्दरों की विशेषताओं से युक्त बताया है किन्तु वानरों की सभ्यता का जो चित्रण रामायण में प्रस्तुत है, उनसे ये दोनों मान्यताएँ गलत सिद्ध हो जाती हैं, और यह प्रामाणिक होता है कि वानरों की जाति एक वास्तविक मनुष्य जाति थी जिसकी अपनी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति थी। रामायण ही भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन और सम्भवतः एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिससे हम वानर सभ्यता की निकट से झाँकी पा सकते हैं।

वानरों को कवि ने माया जानने वाले, शूरवीर, वायु के समान वेगवान, नीतिज्ञ, बुद्धि के समान पराक्रमी, किसी से परास्त न होने वाले, तरह-तरह के उपायों को जानने वाले आदि गुणयुक्त बताया है।

वर्ण

रामायण युग में आर्यों का समाज निश्चित रूप से जाति-पांति में विभक्त हो चुका था। वाल्मीकि ने चारों वर्णों का स्पष्ट उल्लेख किया है। महाराज दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में सहस्रों की संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आमंत्रित किये गये थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न जातियों के बीच स्पष्ट मर्यादाएँ तथा सम्मान और गौरव की पृथक्-पृथक् धारणाएँ स्थापित हो गयी थीं।

प्रथम तीन वर्ण 'द्विज' कहलाते थे। उपनयन संस्कार उनके दूसरे जन्म का सूचक था। अयोध्या में रहने वाले चारों वर्ण ब्राह्मणों के अनुयायी, देवताओं और अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूर, पराक्रमी तथा धर्म और सत्य का पालन करने वाले थे।

ब्राह्मण का व्यक्तित्व गौओं तथा राजाओं की तरह पवित्र माना जाता था। जहाँ ब्राह्मणों का कार्य प्रजा के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में योग देना था वहाँ क्षत्रियों का कर्त्तव्य देश को वाह्य और आन्तरिक संघर्षों से बचाना था। क्षत्रियों को विशेष रूप से ब्राह्मणों और गौओं की सेवा करनी पड़ती थी। शरण में आये किसी भी प्राणी को अभयदान देना उनका धर्म था, जैसे माता अपने गर्भ की रक्षा करती है, वैसे ही राजा को तपस्वियों की रक्षा करनी चाहिए। दण्ड अर्थात् न्याय का यथोचित विधान करना राजा का कर्त्तव्य था। यदि ब्राह्मण रामायण कालीन समाज के मस्तिष्क थे, और क्षत्रिय उसकी भुजायें तो वैश्य लोग वर्णाश्रम

व्यवस्था को आर्थिक सम्बल प्रदान करते थे, उनका मुख्य कार्य अर्थोपार्जन करना था। व्यापार, कृषि, गौपालन उनके मुख्य धन्धे थे। वे ही करों का भार वहन करते थे। द्विज होने के नाते वैश्यों के धार्मिक संस्कार और कृत्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समान ही होते थे। शूद्रों को सबसे निम्न स्थान प्राप्त था। उनका कार्य तीनों वर्णों की सेवा करना था। वे प्रायः घरेलू नौकरी और दास वृत्ति किया करते थे। शूद्रों का यज्ञ में उपस्थित होना वर्जित था। वे मंदिरों, राज-प्रासादों, ब्राह्मणों के घरों तथा पूज्य स्थानों में प्रवेश नहीं कर सकते थे किन्तु राजा की विशेष आज्ञा पाकर वे सभा या संसद में प्रवेश कर सकते थे। प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था को इस प्रकार राजकीय स्वीकृति प्राप्त थी, अतः उनका पालन करना लोगों के लिए अनिवार्य था।

आश्रम

प्राचीन आर्य-ऋषियों के अनुसार मानव-जीवन अनवरत आत्म-शिक्षण एवं आत्म-अनुशासन का समय था। इस शिक्षण-काल को उन्होंने आश्रम के नाम से कई भागों में बाँट दिया था। इन्हीं पर मनुष्यों के सांसारिक जीवन का ढाँचा अवस्थित रहता था। रामायण के समय में आश्रमों की संख्या निश्चित रूप से चार बन चुकी थी। यथा—

1. विद्यार्थी के लिये ब्रह्मचर्याश्रम।
2. विवाहितों के लिये गृहस्थाश्रम।
3. अर्थोपार्जन से विरत वनवासी तपस्वी के लिये वान-प्रस्थाश्रम।
4. संसार त्यागी वैरागी के लिये सन्यासाश्रम।

उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचर्याश्रम आरम्भ होता था। इसमें विद्यार्थी ब्रह्मचारी रहकर कठोर एवं अनुशासनमय जीवन व्यतीत करता था। गुरु की सेवा और शास्त्रों का अध्ययन उसके दो प्रमुख कर्त्तव्य थे। शिक्षा प्राप्ति के बाद वह स्नातक कहलाता था। रामायण में तीन-प्रकार के स्नातकों का उल्लेख है—'विद्या स्नातक', 'व्रत-स्नातक' और 'विद्याव्रत स्नातक'।

ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर युवक स्नातक विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। इस आश्रम में पितृ-ऋण देव-ऋण और मनुष्य-ऋण को चुकाने के लिये गृहस्थ को श्राद्ध, यज्ञ और अतिथि-सत्कार करने पड़ते थे। सभी धार्मिक क्रिया-कलाप और यज्ञ-यागादिक उसे अपनी पत्नी के साथ सम्पन्न करने पड़ते थे, जो इसलिये, धर्म-पत्नी कहलाती थी। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सर्वश्रेष्ठ था।[14] और स्वयं रामायण गृहस्थाश्रम का ही महाकाव्य है।

इसके पश्चात् वानप्रस्थ का वर्णन किया गया है। इसमें पत्नी या तो पुत्रों के संरक्षण में घर पर रहती अथवा पति के साथ वन गमन करती थी। रामायण में उल्लिखित अधिकाँश तपस्वीगण अपनी पत्नियों के साहचर्य में वैखानस व्रतों का पालन करते थे। अन्तिम आश्रम सन्यास का 'रामायण' में विशेष उल्लेख नहीं है।

उसमें 'सन्यासी' शब्द का प्रयोग न होकर 'भिक्षु' और 'परिव्राजक' नाम आये हैं।

परिवार

'कुटुम्ब' अथवा 'परिवार' समस्त मानवीय संगठनों की मूल इकाई है और सामाजिक विकास की पहली सीढ़ी। वास्तव में रामायण एक कौटुम्बिक महाकाव्य है। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, ममता, मोह, लोभ, त्याग आदि की सामान्य कौटुम्बिक घटनाओं का चित्रण उसे सर्व-सामान्य के लिये एक हृदय-ग्राही रचना बना देता है। वाल्मीकि ने पारिवारिक जीवन के प्राचीन आदर्शों को भावी-पीढ़ियों के लिये अपनी रामायण में सुरक्षित कर दिया है।

परिवार का रूप निःसन्देह पैतृक था। उसमें पिता कुटुम्ब का मुखिया था, जिसका आदेश सर्वोपरि होता था। पत्नी गृहस्वामिनी होती थी, किन्तु गृह-स्वामी पर आश्रित और उसकी आज्ञाकारिणी। पुत्र और पुत्रियों पर पिता का पूर्ण नियन्त्रण था, पिता की अनुमति के बिना वे अपना जीवन साथी नहीं चुन सकते थे उदाहरण—धनुभंग करके सीता को पाने के अधिकारी होने पर भी राम ने पिता की इच्छा जाने बिना विवाह करने से इन्कार कर दिया।[15] व्यवहारिक मामलों में पिता की आज्ञा कानून के तुल्य होती थी। परिवार में पुत्र स्नेह का केन्द्र बिन्दु था। पुत्रों में भी ज्येष्ठ पुत्र का अधिकारपूर्ण स्थान था। मनुष्य के चरित्र-निर्माण में कुटुम्ब के महान योग को रामायण ने स्वीकार किया है।

विवाह

रामायण काल में विवाह की रस्म पारम्परिक एवं शास्त्रीय आधारों पर पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुकी थी। सामान्यतः प्रत्येक प्राणी के लिये विवाह-पारिवारिक स्थिरता, सांसारिक सुख एवं पारलौकिक कल्याण की दृष्टि से आवश्यक और वांछनीय माना जा चुका था। विशेष कर स्त्रियों के लिये तो विवाह एक प्रकार से उनका नूतन जन्म-संस्कार था। उन दिनों विवाह से पूर्व वर-वधू में कोई परिचय या सम्पर्क नहीं होता था। अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन था। पुत्र-पुत्रियों के विवाह प्रायः माता-पिता ही रचा करते थे। कन्या की याचना उसके पिता से ही करनी पड़ती थी। प्राचीन भारत में स्वयंवर की दो प्रणालियां प्रचलित थीं—एक तो वह—जिसमें वधू एक नियत स्थान पर इकट्ठे हुए वरों में से अपनी रुचि के पति को चुन लेती थीं, दूसरी वह जिसमें पूर्व निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाला ही कन्या के पाणि-ग्रहण का अधिकारी होता है। पहली प्रथा रामायण के समय में प्रचलित नहीं थी, दूसरी अवश्य प्रचलित थी।

तत्कालीन विवाह-प्रणाली का पूर्ण परिचय राम-सीता के विवाह-वर्णन में मिलता है जिसमें कुल मिलाकर पाँच दिन लगे थे। इस समारोह के तीन-मुख्य भाग स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं।

1. प्रारम्भिक औपचारिक कृत्य।
2. मूल संस्कार अथवा विवाह।

3. समुद्वाह अर्थात् पतिगृह जाने पर किये जाने वाले माँगलिक कार्य।

प्रेम

प्रेमीजनों के आकर्षण एवं अनुराग के अनेक मंजुल चित्र रामायण में उपलब्ध हैं। स्वयं राम ने मानवों पर काम के प्रबल प्रभाव को स्वीकार किया है। कामासक्त होने पर मनुष्य क्रोध के पात्र को भी अपना प्रेमास्पद बना लेता है।

वाल्मीकि ने इस तथ्य को छिपाने की कोई चेष्टा नहीं की है कि पति और पत्नी के प्रेम में शारीरिक आकर्षण एवं काम-चेतना का भी प्रमुख योग होता है। रामायण की अनेकानेक काव्य-कल्पनाएँ प्रणय--भावनाओं से उद्भूत हुई हैं। वाल्मीकि की दृष्टि में हाथी-हथिनी का सम्पर्क स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का प्रतीक है। प्रणय का उदात्त एवं शालीन रूप कवि द्वारा चित्रित प्रेम की प्रगाढ़ता होती है। वाल्मीकि ने सर्वत्र विवाहित प्रणय को ही श्रेष्ठ पद प्रदान किया है।

'नारी' का स्थान घर में

रामायण कालीन समाज में कन्याओं से किसी प्रकार का द्वेष, द्रोह या घृणा नहीं की जाती थी। रामायण से स्पष्ट है कि प्रमुख स्त्री पात्रों को विवाह से पूर्व अपने घरों में समुचित शिक्षा मिल चुकी थी। कर्मकाण्ड की शिक्षा पाने के अतिरिक्त कन्याएँ शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करती थीं। कन्याओं को व्यवहारिक एवं नैतिक शिक्षा भी दी जाती थी। उन्हें पत्नी विषयक कर्तव्यों का सुचारु रूप से बोध कराया जाता था। देवासुर संग्राम में कैकेई का अपने पति के साथ युद्ध में जाना यह सिद्ध करता है कि लड़कियाँ सैनिक-शिक्षा से भी वंचित नहीं रखी जाती थीं। अपने कौमार्य काल में कन्याएँ पर्दे जैसे नियंत्रण अथवा अतिशय औपचारिकता के बन्धनों से मुक्त रहती थीं। विवाह के बाद पितृ-गृह से पतिगृह आने वाली कन्या 'वधू' का पद प्राप्त करती थी।

वाल्मीकि ने गृह-कार्य में रत गृहणी का कहीं वर्णन नहीं किया है वह केवल इतना कहते हैं कि नव-वधू को अपने सास-ससुर के अधीन रहना चाहिये।

विवाहित स्त्रियाँ पति की कल्याण कामना से व्रत-इत्यादि रखती थीं।

नारी का स्वरूप समाज में

सिद्धान्ततः नारी को अपने आपकी रक्षा करने में असमर्थ माना जाता था, अतः वह पति, पुत्र या बन्धु-बान्धवों के ही अधीन रहने के योग्य थी किन्तु व्यवहार में इसका अर्थ यह नहीं था कि वह सदा घर की चार दीवारी में कैद रहती थी। राम के वनवास से लौटने पर उनका जो अभूत-पूर्व स्वागत किया गया, उसमें स्त्रियों का योग और भी अधिक दर्शनीय था। इनके अतिरिक्त राजागण-बड़े-बड़े यज्ञ-समारोह आयोजित किया करते थे, जिनमें सभी तरह के अभ्यागत आते और आनन्द मनाते थे। महिलाएँ भी इन समारोहों में बड़ी संख्या में भाग लेतीं और पुरुषों की तरह विभिन्न भोज्य पदार्थों का आस्वादन करती थीं। अन्य दृष्टियों से

भी नारी वर्ग संसार और इसके विविध अनुभवों से अलग-थलग नहीं रहता था। पुरुष वर्ग के साथ ही वह भी सभी प्रवृतियों में भाग लेता था। पुरुषगण यात्रा और विहार में या मित्रों-सम्बन्धियों के यहाँ जाते समय अपनी स्त्रियों को अवश्य साथ रखते थे। स्त्रियों को अकेले या अपनी सखियों के साहचर्य में आमोद-प्रमोद करने के साधन और अवसर प्राप्त थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण कालीन समाज में नारी के प्रति दृष्टिकोण विभिन्न पहलुओं से निर्धारित होता था, और इसी कारण उसमें परस्पर विरोधी बातें देखने को मिल जाती हैं। कुल मिलाकर उस युग में स्त्रियों की स्थिति सामान्यतः सुखद थी। कम से कम तत्कालीन परिस्थितियों में नारी को एक कन्या, पत्नी, माता और विधवा के रूप में समस्त संभव सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त थे, और इनके सहारे वह परिवार, समाज और राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में अमूल्य योगदान कर रही थी।

आर्थिक जीवन

रामायण-कालीन आर्य उन पूर्व-कालिक सैनिक कृषकों की भाँति नहीं थे, जिन्होंने कृष्ण-वर्ण, दस्युओं को परास्त करके सिंधु का मैदान हस्तगत किया था। अब तक तो सभ्यता प्रगति कर चुकी थी। समाज अधिक सभ्य और सुसंस्कृत बन चुका था तथा विद्या और कला का प्रसार हो चुका था। वित्त शास्त्र को प्राचीन भारत में 'वार्ता' की संज्ञा दी जाती थी। वार्ता-विद्या के शास्त्रीय स्तर पर पहुँचने के बाद कृषि, गो-पालन और व्यापार के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा—इनकी प्रगति की एक सुनिश्चित दिशा निर्धारित हो गयी। राज्य में वार्ता के नियमों और सिद्धान्तों को लागू करना राजा का प्रधान कर्तव्य था।

राष्ट्र या व्यक्ति के जीवन में अर्थ का महत्व भली-भाँति प्रकट था। राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत 'बलि-षड्भाग' था। भारत का शाश्वत एवं चिर-अभ्यस्त उद्योग-कृषि रामायण युग में भी आजीविका का सर्व-सामान्य साधन था। कृषि-उद्योग को राज्य की ओर से पर्याप्त संरक्षण प्राप्त होता था। राज्य की ओर से अन्न के सरकारी गोदाम बने रहते थे, जिन्हें धान्यकोश कहा जाता था।

वाणिज्य-व्यापार वैश्यों के हाथ में था। देश में प्रचुर आंतरिक व्यापार होता था। विदेशों से भी व्यापारिक संबंध थे। वस्तुओं का विनिमय-व्यापार 'निष्क्रिय' कहलाता था। नौकाओं, हवाई-यातायात की भी सूचना मिलती है।

संक्षेप में, वाल्मीकि के समय में भारत आर्थिक दृष्टि से एक सुखी, समृद्ध और वैभव-शाली देश था। दशरथ के राज्यकाल में अयोध्या तथा उसके जनपदों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी—वे धन, धान्य, पशु आदि जीवन की सुख-सुविधाओं से सम्पन्न थे।

प्रशासन

रामायण कालीन भारत में कोई एक छत्र साम्राज्य नहीं था। हिमालय और

विन्ध्य-पर्वत मालाओं का मध्यवर्ती आर्यावर्त देश अंग, काशी, कोसल, केकय, मगध, मत्स्य, मिथिला, वंग, विशाला, सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र, सांकाश्या आदि स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था।

रामायण में किसी गणतन्त्र का उल्लेख नहीं है। तत्कालीन शासन का स्वरूप मर्यादित राजतन्त्र था। एक वैधानिक शासक द्वारा स्थापित सुदृढ़ शासन व्यवस्था में जनता का परम् विश्वास था। स्थायी सरकार के अभाव में होने वाली अव्यवस्था से प्रजा सुपरिचित थी। राजा का पद कुल परम्परागत था। प्रायः ज्येष्ठ पुत्र ही युवराज-पद का अधिकारी होता था। राजा की मृत्यु पर युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया राजकुमार ही राज्यारूढ़ होता था, वाल्मीकि के अनुसार आदर्श राजा गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता, दृढ़-प्रतिज्ञ, सदाचारी, समस्त प्राणियों का हित-साधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली, प्रिय-दर्शन, मन पर अधिकार रखने वाला, कांतिमान, अनिंदक और संग्राम में अजेय योद्धा होता था।

तत्कालीन शासनतन्त्र के तीन मुख्य अंग सभा, मन्त्रिपरिषद् तथा शासनाधिकारी थे। राम और दशरथ के युग की राज्य सभा, लोक-सभा या धारा-सभा, 'परिषद्' 'समिति', 'संसद' या केवल 'सभा' कहलाती थी। सभा के सदस्य सरकारी और गैर-सरकारी दोनों होते थे।

युद्ध

सैन्य विभाग का निर्देशन स्वयं राजा अपने अमात्यों की सहायता से करता था। लंका में सैन्य विभाग एक मंत्री-विशेष के हाथ में रहा होगा तत्कालीन नगर दुर्गों के रूप में बनाये जाते थे, सेना के चार भाग होते थे—पैदल (पदाति), घुड़सवार, (सादी), रथी और गजा रोह। इसलिये वह चतुरंग बल कहलाती थी। सेनाध्यक्ष को सेनानी, सेनापति या सेना नायक कहते थे। अयोध्या में सैनिकों का अलग वर्ग था। वे 'भट' या 'योध' कहलाते थे। सैनिक अनुशासन बड़ा कठोर था। समुचित कारण के बिना लड़ाई ठान लेना राजाओं के लिये अनुचित था। रामायण के अनुसार युद्ध के आठ कारण होते थे—

1. अपहृत नारी को छुड़ाने व अत्याचारी के विनाश हेतु।
2. प्रतिशोध के लिये।
3. मित्रों की सहायतार्थ।
4. नारी के लिये।
5. भूमि, सोने और चांदी के लिये।
6. सार्व-भौम सता स्थापित करने के लिये।
7. राज्य-विस्तार के लिये।

प्राचीन भारत में युद्ध का आश्रय अंतिम उपाय के रूप में ही लिया जाता था, सेना की विभिन्न व्यूहों में रचना की जाती थी। मल्ल युद्ध या कुश्ती इस समय की सर्वाधिक प्रचलित युद्ध प्रणाली थी। रात के समय प्रायः युद्ध बन्द कर दिये

जाते थे। अस्त्रों में बाण ही सर्वाधिक प्रयोग होते थे। बचाव के आयुध या जिरह वख्तर भी कई प्रकार के थे यथा, कवच, अभेद्य-कवच, आर्षभ-चर्म, गोधा, तनुत्राण, मर्मत्राण आदि।

रामायण कालीन संस्कृति

रामायण की संस्कृति का प्रचार हिन्दू-धर्म के व्याख्याताओं एवं उन्नायकों का सदा से प्रिय विषय रहा है। वाल्मीकि ने आर्य-संस्कृति के एक अतिशय-प्राचीन एवं उत्कृष्ट युग को मानो साकार रूप में रंग-मंच पर उपस्थित कर दिया है। तत्कालीन संस्कृति को जानने के लिये निम्नलिखित बिन्दुओं पर दृष्टि-पात करना आवश्यक है–

आचार-विचार

जन-साधारण में प्रचलित आचार-विचार ही किसी समाज की संस्कृति का परिचायक होता है। सामाजिक शिष्टाचार में अतिथि-सत्कार को सर्वोपरि स्थान दिया जाता था।[16] आतिथ्य करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि अतिथियों को उनके पद और गौरव के अनुसार ही सम्मान प्राप्त हो। हर संभव अवसर पर अभिवादन करना रामायण कालीन शिष्टाचार का एक अभिन्न अंग था। उस युग में आलिंगन करने की प्रथा उतनी ही व्यापक और सर्व-प्रचलित थी,[17] जितनी आज हाथ जोड़ने की प्रथा है। पुरुषों में परस्पर सौहार्द प्रकट करने का एक और ढंग था, हस्त संपीडन या हाथ मिलाना।

तत्कालीन संशोधन प्रणाली शिष्ट और गौरव-पूर्ण होने के साथ-साथ स्नेह और आत्मीयता की भी सूचक थी। समव्यस्तक मित्र एक-दूसरे को 'तात[18] कहते या व्यक्तिगत नाम से पुकारते थे। उपकारों के लिये आभार-प्रदर्शन किया जाता था। दैनिक जीवन में सत्य और निष्कपट आचरण को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। दीर्घ-प्रवास पर जाने से पहले सुसंस्कृत व्यक्ति गुरुजनों से अपने अपराधों के लिये क्षमा-याचना कर लेते थे।

सामाजिक प्रथाएँ

सामाजिक रीति-रिवाज 'लौकिक समय', 'लोक वृत्त', अथवा 'लोकाचार' कहलाते थे। आजकल की भाँति उन दिनों भी उपयुक्त अवसर पर अभिनन्दन करने की प्रथा थी। मित्रता की मर्यादा अग्नि की साक्षिता में स्थापित की जाती थी। पैरों की शपथ खाने का विचित्र रिवाज था। भाग्य, दैव या कृतांत के सर्वातिशायी प्रभाव में तत्कालीन समाज की अटल आस्था थी। दैव या भाग्य समय पाकर फलीभूत होता है। अतः दैव ही काल है, मान्यता थी। रामायण में शुभ-शकुनों की अपेक्षा दुर्तिमित्तो अथवा उत्पातों का उल्लेख अधिक विस्तार से हुआ है।[19] लोक-मान्यता के अनुसार पुण्यवान व्यक्ति मरने के बाद आकाश का एक तारा बन जाता था।

वेष-भूषा

वस्त्रोद्योग की उन्नतावस्था के कारण वस्त्रों की विविधता और बहुलता दोनों प्रचुर परिमाण में दीख पड़ती हैं। वाल्मीकि ने सजी-धजी स्त्रियों का बार-बार वर्णन किया है। कौशेय वस्त्रों का बहुत प्रचलन था। क्षौम वस्त्र अधिक कीमती, मुलायम और बारीक होते थे तथा विशेषकर पूजन-अर्चन में प्रयुक्त होते थे। 'अजिन' (मृग) वल्कल और 'कुश-धीर-मुनि-वस्त्र' कहलाते थे। कढ़े हुए या किनारीदार वस्त्र तैयार करने की कला बड़ी उन्नत थी। आविक और कंवल ऊनी कपड़े थे। महीन कपड़े 'सूक्ष्म-वस्त्र', कीमती कपड़े, 'महार्ह वस्त्र' या 'वरार्ह-वस्त्र' तथा नये कपड़े 'आहत वस्त्र' कहलाते थे। ब्रह्मचारी या विद्यार्थी केवल एक वस्त्र पहनते थे जो कमर में लपेटा या बाँधा जाता था। स्त्रियों का अधोवस्त्र कटि-प्रदेश में गाँठ लगाकर बाँधा जाता था। रँगे हुए वस्त्रों का काफी व्यवहार था। सिले वस्त्रों का प्रचलन कम होने पर भी सीने की कला अज्ञात नहीं थी। राजागण मणियों से अलंकृत स्वर्ण-मुकुट पहनते थे।

अयोध्या के नागरिकों में शृंगार-प्रसाधनों का सर्व-व्यापी प्रचलन था। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक शृंगार-भावना थी।

खान-पान

रामायण कालीन आर्य अपने खान-पान में बड़े सुरुचि पूर्ण थे। आमिष और निरामिष[20] दोनों प्रकार का खाद्य-पदार्थ बनाने में प्रवीण थे। आर्य लोग मूलतः शाकाहारी और राक्षस मूलतः मांसाहारी थे। खाद्य पदार्थों की ये चार श्रेणियाँ थीं—1. भक्ष्य, अपूप (रोटी की तरह का पदार्थ) 2. भोज्य (भात-सदृश) 3. चोष्य (गन्ने की तरह) 4. लेह्य (शहद या चटनी की तरह खाये जाने वाला)

क्रीड़ा विनोद[21]

राम और वाल्मीकि के युग में लोगों को ऐहिक सुख-सुविधाएँ पर्याप्त उपलब्ध थीं। नगरों में मनोरंजन स्थलों को 'समाज' की संज्ञा दी जाती थी। जहाँ धार्मिक, सामाजिक, और आर्थिक विषयों पर विचार-विमर्श होता था तथा नृत्य, संगीत, द्यूत आदि क्रीड़ा विनोद के साधन उपलब्ध थे। परम्परा से चली आ रही कथाएँ सुनना, सुनाना भी विश्राम या मनोरंजन का एक सुलभ प्रकार था।

राम के अनुसार मृगया राजाओं की क्रीड़ा थी। वन्य पशुओं का बाणों से संहार किया जाता था।

शिक्षा

रामायण में गुरु[22] आचार्य, कुलपति, श्रोत्रिय, तापसगण, ब्रह्मवादी, उपाध्याय, शिक्षक, परिव्राजक आदि का उल्लेख हुआ है। जीवन का प्रथम चरण ब्रह्मचर्याश्रम-विद्याध्ययन के लिये नियत रहता था।

रामायण में राजनीति, अर्थ-शास्त्र, नैतिक-शिक्षा आदि का तत्कालीन समाज में प्रचार भी बताया गया है।

साहित्य

साहित्य तत्कालीन समाज का दर्पण होता है। रामायण मुख्यतः एक आख्यान है।

रामायण के युग में संस्कृत बोल-चाल की भाषा होने के कई संकेत मिलते हैं। निश्चित ही वाल्मीकि अपना लोक-प्रिय काव्य किसी मृत-भाषा में न रचकर ऐसी भापा में रचने को प्रेरित हुए होंगे, जो लोक में प्रचलित रही हो। व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध एवं परिष्कृत संस्कृत विशेष रूप से समाज के शिष्ट वर्ग एवं शिक्षित वर्गों में प्रचलित थी। रामायण काल में कविता साहित्यिक कला की अभिव्यक्ति का एक सम्मत माध्यम बन चुकी थी।[23]

विज्ञान

साहित्य की भाँति विज्ञान का भी रामायण कालीन वैदिक-प्रवृत्तियों में प्रमुख स्थान था। फल ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र का पर्याप्त प्रचार था। रामायण में आयुर्वेद, आयुर्वेद के जनक-धन्वन्तरि तथा त्रिदोष का उल्लेख हुआ है।[24] तत्कालीन वैद्य शल्य-चिकित्सा से भी अनभिज्ञ नहीं थे। रामायण में रोगी पशुओं और उनके उपचार का भी वर्णन हुआ है। शरीर स्थान का चिकित्सकों को सम्यक् ज्ञान था।

कला कौशल

रामायण कालीन आर्य-कलात्मक अभिरुचि सम्पन्न लोग थे। सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में पुष्पों, केशों का शृंगार, अंगराग, प्रलेपन तथा चित्र-विचित्र वस्त्रों का व्यवहार, पैरों में अलंकृत-रस तथा मस्तक पर तिलक का प्रयोग, स्त्रियों के कपोलों पर पत्रावली का अंकन आदि कला प्रियता के नमूने हैं।[25]

रावण के सुविख्यात पुष्पक विमान को तत्कालीन कला-कौशल का सर्वोत्कृष्ट नमूना माना जा सकता है।

नगर

जहाँ वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों की संस्कृति मूलतः जनपदीय थी, वहाँ रामायण कालीन संस्कृति मुख्यतः नागरिक थी। प्राचीन काल में जीवन और निवास संकटापन्न रहने के कारण नगरों को चार दीवारी और खाइयों से सुरक्षित रखा जा सकता था। प्राचीन काल में आर्य नगरों का उद्भव और विकास सामरिक आवश्यकताओं के कारण हुआ। रामायण काल के प्रमुख नगर भी मजबूत चार दीवारी तथा आक्रमणों का प्रतिरोध करने की साज-सज्जा से युक्त पाये जाते हैं। नगर के बाहर खायी रहती थी। शत्रु-प्रदेश में विजित स्थानों पर अधिकार कायम रखने के लिये महत्वपूर्ण व्यूह-स्थलों पर किले बंदी की जाती थी, जो कालांतर में नागरिक सभ्यता का केन्द्र हो जाती थी।

आश्रम

रामायण में नगरों की संस्कृति के बाद आश्रमों की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है, ये आश्रम अरण्यों के अंचल में स्थित होते थे। आश्रमों का निर्माण

सुविधा- जनक, रम्य, वनस्थलियों में किया जाता था। आश्रम निर्माण में वृक्ष की शाखा, बाँस, बेंत, रस्सी, घास-फूस इत्यादि का उपयोग किया जाता था। एक आश्रम में प्रायः दो हिस्से होते थे, बाहरी भाग 'पर्णकुटी' और भीतरी 'उटज' कहलाता था। कई कुटियों वाली तपस्वियों की बस्ती को 'आश्रम-मंडल' या 'तपोवन' कहते थे और बस्ती के पृथक्-पृथक् निवास 'तापसालय' कहलाते थे। इस प्रकार के आश्रम-मंडल का अधिपति एक वयोवृद्ध मुनि होता था, जिसे कुलपति कहते थे।

धर्म

भारत में धर्म को सदैव ऊँचा स्थान दिया गया है। वेदों को सर्वोच्च धार्मिक महत्व प्राप्त था। प्रातःकाल का समय आहनिक-कृत्यों के अनुष्ठान के लिये नियत रहता था। देवताओं की प्रार्थना करना लोगों के जीवन का अभिन्न अंग था। मौलिक रामायण में यद्यपि देवताओं की प्रतिमाएँ स्पष्टतया उल्लिखित नहीं हैं तथापि गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि पूजन सामग्री का वर्णन किसी आस्पद या आधान का होना प्रमाणित करता है। उस समय तीर्थ-यात्रा का भी प्रचलन था। गौ को सम्मान दिया जाता था। यज्ञों का बाहुल्य था। अश्वमेध-यज्ञ की बड़ी प्रतिष्ठा थी। सत्य ही सर्वत्र धर्म के रूप में 'समादृत' हुआ था।

दर्शन

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त जो भारतीय दर्शन की आधार शिला है, रामायण में सर्वत्र स्वीकृत एवं समर्थित है। कर्म का सिद्धान्त मनुष्यों के सुख दुःख का, उनके भाग्य वैषम्य का एक तर्क-संगत स्पष्टीकरण उपस्थित करता है। रामायण के अनुसार मनुष्य का कोई भी कर्म भले ही वह अज्ञानवश ही क्यों न किया गया हो, निष्फल नहीं जा सकता। कर्म-फल की प्राप्ति के लिये जन्म-मरण की शृंखला अनिवार्य है, अतः जीव के लिये पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया। आत्मा की आयु शरीर की आयु से नियंत्रित नहीं होती, यह विश्वास सर्वमान्य था। रामायण के अनुसार आदर्श जीवन वह है, जो एकांगी न होकर बहंगी हो, जो मानव-अस्तित्व के आध्यात्मिक, व्यावहारिक एवं भौतिक सभी पक्षों का यथोचित सेवन करे।

रामायण कालीन संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का सिंहावलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था पर आधारित थी जिसमें जन-सामान्य, वर्णों और आश्रमों में विभक्त होते हुए भी, सहयोग एवं सौहार्द के तंतुओं से परस्पर अनुरक्त था। संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य थीं, पर उन्हें स्नेह और सहयोग के सहारे तथा अतीत की परम्पराओं का पालन करके, बहुत कुछ दूर कर लिया जाता था। गृहस्थाश्रम में अनुदारता एवं उदारता, आदर्शवादिता एवं व्यावहारिकता दोनों के कांत दर्शन होते हैं। नारी का व्यक्तित्व नितान्त आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक था किन्तु वर्णनातीत, दुर्दयनीय एवं

असंगतियों से भरपूर। यद्यपि रामायण कालीन आर्यों के जीवन में नैतिकता और सदाचार का स्वरप्रधान था, तथापि भौतिक पक्ष उनकी पुष्टि में उपेक्षित या अनादृत नहीं था। (रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति)

नगरों और गृहों का यथा-विधि निर्माण तथा इनकी कला-पूर्ण साज-सज्जा जन-साधारण का स्थापत्य-प्रेम और उनकी कलात्मक अभिरुचि प्रकट करते हैं।

संक्षेप में, रामायण कालीन संस्कृति में चिरकालीन महत्व एवं सार्व-कालिक आदर्श के तत्व विद्यमान हैं।

वाल्मीकि रामायण के प्रकाशित संस्करण

वर्तमान समय में 'वाल्मीकि रामायण' के मुख्यतया तीन संस्करण हैं जिनका प्रचार भारत के भिन्न-भिन्न भागों में है–

संस्करण–1

दक्षिणात्यसंस्करण जिसमें बम्बई और मद्रास से प्रकाशित रामायणें गिनी जाती हैं।

संस्करण–2

कलकता से प्रकाशित बंगीय या गौड़ीय संस्करण

संस्करण–3

होशियार पुर से प्रकाशित पश्चिमोत्तरीय संस्करण।

प्रत्येक संस्करण में ऐसे अनेक श्लोक हैं जो अन्य संस्करणों में नहीं पाये जातें। जो श्लोक तीनों में पाये जाते हैं उन्हें दक्षिणात्य पाठ ही अपेक्षाकृत प्राचीन और मौलिक माना जाता है। इन संस्करणों में पाठ भेद का प्रथम कारण यह प्रतीत होता है कि 'रामायण' आरम्भ में लिखित रूप में नहीं थी। स्तुति पाठकगण 'रामायण' की कथा कंठाग्र ही सुनाते थे और संभव है इस प्रकार कई शताब्दियों बाद श्लोकों के क्रम में परिवर्तन हो गया हो। अतएव ग्रन्थ लिखने के समय रामायण के परस्पर भिन्न पाठ भी उसी रूप में लिख लिये गये हों जिस रूप में भिन्न-भिन्न प्रान्तों के स्तुति पाठकगण उन्हें सुनाया करते थे। फिर भी मुख्य कथानक की दृष्टि से इन संस्करणों में मौलिक भेद नहीं है।

व्याख्याएँ

वाल्मीकि रामायण का महत्व केवल काव्य दृष्टि से ही नहीं है, प्रत्युत वह नाना वैष्णव सम्प्रदायों में एक उपास्य धार्मिक ग्रन्थ भी है। इसलिये रामायण को आश्रय मानकर अनेक व्याख्या ग्रन्थों की रचना भिन्न-भिन्न युगों में की गयी है। डा० ओफ्रेक्ट के अनुसार टीकाओं की संख्या 30 है।

मध्य युग में रामायण की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि पन्द्रहवां, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में कम से कम दस टीकाएँ लिखी गयीं, जो व्याख्या की दृष्टि से बहुत ही असामान्य गुणों से सम्पन्न हैं। इनका परिचय

निम्नवत् है–

1. रामानुजीय

यह रामानुज की नितान्त प्रसिद्ध व्याख्या है इसका समय 1400 ईस्वी के आस-पास है।

2. सर्वार्थसार

इससे पश्चाद्वर्ती है। हारीत गोत्रीय वेंकट कृष्णाध्वरी रचित टीका, जिसे वैद्यनाथ दीक्षित ने निर्दिष्ट किया है।

3. रामायण दीपिका

वैद्यनाथ दीक्षित की यह विख्यात व्याख्या है। समय है लगभग 1500 ईस्वी।

4. 'बृहद् विवरण' 'लघुविवरण'

ईश्वर दीक्षित ने रामायण के ऊपर इन टीकाओं का प्रणयन किया है। इनमें से प्रथम व्याख्या का काल 1518 ईस्वी है। फलतः इसका समय 16वीं शताब्दी का प्रथमार्ध है। (1525 ईस्वी के लगभग)।

5. तीर्थीय अथवा 'रामायण तत्व दीपिका'

यह टीका अपने प्रणेता 'महेश्वर तीर्थ' के नाम पर तीर्थीय अभिहित की जाती है।

6. रामायण-भूषण

अपने रचयिता गोविन्दराज के नाम पर यह 'गोविन्द राजीय' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

7. वाल्मीकि हृदय

यह अत्रिगोत्री अहोबल द्वारा रचित टीका है।

8. अमृत कतक अथवा कतक

इस प्रख्यात टीका के रचयिता का नाम है—माधव योगी।

9. रामायण तिलक

यह सर्वाधिक लोकप्रिय टीका है। श्रृंगवेरपुर (आधुनिक सिंगरौर, जिला इलाहाबाद) के विसेन वंशी राजा राम वर्मा ही इसके वास्तविक प्रणेता हैं।

10. रामायण शिरोमणि

रामायण की यह व्याख्या वंशीधर तथा शिव सहाय की सम्मिलित रचना है। रचना काल 1921 सं. (1865 ईस्वी) का उल्लेख टीका में किया गया है।

11. मनोहरा

इसके रचयिता बंग देशीय लोक नाथ चक्रवर्ती हैं। उनका समय 16वीं शती है।

12. धर्माकूतम्

यह रामायण की आलोचनात्मक व्याख्या है। इसके रचयिता हैं—त्रयम्बक मखी। इनका समय है—(1674 ईस्वी से 1687 ईस्वी) अर्थात् 17वीं शती का

उत्तरार्ध।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण की विविध व्याख्याएँ की गयीं।

शोध कार्य में प्रयुक्त संस्करण

शोध कार्य में रामायण के निम्नलिखित संस्करणों का प्रयोग किया गया—

1. वाल्मीकि रामायण	सातवलेकर कृत	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
2. वाल्मीकि रामायण	डा० पी० एल० वैद्य	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
3. वाल्मीकि रामायण	सं० टी० आर० कृष्णाचार्य	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
4. वाल्मीकि रामायण	ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
5. वाल्मीकि रामायण	द्वारिका प्रसाद शर्मा	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
6. वाल्मीकि रामायण	स्वामी जगदीश्वरानन्द	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
7. वाल्मीकि रामायण	अखिलानंद कृत टीका सहित	चौखम्भा ओरियन्टालिया, हिन्दी टीका सहित वाराणसी
8. वाल्मीकि रामायण	तिलक व्याख्या सहित	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
9. वाल्मीकि रामायण	राम कृत तिलक,	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
	शिव सहाय कृत रामायण शिरोमणि गोविन्द राम कृत भूषण त्रय व्याख्या सहित	
10. वाल्मीकि रामायण	गोविन्द राजीय (भूषण) रामानुजीत निश्लोकी महेश्वरतीर्थीय सटिप्पण चार संस्कृत व्याख्या सहित	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
11. वाल्मीकि रामायण	माधव योगी कृत	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
12. वाल्मीकि रामायण	पं० रामनारायण शास्त्री भाग 1-2 'राम'	गीता प्रेस, गोरखपुर

इस प्रकार 'रामायण' से सम्बन्धित कुछ तत्वों को प्रस्तुत करने का सूक्ष्म

प्रयास किया गया है। 'रामायण' स्वयं एक विशाल सागर है, जिसकी सम्पूर्ण रत्न राशि को प्रस्तुत करना एक दुष्कर कार्य है, उसमें से इन रत्नों को ढूंढ़ने का मैंने प्रयास किया है। तथापि बहुत से तत्व मैं यहां स्थानाभाव के कारण प्रस्तुत नहीं कर पा रही हूँ। इसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थिनी हूँ।

द्वितीय परिच्छेद

साहित्यिक ग्रन्थों का आयुर्वेदिक दृष्टि से शोध-कार्य एवं शोध-दृष्टि से महत्त्व

साहित्यिक ग्रन्थों का सर्वेक्षण कर उसमें से आयुर्वेदीय सामग्री संकलित करने का कार्य भी हुआ है, जो इतिहास के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है।

आयुर्वेद को जीवन के निकटतम लाने के लिये पूज्य-गुरुजनों के द्वारा किये जा रहे अथक् प्रयासों की शृंखला में नवीनतम उपलब्धि है—काव्यों, नाटकों आदि में निहित-आयुर्वेदिक तत्वों का अवलोकन।

इस क्षेत्र में निम्नलिखित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं—

1. वेदों में आयुर्वेद	राम गोपाल शास्त्री	दिल्ली—1956
2. The Atharva Veda the Ayur Veda	Karambelkar	Nagpuru1961
3. व्याकरण वाङ्मय में आयुर्वेदीय सामग्री	प्रियव्रत शर्मा	आयुर्वेद विकास, मार्च—सितम्बर—1961
4. Indian Medicine in the Classical Age	P.V. Sharma	Chowkhamba- 1972
5. संस्कृत काव्य में वनस्पतियाँ	अभिमन्यु	अ. कुरुक्षेत्र वि.वि.-1968
6. संस्कृत साहित्य में पेड़-पौधे और पशु-पक्षी	सुशीला शुक्ला	गोरखपुर—1965
7. संस्कृत महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण	डॉ. मंजुला सिंहल,	आगरा विश्वविद्यालय 1970
8. चरक-संहिता की दार्शनिक पृष्ठभूमि	डॉ. सन्तनारायण श्रीवास्तव त्वय	पीयूष प्रकाशन, इलाहाबाद—1983
9. महायान ग्रन्थों में निहित आयु सामग्री	डॉ. रवीन्द्र नाथ त्रिपाठी	ज्योतिरालोक प्रकाशन वाराणसी 1988
10. संस्कृत काव्य में विशिष्ट वनस्पतियाँ	डॉ. राम सुशील सिंह	वाराणसी 1984
11. गरुड़ पुराण की दार्शनिक एवं आयु० सामग्री का अध्ययन	डॉ. जयन्ती भट्टाचार्य	वाराणसी 1986
12. अग्नि पुराण का	यूथिका राय	

सांस्कृतिक अनुशीलन

13. अग्नि पुराण की दार्शनिक एवं आयु० सामग्री का अध्ययन	डा० सरिता हांडा	वाराणसी 1982
14. बाण भट्ट की कृतियों में वनस्पति	डा0 हितेश सिंह	

इसी प्रकार ज्योतिर्मित्र ने महाभारत, रामायण तथा बौद्ध वाङ्मय से आयुर्वेदीय सामग्री का संकलन किया है। सतीश चन्द्र साँख्यधर ने (जम्मू) 'हिन्दी साहित्य में आयुर्वेद' शीर्षक पर पी- एच० डी० किया है। कुछ शोध-कर्त्ता 'जैन साहित्य में आयुर्वेद' पर कार्य कर रहे हैं। 'पुराणों में आयुर्वेद' पर पहले कुछ कार्य हुआ है और सम्प्रति कुछ शोध-छात्र कार्य कर रहे हैं।

इसी प्रकार के कुछ संकलन ग्रन्थ 'सुभाषित' नाम से प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्राण जीवन मेहता कृत 'वैद्यकीय सुभाषितावली' (चौखम्भा 1955) और घाणेकर कृत 'वैद्यकीय सुभाषित साहित्यम्' (चौखम्भा 1968) के प्रमुख हैं।

वाल्मीकि रामायण के विविध स्वरूपों का विविध दृष्टि कोणों से अनेकानेक विद्वानों के द्वारा अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है, किन्तु उसमें निहित आयुर्वेदिक सामग्री की ओर आज तक किसी भी विद्वान का ध्यान आकर्षित ही नहीं हुआ है। यदि उसमें निहित महत्वपूर्ण तत्वों के ज्ञान से यह जगत अछूता रह जाता है तो आयुर्वेद का इतिहास क्रमबद्ध हो ही नहीं सकता। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर इस विषय पर कार्य करने का प्रयास किया जा रहा है।

विविध साहित्यिक ग्रन्थों का आयुर्वेदिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर सर्वाधिक प्रत्यक्ष लाभ यह होगा कि इन शोध कार्यों के अध्ययन से आयुर्वेद का प्रचार एवं प्रसार जन-जन तक हो सकेगा।

यही इसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष महत्व है।

तृतीय परिच्छेद

आयुर्वेद का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय

आयुर्वेदिक अष्टाङ्ग

'चरक' ने आयुर्वेद को शाश्वत कहा है क्योंकि जब से आयु (जीवन) का प्रारम्भ हुआ और जब से जीव को ज्ञान हुआ तभी से आयुर्वेद की सत्ता प्रारम्भ होती है। सुश्रुत ने यहाँ तक कहा कि ब्रह्मा ने सृष्टि के पूर्व ही आयुर्वेद की रचना की जिससे प्रजा उत्पन्न होने पर इसका उपयोग कर सके। इससे भी आयुर्वेद का शाश्वतत्व सिद्ध होता है। सभी संहिताकारों ने ब्रह्मा से आयुर्वेद का प्रादुर्भाव बताया है तथा यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा ने आयुर्वेद की लक्ष श्लोकमयी

संहिता का निर्माण किया। यह सब भी सृष्टि काल से ही आयुर्वेद के अस्तित्व की सूचना देते हैं। कोई वस्तु जब अनादि काल से परम्परा के द्वारा प्रवाहित होती रहती है तब उसे शाश्वत कहते हैं। इसका आदि अंत कहीं हो भी तो उसका पता नहीं चलता, नित्य में आदि-अंत होता ही नहीं। शाश्वत और नित्य में यही अंतर है। आयुर्वेद को शाश्वत कहा है; नित्य नहीं।

चरक के कथनानुसार ब्रह्मा से आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति ने प्राप्त किया, प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने और उनसे इन्द्र ने उस ज्ञान को ग्रहण किया। ब्रह्मा से आयुर्वेद के प्रादुर्भाव का आख्यान यह संकेत करता है कि आयुर्वेद सृष्टि के आदिकाल से ही विद्यमान है। दक्ष-प्रजापति, अश्विनी कुमार तथा इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति थे या केवल मिथकीय, इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं किन्तु जो भी हो इतना अवश्य प्रतीत होता है कि सम्भवतः इन्द्र की परम्परा तक वह देव-लोक तक ही सीमित था। उसका रूप प्रागैतिहासिक था। प्रायः भारतीय परम्परा में विद्वानों का स्रोत ब्रह्मा से प्रारम्भ होकर इन्द्र तक क्रमशः माना जाता है। इन्द्र के द्वारा जब इस ज्ञान का प्रसार भूमण्डल में हुआ तब से इतिहास की शृंखला का प्रारम्भ माना जा सकता है।

आयुर्वेद का स्वरूप

आयुर्वेद संज्ञक वेद वेदविद् विद्वानों द्वारा सम्मानित पुण्यतम वेद है। अन्य वेद केवल परलोक हितकर हैं, जबकि आयुर्वेद दोनों लोकों के लिये हितकर है, इसलिये आयुर्वेद पुण्यतम वेद कहा गया है।[26]

सुश्रुत, चरक, काश्यप और वाग्भट तथा अन्य आचार्यों ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना है।[27] काश्यप ने युक्तियुक्त ढंग से आयुर्वेद को पञ्चम वेद माना है।[28] ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी आयुर्वेद को पञ्चम वेद कहा है।[29]

आयुर्वेदीय संहिताओं में आयुर्वेद शब्द के प्रयोग के बदले केवल 'वेद' शब्द का प्रयोग आयुर्वेद अर्थ में किया गया है।[30]

इस प्रकार विभिन्न मतों के पर्यालोचन से निम्नांकित निष्कर्ष निकलता है

1. आयुर्वेद पञ्चम वेद है।
2. आयुर्वेद पुण्यतम वेद है और अन्य वेद पुण्य हैं।
3. आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है।
4. आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है।
5. आयुर्वेद स्वतंत्र वेदाङ्ग है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आयुर्वेद का अथर्ववेद के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह ऐहलौकिक एवं पारलौकिक उभय-विध कल्याण कारक होने से और आरोग्य प्रदान करने के कारण पवित्रतम होने से 'पुण्यतम' वेद कहलाने लगा।

अष्टांग

'सुश्रुत संहिता' में यह उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मा ने मनुष्य की सृष्टि के पहले ही आयुर्वेद का एक ग्रन्थ बनाया, जिसमें एक लाख श्लोक और एक हजार अध्याय थे।[31]

ब्रह्मा ने मनुष्यों की आयु तथा बुद्धि की अल्पता का विचार कर आयुर्वेद को आठ अंगों में विभक्त कर दिया। जैसे 1. शल्य, 2. शालाक्य, 3. काय-चिकित्सा, 4. भूत-विद्या, 5. कौमार भृत्य, 6. अगदतन्त्र, 7. रसायन-तन्त्र और 8. वाजीकरण।[32]

काय-चिकित्सा

आयुर्वेद के सभी अंगों में 'काय-चिकित्सा' का प्रमुख स्थान है। अति प्राचीन काल से वर्तमान काल तक आयुर्वेद के सम्मान और प्रतिष्ठा का कारण आयुर्वेदीय 'काय-चिकित्सा' है।

शरीर के सर्वाङ्ग में होने वाले ज्वर, रक्त-पित्त, शोष, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ एवं अतिसार आदि रोगों की चिकित्सा का विधान जिसमें किया जाता है, आयुर्वेद के उस अंग को 'काय-चिकित्सा' कहते हैं।[33]

काय-चिकित्सा की शाब्दिक व्युत्पत्ति

'कायः सकलं शरीरं तस्य चिकित्सा काय चिकित्सा।' 'काय' का अर्थ है—सम्पूर्ण शरीर, अतः सम्पूर्णशरीरगत रोगों की चिकित्सा को 'काय-चिकित्सा' कहते हैं।

'काय-चिकित्सा' शब्द दो शब्दों के योग से बना हुआ है—काय+चिकित्सा। इसलिये इन दोनों शब्दों का अलग-अलग अर्थ जानने पर ही सम्पूर्ण 'काय-चिकित्सा' शब्द के यथार्थ-अर्थ का बोध हो सकता है। अतः काय चिकित्सा शब्द का निर्वचन किया जा रहा है।

काय

जो शब्द करे, उसे काय कहते हैं—'कायति शब्दायते इति कायः'। कान को अंगुली से बन्द करने पर एक ध्वनि सुनाई देती है। यह ध्वनि जीवित शरीर का चिन्ह है और इस जीवित शरीर की चिकित्सा करना ही आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन है। इसका तात्पर्य यह है कि हृदय की गति का नियमन करना ही काय-चिकित्सा है, क्योंकि 'कायति शब्द करोति' इस व्युत्पति से काय का अर्थ हृदय है और उसकी चिकित्सा करना ही सर्वाधिक मूल्यवान पक्ष है, अतः किसी भी रोग के होने पर हृदय की गति का यथावत् संचालन वाञ्छनीय कर्तव्य होता है। 'काय' का दूसरा अर्थ है—शरीर या देह। जिसका अन्नादि आहार से पोषण होता है, उसे काय कहते हैं—'चीयतेऽन्नादिभिः' इति कायः। इस प्रकार के शरीर की चिकित्सा काय-चिकित्सा है।

'काय' का तीसरा अर्थ है—जाठराग्नि। इस अग्नि के विकृत हो जाने पर उसको प्राकृतिक स्थिति में लाने के लिये जो उपचार किया जाता है, उस उपचार

को 'काय चिकित्सा' कहते हैं, और उपचार करने वाले वैद्य को 'काय-चिकित्सक' कहते हैं।

चिकित्सा

'कित् रोगापनयने' धातु से चिकित्सा शब्द बना है। रोग के अपनयन को चिकित्सा कहते हैं। रोग के प्रतिकार, निग्रह या नाश को चिकित्सा कहते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वाङ्ग (शरीर) में होने वाले (रोग) ज्वर, रक्त-पित्त, शोष, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ एवं अतिसार आदि रोगों की चिकित्सा का विधान जिसमें किया जाता है, आयुर्वेद के उस अंग को 'काय-चिकित्सा' कहते हैं।

काय-चिकित्सा के संहिता ग्रन्थ

कुछ संहिता ग्रन्थ निम्नलिखित हैं–

1. अग्निवेश संहिता
2. भेल संहिता।
3. जतूकर्ण संहिता।
4. पराशर संहिता।
5. क्षार-पाणि संहिता।
6. हारीत संहिता।
7. खरनाद संहिता।
8. विश्वामित्र संहिता।
9. अगस्त्य संहिता। और
10. अत्रि संहिता।

कौमार-भृत्य

इस आयुर्वेदाङ्ग में कुमार (बालक) के भरण-पोषण की व्यवस्था, धात्री परीक्षा, दुष्ट-दुग्ध-विशोधन, ग्रह-जन्य रोगों का प्रतीकार तथा बालकों के रोगों की चिकित्सा का विधान किया गया है।

काश्यप संहिता में शिष्योपक्रमणीय अध्याय में कौमार-भृत्य को आठों अंगों में प्रथम कहा गया है।–'कौमारभृत्यमष्टानां तन्त्राणामाद्यमुच्यते।

बालक ही भविष्य में किसी देश का नागरिक बनता है और उसकी बाल्यावस्था के स्वास्थ्य का जीवन-भर प्रभाव रहता है। अतः बालक की देख-रेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

आयु के अनुसार बालक तीन प्रकार के होते हैं–

1. क्षीरप (दूध पीने वाले)।
2. क्षीरान्नाद (दूध और अन्न खाने वाले)
3. अन्नाद (केवल अन्न पर निर्भर रहने वाले)।

बालक के जन्म होने के साथ ही उसका उपचार शुरू हो जाता है। उसके कुछ

संस्कार किये जाते हैं। उसके पेय-लेह्य की व्यवस्था की जाती है। उसकी रक्षा के लिये विशेष-ध्यान दिया जाता है।

बालकों की विभिन्न आयु में भिन्न-भिन्न ग्रहों के प्रकोप से होने वाले रोगों का वर्णन है और उनके उपचार का विधान किया गया है।

प्रसवागार के साथ ही कुमारागार की व्यवस्था के सम्बन्ध में 'चरक संहिता' के शरीर स्थान आठ में विस्तृत वर्णन है। बच्चे के जन्म के समय और बाद में क्या-क्या करना चाहिये, यह सब बतलाया गया है। बालक को संभावित रोगों से बचाने के लिये रक्षा-विधान का वर्णन है। 'काश्यप संहिता' में बालक की उत्पत्ति, उसके रोगों के निदान और चिकित्सा का विशद् वर्णन है।

कौमार-भृत्य के ग्रन्थ एवं सन्दर्भ

चरक संहिता	—	शारीर स्थान 8।
सुश्रुत संहिता	—	उतर, 27 से 37।
अष्टांग हृदय	—	उतर, 1 से 7।
जीवक तन्त्र	—	अनुपलब्ध।
पार्वतकतन्त्र	—	अनुपलब्ध।
हिरण्याक्षतन्त्र	—	अनुपलब्ध।
बन्धक तन्त्र	—	अनुपलब्ध।
बालचिकित्सामृत	—	(नेपाल राजकीय पुस्तकालय)।
बाल—तन्त्र	—	कल्याण वर्मा कृत
योग सुधानिधि।		
कुमार तन्त्र	—	रावणकृत।
कुमार—तन्त्र समुच्चय	—	रमानाथ द्विवेदी
कौमार-भृत्य	—	रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी।
अभिनव कौमारभृत्य	—	राधा कृष्ण नाथ।

काश्यप-संहिता

यह कौमार-भृत्य-तन्त्र का सर्व-प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें बहुत से ऐसे विषय हैं, जिनका उल्लेख अन्य संहिताओं में नहीं है।

'दन्तजन्माध्याय' में दातों के भेद, उनकी प्रशस्तता, बालक-बालिकाओं के दांतों में भेद आदि विषय विशिष्ट हैं। 'स्वेदाध्याय' में बालकों के स्वेदन के विषय में बहुत सुन्दर निरूपण किया गया है। 'लक्षणाध्याय' में सामुद्रिक लक्षणों का विशेष वर्णन किया गया है। अत्यन्त छोटे बालकों में अश्मरी के उद्धरण तथा तीक्ष्ण औषधियों के प्रयोग का विशेष रूप से निषेध किया गया है।

बालकों के वस्तिकर्म में विशेष सावधानी बरतने का निर्देश दिया गया है। 'फक्क-रोग' का विशेष वर्णन है, इस रोग में तीन पहिये की गाड़ी का उल्लेख है। 'अन्नप्राशन' विधान में छठे मास में फलों का रस और बारहवें ग्रास के बाद अन्न

देने का विधान बताया गया है। वेदाध्ययन में वाणी द्वारा वेदना बतलाने में असमर्थ बालकों की भिन्न-भिन्न चेष्टाओं द्वारा उनके अंगों की वेदना को अनुमान के द्वारा जानने का निर्देश है।

'रेवती कल्पाध्याय' में जातहारिणी ग्रह का वर्णन सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसमें आचार एवं अपने-अपने कर्तव्य पालन का तिरस्कार करने वाले को जातहारिणी ग्रह के ग्रहण की बात कही गयी है। इस माध्यम से समाज के प्रत्येक वर्ग को अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान एवं ईमानदार बनने का संकेत किया गया है।

3. भूत विद्या (गृह चिकित्सा)

आयुर्वेद का यह अङ्ग सर्वाधिक उपेक्षित अङ्ग है। इस विषय का स्वतन्त्र कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

देवता, पितृ, पिशाच तथा ग्रह आदि के आक्रमण से पीड़ित व्यक्तियों के कष्ट को दूर करने के लिये, उन देव आदि के लिये बलि, उपहार, पूजा आदि के विधान के द्वारा रोग शान्ति का उपचार जिस अङ्ग द्वारा किया जाता है, उसे 'भूत-विद्या' कहते हैं।

आयुर्वेद में भूतोन्माद, अमानुषोपसर्ग तथा बालग्रहों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है, वे सब रोग तथा मानसरोग अपस्मार आदि भूत-विद्या के अन्तर्गत आते हैं।

भूत-विद्या के विषय अथर्ववेद में भरे पड़े हैं। गुरु, सिद्ध, ऋषि, देवता, भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाच एवं स्कन्द, रेवती आदि ग्रहों के तिरस्कार करने पर उन्माद, अपस्मार आदि मानसरोग तथा अनेक प्रकार के शारीरिक रोग होते हैं। ऐसे रोगों के उपचार के लिये आक्रामक देवता, राक्षस या ग्रह आदि के अनुरूप बलि, पूजा, होम एवं जप आदि किये जाने पर रोग से मुक्ति मिलती है।

संहिता ग्रन्थों में बीजरूप में भूत-विद्या के विषय हैं, जैसे—सुश्रुत संहिता में उतर-तन्त्र अमानुषप्रतिषेधाध्याय। चरक संहिता में उन्माद चिकित्सा एवं वाग्भट में भूत-विज्ञानीय एवं भूत-प्रतिषेधाध्याय।

भूत-विद्या एक रहस्यमय विद्या है, जिसकी सत्यता के उदाहरण सारे विश्व में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। आयुर्वेद सर्ववेद परिषद्य (सभी प्रकार के ज्ञान का आगार) है और इसका प्रमुख लक्ष्य है—आर्तजन की पीड़ा का प्रतिकार करना। यों तो सभी रोगों के मूल कारण वात-पित्त-कफ होते हैं, किन्तु भूत-विद्या सम्बन्धी रोगों के उद्भव में प्रमुख कारण अदृष्ट होता है अथवा अलक्षित कारण होता है, इसलिये इन रोगों का उपचार करना भी अतिशय साहस का कार्य है।

इस प्रकार भूत-विद्या को आयुर्वेदाचार्यों ने मानस-विकार माना है और उसके उपचार में तीनों ही प्रकार की चिकित्साएँ (दैव-व्यापाश्रय, युक्ति व्यापाश्रय और सत्वावजय) आवश्यकतानुसार सफल होती है, बशर्ते कि उनका सम्यक् संयोजन

किया जाये।

भूत-विद्या सम्बन्धी ग्रन्थ-सदंर्भ

चरक संहिता	—	निदान-स्थान अ. 7 तथा 8, चि. 9, 10, सूत्र 24।
सुश्रुत—संहिता	—	उतरतन्त्र 27 से 37 तक तथा 60, 61 एवं 62 अ.।
अष्टांग हृदय	—	निदान 6 तथा उतर 1 से 7 अ.।
मानस रोग विज्ञान	—	डा० बाल कृष्ण पाठक आदि हैं।

शालाक्य तन्त्र

कर्ण, नेत्र, मुख, नासिका आदि जत्रु के ऊपर के अंगों में उत्पन्न हुए रोगों की शान्ति के लिये तथा शलाका यन्त्र के उपयोग के लिये जो आयुर्वेदाङ्ग होता है, उसे 'शालाक्य तन्त्र' कहते हैं।[34]

शालाक्य में समाविष्ट किये गये अंगों में से आधुनिक चिकित्सा में कर्ण, नासिका और कण्ठ (ई.एन.टी.) का एक विभाग माना गया है। आँख का एक स्वतन्त्र विभाग होता है। दाँत का भी स्वतन्त्र विभाग होता है।

ऋग्वेद में शालाक्य विषयक चमत्कारों के लिये अश्विनी कुमारों का उल्लेख है। उन्होंने अन्धे ऋजाश्व को दृष्टि-दान दिया। अन्धे कण्व को दृष्टि दी। बहरे नार्षद को श्रवण शक्ति दी। इन्द्र ने अन्धे परावृज को दृष्टि दान दिया।

शालाक्य तन्त्र का प्रमुख ग्रन्थ 'सुश्रुत संहिता' है, जिसके उतर तन्त्र के अध्याय 1 से 19 तक नेत्र रोग का, 20 तथा 21 में कर्ण रोग का, 22 से 24 तक नासिका रोग का और 25-26 में शिरो-रोग का वर्णन है।

सुश्रुत के समय में नेत्र शरीर का अध्ययन तथा नेत्र में विभिन्न अवयवों में होने वाले रोगों का विशेष अध्ययन प्रचलित था। व्यावहारिक प्रयोग के लिये सेंक, विडालक लेप, नेत्र-पूरण, अञ्जन, वर्ति आदि का प्रयोग किया जाता था। कान, नाक, कण्ठ, मुख आदि के रोगों के निदान और उनकी चिकित्सा का भी स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया जाता था। शस्त्र-साध्य रोगों में शस्त्र-कर्म भी किया जाता था।

शालाक्य के ग्रन्थ

1. विहेदतन्त्र। 2. निमितन्त्र। 3. काङ्कायन तन्त्र। 4. गार्ग्य तन्त्र। 5. सात्यकितन्त्र। 6. शौनकतन्त्र। 7. कराल तन्त्र। 8. चक्षुष्यतन्त्र। 9. कृष्णात्रेयतन्त्रम्-इन ग्रन्थों की प्राप्ति वर्तमान में नहीं है।

वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थ

1. शालाक्य तन्त्र	—	ले. पं. रमानाथ द्विवेदी, चौखम्भा औ., वाराणसी
2. शालाक्य विज्ञान	—	ले. डॉ. रवीन्द्र चन्द्र चौधरी।
3. नेत्र-रोग-विज्ञान	—	डॉ. हंसराज कालेड़ा, अजमेर प्रकाशन।
4. नेत्र-रोग-विज्ञान	—	डॉ. विश्व-नाथ द्विवेदी।
5. नेत्र-विज्ञान	—	डॉ. बाल-कृष्ण शिवराम मुंजे कृत आदि विविध विविध ग्रन्थ वर्तमान समय में उपलब्ध हैं।

शल्य चिकित्सा

अनेक प्रकार के घास, लकड़ी, पत्थर, धूलिकण, धातु (लोहा आदि), मिट्टी, हड्डी, केश, नख, पूय, आश्राव, मूढ़गर्भ आदि शारीरिक तथा आगन्तुक शल्यों के निकालने के लिये यंत्र, शस्त्र, क्षार-कर्म, अग्नि-कर्म के प्रयोग के लिये विविध प्रकार के व्रणों का विनिश्चय करने के लिये यह शल्य नामक आयुर्वेदाङ्ग प्रवृत्त होता है। इसे ही शल्य तन्त्र कहते हैं। शल्यतन्त्र को पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान में सर्जरी (Surgery) कहते हैं।

आयुर्वेद के आठों अंगों में यह प्रथम और प्रधान है, क्योंकि शारीरिक रोग उत्पन्न होने के पूर्व देव-दानवों के युद्ध में प्रहार जन्य व्रणों के रोपण करने और यज्ञ के कटे हुए शिर को धड़ के साथ जोड़ देने के कारण शल्य ही प्रथम अंग है।

सभी आयुर्वेदाङ्गों में समान रूप से आवश्यक होने से यंत्र, शस्त्र, क्षार और अग्नि के व्यवहार के कारण तथा शल्य-क्रिया करने से शीघ्र आराम पहुँचने के कारण शल्य सभी अंगों से अधिक वाञ्छनीय है।

सबसे प्राचीन वाङ्मय ऋग्वेद में भी शल्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अश्विनी कुमारों ने 'सन्धान कर्म' (Plastic Surgery) तथा 'अंग प्रत्यारोपण' (Transplantation) का कार्य किया था। 'दास' द्वारा 'दीर्घतमस' ऋषि के सिर और छाती को काट दिये जाने पर अश्विनी कुमारों ने उसके अंगों का सन्धान किया था।

वाल्मीकि रामायण में इन्द्र के अण्डकोष के गिर जाने पर भेड़ के अण्डकोष के प्रत्यारोपण का उल्लेख है।[35]

ग्रन्थ

संहिता ग्रन्थों में 'सुश्रुत संहिता' सर्व-प्रधान ग्रन्थ है। इस संहिता में व्रणागार व्यवस्था, व्रणों के प्रकार, उनकी चिकित्सा के साठ उपक्रम, आठ प्रकार के शस्त्र-कर्म, यंत्र-शास्त्रों के प्रकार, जोंक लगाने, क्षार-प्रयोग, अग्नि-कर्म एवं सिरावेध आदि का विशद् वर्णन किया गया है।

सुश्रुत की विधियों के आधार पर ही आधुनिक सर्जरी का विकास हुआ है। 'शल्य' में 'सुश्रुत संहिता' का प्राचीन ग्रन्थों में अद्वितीय स्थान है।

विष-चिकित्सा (अगद तन्त्र)

अगदतन्त्र सुश्रुत की दी हुई संज्ञा है। चरक ने इसे 'विषगरवैरोधिक-प्रशमन' कहा है। 'अष्टाङ्ग संग्रह' और 'अष्टाङ्ग हृदय' में इसका नाम 'दंष्ट्राचिकित्सा' है। सर्प, कीट, लूता आदि से डंसे हुए, अनेक प्रकार के स्वाभाविक कृत्रिम एवं संयोग विष से ग्रस्त मनुष्यों के निदान तथा चिकित्सा के लिये जो अंग होता है, उसे 'अगद-तन्त्र' या 'विष-चिकित्सा' कहते हैं—'अगदतंत्र नाम-सर्पकीटलूता- मूषिकादि दष्ट विषव्यञ्जनार्थ विविध विषसंयोगोपशमनार्थं च'- सुश्रुत।

प्राचीन काल से ही राजाओं और सम्पतिशाली व्यक्तियों का जीवन बहुमूल्य माना जाता है और शत्रु और दुष्ट जनों से उनके जीवन का संकट सदैव आशंकित

रहा है। जरा-चिकित्सा:- इससे सम्बन्धित सामग्री आगे उद्दृत है।

1. पोषक स्तर पर—शतावरी, खर्जूर, दुग्ध एवं घृत।

2. अग्नि —वर्धक रसायन-पिप्पली।

3. स्रोतो —शोधक रसायन-गुग्गुल, रसौत, कस्तूरी आदि।

रसायन औषधियों की कार्य-विधि

1. रसादि धातुगत परिवर्तन-धातुवृद्धि जनक।

2. व्याधि क्षमत्वगत परिवर्तन-व्याधि प्रतिषेधक या निवारक।

3. अन्तः स्राव (हार्मोन) गत परिवर्तन-शक्तिदायक।

सभी संहिताओं में रसायन का प्रकरण मिलता है। चरक, सुश्रुत आदि में दिव्य औषधियों का इस कार्य में प्रयोग है। ऋग्वेद में जो सोम का वर्णन है वही आगे चलकर पूरे रसायन का प्रतीक बना।

वाजीकरण चिकित्सा

क्षीण पौरुष, अल्पवीर्य एवं सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ पुरुषों को वीर्यवान्, पौरुष-सम्पन्न एवं सन्तान के उत्पन्न करने में समर्थ बनाने वाला यह अंग है।

'बाजः शुक्रं सोऽस्यास्तीति वाजी'।

अर्थात् वाज का अर्थ शुक्र या वीर्य है, अतः जिसके पास शुक्र है वह वाजी है तदनुसार जिसके पास शुक्र नहीं है, वह अवाजी है।

'अवाजी वाजी क्रियते अनेन इति वाजीकरणम्'।

अर्थात् जिस क्रिया से अवाजी को वाजी किया जाता है, उसे वाजीकरण कहते हैं। वाजि शब्द का एक अर्थ घोड़ा होता है, तदनुसार वाजीकरण उस युक्ति या क्रिया का नाम है, जिसके द्वारा पुरुष घोड़े के समान अप्रतिहत सामर्थ्य युक्त होकर स्त्रीगमन में समर्थ होता है।

अल्पवीर्य, दुष्ट-वीर्य, क्षीण-वीर्य एवं शुष्क वीर्य जनों में आप्यायन (वीर्य-पुष्टि), प्रसादन (वीर्य-शोधन), उपचय (वीर्य वृद्धि) और शुक्रजनन (वीर्योत्पादन) करने के लिये जो आयुर्वेदाङ्ग है उसे 'वाजीकरण' कहते हैं।[39]

सुश्रुतानुसार वाजीकरण के तीन लक्ष्य हैं—

1. स्त्री में प्रीति उत्पन्न करना।

2. सन्तानोत्पत्ति।

3. सद्यः कामतृप्ति।

कुचमार तन्त्र, अनङ्गरङ्ग, वात्सायन, कामसूत्र एवं पंचसायक इस विषय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। लोलिम्बराज ने सरस भाषा में कुछ योगों का वर्णन किया है

<u>चतुर्थ परिच्छेद</u>

आयुर्वेद का साहित्य-विभाजन

1. संहिता काल– 5 से 6 शती

प्राचीन संहिताओं के मध्य आत्रेय-सम्प्रदाय में अग्निवेश आदि ने तथा धान्वन्तर सम्प्रदाय में सुश्रुत आदि ने अपनी-अपनी संहिताओं का निर्माण किया। यहीं से वस्तुतः संहिता ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ होती है। इसके पूर्व ब्रह्म-संहिता, धान्वन्तर संहिता तथा भास्कर संहिता के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है किन्तु यह विवेचन परवर्ती सन्तति को प्राप्त हुआ, उसे ही संहिता की संज्ञा दी गयी। विषय के समस्त अंग जिसमें समाहित हो उसे संहिता कहते हैं। ऐसी एक संहिता के ही पढ़ने से समस्त विषय का बोध हो जाता है, इसके लिये फिर किसी अन्य ग्रंथ की आवश्यकता नहीं पड़ती। यद्यपि सम्प्रदाय विशेष की संहिताओं में विशिष्ट अंग का प्राधान्य होता है यथा आत्रेय-सम्प्रदाय विशेष की संहिता में काय-चिकित्सा और धान्वन्तर संप्रदाय की संहिताओं में शल्य तंत्र की प्रधानता देखी जाती है। विशिष्ट प्रतिपाद्य विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का वर्णन उतर तंत्र में किया जाता है।

प्रारम्भिक काल में आयुर्वेद की अनेक संहिताओं की रचना विभिन्न महर्षियों द्वारा हुई जिनके अस्तित्व का ज्ञान परवर्ती ग्रंथों में उपलब्ध उद्धरणों द्वारा होता है। इस समय यह संहिताएँ 'तंत्र' के नाम से प्रसिद्ध थीं। तंत्र शब्द विस्तारशीलता एवं रक्षा का द्योतक है। जिसमें विषयों का वर्णन संक्षिप्त हो किन्तु भविष्य में इनके विस्तार की सम्भावना हो तथा जिसमें समस्त विषय अपने रूप में सुरक्षित रहे वह 'तन्त्र' है। संहिता की अपेक्षा 'तंत्र' का रूप संक्षिप्त होता है। अग्निवेश की रचना मूलतः अग्निवेश तंत्र थी जो चरक द्वारा उपबृंहित एवं प्रति संस्कृत होकर चरक संहिता के रूप में प्रसिद्ध हुई।

संहिता ग्रन्थों की रचना वर्तमान काल तक चली आयी है, यद्यपि उसके समानान्तर विशिष्ट विषयों पर भी ग्रंथ निबद्ध होते आये हैं। समास एवं व्यास की शैली पर ग्रंथों का निर्माण प्राचीन काल से होता आ रहा है। वेदों में समाहित सूत्र रूप ज्ञान को व्यास ने विस्तृत रूप दिया। ज्योतिष आदि शास्त्रों में भी 'वृहत्संहिता' आदि संहिताओं की रचना हुई। इन संहिताओं का काल क्रम से विवेचन इस प्रकार है—

प्राचीन काल

प्राचीन संहिताओं में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, भेल संहिता तथा काश्यप संहिता सम्प्रति उपलब्ध हैं। प्रथम दो संहिताएँ पूर्णरूप में तथा अन्य दो संहिताएँ खण्डित रूप में मिलती हैं। हारीत संहिता का भी एक ग्रंथ प्रकाशित है जिसकी मौलिकता संदिग्ध है। इनके अतिरिक्त वाग्भट की रचनाएँ अष्टांग-संग्रह तथा अष्टांग-हृदय भी संहिताओं में मानी जाती हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

चरक–संहिता

'चरक संहिता' आत्रेय संप्रदाय का प्रमुख आकर ग्रंथ माना जाता है जिसमें काय-चिकित्सा का मुख्य रूप से प्रतिपादन हुआ है। जिस समय आधुनिक चिकित्सा विज्ञान शैशवावस्था में था उस समय 'चरक संहिता' में प्रतिपादित आयुर्वेदीय सिद्धान्तों की गरिमा एवं गंभीरता से सारा विषय विस्मित एवं प्रभावित था। आधुनिक काल में चिकित्सा विज्ञान के विख्यात आचार्य प्रोफेसर ऑसलर इस ग्रंथ से इतना प्रभावित थे कि चरक के नाम पर उन्होंने न्यूयार्क (अमेरिका) में 'चरक क्लब' की स्थापना 1898 ईस्वी में की।[40] जहाँ चरक का एक चित्र रखा गया।

आयुर्वेद की वृहत्त्रयी में 'चग्क संहिता' मूर्धन्य मानी जाती है। मध्य-काल में श्री हर्ष ने 'नैषधीय चरित' में चरक का निर्देश किया है। वाग्भट ने भी चरक को प्रथम स्थान दिया है तथा भेल आदि संहिताओं की तुलना में अधिक उपादेय ठहराया है। 8वीं 9वीं शती में पहले फारसी फिर अरबी में इसका अनुवाद हुआ जिसका उपयोग भारतीयेतर विद्वानों ने किया।

'चरक संहिता' में काल के विषय में यह कहा जा सकता है कि–

1. 'चरक संहिता' के निर्माण के तीन स्तर हैं–अग्निवेश, चरक और दृढ़बल।
2. मूल तंत्रकार अग्निवेश का काल 1000 ईस्वी पूर्व है।
3. प्रति संस्कर्त्ता चरक शुङ्ग काल या मौर्य–शुङ्गकाल की सन्धिरेखा पर रखे जा सकते हैं। इनका काल दूसरी या तीसरी शती ईस्सी पूर्व है।
4. दृढ़बल गुप्तकालीन है। इसका काल चौथी शती है। इसके द्वारा 'चरक संहिता' का अंतिम प्रतिसंस्कार हुआ।

चरक संहिता का विषय आठ स्थानों तथा कुल 120 अध्यायों में व्यवस्थित है–

1. सूत्र स्थान	–	30 अध्याय।
2. निदान स्थान	–	8 अध्याय।
3. विमान स्थान	–	8 अध्याय।
4. शारीर स्थान	–	8 अध्याय।
5. इन्द्रिय स्थान	–	12 अध्याय।
6. चिकित्सा स्थान	–	30 अध्याय।
7. कल्प स्थान	–	12 अध्याय।
8. सिद्धि स्थान	–	12 अध्याय।
		120 अध्याय

सुश्रुत संहिता

'सुश्रुत संहिता' के उपदेष्टा धन्वन्तरि हैं जिन्होंने 'सुश्रुत' प्रभृति शिष्यों को शल्य ज्ञान मूलक उपदेश दिया। 'सुश्रुत संहिता' में 'धन्वन्तरि' के साथ

'काशिराज-दिवोदास' शब्द प्रयुक्त होने से यह संदेह किया जाता है कि धन्वन्तरि उपदेष्टा हैं या दिवोदास। कुछ विद्वान धन्वन्तरि को उपदेष्टा मानते हैं और कुछ काशिराज दिवोदास को।

दिवोदास धन्वन्तरि के उपदेशों को सुश्रुत ने अपनी संहिता में निबद्ध किया जो शल्य तंत्र का उपजीव्य ग्रंथ बनी। सुश्रुत दो कहे जाते हैं एक वृद्ध-सुश्रुत और दूसरा सुश्रुत। कहीं-कहीं सुश्रुत और वृद्ध सुश्रुत दोनों के उद्धरण एकत्र दृष्टि-गोचर होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दिवोदास का शिष्य आद्य या वृद्ध-सुश्रुत था जिसने मूल सौश्रुत-तंत्र की रचना की। यह संभवतः अग्निवेश तंत्र से पूर्व की रचना थी। उसके बाद सुश्रुत द्वितीय या सुश्रुत ने उसे प्रति संस्कृत कर नवीन रूप दिया।

सुश्रुत संहिता का विषय-विभाग

1. सूत्र स्थान	—	46 अध्याय।
2. निदान-स्थान	—	16 अध्याय।
3. शारीर स्थान	—	10 अध्याय।
4. चिकित्सा स्थान	—	40 अध्याय।
5. कल्प स्थान	—	8 अध्याय।
		120 अध्याय

समय

'सुश्रुत-संहिता' में निर्माण के चार स्तर हैं—वृद्ध सुश्रुत, सुश्रुत, नागार्जुन एवं चन्द्रट—जिनके काल भिन्न-भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में यह सरलता से समझा जा सकता है कि 'सुश्रुत संहिता' का समष्टि रूप से एक काल निश्चित करना संभव नहीं है। इस सम्बन्ध में विभिन्न रचना-स्तरों का काल पृथक-पृथक बतलाया जा सकता है। इसके विषय में कोई एक मत भी स्पष्ट रूप से नहीं दिया जा सकता है।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि—

1. काशीराज दिवोदास धन्वन्तरि तथा आद्य या वृद्ध-सुश्रुत उपनिषद्कालीन हैं। इनका काल 1000-1500 ईस्वी पूर्व है।

2. सुश्रुत का काल 2 शती है। इसने मूल संहिता का प्रति संस्कार किया और उसने उत्तरतन्त्र जोड़ा। यह स्मरणीय है कि गुप्तकाल में 4-6 ई. के बीच 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' दोनों का प्रति संस्कार हुआ तथा वाग्भट की रचनाएँ भी इसी काल की हैं।

3. सुश्रुत संहिता की पुनः पाठ शुद्धि चन्द्रट (10वीं शती) द्वारा हुई, जो एक प्रकार का प्रतिसंस्कार है। इस प्रकार वर्तमान सुश्रुत संहिता का काल 10वीं शती है—इसमें निम्नाँकित चार स्तर हैं—

1. वृद्ध-सुश्रुत	—	1000—1500 ईस्वी पूर्व
2. सुश्रुत	—	2 शती।

3. नागार्जुन — 5वीं शती।
4. चन्द्रट — 10वीं शती।

भेल संहिता

भेल (या भेड़) अग्निवेश के सहाध्यायी एवं पुनर्वसु आत्रेय के प्रमुख छः शिष्यों में थे। प्रथम ऋषि परिषद् में जिन लोगों ने अपनी रचनाएँ उपस्थित कीं, उनमें भेल का नाम सर्व-प्रथम आता है।[41] 'भेल संहिता' के उद्धरण भी अन्य तंत्रों और प्रायः सभी टीकाओं में उपलब्ध होते हैं। 'काश्यप संहिता' में भेल का मत उद्धृत हुआ है।[42] वाग्भट ने भी भेल आदि आर्ष-संहिताओं का संकेत किया है।[43] किन्तु तब तक संभवतः इनका प्रचार कम हो गया था, 'चरक' और 'सुश्रुत' इन्हीं दोनों की संहिताएँ प्रमुख हो गयी थीं। इसका कारण यह है कि चरक और सुश्रुत अपने-अपने संप्रदायों के प्रमुख एवं आद्य ग्रन्थ थे। अन्य ग्रन्थों में प्रायः विषय का पिष्ट-पेषण होने के कारण मौलिकता का अभाव रहा जिसके कारण वे उपेक्षित होते गये।

समय

'भेल संहिता' के समय के विषय में निम्न तर्क प्रस्तुत हैं–

1. 'बुद्ध' का लक्षण निर्दिष्ट होने के कारण यह ग्रंथ बुद्ध के पूर्व का नहीं हो सकता।
2. गुप्त-कालीन तथा तंत्र सम्बन्धी तथ्य अधिक प्रबल है अतः उत्तर-गुप्त-काल के पूर्व इसका समय नहीं रख सकते हैं।

इस प्रकार वर्तमान ग्रन्थ लगभग 7वीं शती का लिखा प्रतीत होता है। यदि यह मूलतः भेल का रचित हो तब भी इसका प्रति इसका संस्कार उपर्युक्त काल में अवश्य हुआ। भेल अग्निवेश के सहाध्यायी थे अतः उनका काल अग्निवेश का काल अर्थात् 1000 ईस्वी पूर्व होगा।

हारीत संहिता

हारीत पुनर्वसु आत्रेय के शिष्यों में से थे। इनके नाम से 'हारीत संहिता' प्रसिद्ध है। इसमें चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट का उल्लेख किया गया है, अतः यह ग्रन्थ छठी शती के बाद का होना चाहिये।

जतूकर्ण संहिता

जतूकर्ण अग्निवेश के सहाध्यायी तथा पुनर्वसु आत्रेय के शिष्य थे, इन्होंने 'जतूकर्ण संहिता' लिखी। जतूकर्ण अग्निवेश के सहाध्यायी थे, अतः इनका काल अग्निवेश का ही काल 1000 ईस्वी पूर्व है।

क्षारपाणि संहिता

क्षारपाणि पुनर्वसु आत्रेय के छः प्रमुख शिष्यों में थे। इनका ग्रन्थ 'क्षारपाणि संहिता' था। इसके उद्धरण जेज्जट, चक्रपाणि, डल्हण आदि की व्याख्याओं में मिलते हैं।

पराशर संहिता

इस नाम के अनेक आचार्य विभिन्न शास्त्रों के रचयिता हुए हैं किन्तु पुनर्वसु आत्रेय के छः प्रमुख शिष्यों में परिगणित पराशर आयुर्वेद के आचार्य थे जिनकी रचना 'पराशर संहिता' थी।

काश्यप संहिता

'वृद्ध-जीवक-तन्त्र' सम्प्रति 'काश्यप-संहिता' के नाम से प्रसिद्ध है इसमें महर्षि काश्यप उपदेष्टा हैं तथा बृद्ध जीवन ने उनके उपदेशों को ग्रन्थ रूप में निबद्ध किया। समय छठी शती ईस्वी पूर्व है।

जीवक

जीवक का लिखी कोई संहिता प्राप्त नहीं होती किन्तु इनके गुणों से यह पता चलता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय का एक योग्यतम स्नातक होकर उन्होंने देश-विदेश में ख्याति अर्जित की।

खरनाद संहिता

'खरनाद-संहिता' भट्टारहरिश्चन्द्र कृत सुनी जाती है। गोडे ने इस संहिता का काल 650 ईस्वी तथा व्याख्या का काल 850 ईस्वी निश्चित किया है। किन्तु दृढ़बल ने उसके पूर्व का माना है।

विश्वामित्र सांहिता

शिवदास ने चक्रदत्त की टीका (अर्शोधिकार) में विश्वामित्र संहिता की द्रव्य गुण सम्बन्धी उपयोगी सामग्री का उल्लेख किया है।

दारूक संहिता

जेज्जट, चक्रपाणि आदि ने इसे उद्धृत किया है।

भारद्वाज संहिता

इसके अस्तित्व का भी पता चलता है।

अश्विनी कुमार संहिता

इसके उद्धरण भी प्राप्त होते हैं।

पूर्वोक्त संहिताओं में 'सुश्रुत' को छोड़कर अन्य सभी संहिताएँ काय-चिकित्सा प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त, अंग क्रम से निम्नांकित संहिताओं का अस्तित्व यत्र-तत्र उपलब्ध उनके उद्धरणों से प्रमाणित होता है :–

1. शल्य

1. औषधेनवतन्त्र
2. औरभ्रतन्त्र
3. पोष्कलावत तन्त्र
4. वैतरजतन्त्र
7. भोजतन्त्र
8. करवीर्य तन्त्र
9. गोपुररक्षित तन्त्र
10. भालुकि तन्त्र

5. वृद्धभोजतन्त्र	11. कपिल तन्त्र
6. कृतवीर्य तन्त्र	12. गौतम तन्त्र

2. शालाक्य

1. विदेह तन्त्र	7. भद्रशौनक तन्त्र
2. निमि तन्त्र	8. शौनक तन्त्र
3. कांकायन तन्त्र	9. कराल तन्त्र
4. गार्ग्यतन्त्र	10. चक्षुष्यतन्त्र
5. गालव तन्त्र	11. कृष्णात्रेय तन्त्र
6. सात्यकि तन्त्र	12. कात्यायन तन्त्र

3. कौमार भृत्य

1. वृद्धकश्यप संहिता	4. बन्धक तन्त्र
2. कश्यप संहिता (वृद्धजीवक तन्त्र)	5. हिरण्याक्ष तन्त्र
3. पर्वतक तन्त्र	6. कुमार तन्त्र

4. अगद तन्त्र

1. वृद्धकाश्यप संहिता	5. आलम्ब्यायन संहिता
2. काश्यप संहिता	6. उशनः संहिता
3. सनक संहिता	7. बृहस्पति संहिता
4. लाट्यायन संहिता	8. गरुड़ संहिता

वाजीकरण

कुचुमार तन्त्र

वाग्भट

इनके अतिरिक्त वाग्भट का 'अष्टाङ्ग संग्रह' एवं 'अष्टाङ्ग हृदय भी प्राप्त होता है।

व्याख्या काल :– 7 से 15 शताब्दी

वाग्भट प्राचीन काल का अंतिम संहिताकार था किन्तु उसने जो मार्ग बनाया उसका अनुसरण निरन्तर होता रहा। ऐसी एक संक्षिप्त संहिता की आवश्यकता सदा बनी रही जो समस्त आयुर्वेद का सार समाहित किये हो तथा वैद्यों के लिये व्यावहारिक पथ-प्रदर्शक हो। यह अवश्य है कि युग की आवश्यकता के अनुसार उसके स्वरूप में विभिन्नता आना स्वाभाविक था ऐसे कुछ ग्रन्थों के नाम में 'संहिता' शब्द जुड़ा है और कुछ में नहीं है तथापि दोनों की प्रवृतियाँ समान हैं। इनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

1. 'कल्याण कारक' — इसके लेखक 'उग्रादिव्याचार्य' हैं।

2. योग शतक	–	इसके लेखक नागार्जुन माने जाते हैं।
3. सिद्धसार संहिता	–	यह बौद्ध आचार्य दुर्गगुप्तात्मज रविगुप्त की रचना है।
4. वररुचि संहिता	–	इसके लेखक वररुचि हैं।
5. नागभर्तृतन्त्र	–	निश्चलकर ने नागदेव तथा विजयरक्षित ने नागभर्तृतन्त्र को उद्धृत किया है।
6. कलक (कोलह) संहिता	–	इसके रचयिता कलहदास हैं।
7. आयुर्वेद प्रकाश	–	यह पण्डित केशवकृत ग्रन्थ है।
8. शार्ङ्गधर संहिता	–	इसके रचयिता दामोदरसूनु शार्ङ्गधर कहे जाते हैं।
9. परहित संहिता	–	इसके रचयिता श्री नाथ पण्डित थे।
10. भाव प्रकाश	–	यह भाव–मिश्र की प्रसिद्ध रचना है।
11. योगतरंगिणी	–	यह त्रिमल्लभट्ट की प्रसिद्ध रचना है।
12. टोडरानन्द	–	यह टोडरमल की कृति कहा जाता है।
13. आयुर्वेद विज्ञान	–	इसका प्रणयन 19वीं शती के अन्त में कविराज विनोदलाल सेन गुप्त ने किया।

व्याख्या–वाङ्मय

प्राचीन काल में जो आर्षतन्त्र लिखे गये वे संक्षिप्त सूत्र-शैली में थे जिनका कुछ विशदीकरण प्रति संस्कार के प्रसंग में हुआ जब उन्हें संहिता का रूप उपलब्ध हुआ, फिर भी सिद्धान्तों एवं व्यवहारों के और विशदीकरण की अपेक्षा थी अतः विद्वानों ने उन पर व्याख्या लिखना प्रारम्भ किया। इस प्रकार कालक्रम से संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों के समानान्तर व्याख्या का एक विशाल वाङ्मय प्रस्तुत हो गया।

व्याख्या काल को भी कई भागों में विभक्त किया जा सकता है यथा–

प्राचीन काल

प्राचीनकाल मूलतः सर्जनात्मक प्रवृति का था अतः उसमें मूल-तन्त्र और संहिताएँ लिखी गयीं। उनके प्रतिसंस्कार भी हुए फिर भी व्याख्या का प्रारम्भ प्राचीन काल में ही हो गया था यद्यपि इन व्याख्याओं की संख्या अधिक नहीं है। जेज्जट (9वीं शती) द्वारा उद्धृत टीकाकारों को प्राचीन काल में रखना उचित है। इनका काल 7-8 ईस्वी शती रखना चाहिये। इस काल के प्रमुख व्याख्याकार निम्नांकित हैं–

1. भट्टारहरिश्चन्द्र

यह 'चरक संहिता' की 'चरक न्यास' व्याख्या के रचयिता हैं। शताब्दियों तक भट्टार की व्याख्या की विद्वत्समाज पर धाक जमी रही। उसके बाद ही जेज्जट का स्थान था। चरकीय मान्यताओं के अवबोध के लिये भट्टार की व्याख्या का

अवलम्ब अनिवार्य माना जाता था।[44]

2. स्वामिकुमार या स्वामिदास

इन्होंने 'चरक संहिता' की 'चरक पञ्जिका' नामक व्याख्या की रचना की।[45] यह व्याख्या भट्टारहरिश्चन्द्र कृत 'चरकन्यास' की अनुगामिनी है।[46] स्वामि कुमार का काल 7वीं शती है।

3. आषाढ वर्मा

इन्हें जेज्जट, चक्रपाणि और निश्चलकर ने उद्धृत किया है। इन्होंने चरक संहिता पर 'परिहार-वार्तिक' नामक टीका लिखी।

4. हिमदत्त

इन्होंने 'चरक-संहिता' एवं 'अष्टाङ्ग हृदय' पर टीका लिखी, किन्तु इनकी टीकाएँ शीघ्र ही लुप्त हो गयीं।

5. क्षीरस्वामिदत्त

इन्होंने 'चरक वार्तिक' की रचना की है।

इस युग में और भी अनेक व्याख्याकार हुए हैं जिनका नामोल्लेख एवं कृति निम्नवत् हैं—

6. पतंजलि	—	'चरक वार्तिक', 'सिद्धान्त-सारावली'
7. शिव—सैन्धव	—	यह 'चरक' के टीकाकार थे।
8. वैष्णव	—	यह 'चरक' के टीकाकार थे।
9. चेल्लदेव	—	यह 'चरक' के टीकाकार थे।
10. सुवीर	—	इन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' पर टीका लिखी,
11. नन्दी	—	इन्होंने 'चरक' तथा 'सुश्रुत' पर टीका लिखी, इनकी 'योगसार संग्रह' भी रचना है।
12. वराह	—	इन्होंने भी 'सुश्रुत-संहिता' पर टीका लिखी।

मध्यकाल

अधिकांश टीकाकार इसी काल में हुए अतः अनेक विद्वान मध्यकाल को संग्रह-काल या टीकाकाल कहना पसन्द करते हैं। जेज्जट (9वीं शती) से इस काल का प्रारम्भ माना जा सकता है।

इस काल के व्याख्याकारों एवं उनकी व्याख्याओं का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

9वीं शती

1. जेज्जट	—	इन्होंने 'वृहत्त्रयी' की सभी संहिताओं, 'चरक संहिता', 'सुश्रुत संहिता', 'अष्टांग हृदय' आदि पर टीकाएँ लिखीं।
2. सुकीर	—	इन्होंने 'सुश्रुत' पर टीका लिखी।
3. सुधीर	—	इन्होंने 'चरक' तथा 'सुश्रुत' पर टीका लिखी।

4. माधव — इन्होंने 'प्रश्नसहस्रविधान' या 'सुश्रुतश्लोक वार्तिक' तथा 'सुश्रुत' एवं चरक पर टिप्पण किया।

5. अमितप्रभ — इन्होंने 'चरक संहिता' पर 'चरक-न्यास' लिखा।

6. भद्रवर्मा — इन्होंने भी 'चरक' पर टीका लिखी।

10वीं शती

1. चन्द्रनन्दन — 'अष्टांग हृदय' पर 'पदार्थ चन्द्रिका' नामक टीका एवं 'गण-निघण्टु' की रचना की।

2. चन्द्रट — इन्होंने 'चिकित्सा-कलिका' पर विवृति, 'योग-समुच्चय' नामक चिकित्सा ग्रन्थ, 'सुश्रुत' की पाठ शुद्धि तथा 'योग-मुष्टि' एवं 'वैद्यकोश' आदि की रचना की।

3. भासदत्त — इन्होंने 'चरक' पर टीका लिखी।

4. ब्रह्मदेव — इन्होंने 'चरक' एवं 'सुश्रुत' पर टीका लिखी। 'सुश्रुत' की टीका 'गूढ़पदभंग टिप्पण' नामक थी।

5. भीमदन्त — यह 'चरक' के व्याख्याकार थे।

6. अङ्गिरि — यह 'चरक' के व्याख्याकार थे।

7. ईश्वरसेन — इन्होंने 'चरक' तथा 'अष्टांग हृदय' पर टीका लिखी।

11वीं शती

1. गयदास — इन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' पर 'न्याय चंद्रिका' तथा 'चरक संहिता' पर 'चरक चन्द्रिका' नामक टीका लिखी।

2. वाप्य (ष्प) चन्द्र— इन्होंने 'वृहत्त्रयी' पर टीका, 'वाष्पचन्द्रतक' की रचना तथा एक निघण्टु की भी रचना की है।

3. नरदत्त — इन्होंने 'बृहतन्त्रप्रदीप' नामक 'चरक' की टीका लिखी।

4. चक्रपाणि दत्त — इन्होंने 'चरक' पर 'आयुर्वेद दीपिका' नामक तथा 'सुश्रुत' पर 'भानुमती' टीका लिखी। 'चक्रदत्त' एवं 'द्रव्य गुण संग्रह', 'शब्दचन्द्रिका', 'व्याकरण तत्व चंद्रिका', 'व्यग्रदरिद्रशुभंकर' तथा 'सर्वसारसंग्रह' की भी रचना की।

5. वंगदत्त — इन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' पर टीका लिखी।

6. कार्तिककुण्ड — इन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' पर टीका लिखी।

7. श्रीकृष्ण वैद्य — इन्होंने 'चरक भाष्य' की रचना की।

8. अमितप्रभ टीकाकार — इन्होंने 'अमितप्रभ' नामक ग्रन्थ की रचना की।

9. उपस्कार — इन्होंने 'सुश्रुत' की व्याख्या की।

12वीं शती

1. भास्कर	—	इन्होंने 'सुश्रुत-पञ्जिका' की रचना की।
2. डल्हण	—	'सुश्रुत-संहिता' पर डल्हण की 'निबन्ध संग्रह' व्याख्या है।
3. गदाधर	—	इन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' पर टीका लिखी।
4. ईशानदेव	—	इनकी 'चरक संहिता' प्रसिद्ध है।
5. गुणाकर	—	वैद्यगुणाकर ने चरक पर कोई वृत्ति लिखी है।
6. ध्रुवपाद	—	यह योगशतक की चन्द्रकला व्याख्या का कर्त्ता है।
7. जिनदास	—	इन्होंने 'चरक-व्याख्या' लिखी। इसके अतिरिक्त 'जाम्बस्वामिचरित', 'कल्पभाष्यचूर्णि', 'कर्मदण्डी' आदि इनकी रचनाएँ हैं।
8. गोवर्धन (दत्त)	—	इन्होंने 'बृहत्तन्त्र-प्रदीप' की टीका लिखी। इसके अतिरिक्त 'रत्न माला', 'न्यास-सारावली' 'परिभाषावली', 'चिकित्सालेश' आदि की रचना की।
9. मैत्रेय	—	इन्होंने 'चरक' पर टीका लिखी।
10. रामदेव	—	इन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' पर टीका लिखी।
11. नागदेव	—	इन्होंने 'चरक' पर टीका लिखी।
12. भव्यदत्त	—	इन्होंने 'चरक' पर टीका लिखी।
13. बकुलकर	—	इन्होंने 'चरक' तथा 'सुश्रुत' की व्याख्या तथा 'सरोच्चय' नामक ग्रन्थ की रचना की।
14. सनातन	—	'योग-शतक' पर इनकी वल्लभ टीका है।
15. विजयरक्षित	—	इन्होंने माधवकृत रुग्विनिश्चय की टीका लिखी।
16. श्री कंठ दत	—	वृन्दमाधव पर इनकी व्याख्या 'कुसुमावली' प्रसिद्ध है।
17. वृन्दकुण्ड	—	इन्होंने 'चरक' पर 'वृन्दटीका' तथा 'वृन्दमाधव' पर 'वृन्द टिप्पण' लिखा।

13वीं शताब्दी

1. अरुणदत्त	—	इन्होंने 'अष्टांग हृदय' पर 'सर्वाङ्ग सुन्दरी टीका' तथा 'सुश्रुत' पर भी टीका की रचना की।
2. इन्दु	—	इन्होंने 'अष्टांग संग्रह' पर 'शशि लेखा व्याख्या' लिखी तथा 'अष्टांग-संग्रह' की भी टीका लिखी।
3. निश्चलकर	—	चक्रदत्त पर इन्होंने विस्तृत व्याख्या 'रत्न-प्रभा' नामक लिखी है।
4. हेमाद्रि	—	'अष्टांग हृदय' की आयुर्वेद रसायन, मुक्ताफल तथा हरिलीला पर आयुर्वेद टीका तथा 'चतुर्वर्गचिन्तामणि'

की रचना की।

5. वोपदेव — इन्होंने 'शार्ङ्गधर संहिता' पर तथा अपने पिता केशव के 'सिद्धि-मंत्र' पर 'प्रकाश-व्याख्या' तथा स्वरचित 'शतश्लोकी' पर 'चन्द्रकला व्याख्या' लिखी। इनके अनुसार इन्होंने व्याकरण में 10, आयुर्वेद में 9, ज्योतिष में 1, साहित्य में 3 तथा भागवद् में 3 ग्रन्थ लिखे। इन्होंने 'हृदय दीपक' नामक निघण्टु रत्न लिखा।

6. आशाधर — इन्होंने 'अष्टांग हृदय' पर 'अष्टांग हृदयोद्योत' नामक टीका लिखी।

14वीं शती

1. आढमल्ल — इन्होंने शार्ङ्गधर पर 'दीपिका-टीका' लिखी है।
2. वाचस्पति — यह 'माधव-निदान' पर 'आतंक दर्पण' व्याख्या के रचयिता हैं।

15वीं शती

1. शिवदास सेन-यह चरक-संहिता की 'तत्व-प्रदीपिका' व्याख्या के रचयिता हैं इस व्याख्या के अतिरिक्त उनकी अन्य भी रचनाएँ हैं–

1. चक्रदत की तत्वचन्द्रिका व्याख्या। 2. चक्रपाणि कृत द्रव्य-गुण संग्रह की व्याख्या। 3. अष्टांग-संग्रह की तत्वबोध व्याख्या। 4. भव्यदत्त कृत योग रत्नाकर की टीका।

विवृति कालः–16 से आधुनिक काल तक

17वीं शती

1. काशीराम वैद्य — इन्होंने 'शार्ङ्गधर संहिता' पर 'गूढ़ार्थदीपिका' व्याख्या लिखी।
2. नरसिंह कविराज — इन्होंने मधुकोष के आधार पर माधवनिदान की एक महत्वपूर्ण व्याख्या 'रोग विनिश्चयविन्थरण सिद्धान्त चिंतामणि' नाम से लिखी। चरक पर भी इनकी टीका 'चरक तत्व प्रकाश कौस्तुभ' है। इन्होंने 'मधुमती' नामक एक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की है।
3. रुद्रभट्ट — इन्होंने 'शार्ङ्गधर संहिता' पर 'आयुर्वेद दीपिका' या 'गूढान्त दीपिका' टीका तथा लोलिम्बराज कृत वैद्य जीवन पर दीपिका टीका लिखी।

18वीं शती

1. रामसेन — 'रसेन्द्र सार संग्रह' तथा 'रसेन्द्र चिंतामणि' पर टीका लिखी।

19वीं शती

1. गंगाधर राय — 'चरक संहिता' पर इनकी 'जल्पकल्पतरु' व्याख्या विद्वतापूर्ण है।

20वीं शती

1. हाराणचन्द्र चक्रवर्ती — इन्होंने 'सुश्रुत संहिता' पर 'सुश्रुतार्थ संदीपन' भाष्य लिखा।
2. योगीन्द्र नाथ सेन — 'चरक संहिता' पर इन्होंने 'चरकोपस्कार' नामक सुबोध व्याख्या लिखी।
3. ज्योतिष चन्द्र सरस्वती— इन्होंने 'चरक-प्रदीपिका' नाम से 'चरक' की टीका लिखी।
4. दतराम चौबे — 'निघण्टु रत्नाकर' जैसे बृहत् ग्रन्थ की रचना की।
5. जयदेव विद्यालंकार — इन्होंने 'चरक संहिता' पर टीका लिखी तथा 'चिकित्सा कलिका' तथा 'भैषज्य रत्नावली' की भी इन्होंने हिन्दी टीका लिखी।
6. अत्रिदेव विद्यालंकार — इन्होंने चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट सभी पर हिन्दी टीका लिखी। संपूर्ण अष्टांग संग्रह पर भी इन्होंने हिन्दी टीका लिखी।
7. राम प्रसाद शर्मा — आपने 'चरक संहिता' एवं 'अष्टांग संग्रह' पर हिन्दी टीका लिखी।
8. भाष्कर गोविन्द घाणेकर — 'सुश्रुत संहिता' पर आपने टीका लिखी तथा 'औपसर्गिक रोग', 'स्वास्थ्य विज्ञान' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की।
9. दतात्रेय अनन्त कुलकर्णी— इन्होंने 'रसरत्न समुच्चय' पर टीका लिखी।
10. लालचन्द्र वैद्य — इन्होंने 'अष्टांग हृदय', 'भाव प्रकाश' तथा 'अष्टांग संग्रह' पर विवेचनात्मक व्याख्या हिन्दी में लिखी।
11. काशीनाथ शास्त्री — इन्होंने 'चरक-संहिता' पर टीका लिखी है।

इस प्रकार संक्षेप में आयुर्वेद का साहित्य विभाजन प्रस्तुत किया गया। इसके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से अब आधुनिक काल तक आयुर्वेद साहित्य में विविध ग्रन्थों का सृजन एवं अध्ययन कार्य हुआ है तथा वर्तमान समय में भी यह प्रगति की ओर अग्रसर है।

पंचम परिच्छेद

वाल्मीकि रामायण के समक्ष विद्यमान आयुर्वेद साहित्य

वाल्मीकि रामायण—संस्कृत का आदि महाकाव्य है, संपूर्ण काव्य इसके बाद की ही कृति है। रामायण से पूर्व वेदों एवं उपनिषदों आदि का होना पाया जाता है। इन्हीं वेदों में बहुत सी आयुर्वेदिक सामग्री उपलब्ध होती है जिसे रामायण के समक्ष माना जा सकता है। संक्षेप में इसका विवरण प्रस्तुत है—

वेदों में देवता वाद है। प्रत्येक सूक्त का कोई न कोई देवता होता है। जिस सूक्त में जिस देवता की प्रार्थना हो वह उसका देवता होता है। इस प्रकार से अग्नि, अप् आदि देवताओं के समान रुद्र, इन्द्र आदि देवता हैं, उनके ही साथ अश्विनौ भी देवता हैं। अश्विनौ का मुख्य सम्बन्ध चिकित्सा के साथ है। अश्विनौ ने वैदिक देवताओं की चिकित्सा की थी।[47]

ऋग्वेद में आयुर्वेद

ऋग्वेद सर्वप्रथम माना जाता है अतः इसमें आयु से सम्बन्धित मंत्रों का होना अनिवार्य है। ऋग्वेद में कई ऐसे प्रसंग हैं जो आयुर्वेद की ओर संकेत करते हैं यथा—

एक मंत्र में पुरोहित अपने स्वामी की पत्नी की टाँग कट जाने पर लोहे की टाँग के लिये अश्विनौ से प्रार्थना करता है। वह पक्षी के समान हल्की टाँग चलने के लिए माँगता है—'वपस्ला की टाँग युद्ध में कट गई है, इसलिये तुम जल्दी आकर रात्रि में ही पक्षी के पर के समान हल्की टाँग चलने के लिये लगा दो।'[48]

आँखों का दान

ऋजाश्व को उसके पिता वृषगिरि ने शाप से अन्धा बना दिया था, क्योंकि उसने वृक्क के लिये एक सौ भेड़ों को दिया था। इस ऋजाश्व को अश्विनौ ने पुनः आँखें प्रदान की थीं क्योंकि अश्विनौ ही वृक्क के रूप में थे।[49]

च्यवन ऋषि को पुनः युवा करना

इसका उल्लेख भी ऋग्वेद में है।[50]

दिव्य वैद्य

वेद में वैद्य का लक्षण बताते हुए कहा गया है—1. संपूर्ण औषधियों को अपने पास ठीक रखने वाला। 2. विशेष प्रबुद्ध—अपने शास्त्र का पूर्ण, सांगोपांगज्ञाता। 3. युक्ति और योजना को जानने वाला। 4. राक्षसों का नाश करने में समर्थ और 5. रोगों को जड़ से उखाड़ सके—ये पाँच लक्षण वैद्य के हैं—

'यत्रौषधिः समग्मत राजानः समिताामिव।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहाभीवचातनः।।'

औषधि-चिकित्सा

वनस्पति या औषधियों के प्रयोग से रोग दूर होते हैं। वेद में औषधि के लिये माता शब्द आता है।[51] औषधि के लिये इसमें एक सम्पूर्ण सूक्त है। थोड़े से अंश प्रस्तुत हैं।[52]

औषधियों से रोग-नाश

वीर्यवती औषधियों के सेवन से रोग के बीजों का नाश होता है।[53]

रोगों का नाश

विभिन्न रोगों के नाश के लिये भी मंत्र हैं।[54]

इनके अतिरिक्त ऋग्वेद में जल चिकित्सा[55] प्रसूति सम्बन्धी ज्ञान[56] सौर चिकित्सा[57] वायु चिकित्सा[58] मानस चिकित्सा[59] एवं हवन चिकित्सा[60] आदि का भी उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद में आयुर्वेद

यजुर्वेद के दो भाग हैं—एक तैत्तरीय शाखा और दूसरी वाजसनेयी शाखा। इनका सम्बन्ध मुख्यतः कर्मकाण्ड से है, इसलिये शरीर के अंगों के नामों का उल्लेख शतपथ-ब्राह्मण में मिलता है। यजुर्वेद के वर्ण्य-विषय का ज्ञान एक मात्र वाजसनेयी संहिता के अध्ययन से हो सकता है। इस संहिता में 40 अध्याय हैं।

यजुर्वेद में प्राप्त आयुर्वेदिक तत्व निम्नवत् हैं—

औषधि-सूक्त

यजुर्वेद में औषधियों के लिये बहुत से मंत्र आये हैं, इनसे स्पष्ट है कि औषधियों का उपयोग यज्ञकर्म तथा स्वास्थ्य के लिये विशेष होता था। औषधियों से नाना प्रकार की प्रार्थना की गयी है।[61] वेद में औषधियों की माता को 'इष्कृति' (सर्वेषां रुग्णानां निष्कर्त्री) सब रोगों को निकालने वाली कहकर प्रार्थना की गयी है। 'हे औषधियों! तुम भी मेरे रोगों को निकालो।'[62]

औषधियाँ कहती हैं कि आकाश द्यु-लोक से आती हुई हम जिस व्यक्ति के पास पहुँच जाती हैं, वह किसी तरह भी नष्ट नहीं होता।[63]

दिव्य वैद्य

जो रोगों को जड़ से नष्ट करता है, राक्षसों को मारता है, वह वेद में दिव्य भिषक कहा गया है—

'कम न होने वाले सदा बढ़ने वाले रोग बीजों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला और सब राक्षसों को नीचे की ओर से निकालने वाला है, वह उपदेशक पहला दिव्य वैद्य है।'[64]

अथर्ववेद में आयुर्वेद

अथर्ववेद में आयुर्वेद का विषय विस्तार से आया है। अथर्ववेद का सम्बन्ध ही आयुर्वेद उपाङ्ग से है—

अथर्ववेद में आये हुए आयुर्वेद सम्बन्धी विषयों की सूची निम्नलिखित है जिससे चिकित्सा विषयक सूक्तों की विस्तृत जानकारी मिल जाती है—

अञ्जन 7/30/36; अपामार्ग-4/17, 4/18, 4/19, अपांभेषज 1/4,5,6 6/23, 24, अक्षिरोग भेषज 6/16, आंजन 4/9, 19/45, आप 1/33 3/13, 7/39, 19/2, 69, आस्राव की औषधि-2/3, औषधि 7/8, 6/59, कुष्ठौषधि 6/95, केशवृंहण 6/136, केशवर्धन 6/137, केशवर्धनी औषधि 6/21, गर्भसंस्राव 20/96, 11-16, पिप्पली भैषज्य 6/109, पृश्निपर्णीभैषज्य 6/22, 52, 83, 19/44, रोहिणी वनस्पति 4/12, लाक्षा 5/5, वनस्पति 3/18, वाजीकरण 4/4, विष भैषज्य 7/56,

सौभाग्यवर्धन 6/139।

रोगादि निवारण

इषुनिष्कासन 6/90, उनमत्तता मोचन 6/111, कासशमन 6/105, कुष्ठत्तम्भ नाशन 5/4, कुष्ठनाशन 19/39, क्लीवत्व नाशन 6/138, गर्भबृंहण 6/17, गर्भदोष निवारण 8-6, गण्डमाला चिकित्सा 7/74-76, चिकित्सा 6/96, जल चिकित्सा 6/57, ज्वर नाशन 1/25, 7/116, तक्म नाशन 5/22, दुस्वप्न नाशन 20/96 आदि अन्य भी विविध रोग।

कृमि नाशन

कृमिघ्न 5/23, कृमि जम्भन 2/31, कृमि नाशन 2/32, 4/37।

विष नाशन

विषघ्न 4/6, विष दूषण 6/100, विष नाशन 4/7, सर्पविष दूरीकरण 10/4, सर्प विष नाशन 5/13, 7/88, सर्प विष निवारण 6/12, साँपों से रक्षा 6/56।

अरिष्ट नाशन

अरिष्ट क्षपण 6/27, 28, 29, 80, अलक्ष्मी नाशन 1/18, असुर क्षपण 6/7, 19/66, ईर्ष्या विनाशन 6/18, 7/45 आदि।

इस प्रकार आयुर्वेद से सम्बन्धित विषयों का अथर्ववेद में विस्तार से वर्णन होने के कारण आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है।

अथर्ववेद के विभिन्न नाम

1. अथर्ववेद। 2. आंगिरस वेद। 3. अथर्वाङ्गिरस वेद। 4. ब्रह्मवेद। 5. भृग्वाङ्गिरोवेद। 6. क्षत्रवेद। 7. भैषज्यवेद। 8. छन्दोवेद। 9. महीवेद।

भैषज्य वेद

इसमें आयुर्वेद, चिकित्सा, औषधियों आदि का बहुत वर्णन है, इसलिये इसे 'भैषज्य वेद' कहते हैं अथर्ववेद में इसे 'भेषजा' कहते हैं। अथर्ववेद में काण्डों के अनुसार प्रतिपाद्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार है—

काण्ड —1— विविध रोगों की निवृत्ति, पाश-मोचन, रक्षो-नाशन, गर्भ-प्राप्ति।
काण्ड —2— रोग, शत्रु एवं कृमिनाशन दीर्घायुष्य।
काण्ड —3— ब्रह्म विद्या, विष-नाशन।
काण्ड —4— ब्रह्म विद्या, कृत्या-परिहार।
काण्ड —5— दुःस्वप्न नाशन, अन्न समृद्धि आदि।

अथर्ववेद में उस समय प्रचलित रीति-रिवाज, प्रथाएँ, मान्यताएँ यहाँ तक कि अंध-विश्वास, रूढ़ियों, जादू-टोने, कृत्या-प्रयोग, अभिचार कर्म, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, जड़ी-बूटी आदि का विस्तृत उल्लेख है।

आयुर्वेद

शरीर के अंग (2-33-1 से 7, 20-96-17 से 23) रोगों के नाम (9-8) औषध-चिकित्सा एवं जल-चिकित्सा (4-4-5) ज्वर, यक्ष्मा, खाँसी, कुष्ठ, हृदय रोग,

क्षेत्रीय रोगों की चिकित्सा (1-12, 2-8, 1-23) आदि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अथर्ववेद में सभी वेदों से अधिक आयुर्वेद की सामग्री मिलती है।

अग्निपुराण में आयुर्वेद

उपयोगिता की दृष्टि से यह सबसे महत्त्वपूर्ण पुराण है। इसे विश्वकोश कहा जा सकता है। इसमें उस समय प्रचलित सभी विद्याओं का संकलन है। यह महाभारत के तुल्य संकलन ग्रंथ है। इसके लेखक ने यह प्रयत्न किया है कि इसमें सभी विषयों का समावेश किया जाये और उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाये अतैव इसमें काव्य-शास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, कोशग्रंथ, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद, अर्थ-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, स्थापत्य-कला का सुन्दर वर्णन है। नाट्यशास्त्र, वैदिक-कर्म-काण्ड आदि विषयों का समावेश किया गया है।

गरुण पुराण

इसमें 18 सहस्र श्लोक माने जाते हैं। इसमें पुराणों से साक्षात् सम्बद्ध कोई विषय नहीं है, इसमें गणित, फलित ज्योतिष, श्राद्ध-तर्पण, व्याकरण, आयुर्वेद एवं विविध-रत्नों का वर्णन है।

इनके अतिरिक्त ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी आयुर्वेद के तत्व थे जो रामायण के समक्ष 'आयुर्वेद साहित्य' के रूप में विद्यमान थे।

तत्कालीन चिकित्सकों का सामाजिक सम्मान

रामायण में चिकित्सकों का क्या स्थान है यह जानना अत्यन्त आवश्यक एवं रोचक है।

आयुर्वेद के आराध्य देव भगवान धन्वन्तरि की कथा सभी धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों में एक-सी मिलती है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका प्रसंग उपलब्ध होता है। वाल्मीकि ने भगवान धन्वन्तरि को 'आयुर्वेद-मय पुरुष' माना है। सभी ग्रन्थ उसे एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि भगवान धन्वन्तरि का अवतरण समुद्र मंथन से हुआ।

देवता एवं असुर मंदराचल पर्वत को मथानी मानकर समुद्र मंथन करने लगे "तदन्तर 1000 वर्ष बीतने पर इस क्षीर सागर में से एक आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष प्रगट हुए, जिनके एक हाथ में दण्ड और दूसरे में कमण्डल था। उनका नाम धन्वन्तरि था।"[65] इस प्रकार वाल्मीकि रामायण ने भी धन्वन्तरि की उत्पति उसी प्रकार मानी है जिस प्रकार अन्य ग्रन्थों में मानी गयी है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के 45वें सर्ग में श्लोक संख्या 15 से 43 तक इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण के काल में वैद्य एवं चिकित्सकों की राजकीय एवं सामाजिक स्थिति कैसी थी? इस सम्बन्ध में अलग-अलग तो वर्णन प्राप्त नहीं

होता है। किन्तु वैद्य उस समय राज्य तथा समाज के एक अंग थे और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों ही प्रकार के चिकित्सक उस समय उपलब्ध थे। कुछ विशिष्ट चिकित्सकों को राजवैद्य स्वीकार किया जाता था तथा अन्य दूसरे साधारण चिकित्सक होते थे।

सामाजिक चिकित्सकों का यद्यपि रामायण में स्पष्ट वर्णन तो नहीं मिलता परन्तु विशिष्ट चिकित्सकों के विषय में पर्याप्त संकेत रामायण में प्रकट होते हैं। देव चिकित्सकों के भी नामों का उल्लेख तथा उनके दिव्य कार्यों का संकेत भी इस ग्रंथ में प्राप्त होता है। उनके नाम आयुर्वेदीय आचार्य परम्परा के नामों से बहुत कुछ मेल खाते हैं। उदाहरणार्थ—ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, वरुण, गरुड़, शिव, विष्णु, बृहस्पति, अश्विनी-कुमार, धन्वन्तरि आदि का नाम उल्लेखनीय है। ये सभी देव-चिकित्सक के दिव्य-रूप में पाठकों के सामने आये हैं। श्री भारद्वाज का नामोल्लेख यद्यपि रामायण में प्राप्त है परन्तु वे चिकित्सक के रूप में पाठकों के सामने नहीं आये हैं।

रामायण में सभी प्रकार के चिकित्सकों का वर्णन मिलता है—काय-चिकित्सक, शल्य-चिकित्सक, युद्ध-चिकित्सक, विष-चिकित्सक आदि का नाम यत्र-तत्र उपलब्ध हो सकता है। केवल चिकित्सा मात्र नहीं, राजा तथा प्रजा के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी भी इन चिकित्सकों की ही हुआ करती थी। विभिन्न चिकित्सक भिन्न-भिन्न रोगों के सिद्ध चिकित्सक हुआ करते थे और उनका सम्मान राजा द्वारा यथोचित रूप से किया जाता था। यह सत्य है कि समाज में तथा राज्य सभा में चिकित्सकों का सम्मान-पूर्ण स्थान था। राजा के दैनिक कार्यों, खान-पान आदि में भी उनका हस्तक्षेप रहता था। राजा तथा उनके कुल के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी चिकित्सकों की ही थी।

रघुकुल में राजा दिलीप से लेकर श्रीराम तक सभी राजा अपनी राज्य सभा में चिकित्सकों को स्थान देते थे तथा उन्हें विभिन्न प्रकार से सम्मानित कर सन्तुष्ट कियां जाता था। एक स्थान पर इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार है—कैकयी जब कोप भवन में रुग्ण बनकर बेहोश पड़ी थी तब राजा दशरथ ने उसके उस भवन में प्रवेश किया। रानी की यह स्थिति देखकर राजा ने उसे विभिन्न प्रकार से मधुर वचनों द्वारा आश्वासित किया और उसे स्वस्थ होने की प्रेरणा दी। साथ ही राजा ने उसे यह वचन कहे—'भामिनी! तुम अपना रोग बताओ। मेरे यहाँ बहुत कुशल वैद्य या चिकित्सक हैं, जिन्हें मैंने सब प्रकार से सन्तुष्ट कर रखा है। वे तुम्हारी चिकित्सा कर तुम्हें सुखी बना देंगे।'[66]

उक्त प्रसंग में यह स्पष्ट है कि वैद्यों को सभी प्रकार से सन्तुष्ट करना राजा का कर्त्तव्य था और राजा तथा उसके परिवार की सब प्रकार से सेवा करना (स्वस्थ बनाना) चिकित्सक की जिम्मेदारी में था। राजा को पूर्ण-विश्वास तथा गर्व होता था इस बात के कहने में कि उसके यहाँ कुशल-चिकित्सक हैं जो उससे पूर्णतया संतुष्ट

हें और जो अपने चिकित्सा के दायित्व में सिद्ध हस्त हैं।

अयोध्या राज्य में चिकित्सकों का कुछ दायित्व सामाजिक भी था। यह बात एक प्रसंग में स्पष्ट उल्लिखित है। श्री राम के वन गमन के बाद जब भरत अयोध्या में आये तो राम को न देखकर बहुत उद्विग्न हुए अन्त में उन्होंने राम को वन में जाकर लौटा लाने का निश्चय किया। वैद्यों ने उस समय अपने सामाजिक दायित्व को पहचाना और भरत के साथ उन्होंने वन यात्रा की। यह रामायण में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है—'वैद्या धूप का' अर्थात् भरत की वन यात्रा में उनके साथ अन्य सभी चलने वालों में वैद्य भी थे। भरत के इस यात्रा में चलने वालों में वैद्यों का उल्लेख वैद्यों के सामाजिक सम्मान तथा उनके सामाजिक दायित्व की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। वैद्य समाज के सम्मानित प्राणी थे तथा राजा द्वारा मान्यता प्राप्त भी थे।

राजा श्री राम के मन में चिकित्सकों के प्रति कितना दायित्व था इसके लिये निम्न उद्धरण हम यहाँ उद्धरित कर देना उपयुक्त समझते हैं। जब भरत श्री राम को लौटा लाने के लिये उनके पास गये तो श्री राम ने भरत से मिलते ही सर्व प्रथम निम्न प्रश्न किये—''तात्! क्या तुम देवों, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिता के समान आदरणीय वृद्धों, वैद्यों, ब्राह्मणों का सम्मान करते हो?''[67]

''राघव! क्या तुम देवों, वृद्ध पुरुषों, बालकों प्रधान—प्रधान वैद्यों का आन्तरिक अनुराग, मधुर वचन और धन-दान इन तीनों के द्वारा सम्मान करते हो?''[68]

श्री राम द्वारा पूछे गये उपरोक्त प्रश्नों से यह स्पष्ट है कि राज्य में वैद्यों का सम्मान था, प्रत्येक राजकीय कार्य में उन्हें याद किया जाता था। समारोहों में तथा यों भी राजा द्वारा आंतरिक अनुराग, मधुरालाप तथा धन प्राप्त होता रहता था। इन सभी से वे तुष्ट होकर हमेशा राजा तथा जनता की सेवा करते रहते थे। ये चिकित्सक सभी प्रकार के चिकित्सक थे और विशेष प्रकार की चिकित्साओं में सिद्ध हस्त थे।

सीता की खोज के लिये वानरराज सुग्रीव ने दसों दिशाओं में वानरों को भेजा तब जो वर्णन उन्होंने वानरों के सामने दिया है उससे यह स्पष्ट होता है कि वे शल्य-चिकित्सक तथा वनौषधि विशेषज्ञ थे। उन्हें इस कला का व्यवहार प्राप्त था और हर प्रकार की वनस्पतियों का उन्हें ज्ञान था। अमुक औषधि तथा फल विषैले हैं, उनका प्रयोग या स्पर्श न करना यह निर्देश उन्होंने वानरों को दिये हैं। शल्यकर्षण प्रदेश का वर्णन करते हुए उन्होंने यह बताया है कि वहाँ शरीर में प्रविष्ट शल्य को निकालने के लिये सहायक औषधि पैदा होती है। महाराज सुग्रीव का यह सार्व-भौम ज्ञान उनके चिकित्सक होने का स्पष्ट संकेत करता है।

रामायण में स्पष्ट है कि उक्त उच्चतम चिकित्सकों के अतिरिक्त रनिवास में भी ऐसी महिलाएँ रहा करती थीं, जिन्हें देह के सामान्य परीक्षण का ज्ञान हुआ करता था। राजा दशरथ का अवसान हो चुका था, अयोध्या में अन्य कोई

राजकुमार नहीं था, ऐसी स्थिति में वहाँ रनिवास की स्त्रियों ने राजा दशरथ की शरीर परीक्षा की और उन्हें मृत घोषित किया। राजा में जीवन के कोई चिन्ह उन्होंने नहीं देखे।[69] उन्होंने फिर देखा—''राजा का शरीर चेष्टा शून्य था, हृदय तथा हाथ के मूल भाग में संचालित होने वाली नाड़ी की परीक्षा करके वे काँप उठीं। उन्होंने समझ लिया कि नृप शांत हो गये।''[70] इस प्रकार राज-महल में ऐसी ज्ञान-वान स्त्रियों के होने का संकेत भी यथा स्थान प्राप्त होता है।

उपरोक्त संचित प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकीय रामायण काल में वैद्यों की सामाजिक तथा राजकीय स्थिति पूर्णतः सम्माननीय तथा उन्नत थी और वे भी अपने दायित्व को भली प्रकार से निभाते रहते थे।

'वैद्य' और 'भिषक्' शब्दों की व्याख्या

वैद्य

'विद्या अस्ति अस्य-विद्या + अण्' यह 'वैद्य शब्द की व्युत्पत्ति है।'

'वैद्य की आयुर्वेद के विविध संहिताकारों ने पृथक्-पृथक् व्याख्या एवं गुण बताये हैं यथा—अष्टांग संग्रह के अनुसार—'रोग के कारण, रोग के लक्षण, रोग की चिकित्सा, रोग की पुनः उत्पति न हो, इन चार का जिसे ज्ञान हो, वह राजा के योग्य चिकित्सक है।''[71]

चरक संहिता के अनुसार

'शास्त्र को अच्छी तरह से जानने वाला, दूरदर्शी, क्रिया में कुशल, शुद्धता यह वैद्य के चार गुण हैं।'[73]

सुश्रुत संहिता के अनुसार

जो वैद्य शास्त्र और प्रत्यक्ष ज्ञान को भली-भाँति जानता है और साथ-साथ मतिमान भी है वही सुचिकित्सा रूपी अर्थ के साधन में समर्थ हो सकता है जैसे दोनों पहियों वाला रथ युद्ध में कार्य करने में समर्थ होता है।[73]

इन संहिताओं के आधार पर वैद्य के गुणों को कहा जा सकता है कि 'वैद्य वही हो सकता है जो विधि-पूर्वक शास्त्रों का ज्ञाता, शुभ-अशुभ का ज्ञाता एवं चिकित्सा कार्य में निपुण हो।'

भिषक्

'बिभेत्यस्मात् रोगः भी + षुक् ह्रस्वाश्च'—यह 'भिषक्' शब्द की व्युत्पत्ति है।

'भिषक्' शब्द की भी आयुर्वेद में बहुत से संहिता ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न परिभाषा एवं गुण बताये गये हैं यथा—अष्टांगसंग्रह के अनुसार 'अभेद्यः' (अपने प्रतिवादी धूर्त आदि को भेद न दे अर्थात् जिसका कोई भेद न पा सके), अनुद्धतः (गम्भीर), स्तब्ध (चिरकारी-सोच-विचार कर कार्य करने वाला), ज्ञात-ग्रन्थः (शास्त्र को जानने वाला), अर्थ-शास्त्रवित् (शास्त्र के कर्म को जानता हो), शास्त्रर्थज्ञ (चिकित्सतज्ञ), अनाथान रोगिणो (निरुपाय रोगियों को), पुत्र के समान सम्यक् उपचार करता हो, गुरु ने जिसको चिकित्सा कार्य करने की आज्ञा दे दी हो वह

'भिषक्' शब्द को प्राप्त करता है।[74]

चरक संहिता के अनुसार–'जिस वैद्य ने शास्त्र और उसके मर्म को समझा हो, औषध और औषध के प्रयोग को जाना हो तथा चिकित्सा कर्म को अच्छी तरह से देख लिया हो वह गुण चतुष्ट्य युक्त भिषक् प्राणों को देने वाला कहा जाता है।'[75]

रामायण में वैद्य शब्द का प्रयोग

रामायण में ही चिकित्सक के लिये संभवतः 'वैद्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया गया है। इसके पूर्व संपूर्ण वैदिक साहित्य अथवा वेदों में चिकित्सक के लिये भिषक् शब्द का प्रयोग हुआ है। कहा गया है–'निशाचर!' जो ज्येष्ठ होने के कारण राज्य पाकर सबमें प्रधान हो गया हो, राज्य कार्य को अच्छी तरह चला रहा हो और विद्वान (वैद्य), धर्मशील तथा शूरवीर हो उसे भी कुटुम्बी जन अपमानित करते हैं तथा अवसर पाकर उसे नीचा दिखाने की भी चेष्टा करते हैं।[76]

वाल्मीकि रामायण में सभी प्रकार के चिकित्सकों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें युद्ध चिकित्सक का विशेष महत्वपूर्ण स्थान बताया गया है। युद्ध चिकित्सकों का स्थान युद्ध के समय महत्त्वपूर्ण होता है, जिस सेना के साथ युद्ध चिकित्सक न हों, कहना चाहिये कि वह सेना युद्ध करने के योग्य नहीं रह सकती। रामायण में भी कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो योद्धा होने के साथ-साथ युद्ध चिकित्सक भी थे। क्षत्राणी होने के नाते माता 'कौशल्या' को भी ज्ञान था कि युद्ध में या आकस्मिक आघात के पश्चात् कौन सी दिव्य औषधि उपादेय होती है। संभव है यह ज्ञान उन्हें राजा दशरथ के द्वारा या राजकीय अन्य सफल चिकित्सकों के द्वारा ही प्राप्त हुआ हो। अपने पुत्र श्री राम के वन गमन के समय उन्होंने उनके लिये हृदय से मंगल कामना व्यक्त की। उस विशाल लोचना माता ने पुत्र के मस्तक पर अक्षत, चंदन एवं रोली लगायी तथा सिद्ध करने वाली विशल्य-करणी नामक शुभ औषधि लेकर अपने पुत्र की रक्षा के उद्देश्य से मंत्र पढ़ते हुए उसको श्री राम के हाथ में बाँध दिया।[79] फिर उसके गुणों में उत्कर्ष लाने के लिये मंत्र का जप भी किया।[78]

मुनि विश्वामित्र ने भी राम को बला तथा अतिबला नाम के प्रसिद्ध मंत्र प्रदान किये।[79] ये मंत्र भी राम को श्रम ज्वर तथा रूप विकृति आदि से बचाने वाला बताया गया है।

श्री राम स्वयं भी अनेक सिद्ध औषधियों से परिचित थे। उन्हें भी यह जानकारी संभव है, मुनि अगस्त्य के आश्रम पर पहुँचकर श्री राम ने नई कुटी बनाने की आज्ञा देते हुए अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा–'सुमित्रा कुमार' हम गज-कंद का गूदा लेकर उसी से पर्णशाला के अधिष्ठाता देव की पूजा करेंगे। छोटे भाई ने वैसा ही किया। श्री राम ने पुनः उसे पकाने के लिये कहा।[80] लक्ष्मण ने उसे पकाया। रक्त-विकार का नाश करने वाले गजकंद को भली-भाँति पका जानकर लक्ष्मण ने कहा–यह काले छिलकों वाला गज-कंद जो बिगड़े हुए सभी

अंगों को ठीक करने वाला है, मेरे द्वारा पका दिया गया।[81] इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण भी कुशल चिकित्सक थे।

इसके अतिरिक्त वानरराज सुषेण, ऋक्षराज जाम्वान, हनुमान आदि सभी कुशल चिकित्सक थे।

रामायण में विष-चिकित्सक गरुड़ का भी उल्लेख प्राप्त होता है, एक प्रसंग दृष्टव्य है 'महान चिकित्सक गरुड़ द्वारा स्पर्श होते ही श्री राम तथा लक्ष्मण के घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दर कांति युक्त हो गये।'[82] उनमें तेज, बल, उत्साह, वीर्य, ओज, दृष्टि शक्ति, बुद्धि एवं स्मरण-शक्ति आदि महान गुण पहले से भी द्विगणित हो गये।[83]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में 'वैद्य' शब्द का ही उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है तथा सभी प्रकार के चिकित्सकों का वर्णन भी इसमें यत्र-तत्र विविध संदर्भों में प्राप्त होता है।

संस्कृत साहित्य की विशाल राशि को एक स्थल पर प्रस्तुत करना तथा रामायण का सामान्य परिचय यथा रामायण उपजीव्य काव्य है, रामायण आदि काव्य है, रामायण के विविध संस्करण, आकार, विषयवस्तु, उत्पत्ति, प्रक्षिप्तांश, रचनाकाल, रामायण का महाकाव्यत्व, रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति, व्याख्याएँ एवं शोध-कार्य में प्रयुक्त संस्करणों आदि का संक्षेप में परिचय देना, एवं साहित्यिक ग्रन्थों का आयुर्वेदिक दृष्टि से महत्त्व एवं विविध शोध-कार्यों में उनका प्रयोग, इसके अतिरिक्त आयुर्वेद का सामान्य परिचय देना, आयुर्वेद के साहित्य विभाजन का परिचय तथा रामायण काल में उपलब्ध आयुर्वेदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय देना ही परिवर्त का मुख्य विषय है।

संदर्भ:

1. अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
   वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।। सु. 30/17
2. संस्कृत साहित्य का वृहत् इतिहास (डा. राजवंश सहाय हीरा) पृ. ठ सं. 5
3. वही पृ. सं. 6
4. भारतीय संस्कृति—पृ. 140
5. अर. 6/15
6. किष. 37/4
7. अयो. 50/33
8. अर. 49/36
9. बा. 21/12
10. बा. 21/12
11. बा. 21/12

12. अर. 49/36

13. न ताः स्म प्रतिगृहणन्ति सर्वे ते देवदानवाः।
अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणाः स्मृताः।। बा. 45/35

14. चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि।। अयो. 106/22।।

15. दीयमानं तु तदा प्रतिजग्राह राघवः।
अविज्ञाय पितुश्छन्दमयोध्याधिपतेः प्रभोः।। अयो. 118/51।।

16. प्रतिगृह्यतु तां पूजां वसिष्ठाद् राजसत्तमः।
तपोऽग्निहोत्रशिष्येषु कुशलं पर्यपृच्छत्।। बा. 52/4।।

17. शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिंगय रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्।। अयो. 99/40

18. विनद्यसमुहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः।
निर्घोषोपरंत तात मन्ये राजनिवेशनम्।। अयो. 51/13।।

19. इमां च दुःस्वप्न गतिं निशम्य हि, त्वनेकरूपामवितर्किता पुरा।
भयं महत्त हृदयान्न याति मे विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम्।। अयो. 69/21।।

20. वाप्योमैरेयपूर्णाश्चमृष्टमांसचयैर्वृताः
प्रतप्तपिठरैश्चापि मार्गमायूर कौक्कुटैः।। अयो. 91/70।।

21. इत्येवं रममाणानां देवनामिव नन्दने।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिव्यव्यवर्तत।। अयो. 91/81।।

22. अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना।
पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं हि तद्वचः।। बा. 26/3।।

23. (अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।। सु. 30/17।

24. अथ वर्ष सहश्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् - बा. 45/31-32
उद्तिष्ठत् सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः।।
पूर्वं धन्वन्तरिनाम अप्सराश्च सुवर्चसं।। बा. 45/32

25. शशिप्रकाश वंदना वरकुण्डल भूषणाः।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः।। स. 10/31।।

26. तस्यायुषो पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितम्।। च.स. 1/43।।

27. क. इह खल्वायुर्वेदमष्टाङ्गमुपाङ्गमथर्ववेदस्य। सु.सू. 1/6।
ख. भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णा...... मात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। च.सू. 30/21।।
ग. कं वेदं श्रयति, अथर्ववेदमित्याह। (का.वि. 1/1)
घ. आयुषः पालनं वेदमुपवेदमथर्वणः (अष्टांग संग्रह)

28. ......एवमेव खुल वेदनासु......आयुर्वेदमेवानुधावन्ति, तस्माद् ब्रूमः-

ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामाथर्ववेदेभ्यः पञ्चमोऽयमायुर्वेदः। (का.वि.1)

29. ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः। विचिन्त्य तेषामर्थं च आयुर्वेद चकार सः।। कृत्वा तु पंचमं वेदं भास्कराय ददौ पुनः।। (ब्रह्म वैवर्त 1/16/9-10)

30. (अथातो वेदोत्पत्ति मध्यायं व्याख्यास्यामः। (सु.स. 1/1)

31. (सु. सू. 1/6)

32. सु. सू. 1/7

33. काय चिकित्सा नाम सर्वाङ्गसंश्रितानां व्याधीनां ज्वर-रक्त-पित्त-शोषोन्मादापस्मार कुष्ठातिसारादीनामुपशमनार्थम् सु.सू. 1/3

34. सु. सू. 1/8-2।

35. सु.सू. 1/8/1

36. बा. 49/6-10

37. लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्। च.चि. 1/1

38. रसायनतन्त्रं नाम वयः स्थापनमायुर्मेधावलकरं रोगापहरण समर्थं च। सु.सू.

39. अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा। अ.स.उ. 59

40. 'वाजीकरणतन्त्रं नामाल्पदुष्टक्षीण विशुष्करेतसाम् आप्यायन प्रसादो पचयजनननिमित्तं प्रहर्षजननार्थम्। सु.सू.'

वाजीवातिबलो येन याप्यप्रतिहतो स्त्रियः।
भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां वाजीकरणमेव तत्।।
येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः।
व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेवतत्।। च. चि. 2

41. The Carak club was established in 1898 in New York by members of the medical profession interested in literary, artistic and historical aspects of medicine, It is called after Caraka, author of oldest extent work in Indian medicine.–B.M.J., April, 1905 (आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास–प्रियव्रत शर्मा–P.N. *131*)

42. च. सू. 1/33

43. सिद्धि. अ.।

44. ऋषि प्रणीते प्रीतिश्चेन् मुक्त्वा चरक सुश्रुतौ। भेलाधाः किं न पठयन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्।।–अ. हृ. उ. 40/88।।

45. हरिश्चन्द्रकृतां व्याख्यां विना चरक संमतम्।
यस्तनोत्यकृत प्रज्ञः पातुमिच्छति सोऽम्बुधिम्।। (चन्द्रट)

46. इसकी पाण्डुलिपि राजकीय प्राच्य हस्तलिखित ग्रन्थागार मद्रास में है।(नं.डी. 13091

47. मुनिं हरिश्चन्द्रमृषिं विपश्चिताम् प्रकाशितार्थं कथनं चकार यः। तस्याद्भुतार्थां श्रुतिमप्रमादतः परीक्ष्य कुर्मश्चरकस्य पञ्जिकाम्।। (सभी संदर्भ आयु. का वैज्ञा.इ.-प्रियव्रतशर्मा-पे. नं. 224)

48. च. चि. 1/4/44

49. 'चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितकूम्यायाम्।
सद्यो जंघामायसी विष्पलायै धनेहि ते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्।। (ऋ. 1/176/15)'

50. ऋ. 1/116/16

51. ऋ. 7/71/5

52. 'ओषधी रीति मातरस्तद्धो देवीरूपब्रुवे।' ऋ. 10/97/4

53. या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च।। ऋ. 10/97/1
ओषधीरिति मातरस्तद्धो देवीरूपब्रुवे।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पुरुषे।। ऋ. 10/97/4,
ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राजा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त राजन् पारयामसि।। ऋ. 10/19/22)

54. 'यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तं आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीव गृभो यथा।। ऋ. 10/97/110'

55. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां चुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामिते।। ऋ. 10/164/1,
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्याऽत्।
यक्ष्मं दोषाण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामिते।। ऋ. 1./164/2,
अङ्गे-अङ्गे लोम्नि-लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं त्वचस्यं तव यं कश्यपस्य विवर्हेण विष्वंञ्च विवृहामसि।।
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो विवृहामि ते।। अथर्वेद 2/33/5
(सभी संदर्भ आ. का वृ.इ. -अत्रिदेव विद्यालंकार-पेज नं. 21-25 से साभार

56. ऋ. 10/137/6

57. ऋ. 10/162/1-4

58. ऋ. 2/33/1, 1/115/1

59. ऋ. 10/137/2

60. ऋ. 10/137/7

61. अथर्व. 3/11/1

62. वा.सं. 12/75-79, 89, 95

63. यजु. 12/83

64. 'अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पुरुषः।। यजु. 12/91'

65. यज. 16/5

66. अथः वर्ष सहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ।।
उद्तिष्ठत् सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः ।
.पूर्व धन्वन्तरिर्नाम अपस्राश्च सुवर्चसः ।। बा. 45/31, 32 ।।
67. सन्ति मे कुशला वैद्या स्त्वत्वभितुष्टाश्च सर्वशः ।
सुखिनां त्वां करिष्यन्ति व्याधियाचस्व भामिनी ।। अयो. 10/30 ।।
68. कश्चिद् देवान् पितृन् भृत्यान् गुरुन् पितृसमानपि ।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणश्चापि मन्य से ।। अयो. 100/13 ।
69. कश्चिद् वृद्धाश्च बालकाश्च वैद्यान् मुखाश्च राघवः ।
दानेन मनसा वाचात्रिभिरेतै र्बुभूषसे ।। अयो. 100/60
70. अथाप्युचितवत्रास्ता विनयेन नयेन च ।
नाह्यस्य शयनं स्पृष्ट्वा किंचिदप्युपलेभिरे ।। अयो. 65/13 ।।
71. ताः स्त्रियः स्वप्नशीलज्ञाश्चेष्टां संचलनादिषु ।
ता वेपथुपरीताश्च राज्ञः प्राणेषु शङ्किताः । अयो. 65/14 ।।
72. हेतौ लिंगे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे ।।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषक्तमः ।। अ.सं.सू. 2/12.5 ।।
73. श्रुतेपर्य्यवदातृत्वंबहुशोदृष्ट कर्मता ।
दाक्ष्यंशौचमितिज्ञे यंवैद्ये गुणचतुष्टयम् ।। च.सं.सू. 9/4 ।।
74. यस्तूभयज्ञो मतिमान् स समर्थोऽर्थसाधने ।
आहवे कर्म निर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ।। सु.सं.सू. 3/53 ।।
75. अभेद्योऽनुद्धतः स्तब्धः सूनृतः प्रियदर्शनः ।।
बहुश्रुतः कालवेदी ज्ञात ग्रन्थोऽर्थ शास्त्रवित् । अनाथान् रोगिणोयश्च पुत्रवत्समुपाचरेत् ।।
गुरुणा समनुज्ञातः स भिषक्शब्दमश्नुते । अ.सं.सू. 2/8, 9
76. तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्म-दर्शने । भिषक् चतुष्टयेयुक्तः प्राणाभिसर उच्यते ।।
च.सं.सू. 9/16 ।।
77. प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षसः ।
ज्ञातयो ह्यमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ।। युद्ध. 16/4
78. अयो. 25/37
79. अयो. 25/38
80. (बा. 22/13,15)
81. अयो. 56/22, 23, 24, 25, 26, 27
82. अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रृतः कृष्णमृगो मया ।
देवता देव संकाश यजस्व कुशलो ह्यसि ।। अयो. 56/28 ।)
83. वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ।। यु. 50/39 ।।
84. तेजो वीर्यं बलचौज उत्साहश्च महागुणाः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः ।। यु. 50/40 ।।

द्वितीय परिवर्त

वाल्मीकि रामायण में शरीर-विज्ञान प्रकरण

प्रथम परिच्छेद

1 आयु और उसका आधार

जिससे आयु का लाभ और ज्ञान हो, जिसमें आयु है तथा जहाँ आयु के विषय में पूर्ण रूप से ज्ञान एवं विचार किया जाता है वह शास्त्र आयुर्वेद कहलाता है। आयुर्वेद शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—'आयु' एवं 'वेद'। आयु का साधारण अर्थ जीवन का व्यतीत काल, सम्पूर्ण जीवन काल, वय, उम्र आदि है, पर आयुर्वेद में इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया गया है। इसके अनुसार शरीर का प्राणों के साथ 'अदृष्टजन्य संयोग' को 'आयु' कहते हैं। प्राण बारह हैं—त्रिदोष, त्रिगुण, पाँच इन्द्रियाँ और आत्मा। जब तक इन चारों का संयोग बना रहता है आयु स्थिर रहती है। इनके पृथक होते ही आयु समाप्त हो जाती है।

प्रभाव भेद से आयु को चार प्रकार का माना गया है—सुखायु, दुःखायु, हितायु और अहितायु।[1]

भौतिक दृष्टि से मानव जीवन का चरम लक्ष्य सुख भोग है। सुख भोग दो प्रधान तत्वों पर निर्भर है—सुख भोग सकने की शक्ति अथवा सामर्थ्य तथा सुख भोग के साधन। जो इन दोनों से युक्त है उसी की आयु को 'सुखायु' कहते हैं। जिसमें इन दोनों में से एक का अभाव है उसकी आयु को 'दुःखायु' कहते हैं। सामर्थ्य के अभाव में साधन व्यर्थ हैं और साधनों के अभाव में सामर्थ्य पंगु है। चरक के शब्दों में, "जो मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक रोगों से आक्रान्त नहीं है, विशेष रूप से युवा है, प्रत्येक कार्य करने में समर्थ है, बल, वीर्य, यश और पुरुषार्थ से युक्त तथा पराक्रमशील है, ज्ञान विज्ञान और इन्द्रियों के बल के समुदाय से युक्त है, अधिक सम्पतिशाली है और अनेकानेक प्रकार की सुंदर भोग-सामग्रियों से युक्त है, जिस काम को भी चाहे आरम्भ कर सकता है, जहाँ भी चाहे विचर सकता है, उसकी आयु को सुखायु कहते हैं। इसके विपरीत मनुष्यों की आयु को असुखायु या दुःखायु कहते हैं।"[2]

व्यष्टि का सुख समष्टि के सुख पर आधारित है। व्यक्ति को अपने सुख के साथ-साथ दूसरों के सुख का भी ध्यान रखना पड़ता है। स्वास्थ्य और साधन दोनों के रहते हुए अथवा उनमें कुछ कमी होते हुए भी जो व्यक्ति अपने सद्गुणों एवं विवेक के द्वारा उनकी पूर्ति कर सद्वृति-पालन में लगा रहता है, स्वयं अपने और लोककल्याण में तत्पर रहता है उसकी आयु को 'हितायु' कहते हैं। इसके विपरीत जो स्वयं अपने और लोक के लिये अभिशाप स्वरूप हो, अन्याय, अविवेक, अत्याचार, दुराचार, क्रूरता, लाभ, पाखण्ड आदि कर्मों में लगा रहता है उसकी आयु को 'अहितायु' कहते हैं। चरक के शब्दों में, "प्राणियों की भलाई चाहने वाले, दूसरों के धन की इच्छा न रखने वाले, सत्यवादी, शांति-प्रेमी, विचार-पूर्वक काम करने वाले, अप्रमत्त, धर्म-अर्थ तथा काम इन तीनों ही वर्गों को इस प्रकार सम्पन्न करने वाले, जिससे इनमें से कोई भी एक-दूसरे के लिये बाधक न बन सके, पूज्यों की पूजा करने वाले, ज्ञानशील, विज्ञानशील, शांतिशील, वृद्धों की सेवा करने वाले, राग-द्वेष, ईर्ष्या, मद, मान के वेगों को सुनियन्त्रित रखने वाले, सतत् विविध प्रकार के दान में तत्पर, नित्य तपस्या, ज्ञान और शांति कर्मों में संलग्न, अध्यात्म के ज्ञाता और उसी के अनुरूप आचरण करने वाले, लोक-परलोक दोनों का ध्यान रखने वाले, स्मृति और बुद्धि से युक्त पुरुषों की आयु को हितायु और इसके विपरीत पुरुषों की आयु को 'अहितायु' कहा जाता है।"[3]

पुनः प्रमाणभेद से आयु को तीन प्रकार का माना गया है–दीर्घायु, अल्पायु तथा मध्यायु।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, आत्मा इनके संयोग को 'आयु' कहते हैं। उसी को 'धारी', जीवित, नित्यग और अनुबंध भी कहते हैं। यह आयु के पर्यायवाचक शब्द हैं।[4]

अर्थात् पंच भौतिक शरीर, चक्षुरादि इन्द्रियाँ, मन और आत्मा इनका संयोग जिस किसी पुरुष का जितने समय तक रहता है, उतने समय तक उस पुरुष की आयु होती है अतः शरीरेन्द्रियसत्वात्म संयोग ही आयु है।

सत्व, आत्मा, शरीर तथा इन्द्रियों के परस्पर संयोग को धारण करने से धारि, प्राणों को जीवित रखने से जीवित, नित्य प्रतिक्षण गमन-शील होने से नित्यग और अपरापर शरीर संयोग रूप अनुबंध से आयु को अनुबंध कहा गया है। महर्षि अग्निवेश ने पुनः आयु के विषय में कहा है–

'आयु चेतनानुवृत्ति (गर्भ से मरण पर्यन्त चेतना का रहना) जीवित, अनुबंध, धारि-का एक ही अर्थ है अर्थात् यह सब आयु के पर्याय हैं।'[5]

'वेद' विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना अथवा ज्ञान प्राप्त करना। व्यापक अर्थ में वेद से हमारा तात्पर्य किसी भी वस्तु के सच्चे तथा वास्तविक ज्ञान से है।

अतः आयुर्वेद से हमारा तात्पर्य उस शास्त्र अथवा ज्ञान की उस शाखा से है

जो हमें आयु का सच्चा और वास्तविक ज्ञान प्रदान करे। हिन्दी विश्व कोश के अनुसार जिस शास्त्र में आयु के स्वरूप, आयु के विविध भेद, आयु के लिये हित कारक एवं अहित कारक आहार, आचार, चेष्टा आदि विषयों का आयु के प्रमाण तथा अप्रमाण तथा उनके ज्ञान के साधनों का एवं आयु के उपादान भूत शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनमें से सभी अथवा किसी एक के विकास के साथ हित, सुख और दीर्घायु की प्राप्ति के साधनों तथा इनके बाधक विषयों के निराकरण के उपायों का विवेचन हो उसे ही आयुर्वेद कहते हैं।[6]

वाल्मीकि रामायण एक आयुर्वेदीय ग्रन्थ नहीं है लेकिन फिर भी इसमें आयुर्वेदीय सामग्री का भण्डार है। 'आयु' का उल्लेख भी इसमें अनेक स्थानों पर विविध सन्दर्भों में विविध पात्रों के द्वारा कराया गया है। यथा रामायण महाकाव्य की महिमा बताते हुए इसी काव्य में कहा गया है कि यह काव्य आयु एवं पुष्टि प्रदान करने वाला है।[7] जो इसका पाठ करता है उसकी आयु की वृद्धि होती है।[8] एक अन्य स्थल पर कहा गया है, दिन-रात बीत रहे हैं और प्राणियों की आयु का तीव्र गति से नाश कर रहे हैं।[9] ऋतु-परिवर्तन को आयु का नाश करने वाला बताते हुए यह भी कहा गया है, किसी ऋतु का प्रारम्भ देखकर मानो वह नयी-नयी आयी हो, ऐसा समझकर लोग हर्ष से खिल उठते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि इन ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों के प्राणों (आयु) का क्रमशः क्षय हो रहा है।[10]

आयु नष्ट होने का लक्षण बताते हुए रामायण में कहा गया है-युद्ध के लिये उद्यत होने पर जिनका मुख प्रभाहीन हो जाता है उनकी आयु नष्ट हो जाती है।[11]

रामायण की महिमा का उल्लेख करते हुए पुनः कहा गया है, रामायण धर्म, यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला है।[12] .... जो इसका पूजन करता है वह बड़ी आयु पाता है।.............[13] यह काव्य आयु, आरोग्य, यश तथा भ्रातृप्रेम को बढ़ाने वाला है।[14] वायु ही जगत की आयु है कहकर वायु के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया गया है।[15]

इस प्रकार उपरोक्त संदर्भो पर दृष्टि-पात करने से ज्ञात होता है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने आदि काव्य रामायण में आयु का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है।

2. आत्मतत्व

मन, आत्मा और शरीर ये तीनों त्रिदण्ड के समान जीवन के आधार स्तम्भ हैं। इन तीनों के संयोग से इस लोक की स्थिति है और इस लोक में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है।

साधारणतः मन अथवा अन्तःकरण से परे उसके व्यापारों का ज्ञान कराने वाली सता को आत्मा कहते हैं। आत्मा ही ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। शरीर, मन और इन्द्रियाँ उसके साधन हैं।

आत्मा के सम्बन्ध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। उनमें से कई मत एक दूसरे के विरोधी भी हैं। इस विरोध तथा मत वैभिन्य के होते हुए भी इतना तो

सभी स्वीकार करते हैं कि आत्मा चेतन है। इस चेतना को वे चाहे आत्मा का गुण-धर्म मानें या स्वभाव।

चरक के अनुसार आत्मा की सत्ता को न स्वीकार करने से अहंकार, फल, देहान्तरगति तथा पूर्व जन्मों की स्मृति आदि की कोई संतोषजनक व्याख्या नहीं की जा सकती।[16] भौतिकवादी विचार-धारा से प्रसूत आधुनिक मनो-विज्ञान में मन को ही कर्ता मानकर इन सारी चीजों की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है, पर उनकी सभी व्याख्याएँ संतोषजनक होती हों ऐसा नहीं कहा जा सकता। विशेषकर परामनोवैज्ञानिक (Parapsyehology) की खोजों को लेकर जो तथ्य सामने आ रहे हैं उनसे आधुनिक मनोविज्ञान की मान्यताओं का अनेक स्थलों पर सामंजस्य नहीं होता। मनोविज्ञान में मन को करण के रूप में स्वीकार कर लेने से उसके पृथक किसी अन्य सत्ता को कर्ता के रूप में स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है।

आयुर्वेद ने भी आत्मा की सत्ता स्वीकार की है। चरक के अनुसार–सत्व आत्मा और शरीर ये तीनों तीन दण्डों के समान हैं। लोक इन्हीं के संयोग से खड़ा है। सब कुछ इसी में प्रतिष्ठित है।[17]

आयुर्वेद ने भी आत्मतत्व निरूपण में मूलतः सांख्य और वैशेषिक को अपना आधार बनाया है, पर चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से उसने जहाँ तहाँ कठिनाइयों का अनुभव किया वहाँ या तो अन्य दर्शनों से या फिर स्वयं अपनी मान्यताएँ स्थापित की हैं।

शरीर जड़ पदार्थ है। इसका सम्बन्ध मन के द्वारा जब आत्मा से होता है तब जीवन के लक्षण प्रकट होते हैं। इसलिये शरीर निर्माण की छः धातुओं में आत्मा को ही प्रमुख माना गया है।[18] क्योंकि शरीर से आत्मा के चले जाने पर यह शरीर गृह-पति विहीन गृह के समान शून्य और जड़ रह जाता है।[19]

आत्मा की जो कुछ क्रिया हम शरीर में मानते हैं वह मन के माध्यम से होती है। आत्मा का मन से, मन का इन्द्रियों से और इन्द्रियों का अपने विषयों से जब संयोग होकर वह शृंखला पूर्ण होती है तब ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है तथा शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। अतः जीवन के लक्षण आत्मा, मन और शरीर के संयोग पर आश्रित हैं।

आत्मा का स्वरूप

श्रीमद् भगवद्गीता में आत्मा का स्वरूप बताते हुए कहा गया है, 'इन्द्रियों को पर (सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ) कहते हैं, इन्द्रियों से पर 'मन' है, और मन से पर 'बुद्धि' है, और जो बुद्धि से भी अत्यन्त पर है वह 'आत्मा' है।[20]

आत्मा का अस्तित्व निर्विवाद है। इस विषय में सब दर्शन एक मत हैं, परन्तु आत्मा के स्वरूप के विषय में विभिन्न मत हैं। चार्वाक् 'स्थूल शरीर' को आत्मा मानता है। बौद्ध आत्मा को 'विज्ञान का प्रवाह' मात्र मानते हैं। न्याय, वैशेषिक एवं मीमांसक आत्मा को अचेतन मानते हुए इसे विशेष अवस्थाओं में चैतन्य का आधार बताते हैं।

सांख्य के अनुसार आत्मा का स्वरूप

सांख्य दर्शन में आत्मा को पुरुष की संज्ञा दी गयी है उसके अनुसार पुरुष की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. पुरुष प्रकृति तथा उसके विकारों से नितान्त भिन्न अपनी पृथक् सत्ता रखता है।
2. पुरुष सुख-दुःखादि गुणों से परे तथा त्रिगुणातीत है।
3. पुरुष शुद्ध चेतन है।
4. पुरुष निष्क्रिय है। उसकी क्रियाशीलता प्रकृति के सानिध्य का ही परिणाम है।
5. पुरुष अनादि एवं अनन्त है।
6. पुरुष विभु अर्थात् सर्वव्यापी तथा एक रस रहने वाला अर्थात् अपरिणामी है तथा
7. पुरुष अनेक हैं।

वैशेषिक के अनुसार आत्मा का स्वरूप

वैशेषिक दर्शन में आत्मा की निम्न विशेषताएँ बतलायी गयी हैं-

1. आत्मा शरीर, इन्द्रिय और मन से पृथक् अपनी सत्ता रखता है।
2. आत्मा नित्य एवं सर्वव्यापी (विभु) द्रव्य है।
3. आत्मा चेतना का आधार है।
4. बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्माधर्म, प्रयत्न, संस्कार आदि गुण इसी में निवास करते हैं तथा
5. आत्मा के दो रूप हैं–जीवात्मा, परमात्मा। परमात्मा अथवा ईश्वर एक है। जीवात्माएँ अनेक हैं। भिन्न-भिन्न शरीर में भिन्न-भिन्न जीवात्माएँ रहती हैं। इनका ज्ञान मानस प्रत्यक्ष द्वारा होता है।

आयुर्वेद में आत्मा का स्वरूप

आयुर्वेद में सभी संहिताकारों ने आत्मा को समान महत्व नहीं दिया है। चरक ने आत्मा का विशद् विवेचन किया है। सुश्रुत ने संक्षेप में ही उसका उल्लेख किया है उनके अनुसार पञ्चमहाभूत ही सब कुछ हैं–भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सते।–सु.शा. 1-12

वाग्भट ने सुश्रुत के उक्त कथन का अक्षरशः पालन करते हुए अपने ग्रन्थों में ईश्वर, अव्यक्त, महान्, पञ्चतनमात्र, अहंकार आदि विषयों का कोई उल्लेख नहीं किया है। अन्य संहिताकारों ने किसी न किसी रूप में इन्हीं मतों को ग्रहण किया है।

चरक के अनुसार आत्मा का स्वरूप

चरक ने तत्कालीन अन्यान्य आस्तिक दार्शनिक सम्प्रदायों के अनुसार आत्मा के दो रूप माने हैं–जीवात्मा और परमात्मा। परमात्मा को उन्होंने नित्य-पुरुष और जीवात्मा को राशि-पुरुष, संयोग पुरुष, कर्म-पुरुष आदि नामों से पुकारा है। उनके अनुसार परमात्मा नित्य, निर्विकार, अचिन्त्य एवं अव्यक्त है। अनादि परमात्मा का कोई प्रभाव नहीं।[21] उसे चेतना धातु कहा जाता है अर्थात् वह शुद्ध चेतन है। वह

ज्ञानी है पर यह ज्ञान भी उसमें तभी उत्पन्न होता है जब वह इन्द्रियों से युक्त होता है। यदि इन्द्रियाँ निर्दोष न हों और आत्मा और इन्द्रियों का सानिध्य न हो तो ज्ञान की उत्पति नहीं हो सकती। जिस प्रकार गन्दे जल में या गन्दे शीशे में मुँह नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार चित्त के विकृत हो जाने पर ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती।[22]

यही परमात्मतत्व धर्माधर्म तथा कर्म के वशीभूत हो जब शरीर, मन, और इन्द्रिय से संयुक्त हो जाता है तो जीवात्मा की संज्ञा प्राप्त करता है। अब यह बुद्धि, अहंकार, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन, तन्मात्राओं, महाभूतों आदि की राशि से युक्त होने के कारण राशि पुरुष होता है।[23]

प्रकृति के ये विकार ही करण भी कहलाते हैं। आत्मा इनके संयोग से ही कर्मों का संपादन करता है और कर्म फल भोगता है, इसीलिये कर्म-पुरुष कहलाता है।[24] यही कर्म पुरुष चेतना का अधिष्ठान है। कर्म, कर्म-फल, ज्ञान, मोह, सुख-दुःख, जीवन-मरण आदि इसी में प्रतिष्ठित रहते हैं।[25] इसीलिये यह अनित्य है। इसी को षड्धातुज तथा चतुर्विंशति धातुज भी कहते हैं।

चरक ने राशि-पुरुषों की परम्परा को अनन्त माना है। इन्हीं के शब्दों में,—'रज एवं तम से संयुक्त पुरुष की बुद्धि, इन्द्रिय, अर्थ एवं मन का संयोग अनन्तवान है।'[26] प्रलयकाल में पुरुष अपने इष्ट भावों से रहित होता है और सृष्टि काल में वह पुनः उनसे संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार यह परम्परा अनन्तकाल तक चलती रहती है।[27]

यहाँ पर इस बात की ओर संकेत कर देना भी अनुचित न होगा कि यदि चरक के अन्य विवरणों पर भी ध्यान दिया जाये तो हमें ऐसा लगेगा कि उनके अनुसार सुख, दुःख, इच्छा द्वेष आदि मन के ही गुण-धर्म हैं। राशि-पुरुष में प्रतिष्ठित होते हुए भी वह इनसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है।

कहीं-कहीं पर चरक की उक्तियों में स्पष्ट विरोधाभास प्रतीत होता है। यथा एक ओर तो वे परमात्मा को गुणातीत और निर्विकार मानते हैं और दूसरी ओर वे कहते हैं-'प्राण, अपान, उन्मेष, निमेष, जीवन, मन की गतियाँ, इन्द्रियान्तर संचार, प्रेरण, धारण, स्वप्न में देशान्तर गमन, पंचत्वग्रहण, दक्षिण नेत्र से देखी हुई वस्तु को बाएँ नेत्र से भी यह वही है ऐसा ज्ञान होना, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार ये आत्मा के लिङ्ग हैं। ये लक्षण जीवित प्राणियों में ही मिलते हैं, मृतकों में नहीं। इसीलिये महर्षिगण इन्हें आत्मा का लक्षण मानते हैं।'[28]

इसी प्रकार एक ओर तो वे राशि-पुरुषों की परम्परा को अनन्तवान बललाते हैं और दूसरी ओर यह कहते हैं कि उदय और प्रलय उन्हीं लोगों के लिये है जो रज एवं तम से युक्त हैं और जो इनसे ऊपर उठ गये हैं अथवा इनसे रहित हैं उनके लिय न उदय है न प्रलय[29] उनका 'वशी आत्मा' का प्रत्यय इस संदर्भ में विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

एक अन्य उदाहरण है—एक ओर तो यह कि आत्मा के शरीर और इन्द्रियों के सम्पर्क में आये बिना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती और दूसरी ओर अतीन्द्रिय ज्ञान की सम्भावना की स्वीकृति। यथा, आत्मा जब मन को समाधिस्थ कर लेता है तब पर्वत या दीवार से छिपी वस्तु का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है।[30]

वस्तुतः आत्मा दर्शन का विषय है। चिकित्सा शास्त्र एक व्यावहारिक शास्त्र है। इसमें आत्मतत्व निरूपण का कोई विशेष उपयोग नहीं है। रोगों के स्वरूप, निदान, चिकित्सा आदि के निरूपण में कहीं भी इसकी जरूरत नहीं पड़ती। रोगों का अधिष्ठान शरीर और मन ही माने गये हैं आत्मा नहीं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चरक ने पुरुष के दो रूप माने हैं-नित्य पुरुष और अनित्य पुरुष। उनका नित्य पुरुष निर्विकार, अव्यक्त, अचिन्त्य एवं उपाधि रहित है। इसके अन्दर सभी कुछ है लेकिन अव्यक्त रूप में। अनित्य पुरुष विकारों से युक्त, परिणामी एवं शान्त है। इच्छा, द्वेष, ज्ञान, कर्म, कर्मफल आदि इसी में प्रतिष्ठित रहते हैं। वस्तुतः परमात्मा और जीवात्मा को तत्वतः एक मानते हुए भी जीवात्मा को परिणामी एवं परिवर्तनशील मानना चरक की सबसे बड़ी विशेषता है।

सुश्रुत के अनुसार आत्मा का स्वरूप

सुश्रुत ने आत्मा का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा है—''इसे क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्पृष्टा, घ्राता, दृष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुष, साक्षी, धाता, वक्ता आदि अनेक पर्यायवाची नामों से पुकारा जाता है।'' उनके अनुसार यह अक्षय, अव्यय तथा अचिन्त्य है।[31] नित्य और अणुरूप है। अति सूक्ष्म, सचेतन और अनुभव ग्राह्य है।[32] उक्त अक्षय, अव्यय तथा अचिन्त्य आत्मा ही कर्म, प्रारब्ध अथवा दैव के वशीभूत हो तिर्यक् योनि, मनुष्य योनि और देव योनियों में भ्रमण करता है।

सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्राण, अपान, उन्मेष, बुद्धि, मनः, संकल्प, विचारण, स्मृति-विज्ञान, अध्यवसाय और विषयोपलब्धि—ये उस पुरुष के गुण हैं।[33]

सुश्रुत ने भी पंचमहाभूत और आत्मा के संयोग को 'कर्मपुरुष' कहा है और उसी को चिकित्सा का अधिकरण बताया है।

चरक और सुश्रुत के उक्त विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि आयुर्वेद भी—

1. शरीर, मन और इन्द्रियों से पृथक् आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता है।
2. आत्मा के दो रूप मानता है—जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा को सगुण और परिणामी मानता है तथा परमात्मा को निर्गुण और अपरिणामी।
3. सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष आदि को आत्मा में ही प्रतिष्ठित मानता है।
4. आत्मा को नित्य मानता है। केवल चरक ने जीवात्मा अथवा राशि-पुरुष को अनित्य माना है।
5. चरक ने आत्मा को विभु पर सुश्रुत ने अणुरूप माना है।

6. आत्मा को चेतना का आधार मानता है।

गर्भ से आत्मा का सम्बन्ध

गर्भ की उत्पत्ति में मातृज (डिम्ब), पितृ (शुक्राणु), आत्मज (आत्मा), सात्म्यज, रसज तथा मन, ये छः भाव भाग लेते हैं।[34] इन छः भावों के समुदाय से नवीन गर्भ की उत्पत्ति होती है।[35] मातृज (डिम्ब) एवं पितृज (शुक्राणु) भावों से गर्भ की स्थापना होती है तथा उनके साथ सात्म्यज एवं रसज भाव उसके विकास में सहायक होते हैं। आत्मा एवं मन द्वारा गर्भ शरीर में प्राणों का संचार होता है। मन आत्मा को गर्भ-शरीर से सम्बन्ध में प्रवृत्त करता है।[36] चरक संहिता में कहा गया है कि–गर्भ के तीसरे मास में समस्त इन्द्रियाँ, अंग एवं अवयव बन जाते हैं।[37]

सुश्रुत संहिता में इस प्रसंग में कहा गया है कि चौथे मास में गर्भ-शरीर में संपूर्ण अंग-प्रत्यंगों के विभाग अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। गर्भ शरीर में हृदय गति होने लगती है। इस प्रकार चेतना धातु (आत्मा) की भी अभिव्यक्ति हो जाती है क्योंकि हृदय उसका स्थान है इसी कारण चौथे मास से गर्भ शरीर की इन्द्रियाँ अपने विषयों में अपनी इच्छा प्रकट करने लगती हैं तथा दो हृदय युक्त उस स्त्री को दो हृदनी कहते हैं।[38]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि गर्भ-शरीर में चौथे मास में आत्मा के प्रवेश की कल्पना इसलिये की गयी है कि गर्भ हृदय गति करने लगा और उसकी ध्वनि पृथक् से सुनाई देने लगी।

वाल्मीकि रामायण में भी चेतना धातु (आत्मा) के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। रामायण न तो दार्शनिक ग्रन्थ है और न ही आयुर्वेदीय, इसलिये आत्मा सम्बन्धी विशद् व्याख्या तो इसमें प्राप्त नहीं होती किन्तु इसका सर्वथा अभाव भी नहीं है।

रामायण में एक-दो स्थानों पर ही इसका उल्लेख किया गया है–यथा

दशाह व्यतीत हो जाने पर राजकुमार भरत ने ग्यारहवें दिन 'आत्मशुद्धि' के लिये स्नान और एकादशाह श्राद्ध का अनुष्ठान किया फिर बारहवाँ दिन आने पर उन्होंने श्राद्ध कर्म (मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध) किये।[39]

इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि आत्म शुद्धि के लिये श्राद्ध आदि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

3. शरीर की रचना, शरीर का प्राविभाग, त्वचा, कला, दोष, मल

भारतीय वाङ्मय में दो प्रकार के शरीरों की कल्पना की गयी है–स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर। हाड़-मांस-रक्त-चर्म आदि से युक्त शरीर को स्थूल शरीर कहते हैं। इसी स्थूल के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर की कल्पना की गयी है। यह शरीर मन, बुद्धि, अहंकार, पञ्च ज्ञानेन्द्रियों, पञ्च कर्मेन्द्रियों और पञ्च तन्मात्र–इन अठारह अवयवों का समूह माना गया है इसी को लिङ्ग शरीर, कारण शरीर, अतिवाहक शरीर आदि नामों से भी पुकारा गया है। कहा जाता है कि मरणोपरान्त आत्मा इसी शरीर के आश्रय से एक शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है।

आयुर्वेद में शरीर शब्द अधिकांश में स्थूल शरीर का ही वाचक है और इसी से उसने अधिकतर काम लिया है। सूक्ष्म शरीर का विवरण भी कुछ स्थलों पर मिलता है पर नाम मात्र के लिये।

स्थूल शरीर[40]

आयुर्वेद के अनुसार समस्त चेष्टाओं, इन्द्रियों, मन और आत्मा के आधारभूत पञ्चभौतिक पिण्ड को स्थूल शरीर कहते हैं। आयुर्वेद में स्थूल शरीर की जो विशेषताएँ बतायी गयी हैं वे प्रमुखतः निम्न हैं–

1. शरीर पञ्चभूतात्मक है।
2. शरीर चेतना का अधिष्ठान है।
3. शरीर उत्पत्ति एवं मरणधर्मा है।
4. शरीर अवयवी है।
5. शरीर समयोग वाही है।

सुश्रुत ने गर्भाविक्रान्ति के प्रसंग में संघटना की दृष्टि से शरीर की अति विशद् व्याख्या की है। इनके अनुसार शुक्र और आर्तव का गर्भाशय में सम्मूर्च्छन होने पर उसमें तत्काल सूक्ष्म शरीर रहित आत्मा का प्रवेश होता है। इस सूक्ष्म शरीर में आठ प्रकार की प्रकृति, पाँच सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म कर्मेन्द्रियां तथा एक मन होता है। इस प्रकार इन सबके संयोग को 'गर्भ' कहा गया है। इसी चेतनावस्थित गर्भ को जब वायु विभाजित करती है, तेज पाचन करता है, जल क्लेद करता है, पृथ्वी इसमें काठिन्य उत्पन्न करती है और आकाश इसे बढ़ाता है तब इस प्रकार विवर्धित वह गर्भ हस्त, पाद, जिह्वा, प्राण, कर्ण, नितम्ब आदि अंगों से युक्त हो जाता है तब उसकी 'शरीर संज्ञा' होती है।[41]

सुश्रुत ने दोष, धातु एवं मल के समुदाय को स्थूल दृष्ट्या शरीर माना है।[42] चरक, सुश्रुत, अष्टांग संग्रह एवं अष्टांग हृदय में शरीर को छः अंगों में विभक्त किया गया है। चरक ने दो बाहु, दो सक्थि, शिरोग्रीव एवं अन्तराधि को शरीर का अंग माना है।[43] सुश्रुत ने षडङ्ग के अन्तर्गत चार शाखा (दो हस्त, दो पाद) मध्य शरीर एवं सिर की गणना की है।[44] अष्टांग संग्रह एवं अष्टांगहृदय में शिर, अन्तराधि, दो बाहु एवं दो सक्थि को शरीर माना गया है।[45] वृद्ध वाग्भटट ने नाभि, पाणि, पाद को प्रत्यंग माना है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर शरीर की रचना के विषय में विस्तृत रूप से इस प्रकार कहा जा सकता है–

1. षडङ्गवन्धन्याय से प्रकृति-पुरुष (स्त्री-पुरुष) के संयोग से पञ्चमहाभूतमय स्थूल शरीर की उत्पति होती है। यह शीर्यमाण होने से 'शरीर' उपचित होने के कारण 'देह' और 'काय' कहलाता है जो जीव (चैतन्य) का निवास है।
2. यह शरीर षडङ्ग कहलाता है। इसके छः अंग हैं, चार शाखाएँ, मध्य काय और शिर। मस्तक, नाभि, ललाट, स्फिक्, जानु, उरु आदि प्रत्यङ्ग कहलाते हैं।
3. सिर से पैर तक समस्त शरीर सात त्वचाओं से आवृत रहता है। सात कलाएँ होती हैं, जो धातुओं और आशयों के बीच मर्यादाभूत हैं।

4. अन्न, दोष, मल आदि जहाँ स्थित होते हैं वे आशय कहलाते हैं। स्रोत मार्ग हैं जिनके द्वारा ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं।
5. अस्थियाँ वृक्ष के सार भाग की तरह मनुष्य के शरीर को धारण करती हैं। ये सन्धियों से युक्त हैं। सैकड़ों स्नायुओं से बंधा यह देह कंकाल है।
6. इन अस्थियों से पेशियाँ सम्बद्ध रखती हैं जिनका अन्त प्रायः रज्जु सदृश्य कण्डराओं में होता है। अक्षि निमेष तक सभी चेष्टाएँ पेशियों से होती हैं।
7. नाड़ियाँ तार की तरह हैं और शिर 'मस्तिष्क' और सुषुम्ना से सम्बन्ध रखती हैं। यह समस्त देह में व्याप्त होकर संज्ञा एवं चेष्टा का वहन करती है।
8. जो नलिकाएँ रक्त को हृदय से अंगों की ओर वेग से ले जाती हैं वे धमनियाँ हैं और जो अंगों से रक्त को हृदय की ओर मंद गति से ले जाती हैं वे सिरायें हैं।
9. दोनों के बीच में केश के सूक्ष्म जाल के सदृश फैली हुई रचनाएँ 'केशिका' कहलाती हैं जिनसे पोषक रस चूता रहता है।
10. हृदय रक्त को (अंगों से) लेता है पुनः (अंगों को) देता है तथा निरन्तर वेग के साथ चलता रहता है। इस प्रकार उसका 'हृदय' (हृ + द + य) नाम सार्थक है तथा इसका अस्तित्व शरीर के हित में चरितार्थ है।
11. हृदय जीवन का मूल है क्योंकि हृदय के रुक जाने पर जीना संभव नहीं है। इसलिये पूर्ववर्ती महर्षियों ने इसे चेतना स्थान कहा है।
12. हृदय रस-रक्त का आश्रय है। यह समस्त देह के पोषण के लिये रस रक्त का वितरण करता है तथा उसके दोषों को भी निकाल कर चलता रहता है। इस प्रकार हृदय की गति चक्रवत् है।
13. वक्ष में हृदय-कमल स्थित है। उसके पार्श्व में दोनों ओर फुफ्फुस हैं तथा नीचे दक्षिण भाग में यकृत और वाम भाग में प्लीहा है।
14. दोनों फुफ्फुस रक्त को श्वास-प्रश्वास के द्वारा गृहीत अम्बरपीयूष (ओषजन) से स्वच्छ कर अमृत-तुल्य बना देते हैं।
15. यकृत कपिल-वर्ण तथा रक्त वह स्रोतों का मूल है और पित्त का अधिष्ठान हैं। यह अनेक कर्मों का सम्पादन करता है।
16. इसी प्रकार प्लीहा भी रक्त का मूल अधिष्ठान है जहाँ रक्त-कणों आदि का निर्माण होता है। रक्तक्षय के विकारों में प्लीहा बढ़ जाती है।
17. गृहणी अग्नि का स्थान है जहाँ पित्तधरा कला संलग्न है। सभी आहार का पाचन यहीं (पाचक) पित के द्वारा होता है।
18. रस और मल का विवेक होने से रस तो आँतों द्वारा शोषित होकर हृदय में चला जाता है और पुरीष गुदामार्ग से बाहर निकल जाता है।
19. वस्ति मूत्राधार है, वह वृक्कों में बने हुए तथा दोनों गवोनियों द्वारा लाये गये मूत्र को अपने भीतर रखता है तथा मूत्र मार्ग से बाहर निकालता है।
20. शुक्र (अव्यक्त रूप में) सर्व शरीर में व्याप्त रहता है और व्यक्त रूप में शुक्राशय में स्थित होता है यह मैथुनकाल में हर्ष (उत्तेजना) से मूत्र-मार्ग द्वारा बाहर निकलता है।

21. स्त्री की योनि तीन आवर्तों वाली होती है जिसके तृतीय आर्वत में गर्भाशय रहता है जो बस्ति तथा पुरीषाशय के बीच में स्थित है।
22. मस्तिष्क का आश्रय तथा प्राण और इन्द्रियों का मूल और अंगों में उत्तम शिर कहा गया है। यह मर्मों में श्रेष्ठ है।
23. शरीर में 100 मर्म हैं, जहाँ आघात लगने से पीड़ा या मृत्यु हो जाती है। हृदय, शिर और वस्ति ये मुख्य मर्म 'त्रिमर्म' कहलाते हैं।

वृद्ध वाग्भट ने भी शरीर के प्राविभागों के अन्तर्गत त्वचा, कला, दोष, धातु, मल, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मनस्, आशय, प्राणायतन, कण्डरा, जाल, कूर्च, रज्जु, सीवनी, अस्थि संघात, सीमन्त, अस्थि, अस्थि-सन्धि, स्नायु, पेशी, सिरा, धमनी, स्रोतस, ऊष्मा, मर्म, केश, श्मश्रु, लोम, प्रकृति एवं विकृति का परिसंख्यान किया है।[46]

पञ्चमहाभूत अविकृत अवस्था में अर्थात् प्रत्येक पृथक्-पृथक् रहते हुए सृष्टि की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकते हैं जब ये पञ्चीकृत हो एक-दूसरे में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं अर्थात् प्रत्येक में अन्य चारों का भी समावेश हो जाता है तब ही वे स्थूल शरीर का कारण बनते हैं। शरीर में आत्मा का आश्रय हो जाने पर उसमें जीवन के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। जीवन के लक्षणों से युक्त पञ्चमहाभूतों से निर्मित यह शरीर पुरुष कहलाता है। समस्त उपादान कारणों के सम्यक् भाव में रहने पर ही इस शरीर की क्रियाएँ स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होती हैं।

शरीर की परिभाषा चरक ने इस प्रकार दी है–जिसमें पञ्चमहाभूतों का विकार समूह हो, आत्मा का वास हो तथा आन्तर एवं वाह्य क्रियाएँ सम्यक् भाव से हो रही हों, वह शरीर है।[47]

शरीर में पंचमहाभूतों के विकार त्रिदोष, सप्त-धातु तथा मन के रूप में होते हैं। ये (दोष, धातु, मल) शरीर के मूल माने गये हैं।[48]

दोष

'दूष्यन्तीति दोषाः' जो शरीर को दूषित करे अथवा बिगाड़े उसे 'दोष' कहते हैं। आयुर्वेद में दो प्रकार के दोषों की कल्पना की गयी है-शारीरिक दोष एवं मानसिक दोष। शारीरिक दोष वात, पित्त और कफ हैं तथा मानसिक दोष रज एवं तम। शारीरिक दोषों की सम मात्रा शरीर को और मानसिक दोषों की सम मात्रा मन को धारण करती है, उन्हें स्वस्थ रखती है। शारीरिक दोषों की विषम मात्रा शारीरिक रोगों को और मानसिक दोषों की विषम मात्रा मानसिक रोगों को जन्म देती है।[49]

'धारणात् धातवः' जो शरीर को धारण करे उसे धातु कहते हैं। शरीर धातु व्यापक अर्थ में तो प्राकृत वात, पित्त, एवं कफ, रस, रक्त आदि, पञ्चमहाभूत इन्द्रिय और आत्मा सभी धातु कहलाते हैं। ये सभी शरीर को धारण करते हैं पर संकुचित अर्थ में धातुएँ सात हैं-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र। सम मात्रा में रहने पर ये शरीर को आरोग्य प्रदान करती हैं और घट-बढ़ जाने पर नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती हैं।[50]

नीचे की तालिका में संक्षेप में इनके कार्य का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है

धातु	प्राकृतावस्था में	बढ़ जाने पर	घट जाने पर
1. रस	संतोष, सन्तर्पण तथा रक्तपोषण	लालास्राव, अरोचकता, मुख में विरसता, मिचली, स्रोतों का अवरोध, मीठे से द्वेष, अंगमर्द, तथा कफवृद्धि से उत्पन्न होने वाले अन्य विकार।	शब्द का सहन न होना, हृदय में धड़कन, शरीर में कंपकंपी, मुख आदि की शुष्कता, शूल, शून्यता, कुछ न सूझना, स्पन्दन, हृदय का मथा जाना, थोड़े से परिश्रम से थकान तथा प्यास की अधिकता।
2. रक्त	जीवन-धारण, वर्ण, प्रसन्नता तथा मांस पोषण	कुष्ठ, विषर्प, पिड़िका, रक्त-प्रदर, आँख, मुँह, मूत्र-मार्ग तथा गुदा में जलन, प्लीहा, गुल्म, विद्रधि, व्यङ्ग कामला, मंदाग्नि, मोह-मूर्च्छा, त्वचा तथा आंखों की लाली, वातरक्त तथा अन्यान्य पित्त जनित विकार।	त्वचा में रुक्षता, खट्टे और शीत पदार्थों की चाह तथा सिराओं में शिथिलता।
3. मांस	देह लेप (अस्थि-पंजर पर) मल तथा मेद धातु का पोषण	गल-गण्ड, गण्डमाला, अर्बुद, ग्रंथि-शोथ, तालु, जिह्वा तथा कण्ड के रोग, नितम्ब, गण्ड स्थलों आदि में भारीपन।	नितम्ब तथा कपोलों का धँसना, तोंद, रुक्षता, इन्द्रियों में दुर्बलता, संधियों में कड़कड़ाहट तथा धमनियों में शिथिलता।
4. मेद	नेत्रों एवं गात्रों में स्निग्धता, स्नेह, दृढ़ता तथा अस्थियों का पोषण।	प्रमेह के पूर्वरूप, स्थूलताजन्य-उपद्रव, जैसे आयु का ह्रास, वेगावरोध, मैथुन में अशक्ति आदि तथा अन्य कफ, रक्त एवं मांस जन्य विकार।	प्लीहा वृद्धि, कटि में संज्ञा नाश, सन्धियों में शून्यता अंगों में रुक्षता, कृशता, थकान, शुष्कता, मेदुर मांसों की इच्छा और मांस के क्षय के अन्य लक्षण

धातु	प्राकृतावस्था में	बढ़ जाने पर	घट जाने पर
5.अस्थि	देह को सीधा खड़ा रखना, धारण-धरण का कार्य तथा मज्जा का पोषण।	अधि सन्धि (अस्थियों में अस्थियों की उत्पति) संख्या अधिकता, दाँतों की संख्या में वृद्धि तथा आकारों में वृद्धि।	दाँतों, नखों रोमों और केशों का गिरना, रुक्षता, कर्कशता, सन्धियों का ढीलापन, अस्थियों में दर्द तथा अस्थियों में लगे हुए मांस की चाह।
.6 मज्जा आना,	स्नेह, बल, अस्थियों की पूर्ति तथा शुक्र पोषण।	नेत्रों और अंगों में लाली, भारीपन, पोर-पोर में में स्थूल मूल वाली एवं तीव्र वेदना वाली फुंसियों की उत्पति।	अस्थियों में खोखलापन, तोंद, दुर्वलाता, चक्कर आँखों के आगे अंधेरा छाना।
7. शुक्र	हर्ष, बल तथा गर्भोत्पादन।	अति स्त्री कामता तथा शुक्राश्मरी।	थकान, दुर्बलता, मुँह सूखना, आँखों के आगे अँधेरा छाना, अंगों का दुखना, पाण्डुता, कार्यों में अनुत्साह, नपुंसकता वृषणों में दर्द, शिश्न में दाह, शुक्र का देर से अथवा रक्त के साथ क्षरित होना।

'मलिनी करणान्मला' जो शरीर को मलिन करे उसे 'मल' कहते हैं। मूत्र, पुरीष, स्वेद आदि मल हैं।[51] मल से हमारा तात्पर्य शरीर में उत्पन्न उन द्रव्यों से है जिनका एक सीमा से अधिक शरीर में बना रहना स्वास्थ्य के लिये घातक सिद्ध होता है, हम जो कुछ भी खाते हैं पच जाने के उपरान्त उससे रस बनता है। रस के सार भाग से धातुओं का पोषण होता है और किट्ट भाग से मलों की उत्पत्ति होती हैं।

दोषों और धातुओं के समान ही मलों की वृद्धि एवं क्षय से भी अनेकानेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नीचे की तालिका में प्रमुख मलों की वृद्धि एवं क्षय से उत्पन्न होने वाले लक्षणों को आसानी से देखा जा सकता है--

मल	वृद्धि	क्षय
पुरीष	कुक्षि में शूल, गड़गड़ाहट एवं भारीपन	उदर में गड़गड़ाहट करती हुई वायु का इधर-उधर घूमना, आँतों में ऐंठन तथा पार्श्व एवं हृदय में पीड़ा।
मूत्र	मूत्राशय में व्यथा एवं आध्मान (फूलना)	बस्ति प्रदेश में पीड़ा, मुखशोष, मूत्र कृच्छता, मूत्र की स्वल्पता, उसके वर्ण की विकृति तथा उसका रक्तमिश्रित होना।
स्वेद	कण्डु एवं शरीर से दुर्गन्ध आना	रोमकूपों की जड़ता, रोमोंका गिरना, त्वचा का फटना, त्वचा का सुन्न(स्पर्श ज्ञान रहित) हो जाना, खुरदुरा हो जाना तथा पसीने का न निकलना।

दोष, धातु तथा मल शरीर के मूल हैं। इनमें से किसी एक का भी अभाव हो तो शरीर की स्थिति नहीं रह सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वात-पित्त एवं कफ दोष, रस रक्तादि धातु एवं पुरीष, मूत्र आदि मल होते हैं।

आचार्य चरक ने शरीर के सम्बन्ध में कहा है कि यह शरीर आहार से उत्पन्न होने वाली वस्तु है।[52] शरीर में आहार द्रव्यों के पाक के पश्चात् आहार रस का विसरण होकर शरीर में चयापचय होता है। चयापचय के परिणामस्वरूप सार अंश से शरीर के ऊतकों (Tissuses) की वृद्धि, क्षय-पूर्ति तथा स्थायी धातुओं की उत्पति होती है और निस्सार भाग मल रूप में शरीर से उत्सर्जित हो जाता है। जीवन के लिये ये शारीरिक क्रियाएँ आवश्यक हैं इनका नियंत्रण त्रिदोष द्वारा होता है। यदि ये क्रियाएँ प्राकृतिक रूप से शरीर में सम्पादित हो रही हैं तो वात-पित्त तथा कफ का कार्य धारण करना मात्र होता है परन्तु जब वात-पित्त तथा कफ के द्वारा शारीरिक क्रियाओं में विषमता उत्पन्न हो जाती है तब विषमता उत्पन्न करने की विशेष शक्ति से सम्पन्न होने के कारण इन्हें दोष संज्ञा प्रदान

की गयी है। इनकी दूषण क्रियाओं से सातों धातुएँ ही प्रभावित होती हैं। अतः सातों धातुओं को दूष्य कहा जाता है। अत्यन्त विकृतावस्था में दोष मलरूप से शरीर में उपस्थित रहते हैं अतः इन्हें 'मल' संज्ञा भी दी जा सकती है।[53]

शरीर की समस्त क्रियाओं का एक ही उद्देश्य है और वह है शरीर को स्वस्थ रखना। इसके लिये इन सब क्रियाओं में परस्पर ताल-मेल रखना आवश्यक है यदि किसी एक क्रिया में विकृति आती है तो उसका विपरीत प्रभाव अन्य शारीरिक क्रियाओं पर भी पड़ता है। शरीर की इन क्रियाओं का ठीक प्रकार से सम्पन्न न होने का नाम ही व्याधि है।

वात-पित्त-कफ शरीर की उत्पत्ति के कारण हैं। शरीर में नीचे (नाभि के नीचे) वात का स्थान है, मध्य में (नाभि और हृदय के मध्य) पित्त का स्थान और ऊपर (हृदय के ऊपर) कफ का स्थान है। वात-पित्त-कफ के विकार रहित स्थिति में रहने से शरीर का उसी प्रकार धारण होता है जिस प्रकार कम से कम तीन स्तम्भों का मकान स्थित रह सकता है। अतः शरीर को त्रिस्थूण कहते हैं। जिस प्रकार किसी एक स्तम्भ की निर्बलता से मकान की दृढ़ता में संदेह हो जाता है, उसी प्रकार जब वात-पित्त-कफ में किसी एक में भी विकृति आ जाती है तब ये इस शरीर रूपी मकान के नाश के कारण बन जाते हैं।

शरीर क्रियाओं में परस्पर तालमेल उसी समय तक बना रह सकता है जब तक कि प्रत्येक का कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक् हो। शरीर में ऐसा ही होता है। यद्यपि वात, पित्त, कफ शरीर की क्रियाओं के जनक हैं किन्तु प्रत्येक का कार्य एवं क्षेत्र पृथक्-पृथक् है। शरीर के अन्दर विभिन्न जैव भौतिक (Bio-Physical) तथा जैव रासायनिक (Bio-Chemical) क्रियाएँ इन्हीं वात-पित्त-कफ के द्वारा सम्पन्न होती हैं। कफ अपने विसर्ग कर्म (Anabolic Functions) पित्त अपने आदान कर्म (Ketabolic Functions) द्वारा तथा वायु अपने विशेष कर्म (Nerrous and hormonal function) द्वारा शरीर को धारण करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में कवि का शरीर विषयक ज्ञान स्पष्ट परिलक्षित होता है। रामायण में शरीर के प्रविभागों में निम्नांकित प्रविभागों का उल्लेख कई स्थलों पर किया गया है यथा—त्वचा, दोष, मल, धातु, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन, आशय, प्राणायतन, कण्डरा, अस्थि, अस्थि-सन्धि, स्नायु, प्रकृति, केश, रोम, मर्म, नख आदि।

रामायण में एक स्थल पर कहा गया है कि उस समय अग्नि ने उन महात्मा के रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डी, मांस और रक्त को जलाकर भस्म कर दिया।[54]

प्रस्तुत श्लोक में शरीरावयवों के अन्तर्गत आने वाले त्वचा, रोम, केश, अस्थि, मांस, रक्त आदि का उल्लेख किया गया है। त्रिदोष का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है।

दोष

वे तीनों लोकों के समान सुस्थिर, तीन अग्नियों के समान तेजस्वी, तीन मंत्रों

के समान उग्र तथा तीन रोगों (वात-पित्त-कफ के प्रकोप से) के समान अत्यन्त Hk;d j Fks[55]

मल

वाल्मीकि रामायण में तीन प्रकार के मलों का भी उल्लेख है—1. मल, 2. मूत्र, 3. स्वेद।

स्वेद

उनके अंगों से पसीना निकल रहा था।[56]

मल-मूत्र

वायुदेव उनके मलाशय और मूत्राशय को रोककर उन्हें बड़ी पीड़ा देने लगे।[57]

आशय

रामायण में मलाशय,[57] मूत्राशय एवं गर्भाशय[58] का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

कण्डरा (स्नायु)

रामायण में युद्ध काण्ड में कहा गया है उनके शरीर का स्नायु-बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया है।[59]

धातु

वाल्मीकि रामायण में सप्त धातु का भी अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। धातु के अन्तर्गत अस्थि, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, शुक्र, रस आदि सातों ही प्रकारों का रामायणकार को पर्याप्त ज्ञान है, ऐसा प्रतीत होता है।

राक्षस अक्ष कुमार की अस्थियाँ चूर-चूर हो गयीं, अस्थियों के जोड़ टूट गये और नस-नाड़ियों के बंधन शिथिल हो गये।[60]

युद्ध काण्ड में एक स्थान पर वर्णन मिलता है, 'सैनिकों के यकृत एवं प्लीहा जिसके महान पंक थे—रक्त का प्रवाह ही जिसकी महान जल राशि थी। निकली हुई आँतें जहाँ सेवार का काम देती थीं। कटे हुए सिर और धड़ जहाँ मत्स्य से प्रतीत होते थे। शरीर के छोटे-छोटे अवयव एवं केश जिसमें घास का भ्रम उत्पन्न करते थे। मेदे ही फेन बनकर जहाँ सब ओर फैले थे।'[61] इस प्रकार उपरोक्त श्लोक से भी यह ज्ञात होता है कि महर्षि वाल्मीकि को शरीर के अंगों का विशद् ज्ञान था।

रक्त मेद

रावण का सारा शरीर रक्त एवं मेद से भीग गया।[62]

अन्य गुण

उसमें तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, दृष्टि, शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति आदि महान गुण पहले से भी दुगने हो गये।[63]

इसी प्रकार केश,[64] रोम,[65] मर्म,[66] नख आदि का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है।

शरीरावयव वाची शब्द

रामायण एक आयुर्वेदीय ग्रन्थ नहीं है, फिर इसका निर्माण भी ऐसे समय में

हुआ जब शरीर शास्त्र का सम्भवतः अधिक विकास न हुआ हो। आदि काव्य होने के नाते जितने भी शरीर वाची शब्द इसमें प्राप्त होते हैं वे आश्चर्य जनक हैं।

रामायण में स्थावर तथा जंगम दो प्रकार की सृष्टि मानी गयी है। मन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन रामायण में प्राप्त होता है यथा—सन्मुनष्य मनो[67] बताकर अच्छे आदमियों के अच्छे मन का उल्लेख है। इसके विपरीत दुष्ट मनुष्यों के मन की गति का वर्णन भी रामायण में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। इसी प्रकार सद्बुद्धि तथा दुर्बुद्धि, नम्रता और अहंकार की स्थितियों का वर्णन भी रामायण में प्राप्त होता है।

इनके अतिरिक्त शरीरावयवों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन भी रामायण में उपलब्ध है, जैसे-हृदय फटकर नीचे गिर जाना,[68] फेन युक्त रक्त का प्रवाहित होना। रक्त की गंध से उन्मत्त हो जाना,[69] कर्ण तथा नेत्रों में रोध उपस्थित हो जाना।[70] रामायण में सप्त धातु, आंत्र, वक्ष-प्रदेश तथा मर्मों आदि का वर्णन भी संक्षिप्त रूप से प्राप्त होता है। कवि को सद्योप्राणहर मर्म, कालान्तर प्राणहर मर्म प्रदेश का सम्यक् ज्ञान था। मर्मों पर आघात होने पर क्या असर होता है यह कवि ने अनेक स्थानों पर बताया है। रक्त की उष्ण तथा शीत अवस्था का वर्णन भी कवि ने किया है। कुम्भकर्ण के भयंकर रूप का वर्णन करते हुए कवि ने 'ऊर्ध्व रोमांचिततनु' कहकर उसके दैहिक रोगों का वर्णन किया है।

हनुमान जी के मुख से राम एवं लक्ष्मण की देह का वर्णन करते समय सभी शरीरावयवों का उल्लेख किया गया है—यथात्रिस्थान, त्रिस्थिर, त्रिसम, त्रिप्रलम्ब, त्रिषुचोन्नत, त्रिताम्र, त्रिस्निग्ध, त्रिषुगम्भीर, त्रिवल्ली, त्रिशीर्षवान, चतुर्व्यंग, चतुष्कल, चतुकर्रव, चतुस्किस्कु, चतुस्सम, चतुर्दशसमद्वन्द्व, चतुर्रदृष्ट, पंचस्निग्धा, अष्टवंशवान, दशपद्म, दशवृहद्, षडउन्नत, नव तनु।

इस प्रकार रामायण में दैहिक शुभ-लक्षणों का 'वृहद् वर्णन' प्राप्त होता है तथा दैहिक दोषों की भी उपलब्धि होती है जैसे—कबंध-कुब्जा आदि।

रामायण में प्राप्त होने वाले शरीरावयव वाची शब्दों की विस्तृत सूची परिशिष्ट में संलग्न है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि कवि का शरीर रचना इत्यादि सम्बन्धित ज्ञान व्यापक था और उनके महाकाव्य में इसका विशद् उल्लेख भी किया गया है।

4. अन्तः करण

अन्तःकरण के अन्तर्गत मन एवं बुद्धि का समावेश होता है।

मन

मन की व्याख्या करते हुए हमारे शास्त्रकारों ने कहा है—'मन्यते बुध्यते अनेन इति मनः' अर्थात् जो मनन करने का, सोचने समझने का साधन हो, वही मन है। मनन शब्द का प्रयोग इस संदर्भ में बहुत ही व्यापक अर्थ में किया गया है। इसके अन्तर्गत हमारी वह सारी क्रियाएँ, सारा व्यवहार आ जाता है जिसे हम आधुनिक

मनोविज्ञान की भाषा में मानसिक या मनोजन्य कहते हैं। संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, स्मरण, चिंतन, कल्पना, भाव, संवेग आदि सभी इसकी वस्तुवाचकता में समा जाते हैं। बुद्धि, चित, अन्तःकरण आदि शब्द प्रायः इसके पर्यायवाची शब्दों के रूप में व्यवहार किये जाते हैं।

मन के भेद

मन यद्यपि सत्व-प्रधान है फिर भी गुणों की विषमता के कारण इसके प्रायः तीन रूप हमारे सामने आते हैं। सुश्रुत ने इनका वर्णन निम्न शब्दों में किया है। उनके अनुसार भिन्न-भिन्न गुणों से आवृत मन की निम्न—विशेषताएँ हैं-

सात्विक

दया, दान, क्षमा, सत्य, धर्म, आस्तिकता, बुद्धि, मेधा, स्मृति, धृति और अनासक्ति।

राजस

दुःखाधिक्य, भ्रमणशीलता, अधीरता, अहंकार, असत्य बोलने की प्रवृति, क्रूरता, दम्भ, मान, हर्ष, काम और क्रोध।

तामस

मानसिक उद्विग्नता, नास्तिकता, अधर्म की ओर प्रवृति, बुद्धि का निरोध, अज्ञान, मूढ़ता, आलस्य तथा निद्रालुता।[71]

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि मन के सत्वप्रधान होते हुए भी उसका निर्माण उक्त तीनों प्रकार की प्रवृतियों से मिलकर होता है। अन्तर केवल यही है कि किसी में किसी प्रकार की प्रवृतियों का बाहुल्य है और किसी में दूसरे प्रकार की। इसी आधार पर जिसमें जिस प्रकार की प्रवृतियों का बाहुल्य होता है उसके मन को उसी नाम से पुकारने लगते हैं। चरक के शब्दों में, ''जिस गुण वाला सत्व पुरुष पर बार-बार अनुवर्तन करता है उस पुरुष के मन को मुनि लोग उसी गुण से युक्त बतलाते हैं।''[72] उदाहरण के लिये जिसके मन में सात्विक प्रवृतियों का बाहुल्य होता है उसके मन को सात्विक, जिसके मन में राजसी प्रवृतियों का बाहुल्य होता है उसके मन को राजस तथा जिसके मन में तामसी प्रवृतियों का बाहुल्य होता है उसके मन को तामस कहा जाने लगता है।

मनो-विज्ञान की दृष्टि से सत्व की बुद्धि मानसिक स्वास्थ्य की निशानी है। सात्विकता का ह्रास और रज की वृद्धि मानसिक चंचलता, द्वन्द्व एवं तनाव का सूचक है और तम की वृद्धि स्पष्ट रूप से मानसिक विकारों, मानसिक रोगों का प्रतीक है।

मन की उत्पत्ति

भारतीय दर्शन के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के समय राजस अहंकार की सहायता से सात्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति हुई।

सृष्टि की उत्पत्ति का आदि कारण स्वयं कारण रहित सत्व, रज तथा तम गुणों

से युक्त अव्यक्त है। अव्यक्त से त्रिगुणात्मक महत् की उत्पति हुई। महत् का अर्थ महान है। जब हम महान कहते हैं तो एक तुलनात्मक निश्चित हमारा मत होता है कि अमुक से अमुक महान है। निश्चयात्मक स्थिति के कर्ता को बुद्धि कहते हैं, इसलिये महत् को बुद्धित्व भी कहते हैं।। तुलनात्मक भाव अर्थात् छोटे-बड़े या अच्छे-बुरे का भाव अहंकाराधीन है। अतः महत् से त्रिगुणात्मक अहंकार की उत्पत्ति होती है। गुणों के अनुसार अहंकार तीन प्रकार का होता है-1. वैकारिक (सात्विक जिसमें सत्वगुण प्रधान है) 2. तैजस् (राजस्—जिसमें रजोगुण प्रधान है) 3. भूतादि (तामस-जिसमें तमोगुण प्रधान है)।

तैजस् अहंकार की सहायता से वैकारिक अहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं—ये हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, 1. श्रोत्र, 2. त्वक्, 3. चक्षु, 4. जिह्वा, 5. घ्राण तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ-1. वाणी 2. हस्त 3. उपस्थ 4. गुदा तथा पाद और ग्यारहवाँ मन। जो अतीन्द्रिय कहलाता है—जिसका ज्ञान उपरोक्त दसों इन्द्रियों द्वारा ग्राही नहीं हो उसे अतीन्द्रिय कहते हैं। तैजस (राजस) अहंकार की सहायता से भूतादि अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ (सूक्ष्म-अव्यक्त भूत) उत्पन्न होती हैं।

ये ग्यारह इन्द्रियाँ आत्मा के चेतन भावों को प्रकट करने का आधार हैं किन्तु चेतन भाव किसी जड़ वस्तु के आश्रित ही प्रकट हो सकते हैं। इसके लिये पांच तन्मात्राओं से पंच महाभूतों की उत्पति होती है, जिनके परस्पर मिलन से जड़ शरीर की उत्पत्ति होती है। जड़ शरीर में आत्मा को मन प्रवृत करता है जिससे जड़ शरीर में जीवन के लक्षणों के रूप में आत्मा के लक्षण प्रकट होते हैं। इस कार्य की सिद्धि के लिये राजस अहंकार की सहायता से सात्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति होती है।

गर्भ से आत्मा एवं मन का सम्बन्ध

गर्भ की उत्पत्ति में मातृज (डिम्ब), पितृज (शुक्राणु), आत्मज (आत्मा), सात्म्यज, रसज तथा मन ये छः भाव भाग लेते हैं।[73] इन छः भावों के समुदाय से नवीन गर्भ की उत्पत्ति होती है।[74]

मातृज (डिम्ब) एवं पितृज (शुक्राणु) भावों से गर्भ की स्थापना होती है तथा उनके साथ सात्म्यज एवं रसज भाव उसके विकास में सहायक होते हैं। आत्मा एवं मन द्वारा गर्भ शरीर में प्राणों का संचार होता है। मन आत्मा को गर्भ शरीर से सम्बन्ध में प्रवृत्त करता है।[75]

गर्भ पिण्ड से मन एवं आत्मा का सम्बन्ध कब होता है?

डिम्ब एवं शुक्राणु का संयोग होते ही गर्भ का विकास प्रारम्भ हो जाता है। गर्भ के विकास काल में यह सम्बन्ध नहीं होता है क्योंकि एक शरीर में एक साथ में एक से अधिक मन एवं आत्मा का निवास नहीं हो सकता है। गर्भ शरीर माता से पोषण प्राप्त करता हुआ अपना नियमित विकास करता है गर्भ-पिण्ड में प्रत्येक धातु का विकास एक साथ होता रहता है। रस एवं रक्त धातुओं की उत्पत्ति से

गर्भ का अपना रक्त-संवहनतन्त्र दिनोंदिन विकास की पूर्णता को प्राप्त करता जाता है। गर्भ के चतुर्थमास में उसकी अस्थियों में रक्त मज्जा (Red bone marrow) उत्पन्न हो जाती है। अतः उसके द्वारा लोहित कोशिकाओं (R.B.C.) का निर्माण होने लगता है, परिणामस्वरूप गर्भ-हृदय अपना क्षेपण कार्य करने लगता है परन्तु फुफ्फुसों के क्रियाशील न होने के कारण रक्त परिशुद्धि माता की रक्त संवहन प्रणाली द्वारा होती है गर्भ हृदय के कार्य प्रारम्भ करते ही उसकी हृद ध्वनि पृथक से सुनाई देने लगती है। अब उस गर्भवती स्त्री को "दो हृदनी" कहने लगते हैं। गर्भ शरीर के स्वतन्त्र अस्तित्व को अभी तक स्वीकारा नहीं गया है अतः गर्भ के मन एवं आत्मा को माता के मन एवं आत्मा से पृथक् मानने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

चौथे मास में गर्भ शरीर में सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों के विभाग अधिक स्पष्ट हो जाते हैं।[76] गर्भ शरीर में हृदय गति होने लगती है। इस प्रकार चेतना धातु (आत्मा) की भी अभिव्यक्ति हो जाती है क्योंकि हृदय उसका स्थान है, इसी कारण चौथे मास में गर्भ शरीर की इन्द्रियाँ अपने विषयों में अपनी इच्छा प्रकट करने लगती हैं तथा दो हृदय युक्त उस स्त्री को दो हृदनी कहते हैं।

गर्भ शरीर में चौथे मास में आत्मा के प्रवेश की कल्पना इसलिये की गयी कि गर्भ हृदय गति करने लगा और उसकी ध्वनि पृथक से सुनाई देने लगी। यह कल्पना कर ली गयी है कि गर्भ में हृदय गति उस समय ही सम्भव है कि जब उसमें चेतना धातु का प्रवेश होगा, अन्य कोई कारण इस कल्पना का प्रतीक नहीं होता है। गर्भ शरीर गर्भाशय में रहता हुआ माता के तन्त्रों पर पूर्ण निर्भर रहता है और अपने विकास की ओर अग्रसर होता चला जाता है उस पर माता के स्वयं के मन एवं आत्मा के द्वारा ही नियंत्रण रहता है। इस समय तक उसका अपना स्वयं का न तो मन होता है और न चेतना धातु अन्यथा चतुर्थमास अथवा पंचम मास में गर्भाशय से बाहर वह जीवित रहना चाहिये था जहाँ उसमें आत्मा के लक्षण जीवन के लक्षणों के रूप में परिलक्षित होने चाहिये परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है वास्तविकता यह है कि जब गर्भ का विकास पूर्ण हो जाता है एवं वह प्रत्येक प्रकार से अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने में समर्थ हो जाता है उस समय पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुरूप पञ्चभूतात्मक (लिङ्ग) शरीर पर आसीन मन और उस पर आधारित चेतना धातु (आत्मा) उस गर्भ शरीर में प्रवेश करते हैं। आत्मा का गर्भ शरीर से सम्बन्ध स्थापित होते ही उसमें प्राणों का संचार हो जाता है एवं वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिये संसार में प्रवेश के लिये आतुर हो जाता है अतः माता को प्रसव-वेदना प्रारम्भ हो जाती है।

पूर्व जन्म के कर्मों में जो गुण (सत्व, रज, तम) उत्कृष्ट थे मन की प्रवृत्ति उसी प्रकार की रहती है और वह आत्मा को उसी प्रकार के गर्भ शरीर में प्रवृत्त कराता है अर्थात् यदि पूर्व जन्म में मन की प्रवृत्ति नीच कर्मों की ओर थी तो वह आत्मा

को नवीन जन्म में नीच योनि के गर्भ में प्रविष्ट करायेगा। इसके विपरीत यदि मन की प्रवृत्ति शुभ कर्मों की ओर थी तो वह आत्मा का संयोग उच्च योनि के गर्भ से करायेगा। मन की इस प्रवृत्ति में आत्मा का नियंत्रण ही हेतु होता है। नवीन गर्भ में प्रवेश कर आत्मा उसी प्रकार के सात्विक, राजस, अथवा तामस गुणों को ग्रहण करने में मन को आकर्षित करता है।

मन रूपी साधन के द्वारा आत्मा सात्विक, राजस अथवा तामस गुणों को ग्रहण के लिये प्रवृत्त होती है।[77]

'मन' शब्द की व्युत्पत्ति

'मन ज्ञाने' धातु से 'मन्यते ज्ञायते' इस विग्रह से मन शब्द बना है तात्पर्य यह है कि जिसके द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो वह मन है। चित्तम्, चेतः, हृदयम् हृत् मानसम् इत्यादि मन के पर्याय हैं।

मन

मन अतीन्द्रिय है तथा सत्व एवं चेत भी इसकी संज्ञा है जिसका ज्ञान इन्द्रियग्राही न हो उसे अतीन्द्रिय कहते हैं।[78]

मन का स्वरूप

गुण और कर्म जिसके आश्रित रहते हैं तथा जो गुण और कार्य का समवायी कारण है आयुर्वेद में उसे 'द्रव्य' कहते हैं।[79] इस परिभाषा के द्वारा नौ द्रव्य होते हैं—आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, आत्मा, मन, काल एवं दिशा।[80] ये द्रव्य अव्यक्त है। अतः स्वरूप में मन भी अव्यक्त है। इसका ज्ञान लक्षणों द्वारा ही ग्राह्य है।[81] इसी कारण मन की गणना अध्यात्म द्रव्यों में की जाती है।

मन, मन के विषय (चिन्त्य, संकल्प आदि), बुद्धि (चक्षुर्बुद्धि, श्रोत्र बुद्धि, घ्राण बुद्धि, रसन बुद्धि, स्पर्शन बुद्धि तथा मनो बुद्धिः) और आत्मा के अध्यात्म द्रव्य और गुण हैं। मन और आत्मा अध्यात्म द्रव्य हैं यथा मन के विषय तथा बुद्धि ये अध्यात्म गुण हैं। ये शुभ और अशुभ की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति में कारण हैं अर्थात् यदि इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान सम्यक् है तो ये शुभ की प्रवृत्ति और अशुभ की निवृत्ति कराते हैं और यदि ज्ञान सम्यक् नहीं है तो यह शुभ की निवृत्ति तथा अशुभ की प्रवत्ति के कारण होते हैं।[82] इसलिये कहा जाता है कि मन अतीन्द्रिय है। अतीन्द्रिय के दो अर्थ हैं—1. इन्द्रियों के स्वरूप को अतिक्रान्त कर जाने वाला। 2. ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों भौतिक द्रव्य हैं जबकि मन अध्यात्मद्रव्य है अतः अतीन्द्रिय कहलाता है इसके स्वरूप आदि का ज्ञान तथा इसके लक्षणों के अनुमान द्वारा जाना जाता है।

मन का स्थान

आचार्य चरक ने मन का स्थान हृदय कहा है। वह कहते हैं कि शरीर के छःओं अंग, विज्ञान (बुद्धि), इन्द्रियाँ और इनके पाँचों विषय, आत्मा, मन एवं मन के विषय, ये सब हृदय के आश्रित हैं।

उन्माद तथा अपस्मार के प्रसंग में भी आचार्य कहते हैं कि दोष प्रकुपित होकर हृदय में पहुँचते हैं और वहाँ मानो वह स्रोतों को आच्छादित कर उन्माद उत्पन्न करते हैं[83] एवं रज तथा तम से अभिभूत मन वाले व्यक्तियों में आत्मा के श्रेष्ठ स्थान हृदय में जाकर प्रकुपित दोष स्थित हो जाते हैं तथा अपस्मार उत्पन्न करते हैं।[84] इस प्रकार आचार्य मन का स्थान हृदय कहते हैं। आचार्य सुश्रुत का भी ऐसा ही कथन है कि हृदय चेतना (आत्मा) का स्थान है और आत्मा एवं मन का नित्य सम्बन्ध है। अतः जो स्थान चेतना का है वही स्थान मन का है।[85]

आचार्य चरक ने यह भी कहा है कि जिस अवयव में प्राण एवं सम्पूर्ण इन्द्रियाँ आश्रित हैं वह सब अंगों में श्रेष्ठ शिर (मस्तिष्क) है। मस्तिष्क प्राण वायु का स्थान भी है।[86] तथा प्राण वायु मन का नियामक एवं प्रवर्तक है।[87] यह प्राण वायु मस्तिष्क में रहकर बुद्धि, हृदय, इन्द्रियों और मन को धारण करता है। भेल संहिता, चरक संहिता के समकालीन है। उसमें आचार्य भेल ने तो और भी स्पष्ट कह दिया है कि शिर एवं तालु के अन्तर्गत अर्थात् मस्तिष्क में, इन्द्रियों में श्रेष्ठ इन्द्रिय मन स्थित है एवं यहाँ पर स्थित मन इन्द्रियों के विषयों को निकटता से जानता है।[88]

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि मस्तिष्क शरीर का सबसे उत्तम अंग है तथा समस्त इन्द्रियों का अधिष्ठान है। मन तथा अन्य इन्द्रियों की क्रियाओं के नियामक प्राण वायु का भी वही स्थान है।

मन का कार्य-क्षेत्र

जीवन के लक्षण समस्त शरीर व्यापी होते हैं। अतः मन की क्रियाएँ भी समस्त शरीर में प्रकट होती हैं।[89]

सम्पूर्ण शरीर में विचरण करने वाले वात, पित्त तथा श्लेष्मा के सब स्रोत मार्ग हैं उसी प्रकार अतीन्द्रिय मन आदि का समस्त चेतनावान शरीर मार्ग-भूत तथा आश्रय-भूत है अर्थात् सम्पूर्ण चेतनावान शरीर मन की क्रियाओं का क्षेत्र है।[90]

समस्त शरीर चेतना का आश्रयभूत है। अतः मन की क्रियाओं का भी क्षेत्र है।

मन के लक्षण एवं गुण

एक साथ ज्ञान का अभाव तथा भाव यह मन का लक्षण है अर्थात् एक काल में एक ही ज्ञान की उत्पति होना मन का लक्षण है। आत्मा, इन्द्रिय और इन्द्रिय विषय के सन्निकर्ष को मन जब प्राप्त होता है उस समय ज्ञान की उत्पत्ति होती है। आत्मा, इन्द्रिय तथा इन्द्रियविषय के संयुक्त होने पर भी यदि मन की वृत्ति (Mode of mind) इनके साथ नहीं है तब ज्ञान नहीं होता है।

न्याय सूत्रकार ने मन के लक्षण अत्यन्त संक्षेप में कहे हैं कि एक साथ अनेक ज्ञानों की अनुत्पत्ति/अभाव मन का लक्षण है।[91]

मन के गुण

मन के दो गुण हैं—1. अणुत्व और एकत्व। मन अणु है और एक है। यदि प्रत्येक

शरीर में एक से अधिक मन की कल्पना करें अथवा उसे महत्परिमाण वाला मानें तो एक साथ अनेक ज्ञानों की सम्भावना होती परन्तु ऐसा नहीं होता है अतः मन अणु तथा एक है।[92]

चिन्त्य, संकल्प आदि मन के अपने स्वयं के विषयों की विभिन्नता के कारण एवं इन्द्रियों के विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) के भिन्न-भिन्न होने के कारण तथा सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से विभिन्न अनुपात में संयोग के कारण एक पुरुष के मन में एक होने पर भी अनेक प्रकार का दीखता है। वस्तुतः मन एक ही है, अनेक नहीं, क्योंकि एक मन एक समय में अनेक विषयों में नहीं जा सकता। अतः सब इन्द्रियों की एक साथ प्रवृत्ति नहीं होती है। मन के एक से अधिक होने पर एक साथ में एक से अधिक इन्द्रिय विषयों का ज्ञान सम्भव होता।[93]

मन के विषय

चिन्त्य, विचार्य, ऊह्य, ध्येय, संकल्पय तथा अन्य जो कुछ भी मन द्वारा ज्ञेय है, वे सब मन के विषय हैं।[94] चिन्तन करना, विचार करना, ऊह्य, ध्यान, संकल्प आदि मन के निरपेक्ष व्यापार हैं। इसके लिए किसी बाह्य इन्द्रिय की (ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रियों की) सहायता की आवश्यकता नहीं होती है अतः ये मन के विषय कहलाते हैं।

मन की वृत्तियाँ

मनोवृति एक मानसिक अनुभव है। यह स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब वाह्य उतेजनाएँ समाप्त हो जाती हैं और उनका प्रभाव शेष रह जाता है। इस समय मनुष्य जो मानसिक चेष्टा करता है उसे मनोवृत्ति अथवा चितवृत्ति कहते हैं।

शरीर की क्रियाओं में वात, पित्त और कफ का जो स्थान है मन के कार्यों में वही स्थान त्रिगुण-सत्व, रज और तम का है। इन तीनों गुणों के न्यूनाधिक्य में जिस गुण का बाहुल्य होता है, मन की वृत्ति उसी के अनुसार होती है।[95]

चंचलता के कारण मन जिस गुण का अनुवर्तन करता है, उस मनुष्य के मन को उसी गुण वाला कहा जाता है।

जब मन पर सात्विक गुण का बाहुल्य होता है तब सात्विक मन होता है यह सात्विक मनोवृत्ति का परिचायक है। रजोगुण के बाहुल्य पर राजस मन राजस मनोवृत्ति वाला तथा तमोगुण के बाहुल्य पर तामस मन तमो मनोवृत्ति वाला होता है।

सत्वगुण मन को सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तमोगुण ज्ञान को आच्छादित करके प्रमाद में लगाता है।[96]

मनोवृत्ति के प्रकार

मनोवृत्ति दो प्रकार की होती है—परिदृष्ट (प्रत्यक्ष) तथा अपरिदृष्ट (परोक्ष) मनोवृत्ति।

परिदृष्ट मनोवृत्ति के कारण

1. प्रमाण। 2. विपर्यय। 3. विकल्प। 4. निद्रा। 5. स्मृति।[97]

अपरिदृष्ट मनोवृत्ति

जिन वस्तुओं का परिदृष्ट द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता परन्तु वस्तु के अस्तित्व मात्र का ज्ञान आगम (आप्तोपदेश) अथवा अनुमान द्वारा जाना जा सके ऐसा होना अपरिदृष्ट मनोवृत्ति के कारण हैं। यह सात प्रकार की होती है-1. निरोध। 2. धर्म। 3. संस्कार। 4. परिणाम। 5. जीवन। 6. चेष्टा। 7. शक्ति।

ये सात चित्त के ऐसे धर्म हैं जिनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है।[98]

मन के कर्म

1. इन्द्रियाभिग्रह-(इन्द्रियों में अधिष्ठित होना तथा उन्हें नियंत्रण में रखना)।
2. स्वनिग्रह। 3. ऊह तथा 4. विचार करना।

मन के उपरोक्त वर्णित कर्मों को तीन विभागों में रखा जा सकता है–

1. संज्ञानात्मक कर्म (Cognitive functions–बुद्धि प्रधान कर्म)।
2. भावनात्मक कर्म (Affective functions–भावनात्मक कर्म)।
3. चेष्टात्मक कर्म (Conative functions–शारीरिक चेष्टा प्रधान कर्म)।

वाल्मीकि रामायण में भी मन नामक अतीन्द्रिय का वर्णन स्थान-स्थान पर किया गया है यथा–

जो नेत्रों एवं मन को भी अत्यन्त प्रिय लगने वाला है।[99]

उत्साह, सामर्थ्य और मन में हिम्मत न हारना ये कार्य की सिद्धि करने वाले सद्गुण कहे गये हैं।[100]

तदन्तर महान प्रयास करके मैंने मन और नेत्रों को सूर्यदेव में लगाया।[101]

मैनाक ने मन को आह्लादित सा करते हुए मधुर वाणी में कहा।[102]

मेरा मन भी .... मन को रमाने वालों में सर्वश्रेष्ठ श्री राम को देखने का हो रहा है।[103]

मन को संयम में रखकर ....[104]

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में मन की विस्तार से वर्णन किया गया है।

बुद्धि

अन्तः करण के दो तत्व होते हैं–मन एवं बुद्धि।

मन का अवलोकन करने के पश्चात् बुद्धि का वर्णन एवं उल्लेख प्रस्तुत है।

संज्ञानात्मक कर्म मन का बुद्धि प्रधान कर्म है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण कर उनका मन से सानिध्य कराती हैं। मन उन पर संकल्प-विकल्प कर बुद्धि को सौंप देता है। बुद्धि विचार तथा संकल्पों का विवेचन कर निश्चयात्मक निर्णय लेती है। इन निर्णयों से ही संस्कारों की उत्पत्ति होती है तथा संस्कारों से स्मृति बनती है। इस प्रकार समस्त ज्ञान व्यापार बुद्धि के अधीन रहता है। बुद्धि को इसलिये ज्ञान के अर्थ में भी प्रस्तुत करते हैं। समस्त व्यवहारों का कारण जो ज्ञान है, वह बुद्धि है, (सर्वव्यवहार हेतुर्ज्ञानं बुद्धिः) अथवा शरीर में अर्थ (विषयो)

का ज्ञान बुद्धि है, (अर्थ प्रकाशो वा बुद्धिः)।

मन से युक्त इन्द्रियाँ अपने विषय को ग्रहण करती हैं (इससे जो ज्ञान होता है वह निर्विकल्पक होता है) तदन्तर मन के द्वारा उसके गुण दोष की कल्पना की जाती है अर्थात् मन, उसके गुण-दोष के अनुसार विचार करता है। इस प्रकार विचार के पश्चात् उस विषय में निश्चियात्मक बुद्धि उत्पन्न होती है उसके द्वारा व्यक्ति बुद्धिपूर्वक कहने अथवा करने का निश्चय करता है।[107]

आचार्य चरक ने अन्तःकरण की गणना में चित्त तथा अहंकार को छोड़ते हुए केवल मन और बुद्धि का ही समावेश किया है। बुद्धि जब निश्चय करने पर उद्यत होती है कि अमुक ग्रहण करना है तथा अमुक छोड़ना है ऐसा वह अहंकाराधीन ही करती है। अतः बुद्धि के इस व्यापार में अहंकार का भी ग्रहण हो जाता है। वास्तव में मन के विभिन्न कार्यों के लिये ही यह विभिन्न संज्ञाएँ प्रदान की गयी हैं। जब किसी बात पर संकल्प-विकल्प की स्थिति होती है तो मन का कार्य होता है, जब निश्चियात्मक स्थिति होती है तो कर्ता को बुद्धि कहते हैं। स्मरणात्मक स्थिति को चित्त द्वारा किया हुआ कहते हैं तथा ममत्वभाव को अहंकार द्वारा किया हुआ मानते हैं।

रजो गुण के कारण ही बुद्धि कार्य में प्रवृत्त होती है। उस समय यदि रजोगुण के साथ सत्व गुण प्रधान होता है तो सात्विक बुद्धि कहलाती है। सात्विक बुद्धि धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य का ज्ञान कराती है यदि तमोगुण प्रधान है, तामसिक बुद्धि अधर्म, अज्ञान तथा अनैश्वर्यज्ञान का कारण होती है। अतः बुद्धि ही समस्त संस्कारों का अधिष्ठान है। बुद्धि के इस जन्म में सात्विक होने पर भी वह पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण राजसिक अथवा तामसिक भी हो सकती है।

बुद्धि द्वारा उत्पन्न ज्ञान दो प्रकार का होता है

1. संस्कार जन्य ज्ञान
2. इससे भिन्न ज्ञान अनुभव कहलाता है।

अनुभव भी दो प्रकार का होता है। 1. यथार्थ। 2. अयथार्थ।

यथार्थ (True) अनुभव को प्रमा अथवा विद्या कहते हैं। प्रमा प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आप्तोपदेश द्वारा उत्पन्न होती है। बुद्धि द्वारा यदि यथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है तब अयथार्थ ज्ञान (अज्ञान) की उत्पत्ति होती है अथवा विषम रूप में कर्मों में प्रवृत्त होती है। इसे आयुर्वेद प्रज्ञापराध मानना है। प्रज्ञापराध को मन की दशा द्वारा जान सकते हैं।[108]

मनोअधिष्ठित इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय के अतियोग, अयोग अथवा मिथ्यायोग से विकृत हुई अपनी-अपनी बुद्धि (श्रोत, स्पर्शन, चक्षु, बुद्धि, रसन, घ्राण बुद्धि) का संहार करती है जिससे अयथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके विपरीत प्राकृतावस्था में रहती हुई ये इन्द्रियाँ अपनी-अपनी बुद्धि का सन्तर्पण करती हैं उससे यथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति होती है।[109]

पाश्चात्य दर्शन शास्त्री बुद्धि तथा ज्ञान को पृथक्-पृथक् मानते हैं। उनका कथन है कि बालक की बुद्धि उसकी आयु के साथ बढ़ती है किन्तु किशोरावस्था में एक आयु पर आकर उसका विकास रुक जाता है जिस आयु पर आकर यह विकास रुकता है वह ठीक-ठीक बताना कठिन है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में यह पृथक-पृथक है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आयु के उपरान्त मानसिक अभिवृद्धि नहीं होती है परन्तु बाद में बुद्धि नहीं वरन ज्ञान बढ़ता है। इस प्रकार ज्ञान एक अर्जित शक्ति है तथा बुद्धि जन्मजात योग्यता है।

वाल्मीकि रामायण में बुद्धि का उल्लेख भी निम्नलिखित स्थानों पर मिलता है-

श्री राम के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है वे बुद्धिमान, नीतिज्ञ हैं।[110]

एक अन्द स्थान पर कहा गया है—

कुम्भकर्ण! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो परन्तु तुम्हारी दृष्टि (बुद्धि) निम्न श्रेणी के लोगों के समान है।[111]

विभीषण की बुद्धि की तुलना बृहस्पति जी से करते हुए कहा गया है-विभीषण बृहस्पति के समान बुद्धिमान थे।[112]

उपरोक्त तत्वों का एवं उद्धरणों का विधिपूर्वक अध्ययन करने से यह स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है कि रामायण में अन्तः करण के दोनों तत्वों, मन एवं बुद्धि की विशद् व्याख्या की गयी है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थ न होने के कारण इसमें मन एवं बुद्धि को आयुर्वेदिक दृष्टि से तो प्रस्तुत नहीं किया है-किन्तु इसका उल्लेख अवश्य विभिन्न संदर्भों में किया गया है।

5. इन्द्रियाँ

इन्द्रियाँ बाह्य संसार में प्रवेश के द्वार हैं। इन्हीं के द्वारा हम परिवेश में वर्तमान वस्तुओं के प्रति सचेत होते हैं, उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं। बुद्धि इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा कार्य करने में प्रवृत्त होती है। चक्षु के बिना देखना, श्रोत्र के बिना सुनना, घ्राण के बिना सूँघना, रसन के बिना स्वाद ले संकना तथा स्पर्श के बिना स्पर्शज्ञान का अनुभव कर सकना असम्भव है और जब प्राणी न देखेगा, न सुनेगा, न सूँघेगा, न स्वाद लेगा और न स्पर्शानुभूति ही ग्रहण करेगा तो उसमें कार्य करने की प्रेरणा कहाँ से जगेगी। इन्द्रियों के इसी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद की संहिताओं में इनकी विस्तार से व्याख्या की गयी है।

तर्क भाषा के अनुसार इन्द्रिय वह प्रमेय है जो शरीर से संयुक्त, अतीन्द्रिय तथा ज्ञान का कारण हो।[111] इस परिभाषा में इन्द्रिय की निम्न चार विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है—

1. इन्द्रिय प्रमेय अर्थात् प्रमाण का विषय है। इसे जाना जा सकता है। इसका बोध कराया जा सकता है।
2. इन्द्रिय शरीर संयुक्त है। शरीर में अपने अधिष्ठानों में स्थित रहकर यह कार्य

में प्रवृत्त होती है। साधारणतः शरीरगत अधिष्ठानों से पृथक् रहकर इसके कार्यों की कल्पना नहीं की जा सकती।

3. इन्द्रियों का ज्ञान अप्रत्यक्ष रूप से अनुमान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इन्द्रिय का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष संभव नहीं। चक्षु दूसरी वस्तुओं को तो देख सकता है पर स्वयं को नहीं। दर्पण में इन्द्रियाधिष्ठान को देखा जा सकता है, चक्षु नहीं।
4. इन्द्रियाँ ज्ञान के कारण हैं। बाह्य संसार का ज्ञान इन्हीं के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। भौतिकवादियों के अनुसार हमारे समस्त ज्ञान-विज्ञान के ये ही आधार हैं। यहाँ तक कि संसार की तथा स्वयं अपने की संकल्पनाएँ भी इन्हीं इन्द्रियों का प्रतिफल हैं।[112]

इन्द्रियों की संख्या

इन्द्रियाँ दो प्रकार की मानी गयी हैं—अन्तरिन्द्रिय तथा बहिरिन्द्रिय। अन्तरिन्द्रिय के द्वारा प्राणी शरीर के अंदर का ज्ञान प्राप्त करता है। हमारे शास्त्रकारों ने मन को ही अन्तरिन्द्रिय माना है। यथा, तर्क संग्रह के अनुसार जिस इन्द्रियके द्वारा हमें सुखदुःखादि की उपलब्धि होती है वही मन है (सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः)। बहिन्द्रियाँ बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक होती हैं। चक्षु, श्रोत्र आदि बहिरन्द्रियाँ हैं।

बहिरन्द्रियाँ पुनः दो प्रकार की मानी गयी हैं-ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त कराने का साधन हैं और कर्मेन्द्रियाँ कर्म सम्पादन का। चक्षु, श्रोत आदि ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और हस्तपादादि कर्मेन्द्रियाँ। आयुर्वेद में इन्द्रिय शब्द प्रायः ज्ञानेन्द्रियों के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

इन्द्रियाँ पाँच हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसन तथा स्पर्शन।[113] चक्षु देखने का, श्रोत्र सुनने का, घ्राण सूँघने का, रसन स्वाद ग्रहण करने का और स्पर्शन स्पर्श को अनुभव करने का कार्य करती है।

इन्द्रियों के द्रव्य

न्याय वैशेषिक के अनुसार कार्य के समवायी कारण तथा गुण और कर्म के आश्रयभूत पदार्थ को 'द्रव्य' कहते हैं। द्रव्य ही किसी वस्तु का उपादान कारण होता है। इसी से वस्तुएँ बनती हैं। इनकी संख्या नौ है—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, दिक्, काल, आत्मा और मन। ये कारण-द्रव्य कहलाते हैं। इनसे प्रसूत स्थूल सृष्टियाँ कार्य-द्रव्य कहलाती हैं। चरक ने कार्य-द्रव्यों की दो कोटियाँ बतलायी हैं—सेन्द्रिय अर्थात् चेतन द्रव्य तथा निरिन्द्रिय अर्थात् अचेतन द्रव्य।[114] समस्त भौतिक सृष्टि का उपादान कारण पञ्चमहाभूत हैं। इन्द्रियाँ और इन्द्रियार्थ भी भौतिक हैं।[115] उनका भी उपादान कारण पंच महाभूत ही हैं। पञ्च भौतिक होते हुए भी प्रत्येक इन्द्रिय में एक-एक द्रव्य का प्राधान्य है।[116] जिस इन्द्रिय में जिस द्रव्य की प्रधानता है उसे उसी से निर्मित माना गया है। आकाश से श्रोत्र,

वायु से स्पर्शन, ज्योति से चक्षु, अप् से रसन तथा भू से घ्राण की उत्पत्ति की कल्पना की गयी है।[117]

भारतीय दर्शन में इन्द्रियों की भौतिकता के सम्बन्ध में काफी मतभेद हैं। जहाँ एक ओर सांख्य इन्हें वैकारिक अहंकार से उत्पन्न मान इनकी भौतिकता का स्पष्ट विरोध करता है।[118] वहीं दूसरी ओर न्याय, वैशेषिक एवं वेदान्त इनकी भौतिकता का प्रतिपादन करते हैं।[119]

दोनों ही दृष्टियाँ इन्द्रियों के जड़त्व से इन्कार नहीं करतीं। सांख्य-प्रतिपादित वैकारिक अहंकार भी तो जड़ प्रकृति का ही विकार है। दोनों में अंतर है तो केवल सूक्ष्मता की मात्रा का। एक इन्हें अधिक सूक्ष्म मानती है, दूसरी कम।

इन्द्रियों के अधिष्ठान

अधिष्ठान वास स्थान अथवा रहने की जगह को कहते हैं। इन्द्रियाँ जिन स्थानों में रहती हों उन्हें इन्द्रिय अधिष्ठान कहते हैं। पाँच इन्द्रियों के पाँच अधिष्ठान हैं—दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासागुहा, जिह्वा तथा त्वचा। इन्द्रियाँ अपने ही अधिष्ठानों में रहकर विषयों को ग्रहण करती हैं।[120]

इन्द्रियों के स्रोत

इन्द्रियाँ अपने आभ्यान्तरिक अधिष्ठान मस्तिष्क में स्थित रह विशेष प्रकार के स्रोतों के द्वारा जिन्हें इन्द्रिय-स्रोत कहते हैं, अपना कार्य करती हैं। चरक के अनुसार ये स्रोत मस्तिष्क से उसी प्रकार बंधे हैं जैसे सूर्य से सूर्य की किरणें।[121] अपने-अपने कार्य के अनुरूप ही इनके अलग-अलग नाम पड़ गये हैं—यथा्—दृष्टि-नाड़ी, श्रवण-नाड़ी आदि। दृष्टि-नाड़ी तथा दोनों नेत्रों की सहायता से चक्षु बाह्य जगत की दृश्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करता है। श्रवण नाड़ी तथा दोनों कानों के माध्यम से स्रोत शब्दोत्तेजनाओं को ग्रहण करता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ भी अपना-अपना कार्य सम्पादित करती हैं।

इन्द्रियों के अर्थ

अर्थ विषय को कहते हैं। इन्द्रियाँ जिन विषयों को ग्रहण करती हैं उन्हें ही इन्द्रियार्थ कहते हैं। ये भी पाँच है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।[124] इनमें से शब्द श्रोत्र का, स्पर्श स्पर्शन का, रूप चक्षु का, रस रसन का और गन्ध घ्राण का विषय है। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में इन्हीं को समुचित उत्तेजना (Appropriate Stimulas) कहा जाता है।

मन के साथ इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को ग्रहण करती हैं। इसके बाद मन संकल्प करता है कि यह वस्तु गुण युक्त है अथवा दोष युक्त है। इस विषय में जो निश्चियात्मिका बुद्धि होती है उसी के अनुसार मनुष्य बुद्धिपूर्वक कुछ कहने अथवा सुनने में समर्थ होता है।[123]

वाल्मीकि रामायण में इन्द्रियों का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में इनका उल्लेख किया गया है यथा—

राजा का मन बहुत उदास हो गया, उनकी इन्द्रियाँ चंचल एवं व्याकुल हो उठीं और वे पुनः अधिक विषाद करने लगे।[124]

वह गान सबकी श्रवणेन्द्रियों को अत्यन्त सुखद प्रतीत होता था।[125]

सीता जी के विषय में ऐसे रूखे, कठोर, तीखे और इन्द्रियों को संताप देने वाले दुर्वचन को सुनकर वे कदापि जीवित नहीं रहेंगे।[126]

मेरी इन्द्रियाँ विचलित हो रही थीं।[127]

फूलों के संसर्ग से सुगन्धित तथा घ्राणेन्द्रिय को सुख देने वाली मन्द वायु चलने लगी।[128]

उपरोक्त संदर्भों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि रामायण में इन्द्रियों का नामोल्लेख पूर्वक वर्णन किया गया है।

6. प्रकृति भेद--वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक प्रकृति

गर्भस्थ शिशु की देह पिता के शुक्राणु तथा माता के शोणित (अण्डाणु, डिम्ब) के संयोग से बनती है। संयोग के साथ शुक्राणु तथा डिम्ब में जो दोष प्रबल होते हैं उन्हीं के अनुसार शिशु की गर्भ में प्रकृति (मानसिक-शारीरिक गठन) बनती है और आजन्म बनी रहती है।[129]

शुक्र और शोणित (डिम्ब) की प्रकृति, काल (माता की अवस्था भी) तथा गर्भाशय की प्रकृति, माता के आहार, विहार की प्रकृति और महाभूतों के विकार की प्रकृति पर गर्भ शरीर की प्रकृति निर्भर होती है। (अधिकृत भूत सृष्टि उत्पत्ति नहीं कर सकते हैं अतः महाभूतों के पञ्चीकरण को विकार कहा गया है)। ये प्रकृतियाँ जिन एक अथवा अधिक प्रबल दोषों (वात, पित्त, कफ) से संयोग करती हैं उन्हीं दोषों से गर्भ भी अनुबद्ध हो जाता है। इस प्रकार गर्भ के प्रारम्भ में प्रबल दोष, जिससे गर्भ अनुबद्ध हो जाता है, उस पुरुष की 'दोषज प्रकृति' बनाते हैं। अतएव कुछ मनुष्य वाताधिक्य से वातल प्रकृति, पित्ताधिक्य से पित्तल प्रकृति, कफाधिक्य से श्लेष्मल प्रकृति, द्वन्द्वाधिक्य से द्वन्द्वज प्रकृति तथा दोषों की समावस्था से समप्रकृति वाले होते हैं। इस प्रकार दोषज प्रकृतियाँ सात प्रकार की होती हैं।[130]

आयुर्वेद के अन्य संहिता ग्रन्थों में इन्हीं सात प्रकार की दोषज प्रकृतियों का वर्णन किया गया है। ये हैं--पृथक-पृथक दोषों के अनुसार तीन प्रकार की 1. वात प्रकृति। 2. पित्त प्रकृति। 3. कफ-प्रकृति, दो दोषों के संयोग से भी तीन प्रकार की। 4. वात-पित्त प्रकृति। 5. वात-कफ प्रकृति। 6. पित्त कफप्रकृति तथा तीनों दोषों के साथ संयोग से एक प्रकार की 7. समवात पित कफ प्रकृति। जन्म से ही प्रत्येक व्यक्ति इन सातों प्रकृतियों में से किसी एक प्रकार की प्रकृति का स्वामी होता है।[131]

इन प्रकृतियों में भी सम प्रकृति श्रेष्ठ कही गयी है। इस प्रकृति वाले व्यक्ति स्वस्थ, निरोग रहते हैं तथा अन्य प्रकृति वाले व्यक्ति में रोगों से आक्रान्त होने की सम्भावना अधिक रहती है। सम प्रकृति के अतिरिक्त कफ प्रकृति उत्तम, पित्त

प्रकृति मध्यम, वात-प्रकृति हीन तथा द्विदोषज प्रकृतियाँ निन्दनीय कही गयी हैं।[132]

विष की प्रबलता से उत्पन्न हुआ कीट जिस प्रकार अपने शरीर गत विष से नहीं मरता है इसी प्रकार शरीर गत प्रकृति मनुष्य को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाती है।[133]

यद्यपि सम प्रकृति के अतिरिक्त अन्य प्रकृतियों में दोष समभाव से स्थित नहीं होते हैं परन्तु इन प्रकृतियों से बढ़े हुए दोषों द्वारा मनुष्यों को हानि नहीं होती है उदाहरण के लिये—जिस प्रकार विषैले सर्प को अपने विष से कोई हानि नहीं होती। उसी प्रकार यह दोषोत्कटता गर्भ से होने के कारण सहज होती है अतः घातक नहीं होती है। सुश्रुत संहिता की टीका करते हुए इस विषय पर डल्हण ने कहा है कि—दोषोत्कटता दो प्रकार की होती है 1. प्राकृत तथा 2. वैकृत। गर्भ से ही प्रकृति के निर्माण में जिन दोषों की प्रबलता होती है वे प्राकृत हैं अतः हानिकर नहीं हैं। अन्य समय की दोषों की उत्कटता वैकृत है अतः हानिकर है। चरक पाणिदत्त चरक संहिता की टीका में कहते हैं कि दोषोत्कटता तीन प्रकार की होती है—1. हीन (अल्प) 2. मध्यम तथा 3. उत्तम। गर्भोत्पति के साथ अल्पदोषोत्कटता होती है, अतः घातक नहीं होती है।

प्रकृतियों का प्रकोप अर्थात् वृद्धि होना यथा सामान्य वातिक से तीव्र वातिक हो जाना आदि, प्रकृति का अन्य भाव होना यथा वात-प्रकृति का पित्त या कफ प्रकृति में परिवर्तन होना आदि। प्रकृति का क्षय हो जाना यथा तीव्र वात-प्रकृति का अल्पवात प्रकृति में परिवर्तन हो जाना आदि। ये परिवर्तन स्वाभाविक नहीं होते हैं। स्वभाव से प्रकृति के भावों में वृद्धि, ह्रास अथवा अन्य भावों में परिवर्तन नहीं होता है। प्रकृति में इस प्रकार के परिवर्तन आयु समाप्ति के सूचक हैं। ये लक्षण उस समय बहुधा दिखाई देते हैं जबकि जीवन की अंतिम अवस्था होती है।[134]

वातिक प्रकृति पुरुष के लक्षण

वात-प्रकृति पुरुष अल्पकेश युक्त, तथा रुक्ष शरीर वाला, वाचाल, चपल तथा स्वप्न में आकाश में विचरण करने वाला होता है।[135]

वातिक पुरुष बकरी, गीदड़, खरगोश, चूहा, ऊँट, कुत्ता, गिद्ध, कौवा, गधा आदि के स्वभाव वाला होता है। अतः वात-प्रकृति व्यक्ति इन पशुओं के समान चपल, अदृढ़, मत्सर और भीरू होता है।[136]

गीदड़ ऊँट, गिद्ध, चूहे तथा कौवे के स्वभाव वाले व्यक्ति की वात-प्रकृति को जानना चाहिये।[137]

वात के गुण रुक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद तथा खर हैं।[138]वात-प्रकृति मनुष्यों के शारीरिक तथा मानसिक लक्षण इन गुणों के अनुरूप होते हैं।

शारीरिक लक्षण

शरीर रुक्ष, कृश तथा कुरूप होता है। अंग बेडौल तथा आकृति लम्बी होती है। शरीर पर कण्डराएँ और शिराएँ उभरी रहती हैं। त्वचा रुक्ष और फटी हुई होती

है। दाढ़ी, मूँछ, केश, रोम, दाँत, नख रुक्ष होते हैं। नेत्र, खर, धूसर, वृत (गोल), कुरूप तथा मृतप्रायः होते हैं तथा सोते समय उभरे हुए प्रतीत होते हैं। स्वर अत्यन्त जर्जर तथा रुक-रुक कर बोलने वाला होता है, अंग हर समय फड़कते रहते हैं। तेजी से चलता है और चलते समय संधियों में शब्द होता है। शीत को सहन नहीं कर सकता है। अतः शीत के कारण शरीर में कम्प तथा स्तम्भन हो जाता है। भोजन अल्प करता है अम्ल तथा लवणरसों की इच्छा रखता है और ये रस सह्य होते हैं। शरीर में पित्त (अग्नि-ऊषा Temperature) कम होता है तथा कम बलशाली होता है।

मानसिक लक्षण

कार्य में शीघ्र प्रवृत्त हो जाने की आदत होती है किसी बात को शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है परन्तु अल्प स्मृति के कारण शीघ्र ही भूल जाता है। बहुत बोलने वाला, अदृढ़ स्वभाव वाला होता है। शीघ्र ही क्षुब्ध हो जाता है। धैर्य रहित, कृतघ्न तथा मैत्री में अदृढ़ होता है। अजितेन्द्रिय, आचारहीन, स्त्रियों को अप्रिय तथा कम सन्तान वाला होता है। नास्तिक, द्वेषी, मत्सर, चोरी आदि के स्वभाव वाला होता है।

स्वप्न में पर्वतों और वृक्षों को देखता है तथा आकाश में अपने को उड़ता हुआ अनुभव करता है।

पितप्रकृति पुरुष के लक्षण

पित्त प्रकृति पुरुष के केश असमय में ही श्वेत हो जाते हैं, वह बुद्धिमान होता है, स्वेद तथा क्रोध बहुत आता है, स्वप्न में अग्नियाँ देखता है।[139] पित्त प्रकृति पुरुष सर्प, उल्लू, गन्धर्व, यक्ष, बिल्ली, बंदर, व्याघ्र, रीछ और नेवले के स्वभाव के समान स्वभाव वाला होता है।[140]

पित्त प्रकृति पुरुष की आयु मध्यम, बल मध्यम होता है। वह विद्वान होता है। क्लेश को सहन नहीं कर सकता है तथा व्याघ्र, रीछ, बंदर, बिल्ली और यक्ष के स्वभाव वाला होता है।[141]

पित्त के गुण स्नेह युक्त उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर, कटु हैं। (सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु-चरक) (पित्त सस्नेह तीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम्-अ. हृ.) पित्त प्रकृति पुरुष में इन गुणों की प्रधानता रहती है अतः उनके शारीरिक तथा मानसिक लक्षण इन गुणों के अनुरूप होते हैं।

शारीरिक लक्षण

शरीर सुकुमार तथा वर्ण में गौर होता है। शरीर के अंग पेशियाँ और संधियाँ शिथिल रहती हैं। अंग पर झुर्रियाँ शीघ्र पड़ जाती हैं। मुख, नख, नेत्र, तालु, जिह्वा हाथ, पैर, ताम्र वर्ण के, नेत्र छोटे और कपिल वर्ण के, पलकें छोटी और कम बालों वाली होती हैं। केश तथा रोम भी अल्प तथा कपिल वर्ण के होते हैं। केश जल्दी ही श्वेत हो जाते हैं और गंजापन भी हो जाता है। स्वेद बहुत आता है तथा आमगन्धी होने के कारण दुर्गन्धमय होता है। शरीर सामान्य से अधिक उष्ण

रहता है। भूख तथा प्यास बहुत लगती है। उष्णता को सहन नहीं करने के कारण शीतल वस्तुओं की इच्छा होती है। मैथुन शक्ति कम अतः कम सन्तान वाला होता है। त्वचा पर पिप्लु, व्यंग तथा तिल अधिक होते हैं। पिड़िकाएँ बहुत निकलती हैं।

मानसिक लक्षण

पित्त प्रकृति पुरुष तीक्ष्ण स्वभाव का होता है। शीघ्र ही क्रोधित तथा शीघ्र ही शान्त हो जाने वाला, शृंगार प्रिय, वीर, साहसी, बुद्धिमान, मेधावी, उत्तम धारणा शक्ति सम्पन्न, कुशाग्र-बुद्धि, तेजस्वी, भय रहित, प्रतिवादी के पक्ष का खण्डन कर बोलने वाला होता है। आश्रितों को सान्त्वना देने वाला तथा अपने आश्रय दाता से प्रेम करने वाला, उत्तम चरित्रवान होता है। ऐसा व्यक्ति ईर्ष्यालु भी होता है।

स्वप्न में अग्नि-दाह, उल्कापात, बिजली, सूर्य, अग्नि, स्वर्ण, पलाश, कर्णिकार आदि दिखाई दिया करते हैं।

कफ प्रकृति पुरुष के लक्षण

कफ प्रकृति पुरुष गंभीर बुद्धि, स्थूल अंग, स्निग्ध केश, अति बलवान तथा स्वप्न में जलाशयों को देखने वाला होता है।[142]

कफ प्रकृति पुरुष ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, सिंह, घोड़ा, हाथी, गौ, सांड, गरुड़ और हंस के समान गम्भीर स्वभाव वाला होता है।[143]

कफ प्रकृति का मनुष्य ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, सिंह, घोड़ा, हाथी, गौ, सांड के स्वभाव वाला होता है।[144]

श्लेष्मा के गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, स्थिर तथा पिच्छिल (गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर पिच्छिला) चरक, स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः, श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः (अ. हृ.) गुण हैं। श्लेष्म पुरुष की प्रकृति इन गुणों के अनुरूप होती है।

शारीरिक लक्षण

शरीर सुन्दर, सुडौल तथा सुविभक्त होता है। अंगस्थिर, पुष्ट तथा भरे हुए, बाहें लम्बी तथा गोल, वक्ष स्थल पुष्ट एवं मस्तक ऊँचा होता है। वर्ण निर्मल एवं दूर्वा, नीलकमल, कोमल, नीम-पत्र, सरकण्डा, प्रियङ्ग, धान्य, गोरोचन अथवा सुवर्ण के समान होता है। मुख से प्रसन्नता टपकती है। नेत्र प्रसन्न, विशाल तथा कोरों में सुर्खी लिये हुए होते हैं। पलकें काली होती हैं। केश काले चमकदार होते हैं। चाल सार युक्त, दृढ़ तथा स्थिर हाथी के समान होती है। स्वर मेघ, मृदङ्ग, समुद्र तथा सिंह के समान गम्भीर होता है। अत्यधिक वीर्यवान, मैथुन शक्ति सम्पन्न तथा अधिक सन्तानों वाला होता है। शारीरिक विकार अत्यन्त अल्प होते हैं।

मानसिक लक्षण

सात्विक चित्त वाला, सत्यवादी, धर्मात्मा, स्मृतिवान् तथा मान को महत्त्व देने वाला एवं स्थिर स्वभाव का होता है। मन तथा वचन प्रवृत्ति में शीघ्रता नहीं करता

है। क्षोभ कम करने वाला, कृतज्ञ, वीर, सहनशील, ओजस्वी, शान्त, दीर्घायु, निर्लोभी तथा धनवान होता है। मित्रता तथा शत्रुता को स्थिर रखने वाला, आदरणीय पुरुषों का सम्मान करने वाला, सोच-समझकर कार्य करने वाला तथा हमेशा निश्चित बात कहने वाला है। भूख-प्यास-दुःख, क्लेश सहन करने वाला तथा अल्प क्रोधी, अल्प ईर्ष्या, चेष्टा और अल्प आहार-विहार वाला होता है। आयुष्यमान, धन, ऐश्वर्यवान, दीर्घ-दर्शी, पण्डित तथा लज्जा युक्त होता है। स्वप्न में कमल एवं पक्षियों से युक्त जलाशय, मेघ आदि को देखता है।

सम एवं द्वन्द्वज प्रकृतियों के लक्षण

सम-प्रकृति पुरुष में तीनों प्रकृतियों के उत्तम लक्षण तथा द्वन्द्वज प्रकृति वाले मनुष्यों में उन प्रकृतियों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।

भौतिक प्रकृतियाँ

कुछ आचार्यों के मतानुसार मनुष्य की प्रकृतियाँ पञ्च महाभूतों के कारण पाँच प्रकार की होती हैं—1. नाभस। 2. वायव्य। 3. आग्नेय। 4. जलीय। 5. पार्थिव। पवन (वायव्य) प्रकृति वाले व्यक्ति की प्रकृति के लक्षण वातिक प्रकृति वाले व्यक्तियों के समान होते हैं। दहन (आग्नेय) तेजस, प्रकृति वाले व्यक्तियों की प्रकृति पैत्तिक प्रकृति वाले व्यक्तियों के समान होती है। तोय (जलीय) प्रकृति वाले व्यक्तियों की प्रकृति कफज प्रकृति वाले व्यक्तियों के समान होती है। शेष दो पार्थिव तथा नाभस प्रकृतियों वाले व्यक्तियों के लक्षण इस प्रकार हैं—पार्थिव प्रकृति वाला व्यक्ति स्थिर, विपुल शरीर वाला तथा क्षमावान होता है और नाभस प्रकृति वाला व्यक्ति पवित्र आचरण वाला, विशाल शरीर छिद्रों वाला अर्थात् मुख, कर्ण, नासिका के बड़े छिद्रों वाला दीर्घायु होता है।[145]

मानस प्रकृतियाँ

मन की प्रकृति त्रिगुणात्मक होती है इसमें जिस गुण की गर्भ अवस्था के समय प्रधानता होती है उसी का प्रभाव मानसिक क्रियाओं पर सबसे अधिक होता है। इस प्रकार जन्म से ही तीन प्रकार की मानसिक प्रकृतियाँ होती हैं—

1. सात्विक प्रकृति।
2. राजस प्रकृति।
3. तामस प्रकृति।

सात्विक प्रकृति उत्तम, राजस प्रकृति मध्यम तथा तामस प्रकृति हीन होती है। सात्विक प्रकृति सात प्रकार की, राजस प्रकृति छः प्रकार की तथा तामस प्रकृति तीन प्रकार की होती है—

सात्विक प्रकृति के भेद तथा लक्षण

1. ब्रह्मकाय अथवा ब्रह्मसत्व

ऐसा व्यक्ति पवित्रता से रहता है, आस्तिक बुद्धि रखता है, ज्ञान-विज्ञान का अभ्यास करता है। गुरुजनों का एवं बड़ों का आदर सम्मान करता है, सत्य-प्रतिज्ञ,

जितात्मा, कार्य-अकार्य का विभाग करने वाला, वचन तथा प्रतिवचन से युक्त, स्मृतिवान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अप्रसन्नता तथा असहिष्णुता से रहित एवं सब प्राणियों पर समदृष्टि रखने वाला होता है।

2. महेन्द्रकाय अथवा ऐन्द्र सत्व

ऐसा व्यक्ति ऐश्वर्यवान्, शूरवीर, तेजस्वी, शास्त्रों के अनुसार आचरण करने वाला, निन्दित कर्म न करने वाला, अपने आश्रितों का भरण-पोषण करने वाला, दीर्घ-दर्शी, धर्म, अर्थ तथा काम में रत होता है।

3. वारुणकाय अथवा वारुण सत्व

ऐसा व्यक्ति ऐश्वर्यवान् शूरवीर, सहनशील, पवित्रता से प्रेम एवं अपवित्रता से द्वेष रखने वाला, शीत-पदार्थों में रुचि रखने वाला, निन्दित कर्मों को न करने वाला, भाषण में मधुर स्वभाव रखने वाला होता है।

4. कौबेर काय अथवा कौबेर सत्व

ऐसा व्यक्ति सम्पन्न, मान-सम्मान से युक्त, नित्य कर्म, अर्थ तथा काम में प्रवृत्त, स्पष्ट प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता वाला होता है।

5. गान्धर्वकाय अथवा गान्धर्व सत्व

ऐसा व्यक्ति नाच, गाने, बजाने, सुगन्धित वस्त्र, आभूषणों का शौकीन, इतिहास पुराण आदि में कुशल तथा स्वभाव में भ्रमणशील होता है।

6. याम्यकाय अथवा याम्यसत्व

ऐसे व्यक्ति का आचार कर्त्तव्यवान कर्त्तव्य में मर्यादित होता है तथा असीम उत्साह सम्पन्न, निर्भय, उत्तम स्मरण शक्तियुक्त, स्वच्छता प्रिय, राग, मोह, मद एवं द्वेष से वियुक्त, उद्यमी तथा ऐश्वर्यवान होता है।

7. ऋषिकाय अथवा आर्षसत्व

ऐसा व्यक्ति जप, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, अतिथि पूजक, ज्ञान-विज्ञान में निपुण, अहंकार, राग-द्वेष, मोह-लोभ एवं क्रोध रहित प्रतिभावान तथा विचारवान होता है।

इस प्रकार कल्याण भाव से सम्पन्न होने के कारण ये सात भेद शुद्ध सत्व के हैं। कल्याण अंश के सम्यक् योग के कारण ब्रह्मसत्व अत्यन्त शुद्ध जानना चाहिये।[146]

ये ब्रह्मकाय से ऋषिकाय तक सात प्रकार की प्रकृति वाले व्यक्ति सात्विक प्रकृति के होते हैं।[147]

राजस प्रकृति के भेद तथा लक्षण

राजस प्रकृति में रोष का अंश अधिक होता है इसके छः भेद हैं।

1. आसुरकाय अथवा आसुर सत्व

ऐसा व्यक्ति ऐश्वर्यवान, उग्र, क्रोधी एवं निर्दय स्वभाव वाला, दूसरों के गुणों पर भी दोषारोपण करने वाला, भोजन में अकेला खाने वाला (असूयक) एवं पेटू

(औदरिक) तथा व्यवहार में स्वार्थी एवं आत्मश्लाघी होता है।

2. सर्पकाय अथवा सार्पसत्व

ऐसा व्यक्ति क्रोध के समय शूर तथा अक्रोध के समय भीरू, घातक (तीक्ष्ण), परिश्रमी, आहार-विहार में चपल तथा कपटी होता है।

3. शाकुनकाय अथवा शाकुन सत्व

ऐसा व्यक्ति अत्यन्त कामी, असहिष्णु, चंचल चित्त वाला, हर समय आहार-विहार में रत तथा धन आदि का संचय न करने वाला होता है।

4. राक्षसकाय अथवा राक्षस सत्व

ऐसा व्यक्ति असहिष्णु, दीर्घकाल तक क्रोध में रहने वाला, अवसर देखकर प्रहार करने वाला, निर्दयी, अत्यन्त परिश्रमी, ईर्ष्यालु, अधर्म आचरण वाला तथा अत्यन्त आत्मश्लाघी होता है।

5. पैशाचकाय अथवा पैशाच सत्व

उच्छिष्ट आहार का सेवन करने वाला, तीक्ष्ण स्वभाव वाला, स्त्री लम्पट, निर्लज्ज, भीरू, दूसरों को डराने वाला, पवित्रता द्वेषी होता है।

6. प्रेतकाय अथवा प्रेतसत्व

आहार-प्रिय, शील, आचार, व्यवहार और उपचार से अत्यन्त दुःख देने वाला, अत्यन्त लोभी, आलसी, दूसरों के गुणों में भी दोषारोपण करने वाला, लालची एवं दान न करने वाला होता है।

ये छः प्रकार के सत्व के भेद 'रोष' के अंश से युक्त राजस प्रकृति के हैं।[148]

तामस प्रकृति के भेद तथा लक्षण

तामस प्रकृति में मोह का अंश अधिक होता है। इसके तीन भेद हैं—

1. पशुकाय अथवा पाशय सत्व

ऐसे व्यक्ति बुद्धिहीन, कामुक, नीच वेशभूषा युक्त, दूसरों की वस्तु को छीन लेने की प्रवृत्ति वाले निन्दित आहार-विहार वाले अत्यधिक सोने वाले होते हैं।

2. मत्स्यकाय अथवा मात्स्यसत्व

ऐसे व्यक्ति मूर्ख, भीरू, आहार लोलुप, परस्पर झगड़ने वाले, अस्थिर चित्त वाले, निरन्तर चलना-फिरना पसन्द करने वाले तथा जल प्रेमी होते हैं।

3. वानस्पत्यकाय अथवा वानस्पत्य सत्व

अत्यन्त आलसी, एक स्थान पर रहने की इच्छा वाले सब प्रकार के ज्ञान से शून्य, नित्य खाने में लगे रहने वाले एवं धर्म, अर्थ, काम से विरहित होते हैं।

इस प्रकार तामस सत्व के तीन भेद हैं। इनमें मोह का अंश होता है।[149]

सात्विक प्रकृति वाला सुख के समय उत्कर्ष तथा दुःख के समय दीनता नहीं दिखाता।

राजस प्रकृति वाला सुख में सुखी व दुःख में दुःखी हो जाता है।

तामस स्वभाव वाला अकारण ही सदैव दुःखाक्रान्त रहता है।

वाल्मीकि रामायण में वात-पित्त एवं कफ का तो कई स्थलों पर उल्लेख मिलता है किन्तु पुरुष की प्रकृति का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है तथापि विशद् अन्वेषण के पश्चात् एक स्थल पर प्रकृति का दर्शन है--

राजा दशरथ की चेतना लुप्त-सी हो गयी, वे उन्माद ग्रस्त से प्रतीत होने लगे। उनकी प्रकृति विपरीत सी हो गयी। वे रोगी से जान पड़ते थे। इस प्रकार भूपाल दशरथ मंत्र से जिसका तेज हर लिया गया हो उस सर्प के समान निश्चेष्ट हो गये।[150]

द्वितीय परिच्छेद

प्रशस्त सामुद्रिक लक्षण

सामुद्रिक शास्त्र केवल हस्तरेखा तक सीमित नहीं है। इसमें सम्पूर्ण मानव-शरीर के अवयवों का निरीक्षण कर उसके स्वभाव, उज्ज्वल भविष्य, स्वास्थ्य का निरूपण है। रामायण में पुरुष तथा स्त्रियों के शुभ-अशुभ चिन्हों का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया गया है।

पुरुषगत प्रशस्त लक्षण

विभिन्न आयुर्वेदीय संहिताओं का अध्ययन कर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुरुषगत विविध प्रशस्त लक्षण क्या होने चाहिये।

पाद लक्षण

जिसके चरण पसीना रहित, कोमल तलवे वाले हों, जिनमें परस्पर अंगुलियाँ सटी हों, मनोहर लाल वर्ण वाले नख हों। सुन्दर एड़ियाँ, गरम तथा नसों रहित हों। गम्भीर गण्ठों वाले कछुए की तरह ऊँचे हों तो वह मनुष्य नरेश होता है।

जङ्घका लक्षण

जिसकी जाँघों में रोयें विरल और सूक्ष्म हों और जाँघें गोलाकार हों। जिनकी ऊरू (पतली जाँघें) हाथी के सूंड के समान हों। दोनों जानु मांसल और सम हों तो वे राजा होते हैं और जिनकी जाँघे कुते या सियार के समान (चौड़ी) हों तो वे दरिद्री होते हैं।

रोम लक्षण

जिनके रोम कूप में से एक-एक रोम हों वे राजा होते हैं, जिनके रोम कूपों में दो-दो रोम हों वे पण्डित या वेदपाठी होते हैं जिनके रोम कूपों में तीन-तीन या चार-चार रोम हों वे मनुष्य धनरहित और दुःख भागी होते हैं, इसी प्रकार केशों के भी शुभा-शुभ लक्षण होते हैं।

जानु लक्षण

जिसके घुटने मांस रहित हों, वे परदेश में मरता है, जिसके घुटने थोड़े मांस वाले हों वह भाग्यशाली होता है। जिसके घुटने चौड़े हों वे दरिद्री होते हैं। जिनके घुटने गहरे हों वे स्त्री के वश में रहते हैं। जिनके घुटने मांसल हो वे राज्य पाते हैं और भारी घुटने दीर्घायु के द्योतक हैं।

लिङ्ग एवं वृषण लक्षण

जिनके अंडकोश छिपे हों यानि मांस से घिरे हो वे मनुष्य पृथ्वीपति होते हैं, जिनके वृषण सम हैं, वह राजा होता है।

स्फिक् लक्षण

जिसके कूल्हे बहुत मोटे हों वह दरिद्री होता है। जिसके कूल्हे मांसल हो वह सुखी होता है। जिसके कूल्हे मध्यम हों वह रोगी होता है जिसके कूल्हे मेढक के समान हों वह नरपाल होता है।

कटि-उदर लक्षण

जिसकी कमर सिंह के समान हो वह राजा होता है जिसकी कमर वानर या ऊँट के बच्चे के समान हों वह दरिद्री होता है, जिनके पेट समान हो वे भोगी होते हैं। जिनका पेट घड़ा या बटलोही की तरह हो वे दरिद्री होते हैं।

नाभि लक्षण

जिनकी नाभि बड़ी व चारों तरफ ऊँची हों वे सुखी होते हैं जिनकी नाभि छोटी व अदृश्य होकर गहरी हो वह उन्हें क्लेश दायक होती है।

पार्श्व (बाजू) लक्षण

जिनके बाजू मांसल व कोमल तथा प्रदक्षिणावर्त होकर रोमों से घिरे हों वे राजा होते हैं जिनके बाजू विपरीत हों वे दरिद्री तथा सुख विहीन होकर दास होते हैं।

चूचक लक्षण

जिनके स्तन शिर ऊँचे न हो वे लोग सौभाग्यशाली होते हैं जिनके स्तन शिर विषम होकर बड़े हों वे निर्धन होते हैं जिनके स्तन शिर मोटे व ऊँचे हों वे राजा होकर सुखी रहते हैं।

हृदय लक्षण

जिनका वक्षस्थल ऊँचा होकर मांसल हो वे राजा होते हैं, जिनका वक्ष स्थल विपरीत व कड़े बालों से युक्त हो वे प्राणी नराधम होते हैं। जिनका वक्ष-स्थल समान हों, वे धनी होते हैं, जिनका वक्ष-स्थल मोटा हों वे प्राणी वीर होते हैं, जिनका वक्ष-स्थल पतला हों वे दरिद्री होते हैं, जिनका वक्ष-स्थल विषम हों वे निर्धन होकर शस्त्राघात से मृत्यु पाते हैं।

जत्रु लक्षण

जिसकी हँसली असमान हों वह दुश्चरित्र होता है जिसकी हँसली अस्थि-संधियों से बँधी हुई हों वह धनहीन होता है, जिसकी हँसली ऊँची हों वह भोगी होता है, जिसकी हँसली निचली हो वह दरिद्री होता है जिसकी हँसली मोटी हों वह धनवान होता है।

ग्रीवा लक्षण

जिसकी गर्दन चपटी या नसों से व्याप्त होकर सूखी हो वह निर्धन होता है, जिसकी गर्दन भैंसे के समान हों वह सूरमा होता है। जिसकी गर्दन बैल के समान

हों वह शस्त्राघात से मृत्यु पाता है। जिसकी गर्दन शंख के समान (तीन से अंकित हों वह राजा होता है। जिसका कण्ठ लम्बा हों वह बहुभोगी होता है, जिसकी पीठ अभग्न होकर रोम हीन हो वे अर्थशाली होते हैं। इससे अन्य भाँति पीठ अशुभ दायक होती है।

स्कन्ध लक्षण

जिसके दोनों कन्धे मांस रहित, रोमों से व्याप्त व भग्न होकर छोटे हों वह निर्धन होता है जिनके कन्धे चौड़े व ऊँचे होकर भली-भाँति भरे हों वे पराक्रमी सुखी होते हैं।

बाहु लक्षण

जिनकी दोनों भुजाएँ गोलाकार, हाथी की सूंड के समान परस्पर बराबर और मोटी हों तथा घुटनों तक लम्बी हों वे भूपाल होते हैं। जिनकी दोनों बाहें रोम रहित छोटी हों वे निर्धन होते हैं।

हस्ताङ्गुली लक्षण

जिनके हाथ की अंगुलियाँ बड़ी हों वे दीर्घ जीवी होते हैं जिनकी अंगुलियाँ बलियों से रहित हों वे बड़े भाग्यशाली होते हैं जिनकी अंगुलियाँ पतली हों वे बुद्धिमान होते हैं। जिनकी अंगुलियाँ चपटी हों वे दास कर्म करने वाले होते हैं।

नख-लक्षण

जिनके नख चपटे व फटे से हों वे धन-हीन होते हैं, जिनके नख कुत्सित तथा विवर्ण हों वे कुदृष्टि से निहारने वाले होते हैं जिनके नख ताम्र वर्ण व लाल हों वे पृथ्वीपाल होते हैं।

अगुष्ठांगुली लक्षण

जिनके अंगूठे में यव का चिन्ह हो, वे धनी होते हैं जिनके अंगूठे की जड़ में यव का निशान हो वे पुत्रवान होते हैं, जिनकी अंगुलियों की पोरें लम्बी हों वे बड़े भाग्यशाली तथा दीर्घजीवी होते हैं। जिनकी हथेली की रेखाएँ चिकनी व गहरी हों वे धनी होते हैं, इसके विरुद्ध निर्धनी होते हैं जिनकी अंगुलियाँ विरली हों वे धनहीन और घनी अंगुली वाले द्रव्य-संग्रह करते हैं।

ओष्ठ, दशन, दंष्ट्रा लक्षण

जिनके ओठ स्फुटित, विखण्डित, विवर्ण और रूखे हों वे धनहीन होते हैं। बड़ी तीखी दाढ़ों वाले, चिकने, सघन व सम दाँत शुभ सूचक होते हैं।

मुख लक्षण

जिनका मुख सुशोभन, गोल, अमल व कोमल तथा समानाकार हो वे राजा होते हैं जिनका मुख पूर्वोक्त लक्षणों से विपरीत हो वे क्लेषभागी होते हैं जिनका मुख बड़ा भारी हो वे बुरे भाग्य वाले होते हैं।

कर्ण-लक्षण

मांस रहित कान वाले पाप कर्म से मौत पाते हैं जिनके कान चपटे हों वे बड़े

ही भोग-शाली होते हैं, जिनके कान छोटे हों वे कृपण होते हैं जिनके कान शंकु के समान हों वे पृथ्वीपाल होते हैं।

गण्डनासिका लक्षण

नीचा गण्ड-स्थल भोगी का होता है जिसका गण्ड-स्थल मांसविशिष्ट हो वह मंत्री होता है जिसकी नासिका शुक की चोंच के समान हो वह सुख भागी होता है। सूखी नासिका वाला चिरजीवी होता है।

नेत्र-लक्षण

जिनके दोनों नयन पद्मदल के समान हों वे धनी होते हैं। लाल नेत्रों वाले लक्ष्मी सम्पन्न होते हैं। बादामी अथवा पीले लोचन वाले बड़े अर्थशाली होते हैं जिनके लोचन बिलार के समान हों वे पापी होते हैं।

भृकुटि लक्षण

जिनकी भौहें ऊँची उठी हों वे अल्पायु होते हैं, जिनकी भौंहें विशाल तथा ऊँची हों, वे बड़े सुखी रहते हैं, जिनकी भौंहें विषम हों वे दरिद्र होते हैं जिनकी भौहें बाल चन्द्रमा के समान लची हों वे धनी होते हैं।

ललाट लक्षण

जिनके शंख (ललाट के पार्श्वों की हड्डियाँ) उन्नत होकर विशाल हो वे धन्य गिने जाते हैं जिनके शंख निचले हों वे धन व पुत्रों से रहित होते हैं जिनका ललाट विषम हो वे दरिद्र होते हैं, जिनका ललाट अर्धचन्द्राकार हो वे धनवान होते हैं।

शिरो लक्षण

जिनके मस्तक गोल हों वे गोधन सम्पन्न होते हैं जिनके शीश चपटे हों वे यौवन काल में माता-पिता के मारने वाले होते हैं और जिनके शीश बड़े हों वे दीर्घ जीवी होते हैं।

नाभि आदि के लक्षण

जिनकी नाभि, स्वर व शक्ति गंभीर हो तो वे पुरुष भाग्य वाले होते हैं। विस्तृत वक्षः स्थल, ललाट व मुख ये तीनों शुभ-दायक होते हैं।

वक्ष आदि के लक्षण

वक्षः स्थल, कक्षा, नख, नासिका, मुख और घाटी ये छः ऊंचे (उठे) हों और लिङ्ग, पीठ, घींच, जंघा ये चार छोटे हों तो हितकर होते हैं।

हनु आदि के दीर्घ लक्षण

जिनकी ठुड्डी, लोचन, बाहु, नासिका और स्तनों का अंतर ये पाँच दीर्घ हों वे राजा होते हैं। राजाओं के सिवा किसी के उक्त पञ्च स्थान दीर्घ नहीं होते।

स्वर लक्षण

जिनका शब्द हाथी, बैल, रथ-समूह, भेरी, मृदङ्ग, सिंह और मेघ के समान हो वह राजा होता है। जिसका शब्द गधे के समान व जर्जर तथा रूखा हो वह धन व सुखों से रहित होता है।

वर्ण-लक्षण

तेजस्वी और चिकने वर्ण वाले पृथ्वीपाल होते हैं। जिनका वर्ण मध्यम हो वे पुत्रवान और धनवान होते हैं। जिनका वर्ण रूखा हो वे निर्धन होते हैं। शुद्ध वर्ण शुभदायक होता है मिश्रित वर्ण वाले दीन होते हैं।

गति लक्षण

जिनकी गति बाघ, हंस, मतवाला हाथी, बैल और मोर के समान हो वह राजा होते हैं। जिनका गमन शब्द रहित, निश्चल हो वे भी समर्थ होते हैं। शीघ्रगामी दरिद्र होते हैं।

मुनि वाल्मीकि के प्रश्न करने पर महामुनि नारद ने श्री राम के गुणों का परिचय देते हुए उनके दैहिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। "इक्ष्वाकु वंश के भूषण श्री राम के कन्धे मोटे, भुजायें बड़ी, ग्रीवा शंख के समान, ठोड़ी मांसल।"[1] चौड़ी छाती, हँसली मांस से छिपी हुई, हाथ घुटने तक लम्बे, मस्तक सुन्दर, ललाट भव्य[2] शरीर मध्यम, सुडौल देह चिकना, वक्ष-स्थल भरा हुआ और आँखें बड़ी-बड़ी हैं, ये सभी दैहिक शुभ लक्षण हैं।[3]

अशोक वन में सीता के प्रश्न करने पर हनुमान जी ने श्री रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी के शारीरिक चिन्हों को बताया। "जनक नन्दिनी! श्री राम के नेत्र प्रफुल्ल कमल दल के समान विशाल एवं सुन्दर हैं। मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मनोहर है, वे जन्मकाल से ही रूप और उदारता आदि गुणों से सम्पन्न हैं।"[4] उनके कन्धे मोटे हैं, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, गला शंख के समान और मुख सुन्दर, गले की हँसली मांसल, नेत्रों में कुछ लालिमा[5] स्वर दुंदुभी के समान गम्भीर, शरीर का रंग सुन्दर, चिकना, अंग सुकोमल, सुडौल और बराबर कान्ति श्याम,[6] उनके तीन अंग (वक्षस्थल, कलाई और मुट्ठी) स्थिर (सुदृढ़) भौहें, भुजाएँ, मेढ़ू ये तीन अंग लम्बे, केशों का अनुभाग, अण्डकोष, घुटने ये तीनों समान (बराबर) हैं। वक्षः स्थल, नाभि के किनारे का भाग और उदर—ये तीन उभरे हुए हैं। नेत्रों के कोने, नख और हाथ-पैर के तलवे—ये तीन लाल हैं। शिश्न का अग्रभाग, दोनों पैरों की रेखाएँ और सिर के बाल—ये तीन चिकने हैं तथा स्वर, चाल एवं नाभि ये तीन गम्भीर हैं।[7] उनके उदर तथा गले में तीन रेखाएँ हैं। तलवों के मध्य भाग, पैरों की रेखाएँ और स्तनों के अग्रभाग—ये तीन धंसे हुए हैं। गला, पीठ तथा दोनों पिण्डलियाँ—ये चार अङ्ग छोटे हैं। मस्तक में तीन भंवरे हैं। पैरों के अंगूठे के नीचे तथा ललाट में चार-चार रेखाएँ हैं। वे चार हाथ ऊँचे हैं। उनके कपोल भुजाएँ, जाँघें और घुटने—ये चार अङ्ग बराबर हैं।[8] शरीर में जो दो-दो की संख्या में चौदह अंग होते हैं वे भी उनके परस्पर सम हैं। उनकी चारों कोनों की चारों दाढ़ें शास्त्रीय लक्षणों से युक्त हैं। वे सिंह, बाघ, हाथी और सांड—इन चार के समान चार प्रकार की गति से चलते हैं। उनके ओठ, ढोड़ी और नासिका—सभी प्रशस्त

हैं। केश, नेत्र, दाँत, त्वचा और पैर के तलवे—इन पाँचों अङ्गों में स्निग्धता भरी है। दोनों भुजाएँ, दोनों जाँघें, दोनों पिण्डलियाँ, हाथ और पैरों की अंगुलियाँ—ये आठ अङ्ग उत्तम लक्षणों से सम्पन्न हैं (लम्बे हैं)।[9] उनके नेत्र, मुख-विवर, मुख-मण्डल, जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमल के समान हैं। छाती, मस्तक, ललाट, गला, भुजाएँ, कंधे, नाभि, चरण, पीठ और कान—ये दस अंग विशाल हैं। वे श्री यश और प्रताप—इन तीनों से व्याप्त हैं। उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं। पार्श्व भाग, उदर, वक्षः स्थल, नासिका, कंधे और ललाट—ये छः अंग ऊँचे हैं। केश, नख, लोम, त्वचा अंगुलियों के पोर, शिश्न, बुद्धि और दृष्टि आदि नौ सूक्ष्म (पतले) हैं तथा वे श्री रघुनाथ जी के पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न इन तीनों कालों द्वारा क्रमशः धर्म, अर्थ और काम का अनुष्ठान करते हैं।[10]

इसके बाद सूक्ष्म-दर्शी श्री हनुमान जी ने लक्ष्मण के शारीरिक चिन्हों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि उन दोनों भाइयों में अंतर इतना ही है कि लक्ष्मण के शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान गौर है और महायशस्वी श्री राम चन्द्र जी का विग्रह श्याम-सुन्दर है। वे दोनों नर श्रेष्ठ रूप में एक से ही हैं।[11] इस प्रकार हनुमान एक सूक्ष्म-दर्शी सामुद्रिक शास्त्र-वेत्ता थे। रामायण में पुरुषगत प्रशस्त लक्षण प्रचुर रूप में प्राप्त होते हैं जो आयुर्वेदानुसार तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

स्त्रीगत प्रशस्त लक्षण

विभिन्न आयुर्वेदीय संहिताओं का अध्ययन कर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्त्रीगत प्रशस्त लक्षण इस प्रकार होने चाहिये।

नखपादादि लक्षण

जिस कुमारी के नख चिकने और ऊँचे हों, जिनका अग्रभाग पतला व तांबे के वर्ण का हो, दोनों पैर समान व कुछ मोटे तथा मनोरम हों, जिनमें गंठे (टखने) छिपे हों, अंगुलियाँ परस्पर मिली हों, तलवे कमल के सदृश शोभा वाले हों, ऐसी कुमारी को सुलक्षणा जानना चाहिये। यदि कोई पुरुष पृथ्वीपति होने की इच्छा करे तो ऐसी कुमारी से अपना विवाह करे।

पादजंघादि लक्षण

कोमल व पसीना रहित चरण तल, जिनमें मछली, अंकुश, कमल, यव, वज्र, हल और तलवार के चिन्ह हों, नारी के ऐसे चरण प्रशस्त होते हैं। जंघाएँ रोम रहित, नस-विहीन और गोलाकार हों। दोनों घुटने समान होकर संधि-देश में मांसल हों। दोनों उरु घने व हाथी की सूंड के समान हों तथा रोमरहित हों। गुह्याङ्ग, पीपल-पत्र के समान विस्तीर्ण हो। कमर तथा ललाट चौड़े कछुए के समान ऊँचे हों। मणि छिपी हो। वह नारी बड़ी संपतिशालिनी होती है।

नितम्ब-नाभि लक्षण

यदि स्त्रियों का नितम्ब चौड़ा, मांसल और बड़ा हो तो वह करधनी से शोभित होता है। यदि नारियों की नाभि गंभीर, विपुल और प्रदक्षिणावर्त हो तो वह प्रशस्त होती है।

स्त्रीकट्यादि लक्षण

यदि मध्य भाग त्रिवलीयुक्त रोम रहित हो, दोनों स्तन घने, समान तथा कड़े हों, वक्षः स्थल कोमल तथा रोमहीन हो, ग्रीवा शंख के समान हो, तो वह नारी धनवती और सुखी होती है।

भ्रू ललाट लक्षण

स्त्रियों की दोनों भौहें यदि असंलग्न, पतली, छोटी, बाल चन्द्रमा के समान टेढ़ी हों तो वह प्रशस्त कहाती है जिनका ललाट अर्द्धचन्द्राकार, लोम रहित और सम हो तो प्रशस्त जानना चाहिये।

कर्ण-केश लक्षण

स्त्रियों के दोनों कान मांसल, कोमल समान तथा अचल हों तो प्रशस्त कहाती हैं जिनका ललाट अर्द्धचन्द्राकार, लोमरहित और सम हो तो प्रशस्त जानना चाहिये।

रमणियों के राज-लक्षण

जिन स्त्रियों के कर तल व पाद तल में झारी, आसन, घोड़ा, हाथी, रथ, श्री, कल्पवृक्ष, यूप, वाण, माला, कुण्डल, चामर, अंकुश, यव, पर्वत, ध्वजा, तोरण, मछली, त्रिकोण, वेदिका, पंखा, शंख छाता और कमल के चिन्ह हों, वे स्त्रियाँ रानी पद पाती हैं।

मणिबन्धादि लक्षण

जिनके हाथ गंभीर मणिबन्ध वाले हों, नवीन कमलगर्भ के समान हों, जिनमें सारी अंगुलियाँ पतली तथा विरली हों वे स्त्रियाँ राज-पत्नी होती हैं। जिनका करतल गहरा व ऊँचा न हों तथा सुरेखाओं से संयत हों उन स्त्रियों को सौभाग्यवती, पुत्रवती, सुखवती, धनवती तथा संभोगिनी बनाता है।

पिण्डिकोदर लक्षण

जिन स्त्रियों की पिंडुरियाँ ऊँची हों, जङ्घाएँ लोमों वाली, अति मांसल या सूखी अथवा नसों से व्याप्त हों, अर्थात् नसें दिखती हों, जिनका गुह्यदेश वामावर्त, गहरा व छोटा-सा प्रतीत है, और उदर घड़ा-सा हो वे स्त्रियाँ दुःख भागिनी होती हैं।

ग्रीवा लक्षण

जिन स्त्रियों की ग्रीवा बहुत छोटी हो वे दरिद्रणी होती हैं जिनकी ग्रीवा लम्बी हो वे वंश विनाशती हैं जिनकी ग्रीवा चौड़ी और ऊँची हो वे क्रोधी होती हैं।

नेत्रगण्डकूप लक्षण

जिनके दोनों नेत्र कंजे हों वह दुश्चरित्रा होती हैं जिसके नेत्र पिङ्गल वर्ण हों,

चंचल चितवन हों, वह भी दुश्चरित्रा होती है जिसके हँसने के समय गालों में गड्ढे पड़ जाते हों उस स्त्री को मुनियों ने निःसंदेह वंचकी (असती) कहा है।

ललाट लक्षण

जिसका ललाट बहुत लम्बा हो, वह स्त्री देवर को विनाशती है। जिसका पेट लम्बा हो वह ससुर को नाशती है। जिसके कूल्हे लम्बे हों वह पतिघातक होती है जिसके मूछें सी निकल आयी हों वह स्त्री स्वामी को शुभ-दायक नहीं होती जो स्त्री पति की अपेक्षा लम्बी हों वह स्वामी को अतीव दुःखदायक होती है।

स्तन-कर्ण-दन्त-लक्षण

जिनके स्तन रोमों समेत मैले और बड़े हों, कान विषम हों तो उन्हें क्लेष कारक होते हैं जिनके दाँत मोटे, कराल तथा विषम हों तो दुःख दायक होते हैं जिनके मसूढ़ों के मांस काले हों वह चोरी करती है।

पाद तल लक्षण

जिन स्त्रियों के पैरों के तलवे चिकने, मांस से भरे, कोमल तथा सम हों, उनमें पसीना न आता हो, गरम व लाल हों, उन्हें बड़ा भोग प्राप्त होता है।

जिनके पैर के तलवे रूखे-वर्ण-विहीन व कठोर हों, जिनके रखने पर बालू आदि में निशान न हों, सूप के समान हो, विशेषतः सूखे हों ऐसी स्त्रियों को दुःख और दुर्भाग्य मिलता है।

पादतल में चक्रादि लक्षण

जिसके पादतल में चक्र, त्रिकोणाकार रेखा हो तथा शंख, कमल, ध्वजा, मछली और छाते के निशान हों वह रानी होती है।

प्रदेशिन्यादि लक्षण

यदि स्त्रियों के पैर की पीठ ऊँची हो तो वह रानी के पद को सूचित करती है। पैरों के नख--चिकने, ऊँचे तथा ताम्र वर्ण सरीखे गोलाकार हों तो वे शुभ-दायक होते हैं। यदि स्त्रियों के पैर की पीठ ऊँची, पसीना रहित, नस-विहीन, चिकनी, कोमल और मांस युक्त हो तो रानी पद को सूचित करती है।

जंघारोम लक्षण

जिनकी जंघाएँ रोमहीन, समान, चिकनी, क्रम से गोलाकार, नस-विहीन और मनोहर हों, वह स्त्री राजपत्नी होती है जिसके रोमकूपों में एक ही रोम हो वह रानी होती है जिसके रोम-कूपों में दो-दो रोम हों वह सुख पाती है जिसके रोमकूपों में तीन-तीन रोम हों वह विधवा होकर दुःख भोगती है।

जानु लक्षण

जिसके दोनों जानु गोलाकार, मांस से भरे हों वह स्त्री शुभ है जिसके घुटने मांस रहित हों तो वह अपनी इच्छानुसार घूमती तथा पुष्ट जानु वाली दरिद्रा होती है।

उरु लक्षण

जिनकी उरु (पतली जाँघें) नस रहित, हाथी की सूंड के समान चिकनी, घनी,

गोल, और लोमहीन हों वे स्त्रियाँ रानी होती हैं जिनकी उरु रोम संयुक्त हो वे विधवा हो जाती हैं, जिनकी उरु चपटी हों वे दौर्भाग्य को प्राप्त करती हैं। जिनकी उरुओं के बीच में नसों के कारण गढ़ा-सा हो वे दारिद्रय भोगती हैं।

कटि-लक्षण

यदि रमणियों की कमर चौबीस अंगुल हो तो शुभ-दायक होती है जिसकी कमर ऊंचे और बड़े नितम्बों वाली चौकोण हो वह धनवती होती है। लची, चपटी, लम्बी और निर्मांसि कमर संकटदायक होती है। छोटी रोम युक्त कमर दुःख दायक तथा विधवापन बताती है।

नितम्बादि लक्षण

यदि स्त्रियों का नितम्बमंडल ऊँचा, मांस से भरा और चौड़ा हो तो वह बड़े भोगों के लिये कहा है जो इससे विपरीत हो तो वह अमंगल माना गया है। यदि कूले कैथा फ़ल की तरह गोल, कोमल, मांसल, घने और बलियों से रहित हों तो वे विशेषतः रति सौख्य बढ़ाते हैं।

बस्ति लक्षण

जिसकी पेडू विशाल, कोमल और कुछ ऊँची हो तो शुभदायक होती है। जो पेडू रोमों व नसों से व्याप्त रेखाओं से अंकित हो वह शुभदायक नहीं होती।

नाभि-लक्षण

गहरी, रोम या रेखाओं से दक्षिणावर्त नाभि सुख संपदा के लिये होती है। जो नाभि बहुत ऊँची वामावर्त हो, जिसका मध्य भाग दिखता हो वह अशुभ-दायक होती है। जिसकी कोख चौड़ी सी हों वह स्त्री बहुत से पुत्र पैदा करती है जिसकी कोख मेंढक के उदर समान हो वह सुख धाम-पृथ्वी पालक पुत्र की माता होती है।

उदर-लक्षण

जिनका पेट बहुत छोटा, नसहीन और कोमल त्वचा वाला हों वह स्त्री भोग युक्त होकर हमेशा मींठे अन्न सेवन करती है जिसका पेट घड़े के आकार वाला हो वह दरिद्रणी हाती है जिसका पेट मृदङ्ग के समान कुम्हड़े व यवों के आकार का हो तो वह उसका पेट बड़े दुःखों से भरता है।

रोम राज्यादि लक्षण

जिसकी रोम पंक्ति कपिल वर्ण वाली टेढ़ी, मोटी, छिन्न-भिन्न सी हों वह चोर, विधवा और बुरे भाग्य वाली होती है जिसका हृदय रोम रहित, सम हों वह ऐश्वर्य भोगती है तथा अपने प्यारे की प्रेम पात्री होती है।

हृदय लक्षण

जिसका हृदय विस्तार वाला हो वह स्त्री पुंश्चला और दयाहीन होती है जिसके हृदय में रोम हो वह निश्चय ही पति-नाशक है। स्त्रियों का अठारह अंगुल चौड़ा, मोटा और ऊँचा वक्षः स्थल सुखदायक होता है। रोम-युक्त-विषम, चौड़ा वक्षःस्थल दुःखदायक होता है।

स्तन लक्षण

दोनों स्तन कठोर, गोल, दृढ़, स्थूल समान हों तो शुभ दायक होते हैं। स्तनों के अग्रभाग मोटे, विरले, सूखे हों तो सुखदायक नहीं होते।

जत्रु-स्कन्ध लक्षण

जिसकी हँसलियाँ मोटी हो वह स्त्री धन धान्य की निधि होती है जिसकी हंसलियाँ ढीली हड्डी वाली, गहरी और विषम हो वह दरिद्रणी होती है। यदि कंधे—बंधे या झुके हुये न हों, लम्बे पतले न हो तो वह शुभदायक होते हैं। यदि कंधे टेढ़ें मोटे रोम-युक्त हों तो वे दासी और विधवापन सूचित करते हैं।

अंस लक्षण

छिपे संधि वाले, अग्रभाग में झुके मजबूत पुट्ठे शुभ-दायक होते हैं, यदि पुट्ठे अग्रभाग में ऊँचे या निर्मांस हों तो वे वैधव्य दायक तथा अत्यन्त दुःखदायक होते हैं।

कक्ष लक्षण

जो काँखे पतले रोम वाली, ऊँची, चिकनी, मांस से भरी हों तो शुभ-दायक नहीं होती हैं। गहरी नसों वाली, पसीने से चिकनी काँखें शुभदायक नहीं होती हैं।

भुजा-लक्षण

यदि रमणियों की भुजाएँ छिपी हुई हड्डियों व गाँठों वाली, कोमल हों तथा नसों या रोम रहित सीधी हों तो वे दोष कारक नहीं। जिनकी भुजाएँ मोटे रोमों वाली हों वे स्त्रियाँ विधवा होती हैं जो भुजाएँ छोटी हों वे बुरे भाग्य को सूचित करती हैं। जो भुजाएँ चारों तरफ नसों से घिरी हों तो दुःख-दायक होती हैं।

कराङ्गुष्ठ लक्षण

यदि नारियों के दोनों हाथ, अंगूठे और अंगुलियों के सामने फूलती कमल कली के आकार के घने हों तो भोग दायक होते हैं। करतल, कोमल, बीच में ऊँचा, लाल-वर्ण, छिद्र रहित, समीचीन, रेखाओं से युक्त हो तो शुभदायक होता है। यदि करतल अल्परेखा युक्त हो तो शुभदायक होता है।

कराङ्गुष्ठांगुलि लक्षण

सीधा-गोल या गोल नखों वाला, कोमल अंगूठा स्त्री को शुभदायक होता है। यदि अँगुलियाँ सुन्दर पोरों वाली, लम्बी, गोल, क्रम से पतली हों तो शुभदायक होती हैं। चपटी या छोटी, गहरी या रूखी अंगुली तथा रोम युक्त पीठ अशुभ-दायक होती है। बहुत छोटी पतली या टेढ़ी या विरली अंगुली रोग-दायक है। अगर अँगुलियाँ चौड़े पोर वाली हों तो दुःखदायक होती हैं।

नख-लक्षण

यदि रमणियों के नख रक्त-वर्ण, शिखा समेत, ऊँचे से हों वह शुभदायक होते हैं, गहरे, विवर्णया सीप सदृश पीले नख दारिद्र्य सूचित करते हैं। जिनके नखों में सफेद बिन्दु (कौड़ी) हो वे प्रायः पुंश्चाली होते हैं। यदि पुरुषों के नखों में सफेद

चिन्ह प्रतीत हों तो वे भी दुःखी ही होते हैं।

ग्रीवा लक्षण

ग्रीवा तीन रेखाओं से अंकित व अत्यन्त पुष्ट हों तो उसे शुभ कहना, ग्रीवा मांस रहित, चपटी, लम्बी या गहरी, हो तो शुभ दायक नहीं है। ग्रीवा मोटी-सी हो वह स्त्री विधवा होती है जिसकी ग्रीवा टेढ़ी हो वह दासी होती है जिसकी ग्रीवा चपटी हो वह बाँझ होती है जिसकी ग्रीवा छोटी हो वह सन्तान रहित होती है।

चिबुक लक्षण

गोल, मोटी, बड़ी, कोमल या दो अंगुल वाली चिबुक (ठोड़ी) स्त्री के लिये शुभ-दायक है।

कपोल लक्षण

मोटे, गोल, ऊँचे गाल स्त्री के लिये शुभ-दायक हैं जिसके गाल रोम वाले, कठोर निचले या मांस रहित हों उसे त्याग दें।

मुख लक्षण

जिनका मुख सम, समांस, चिकना, गोल या सुगन्धित हो और जिसमें पितृमुख की शोभा हो वे स्त्रियाँ इस लोक में धन्यवाद देने योग्य होती हैं।

अधर लक्षण

जिनका अधर (निचला ओठ) रक्त वर्ण, गोल, चिकना हो और उसके बीच में रेखा हो वे स्त्रियाँ रानी होती हैं अगर अधर पतला, लम्बा, रूखा या फूटा-सा हो, कपिल वर्ण या अधिक मोटा अधर स्त्रियों को वैधव्य या लड़ाई देता है।

दन्त लक्षण

गो-दुग्ध समान चिकने, बतीस संख्या वाले, नीचे ऊपर दाँत शुभदायक होते हैं।

जिह्वा लक्षण

जिसकी जीभ लाल, कोमल, कुछ सफेदी लिये हो वह स्त्री अभिलाषित पदार्थों को पाकर मीठे भोजन करती है।

नासा लक्षण

स्त्री की सम गोल पुटों वाली, छोटे छेदों वाली नाक शुभदायक होती है।

नेत्र लक्षण

जिसकी आँखें मेढ़े या भैंसे के समान कंजी हों वह शुभदायक नहीं होती।

भ्रू लक्षण

अगर भौहें गोल, चिकनी, काली, परस्पर न मिली हों, कोमल रोमों वाली और धनुषाकार हों तो शुभदायक होती हैं। बिखरे रोमों वाली, चौड़ी, विकीर्ण, सीधी या मिली हुई तथा बड़े रोमों वाली भौहें शुभदायक नहीं होतीं।

कर्ण लक्षण

जो कान लम्बे हों तो सुखद होते हैं।

ललाट लक्षण

जिसका भाल नसों रहित लोमहीन, अर्धचन्द्रसमान तथा गहरा न हो और तीन अंगुल वाला हो तो वह सौभाग्य व आरोग्य का कारण होता है।

केश लक्षण

भ्रमर के समान काले, पतले, चिकने, कोमल तथा अग्रभाग में घुंघराले केश अत्यन्त शुभ दायक हैं। अगर केश, कठोर अग्रभाग में टूटे, बिरले, पीले, छोटे, रूखे हों तो दुःख दारिद्रय और बंधन देते हैं।

जिस प्रकार राम निर्दोष अंगों वाले थे उसी प्रकार सीता जी भी निर्दोप अंगों वाली थीं तथा उनके भी श्री राम के समान प्रशस्त गुण थे।

सीता जी के शरीर में पाये जाने वाले सभी गुण आयुर्वेदज्ञों द्वारा बताये गये प्रशस्त गुणों के ही समान हैं यथा-जनक की पुत्री सीता देव-माया की तरह सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न नारियों में श्रेष्ठ वधू थीं।[12]

रावण ने माया के द्वारा जब राम-लक्ष्मण को मरा दिखाकर सीता को निराश किया तो त्रिजटा ने उसका बुद्धिमानी पूर्वक निराकरण किया। सीता ने करुणाजनक विलाप करते हुए कहा—सामुद्रिक शास्त्रों के ज्ञाता विद्वानों ने मुझे पुत्रवती और सधवा बताया था। आज राम के मारे जाने से वे सब लक्षण मिथ्या तथा ज्ञानी पुरुष असत्यवादी हो गये।[13] इसी प्रकार ज्योतिषी भी झूठे पड़ गये जिन्होंने मुझे आनन्दमयी सधवा बताया था। आज श्री राम मारे गये और मैं विधवा हो गयी हूँ।[14] आगे विलाप करते हुए सीता ने अंग के सामुद्रिक लक्षणों का स्पष्ट वर्णन किया है—

जिन लक्षण भूत कमलों के हाथ पैर आदि में होने पर भी कुलवती स्त्रियाँ अपने पति राजाधिराज के साथ साम्राज्ञी के पद पर अभिषिक्त होती हैं वे मेरे दोनों पैरों में निश्चित रूप से विद्यमान हैं।[15] जिन अशुभ लक्षणों के कारण सौभाग्य दुर्बल होता है और स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, मैं बहुत देखने पर भी अपने अंगों में ऐसे लक्षणों को नहीं देख पाती तथापि मेरे सारे शुभ लक्षण निष्फल हो गये।[16] स्त्रियों के हाथों, पैरों में कमल के चिन्ह होते हैं उन्हें लक्षण वेत्ता विद्वानों ने अमोघ बताया है किन्तु आज श्री राम के मारे जाने से वे सारे शुभ लक्षण मेरे लिये व्यर्थ हो गये।[17]

मेरे सिर के बाल महीन, बराबर तथा काले हैं। भौहें परस्पर जुड़ी हुई नहीं हैं। मेरी पिण्डलियाँ गोल तथा रोम रहित हैं तथा मेरे दाँत भी परस्पर सटे हुए हैं।[18] मेरे नेत्रों के आस-पास के भाग, दोनों नेत्रों, दोनों हाथ, दोनों गुल्फ तथा दोनों जांघें बराबर हैं, विशाल व मांसल हैं। दोनों हाथ की अंगुलियाँ बराबर एवं चिकनी हैं, और उनके नख गोल एवं उतार-चढ़ाव वाले हैं।[19] मेरे दोनों स्तन परस्पर सटे हुए और स्थूल हैं इनके अनुभाग भीतर की ओर दबे हुए हैं मेरी नाभि गहरी और उसके आस-पास के भाग ऊँचे हैं। मेरे पार्श्व भाग तथा छाती मांसल हैं।[20] मेरी

अंग कान्ति चमकती हुई मणि के समान उज्ज्वल है। शरीर के रोयें कोमल हैं तथा पैरों की दस अंगुलियाँ और दोनों तलुवे ये बारहों पृथ्वी से अच्छी तरह सटे जाते हैं। इन सबके कारण लक्षणों के ज्ञाताओं ने मुझे शुभ-लक्षणा बताया है।[21] मेरे हाथ-पैर लाल उत्तम कान्ति वाले उनमें जौ की समूची रेखाएँ हैं तथा उनकी अंगुलियाँ जब परस्पर सटी रहती हैं उस समय उनमें कोई भी तनिक छिद्र नहीं रह जाता। कन्या के शुभ लक्षण जानने वाले विद्वानों ने मुझे मन्द मुस्कान वाली बताया है।[22] ज्योतिष के सिद्धान्तों के जानने वालों ने बताया है कि मेरे पति के साथ मेरा राज्याभिषेक होगा, किन्तु आज वे सारी बातें झूठी हो गयीं।[23]

रावण जब सीता का हरण करके उन्हें लंका ले जा रहा था, उस समय भी उनके रूप और सौन्दर्य का दृश्य कुछ इस प्रकार था—"सुन्दर ललाट और मनोहर केशों से युक्त, कमल के भीतरी भाग के समान कांतिमान, चेचक आदि के दाग से रहित, श्वेत, निर्मल और दीप्तिमान दाँतों से अलंकृत तथा सुन्दर नेत्रों से सुशोभित सीता का मुख आकाश में रावण के अंग में ऐसे जान पड़ते थे मानो मेघों की काली घटा का भेदन करके चन्द्रमा उदित हुआ हो।[24]"

इनके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर स्त्रीगत प्रशस्त लक्षणों का उल्लेख मिलता है।[25]

रामायण में इस प्रकार वाल्मीकि कवि ने सामुद्रिक-शास्त्र का वर्णन किया है। पुरुष के 32 लक्षण रामायण में स्पष्ट रूप से दिये गये हैं। ये सभी लक्षण शुभ हैं। इसमें से जितने कम हों या जितने विपरीत हों पुरुष उतना ही अल्पमात्रा के शुभ में लक्षण में माना जायेगा। लक्ष्मण के साथ श्री राम पूर्ण रूप से शुभ लक्षण पुरुष तथा महारानी सीता ठीक उसी प्रकार उन्हीं के अनुकूल स्त्री थीं।

तृतीय परिच्छेद

स्वास्थ्य का महत्व

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्व, वंशानुक्रम, वातावरण, आहार आदि

वेदों में स्वस्थ रहकर दीर्घायु की कामना की गयी है। सूर्य, अग्नि, जल, वायु आदि के द्वारा रोगोत्पादक राक्षसों और कृमियों के विनाश का निर्देश है। आयुर्वेदीय संहिताओं में इसका विशद वर्णन है। आयुर्वेद के दो उद्देश्य कहे गये हैं-स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी के विकार का शमन। प्रथम उद्देश्य स्वस्थवृत के अन्तर्गत आता है।[1]

सुश्रुत के अनुसार स्वस्थ वह है जिसके शरीरगत दोष (वात आदि), अग्नि (जठराग्नि सहित अन्य द्वादश अग्नियाँ), धातु (रस से शुक्र पर्यन्त) मल (पुरीष, मूत्र तथा स्वेद) एवं उनकी क्रियाएँ समान रूप से हो रही हों और जिसका शरीर, इन्द्रिय एवं मन प्रसन्न हो।[2]

चरक ने धातुओं के साम्य को प्रकृति कहा है और वही स्वास्थ्य का निदर्शक है।[3]

आयुर्वेद पुरुष के पूर्ण देह मानस स्वास्थ्य पर बल देता है, यह केवल रोगों के प्रतिरोध के लिये निषेधात्मक स्वरूप नहीं है अपितु पुरुष को अपनी प्राकृतिक स्थिति में रखकर (स्व + स्थ) उसके बल, वर्ण, ओज आदि की वृद्धि का उपाय करता है। अतएव आयुर्वेदोक्त स्वस्थ लक्षण विश्व का एक अद्‌भुत आविष्कार है। आयुर्वेद वैयक्तिक स्वस्थवृत्त पर विशेष बल देता है क्योंकि इसकी मान्यता है कि यदि पुरुष स्वस्थ है तो बाह्य और अभ्यन्तर हेतु इसमें विकार उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते। धातु साम्य स्वास्थ्य है इसका अर्थ यह है कि इससे निज विकार तो उत्पन्न नहीं ही होंगे, आगन्तुक विकार भी असामर्थ्य का अनुभव करेंगे। आयुर्वेद क्षेत्र को प्रमुखता देता है, बीज को नहीं। यदि क्षेत्र प्रतिकूल और कठोर है तो बीज पड़ने पर भी वे सूख जायेंगे।

आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य ये तीन शरीर के उपस्तम्भ कहे गये हैं।

स्वास्थ्य की रक्षा करना मानव का नैतिक कर्त्तव्य है, स्वास्थ्य पर विविध वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है यथा—वंश, वातावरण, आहार-विहार-इत्यादि। व्यक्ति जैसे वंश में जन्म लेता है, उसकी प्रकृति उसी के अनुकूल हो जाती है, इसी को मातृज, पितृज एवं आत्मज भाव भी कहा जा सकता है, इसके अतिरिक्त व्यक्ति के स्वास्थ्य पर अपने आस-पास के वातावरण का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। आहार-विहार का तो प्रत्यक्ष प्रभाव ही स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। रामायण में भी इस प्रकार का उल्लेख किया गया है।

वंश

प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थ तथा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी वंशानुक्रम का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है इस बात को स्वीकार करते हैं। गर्भस्थ शिशु को उसकी माता तथा पिता दोनों के ही कुछ न कुछ गुण अवश्य प्राप्त होते हैं यही कारण है कि कुछ बीमारियों को वंशानुक्रम से प्राप्त होने वाली कहा गया है यथा—मधुमेह, अस्थमा आदि।

माता-पिता तथा उनके पूर्वजों के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों का, दोषों का, प्रवृत्तियों तथा अन्य विशेषताओं का उनके वंशजों में जो न्यूनाधिक संचार होता है उसको कुलजता या अनुवांशिकता कहते हैं। इससे कुछ रोगों और शारीरिक व्यङ्गों की उत्पत्ति का सम्बन्ध होता है, यह सिद्ध हुआ है इसलिये स्वास्थ्य-विज्ञान में इसका विवरण दिया जाता है। सामान्यतया 'यथा बीजं तथाऽङ्कुरः' इस न्याय से स्वस्थ माता-पिता की प्रजा स्वस्थ और अस्वस्थ की अस्वस्थ हुआ करती है।

वाल्मीकि रामायण में वंश शब्द का उल्लेख तो अनेक[1] स्थलों पर किया गया है किन्तु वह स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करते हैं यह नहीं बताया गया है।

वातावरण

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला दूसरा तत्व वातावरण है। व्यक्ति जिस

प्रकार के वातावरण में रहता है, उसी प्रकार का उसके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिये गर्भिणी को अच्छे वातावरण तथा अच्छे लोगों के बीच रहने का परामर्श प्रारम्भ से ही दिया जाता है। रामायण में भी लव-कुश का जन्म तपोवन के वातावरण में होना बताया गया है जिसके कारण उनका स्वास्थ्य एवं व्यवहार तपोवन के अनुकूल ही दिखाई पड़ता है। दूषित वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों का स्वास्थ्य अक्सर खराब ही दिखाई देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वास्थ्य पर वातावरण का भी बहुत प्रभाव पड़ता है।

आहार

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला तीसरा प्रमुख तत्व आहार है। व्यक्ति जिस प्रकार का भोजन करता है उसी प्रकार के स्वास्थ्य को धारण करता है।

भारतीय आहार-शास्त्र एक प्राचीन विज्ञान है। यह अपनी एक मौलिक परम्परा रखता है। अत्यन्त ही प्रसन्नता की बात यह है कि वह रामायण में भी अपने उसी रूप में अवतरित हुआ है। रामायण का आहार-शास्त्र पूर्ण वैज्ञानिक तथा यथार्थपूर्ण है। संक्षेप में इसमें आहार-विज्ञान को दो रूपों में विभक्त किया है–

1. सात्विक आहार। 2. तामसिक आहार।

राजा दशरथ, मुनि वशिष्ठ, राजा गुह, ऋषि भारद्वाज के यहाँ सात्विक आहार। श्री राम का वन में आहार तथा उनका उसी रूप में वर्णन किया गया है। राजा रावण के यहाँ तामसी भोजन उपलब्ध था उसका वर्णन रामायण में उसी प्रकार किया गया है।

आहार सम्बन्धी विस्तृत जानकारी तृतीय परिवर्त के द्वितीय परिच्छेद में दी जायेगी।

चतुर्थ परिच्छेद

मांस तत्व (प्रोटीन) एवं उसके कार्य–कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज-लवण, ज़ीवनीय द्रव्य, जल, स्वस्थवृत्त एवं सद्वृत्त

आहार के सम्बन्ध में विस्तृत एवं सूक्ष्म विचार आयुर्वेद में किया गया है जो आधुनिक विज्ञान में उस रूप में नहीं मिलता। सर्वग्रह और परिग्रह के द्वारा आहार मात्रा के प्रसंग में संतुलित आहार का विधान है। कौटिल्य अर्थ-शास्त्र में भी 'आर्य भक्त' का उल्लेख है जो संतुलित आहार का ही रूप है। इसके अतिरिक्त प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोक्ता और उपयोग संख्या इन आठ आहार-विधि विशेषायतनों का विचार किया गया है। षड्रसों के साथ-साथ आहार-द्रव्यों के गुण-कर्म विस्तार से वर्णित हैं। चरक संहिता में एक ही श्लोक में पुरुष के लिये आवश्यक सभी आहार तत्वों का निर्देश कर दिया गया है।[1]

षष्टिक, शालि - कार्बोहाइड्रेट।

मुद्ग	-	प्रोटीन।
सैन्धव	-	लवण।
आमलक	-	विटामिन।
यव	-	सेलुलोज।
आन्तरीक्ष (जल)	-	शुद्ध जल।
दुग्ध घृत	-	स्नेह।
मधु	-	शर्करा।

कार्बोहाइड्रेट

रामायण में 'कार्बोहाइड्रेट' का वर्णन तत्सम्बन्धी शालिधान्य के रूप में किया गया है। इसके विशद् रूप को इस प्रकार देख सकते हैं–
अष्टांग संग्रहकार ने शालि के निम्न लिखित भेद बताये हैं–

1. रक्त शालि।	2. महा शालि	3. कलम शालि।
4. तूर्णक शालि।	5. शकुना हृत शालि।	6. सारामुख शालि।
7. दीर्घ शुक।	8. रोध्र शुक।	9. सुगन्धक शालि।
10. पुण्ड्र शालि।	11. पुण्डरीक शालि।	12. पाण्डु शालि।
13. प्रमोद।	14. गौर।	15. शाखि।
16. कांचन।	17. महिष।	18. शूक शालि।
19. दूषक शालि।	20. कुसुमाण्डक।	21. लांगल शालि।
22. लोह वाल शालि।	23. कर्दम।	24. शीत भीरुक।
25. पतंग शालि।	26. तपनीय शालि।	27. अन्य श्रेष्ठ शालि।[2]

सामान्यतः सभी शालि रस एवं विपाक में मधुर, स्निग्ध एवं वृष्य होते हैं। बंधा हुआ अल्प मात्रा में मल निकालते हैं। कषाय ,अनुरस, पथ्य, लघु, मूत्रल तथा शीत वीर्य होते हैं।[3]

जिन धान्यों में शूक (टूँण) लगा होता है वे शूक धान्य कहे जाते हैं। पुनश्च शूक धान्य के भेदों में शालि धान्य की संज्ञा उन्हें देते हैं जो हेमन्त ऋतु में होते हैं और जो बिना कूटने के ही स्वच्छ निकलते हैं।

शूक-धान्य में श्रेष्ठ एवं अश्रेष्ठत्व

शूकज धान्य में रक्त शालि श्रेष्ठ है, यह तृषा नाशक तथा त्रिदोहन होता है। रक्त शालि की अपेक्षा महाशालि और महाशालि की अपेक्षा कलम शालि और उसकी अपेक्षा तूर्णक आदि क्रमशः हीन गुण होते हैं।[4]

वाल्मीकि रामायण में कार्बोहाइड्रेट का शालि धान्य के रूप में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है यथा–अयोध्या पुरी के वर्णन में कहा गया है कि वह नगरी जड़हन धान के चावलों से भरपूर थी।[5] उसके चौराहों की दही, अक्षत, हविष्य, लावा, धूप आदि से सदा पूजा की जाती थी।[6]

हेमन्त ऋतु के वर्णन में भी जड़हन धान का वर्णन करते हुए कहा गया है–'ये

सुनहरे रंग के जड़हन धान खजूर के फूल के से आकार वाली बालों से, जिनमें चावल भरे हुए हैं, कुछ लटक गये हैं। इन बालों के कारण इनकी बड़ी शोभा होती है।'[7]

इस प्रकार उपरोक्त स्थलों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि रामायण में अनेक[8] स्थलों पर धान का वर्णन किया गया है जिसमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। तथा (चरक सू. 5/12) के आधार पर कथित षष्टिक, शालि (धान) में कार्बोहाइड्रेट होने के कारण रामायण में इसका वर्णन किया गया है।

प्रोटीन

आयुर्वेदीय संहिता चरक (च.सू. 5/12) के अनुसार मुद्ग से तात्पर्य प्रोटीन से है। रामायण में भी मुद्ग, कुलथी, माष, तिल आदि का वर्णन मिलता है।

मुद्ग, मकुष्ठ, मसूर, राजमाष

अष्टांग संग्रह में कहा गया है—मूंग सभी दालों में उत्तम, लघु, वातकारक है। हरा मुद्ग सर्वश्रेष्ठ तथा मकुष्ठ कृमिकारक है। मसूर प्रलेप के रूप में प्रयोग करने पर अतिशय कान्ति कारक तथा आन्तरिक प्रयोग में अत्यन्त संग्राही है। राज-माष, गुरु, अत्यन्त पुरीष कारक, रुक्ष तथा अतिशय वात-कारक होता है।[9]

कुलथी

अष्टांग संग्रह के अनुसार कुलथी रस में कषाय, मधुर, रुक्ष, उष्ण वीर्य तथा रक्त-पित्त कारक होती है। पीनस, श्वास, कास, अर्श, हिक्का, आनाह, कफ, वायु, शुक्राश्मरी, शुक्रधातु, दृष्टि-शक्ति, शोफ तथा उदर-रोग नष्ट करता है। यह संग्राही, लघु, तीक्ष्ण, अम्ल-विपाक तथा विदाही है।[10]

माष

माष स्निग्ध, बल, श्लेष्म, पुरीष, पित्त-कारक, सर, गुरु, उष्ण-वीर्य, वात-नाशक, रस में मधुर, शुक्र वर्धक तथा शुक्र का लिङ्ग मार्ग में प्रवृति में प्रेरक है।[11]

तिल

तिल स्निग्ध, उष्ण-वीर्य, रस में तिक्त, कटु, कषाय, मधुर होता है। मेध्य, केश्य, गुरु, कान्ति कारक, स्पर्श में शीतल, वात-नाशक, मूत्र की मात्रा को अल्प करने वाला, कटु, विपाक, मेधा-अग्नि-कफ-पित्त को बढ़ाने वाला होता है। तिलों में कृष्ण तिल श्रेष्ठ, सफेद तिल कृष्ण से कम तथा रक्त तिल सबसे हीन गुणों वाला होता है।[12]

महर्षि चरक ने तिल को मेध्य के स्थान पर बल्य माना है। उन्होंने तिल के गुणों का वर्णन किया है।[13]

वाल्मीकि रामायण में प्रोटीन के रूप में तो उल्लेख प्राप्त नहीं होता है किन्तु (च.सू. 5/12) चरक के अनुसार उल्लिखित मुद्ग, कुल्थी, माष एवं तिल के रूप में प्रोटीन का उल्लेख अवश्य अनेक स्थलों पर मिलता है यथा—श्री राम दान करते समय विविध अन्नों का भी दान करते हैं तथा उनमें चना, मूंग आदि का भी

उल्लेख करते हुए कहते हैं—'उनके लिये रत्नों के बोझ से लदे हुए अस्सी ऊँट, अगहनी चावल का भार ढोने वाले एक सहस्र बैल तथा भद्रक नामक धान्य-विशेष (चने-मूंग) आदि का भार लिये हुए दो सौ बैल और दिलवाओ।[14]

श्री राम के आदेश से अश्वमेध यज्ञ की तैयारी में विविध अन्न आते हैं। श्री राम लक्ष्मण से कहते हैं-महाबली सुमित्रा कुमार! लाखों बोझ ढोने वाले पशु खड़े दाने वाले चावल लेकर और दस हजार पशु तिल, मूंग, चना, कुल्थी, उड़द और नमक के बोझ को लेकर आगे चलें।[15]

वसा

अष्टांग संग्रह के अनुसार वसा (मांस-स्नेह) और मज्जा (षष्ठी धातु) वात नाशक, बल-पित्त-कफ वर्द्धक एवं मांस के गुण वाले होते है। तथा मेद भी वसा और मज्जा के समान गुण वाला होता है।[16]

औलूकी (उल्लू), शौकरी (शूकर), हंस, कुक्कुट (मुर्गा) की वसा अपने वर्ग के प्राणियों की वसा से श्रेष्ठ है। कुम्भीर, महिष, काकमुद्‌गु तथा कारण्ड की वसा निन्दित है।[17]

शाखाद् (पेड़-पौधों की शाखा-पत्ती आदि खाने वाले (Herbivorous) प्राणियों में छाग (बकरी Caprasibiea) की मेद श्रेष्ठ तथा हाथी (Elephaindiea) मेद निन्दित है।)[18]

वाल्मीकि रामायण में वसा, या चर्बी का कई रूपों में उल्लेख प्राप्त होता है यथा—वसा, चर्बी, स्नेह, दुग्ध, दही आदि। इन सभी पदार्थों के द्वारा व्यक्ति को वसा की प्राप्ति होती है। वसा यद्यपि शरीर के लिये आवश्यक है तथापि इसकी अधिक मात्रा होने से व्यक्ति का शरीर स्थूलतर होता जाता है और जिसके कारण Heart Attack और High B.P. जैसी तथा मधुमेह आदि कष्ट-प्रद तथा असाध्य बीमारियाँ हो जाती हैं।

वाल्मीकि रामायण में दृष्टि-पात करने पर निम्नलिखित स्थलों पर वसा का अलग-अलग रूप में उल्लेख प्राप्त होता है।

कबंध के शरीर में व्याप्त वसा का उल्लेख करते हुए रामायण में कहा गया है कि चिता में जलते हुए कबंध का विशाल शरीर चर्बियों से भरा होने के कारण घी के लोंदे के समान प्रतीत होता था।[19]

इसी प्रकार कुंभकरण के भोजन करने का वर्णन भी बड़ा अद्‌भुत है, "उस इन्द्रद्रोही निशाचर ने चर्बी से भरे हुए कितने ही घड़े साफ कर दिये और वह कई घड़े मदिरा भी पी गया।"[20] अन्य स्थलों पर भी चर्बी वसा का उल्लेख मिलता है यथा .... "उसका सारा शरीर चर्बी से नहा गया।"[21] वानरों की चर्बी और रक्त गिराता हुआ उनका भक्षण कर रहा था।[22] उसके शरीर में मेद, चर्बी और रक्त लिपटे हुए थे।[23] वह चर्बी से परिपुष्ट हुआ था।[24]

खनिज लवण

मानव शरीर के लिये विभिन्न लवण आवश्यक होते हैं। इनमें से मुख्य

हैं-कैल्शियम, पोटेशियम, लोहा, फास्फोरस, ताँबा, गन्धक, सोडियम, क्लोराइड तथा आयोडीन आदि।

कैल्शियम मुख्य रूप से दाँतों तथा हड्डियों के लिये उपयोगी होता है। रक्त की लाल-कणिकाओं के निर्माण के लिये लोहा अनिवार्य है। शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों के समुचित विकास के लिये आयोडीन अनिवार्य है। नमक एक अनिवार्य लवण है। नमक जहाँ भोजन को स्वादिष्ट बनाता है वहीं पाचन क्रिया को भी सुचारु बनाता है। नमक हमारे शरीर की मांस-पेशियों को क्रिया-शील बनाये रखता है। विभिन्न-शाक-सब्जियों में सोडियम क्लोराइड पाया जाता है। मुख्यतः पालक-शलजम, किशमिश तथा दूध में इसकी उचित मात्रा पायी जाती है। पोटेशियम हमारे शरीर के लिये आवश्यक है। इसकी उचित मात्रा के सेवन से हमारा शरीर अनेक रोगों से बचा रहता है। फॉस्फोरस एक उपयोगी लवण है। वह हमारे दाँतों, हड्डियों तथा रक्त को स्वस्थ बनाये रखने तक शरीर की उचित वृद्धि में सहायक होता है।

सैंधवादि लवण (सैंधव, सौर्वचल, सामुद्र, विड़, औद्भिक, कृष्ण तथा रोमक लवण), यवक्षार, सर्जिकाक्षार, त्रपु (रांगा) एवं सीसा। ये लवण स्कन्ध के द्रव्य हैं।[25]

संसार के सर्वप्रथम काव्य-ग्रंथ में भी सभी प्रकार के खनिज-द्रव्यों, मूल्यवान पाषाणों तथा प्राणिज द्रव्यों का स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। स्वर्ण आदि मूल्यवान धातुओं के विविध-प्रकारों का उल्लेख रामायण में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त चाँदी, ताम्र, लोह, चलेन्द (पारद), लोह किट्ट (मण्डूर), सिन्दूर, गैरिक, मनः शिला, पीतल, नीलांजन, सीसक आदि का भी स्पष्ट उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है।

कवि को इस बात का ज्ञान था कि धातुओं की उत्पत्ति पर्वतों में ही हुआ करती है।[26] एक स्थान पर कवि ने यह स्वीकार किया है कि शैलेन्द्र हिमालय सभी खनिजों का प्राप्ति स्थान है।[27] इसके अतिरिक्त रामायण में 'धातु सहस्र जुष्टम' कहकर हजारों प्रकार की धातुओं का संकेत किया गया है जिनके नाम अज्ञात हैं।[28]

वाल्मीकि रामायण में लवण (नमक) का भी अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है।[29]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में खनिज लवणों का अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। यह संज्ञा के रूप में भी प्रयोग किया गया है यथा—लवणासुर के नाम में संज्ञा के रूप में प्रयुक्त है।

जीवनीय द्रव्य

जीवनीय द्रव्य से तात्पर्य विटामिन से है। विटामिन एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ है यह हमारे भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। यह विशेष रूप से ताजे भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। बासी पदार्थों को उबालकर निचोड़े गये पदार्थों में विटामिन की मात्रा कम हो जाती है। ताजे फल, दूध, अंडा, दाल, चावल, हरी सब्जियों में यह बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। शरीर के विकास तथा सुन्दर

स्वास्थ्य के लिये विटामिनों की भोजन में उपस्थिति बहुत आवश्यक है।

यदि भोजन में इनकी कमी हो जाये तो स्वास्थ्य खराब हो जाता है। शरीर का विकास रुक जाता है। शरीर में रोग-निरोधक क्षमता में कमी आ जाती है। इनकी कमी से मनुष्य को अनेक बीमारियाँ घेर लेती हैं।

विटामिन छः प्रकार के होते हैं—

1. विटामिन ए।
2. विटामिन बी।
3. विटामिन सी।
4. विटामिन डी।
5. विटामिन इ।
6. विटामिन के।

वाल्मीकि रामायण में यद्यपि जीवनीय द्रव्यों का अलग से कोई वर्णन नहीं किया गया है तथापि इसमें उल्लिखित वस्तुएँ एवं पदार्थों यथा—दूध, दही, फल, दालें, चावल इत्यादि में सभी विटामिन (जीवनीय-द्रव्य) प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं।

जल

जल जीवन का आधार है। शरीर के सम्पूर्ण भाग में 2/3 भाग अर्थात् 67 प्रतिशत जल होता है। शरीर में भोजन पचाने के लिये एवं रक्त को तरल बनाये रखने के लिये जल की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त शरीर से व्यर्थ पदार्थों को बाहर करने के लिये भी जल की आवश्यकता होती है। त्वचा, गुर्दे आदि सभी मल-पदार्थों को बाहर निकालते हैं। इसमें भी जल का ही कार्य प्रमुख है इस प्रकार स्पष्ट है कि जल हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है।

अष्टांग संग्रह के अनुसार कुआँ, सारस, ताटाक चौण्ड्य, प्रास्रवण, औद्भिक, वापी तथा नदी का जल ये आठ प्रकार के जल होते हैं।[30]

गुण

कूप का जल क्षार गुण युक्त तथा पित्त कारक, सारस का जल अग्नि-दीपक, अल्पवात कारक, मधुर तथा लघु होता है। ताटाक का जल गुरु तथा वात-कारक, चौण्ड्य का जल-पित्त कारक, झरना का जल त्रिदोष हर, औद्भिक जल मधुर एवं पित्त नाशक, वापी का जल मधुर एवं लघु तथा नदी का जल वात कारक, रुक्ष तथा कटु होता है। धन्वदेश, आनूप देश या पर्वतीय प्रदेश के सामीप्य से कूप आदि के जल में गुरुता एवं लघुता समझना चाहिये। अष्टांग संग्रह-कार का यही मत है।[31]

वाल्मीकि रामायण में सामुद्र जल, नदी का जल, सामान्य जल आदि का विषद् वर्णन प्राप्त होता है।[32]

स्वस्थवृत्त एवं सद्वृत्त

आयुर्वेद के दो मूलभूत प्रयोजनों के अन्तर्गत स्वास्थ्य संरक्षण का एक

महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस स्वस्थवृत्त को वैयक्तिक एवं सामाजिक इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। जिसे आयुर्वेद ने सद्वृत्त की संज्ञा दी है और इसकी परिधि में इन्द्रिय एवं मन के द्वारा अनुष्ठेय नियम आते हैं।

वाल्मीकि रामायण में स्वस्थ वृत्त एवं सद्वृत्त की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसकी विशद समीक्षा तृतीय परिवर्त में है।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में शरीर विज्ञान प्रकरण को प्रस्तुत करना यथा आयु एवं उसका आधार, आत्म तत्व, शरीर की रचना, शरीर का प्राविभाग—त्वचा, कला, दोष मल, अन्तःकरण, इन्द्रियाँ, प्रकृति-भेद-वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक प्रकृति, प्रशस्त सामुद्रिक लक्षणों का ज्ञान यथा—पुरुषगत प्रशस्त लक्षण एवं स्त्रीगत प्रशस्त लक्षण का सामान्य परिचय, स्वास्थ्य का महत्त्व एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले वंशानुक्रम, वातावरण, आहार आदि तत्वों तथा मांसतत्व (प्रोटीन) एवं उसके कार्य, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण, जीवनीय द्रव्य, जल आदि का संक्षिप्त परिचय एवं वाल्मीकि रामायण में इसकी उपलब्धि प्रस्तुत अध्याय में की गयी है।

संदर्भ

प्रथम परिच्छेद

1. हिताहितं सुखंदुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
   मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।। च.सू. 1/39।।
2. तत्रायुरुक्तं स्वलक्षणतो यथावदिहैव पूर्वाध्याये च। तत्र शारीरमानसाभ्यां रोगाभ्यामनभिद्रुतस्य विशेषण यौवनवतः समर्थानुगतबलवीर्ययशः पौरुषपराक्रमस्य ज्ञानविज्ञानेन्द्रियार्थबल समुदये वर्तमानस्य परमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्य समृद्धसर्वारम्भस्य यथेष्टविचारिणः सुखमायुरुच्यते, असुखमतो विपर्ययेण। च.सू. 30/24
3. हितैषिणा पुनर्भूतानां परस्वादुपरतस्य सत्यवादिनः शमपरस्य परीक्ष्यकारिणोऽप्रमत्तस्य त्रिवर्ग परस्परेणानुपहतमुपसेवमानस्य पूजार्हसंपूजकस्य ज्ञानविज्ञानोपशमशीलस्य वृद्धोपसेविनः सुनियतरागरोषेर्ष्यामदमान वेगस्य सततं विविध प्रदान परस्य तपोज्ञानप्रशमनित्यस्याध्यात्मविदस्तत्परस्य लोकमिमं चामुं चावेक्षमाणस्य स्मृतिमतिमतो
हितमायुरुच्यते, अहितमतो विपर्ययेण। च.सू. 30/24।।
4. शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
   नित्यगश्चानुबंधश्च पर्य्यायैरायुरुच्यते।। च.सू. 1/40।।
5. तत्र आयुः चेतनानुवृत्तिः, जीवितं, अनुबंधो धारि च इति एकोऽर्थः। च.सू. 30/22।।
6. हिन्दी विश्व कोश, खण्ड-1, पृष्ठ-387
7. आयुष्यं पुष्टिजननं सर्वश्रुतिमनोहरम्। बा. 4/28
8. सर्वे पापाः प्रणश्यन्ति आयुः कीर्तिश्च वर्धते।। बा. 44/23
9. अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह। आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः।। अयो. 105/20

10. हृष्यन्त्यतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिवागतम्। ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः।। अयो. 105/25)

11. उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण। निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुः परिक्षयः।। अर. 24/9।।

12. धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्। यु. 128/107

13. पूजयंश्च पढ़श्चैनमितिहासंपुरातनम्। सर्व पापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात्।। यु. 128/17

14. आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं, सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च। यु. 128/125

15. अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा।। उ. 35/62

16. अहंकारः फलं कर्म देहान्तरगतिः स्मृतिः। विद्यते सति भूतानां कारणे देहमन्तरा।। च.शा. 1-52

17. सत्त्वात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगातत्र सर्वम् प्रतिष्ठितम्।। च.शा. 1/46)

18. खाद्यश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः। च.शा. 1/14

19. शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम्।
पञ्चभूतावशेषत्वात् पञ्चत्वं गतमुच्यते।। च.शा. 1/73

20. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतास्तु सः।। श्री म.गी. 3/42

21. प्रभवो न ह्यनादित्वाद्विद्यते परमात्मनः। पुरुषो राशिसंज्ञस्तु मोहेच्छाद्वेष कर्मजः।। च.शा. 1-53

22. आत्मा ज्ञः करणैर्योगाद् ज्ञानं त्वस्य प्रवर्तते। करणानामवैमल्यायोगाद्वा न वर्तते।। पश्यतोऽपि यथाऽऽदर्शे संक्लिष्ट नास्ति दर्शनम्। तवं जले वा कलुषे चेतस्युपहते तथा।। च.शा. 1/54

23. बुद्धीन्द्रियमनोऽर्थानां विद्याद्योगधरं परम्। चतुर्विंशतिको ह्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः।। च.शा. 1/35

24. करणानिमनोबुद्धि बुर्द्धिकर्मेन्द्रियाणि च। कर्तुः संयोगजंकर्म वेदना बुद्धिरेव च। नैकः प्रर्वतते कर्तुं भूतात्मा नाश्नुते फलम्। संयोगाद्वर्तते सर्वंतमृते नास्ति किंचन।। च.शा. 1/56-57

25. अत्र कर्मफलं चात्र ज्ञानं चात्र प्रतिष्ठितम्। अत्र मोहः सुखं दुःखं जीवितं मरणंस्वता।। च. शा. 1-37

26. रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्। ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्वबुद्धया निवर्तते।। च.शा. 1-36

27. अव्यक्ताद्व्यक्ततांयाति व्यक्तादव्यक्ततां पुनः। रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवत् परिवर्तते।। च. शा. 1/68

28. प्राणापानौ निमेषाद्या जीवनं मनसोगतिः। इन्द्रियान्तरसंचारः प्रेरणं धारणं च यत्।। देशान्तर गतिः स्वप्ने पंचत्वग्रहणं तथा। दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सत्येनावगमस्तथा।। इच्छा

द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः। बुद्धिः स्मृतिरहंकारो लिंगानि परमात्मनः।।
यस्मात् समुप्लभ्यन्तेलिङ्ग गान्येतानि जीवितः। न मृतस्यात्मलिंगानि
तस्मादाहुर्महर्षयः।। च.शा. 1/70-73

29. येषां द्वन्द्वे परा शक्तिरहंकार पराश्च ये। उदय प्रलयो तेषां न तेषां ये त्वतोऽन्यथा।।
- च.शा. 1-69

30. विभुत्वमत एवास्य यस्मात् सर्वगतो महान्। मनसश्च समाधानात् पश्यव्यात्मा तिरस्कृतम्।।
- च.शा. 1-80

31. क्षेत्रज्ञो, वेदयिता, स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टाश्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्तायः कोऽसावित्येव मादिभिः पर्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयतेदैवसंगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्वरजस्तमोभिर्देवासुरैरपरैश्च भावैर्वानाऽभिप्रेर्यमाणः गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते। (सु.शा. 3/4)

32. आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेष्व सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनि मानुषदेवेषु संचरन्ति धर्माधर्मनिमित्तं, त एतेऽनुमानग्राह्याः परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः शाश्वता लोहितरेतसोः सन्निपातेष्वभिव्यज्यन्ते यतोऽभिहितम् पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति; स एष कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः। (सु.शा. 1-17)

33. तस्य सुख दुःखे इच्छाद्विषौ प्रयत्नः प्राणापानावुन्मेष निमेषो, बुद्धिर्मनः संकल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः। सु.शा. 1-18

34. च.शा. 3/3

35. च.शा. 3/11

36. सत्यं जीवस्पृक् शरीरेणाभिसम्बध्नातीति। च.शा. 3/22)

37. तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गावयवाश्च योगपद्येनाभिनिर्वतन्ते।। च.शा. 4/11)

38. चतुर्थे सर्वाङ्ग प्रत्यङ्ग विभागः प्रव्यक्ततरो भवति। गर्भ हृदय प्रव्यक्ति भावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति। कस्मात्? तत् स्थानत्वात्। तस्माद् गर्भः चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति। द्विहृदयां च नारीं दौहृदनी माचक्षते।। -सु.शा. 3/21

39. ततोदशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः।
द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत्।। -अया. 77/1

40. तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकं समयोगवाहि। यदा ह्यस्मिन् शरीरे धातवो वैषम्यापद्यन्ते तदा क्लेशं विनाशं वा प्राप्नोति। वैशम्यगमनं हि पुनर्धातूनां वृद्धिह्रासगमनकार्त्स्न्येन प्रकृत्या च। च.शा. 6-4

41. शुक्र शोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृति विकार सम्मूर्छितं गर्भ इत्युच्यते। तं चेतनावस्थितं वायुर्विभजति तेज एनं पचति, आपः क्लेदयन्ति पृथ्वी संहन्ति आकाशं विवर्धयति एवं विवर्धितः स यदा हस्त- पाद-जिह्वा-घ्राण-नितम्बादिभिरङ्गैरूपेतस्तदा 'शरीरम्' इति संज्ञा लभते। सु.शा. 5/3

42. दोष धातुमलमूलं हि शरीरम्। सु.सू. 15/3

43. तत्रायं शरीरस्याङ्ग विभागः तद्यथा-द्वौ बाहू, द्वे सक्थिनी, शिरोग्रीवं अन्तराधिः इति

षडङ्गमङ्गम्।

44. तच्च षडङ्गं शाखश्चतस्रो मध्यं पञ्चमं षष्ठं शिरं इति। सु.शा. 5/3

45. तच्च पुनः षडङ्गं शिरोऽन्तराधिः द्वौ बाहू सक्थिनी च। नेत्र-नाभि-पाणिपादादीनि त्वस्य प्रत्यङ्गानि। अ.सं.शा. 5-3

46. अ.सं.शा. 5/23

47. तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचभूत विकार समुदायात्मकं समयोग वाहि।।च. शा. 6/3

48. 'दोषधातु मलमूलं हि शरीरम्। सु. सू. 15/3
दोषधातु मलामूलं सदा देहस्य।। अ.हृ.सू. 11/1

49. वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोष संग्रह।। च.सू. 1/56
वायु पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।। अ.हृ.सू.

50. 'रसाऽसृङ्मासमेदोऽस्थि मज्जाशुंक्राणि धावतः। अ.हृ.सू. 1/13

51. मलामूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च। अ.हृ0सू. 1/13

52. आहार सम्भवम् वस्तु। च.सू. 28/44

53. शरीर दूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्।
वात-पित्त कफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः।। शा.पू0 5/24

54. तस्य रोमाणि केशांश्च तदा वहिनर्महात्मनः।
जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम्।। अर. 5/40

55. त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः। त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः।। उ. 5/7

56. विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम्। आह दुःखाभिसंतप्ता किमिदानीमिदं प्रभो।। अयो. 26/8

57. विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत। रूरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः।। उ. 35/50

58. तस्मिन गच्छति लोक नाथे, गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः। नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः, शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्र।। सु. 28/6

59. श्वाविधः शललैर्यद्वद् बाणैर्लग्नैर्निरन्तरम्।। स्वर्पितैर्मर्मसु भृशं संछिन्नास्नायु बन्धनम्। यु. 111/45

60. सभिन्न संधिः प्रविकीर्ण बंधनो, हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः।। सु. 47/36

61. यकृत्प्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम्। भिन्नकाय शिरोमीनामङ्गावयव शाद्वलाम्।। यु. 58/30

62. स कृत्तचापः शरताडितश्च मेदार्दगात्रो रुधिरावसिक्तः। यु. 59/107

63. तेजो वीर्यं बलं चौजं उत्साहश्च महागुणाः। प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः।। यु. 50/40

64. केशान् कर्णललाटं च नासिकाश्च प्लवंगमाः। रक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि व्यकर्त्तयन्।।

यु. 93/14

65. योनिदेशाश्च यवनाः शकृद्देशाच्छकाः स्मृताः। रोमकूपेषु मलेच्छाश्च हारीताः सकिरातकाः।।

बा. 55/3

66. पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च। वर्तते मयि बीभस्ता सा मे मर्माणि कृन्तति।।

उ. 45/3

67. बा. 2/5

68. यु. 52/22

69. यु. 65/36

70. यु. 44/10

71. सात्विकास्तु-आनृशंस्य, संविभागरुचिता, तितिक्षा, सत्यं, धर्मम्, आस्तिक्यं, ज्ञानं, वुद्धिर्मेधा, स्मृतिर्धृतिरनभिषङ्गश्च, राजसास्तु- दुःखबहुलताऽटनशीलताऽधृतिहंकार आनृतिकत्वमकारुण्यं दम्भो मानो हर्षः कामः क्रोधश्च, तामसास्तु,-विपादित्वं नास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञानं दुर्मेधस्त्वमकर्मशीलता निद्रालुत्वं चेति। (सु.शा. 1-19

72. यद्गुणं चाभीक्ष्णं पुरुषमनुवर्तते सत्वं तत्सत्वमेवोपदिशन्ति मुनयो बाहुल्यानुशयात्।

च.सू. 8-3

73. च.शा. 3/3

74. च.शा. 3/11

75. च.शा. 3/22

76. तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गवयवाश्च योगपद्येनाभिनिर्वतन्ते। च.शा0 4/8

77. तत्रपूर्वचेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्तते।। च.शा. 4/7

78. अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसंज्ञकंचेत इत्याहुरेके। च.सू. 8/21

79. यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायियत्। तद् द्रव्यम्।। च.सू. 1/50

80. खादीन्यात्मा मनः कालोदिशश्च द्रव्यसंग्रहः।। च.सू. 1/47

81. अतोऽन्यत्पुनरव्यक्तं लिंगग्राह्यमतीन्द्रियम्।। च.शा. 1/61

82. मनोमनोर्थो बुद्धिरात्मा चेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहः शुभाशुभ प्रवृत्तिनिवृत्ति हेतुश्च।। च.सू. 8/12

83. च.नि. 7/3

84. च.नि. 8/3

85. सु. शा. 4/31

86. च. चि. 28/5

87. नियन्ता प्रणेता च मनसः।। च.सू. 12/7

88. प्राणाप्राणभृतां यत्राश्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।

यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते।। च.सू. 7/11

प्राणोऽत्र मूर्धगः।

उरः कण्ठचरो बुद्धिहृदयेन्द्रियचित्तधृक्।। अ.हृ.सू. 12/4
शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रिय परं मनः।
तत्रस्थं तद्धि विषयानिन्द्रियाणां रसादिकान्।।
समीपस्थान्विजानाति।। भे. चि. 8/3

89. वातपित्तश्लेष्मणांपुनः सर्वशरीरचराणां सर्वस्रोतांस्ययन भूतानीति,
तद्वदतीन्द्रियाणां पुनः सत्वादीनां केवलं चेतवावच्छरीर मयन भूतमधिष्ठानभूतं च।।
च.वि. 5/5

90. शरीरं नाम चेतनाधिष्ठान भूतम्।। च.शा. 6/3

91. युग्पज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्।। न्या.स. 1/1-16

92. अणुत्वमथ चैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ।। च.शा. 1/18

93. स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्ल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन् पुरुषे सत्त्वं रजस्तमः सत्त्वगुणयोगाच्च,
न च अनेकत्वं, नाण्वेकं ह्मेक कालमनेकेषु प्रवर्तते, तस्मान्नैककाला सर्वेन्द्रिय प्रवृतिः।।
च.सू. 8/4

94. चिन्त्यं विचार्यमूह्यं च ध्येयं संकल्प्यमेव च।
यत्किचिन्मनसो ज्ञेयं तत् सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम्।। च.शा. 1/19

95. यदुगणंचाभीक्ष्णंपुरुष मनुवर्तते सत्त्वं,
तत्सत्वमेवोपदिशन्तिऋषयो बाहुल्यानुशयात्।। च.सू. 8/6

96. सत्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।। श्री.म.गी. 14/9

97. वृतयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।
प्रमाण विपर्ययविकल्प निद्रास्मृतयः।। यो.सू. 1/5

98. निरोध धर्म संस्काराः परिणामोऽर्थ जीवनम्।
चेष्टाशक्तिश्च चित्तस्य धर्मादर्शन वर्जिताः।। यो.सू. 3/15

99. तत्र नेत्रमनः कान्तः कुञ्जरो नाम पर्वतः।। कि. 41/34
अगस्त्य भवनं यत्र निर्मितं बिश्रवकर्मणा।

100. अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम्।
कार्यसिद्धिकराण्यहुस्तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम्।। कि. 49/6

101. मनश्च मे हतं भूयश्चक्षुः प्राप्य तु संश्रयम्।
यत्नेन महता ह्यस्मिन् मनः संधाय चक्षुषी।। कि. 61/12

102. व्यवसायं च तं बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः।।
पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव।। स. 58/12.5, 13

103. ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम।
त्वरते हि मनोद्रष्टुं रामं रमयतां वरम्।। उ. 46/31

104. पुरोहितं वसिष्ठं च शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान्।
रामेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।

प्रदक्षिणमथो कृत्वा निर्ज़गाम महाबलः।। उ. 64/17

105. इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते।
कल्प्यते मनसाऽप्यूर्ध्वगुणतो दोषतो यथा।।
जायते विषये तत्र या बुद्धिनिश्चयात्मिका।
व्यवस्यति तथा वक्तुं कर्तुं वा बुद्धि पूर्वकम्।। च.शा. 1/21, 22

106. बुद्धद्ध्या विषमविज्ञानं विषमं च प्रवर्तनम्।
प्रज्ञापराधं जानीयान्मनसो गोचरं हि तत्।। च.शा. 1/108

107. च.सू. 8/15

108. बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कंबुग्रीवो महाहनुः।। बा. 1/9

109. कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः।
अवलिप्तो न शन्कोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम्।। यु. 64/2

110. बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्त
न्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य ....।। यु. 15/1

111. शरीर संयुक्त ज्ञानं करणमतीन्द्रियम्।—तर्क भाषा

112. *Guilford - General Psychology P.* 222)
(प्राचीन भारतीय मनो-विज्ञान-विकार पृ0 46)

113. तत्र चक्षुः श्रोतं घ्राणं रसनं स्पर्शनमिति पंचेन्द्रियाणि। च.सू. 8/8

114. सेन्द्रिय चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्।। च.सू. 1/48

115. भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः। सु.शा. 1/14

116. एकैकाधिक्युक्तानि खादीनामिन्द्रियाणि तु। च.शा. 1/24

117. पञ्चेन्द्रियद्रव्याणि खं वायुर्ज्योतिरापो भूरिति। च.सू. 8/9

118. आहंकारित्वश्रुतेनभौतिकानि। सा0सू. 2-20

119. घ्राणरसन चक्षुस्त्वक्श्रोत्राणि इन्द्रयाणि भूतेभ्यः।
पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशभूतानि इन्द्रियकारणानि इति।।
गन्धरूपरस स्पर्श शब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः।। न्याय दर्शन 1-1-12-14

120. पञ्चेन्द्रियार्था-शब्द-स्पर्श-रूप-रस गन्धाः।। च.सू. 8-11

121. शिरसि च इन्द्रियाणि इन्द्रिय प्राणवहानि स्रोतांसि सूर्यमेव गभस्तयः संश्रितानि।-च.सि0 9-4

122. पञ्चेन्द्रियबुद्धयः-चक्षुर्बुद्धयादिकाः, ताः पुनरिन्द्रियेन्द्रियार्थ-सत्वात्मसन्निकर्षजाः, क्षणिकाः, निश्चयात्मिकाश्च। च. सू. 8-12

123. इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते।
कल्प्यते मनसा तूर्ध्वं गुणतो दोषतोऽथवा।।
जायते विषये तत्र या बुद्धिर्निश्चयात्मिका।
व्यवस्यति तथा वक्तुं कर्तुम् वा बुद्धिपूर्वकम्।। च. शा. 1-22-23

124. प्रतीहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः।।

विषसाद पुनर्भूयो लुलित व्याकुलेन्द्रियः।। अयो. 10/21

125. ह्लादयत् सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च।
श्रोताश्रय सुखं गेयं तद् बभौ जनसंसदि।। बाल. 4/34

126. परुषं दारूणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियता''नम्।
सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति।। स. 13/24

127. परिणीय च सर्वत्र नीतोऽहं रामसंसदि।
रुधिरस्नाविदीनाङ्गो विह्वलश्चलितेन्द्रियः।। यु. 30/9

128. पुष्पसंसर्गासुरभिर्ववौ घ्राणसुखोऽनिलः।
अन्ये तु हरिवीराणांयूथान्निष्क्राम्य यूथपाः। यु. 39/13

129. शुक्रशोषित संयोगे यो भवेद्दोष उत्कृटः।
प्रकृतिजीयते तेन तस्या मे लक्षणं श्रृणु।। सु.शा. 4/62

130. चरक वि. 8/106

131. सप्त प्रकृतयो भवन्ति। दोषैः पृथक्, द्विशः समस्तैश्च। सु.शा. 4/61
शुक्रासृगगर्भिणी भोज्य चेष्टा गर्भाशयर्तुषु।
यः स्याद्दोषोऽधिक्स्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता।। अ.हृ.शा. 3/83

132. तेषामनातुराः पूर्वे वातलाघाः सदाऽतुराः।
दोषानुशयिता ह्रेषां देह प्रकृति रुच्यते।। च.सू. 7/39
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीन मध्योत्तमाः पृथक्।
स धातुः समास्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः।। अ.हृ.सू. 1/10

133. विष जातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते।
तद्वत्प्रेकृत्यो मर्त्यं शक्नुवन्ति न वाधितुम्।। सु.शा. 4/78

134. प्रकोपो वान्यभावो वाक्षयो वा नोपजायते।
प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः।। सु.शा. 4/77

135. अल्पकेशः कृशो रुक्षो वाचालश्चलमानसः।
आकाशचारी स्वप्नेषु वात प्रकृतिको नरः।। शा. प. 6/20

136. वातिकाश्चाजगोमायुराशाखूष्दशुनां तथा।
गृधकाकखरादीनामनूकैः कीर्तिताः नराः।। सु.शा. 4/66

137. श्वश्रृगालोष्ट्रगृधारवुकाकाऽनूकाश्च वातिकाः।। अ.हृ.शा. 3/89

138. रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।। चरक।।
रुक्षोलघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः।। अ.हृ.

139. अकाले पलितैर्व्याप्तो धी मान् स्वेदौ च रोषणः।
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्त प्रकृतिको नरः।। शा.पू. 6/21

140. भुजंगोलूकगन्धर्वयक्षमार्जारवानरैः।
व्याघ्रर्क्षनुकुलानूकैः पैत्तिकास्तु नराः स्मृताः।। सु.शा. 4/70

141. मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेश भीरवः।

व्याघ्रर्क्षकपिमार्जार यक्षानूकाश्च पैत्तिकाः।। अ.हृ.शा. 3/95

142. गम्भीर बुद्धिः स्थूलाङ्गः स्निग्धकेशो महाबलः।
स्वप्ने जलाशयलोकी श्लेष्म प्रकृतिको नरः।। शा.प. 7/22

143. ब्रह्मरुदेन्द्रेवरुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः।
तार्क्ष्यहंससमानूकाः श्लेष्म प्रकृतयो नराः।। सु.शा. 4/75

144. ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुण तार्क्ष्य हंस गजाधिपैः।
श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः।। अ.हृ.शा. 3/103

145. प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः।
पवनदहन तोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः।।
स्थिर विपुल शरीरः पार्थिवश्च क्षमावान।
शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः।। सु.शा. 4/79

146. इत्येवं शुद्धस्य सत्वस्य सप्तविधं भेदांश विद्यात्।
कल्याणांशत्वात्, संयोगात ब्राह्ममत्यन्त शुद्धं व्यवस्येत्।। च.शा. 4/45

147. सप्तैते सात्विकाः कायाः।। सु.शा. 4/87

148. इत्येवं खलुराजराजस्य सत्वस्य षड्विधं भेदांश विद्याद् रोषांशत्वात्।। च.शा. 4/52
षडेते राजसाः कायाः।। सु.शा. 4/52

149. इत्येवं खलुतामसस्य सत्वस्य त्रिविधं भेदांश विद्यान्मोहांशत्वात्। च.शा. 4/56
इत्येते त्रिविधाः कायाः प्रोक्ता वै तामसास्तथा।
कायानां प्रकृतिर्ज्ञात्वा त्वनुरूपां क्रियां चरेत्।। सु.शा. 4/98

150. नष्टचितो यथोन्मतो विपरींत्तो यथातुरः।
हततेजा यथा सर्पो बभूव जगतीपतिः।। अयो. 12/55

द्वितीय परिच्छेद

1. बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।। बा. 1/9

2. महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।। बा. 1/10

3. समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः।। बा. 1/11

4. रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे।। सु. 35/8

5. विपुलांसो महाबाहुः कम्बु ग्रीवः शुभाननः।
गूढ़जत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः।। सु. 35/15

6. दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।

समश्च सुविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः।। सु. 35/16

7. त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमास्त्रिपु चोन्नतः।
त्रिताम्रस्त्रिपु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिपु नित्यशः।। सु. 35/17

8. त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्ग स्त्रिशीर्षवान्।
चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुः समः।। सु. 35/18

9. चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दष्ट्रश्चतुर्गतिः।
महोष्ठनहनुनासश्च पंचस्निग्धोऽष्टवंशवान्।। सु. 35/19

10. दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान्।
षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः।। सु. 35/20

11. स सुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः।
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शन कृतोत्सवौ।। सु. 35/23

12. जनकस्य कुले जाता देव मायेव निर्मिता।
सर्व-लक्षण सम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः।। बा. 1/27

13. ऊचुलक्षिणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः।। यु. 48/2

14. ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम्।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः।। यु. 48/5

15. इमानि खलु पद्मानि पादयोर्वै कुलस्त्रियः।
आधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह।। यु. 48/6

16. वैधव्यं यान्ति यैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्य दुर्लभाः।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा।। यु. 48/7

17. सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणमुक्तानि लक्षणैः।
तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे।। यु. 48/8

18. केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम।
वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम।। यु. 48/9

19. शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फातोवूरू समौ चिरौ।
अनुवृत्त नखाः स्निग्धाः समाश्चाङगुलयो मम।। यु. 48/10

20. स्तनौ चाविरलौ पीन्रे मामकौ मग्नचूचुकौ।
मग्ना चोत्सेधनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम्। यु. 48/11

21. म वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरूहाणि च।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभ लक्षणम्।। यु. 48/12

22. समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत्।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालाक्षणिका विदुः।। यु. 48/13

23. आधिराज्ये अभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह।
कृतान्त कुशलैरुक्तं तत् सर्वं वितथीकृतम्।। यु. 48/14

24. बभूवजलदं नीलं भित्वा चन्द्र इवोदितः।
सुललाटं सुकेशान्तं पद्मगर्भाभमव्रणम्।। अ. 52/19
शुक्लैः सुविमलैर्दन्तैः प्रभावद्भिरलंकृतम्।
तस्याः सुनयनं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम्।। अ. 52/20

25. अरण्य–52/21, 22, अरण्य -60/31, सुं. 15/28, 29, 30, 31, उ. 24/7, 8, 9, उ. 26/18, 19

तृतीय परिच्छेद

1. प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षण मातुरस्य विकार-प्रशमनं च। च.सू. 30/24, इह खलु आयुर्वेद प्रयोजनं-व्याध्युपसृष्टानां व्याधि परिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणञ्च।। सु.सू. 1/22

2. समदोषः समाग्निश्च समधातुमल क्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। सु.सू. 15/50

3. (........................ साम्यं प्रकृतिरुच्यते। चरक सू. (आ. का वैज्ञानिक इतिहास)

4. उ. 51/8, बा. 8/1

चतुर्थ परिच्छेद

1. षष्टिकान् शालिमुद्गांश्च सैन्धवामल केयवान्।
आन्तरीक्षं पयः सर्पिः जांगलं मधु चाभ्यसेत्।। च.सू. 5/12

2. रक्तो महान् सकलमस्तूर्णकः शकुनाहृतः।
सारामुखो दीर्घशूको रोध्रः शूकः सुगन्धकः।। अ.सं.सू. 7/3
पुण्ड्रः पाण्डुः, पुण्डरीकः प्रमोदो गौरशारिवौ।
कांचनो महिषः शूको दूषकः कुसुमाण्डकः।। अ.सं.सू. 7/4
लाङ्गला लोहवालाख्याः कर्दमाः शीतभीरुकाः।
पतङ्गाश्तपनीयाश्च ये चान्ये शालयः शुभाः।। अ.सं.सू. 7/5

3. स्वादुपाक रसाः स्निग्धा वृष्या बद्धाल्पवर्चसः।
कषायानुरसाः पथ्या लघवो मूत्रला हिमाः।। अ.सं.सू. 7/6

4. शूकजेषु परस्तत्र रक्तस्तृष्णात्रिदोषहा।
महांस्तस्यानुकलमस्तं चाप्यनु ततः परे।। अ.सं.सू. 7/7
तस्मादल्पान्तरगुणाः क्रमशः शालयोऽवराः।।

5. गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमो निवेशिताम्।
शालितण्डुल सम्पूर्णामिक्षुकाण्ड रसोदकाम्।। बा. 5/17

6. दध्यक्षत हविर्लाजैर्धूपैरगुरू चन्दनैः।।
नानामाल्योपगन्धैश्च सदाभ्यर्चितचत्वरम्। अयो. 17/6

7. खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः।। अर. 16/17

8. कि. 26/23, यु. 10/9, उ. 91/19, अयो. 20/17, अर. 35/24

9. सूप्यानामुत्तमा मुद्गा लंघीयां सोऽल्पमारुताः।
हरितास्तेष्वपि वरा मकुष्ठाः कृमि कारिणः।। अ.सं.सू. 7/26
वर्ण्याः परं प्रलेपाद्यैर्मसूरा ग्राहिणो भृशम्।
राजमाषो गुरुर्भूरिश कृद्रूक्षोऽति वातलः।। अ.सं.सू. 7/27

10.कषाय स्व दुरुक्षोष्णाः कुलत्था रक्तपित्तलाः।
पीनस श्वास कासार्शोहिध्माऽऽनाहकफानिलान्।। अ.सं.सू. 7/28
हनन्ति शुक्राश्मरीं शुक्रं दृष्टिं शोफं तथोदरम्।
ग्राहिणो लघवस्तीक्ष्णा विपाकेऽम्ला विदाहिनः।। अ.सं.सू. 7/29

11.माषः स्निग्धो बलश्लेषममल पित्तकरः सरः।। अ.सं.सू. 7/31
गुरुष्णोऽनिलहा स्वादुः शुक्रवृद्धि विरेककृत्।

12.स्निग्धोष्णतिक्त कटुकः कषायमधुरस्तिलः। अ.सं.सू. 7/34
मेध्यः केश्यो गुरुर्वर्ण्यः स्पर्शशीतोऽनिलापहः।
अल्पमूत्रः कटुः पाके मेधाऽग्निकफ पित्तकृत।। अ.सं.सू. 7/35
कृष्णः प्रशस्तस्तमनु शुक्लस्तमनु चारुणः।।

13. स्निग्धघोष्णो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुकस्तिलः।
त्वच्यः केश्यस्य बल्यश्च वातघ्नः कफपितकृत्।। च.सू. 27/30

14. तेषामशीतियानानि रत्नपूर्णानि दापय।
शालिवाह सहस्रं च द्वे शते भद्रकांस्तथा।। अयो. 32/20

15. अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल।।
चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च। उ. 91/19.5

16. वसा मज्जा वातहनौ बलपित्तकफ प्रदौ।
मांसानुगस्वरूपौ च विद्यान्मेदोऽपि ताविव।। अ.सं.सू. 6/112

17. औलूकी शौकरी पाकहंसजा कुक्कुटोद्भवा।
वसा श्रेष्ठा स्ववर्गेषु कुम्भीर महिषोद्भवा।। अ.सं.सू. 6/113
काकमद्गु वसा तद्वर्कारण्डोत्था च निन्दिता।

18. शाखादमेदसां छागं हस्तिनं च वरावरे।। अ.सं.सू. 6/114

19. तच्छरीरं कबन्धस्य घृतपिण्डोपमंमहत्।
मेदसा पच्यमानस्य मन्दं दहत पावकः। अर. 72/3

20. आदद् बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितोऽपिबत्।
मेदः कुम्भाश्च मद्याश्च पपौ शक्रारिपुस्तदा।। युद्ध 60/63

21. संचुक्षुभे तेन तदाभिभूतो
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः।। यु. 67/18

22. सम्प्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः।
वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान्।। यु. 67/96

23. मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः, कर्णावसक्तग्रथितान्त्रमालः।
ववर्ष शूलानि सुतीक्ष्णद्रंष्ट्रः कालोयुगान्तस्थ इव प्रवृद्धः।। यु. 67/99

24. द्वाराणां परिघाणां च गिरीणां चापि भेदनम्।
नानारुधिर दिग्धाङ्ग मेदोदिग्धं सुदारूणम्।। यु. 108/9

25. लवण द्रव्यस्कन्धः सैन्धवादीनि क्षारान्तानि त्रपुसीसक प्रभृतीनिच।। अ.सं.सू. 18/22

26. अधिक शैलराजस्तु धातु भिस्तु विभूषितः।। यु. 4/76

27. धातुनामिव शैलेन्द्रो ....। कि. 15/21

28. यु. 74/67

29. दुःखे मं दुःखमकरोर्वणे क्षारमिवाददाः। राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम्।। अयो.73/3 स कृत्वासागरे सेतुं तीर्त्वा च लवणोदधिम्। एष रक्षांसि निर्धूय धन्वी तिष्ठति राघवः।। यु.24/31 महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः। निपेतुर्भग्नविटपाः सलिले लवणाम्भसि। यु.50/34 को हन्ता लवणं वीरः कस्यांशः स विधीयतम्। भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमतः।। उ.62/8 चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च। उ. 91/19

30. कौप सारसताटाक चौण्ड्यप्रास्रवणौद्भिदम्।।
वापी नदी तोयमिति तत् पुनः स्मृतमष्टधा। अ.सं.सू. 6/12.5

31. सक्षारं पित्तकृत्कौपं दीपनं नातिवातलम्।। अ.सं.सू. 6/13
सारसं स्वादु लघु च ताटाकं गुरुवातलम्।
चौण्ड्यं तु पित्तलं दोषहरं प्रस्रवणोदकम्।। अ.सं.सू. 6/14
औद्भिदं स्वादु पित्तहनं स्वादु वापीजलम् लघु।
नादेयं वातलं रुक्षं कटुकं च तथाऽऽदिशेत्।। अ.सं.सू. 6/15
धन्वानूप महीध्राणां सामीप्यात् गुरुलाघवम्।

32. (i) यथामृतस्य सम्प्राप्तिर्यथा वर्षमन्दके।। बा. 18/50
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै।
(ii) अग्निं कुशान् काष्ठमपः फलं मूलं तथैव च।
न्यवेदयत् सहस्राक्षो यच्चान्यदपि काङ्क्षितम्।। बा. 46/10
(iii) सिक्तराजपथारम्यां प्रकीर्ण कुसुमोत्कराम्। राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलपाणिभिः।। बा.77/7
(iv) पताकाभिर्वराहाभिर्ध्वजैश्च समलंकृताम्।।
सिक्तां चन्दनतोयैश्च शिरः स्नातजनैर्युताम्।। अयो. 7/3
(v) सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचि।
चकार माता रामस्य मङ्गलानि मनस्विनी।। अयो. 25/1
(vi) न ते क्षौद्रं च दधि च ब्राह्मणा वेदपारगाः।
मूर्ध्नि मूर्धाभिषितस्य ददति स्म विधानतः।। अयो. 26/13
(vii) तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयाम शैवलाम्।
ददर्श राघवो गङ्गां रम्यामृषिनिषेविताम्।। अयो. 50/12
(viii) श्वेताभ्रनिराजीव वायुपुत्रानुगामिनी। तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि।। सु.1/77

तृतीय परिवर्त
शरीर शुद्धि एवं वैयक्तिक स्वस्थवृत की सामग्री

प्रथम परिच्छेद

आयुर्वेदीय संहिताओं में स्वास्थ्य संरक्षण का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये आयुर्वेद के मूल-भूत प्रयोजनों के अन्तर्गत स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य संरक्षण का निर्देश किया गया है।

सुश्रुत संहिता में कहा गया है जिसके वात, पित एवं कफ सम हों, जिसकी पाचन शक्ति ठीक हो, जिसकी रस, रक्त आदि धातुएँ एवं मलों की क्रियाएँ समान हों तथा जिसका शरीर, इन्द्रिय एवं मन प्रसन्न हो वह स्वस्थ पुरुष है।[1]

चरकाचार्य ने धातुओं की साम्यावस्था को प्रकृति कहा है जो स्वास्थ्य का निर्देशक है।[2]

वाग्भट ने स्वस्थ पुरुष उसे माना है जिसके दोष, अग्नि धातु एवं चेष्टाएँ समान हों। साथ ही आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न हों, वह व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ माना जाता है।

स्वस्थवृत विभाग

आयुर्वेद में स्वस्थवृत वैयक्तिक, सामाजिक एवं सद्वृत इन तीन विभागों में विभक्त है। वैयक्तिक स्वस्थवृत के अन्तर्गत दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का समावेश है। इन तीनों का पालन करने वाला मनुष्य स्वस्थ कहा गया है।

दिनचर्या

अष्टांग संग्रह 'तृतीय अध्याय' में दिन-चर्या का विशेष वर्णन प्राप्त होता है। उसमें कहा गया है--प्रतिदिन करने योग्य चर्या दिनचर्या है।[3] प्रतिदिन की चर्या का नाम दिनचर्या है, चर्या का अभिप्राय है-चरण (आचरण)।[4]

दिनचर्या के अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले समस्त कार्य यथा प्रातः जागरण, शौचादि नित्य कर्म एवं सन्ध्यावन्दनादि कर्मों का उल्लेख किया जाता है। वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर नित्य कर्म का उल्लेख किया गया जो कि दिनचर्या की ओर इंगित करता है। यथा--प्रभात काल आने पर श्री रघुनाथ जी पूर्वाह्न काल के नित्यकर्म-सन्ध्यावंदनादि से निवृत हो बाहर निकलकर प्रजाजनों के दृष्टिपथ में आये।[5]

उपरोक्त सन्दर्भ में उल्लिखित नित्यकर्म एवं सन्ध्यावन्दनादि स्पष्टतः दिनचर्या

को ही सूचित कर रहे हैं।

प्रातः जागरण

आयुर्वेद में स्वास्थ्य को सही रखने के लिये ब्रह्म-मुहूर्त में जागरण बताया गया है। 'अष्टांग संग्रह' में कहा गया है, "स्वस्थ मनुष्य आयु की रक्षा के लिये रात्रि का भोजन पच गया है अथवा नहीं, इसका विचार करते हुए ब्रह्म—मुहूर्त में उठे।"[6]

यदि आहार का पाचन न हुआ हो तो नहीं उठना चाहिये। चार घड़ी रात्रि शेष रहने का नाम (प्रातः काल 4 से 6 बजे) ब्रह्म—मुहूर्त है। ब्रह्म ज्ञान एवं परमात्मा को कहते हैं। ज्ञान के अध्ययन के लिये तथा ईश्वर ध्यान के लिये योग्य समय ब्रह्म—मुहूर्त होता है। इस समय उठकर परमात्मा का ध्यान एवं विद्याध्ययन करना चाहिये। सुश्रुत ने भी कुछ ऐसा ही कहा है।[7] प्रातःकाल को अमृत वेला कहा गया है। शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, विपुल प्रकाश एवं विपुल आकाश ये ही प्रकृति के पञ्चामृत हैं। प्रातः काल ही स्वस्थ एवं प्रदूषण रहित अवस्था में ये पाँचों मिल सकते हैं। इस प्रातःकालीन पञ्चामृत को त्यागने वाले लोग आरोग्यवान, भाग्यवान तथा ज्ञानवान नहीं हो सकते हैं। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि प्रातःकालीन सूर्य की रश्मियों से व्याधियाँ नष्ट होती हैं।[8] बाल अरुण के अल्ट्रावायलेट किरणों द्वारा विटामिन 'डी' एवं 'ई' का निर्माण आधुनिक वैज्ञानिक लोग भी मानते हैं। मुख-दुर्गन्ध, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, आलस्य एवं अनेक प्रकार के नेत्ररोग केवल प्रातःकाल न उठने से होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर 'प्रभात काल' में उठने का उल्लेख मिलता है। यथा-तपोधन विश्वामित्र का प्रभात काल में जागरण,[9] राजा जनक का प्रातः जागरण,[10] राजा दशरथ का प्रातः जागरण,[11] राजा राम आदि का प्रातः जागरण।[12] इस प्रकार रामायण में प्रातः जागरण का उल्लेख किया गया है।

शौच-विधि

आहार का जो दुष्पाच्य और अनुपयोगी अंश होता है वह प्रचूषित न होकर आँतों में ही रह जाता है और इसको मल, पुरीष या विष्ठा कहते हैं। पुरीष शरीर में अधिक काल तक रहने से सड़ने लगता है और उससे उत्पन्न होने वाले विषैले द्रव्य रक्त में पहुंचकर अनेक विकार उत्पन्न करते हैं। इसीलिये दिन रात में एक बार ठीक मलोत्सर्जन जरूर होना चाहिये। इससे अधिक बार मल त्यागने की आवश्यकता हो तो ऐसा भी कर सकते हैं।

मल-शुद्धि के विषय में आयुर्वेदाचार्यों द्वारा बताये गये नियमों एवं विधि का अवश्य पालन करना चाहिये।

अष्टांग संग्रह में मलोत्सर्ग एवं मूत्रोत्सर्ग की विधि बताते हुए कहा गया है, "मलोत्सर्ग एवं मूत्रोत्सर्ग का वेग प्रतीत होने पर दिन में उत्तर दिशा में तथा रात्रि में दक्षिण दिशा में मुख करके मूत्र-मल त्याग करना चाहिये। मौन-होकर मलोत्सर्ग के अतिरिक्त किसी भी अन्य कार्य में ध्यान नहीं लगाना चाहिये।" मलत्याग के समय वस्त्र (तहमद आदि) धारण किये रहना चाहिये। तथा सिर को ढके रहना

चाहिये।[13] आते हुए मल-मूत्र के वेग को त्यागना चाहिये किन्तु न आते हुए वेग का प्रयत्नपूर्वक विसर्जन नहीं करना चाहिये। अत्यन्त अपवित्र स्थान में, रास्ते में, मिट्टी में, राख के ढेर पर, गो स्थान पर, जन समाज चौपाल आदि में, गोबर के ऊपर......[14] नगर के समीप, अग्नि के समीप, पिपीलिकादि द्वारा बनाये गये मिट्टी के ऊंचे ढेर पर, रमणीय स्थान में, हल द्वारा जोते खेत में, यज्ञादि की अग्नि के समीप, वृक्ष के नीचे अथवा ऊपर मल त्याग नहीं करना चाहिये। स्त्री, गुरु आदि पूज्य, गाय, अर्क (सूर्य), इन्दु (चन्द्रमा), वायु, अन्न, अग्नि तथा जल की ओर मुख करके भूमि को बिना ढके हुए मलोत्सर्ग नहीं करना चाहिये। अर्थात् तृण आदि से पृथ्वी को ढककर उसके ऊपर मलोत्सर्ग नहीं करना चाहिये। यदि स्वामी, चोर आदि का भय हो अथवा शरीर अशक्त हो तो इच्छानुसार मल-मूत्र का त्याग करें।[15]

मलोत्सर्ग उपर्युक्त सार्वजनिक स्थानों में नहीं करना चाहिये। इससे गन्दगी तथा नाना प्रकार के रोग फैलते हैं। मलोत्सर्ग के समय अन्य विषयों को सोचने से मल-त्याग काफी विलम्ब से होता है। आते हुए मल के वेग को रोकने से पिण्डलियों में ऐंठन, प्रतिश्याय, सिर में वेदना, अपान-वायु की ऊर्ध्वगति, गुदा में कैंची से काटने के समान वेदना तथा मुख द्वारा मल की प्रवृति हो सकती है। प्रयत्नपूर्वक मलोत्सर्ग करने पर अर्श हो जाता है।

मल-मूत्रादि का वेग उपस्थित होने पर दूसरा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार साध्य रोगों की चिकित्सा किये बिना अन्य कार्य नहीं करना चाहिये।[16]

गुदप्रक्षालन विधि

वाग्भट ने काँटे रहित काष्ठादि, शुद्ध मिट्टी के पिण्ड अथवा नदी के पवित्र जल से गुद-प्रक्षालन का निर्देश दिया है।[17]

वाल्मीकि रामायण में नित्य-कर्म के अन्तर्गत ही अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु इसकी विशद् व्याख्या एवं विधि इत्यादि का वर्णन नहीं किया गया है।[18]

आचमन (मुख-प्रक्षालन)–(नेत्रा-प्रक्षालन)

आयुर्वेदाचार्य वाग्भट ने लिखा है–रस रक्तादि धातुओं, पुरीष, मूत्र-कर्ण आदि के मलों, अश्रु, वसा, शरीर से कटकर गिरे हुए केशों एवं नखों को स्पर्श करके, स्नान करके, भोजन से पूर्व, भोजन के पश्चात्, सोकर उठने के पश्चात्, छींकें आने पर, देव-पूजन के प्रारम्भ में तथा रथामाक्रम्य-बाहर से गली आदि में घूमकर घर में आने पर उत्तर की ओर मुख करके अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठकर आचमन करना चाहिये। एकान्त स्थान में, हाथ घुटनों के बाहर न करके, अन्यत्र दृष्टि न करते हुए,[19] मौन धारण करके, शरीर पर उत्तरीय वस्त्र (अंगोछा) धारण करके, अंगुष्ठ की जड़ तक अञ्जली में स्वच्छ जल लेकर आचमन करना चाहिये।

आचमन करते समय जल इधर-उधर गिरता हुआ न हो, शरीर नीचे को झुका

न हो, शरीर ऊपर की ओर उठा न हो। जल, अग्नि, पक्व, दुर्गन्धित, फेन (झाग) सहित, बुलबुलायुक्त, क्षार मिश्रित तथा एक हाथ से दिया हुआ न हो। एक ही हाथ धोकर आचमन न किया जाये अपितु दोनों हाथों को धोया जाये। अपवित्र हाथ-पैर से आचमन नहीं करना चाहिये। आचमन के समय किसी प्रकार का शब्द नहीं निकालना चाहिये। अंगुष्ठमूल को ब्रह्मतीर्थ कहा गया है, अंगुलियों का अग्रभाग देवतीर्थ है। अतः आचमन के समय अंजलि में अंगुष्ठमूल तक जल लेने का विधान है।[20]

वाल्मीकि रामायण में भी दिनचर्या के प्रारम्भ में आचमन का उल्लेख किया गया है। श्री राम अगस्त्य आश्रम में हैं तथा प्रातःकाल तथा सायंकाल आचमन आदि कार्य से निवृत्त होते हैं। रामायण में लिखा है, 'वहाँ आचमन और सायंकाल की सन्ध्योपासना करके श्री राम ने पुनः महात्मा कुंभज के आश्रम में प्रवेश किया।'[21]

दन्तधावन

मुख-प्रक्षालन के पश्चात् दन्त-धावन करना चाहिये। आचार्य वाग्भट ने कहा है—वट, आसन, अर्क, खदिर, करंज, करवीर, सर्ज, अरिमेद, अपामार्ग, मालती तथा कुकुभ की दतुअन करनी चाहिये अथवा इसी प्रकार के अन्य वृक्ष का मूल जो कषाय, कटु, तिक्त रस वाले हों तथा परिचित, वृक्ष की दतुअन करनी चाहिये।[22]

दतुअन का अग्रभाग कूँचा हुआ, ऋजु, अग्रंथि तथा सुभूमिजम् होना चाहिये। दतुअन 12 अंगुल लम्बी, कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग के समान मोटी, सुकूर्च होनी चाहिये। प्रातः काल तथा भोजन के पश्चात् मौन होकर दतुअन करना चाहिये। इसके पश्चात् वाप्य, कुष्ठ, त्रिवर्ण त्रित्रय (त्रिफला, त्रिकटु, त्रिजातक) त्रिफला-आवँला, हरीतकी, विभीतक, त्रिकटु-शुण्ठी, काली मिर्च पिप्पली, त्रिजातक—दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपता के चूर्णों को शहद में मिलाकर दाँतों पर मलना चाहिये। मसूडों को बिना बाधा पहुँचाये दतुअन करना चाहिये।[23]

प्रातःकाल एवं सायंकाल मुख एवं दन्त प्रक्षालन हेतु दातौन का विधान किया गया है। दातौन भी कषाय, कटु एवं तिक्त रस की होनी चाहिये। महर्षि सुश्रुत ने कहा है—कषाय रस में खदिर, बबूल, तिक्त रस में नीम तथा कटु रस में करंज श्रेष्ठ है।[24] इन वृक्षों में कुछ ऐसे क्षारीय तत्व एवं तैल होते हैं, जो दन्तदादर्यकर, कृमि नाशक, जन्तुघ्न, व्रणरोपक तथा रक्त-शोधक होते हैं। निम्ब में मार्गोसिन नामक तिक्त घटक तथा बीज तैल में सल्फर होता है जो कि कृमिघ्न है। बबूल में टैनिन अरेविक एसिड, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम होता है। करंज में करिजन नामक सक्रिय तत्व होता है, जिसकी मुख्यतः क्रिया जन्तुघ्न होती है। वाल्मीकि रामायण में दन्त-धावन का कहीं पृथक् से उल्लेख प्राप्त नहीं होता है अपितु नित्य-कर्म के अन्तर्गत ही इसका समावेश हो जाता है।[25]

दन्त धावन की विधि बताते हुए वाग्भट ने कहा है—नीचे के दाँतों को

सर्व-प्रथम साफ करना चाहिये। तत्पश्चात् ऊपर के दाँतों को स्वच्छ करना चाहिये। प्रातःकाल मुख में पानी भरकर नेत्रों को शीतल जल से सींचना चाहिये अर्थात् शीतल जल के छीटें मारने चाहिये। ग्रीष्म एवं शरद्ऋतु में शीतल जल से एवं अन्य ऋतुओं में किंचित् उष्ण जल से छीटें मारना चाहिये।[26]

जिह्वानिर्लेखन

अष्टांग संग्रह में कहा गया है—दातौन करने के पश्चात् जिह्वानिर्लेखन द्वारा जिह्वा को सुख-पूर्वक साफ करना चाहिये। इस प्रकार दातौन एवं जिह्वानिर्लेखन से मुख की मलिनता, वैरस्य, दुर्गन्ध, जिह्वारोग, मुखरोग एवं दन्त-रोग नहीं होते हैं। आहार में रुचि, मुख में स्वच्छता एवं लघुता हो जाती है।[27]

जिह्वा—निर्लेखन को 'जीभी' कहा जाता है। आजकल ताँबा, लोहा आदि धातुओं तथा प्लास्टिक की जीभी बाजार में मिलती हैं। दातौन को चीरकर भी जीभी बनायी जाती है।

वाल्मीकि रामायण में जिह्वानिर्लेखन का पृथक से उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, अपितु 'नित्य-कर्म' में ही इसका समावेश हो जाता है।

मुख-नेत्र प्रक्षालन

मुख-नेत्र प्रक्षालन की समीक्षा 'आचमन' के अन्तर्गत ही समाविष्ट है।

अञ्जन

आयुर्वेदाचार्यों ने मुख-नेत्र-प्रक्षालनादि के पश्चात् अञ्जन कर्म का विधान बताया है। इस विषय में वाग्भट का कथन है, "इसके पश्चात् नेत्रों के लिये हितकारी सौवीर अञ्जन का प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिये। अञ्जन से नेत्र सुंदर तथा सूक्ष्म-पदार्थों को देखने योग्य हो जाते हैं।" नेत्र के शुक्ल-मंडल (Selera) कृष्ण-मंडल (Cornea) तथा दृष्ट-मंडल (Pupil) का वर्ण (रंग) व्यक्त हो जाता है। नेत्र निर्मल हो जाता है तथा पलकें चिकनी तथा घनी हो जाती हैं।[28]

महर्षि सुश्रुत ने कहा है—सिन्धु प्रदेश में उत्पन्न होने वाला विशुद्ध स्रोतांजन श्रेष्ठ होता है। यह दाह, कण्डू तथा नेत्र के मल को नष्ट करता है, नेत्रों की क्लिन्नता एवं वेदना को शांत करता है। नेत्र में तेज आता है, नेत्र वायु तथा तेज को सहने में समर्थ होता है।[29]

महर्षि अग्निवेश ने कहा है—

नेत्र के लिये हितकारी सौवीर अञ्जन का प्रयोग सर्वदा करना चाहिये।[30]

सौवीराञ्जन एण्टिमनी आक्साइड है।

चक्षु अग्नितत्व प्रधान या आग्नेय है। अतः उसे श्लेष्मा (जल तत्व प्रधान या जलीय पदार्थ) से विशेष विकृत होने का भय रहता है, इसीलिये श्लेष्मा के स्रावणार्थ प्रति सप्ताह रसांजन का प्रयोग करना चाहिये।

सौवीरांजन नेत्र को स्वच्छ रखने वाला अञ्जन है, इसका प्रयोग नित्य करना चाहिये। रसांजन नेत्र के दूषित अश्रु को निकालने वाला अञ्जन है अतः इसका प्रयोग सप्ताह में एक बार करना चाहिये।[31]

'भावमिश्र' के मतानुसार दारुहरिद्रा (Borberisaristata D.C.) के क्वाथ से घनसत्व करके रसांजन बनाया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में 'अञ्जन कर्म' का भी अलग से वर्णन प्राप्त नहीं होता है। प्रातःकालीन नित्य-कर्म में ही इसको भी जान लेना चाहिये।

अञ्जन कर्म के पश्चात् नस्य, गण्डूष एवं कवल का विधान बताया गया है।

धूम्रपान

वाग्भट के अनुसार गण्डूषादि के पश्चात् प्रायोगिक धूम्र का सेवन, सुगन्धित द्रव्य का लेप तथा पुष्प की मालाओं को धारण करना चाहिये। धूम्र के सेवन करने से जत्रु (कण्ठ-नाड़ी) के ऊपर वात कफ जनित रोग नहीं होते हैं।[32]

धूम्रपान तीन प्रकार का होता है—1. प्रायोगिक, 2. स्नैहिक, 3. शिरोवैरेचनिकी।

वाल्मीकि रामायण में धूम्रपान का भी कहीं पृथक् उल्लेख नहीं किया गया है। नित्यकर्म में ही इसका भी उल्लेख समझना चाहिये।

व्यायाम

शरीर के विविध अंग-प्रत्यंगादि से बराबर काम लेकर उनको कार्यक्षम बनाने वाली तथा शरीर की वृद्धि करके उसका बल बढ़ाने वाली जो-जो चेष्टाएँ होती हैं वे व्यायाम कहलाती हैं।[33] व्यायाम से श्वसन का कार्य अधिक गंभीर और तेज होता है,[34] इससे शरीर के भीतर प्राणवायु अधिक मात्रा में पहुँचकर रक्त की शुद्धि होती है, और शरीर के भीतर जमी हुई विषैली वायु (Co_2) अधिक मात्रा में शरीर से बाहर निकल जाती है। हृदय का कार्य भी तेज होकर सम्पूर्ण शरीर के अंग-प्रत्यंगों में शुद्ध रक्त अधिक मात्रा में दौड़ता है और उनके भीतर का मैल बाहर निकल जाता है। त्वचा में अधिक रक्त आने के कारण अधिक पसीना आता है तद्द्वारा रक्त के मलिन पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। ऐच्छिक तथा अनैच्छिक पेशियों में आंकुचन प्रसार अधिक होने के कारण वे सुदृढ़ और पुष्ट होती हैं और शरीर सुडौल बन जाता है। पाचक अंग अधिक कार्यक्षम होकर अन्न का पाक ठीक होकर मलावरोध दूर हो जाता है। भूख अच्छी लगती है। संक्षेप में शरीर के प्रत्येक अंग में व्यायाम से नव जीवन का संचार होकर शरीर फुर्तीला हो जाता है।

व्यायाम का निषेध

वात-पित्त रोगी, बालक, वृद्ध तथा अजीर्ण रोगी को व्यायाम नहीं करना चाहिये।[35]

व्यायाम का परिमाण

बलवान तथा स्निग्ध भोजन करने वाले को शीतकाल एवं वसन्तऋतु में अर्द्धशक्ति भर व्यायाम करना चाहिये। अन्य ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा, शरद) में स्वल्प व्यायाम करना चाहिये।[36]

अर्द्धशक्ति का लक्षण

सुश्रुत ने अर्द्धशक्ति का लक्षण बताया है।[37]

व्यायाम करके समस्त शरीर का सुखपूर्वक मर्दन करना चाहिये।[38]

अधिक व्यायाम से हानि

अधिक व्यायाम करने से तृषा (प्यास), क्षय-रोग, प्रतमक श्वास, रक्त-पित्त, श्रम, क्लम, कास, ज्वर, छर्दि रोगों की उत्पत्ति होती है।

व्यायाम, जागरण, मार्ग-गमन, मैथुन, हास्य एवं भाषण का साहस (शक्ति) से अधिक सेवन करने पर मानव उसी प्रकार विनष्ट (रुग्ण अथवा मृत) हो जाता है जिस प्रकार हाथी (अपने से विशाल) को खींचता हुआ सिंह नष्ट हो जाता है।[39] महर्षि सुश्रुत ने भी कहा है।[40] महर्षि अग्निवेश ने कहा है।[41]

वाल्मीकि रामायण में व्यायाम का कहीं अलग वर्णन प्राप्त नहीं होता है। नित्यकर्म ही इसकी ओर इंगित करते हैं। राम का वन में विचरण भी व्यायाम की ओर इंगित करता है।

परिभ्रमण

परिभ्रमण व्यायाम का ही एक प्रकार है। देशी-विदेशी, सांधिक और व्यक्तिगत करके व्यायाम करने के असंख्य प्रकार हैं। जैसे—फुटबाल, बालीवाल, क्रिकेट, टेनिस, हॉकी, बैडमिन्टन, कबड्डी, गुल्लीडंडा, सिंगल-बार, परिभ्रमण, मलखंब, कुश्ती, तैरना, घोड़े पर सवारी करना, नाव खेना, दण्ड-बैठक, सूर्य-नमस्कार, आसन, दौड़ना आदि।

वाल्मीकि रामायण में 'परिभ्रमण' का नामोल्लेख तो कई स्थानों पर प्राप्त होता है यथा राम, लक्ष्मण, सीता आदि का वन में परिभ्रमण आदि किन्तु यह परिभ्रमण हमारे उद्देश्य को पूर्ण नहीं करता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि परिभ्रमण का समावेश भी व्यायामादि के ही समान नित्यकर्म के अन्तर्गत कर लेना चाहिये।

क्षौर कर्म

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[42] केश प्राणियों के शरीर की रक्षा का एक नैसर्गिक साधन हैं। मनुष्यों में बालों का विचार शरीर रक्षा की अपेक्षा स्वास्थ्य रक्षा के साथ अधिक जुड़ा होता है। क्षौर-कर्म के लिये उस्तरे का प्रयोग करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये। साबुन, कूर्च, उस्तरा इत्यादि क्षौर-कर्म की समस्त सामग्री अपनी-अपनी अलग होनी चाहिये। अपनी चीजें दूसरों को नहीं देनी चाहिये और दूसरों की चीजें अपने काम में कदापि न लानी चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो, क्षौर-कर्म स्वयं करना चाहिये।

केश, नख इत्यादि की स्वच्छता के विषय में योग रत्नाकर में कहा गया है।[43]

वाल्मीकि रामायण में क्षौर-कर्म का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। नित्य-कर्म में ही क्षौर-कर्म का भी उल्लेख माना जाना चाहिये।

अभ्यंग विधि

(तैलाभ्यङ्ग, शिरोभ्यङ्ग, स्नेह सिंचन एवं स्नेह अवगाहन, शरीर परिमार्जन)

शरीर पर तेल की मालिश करने को अभ्यङ्ग कहते हैं। इसके लिये सरसों, तिल या कोई औषधि तेलों का प्रयोग कर सकते हैं। स्नान करने से पहले प्रतिदिन,

विशेषकर जाड़े के दिनों में, इसका प्रयोग करना चाहिये। इससे निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. त्वचा मुलायम तथा मजबूत हो जाती है।
2. त्वचा के रन्ध्र खुल जाते हैं, त्वचा में रक्त भ्रमण खूब होता है और व्यायाम भी हो जाता है।
3. त्वचा में स्निग्ध द्रव्यों के शोषण की शक्ति होने के कारण मालिश के तेल का कुछ अंश शरीर में प्रवेश करके उसको पुष्ट करता है।
4. तेल मलकर फिर थोड़ी देर धूप में बैठा जाये तब अधिक लाभ होता है।
5. इससे त्वचागत मैल ढीली होकर स्थान-स्थान पर एकत्र हो जाती है और नहाते समय आसानी से छूट जाती है।

अभ्यङ्ग के विषय में विविध मत प्राप्त होते हैं।[44]

तैलाभ्यङ्ग के विषय में अष्टांग-हृदय में भी पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। उसके अनुसार जब खाने-पीने की इच्छा उत्पन्न होती है तो वात-नाशक, सुगन्धित, ऋतु के अनुसार, सुखकारक तैल से अभ्यंग करना चाहिये। अभ्यङ्ग वायु नाशक, शरीर को पुष्ट करने वाला, निद्रा लाने वाला, शरीर को दृढ़ एवं वृहत् करने वाला होता है। (दग्ध) अग्नि से जलने, (भग्न) हड्डी के टूटने, शस्त्रादि से चोट लगने पर अभ्यङ्ग करने से पीड़ा शान्त होती है। क्लम (मानसिक अवसाद), श्रम एवं जरा, नष्ट होता है। जिस प्रकार रथ के अक्ष पर तैल लगाने से रथ के पहिये सरलता से चलते हैं, चमड़े पर तैल लगाने से चमड़ा कोमल तथा मजबूत हो जाता है और मिट्टी के घड़े पर स्नेह लगाने से घड़ा मजबूत, चिकना एवं चमकीला हो जाता है। उसी प्रकार शरीर पर तैल का अभ्यङ्ग करने से शरीर की सन्धियों में गति सरलता से होती है, त्वचा कोमल एवं दृढ़ हो जाती है और शरीर स्निग्ध तथा कान्तिमान हो जाता है।[45]

शिरोऽभ्यङ्ग

त्वचा में वायु विशेष रूप से रहता है और स्पर्शेन्द्रिय त्वचा में आश्रित है, त्वचा में अभ्यङ्ग अत्यन्त उपयोगी है, इसलिये अभ्यङ्ग का प्रतिदिन सेवन करना चाहिये। शिर, कान और पैर के तलुओं पर विशेष रूप से प्रतिदिन तेल की मालिश करनी चाहिये। शिर पर तैल लगाना-केशों के लिये हितकर, कपालास्थियों तथा इन्द्रियों को तर्पण करने वाला होता है। कान में तैल डालने से हनुशूल (Lock jaw), मन्यास्तम्भ (Torticollis), शिर-शूल एवं कर्ण-शूल नष्ट होते हैं। पैरों का अभ्यङ्ग करने से पैरों में स्थैर्य, अच्छी निद्रा एवं नेत्र की ज्योति बढ़ती है। पाद सुप्ति (पाद-शून्यता), स्पर्श-ज्ञान का अभाव (Numbness), श्रम, स्तम्भ, संकोच तथा स्फुटन (Racking of feet) नष्ट होता है।[46]

अभ्यङ्ग का निषेध

कफ दोष से पीड़ित रोगी में वमन, विरेचन आदि संशोधन कर्म के पश्चात् तथा अजीर्ण रोग में अभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये।[47]

त्वचा में वायु विशेष रूप से रहता है, Sensory Nerve Endings भी त्वक में रहते हैं, स्पर्शेन्द्रिय (Tietile Sensation) त्वक में आश्रित होता है, इसलिये अभ्यङ्ग करने से शीघ्र त्वक् विकारों में लाभ होता है। अभ्यङ्ग नित्य करना चाहिये क्योंकि इससे वृद्धावस्था, थकावट तथा वात-विकार नष्ट होते हैं। शरीर में जो टूट-फूट की प्रक्रिया होती है, उसकी मरम्मत हेतु अभ्यङ्ग लाभ-प्रद है। शिर-कर्ण तथा पाद-तलों पर विशेष रूप से अभ्यङ्ग का निर्देश किया गया है। इस सम्बन्ध में इन्दु ने कहा है[48] महर्षि अग्निवेश ने शिर पर अभ्यङ्ग करने से होने वाले लाभ के विषय में कहा है।[49]
महर्षि सुश्रुत ने कहा है।[50]
कर्ण में तैल-पूरण से होने वाले लाभ के विषय में महर्षि अग्निवेश ने कहा है।[51]
महर्षि सुश्रुत ने कहा है।[52]

स्नेह का बाह्य प्रयोग इन्दु ने स्पर्शन, मर्दन एवं अवगाहन तीन प्रकार से किया है।[53]

इसका बाह्य प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है—

1. अभ्यङ्ग

अभ्यङ्ग सम्पूर्ण शरीर को कोमल करता है, वात-कफ की शांति, रसादि धातुओं की पुष्टि, त्वचा की शुद्धि, कान्ति एवं बल-प्रद होता है।

2. सेंक (सिंचन) सम्पूर्ण अंगों का परिषेक

वाल्मीकि रामायण में अभ्यङ्गादि का स्पष्ट उल्लेख नहीं होता है किन्तु नित्य-कर्म का उल्लेख ही इसकी पूर्ति कर देता है।

स्नान

महर्षि वाग्भट ने स्नान के लाभ बताते हुए कहा हैं, "स्नान जठराग्नि दीपक, वृष्य, आयुष्य (आयुवर्द्धक), ओज-प्रद होता है और कण्डू, मल, श्रम-स्वेद, तन्द्रा, तृषा, दाह तथा पाप (बुरी भावना) को नष्ट करता है।"[54] उष्ण जल से अधः काय (कटि के नीचे) का परिषेक (स्नान) बल कारक होता है, किन्तु उष्ण जल से ही शिर का स्नान केशों एवं नेत्र के बल को नष्ट करता है।[55]

शिर को बिना भिगाये स्नान नहीं करना चाहिये। नग्न होकर स्नान, उदक अवतरण एवं शयन नहीं करना चाहिये।[56]

दूसरे के द्वारा बनाये गये तालाब आदि में से पाँच ढेला मिट्टी का बिना निकाले स्नान नहीं करना चाहिये। इससे तालाब की सफ़ाई हो जाती है।[57]

महर्षि अग्निवेश ने स्नान से लाभ बताये हैं—

स्नान पवित्र, वृष्य, आयुष्य, श्रम, स्वेद से उत्पन्न मल को दूर करने वाला, शरीर को बल देने वाला तथा ओजस्कर है।[58]
महर्षि सुश्रुत ने भी स्नान के अनेक लाभ बताये हैं।[59]

शीत एवं उष्ण जल से स्नान का विचार

शीत एवं उष्ण जल से स्नान के विषय में सुश्रुत ने अपने विभिन्न विचार रखे हैं।[60]

कुछ निषिद्ध कर्म

जल में अपनी परछाई नहीं देखनी चाहिये। जलाशय के किनारे खड़े होकर जलाशय को न देखें, हाथों अथवा पैरों से जल को नहीं उछालना चाहिये। स्नान करने के पश्चात् फिर शरीर के मैल को मलकर नहीं निकालना चाहिये। स्नान के पश्चात् बालों को नहीं झटकना चाहिये और स्नान के अनन्तर गीले शरीर में ही धोयी हुई पगड़ी और वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। स्नान के पूर्व धारण किया हुआ वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। स्नान के पश्चात् तैल एवं वसा स्पर्श नहीं करना चाहिये। शयन के समय, घर से बाहर जाने के समय तथा देव पूजन के समय अलग-अलग वस्त्र धारण करने चाहिये।

स्नान का निषेध

अर्दित रोग, नेत्र-रोग, मुख रोग, कर्ण-रोग, अतिसार, आध्मान, पीनस, अजीर्ण तथा भोजन के बाद स्नान गर्हित है, अर्थात् स्नान नहीं करना चाहिये।[61] सुश्रुत ने भी इस विषय में कहा है।[62]

स्नान के प्रकार

अग्निपुराण में स्नान के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है यथा—

1. घृत स्नान।
2. गोमय स्नान।
3. गोमूत्र स्नान।
4. क्षीर स्नान।
5. दधि स्नान।
6. कुशोदक स्नान।
7. पंचगव्य स्नान।
8. शतमूल स्नान।
9. गोश्रृङ्गोदक स्नान।
10. पलाशादि जल स्नान।
11. बचादि जल स्नान।
12. हेम जल स्नान।
13. रजत-ताम्र जल स्नान।
14. रत्नोदक स्नान।
15. सर्वगन्धोदक स्नान।
16. फ्लोदक स्नान।
17. धात्र्युदक स्नान।
18. तिलादि जल स्नान।
19. प्रियङ्गूदक स्नान।
20. पद्मादि जल स्नान।
21. बलाद्रुमोदक स्नान।
22. विष्णूदक स्नान।
23. घृत-क्षीर-स्नान।
24. पंचगव्य स्नान।
25. द्विस्नेह स्नान।
26. त्रिरस स्नान।
27. समल स्नान।
28. त्रिमधुर स्नान।[63]

वाल्मीकि रामायण में भी कई प्रकार के स्नान बताये हैं यथा—

1. गंगाजल से स्नान।[64]
2. सिर के ऊपर से स्नान।[65]
3. समुद्र के जल से स्नान।[66]
4. तीर्थों के जल से स्नान।[67]
5. मधु से स्नान।
6. दधि से स्नान।
7. नदी के जल से स्नान।[68]

8. चन्दन मिश्रित जल से स्नान।[69]
9. गोदावरी के जल से स्नान।[70]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में स्नान के अनेकानेक प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है।

पूजाधिकार में वर्णित सामान्य स्नान-विधि

वाल्मीकि रामायण में स्नान-विधि का उल्लेख नित्य-नियम आदि के अन्तर्गत किया है, यद्यपि स्नान शब्द का अभिषेकादि के रूप में भी अनेकों बार प्रयोग मिलता है तथापि इसकी किसी विशेष-विधि की प्राप्ति नहीं होती है। रामायण में पूजादि से पूर्व स्नान का निर्देश किया गया है।

यथा

1. जब सूर्य अस्ताचल को जाने लगे, तब उन ऋषियों ने पूर्ण सावधान रहकर शोणभद्र के तट पर पड़ाव डाला। जब सूर्य देव अस्त हो गये, तब स्नान करके उन सबने अग्निहोत्र का कार्य पूर्ण किया।[71]
2. पुरोहित जी के चले जाने पर मन को संयम में रखने वाले श्री राम ने स्नान करके अपनी विशाल लोचना पत्नी के साथ श्री नारायण की उपासना प्रारम्भ की।[72]
3. सद्गुणसम्पन्न तथा जपकर्म के ज्ञाता श्री रामचन्द्र जी ने स्नान करके शौच-संतोषादि नियमों के पालन-पूर्वक संक्षेप से उन सभी मंत्रों का पाठ एवं जप किया, जिनसे वास्तु यज्ञ की पूर्ति हो जाती है।[73]
4. नदी में विधि पूर्वक स्नान करके न्यायतः गायत्री आदि मंत्र का जप करने के बाद श्री राम ने पंचसूनादि दोषों की शान्ति हेतु उत्तम बलि कर्म किया।[74]

इस प्रकार रामायण में पूजा अर्चनादि तथा सन्ध्योपासनादि से पूर्व स्नान करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

वस्त्र धारण

अष्टांग हृदयकार का मत है कि जीर्ण, मलिन तथा अत्यन्त लाल (रंगीन) वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये। लाल कमल (Nymphaca Stellata wild) के अतिरिक्त अन्य मालादि धारण नहीं करना चाहिये।[75]

वाल्मीकि रामायण में वस्त्र धारण का नित्य कर्म के अतिरिक्त प्रथक से भी उल्लेख प्राप्त होता है।

अनुलेपन

स्नान के पश्चात् अनुलेपन का विधान महर्षि सुश्रुत ने बताया है।[76] "चन्दन आदि का शरीर पर लेप सौभाग्य देने वाला, वर्ण को बढ़ाने वाला, प्रीति, ओज एवं बलवर्द्धक है, स्वेद दौर्गन्ध्य, विवर्णता एवं श्रम को नष्ट करता है। जिन लोगों के लिये स्नान निषिद्ध है उन लोगों के लिये अनुलेपन भी निषिद्ध है।"

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर अनुलेपन का उल्लेख किया गया है यथा—

1. यह सुन्दर दिव्य हार, यह वस्त्र, ये आभूषण यह अङ्गराग और बहुमूल्य अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ। सीते! ये तुम्हारे अङ्गों की शोभा बढ़ायेगी। ये सब तुम्हारे ही योग्य हैं और सदा उपयोग में लायी जाने पर निर्दोष एवं निर्विकार रहेंगी।[77]

2. जनक किशोरी! इस दिव्य अङ्गराग को अङ्गों में लगाकर तुम अपने पति को उसी प्रकार सुशोभित करोगी, जैसे लक्ष्मी अविनाशी भगवान विष्णु की शोभा बढ़ाती है।[78]

3. ''आपके ये दोनों धनुष विचित्र चिकने तथा अद्भुत अनुलेपन से चित्रित हैं। इन्हें सुवर्ण से विभूषित किया गया है; अतः ये इन्द्र के वज्र के समान प्रकाशित हो रहे हैं।''[79]

4. .... अनुलेपन लगाये, प्रफुल्ल कमल के सदृश सुंदर एवं लाल नेत्र वाले वे मतवाले विद्याधरगण भयभीत से होकर आकाश में चले गये।[80]

5. हनुमान जी ने यह भी देखा कि नायिकाएँ अपने अङ्गों में चन्दन आदि का अनुलेपन करती हैं, ... ।[81]

6. उसके अङ्गों में सुगन्धित लाल चन्दन का अनुलेपन लगा हुआ था जिससे वह आकाश में सन्ध्या काल की लाली तथा विद्युल्लेखा से युक्त मेघ के समान शोभा पाता था।[82] इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में अनुलेपन का उल्लेख अनेक स्थलों पर दिखाई देता है। यही नहीं रामायण में और भी बहुत से ऐसे प्रसंग हैं जहाँ अनुलेपन का प्रयोग किया गया है।[83]

पुष्पा भरण धारण करना

दिनचर्या के अन्तर्गत आवश्यक कार्य, शौच, संतोषादि, स्नान आदि नियमों का पालन करने के पश्चात् वस्त्र-धारण अनुलेपनादि का कार्य होता है। तत्पश्चात् पुष्पा भरण, अलंकार आदि धारण का कार्य होता है। विभिन्न संहिताओं में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

अष्टांग संग्रहकार वाग्भट ने इन अनुलेपन तथा पुष्पादि मालाओं के धारण को प्रसाधन कहा है। उनके अनुसार—'शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप तथा पुष्पों की माला आदि धारण करना वृष्य (पौरुषकारक Stumlates Lipido)', अलक्ष्मीघ्न (निर्धनता नाशक) तथा प्रसाधन (कान्तिकर) होता है।[84]

इस सम्बन्ध में महर्षि अग्निवेश ने कहा है—'गन्ध तथा पुष्प-मालाओं का धारण वृष्य, सुगन्ध कारक, आयुष्य, काम्य कारक, शरीर के लिये पुष्टि कारक तथा बल-प्रद होता है। मन को प्रसन्न करता है तथा दरिद्रता नाशक होता है।'[85]

वाग्भट ने पुष्पाभरण के विषय में यह भी कहा है कि-लाल कमल (Nymphaca Stellata wild) के अतिरिक्त अन्य लाल रंग के फूलों की माला तथा अत्यन्त लम्बी माला धारण नहीं करना चाहिये।[86]

वाल्मीकि रामायण में पुष्पाभरण धारण का उल्लेख कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है।[87]

सन्ध्योपासना विधि

वाल्मीकि रामायण में प्रातःकालीन मंगलकारक कार्यों के अन्तर्गत सन्ध्योपासना

का उल्लेख मिलता है। इस विषय में अष्टांग हृदय में कहा गया है कि मुख प्रक्षालन के बाद देवताओं एवं वृद्धजनों को प्रणाम करें।[88]

सन्ध्याकालीन उपासना ही सन्ध्योपासना है। प्रातः एवं सायं की संधि बेला के समय को तथा रात्रि एवं प्रातः की संधि बेला के समय को सन्ध्या कहते हैं, उस समय में उपासना विधान किया गया है, इस उपासना के अन्तर्गत गायत्री आदि मंत्रों एवं इष्ट-स्मरण करना चाहिये।

रामायण में सन्ध्योपासना का निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होता है।

1. मुनि कुमार के वध से दुःखी विलाप करते हुए उनके माता-पिता इस प्रकार कहते हैं-"अब कौन स्नान, सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र करके मेरे पास बैठकर पुत्र-शोक के भय से पीड़ित हुए मुझ बूढ़े को सांत्वना देता हुआ मेरी सेवा करेगा।"[89]
2. उस समय लक्ष्मण के धैर्य बंधाने पर शोक से व्याकुल हुए श्री राम ने कमल नयनी सीता का चिन्तन करते हुए सन्ध्योपासना की।[90]
3. वहाँ स्नान, सन्ध्योपासना और जप करके वे वानर वीर दशानन को लिये-दिये उत्तर समुद्र तट पर जा पहुँचे।[91]
4. प्रातः होने पर पूर्वाह्न काल का कार्य संध्यावन्दन आदि करके महापराक्रमी शत्रुघ्न हाथ जोड़ मुनि से विदा ले पश्चिम दिशा की ओर चल दिये।[92]
5. वीर! अब सन्ध्योपासना का समय बीता जा रहा है। पुरुष सिंह! सब ओर ये सब महर्षि स्नान कर चुकने के बाद भरे हुए घड़े लेकर सूर्य-देव की उपासना कर रहे हैं।[93]
6. ऋषि का यह आदेश पाकर श्री रामचन्द्र जी सन्ध्योपासना करने के लिये अप्सराओं से सेवित उस पवित्र सरोवर के तट पर गये।[94]
7. वहाँ आचमन और सन्ध्योकाल की उपासना करके श्री राम ने पुनः महात्मा कुम्भज के आश्रम में प्रवेश किया।[95]
8. रात बिताने पर जब सवेरा हुआ, तब स्नान संध्या के पश्चात् समिधा-होम का कार्य पूरा करके वे दोनों भाई ऋषि के बताये अनुसार वहाँ सम्पूर्ण रामायण का गान करने लगे।[96]

इस प्रकार रामायण में वर्णित सन्ध्योपासना से सम्बन्धित उपरोक्त सभी सन्दर्भों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में सभी लोग सन्ध्योपासना करते थे तथा यह उपासना प्रातः एवं सायं दोनों समय हुआ करती थी, इससे पूर्व आचमन एवं स्नान अवश्य हुआ करता था तथा सन्ध्योपासना में मुनि लोग अधिकांशतः प्रातः को सूर्य की उपासना किया करते थे। इनके अतिरिक्त मुनि कुमार, राजा अर्थात् क्षत्रिय एवं ब्राह्मण सभी इसे मानते थे।

पादत्र एवं पादुका धारण

वाल्मीकि रामायण कालीन समाज में पादत्र एवं पादुका धारण करने की प्रथा थी, इस तथ्य का परिचय रामायण से ही प्राप्त हो जाता है। उस समय में वर्तमान

की भाँति चर्म के बने जूते तो नहीं होते थे, किन्तु सुवर्णाभूषित चरण-पादुकाएँ अवश्य हुआ करती थीं, जिन्हें राजा एवं राजकुमार आदि धारण करते थे।

इस सम्बन्ध में वाग्भट का कथन है कि 'दूसरों के द्वारा उपयोग किया हुआ वस्त्र, फूल एवं जूता नहीं धारण करना चाहिये।'[97]

भगवान श्री राम अपने पिता राजा दशरथ की आज्ञा पा वन को चले गये हैं, उनके पश्चात् भाई भरत ननिहाल से लौटते हैं तथा सारा वृत्तान्त जानकर व्यथित हो अपने अग्रज को लौटाने वन को जाते हैं, अथक प्रयत्न के बाद भी जब श्री राम लौटने को तैयार नहीं होते हैं तब भरत श्री राम से इस प्रकार कहते हैं, "आर्य! ये दो सुवर्णभूषित पादुकाएँ आपके चरणों में अर्पित हैं, आप इन पर अपने चरण रखें। ये ही सम्पूर्ण जगत् के योग-क्षेम का निर्वाह करेंगी।"[98]

तब महातेजस्वी पुरुषसिंह श्री राम ने उन पादुकाओं पर चढ़कर उन्हें फिर अलग कर दिया और महात्मा भरत को सौंप दिया।[99]

उन पादुकाओं को प्रणाम करके भरत ने श्री राम से कहा—"वीर रघुनन्दन! मैं भी चौदह वर्षों तक जटा और चीर धारण करके फल-मूल का भोजन करता हुआ आपके आगमन की प्रतीक्षा में नगर से बाहर ही रहूँगा। परंतप! इतने दिनों तक राज्य का सारा भार आपकी इन चरण पादुकाओं पर ही रखकर मैं आपकी बाट जोहता रहूँगा।"[100]

धर्मज्ञ भरत ने भली-भाँति अलंकृत की हुई उन परम् उज्ज्वल चरण-पादुकाओं को लेकर श्री रामचन्द्र जी की परिक्रमा की तथा उन पादुकाओं को राजा की सवारी में आने वाले सर्वश्रेष्ठ गजराज के मस्तक पर स्थापित किया।[101]

तदन्तर श्री राम चन्द्र जी की दोनों चरण पादुकाओं को अपने मस्तक पर रखकर भरत शत्रुघ्न के साथ प्रसन्नतापूर्वक रथ पर बैठे।[102]

इनके अतिरिक्त और भी कई श्लोकों में चरण-पादुका का उल्लेख मिलता है।[103]

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण कालीन समाज में पादत्र एवं पादुका धारण करने का प्रचलन था, उस समय में स्वर्ण-भूषित पादुकाओं का प्रयोग किया जाता था। पादुकाओं को यथोचित सम्मान दिया जाता था।

राजा अर्थात् क्षत्रिय के अतिरिक्त मुनि, आदि भी काष्ठ की पादुकाओं को धारण करते थे।

छत्र धरण

वाल्मीकि रामायण में छत्र-धारण का भी उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा छत्र-धारण किया करते थे, चँवर भी डुलाये जाते थे। राजा राम भी छत्र-धारण करते थे, इसकी पुष्टि रामायण में लिखित इस उद्धरण से हो जाती है—'उस समय भरत ने सारथि बनकर घोड़ों की बागडोर अपने हाथ में ले रखी थी। शत्रुघ्न ने छत्र लगा रखा था और लक्ष्मण उस समय श्री रामचन्द्र जी के

मस्तक पर चँवर डुला रहे थे।[104]

राम राज्याभिषेक में भी छत्र-धारण का उललेख मिलता है—उस समय शत्रुघ्न जी ने उन पर श्वेत रंग का छत्र लगाया। एक और वानरराज सुग्रीव ने श्वेत चँवर हाथ में लिया तो दूसरी ओर राक्षस राज विभिषण ने चन्द्रमा के समान चमकीला चँवर लेकर डुलाना आरम्भ किया।[105]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में राजा-महाराजाओं के द्वारा छत्र धारण की प्रथा थी।

दण्ड धरण

प्राचीन रामायण कालीन समाज में दण्ड धारण की भी प्रथा थी ऐसा रामायण से स्पष्ट होता है,—'इतने में ही लक्ष्मण ने दिव्यास्त्र की शक्ति से सम्पन्न उस प्रज्ज्वलित एवं भयंकर वाण को अतिकाय के ऊपर चलाया, मानो यमराज ने अपने काल दण्ड का प्रयोग किया हो।'[106]

सामाजिक स्वस्थवृत्त

रामायण में स्वस्थ वृत्त को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। प्रत्येक स्थान पर पात्र एक दूसरे से मिलने पर परस्पर यह प्रश्न प्रथम पूछा करते थे—"आप स्वस्थ तथा सानन्द तो हैं?" राम ने निषाद राज गुह से मिलते ही संतोष व्यक्त किया, "गुह! सौभाग्य की बात है कि मैं आज तुम्हें बन्धु-बान्धवों के साथ स्वस्थ एवं सानन्द देख रहा हूँ।"[107] यह संतोष है। रामायण में स्वास्थ्य दो प्रकार का माना गया है-

1. मानसिक स्वास्थ्य तथा
2. शारीरिक स्वास्थ्य

यह स्पष्ट है कि एक के बिगड़ने पर दूसरा भी विकृत हो जाता है कवि ने इस बात को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से 'कोई शारीरिक व्याधि जनित संताप अथवा मानसिक अभिताप (चिन्ता) तो इन्हें पीड़ित नहीं कर रहा है? क्योंकि मनुष्य को सदा सुख ही सुख मिले—ऐसा संयोग प्रायः दुर्लभ होता है।'[108] कहकर शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की ओर संकेत किया है।

रामायण में जहाँ ज्वर शब्द का उल्लेख किया गया है वहाँ मानसिक शारीरिक अस्वस्थता तथा ताप में से एक का संकेत प्राप्त होता है। रामायण में जहाँ सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति का नामोल्लेख किया है वहाँ उसे नारायण रूप भगवान की संज्ञा दी गयी है—

'नारायण मनोमये' और ऐसे व्यक्ति केवल भगवान राम थे। जहाँ कहीं भी किसी के स्वस्थ रहने की कामना की गयी है, वहाँ 'सर्वथा नित्यमनायम्' कहकर उसके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की कामना व्यक्त की गयी है—आप सभी तरह से नित्य स्वस्थ रहें। जहाँ कहीं अरोग शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ भी उभय प्रकार के स्वास्थ्य का ही तात्पर्य समझा जाना चाहिये।

श्री राम के वनवास गमन के बाद जब भरत को बुलाने के लिये राजदूत उनके

ननिहाल भेजे गये तब भरत ने उनसे पूछा महाराज दशरथ तो स्वस्थ हैं, कौशल्या तथा लक्ष्मण तो स्वस्थ हैं?[109] जहाँ भी समावस्था का प्रयोग किया है—वहाँ भी सामान्यतः मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य से ही लिया जाना चाहिये।

सीता की खोज में गये वानर जब पूर्णतः निराश हो गये तब कवि ने 'सर्वमस्वस्थम्' सभी अस्वस्थ हो गये ऐसा कहकर उनकी विषमावस्था का संकेत किया है परन्तु जब वे स्वस्थ हो गये तब 'स्वस्थाऽभव गतज्वराः' कहा है। रामायण में स्वस्थ व्यक्ति को पुनः स्वस्थ बताने के लिये एक शब्द का प्रयोग किया गया है और वह है—'स्वस्थतरोऽभवत्।'[110] कुछ ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है जो आजीवन स्वस्थ रहे। अयोध्यापुरी के लोग 'आयुनिरामयं प्राप्तं' कहकर उनके नित्य प्रति स्वस्थ रहने का उल्लेख किया है। यहाँ तक कि रामायण को भी 'आयुरोगहर काव्यं' कहकर आयु निरोगकर काव्य बताया है। शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिये 'नियतेन्द्रिय' अर्थात् इन्द्रिय संयम से रहना परमावश्यक बताया है।

स्वस्थ रहने वाला व्यक्ति कभी अकाल मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। परन्तु युद्ध में जो वानर अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए वे देव कृपा से पुनः स्वस्थ हो गये। राम राज्य प्राप्त करने के बाद अयोध्या में जहाँ सभी नागरिक स्वस्थ, धार्मिक तथा बलवान थे। एक भी अकाल मृत्यु की घटना न घटी। एक ब्राह्मण का इकलौता बेटा जो केवल 13 वर्ष 10 माह 20 दिन की आयु का था अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह ब्राह्मण अपने पुत्र को लेकर राम दरबार में आया। इस ब्राह्मण ने बताया कि उसने व्यक्तिगत रूप से कोई पाप नहीं किया है। उसने यह भी बताया कि ऐसी घटना न तो पहले कभी घटी है और न सुनी है। उसने श्री राम से अपने पुत्र को जिंदा कर देने की प्रार्थना की। अंत में श्री राम ने यह पता लगाया कि इस अकाल मृत्यु का कारण कोई पाप कर्म है, जो गुप्त रूप से राज्य में व्याप्त हो रहा है ज्यों ही इस पाप का निराकरण किया गया, ब्राह्मण का वह पुत्र पुनः जीवित हो गया। इससे यह स्पष्ट है कि स्वस्थ रहने के कारणों में पुण्य कर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

रामायण में कुछ ऐसे प्रदेशों का भी नाम प्राप्त होता है जो प्रकृतितः स्वस्थ एवं निरामय थे। सदा स्वस्थ रखने वाले प्रदेशों में 'कारूप-पथ' तथा 'चन्द्रकान्त' का नाम आता है। ये दोनों ही प्रांत स्वस्थ थे। समुद्र पर राम ने 'अग्नि वाण' साधा। इस पर समुद्र घबराया और उसने श्री राम से यह प्रार्थना की कि प्रभो! जैसे जगत में आप सर्वत्र विख्यात एवं गुणात्मा हैं, उसी प्रकार मेरे उतर की ओर 'द्रुम कुल्य' नामक एक विख्यात पवित्र देश है। वहाँ आभीर जाति के बहुत से मनुष्य निवास करते हैं जिनके रूप और कर्म बड़े ही भयंकर हैं वे सबके सब पापी और लुटेरे हैं, उनके स्पर्श से मुझे पीड़ा होती है। मैं इस पाप को नहीं सह सकता। आप इस बाण को वहाँ सफल करिये। राम ने वैसा ही किया और इस प्रकार उस बाण से पीड़ित उस पृथ्वी को वरदान भी दिया जो इस प्रकार था—

यह मरुभूमि पशुओं के लिये हितकारी होगी। यहाँ रोग कम होंगे। यह भूमि फल-मूल और रसों से सम्पन्न होगी। यहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे, दूध की बहुतायत होगी। यहाँ सर्वदा सुगन्ध छायी रहेगी और अनेक प्रकार की औषधियाँ भी यहाँ उत्पन्न होंगी।[111] इस भूमि का नाम मरु प्रदेश हुआ जो सभी मनुष्यों को स्वस्थ कर रहा है।

इस प्रकार रामायण में व्यक्तिगत स्वास्थ्य, राष्ट्रीय स्वास्थ्य दोनों की ओर ध्यान दिया गया है। जिस ग्रन्थ में सर्व-प्रथम मिलते ही जिसके पात्र यह पूछे कि आप स्वस्थ तथा सानन्द तो हैं? आपके परिजन स्वस्थ तथा सानन्द हैं? उसमें स्वास्थ्य का क्या महत्व है यह तो स्वयं सिद्ध ही है।

सद्वृत्त या आचार-परक स्वस्थवृत्त

रामायण एक ऐसा काव्य है जिसमें सद्वृत्त प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। उसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक श्लोक तथा प्रत्येक परिच्छेद सद्वृत्त का निर्देशक है। राष्ट्रव्यापी सद्वृत्त तथा व्यक्तिगत सद्वृत्त दोनों ही रामायण में प्राप्त होते हैं।

श्री राम के राज्याभिषेक के पूर्व महाराज दशरथ ने उन्हें अपने पास बुलाया और यह उपदेश दिया—राम! तुम गुणों में मुझसे भी बढ़कर हो अतः तुम मेरे परम प्रिय पुत्र हो। तुमने अपने गुणों से समस्त प्रजा को प्रसन्न किया है।[112] तुम स्वभाव से गुणवान हो, फिर भी मैं सद्गुण सम्पन्न होने पर भी तुम्हें कुछ हित की बात बताना चाहता हूँ तुम और भी अधिक विनयशील तथा जितेन्द्रिय बने रहो। काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले दुर्व्यसनों का सर्वथा त्याग कर दो, परोक्ष वृत्ति से या प्रत्यक्ष वृत्ति से ठीक-ठाक न्याय विचार में तत्पर रहो। मंत्री, सेनापति तथा समस्त अधिकारियों को प्रसन्न रखना। पृथ्वी का पालन करते रहना। मन को वश में रखकर उत्तम आचरणों का पालन करो।[113]

महाराज ने भरत के विषय में निम्न शब्द कहे जो सच्चरित्र के परिचायक हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे भाई भरत सत्पुरुषों के आचार-व्यवहार में स्थित हैं वे धर्मात्मा, दयालु तथा जितेन्द्रिय हैं—तुम्हारे गुणों का अनुसरण करने वाले हैं। चारों भाइयों का भ्रातृ-प्रेम, श्री राम की अपने पिता-माता के प्रति भक्ति, माता-पिता का श्री राम के प्रति अनुराग, सीता की पतिव्रता आदि वे आदर्श हैं जिनके प्रति प्रत्येक परिवार का आकर्षण होना स्वाभाविक है। रामायण में माँ कौशल्या का भोलापन तथा दूसरी ओर कैकेई का कठोर हृदय। राम को वनवास भेजते समय कैकई का अभिनय तथा कठोर व्यवहार कितना उनके दूषित हृदय का परिचायक है, जिसमें ईर्ष्या विद्वेष आदि दुर्गुण भरे पड़े हैं। साथ ही काम विमोहित महाराज दशरथ किस प्रकार अंत तक उसके चंगुल में फंसे रहे। इस प्रकार का यथार्थ पूर्ण चित्रण रामायण में अयो. काण्ड के 11 से सर्ग 14 तक स्पष्ट देखा जा सकता है। उसी स्थान पर श्री राम के लिये उदार, कर्मठ, स्वधर्म पालक, बलशाली तथा जीव जगत के रक्षक आदि विशेषण उपयोग में लिये गये हैं।

श्री राम के गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि ने निम्न गुण बताये हैं—

गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़ प्रतिज्ञ, सदाचार युक्त, समस्त प्राणियों का हित साधक, विद्वान, समर्थशाली, प्रिय-दर्शन, मन पर अधिकार प्राप्त करने वाला, क्रोधाजित, कान्तिमान, किसी की निन्दा न करने वाला, संग्राम में कुपित होने पर जिससे देवता भी डरते हैं ऐसा व्यक्तित्व श्री राम हैं। वे श्री राम मन पर विजय प्राप्त करने वाले, महाबली, कान्तिमान, धैर्यवान, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, नीति जानने वाले, प्रभावशाली वक्ता, शोभाशाली शत्रु संहारक हैं। उनकी लम्बी-लम्बी भुजायें, मोटे कंधे, गर्दन शंख के समान, ठोड़ी मांसल, छाती चौड़ी, हंसली मांस वृत, शत्रु का दमन करने वाली भुजाएँ घुटने तक लम्बी, मस्तक सुन्दर, ललाट भव्य, मनोहर, मध्यम शरीर, सुडौल देह का रंग चिकना, प्रतापी हैं। उनका वक्षः स्थल भरा हुआ, आँखें बड़ी-बड़ी शुभ-लक्षणों से सम्पन्न, धर्म के ज्ञाता, सत्य-प्रतिज्ञ, प्रजा के हित साधन में लगे रहने वाले, यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय, मन को एकाग्र रखने वाले, प्रजापति के समान पालक, श्री सम्पन्न शत्रुध्वंसक, धर्म तथा जीवों के रक्षक, स्वधर्म पालक, स्वजन पालक, वेद-वेदाङ्गों के तत्व के ज्ञाता, धनुर्वेद में प्रवीण, समस्त शास्त्रों के तत्वज्ञ, स्मरण शक्ति से युक्त, प्रतिभा सम्पन्न अच्छे विचार तथा उदार हृदय वाले, बात-चीत करने में चतुर, समस्त लोकों में प्रिय, साधु-पुरुषों से मिलने वाले, सबसे समान भाव रखने वाले, आर्य जिनका दर्शन ही प्रिय मालूम हो, सम्पूर्ण गुणों से युक्त, गंभीरता के समुद्र, हिमाचल के समान धैर्य वाले, विष्णु भगवान के समान बलशाली, चन्द्रमा के समान प्रिय-दर्शन, क्रोध में कालाग्नि के समान, क्षमा में पृथ्वी के समान, त्याग में कुबेर के समान और सत्य में धर्म-राज के समान सभी प्रकार के उत्तम गुणों से युक्त, सत्य-पराक्रम वाले, सद्‌गुण शाली थे। ये वे गुण हैं जो मनुष्य को मनुष्य से उठाकर देवत्व की ओर ले जाते हैं।

राम अपनी माता कौशल्या के विषय में कहते हैं—"ये मेरी माता कौशल्या वृद्ध हो चली हैं। इनका स्वभाव बहुत ही उच्च और उदार है यह कभी आपकी (राजा दशरथ) की निन्दा नहीं करतीं। भरत का सच्चरित्र उस समय और भी उज्ज्वल हो उठता है, जब वे कौशल्या के सामने राम-वन-गमन के विषय में अपने उद्‌गार प्रकट करते हैं, तथा उसके बाद श्री राम को वापस लौटाने के लिये वन में जाकर उनसे आग्रह करते हैं लौटाने का। भरत की शपथें जो वे समय-समय पर अपने सफाई देने के लिये कहा करते हैं वे वास्तव में उनके उज्ज्वल चरित्र की परिचायक हैं। वे अनुराग के कारण अपनी माँ को बुरा-भला कहने में नहीं चूकते।

राजा गुह से उनकी बात हुई उसके द्वारा राम के प्रति अनुराग कितना था यह स्पष्ट झलकता है। वे तृणों को भी पवित्र मानते हैं जिन पर राम ने सोकर रात बितायी थी।

राज्य परिवार के उच्च चरित्र के बाद वाल्मीकि रामायण में राज—मंत्रियों के सद्‌गुणों तथा सद्‌नीति का वर्णन इस प्रकार है-राजा दशरथ के मंत्रिगण जो संख्या में 8 थे मंत्री जनोचित गुणों से सम्पन्न थे ये मंत्र को जानने वाले, मनो-विकार के

जानकार, मुखाकृति द्वारा मनोभावों को पहचानने वाले, राजा के प्रिय तथा हित-चिन्तक, शुद्ध आचार-विचार वाले, यशस्वी, सदा राज्य सेवारत रहने वाले थे। ब्रह्मर्षि तथा ऋत्विज जो मंत्री का कार्य भी करते थे—सभी विद्वान थे, विनय-शील थे, सलज्ज, कार्य-कुशल, जितेन्द्रिय, श्री सम्पन्न, महात्मा, शास्त्रों के ज्ञाता, सुदृढ़, पराक्रमी, समस्त राज्य कार्यों में सावधान, राजाज्ञा पालक, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान, मुस्कराकर बात करने वाले, काम, क्रोध और स्वार्थों के वशीभूत होकर झूठ न बोलने वाले, शत्रु-पक्ष के राजाओं की सारी बात जानने वाले, व्यवहार कुशल, सौहार्द्रपूर्ण, न्यायप्रिय, कोष तथा सेना के संगठन में पारंगत, बिना अपराध किसी की हिंसा न करने वाले, शौर्य तथा उत्साह से परिपूर्ण, राजनीति में कुशल, सत्पुरुषों के रक्षक, न्यायोचित धन संग्राहक, अपराधी को बलाबल देखकर यथोचित दण्ड देने वाले, शुद्ध भाव वाले, विचारों में एक उतम व्रतधारी, राज्य हितैषी, नीति युक्त, गुरु तुल्य, समादरणीय, राजा के अनुग्रह पात्र, सभी देश कालों में गुणवान सिद्ध होने वाले, स्वभावतः दैवी सम्पति से युक्त, राजकीय मंत्रणा को गुप्त रखने वाले सूक्ष्म-दर्शी थे।[114] इधर प्रजा भी सद्वृत गुणों से सम्पन्न थी। अयोध्या पुरी तथा कौशल राज्य में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो मिथ्यावादी, दुष्ट तथा परस्त्री लम्पट हो। सम्पूर्ण नगर तथा राष्ट्र में शान्ति छायी हुई थी।[115]

श्री राम को वन से लौटाने के लिये जब भरत उनके पास गये तब भरत से श्री राम ने कुछ प्रश्न पूछे जो उनके राजकीय तथा व्यक्तिगत सदाचार से सम्बन्धित थे—

1. तुम धर्म पर अटल रहने वाले बलवेत्ता गुरु वसिष्ठ जी की पूजा करते हो न?
2. तात! तुम पिता जी की सेवा-सुश्रुषा करते हो न?
3. उत्तम कुल में उत्पन्न, विनयशील सम्पन्न बहुश्रुत, पुरोहित जी का सत्कार करते हो न?[116]
4. क्या देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, वृद्धों, वैद्यों तथा ब्राह्मणों का सम्मान करते हो न?
5. ब्राह्मण देवता द्वारा किये गये हवन को तुम सदैव ध्यान में रखते हो न?
6. क्या तुमने सर्वगुण सम्पन्न मंत्री अपने पास रखे हैं?
7. क्या तुम्हारी मंत्रणा गुप्त रहती है तथा कार्य-क्रम गुप्त रहते हैं? लोग उन्हें तर्क एवं युक्तियों के द्वारा जान तो नहीं लेते?
8. क्या तुम सहस्रों मूर्खों के बदले एक विद्वान को रखना पसन्द करते हो न?
9. क्या तुम्हारे मंत्री मेधावी, शूरवीर, चतुर और नीतिज्ञ हैं?
10. घूस न लेने वाले, बाहर, भीतर से पवित्र तथा परम्परा से ही कार्य करने वाले, अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्य पर नियुक्त करते हो न?[117]
11. क्या तुम्हारी प्रजा कठोर दण्ड से उद्विग्न होकर तुम्हारा तिरस्कार तो नहीं करती?[118]
12. साम, दाम प्रयोग में कुशल, कुशल राजनीतिज्ञ, फोड़ने में कुशल, शूरवीर,

राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखने वाले शत्रु को यदि राजा नहीं मारता हो तो वह एक न एक दिन स्वयं उसके हाथों मारा जाता है।[119]

13. क्या तुम्हारे सेनापति तुमसे संतुष्ट, शूरवीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान, पवित्र, कुलीन तथा राजा में अनुराग रखने वाले, रक्षण-कार्य में दक्ष हैं?[120]
14. क्या तुमने अपने योद्धाओं की बल-परीक्षा कर ली है तथा उन्हें सम्मानित किया है?[121]
15. सैनिकों को समय पर वेतन देते हो न?[122]
16. क्या तुम्हारे मंत्री तथा सेनाप्रधान तुम्हारे लिये प्राण त्याग करने को तैयार हैं?[123]
17. क्या तुम्हारे राजदूत अपने ही देश के रहने वाले, विद्वान, कुशल, प्रतिभाशाली, सद्विवेक युक्त तथा जैसा कहा जाये वैसा ही समाचार आगे कहने वाले हैं?[124]
18. क्या तुम शत्रु पक्ष के अठारह तथा अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देखभाल कराते रहते हो?[125]
19. राज्य निष्कासित शत्रु यदि पुनः राज्य में आ जाये तो तुम उनकी उपेक्षा तो नहीं करते?[126]
20. तुम नास्तिक ब्राह्मणों का संग तो नहीं करते?[127]
21. सम्पूर्ण नगरी की तुम भली-भाँति रक्षा करते हो न?[128]
22. कौशल देश सुख पूर्वक बसा है न?[129]
23. वैश्य जो कृषि और वाणिज्य चलाते हैं, तुम्हारे प्रीति पात्र हैं न?
24. क्या तुम स्त्रियों को संतुष्ट रखते हो?
25. पशुओं के संग्रह से तुम्हें तृप्ति तो नहीं होती?
26. क्या तुम प्रतिदिन पूर्वाह्न काल में नगरवासियों को दर्शन देते हो?
27. क्या मनुष्य निडर होकर तो तुम्हारे सामने नहीं आते या तुमसे लोग भयभीत तो नहीं हैं?
28. तुम्हारे दुर्ग धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यंत्र, शिल्पी, धनुर्धरों से भरे पूरे तो हैं?
29. आय अधिक तथा व्यय बहुत कम तथा तुम्हारा धन अपात्रों के हाथ में तो नहीं चला जाता है?
30. देव, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रों के लिये राज्य का धन व्यय होता है?[130]

31. कभी किसी प्रकार से अन्याय तो नहीं होता, निर्दोष को दण्ड तथा सदोष बिना दण्ड तो नहीं छूटता, धनी तथा गरीब को एक साथ यथावत् न्याय तो मिलता है न?[131]

32. वृद्ध पुरुष, बालक तथा वैद्यों को आन्तरिक अनुराग, मधुर वचन तथा धन दान देते हो न?[132]

33. गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चैत्यवृक्षों तथा समस्तपूर्णकाम

ब्राह्मणों को नमस्कार तो करते हो न?[133]

34. अर्थ के द्वारा धर्म को तथा धर्म के द्वारा अर्थ को हानि तो नहीं पहुँचाते?[134]

35. समय का विभाग कर धर्म, अर्थ, काम का योग्य समय में सेवन करते हो न?[135]

36. ब्राह्मण, पुरवासी तथा जनपद वासी तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं न?[136]

37. नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, दीर्घ-सूत्रता, ज्ञानी पुरुषों की उपेक्षा, आलस्य, पञ्च इन्द्रियों के वशीभूत, राजकार्यों में अकेले सोचना, मूर्खों से सलाह लेना, कार्यों को शीघ्र प्रारम्भ न करना, गुप्त मंत्रणा का प्रकट करना, मांगलिक कार्यों का अनुष्ठान न करना, सब शत्रुओं पर एक साथ चढ़ाई करना ये चौदह राजा के दोष तुममें तो नहीं हैं।[137]

38. दश-वर्ग	-	आखेट, जुआ, दिन में सोना, पर निन्दा, स्त्री में आसक्त, मद्यपान, नाचना, गाना, बजाना और व्यर्थ घूमना।
पंचवर्ग	-	जल दुर्ग, पर्वतदुर्ग, वृक्षदुर्ग, उरिण दुर्ग, धन्व दुर्ग।
चतुर्वर्ग	-	साम, दाम, दण्ड, भेद।
सप्तवर्ग	-	राजा, मंत्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना, मित्र वर्ग।
अष्टवर्ग	-	चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोष-दर्शन, अर्थ-दूषण, वाणी की कठोरता, दण्ड की कठोरता।
त्रिवर्ग	-	धर्म, अर्थ, काम।
तीन विद्या	-	वार्ता और दण्डनीति और तीनों वेदों का ज्ञान।
छः गुण	-	संधि-विग्रह-मान-आसन-द्वैधीभाव, समश्रय।
नीति	-	राजनीति।
विशांति वर्ग	-	(जो संधि योग्य नहीं है)
प्रकृति मण्डल	-	राजा, अमात्य, सुहृद, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, राष्ट्रदुर्ग।
यात्रा	-	युद्ध यात्रा।
दण्ड विधान		
संधि		
विग्रह		

उपरोक्त सभी की ओर तुम यथावत् ध्यान देते हो या नहीं? राजा के सभी गुणों का इससे स्पष्ट उल्लेख नहीं मिल सकता।[138]

रघुवंश के गुणों तथा राक्षस कुल के गुणों में पर्याप्त अंतर है। लंका तम प्रधान नगरी थी तथा अयोध्या सत्वप्रधान। यद्यपि रावण भी वेद-विद्या स्नातक था परन्तु व्यवहार में उसने उसे उतारा नहीं है, वह कुपथ को ही सुपथ समझता रहा—आचार्य गुरु तथा वृद्धों की तुमने व्यर्थ ही सेवा की क्योंकि तुमने उनसे गुणों तथा नीति का सार ग्रहण नहीं किया।[139]

कुम्भकर्ण के उपालम्भ भी ज्ञान-प्रद थे—

1. तुमने हितैषी पुरुषों और उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया।[140]
2. तुम्हें अपने दुष्कर्म का फल मिलना अवश्यंभावी है।[141]
3. केवल बल के घमण्ड से तुमने पाप-कर्म की परवाह नहीं की।[142]
4. जो पहले करने योग्य कार्य को बाद में करता है, वह नीति तथा अनीति को नहीं जानता है।[143]
5. जो कार्य उचित देश काल न होने पर विपरीत स्थिति में किये जाते हैं, वे दुःख का कारण होते हैं।[144]
6. धर्म, अर्थ और काम में धर्म श्रेष्ठ है, जानकर भी जो धर्म पालन नहीं करता वह राजा अज्ञानी है।[145]

विभीषण ने भी इन्द्रजीत से इसी प्रकार के वचन कहे हैं–

जिसका शील-स्वभाव धर्म से भ्रष्ट हो गया हो, जिसने पाप करने का निश्चय ही कर लिया हो, उसको त्याग कर प्राणी सुखी होता है। जो दूसरों के धर्म को लूटता हो, पराई स्त्री को हाथ लगाता हो, उसे त्याग देना चाहिये।

व्यक्तिगत रूप से रामायण में अनेक पात्रों के सद्गुणों का वर्णन है परन्तु हनुमान के विषय में कुछ शब्द विशेष रूप से कहे गये हैं–

उनमें यह सद्गुण प्राकृतिक रूप से भरे थे–उनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि ये सद्गुण सदा विद्यमान रहते थे।[146]

राम राज्य में राष्ट्र भी स्वस्थ था–उनके राज्य में विधवाओं का विलाप नहीं सुना जाता था। विषैले तथा दुष्ट जन्तुओं का भय नहीं था। व्यक्तियों को रोगों की आशंका नहीं थी। न मानसिक न शारीरिक सम्पूर्ण राज्य चोर, लुटेरों से रहित था। कोई मनुष्य अनर्थवादी कार्यों को हाथ में नहीं लेता था। बूढ़ों को बालकों की अन्त्येष्टि कर्म नहीं करने पड़ते थे। सब लोग सदा प्रसन्न थे, सभी धर्म परायण थे, वे कभी एक-दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचाते थे। लोग सहस्रों वर्षों तक जीवित रहते थे। सहस्रों पुत्रों के जनक होते थे, किसी प्रकार का रोग-शोक उन्हें व्याप्त नहीं था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण अपना-अपना कार्य करते थे और लोभ रहित थे, कोई झूठ नहीं बोलता था और सभी उत्तम लक्षणों तथा आचरणों से सम्पन्न थे, सभी लोग सुखी, प्रसन्न, संतुष्ट, पुष्ट, धार्मिक, रोग-व्याधि मुक्त, दुर्भिक्ष भय से सर्वथा निश्चिंत, कोई पुत्र की मृत्यु नहीं देखा करता था। नगर तथा राष्ट्र धन-धान्य से युक्त थे। सत्युग की भाँति सभी प्रसन्न थे। राजा दान-दक्षिणा आदि में तत्पर रहते, यहाँ तक कि वृक्षों की जड़ें मजबूत, वृक्ष सदा फलों से लदे, मेघ प्रजा की इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार वर्षा करते थे, वायु स्वस्थ तथा मंदगति से चलती थी उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था। इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र स्वस्थ और सद्वृत्त का नियमित पालन करता था।[147]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि रामायण में सद्वृत्त प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होता है।

द्वितीय परिच्छेद
भक्ष्याभक्ष्यविचार

आहार

भारतीय आहार शास्त्र एक प्राचीन विज्ञान है। यह अपनी एक मौलिक परम्परा रखता है। प्रसन्नता की बात यह है कि वह रामायण में भी अपने उसी रूप में अवतरित हुआ है। रामायण का आहार-शास्त्र पूर्ण-वैज्ञानिक तथा यथार्थ-पूर्ण है। इसमें आहार-विज्ञान को दो रूपों में विभक्त किया गया है।

1. सात्विक आहार।
2. तामसी आहार।

राजा दशरथ, मुनि वसिष्ठ, राजा गुह, ऋषि भारद्वाज के यहाँ सात्विक आहार, श्री राम का वन में आहार भी सात्विक था तथा उनका उसी रूप में वर्णन किया गया है।

राजा रावण के यहाँ तामसी भोजन उपलब्ध था उसका वर्णन भी रामायण में उसी प्रकार किया गया है।

वाग्भट के अनुसार 'विधि-पूर्वक लिया गया अन्न-पान (आहार) इन्द्रियार्थों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) के लिये इष्ट तथा आयु का आयतन कहा गया है क्योंकि ओज, तेज, रसादि धातुएँ, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ, बल, तुष्टि, प्रतिभा तथा आरोग्य आदि सब इसी (आहार) के अधीन हैं। इसी अन्न-पान रूपी ईंधन से अन्तराग्नि (जठराग्नि) की स्थिति है और जठराग्नि ही शरीर धारण का मूल है।'[1]

अग्नि के विषय में महर्षि अग्निवेश ने कहा है—

बल, आरोग्य, आयु एवं प्राण अग्नि के आश्रित हैं। आहार रूपी ईंधन से जठराग्नि प्रज्वलित रहती है, इसलिये आहार रूपी ईंधन के न मिलने से जठराग्नि शांत हो जाती है।[2]

वाल्मीकि रामायण में आहार का अनेकानेक प्रसंगों में उल्लेख किया गया है यथा-

राजा दशरथ ने अपने यहाँ अश्वमेध यज्ञ किया, जो पुत्र-प्राप्ति के निमित्त किया गया था। उस समय ऋषियों के लिये स्वादिष्ट भोजन बनाया जाता था कोई भी व्यक्ति थका माँदा या भूखा प्यासा नहीं दिखता था।[3] उस यज्ञ में प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन करते थे तथा शूद्रों को भी भोजन उपलब्ध होता था। तापस और श्रमण भी भोजन करते थे।[4]

बूढ़े, रोगी तथा स्त्रियाँ तथा बच्चे भी यथेष्ट भोजन पाते थे। भोजन इतना स्वादिष्ट होता था कि निरन्तर खाते रहने पर भी किसी का मन नहीं भरता था।[5]

यहां विधिवत् पके हुए अन्न के बहुत से पर्वतों जैसे ढेर दिखाई देते थे।[6]

श्रेष्ठ ब्राह्मण 'भोजन विधिवत् बनाया गया है।' बहुत स्वादिष्ट है—ऐसा कहकर अन्न की प्रशंसा करते थे। वे कहते थे 'हम लोग खूब तृप्त हुए, आपका

कल्याण हो।'[7]

वास्तव में भोजन की श्रेष्ठता उसके खाने वाले की तृप्ति से ही आँकी जा सकती है। उपरोक्त प्रसंगों पर विधि-पूर्वक दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वाल्मीकि जी को आहार-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था तथा उन्होंने अपने महाकाव्य में भोजन (आहार) का भली-भाँति परिचय प्रस्तुत किया है।

भोजन के गुण

आहार-द्रव्यों के विभिन्न स्वाभाविक गुण होते हैं यथा-गुरु-लघु, स्निग्ध-रुक्ष, शीत-उष्ण आदि।

अष्टांग संग्रहकार वाग्भट के अनुसार वर्षा का जल, रक्त-चावल, साठी के चावल, मुद्ग, एण तथा लावा, पक्षी का मांस आदि आहार द्रव्य स्वभाव से लघु होते हैं तथा दूध, गन्ना, ब्रीहिधान्य, उड़द तथा आनूप, देशीय प्राणियों का मांस आदि आहार द्रव्य स्वभाव से ही गुरु होते हैं।[8]

इस प्रकार आहार-द्रव्यों का स्वाभाविक गुण गुरु-लघु, स्निग्ध-रुक्ष, शीत-उष्ण आदि का विचार करके आहार का सेवन करना चाहिये।

वाग्भट के ही अनुसार ये द्रव्य संयोग आदि विशेषताओं से विपरीत स्वभाव के बन जाते हैं।[9] दो या बहुत से द्रव्यों का एक साथ मिलना संयोग कहलाता है। जो कार्य एक द्रव्य से नहीं होता है, वही अनेक द्रव्यों के संयोग से हो जाता है। जैसे मधु-घृत तथा मछली-दुग्ध का संयोग मारक होता है किन्तु पृथक्-पृथक् वे स्वास्थ्य के लिये लाभ-प्रद होते हैं।[10]

जल तथा अग्नि के सन्निकर्ष आदि से भी द्रव्य में विशेष गुण प्राप्त किया जाता है, इस विषय में वाग्भट का मत है कि 'जल तथा अग्नि के सन्निकर्ष, शौच (स्वच्छता), मन्थन, देश, काल, भावना तथा भाजन (पात्र) आदि से द्रव्य का जो विशेष गुण प्राप्त किया जाता है, उसे संस्कार कहते हैं।'[11]

महर्षि अग्निवेश ने कहा है—स्वाभाविक द्रव्यों का अन्य गुणों के आधान के लिये अभिसंस्करण करण है। अर्थात् अन्य गुणों का आधान संस्कार है। वे गुण जल, अग्नि, सन्निकर्ष, शौच, मंथन, देश, काल, वासन, भावना, काल, प्रकर्ष और भाजन से आधान किये जाते हैं।[12]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उपरोक्त कारणों से द्रव्य (आहार) के गुण में परिवर्तन हो जाता है।

समय

भोजन का समय ऋतु की अपेक्षा से, व्याधि की अपेक्षा से, आहार के जीर्ण एवं अजीर्ण के लक्षणों के अनुसार होता है।[13] अजीर्ण में भोजन करने पर पहले खाये हुए आहार का अपरिणत रस उत्तराहार के रस के साथ मिलकर शीघ्र सब दोषों को प्रकुपित करता है।[14]

भोजन के जीर्ण होने पर वात आदि दोष अपने स्थान में स्थित होते हैं। वायु की अनुलोमता से मूत्र और पुरीष का विसर्जन होता है। उद्गार (डकार) तथा

हृदय के स्रोतों के मुख विशुद्ध होते हैं, इन्द्रियाँ स्वच्छ होती हैं, शरीर में लघुता रहती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, भूख लगती है, इस समय किया गया आहार दोषों को दूषित नहीं करता तथा आयु, बल एवं वर्ण (कान्ति) की वृद्धि करता है।

भोजन का यही ठीक समय है।[15] यह मत अष्टांग संग्रहकार महर्षि वाग्भट का है।

वाल्मीकि रामायण में भी आहार-शास्त्र का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है।

भोजन का स्थान

वाग्भट् के अनुसार आहार-द्रव्यों का उत्पत्ति स्थान तथा उपयोग करने वाले का उत्पत्ति स्थान देश कहलाता है। इसमें उपभोक्ता के स्वास्थ्य की तथा रोगी की प्रकृति की दृष्टि से परीक्षा करनी चाहिये।[16]

महर्षि अग्निवेश ने कहा है देश पुनः स्थान को कहते हैं। द्रव्यों की उत्पत्ति और प्रचार देश सात्म्य को बतलाता है।[17]

भोक्ता

भोजन अर्थात् आहार ग्रहण करने वाले को भोक्ता कहा गया है। भोक्ता को स्नान किये बिना, नंगा होकर, एक वस्त्र पहनकर, मलिन वस्त्र पहनकर, बिना आहुति किये, बिना मंत्रों के जाप किये, देवताओं और पितरों को समर्पित किये बिना भोजन नहीं करना चाहिये।[18A]

पूरब की ओर मुख करके, प्रसन्न मन से, पवित्र, भक्त, अक्षुधित (भूख रहित) तथा अनुकूल जनों द्वारा लाया गया हितकारक आहार करना चाहिये।[18B]

मांस एवं उपदंश भक्ष्य को छोड़कर अन्य पर्युषित भोजन नहीं करना चाहिये।[19]

भोजन के षटरस

अष्टांग संग्रह के अनुसार रस छः प्रकार के होते हैं-

1. स्वादु (मधुर Sweet जैसे चीनी)।
2. अम्ल (खट्टा Acid or Sour जैसे नीबू)।
3. लवण (नमकीन Salt जैसे नमक)।
4. तिक्त (कडुवा Pungent जैसे करेला, नीम)।
5. ऊषण (कटु Bitter जैसे मिर्च)।
6. कषाय (कसैला Astringent जैसे आँवला)।

ये रस द्रव्याश्रित हैं। अर्थात् द्रव्यों में रहते हैं और इनमें जो जितना पूर्व है, वह उतना ही अधिक बल कारक होता है। जैसे मधुर रस सबसे पूर्व है, अतः वह सबसे अधिक बल दायक है।[20]

आयुर्वेद शास्त्र में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है जिनमें मुख्य चार हैं। शरीर शास्त्र में "रस" प्रथम धातु है। रसशास्त्र में इसका अर्थ "पारद" है। भैषज्य कल्पना में रस किन्हीं द्रव्यों के स्वरस को कहते हैं और द्रव्यगुण शास्त्र में 'रस्यते आस्वद्यते रसनेन इति रसः' अर्थात् जिह्वा इन्द्रिय के द्वारा जिस विषय का ग्रहण किया जाता है, उसे रस कहते हैं। यहाँ रस से अभिप्राय रसनेन्द्रिय के विषय से है। 'रसदाग्राह्यो गुणो रसः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिह्वा

के द्वारा ग्राह्य गुण को रस कहते हैं।

शाङ्गर्धर संहिता ने भी छः प्रकार के रस बताते हुए कहा है–'अनेक द्रव्यों में रहने वाले छः रस प्रसिद्ध हैं यथा मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय।'[21]

आचार्य चक्रपाणि ने रस शब्द की स्पष्ट व्याख्या की है। 'रस्यत आस्वाद्यत इति रसः' अर्थात् जिह्वा के द्वारा द्रव्य की जिस अवस्था का आस्वादन किया जाता है उसे रस कहते हैं।

1. मधुर (Sweet)

मधुर रस उसे कहते हैं जो कि मुख में रखते ही सम्पूर्ण मुख में व्यक्त होकर लिपट जाये और शरीर में स्निग्धता, संतृप्ति, प्रसन्नता तथा कोमलता ला दे।[22] शर्करा, द्राक्षा आदि द्रव्य मधुर-रस प्रधान द्रव्यों के उदाहरण हैं।

2. अम्ल (Sour)

जिस रस के खाने से दाँतों में हर्ष उत्पन्न हो, मुख से लारा स्रावित होने लगे, शरीर की त्वचा से पसीना आने लगे, मुख एवं जिह्वा को बोधन अर्थात् जिह्वा जागरूक होकर अन्यान्य रसों का ठीक-ठीक परिज्ञान करने में समर्थ हो जाये तथा मुख और कण्ठ में जलन होने लगे उसे अम्ल (Sour) रस कहते हैं।[23] नींबू, इमली अम्ल-रस प्रधान द्रव्य हैं।

3. लवण (Salt)

जो रस मुख में रखते ही सद्यः क्लेदन (विलयन) शील अर्थात् घुलनशील हो, मुख में गीलापन लाकर थूक उत्पन्न कर देता हो और मुख में विशेष प्रकार की जलन उत्पन्न कर दे उसे लवण (Salt) रस कहा जाता है।[24] सैंधवादि आठों लवण 'लवणरस' के प्रमुख उदाहरण हैं।

4. कटु (Pungent)

जो रस जिह्वा पर रखते ही मुख में चुभने की सी पीड़ा कर दे। मुख, नासा और नेत्रों से जल-स्राव तथा विदाह उत्पन्न होता हो उसे कटु रस कहा जाता है।[25] लाल-मिर्च तथा काली मिर्च कटु-रस के प्रधान उदाहरण हैं।

5. तिक्त (Bitter)

जो रस जिह्वा पर रखते ही जिह्वा के स्वाद को नष्ट कर दे। मुख की विशदता को शुष्क कर दे और खाने वाले व्यक्ति को प्रसन्नता उत्पादक हो उसे तिक्त रस कहा जाता है।[26] कुनेन, चिरायता, नीम आदि तिक्त रस के प्रधान उदाहरण हैं।

6. कषाय (Astringent)

जो रस जिह्वा पर रखते ही जिह्वा के नीलेपन को हटाकर उसमें स्तब्धता (निष्क्रियता) एवं मोटापन ला दे। कण्ठ में रुकावट का अनुभव लाकर जिह्वा में विकशन कार्य भी ला दे उसे कषाय रस कहा जाता है।[27] बबूल, अर्जुन, मदार आदि कषाय रस के उदाहरण हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी षटरस का उल्लेख मिलता है।

श्री राम वन में कषाय, तिक्त तथा कड़वे फलों का आहार करते थे।[28] स्वयं

श्री राम ने अपने पितृजनों को पिण्डदान करते समय कहा है कि महाराज! यह पिण्ड-दान मेरी ओर से स्वीकार कीजिये क्योंकि हम आजकल यही अन्न खाते हैं। व्यक्ति को वही वस्तु अपने प्रियजन को अर्पित करनी चाहिये जिसे वह स्वयं प्रयोग में लाता हो। वह पिण्ड इंगुदी के गूदे में बेर मिलाकर बनाया गया था।[29] इंगुदी का पिण्याक ही वे उस समय प्रयोग में लिया करते थे। विभिन्न प्रकार के कन्द-मूल फल ही उनकी नित्य की खुराक थी।[30]

वाल्मीकि रामायण में मधुर, अम्ल तथा लवण रसों के भी उदाहरण मिलते हैं यथा मधु (मधुर रस) दही, तक्र आदि (अम्ल रस) एवं सौर्वचल लवण आदि लवण रस के उदाहरण हैं।

ईख, मधु, लावा, मैरेय, श्रेष्ठ आसव, पानक रस आदि नाना प्रकार के बहुमूल्य भक्ष्य-पदार्थ प्रस्तुत कर दिये।[31] दूध, दही तथा घी की तो नहरें बह चलीं।[32] षड्रस भोजनों में से जिसको जो-जो पसन्द हो, उसके लिये वह सब प्रस्तुत कर दो।[33] वानर सिंह हनुमान ने वहाँ सोने के बड़े-बड़े पात्रों में मोर, मुर्गे, सूअर, गेंडा, साही, हरिण तथा मयूरों के मांस देखे, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे वे अभी खाये नहीं गये थे।[34]

इस प्रकार उपरोक्त स्थलों पर तथा इन के अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर रामायण में भोजन के षड्रसों का उल्लेख किया गया है। यथा वसिष्ठाश्रम में, राजा दशरथ के महल में, राजा गुह के द्वारा सत्कार में आदि।

भोजन के प्रकार

आयुर्वेद में आहार-शास्त्र का प्रमुख स्थान है। आहार कई प्रकार का होता है यथा—भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य, फलाहार, मांसाहार आदि।

जो दाँतों से चर्बण करके खाये जाते हैं भक्ष्य कहे जाते हैं जैसे- अन्न-रोटी आदि। जो अन्न समुद्रवभूत होते हैं वह भोज्य कहलाते हैं जैसे खीर। पेय उसे कहते हैं जो पिये जायें जैसे दूध आदि। लेह्य चटनी जैसे पदार्थ को तथा चोष्य चूसने की वस्तु को कहते हैं। जब उपवासादि में फलों का सेवन किया जाता है तो वह फलाहार तथा मुर्गे, मयूर आदि के मांस को जब भोजन के रूप में खाया जाता है तो उसे मांसाहार कहा जाता है।

रामायण में भोजन के विविध प्रकारों का वर्णन किया गया है।

1. भक्ष्य (अन्न भोजन) पकवान्न भोजन
2. भोज्य अन्न भोजन) पकवान्न भोजन
3. पेय
4. लेह्य
5. चोष्य
6. फलाहार भोजन
7. मांसाहार भोजन

अन्न भोजन

पक्वान्न भोजन

(भक्ष्य, भोज्य) 'अन्न' शब्द 'अद्भक्षणे' धातु में 'क्त' प्रत्यय से सिद्ध होता है। जो भक्षण किया जाये उसे अन्न कहते हैं। अन्न का स्वभाव–रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव, गुण एवं कर्म आदि के रूप में प्रकट होता है।

वाल्मीकि रामायण में अन्न भोजन एवं पकवान्न भोजन का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

राम से मिलने जाते हुए भरत का सत्कार महर्षि भारद्वाज ने विविध प्रकार के व्यंञ्जनों से किया। भरत की सेना के लिये मैरेय, सुरा, ईख, स्वरस, शीतल जल उत्तम अन्न, नाना प्रकार के भक्ष्य-भोज्य, फलों के गूदे, मधु मिश्रित लावा, अजवायन मिलाकर बनाये गये वाराही कंद-आम आदि से बनाये गये व्यंञ्जन, सुगन्ध युक्त रस वाली दालें, श्वेत रंग के भात, खीर आदि भक्ष्य पदार्थ प्रस्तुत किये।[35]

इसी प्रकार का स्वागत एक बार महर्षि वशिष्ठ ने विश्वामित्र का किया था। उस समय उन्होंने ईख, मधु, लावा, मैरेय, भात, आसव, पानक, दाल, दूध, दही आदि द्वारा उनकी सेना का सत्कार किया था।[36]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में अन्न-भोजन, पकवान्न भोजन (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है।

फलाहार भोजन

जब उत्तम फलों को ही आहार रूप में सेवन किया जाता है तो उसे फलाहार भोजन की संज्ञा दी जाती है। रामायण में ही फलाहार का उल्लेख कई जगह मिलता है यथा–निषाद राज गुह ने राम से मिलने जाते हुए भरत की सेवा में मिश्री, फलों के गूदे तथा मधु भेंट की। उन्होंने कहा– यह फल मूल आपकी सेवा में प्रस्तुत है इसे निषाद लोग स्वयं तोड़ कर लाये हैं। इनमें से कुछ फल तो हरे तथा ताजे हैं और कुछ सूख गये हैं। इसके साथ तैयार किया गया फलों का गूदा भी है। इसके सिवाय नाना प्रकार के दूसरे वन्य पदार्थ भी हैं। आप इन सबको ग्रहण करें।[37]

इस प्रकार रामायण में फलाहार का स्पष्ट निर्देश मिलता है।

मांसाहार भोजन

वाल्मीकि रामायण में मांसाहार का भी उल्लेख किया गया है। ऋषि भारद्वाज द्वारा सेवकों के लिये मांसाहार प्रस्तुत किया गया था। इसके अतिरिक्त रावण के महल में भी अनेक प्रकार के मांसाहारी पदार्थ थे। रामायण में प्राप्त मांसाहार के प्रसंग निम्नवत् हैं–

1. भरत की सेना में आये हुए निषाद आदि निम्न-वर्ग के लोगों की तृप्ति के लिये वहाँ मधु से भरी हुई बावड़ियाँ प्रकट हो गयी थीं तथा उनके तटों पर तपे हुए पिठर (कुण्ड) में पकाये गये मृग, मोर और मुर्गों के स्वच्छ मांस भी ढेर के ढेर रख दिये गये थे।[38]

2. रावण की पानभूमि के वर्णन में कहा गया है–हनुमान जी ने राक्षस राज रावण

के महल में वह पान भूमि देखी, जो सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों से सम्पन्न थी। उस मधुशाला में अलग-अलग मृगों, भैसों और सूअरों के मांस रखे गये थे, जिन्हें हनुमान जी ने देखा।[39]

3. वानरसिंह हनुमान ने वहां सोने के बड़े-बड़े पात्रों में मोर, मुर्गे, सूअर, गेंडा, साही, हरिण तथा मयूरों के मांस देखे, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे। वे अभी खाये नहीं गये थे।[40]

4. कृकल नामक पक्षी, भाँति-भाँति के बकरे, खरगोश, आधे खाये हुए भैंसे, एकशल्य नामक मत्स्य और भेड़े-ये सब रांध-पकाकर रखे हुए थे। इनके साथ अनेक प्रकार की चटनियाँ थीं। भाँति-भाँति के पेय तथा भक्ष्य पदार्थ भी विद्यमान थे। जीभ की शिथिलता दूर करने के लिये खटाई और नमक के साथ भाँति-भाँति के राग और खाण्डव भी रखे गये थे।[41]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण कालीन समाज में भी मांसाहार का प्रचलन था। सभी धर्म, जाति एवं वर्ग के लोग सभी प्रकार का भोजन करते थे।

पेय भोजन

जो भोजन पदार्थ पीकर तृप्ति प्रदान करते हैं वे पेय भोजन कहे जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में पेय भोजन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यथा महर्षि भारद्वाज ने भरत की सेना के लिये विविध पेय पदार्थ भी प्रस्तुत किये। उन्होंने मैरेय, सुरा, ईखस्वरस, शीतल जल, चोष्य, पुष्प-मधु आदि से युक्त पेय पदार्थ, सुगन्ध युक्त रस वाली दालें, स्वादिष्ट खीर, मधु, दही, सोंठ आदि पड़े दही से भरत की सेना का स्वागत किया।[42]

इसी प्रकार का स्वागत एक बार महर्षि वशिष्ठ ने विश्वामित्र का किया था। उस समय उन्होंने ईख, मधु, लावा, मैरेय श्रेष्ठ आसव, पानक, दाल, दूध, दही, घी, भाँति-भाँति के खाण्डव द्वारा उनकी सेना का सत्कार किया था।[43]

उपरोक्त प्रसंग वाल्मीकि रामायण में पेय भोजन की उपलब्धि का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में आहार-ज्ञान वर्तमान समय से कम महत्वपूर्ण नहीं था।

वाल्मीकि रामायण में मुनि ने एक स्थान पर पथ्य की तरह दिखने वाले अपथ्यों की ओर संकेत कर सभी को सतर्क किया है-'अपथ्य पथ्य सन्निभम्।'[44]

रामायण में स्नान करने के लिये कषाय रस वाले द्रव्यों का चूर्ण प्रशस्त माना गया है। इसका क्वाथ या कल्क कर उस जल का प्रयोग करना चाहिये। इसमें निम्ब आँवले आदि का कल्क उपयोगी होता है। अन्यत्र मुख-प्रक्षालन के लिये चंदन का जल प्रस्तुत किया गया है।

पथ्यों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए रामायण में लिखा है—तिन्नी चावल का सूखा भात अर्थात् चिवड़ा अर्थात् शाली चावल तथा भद्रक धान्य (चना-मूँग) आदि तथा विशेष यव, लावा और लाजा भी पथ्य हैं।

मुनि अगस्त्य ने भी श्री राम को भोजन के लिये अनेक गुणों से युक्त कन्द,

मूल, जरावस्था निवारण करने वाली दिव्य-औषधियाँ, पवित्र भात आदि अर्पित किये। श्री राम अमृत तुल्य स्वादिष्ट भोजन कर परम तृप्त हुए और प्रसन्न हुए।[45]

रामायण में जहाँ पथ्य पर विशद विवेचन किया गया है वहाँ कुपथ्य पर भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। कुछ खाद्य ऐसे हैं जो पथ्य सा दिखाई देते हुए भी वास्तव में अपथ्य होते हैं। अतः ऐसे खाद्यों से बचना चाहिये। मुनि ने कहा है कि अपथ्य सेवन करने वाला व्यक्ति यदि यह सोचे कि अपथ्य लेने के बाद भी वह स्वस्थ रहेगा तो यह एक विडम्बना है जिस प्रकार निम्ब से मधु नहीं श्रवता नहि निम्बात् श्रवेत क्षौद्र....................।[46] कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि दूर से पलाश के वृक्ष पर लगे सुंदर फूलों को देखकर ही कोई मनुष्य यह समझ ले कि इसके फल भी उतने ही मनोहर तथा सुस्वादु होंगे और इसी आशा में वह आम के बगीचों को काटकर अपने यहाँ पलाश के पौधे लगाता है, उसे सींचता है तो वह फल लगने के समय पछताता है।[47] इस प्रकार प्रज्ञापराध रोग के कारण बन सकते हैं, यह स्पष्ट है। कवि ने अमृत और काँजी के अन्तर को भी परिलक्षित किया है। कवि ने खाद्यों के प्रसंग में यह बताया है कि मक्खी घी में पीकर कोई उसे पचा नहीं सकता "आज्यं यथा मशिकया जीवर्णम्।।"

यह सब होते हुए भी कवि ने यह संकेत किया है कि मरने की इच्छा करने वाले रोगी या मृत्यु के निकट पहुँचे रोगी को पथ्य रुचता नहीं है या वह अपथ्य की ओर अधिक आकर्षित होता है।[48] जैसे मरते समय मनुष्य स्वास्थ्य विरोधी पदार्थों को सेवन करने लगता है प्रायः सभी मरणासन्न मनुष्यों को पथ्य नहीं रुचता। कवि ने जहाँ राक्षसों द्वारा किये जाने वाले युद्ध में सुरा या मदिरापान को पथ्य माना है वहाँ रघुवंशियों के लिये तथा धार्मिक कृत्यों के समय इसी को अपथ्य बताया है।

उत्तम विहार का उल्लेख करते हुए कवि ने जल, वायु, देश, काल को प्राथमिकता दी है। दिव्य, शीतल और स्वास्थ्यकर हवा प्राण देने वाली, थकान को कम करने वाली होती है। इसी प्रकार जल भी दिव्य तथा शीतल व स्वास्थ्यकर होता है। इसका उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है। मुख्यतः मलय तथा दुर्दुर पर्वत की हवा स्वास्थ्यकर होती है। ऐसा कवि का मत है।[49]

इस प्रकार आहार को जहाँ रामायण में महत्ता दी है, वहाँ विहार को भी इतनी ही प्रमुखता देने का प्रयत्न किया है। सौम्य! पुरुष को उतना ही बोझ उठाना चाहिये जो शिथिल न करे और वही अन्न भोजन करना चाहिये जो पेट में जाकर पच जाये, रोग न पैदा करे। आँखों में सुई चुभोना भी उतना ही अपथ्य विहार है जितना जीभ से तलवार की धार को चाटना।

रामायण में लिखा है मरुभूमि का जीवन सदा स्वस्थकर है—दूसरे शब्दों में मरुभूमि सदा पथ्य है।[50] यह मरुभूमि पशुओं के लिये हितकारी होगी। यहाँ रोगी कम होंगे। यह भूमि फल-मूल रसों से सम्पन्न होगी। यहाँ घी आदि स्नेह अधिक सुलभ होंगे। दूध की भी बहुतायत होगी। सुगन्ध छायी रहेगी और अनेक प्रकार की औषधियाँ होंगी।

सबसे स्पष्ट तथा उत्तम अपथ्य विहार तथा आहार भरत ने उस समय बताये जब माता कौशल्या ने उनको व्यङ्ग्य में कुछ शब्द कहे थे—

1. पापी की बुद्धि कभी गुरु से सीखे, शास्त्रों में बताये गये मार्ग का अनुसरण करने वाली न हो।[51]

2. सूर्य की ओर मल-मूत्र त्याग करे और सोई हुई गौओं को लात मारे।[52]

3. सेवक से भारी काम कराकर अल्प वेतन देने के पाप का भागी हो।[53]

4. समस्त प्राणियों का पुत्र की भाँति पालन करने वाला राजा से द्रोह करने वाले लोगों को पाप लगता है।[54]

5. प्रजा से उसकी आय का छठा भाग लेकर भी उसकी रक्षा न करने वाले राजा को पाप लगता है।[55]

6. यज्ञ में कष्ट सहने वाले ऋत्विजों को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा करके भी बाद में मना कर देता है।[56]

7. युद्ध में सत्पुरुषों के कर्म का पालन न करने वाले योद्धा का लगने वाला पाप।[57]

8. गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान को भुला दे।[58]

9. राम के दर्शन से वंचित रह जाये।[59]

10. मनुष्य खीर, खिचड़ी, बकरी के दूध को देवताओं, पितरों एवं भगवान को बिना निवेदन किये व्यर्थ खाय।[60]

11. गुरु जनों की निन्दा, मित्र से प्रतिद्रोह।[61]

12. विश्वास घात करे।[62]

13. कृतघ्न, सत्पुरुषों द्वारा व्यक्त, निर्लजा, सबके द्वेष का पात्र।[63]

14. सबके साथ रहकर अकेले मिष्ठान्न भोजन कर पाप का भागी होना।[64]

15. सन्तानहीन अवस्था में ही मर जाये तथा अनुकूल पति प्राप्त न हो।[65]

16. सम्पूर्ण आयु का उपभोग करे बिना ही मरे।[66]

17. राजा, स्त्री, बालक, वृद्ध के वध करने के पाप का भागी।[67]

18. लाक्षा, मधु, मांस, लौह और विष बेचकर धन कमाये।[68]

19. युद्ध में पीठ दिखाकर भागना।[69]

20. मैले, कुचैले वस्त्र से अपने शरीर को ढककर, हाथ में खप्पर लेकर भीख माँगता फिरे।[70]

21. काम, क्रोध के वशीभूत होकर सदैव मद्यपान, स्त्री समागम और द्यूत-क्रीड़ा करे।[71]

22. मन कभी धर्म में न लगे और अधर्म का ही सेवन करे। अपात्र को धन दे।[72]

23. सन्ध्याओं के समय सोना, आग लगना, मित्र-द्रोह, गुरु-पत्नी गामी का पाप।[73]

24. देव गुरु तथा माता-पिता की सेवा कभी न करे।[74]

25. सुकार्यों से भ्रष्ट हो जाये।[75]

26. माता की सेवा छोड़कर अनर्थ की ओर बढ़े।[76]

27. दीनों की याचना को निष्फल करने का पाप।[77]

28. चुगली तथा अपवित्र कर्मों की ओर अग्रसर रहे।[78]
29. ऋतुस्नाता, पतिव्रता स्त्री को ठुकराकर पाप का भागी।[79]
30. अन्नादि का दान न करने वाले विप्र को पाप लगे।[80]
31. पूजा में विघ्न डाले तथा छोटे बछड़े को दूध पीने से रोके।[81]
32. पर स्त्री गमन का पाप।[82]
33. पानी गन्दा करने, दूसरों को विष देने के पाप।[83]
34. पानी होते हुए भी प्यासे को उससे वंचित रखे।[84]
35. दूसरों को लड़ाने वाले कलह-प्रिय व्यक्ति को लगने वाला पाप।[85]

उपरोक्त सभी अपथ्य विहार हैं जिनका मनुष्य को प्रयत्न-पूर्वक त्याग करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त रामायण में कुछ खाद्यों के नाम भी प्राप्त होते हैं—इन्हें इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है।

1. दूध।	13. शीतल जल।	25. गाढ़ी स्वादिष्ट खीर।
2. दही।	14. पायस।	26. केशर मिश्रित तक्र।
3. घृत।	15. मधु मिश्रित लावा।	27. शक्कर मिश्रित तक्र।
4. अमृत।	16. स्वादिष्ट अन्न।	28. मृग, मोर, मुर्गे का मांस।
5. अमृत रस।	17. दाल	29. जौ।
6. विष।	18. अजवायन मिश्रित वाराही कन्द।	
7. मिश्री।	19. शर्वत।	30. गेहूँ।
8. फलों के गूदे।	20. भात।	31. चना।
9. मधु।	21. वारुणी।	32. तेल।
10. शर्करा।	22. शुभ अन्न।	33. मदिरा।
11. सुरा।	23. फल रस में पकाये व्यंजन।	
12. ईख का रस।	24. सुगन्ध युक्त दाल।	34. आसव।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में सभी प्रकार के भोजन आहार-विहार-पथ्य एवं अपथ्य का विस्तार से वर्णन किया गया है।

भोजनोत्तर कर्म

अष्टांग संग्रहकार के अनुसार 'भोजन के पश्चात् हाथ में लगे अन्न कणों को जल के द्वारा अन्य हाथ से साफ करें। दाँत में लगे अन्न को धीरे-धीरे दन्त-शोधन यन्त्र से साफ करके मुख के भीतर आहार जन्य चिपचिपाहट, गन्ध तथा स्नेह को जल का आचमन करके दूर करें। अंगुलियों के अग्रभाग से गिरने वाले जल से नेत्रों का सिंचन करें। तम्बाकू आदि से मुख को स्वच्छ करें। ऊर्ध्व कफ के वेग को कम करने के लिये धूम्रपान का सेवन करें। सौ कदम जाकर वाम पार्श्व (बायीं करवट) में सो जायें। अधिक मात्रा में द्रव पदार्थों को खाकर शैया पर बहुत देर तक नहीं सोना चाहिये।'[86]

भोजन करके यात्रा (वाहन से), प्लवन (तैरना, उछलना, कूदना), वाहन (घोड़ा

आदि से चढ़कर जाना), अग्नि और धूप का सेवन नहीं करना चाहिये।[87]

वाल्मीकि रामायण में भोजनोत्तर कर्म का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

माध्यन्दिनीय कर्म

अष्टांग संग्रह के अनुसार जिन कथाओं में प्रधानतः धर्म की चर्चा हो, मध्य में अर्थ की चर्चा हो एवं उसी के साथ कुछ काम सम्बन्धी चर्चा हो, ऐसी त्रिगुण कथाओं के द्वारा दिन का मध्य भाग इष्ट (प्रिय जनों), शिष्ट (सभ्य) जनों तथा सहायकों के साथ व्यतीत करना चाहिये। इससे इतर माध्यनिन्दनीय कर्म है।[88]

रामायण में इनका उल्लेख नहीं मिलता है।

सन्ध्याकाल में निषिद्ध कर्म

सन्ध्या काल में निषिद्ध कर्मों का उल्लेख रामायण में प्राप्त नहीं होता है।

रात्रि भोजन

रात्रि-भोजन के विषय में भाव मिश्र ने कहा है कि रात्रि के प्रथम प्रहर में कुछ कम भोजन लेना चाहिये तथा दुर्जर (दुष्पाच्य) भोजन नहीं होना चाहिये।[89]

वाल्मीकि रामायण में रात्रि-भोजन का उल्लेख नहीं मिलता है।

शैय्या

अष्टांग संग्रह के अनुसार, "शैय्या उपप्रधान (तकिया मसनद) से युक्त, स्वास्तीर्ण-विस्तीर्ण (पर्याप्त लम्बी चौड़ी), अविषम (समतल) तथा सुखदायक होनी चाहिये।"[90]

शयनासन (पलंग)

महर्षि वाग्भट् ने शयनासन के विषय में बताया है कि शयनासन जानुतुल्य (जानु भर) ऊँचा, मृदु एवं शुभ (कल्याणकारी) होना चाहिये।[91]

वाल्मीकि रामायण में शैया एवं शयनासन का उल्लेख विस्तार से मिलता है। इसमें जहाँ वनवासी राम की कुशों की शय्या का उल्लेख है वहीं राजा दशरथ के महल तथा रावण के महलों में रखे विविध शयनासनों का भी उल्लेख मिलता है-

निषाद राज की सारी बातें ध्यान से सुनकर मंत्रियों सहित भरत ने इङ्गुदी वृक्ष की जड़ के पास आकर श्री रामचन्द्र जी की शय्या का निरीक्षण किया।[92] फिर उन्होंने समस्त माताओं से कहा— 'यहीं महात्मा श्री राम ने भूमि पर शयन करके रात्रि व्यतीत की थी। यही वह कुश समूह है, जो अङ्गों से विमर्दित हुआ था।'[93]

जो पुरुष सिंह श्री राम मुलायम मृग चर्म की विशेष चादर से ढके हुए तथा अच्छे-अच्छे बिछौनों के समूह से सजे हुए पलंग पर सदा सोते आये हैं, वे इस समय पृथ्वी पर कैसे शयन करते होंगे।[94]

यही मेरे बड़े भाई की शय्या है। यहीं उन्होंने करवटें बदली थीं। इस कठोर वेदी पर उनका शुभ शयन हुआ था, जहाँ उनके अंगों से कुचला गया सारा तृण अभी तक पड़ा है।[95]

कुशों की शय्या के अतिरिक्त रामायण में सुन्दर मणियुक्त पलंगों का भी वर्णन है—

रावण की उस हवेली में बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे तथा स्वयं राक्षसराज उसमें निवास करता था।[96]

रावण के अन्तःपुर में इधर-उधर दृष्टिपात करते हुए हनुमान जी ने एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी देखी, जिस पर पलंग बिछाया जाता था।[97] वहाँ वैदूर्यमणि (नीलम) के बने हुए श्रेष्ठ आसन (पलंग) बिछे हुए थे, जिनकी पाटी, पाये आदि अंग हाथी-दाँत और सुवर्ण से जटित होने के कारण चितकबरे दिखाई देते थे। उन महामूल्यवान पलंगों पर बहुमूल्य बिछौने बिछाये गये थे। उन सबके कारण उस वेदी की बड़ी शोभा हो रही थी।[98] उस पलंग के एक भाग में उन्होंने चन्द्रमा के समान एक श्वेत छत्र देखा, जो दिव्य मालाओं से सुशोभित था।[99] वह उत्तम पलंग सुवर्ण से जटित होने के कारण अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहा था। हनुमान जी ने उसे अशोक पुष्पों की मालाओं से अलंकृत देखा।[100] उसके चारों ओर खड़ी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ हाथों में चँवर लिये उस पर हवा कर रही थीं। वह पलंग अनेक प्रकार की गन्धों से सेवित तथा उतम धूप से सुवासित था।[101] उस पर उत्तमोत्तम बिछौने बिछे हुए थे। उसमें भेड़ की खाल मढ़ी हुई थी तथा वह सब ओर से उतम फूलों की मालाओं से सुशोभित था।[102] उस प्रकाशमान पलंग पर महाकपि हनुमान जी ने वीर राक्षसराज रावण को सोते देखा।[103]

इस प्रकार रामायण में प्राप्त उपरोक्त प्रसंगों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में शय्या एवं शयनासन के विविध रूपों पर दृष्टिपात किया गया है।

रात्रिचर्या

वाग्भट् के अनुसार सायंकाल लघु, हितकारी, भोजन करके, मन का समाधान, स्मरण और पवित्र होकर, शास्ता का स्मरण करके अपनी शय्या पर शयन करना चाहिये। सोने का स्थान पवित्र हो। अकीर्ण (भीड़ वाला) नहीं होना चाहिये। पास में दो तीन आप्त परिचारक होने चाहिये।

सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर होना चाहिये। गुरु की तरफ पाँव नहीं होना चाहिये। रात्रि के पूर्व भाग में तथा अपर (अंतिम) भाग में धर्म का चिंतन करना चाहिये।[104]

वाल्मीकि रामायण में रात्रिचर्या का विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

आसव

अष्टांग संग्रहकार वाग्भट के अनुसार आसव के प्रकार एवं गुण-दोष निम्नलिखित हैं—

1. मधुकृतमघं

छेदी (कफादि विश्लेषी) एवं तीक्ष्ण होता है। प्रमेह, पीनस तथा कास को नष्ट करता है।

2. सुरासव

(जल की जगह सुरा में औषध डालकर बनाया गया) तीक्ष्ण, मद करने वाला,

रस में मधुर, तीक्ष्ण तथा वातघ्न है।

3. मैरेयासव

(आसव एवं सुरा के बन जाने पर इन दोनों का एक पात्र में संधान कर कोद्रव धान्य के संयोग से तैयार) रस में मधुर, वृष्य, सर, सन्तर्पण कारक और गुरु होता है।

4. धय (Wood fordia fruticasa) के पुष्प से बना मैरेय

यह जीर्ण होने पर रुक्ष, रुचिकारक तथा दीपन होता है।

5. द्राक्षासव (दाख-छोटी जाति के अंगूर Vitis Vinifera से बना)

यह मध्यासव के समान किन्तु अत्यन्त अग्नि दीपक होता है।

6. मद्वीकासव

(मुनक्का से बना आसव) एवं इक्षुरसासव माद्वीक के समान गुण वाला होता है।[105]

वाल्मीकि रामायण में लिखा है, 'श्रेष्ठ आसव, पानक रस आदि नाना प्रकार के बहुमूल्य भक्ष्य पदार्थ प्रस्तुत कर दिये।'[106] मैनाक पर्वत के वर्णन में लिखा है, मधुपान के स्थान में रखे हुए सुवर्णमय आसव पात्र, बहुमूल्य बर्तन, सोने के कलश, भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थ आदि ....[107] रावण के महल की भूमि के वर्णन में लिखा है, 'उसमें मधु और आसव के गिरने से वहाँ की भूमि गीली हो रही थी[108] सुन्दरियों की श्वास वायु की सुगन्ध शर्करासव के समान बताते हुए कहा है—'उन सुंदरियों के मुख से निकली हुई स्वभाव से ही सुगन्धित श्वासवायु शर्करानिर्मित आसव की मनोहर गन्ध से युक्त हो और भी सुखद बनकर उस समय रावण की सेवा करती थी।''[109]

रावण की पानभूमि में भी अनेक प्रकार के आसव विद्यमान थे। इनके वर्गीकरण इस प्रकार थे—शर्करासव, माध्वीकासव, पुष्पासव एवं फलासव आदि।[110] शर्करासव शक्कर से तैयार की जाती थी तथा इसी प्रकार माध्वीकासव मधु से, पुष्पासव पुष्पों से तथा फलासव फलों से तैयार की जाती थी। ये सभी कृत्रिम सुराएँ होती थीं। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक सुराएँ भी होती थीं। वे दिव्य सुरा या सुरा के नाम से विख्यात थीं।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर आसव आदि की रामायण कालीन समाज में प्राप्ति एवं उसका उपयोग स्पष्ट ज्ञात हो जाता है तथा यह भी सिद्ध हो जाता है कि आसवादि का प्रचलन राम इत्यादि सात्विक प्रवृत्ति प्रधान लोगों में कम तथा रावणादि तामसिक प्रवृत्ति के लोगों में अधिक था।

मदिरापान

अष्टांग संग्रह के अनुसार सभी प्रकार के मद्य (मदिरा) दीपन (अग्निदीप्तकारक), रोचन (भोजन में अभिलाषा उत्पन्न करने वाला), तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, तुष्टि, पुष्टि, किंचित् मधुर, किंचित तिक्त, कटु, रस एवं विपाक में अम्ल, सर, किंचित् कषाय रस वाला, स्वर, आरोग्य, प्रतिभा, वर्ण (कान्ति) को करने वाला और लघु है।

जिनको निद्रा नहीं आती है या जिनको निद्रा अधिक आती है, उनके लिये पथ्य, पित्त एवं रक्त को दूषित करने वाला है। कृश एवं स्थूल के लिये हित कारक, रुक्ष (स्नेह रहित), सूक्ष्म, स्रोतों का विशोधक तथा वातघ्न एवं श्लेष्मघ्न है। युक्ति पूर्वक (बल, काल, सात्म्य, प्रकृति, वय, मात्रा आदि विचार कर) किया मद्य-पान अमृत के समान है। अन्यथा अयुक्तिपूर्वक मद्य-पान विष तुल्य है।[111]

नव एवं जीर्ण मद्य के गुण

नव मद्य गुरु एवं त्रिदोषकर होता है। जीर्ण मद्य लघु तथा वात श्लेष्मघ्न होता है।[112]

मद्यपान का निषेध

उष्ण उपचार (आहार-विहार) के साथ मद्य सेवन न करें। विरेचन करने के पश्चात् तथा भूखे पेट मद्य न पियें, अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त मृदु, अत्यन्त स्वच्छ, अत्यन्त घन अथवा व्यापन्न (पात्र-देश-काल से दूषित) मद्य नहीं पीना चाहिये।[113]

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर मदिरापान का उल्लेख मिलता है यथा—

राजा दशरथ कैकेई से कहते हैं-ओह! मैं तुझे अत्यन्त सती-साध्वी समझता था, परन्तु तू बड़ी दुष्टा निकली, ठीक उसी तरह जैसे कोई मनुष्य देखने में सुन्दर मदिरा को पीकर पीछे उसके द्वारा किये गये विकार से यह समझ पाता है कि यह विष मिला हुआ था।[113]

मदिरा पान एक बुरा व्यसन है। इसके सेवन करने के बाद मनुष्य अपने सम्पूर्ण विवेक को भूल जाता है और आश्चर्य तो यह है कि इसके बाद रुग्ण वह अपने आपको स्वस्थतर महसूस करने लगता है। वह शारीरिक रूप से अधिक शक्तिशाली तथा मानसिक रूप में चिंता मुक्त हो जाता है। इसीलिये उसकी बार-बार पीने की आदत हो जाती है। 'मधुपान प्रमत्त' कहकर उसके उन्मत्त होने की ओर संकेत किया है। इसीलिये बाली ने कहा है, "मेरे मद्यपान कर मतवाला होने को तुम युद्ध स्थल में उत्साह वृद्धि के लिये वीरों द्वारा किया जाने वाला औषधि विशेष का पान समझो।"[115]

मदिरापान, काम तथा क्रोध का परस्पर सम्बन्ध है। रावण तो इन सभी दुर्गुणों से आक्रान्त था ही। हनुमान जी ने उसे अपने महल में स्फटिक मणि की वेदी पर नीलम के बने पलंगों पर जिनके पाये आदि हाथी दाँत के थे तथा जो स्वर्ण जटित थे, पर सोते देखा। वह अशोक पुष्पों की माला को धारण किये हुए सो रहा था। चारों ओर स्त्रियाँ खड़ी चँवर कर रही थीं। भवन उतम धूपों से सुवासित था।[116] रावण वस्त्राभूषणों से अलंकृत तो था ही, कानों में कुण्डल चमक रहे थे, आँखें लाल, ऐसा प्रतीत होता था कि वह रात्रि में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता मदिरा पीकर आराम कर रहा है।[117]

उसके श्वास में आम, नाग केशर तथा मोलसिरी की सुगन्ध से अनुप्राणित मदिरा तथा अन्न-पान की सुगन्ध आ रही थी। उसके चरणों के आस-पास उसकी

बहुत-सी पत्नियाँ सो रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि वे क्षीण कटि प्रदेश वाली राक्षसराज की स्त्रियाँ मद के प्रभाव तथा रतिक्रीड़ा से थक कर जहाँ तहाँ जो जिस अवस्था में थीं, वहीं सो गयी।[118] कुछ अतृप्त वासना के कारण निद्रावस्था में वैसे ही प्रलाप करने लगीं-कुछ अपने वाद्य-यंत्रों को कसकर सो रही थीं।

मदिरा के मद से मोहित हुई कोई कमल नयनी नारी 'आडम्बर' नामक वाद्य को अपनी भुजाओं के आलिङ्गन से दबाकर प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गयी। इस प्रकार हनुमान जी ने उस स्थान को सभी दृष्टियों से देखा। उपरोक्त प्रसंग से यह स्पष्ट है कि रति-क्रिया के बाद मनुष्य में कितनी थकावट हो जाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में मदिरा पान तथा व्यसन की बुराइयों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

मधुपान

अष्टांग संग्रह के अनुसार मधु नेत्र के लिये हितकर छेदन-शील, प्यास, कफ, विष, हिक्का, रक्त-पित, कुष्ठ प्रमेह, कृमि रोग, छर्दि रोग, श्वास, कास तथा अतिसार को नष्ट करता है। व्रण शोषक संधान रोपण, वात कारक, रुक्ष, रस में कषाय तथा मधुर होता है। मधु शर्करा मधु के समान गुण वाली होती है।[119]

उष्ण-मधु

उष्ण मधु मारक है, धूप आदि में पीड़ित मनुष्य को मधु मारक (विष) है, उष्ण देश में और उष्ण काल में तथा उष्ण पदार्थों के साथ मिला हुआ मधु मारक (विष) है। मधु विष के साथ मिला रहता है क्योंकि मधु विषैले पुष्पों से तथा विषैले भ्रमर और मधुमाक्षिका द्वारा बनता है इसलिये मधु विष युक्त होता है। वमन तथा निरुह वस्ति में उष्ण मधु का प्रयोग निषिद्ध नहीं है क्योंकि मधु बिना पचे ही तुरन्त शरीर से बाहर निकल जाता है।[120]

मधु के गुण तथा मात्रा

गुरु, रुक्ष तथा कषाय एवं शीत होने के कारण अल्पमात्रा में मधु हितकर है।[121]

मधु का उपयोग

अनेक प्रकार के पुष्पों के रस से बने होने के कारण मधु परम योगवाही होता है। इसलिये वृष्य-योगों के साथ सेवन करने से उत्तम वाजीकर होता है।[122]

मधु के भेद

1. भ्रामर 2. पैत्तिक 3. क्षौद्र तथा 4. माक्षिक। भेद से चार प्रकार की मधु होती है। इसमें उत्तरोत्तर तथा पुराना मधु उत्तम होता है। इनमें क्षौद्र एवं माक्षिक नामक मधु का उपयोग करना चाहिये।[123]

आचार्य सुश्रुत ने चार अन्य भेद बताये हैं-

1. छात्र — बर्रे के छत्ते में पाया जाने वाला, रस में मधुर।
2. आर्ध्य — अर्ध्या नामक मक्षिका द्वारा सिंचित।
3. औद्दालक — बाँबी में रहने वाले और अल्प आकार के कपिल वर्ण के

कीड़ों द्वारा संचित मधु।

4. दाल — इन्द्रनील के दल के आकार की सुंदर, सूक्ष्म, मक्षिकाओं द्वारा जो वृक्ष कोटर में निवास करती हैं, संचित मधु भी माने हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी मधुपान का यत्र-तत्र-विविध स्थलों पर उल्लेख किया गया है। यथा-मधु या मदिरा आदि के पीने से मनुष्य अधिक वेगवान हो जाता है तथा मूत्र-मधुरता का विसर्जन किया करता है।[124] राक्षस क्लान्त तथा थकित होकर मधु या मदिरा पिया करते थे जिससे वह स्वस्थ होकर क्रिया करते तथा निश्चिन्त होकर विचरते थे।[125]

मधु पान के अन्य उद्धरण इस प्रकार हैं।

वे रास्ते में आये हुए मृगों एवं हाथियों को पीछे लौटाते, जंगली मधु का पान करते और नाना प्रकार की नदियों को देखते हुए अपने राज्य का स्मरण नहीं करेंगे।[126]

मधु मक्खियों के छत्तों का वर्णन करते हुए राम कहते हैं कि "लक्ष्मण! देखो, यहाँ के एक-एक वृक्ष में मधु मक्खियों द्वारा लगाये गये और पुष्ट किये गये मधु के छत्ते कैसे लटक रहे हैं। इन सबमें एक-एक द्रोण (लगभग 16 सेर) मधु भरा हुआ है।"[127] भरत की सेना का स्वागत करते समय स्त्रीलिङ्ग वृक्ष कहते हैं-'मधु का पान करने वाले लोगों! लो, यह मधु पान कर लो।'[128] भरत की सेना में आये हुए निषाद आदि की तृप्ति के लिये मधु से भरी हुई बावड़िया प्रकट हो गयी थीं।[129]

बाली ने तो मधु को औषधि बताया है तथा कहा है, "यदि तुम युद्ध के लिये निर्भय होकर खड़े हो तो यह न समझो कि यह बाली मधु पीकर मतवाला हो गया है। मेरे इस मद को तुम युद्धस्थल में उत्साह-वृद्धि के लिये वीरों द्वारा किया जाने वाला औषधि-विशेष का पान समझो।"[130]

उपरोक्त सभी उदाहरणों का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में मधु पान का अति विस्तार से वर्णन किया गया है इसके अतिरिक्त और भी अन्य स्थल देखे जा सकते हैं।[131]

तृतीय परिच्छेद
ऋतुचर्या

मानव स्वास्थ्य के लिये आयुर्वेद में ऋतु के अनुकूल आचार, व्यवहार को अधिक महत्व दिया गया है। इसी को आयुर्वेद में ऋतुचर्या कहते हैं। महाकाव्य में भी परम्परा से ऋतु-वर्णन तथा तदनुसार आचार-व्यवहार को भी उतना ही महत्त्व मिला है। तात्पर्य यह है कि महाकाव्य में प्रसंगों का होना परम आवश्यक है और उसी के अन्तर्गत नायक-नायिका का आचरण या प्रतिक्रिया का वर्णन भी इतना ही महत्वपूर्ण तथा आवश्यक है। रामायण में भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

आयुर्वेद मतानुसार वर्ष के बारह महीने में सूर्य की गति के अनुसार-

उत्तरामण तथा दक्षिणायन, दो अयन माने गये हैं। ये ही आयुर्वेद में आदान काल तथा विसर्ग काल के नाम से पुकारे गये हैं। इसी के अनुसार एक अयन में तीन ऋतुएँ हुआ करती हैं और वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं माघ-फागुन में शिशिर, चैत्र-वैशाख में बसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद में वर्षा, आश्विन-कार्तिक में शरद्, मार्ग-शीर्ष-पौष में हेमन्त। इसी प्रकार पूर्व तीन आदान-प्रदान काल तथा अन्त के तीन विसर्ग काल कहलाते हैं। विसर्ग मनुष्यों का बल-दाता है तथा आदान काल में अग्निमाँद्य आदि रहता है।

रामायण में ऋतुचर्या का उल्लेख संवाद शैली में किया गया है। राम तथा लक्ष्मण के संवाद प्रमुख हैं। काव्य-परम्परा के अनुसार श्री राम का विरह-वर्णन इसमें मुख्य है। ऋतु के अनुसार आचार व व्यवहार का वर्णन या विरहों के कारण ऋतुओं के प्रति असहिष्णुता ही इसमें मुख्य है। अपने प्रिय भरत या सीता का स्मरण करते हुए श्री राम या लक्ष्मण ऋतुओं के प्रति मनोभावों को व्यक्त करते हैं।

रामायण में प्राप्त षड्ऋतु वर्णन की समीक्षा निम्न प्रकार की जा रही है–

हेमन्तऋतुचर्या

चर्या शब्द चर् धातु से बनता है, चर् धातु का अर्थ है गति तथा भक्षण, इसलिये यहाँ चर्या शब्द से अभिप्रायः गति अर्थ में विहार तथा भक्षण अर्थ में आहार है। अन्य लोग शास्त्र नियमानुकूल आचार को चर्या कहते हैं। 'ऋतु' काल विभाग को कहते हैं। अतः ऋतुओं में अथवा ऋतुओं की चर्या ऋतुचर्या कहीं जाती है।[1]

हेमन्त ऋतु के लक्षण

हेमन्त ऋतु में दिशाएँ धूम के समान धूम्र (मलिन) तथा रज (धूल) से मन्द हो जाती हैं। तुषार (कोहरे) से दिशाएँ एवं सूर्यमण्डल आविल (मलिन) हो जाता है। उत्तरी वायु शीतलता से रोम हर्ष उत्पन्न करती है। इस ऋतु में लोध्र, प्रियङ्गु, पुन्नाग तथा लवली के सुंदर फूल खिलते हैं। हाथी, अज, महिष, वाजि, वायस तथा सूकर मदोन्मत्त हो जाते हैं। नदियाँ हिम से आच्छन्न हो जाती हैं। मछलियाँ तथा जलचर पक्षी छिप जाते हैं। नदियों के जल में से वाष्प निकलता है। कूप का जल उष्ण हो जाता है।[2]

हेमन्त काल का शरीर पर प्रभाव

इस शीत ऋतु में शरीर की ऊष्मा शीतल वायु से आहत होकर शरीर के अन्दर प्रवेश करती है, जो जठर में पिण्डी भूत अग्नि को प्रबल कर देता है। प्रायः विसर्ग काल में बलवानों की जठराग्नि स्वभाव आदि में गुरु, आहार को पचाने में समर्थ होती है, उस समय अग्नि की युक्ति के लिये बृहण अन्न-पान का सेवन करना चाहिये। ऐसा न करने से ईधन रूपी अन्नपान नहीं मिलने से जठराग्नि नष्ट हो जाती है अथवा अधिक उदीर्ण (तीक्ष्ण) होने के कारण शरीर के धातुओं को भी पचाने लगती है, धातुओं का क्षय होने पर तेज के सहचर वायु शीतकाल में शीत से विशेष कुपित हो जाता है।[3]

हेमन्त ऋतु में आहार-विहार

शीतकाल में स्निग्ध, मधुर, अम्ल, लवण रसों को सेवन करना चाहिये। विलेषय (बिलों में रहने वाले गोधा आदि), औदक (कछुआ-मछली) आदि, आनूप (महिष आदि), प्रसह (बाज, कौआ आदि) प्राणियों का भुना हुआ मांस, गुड़ एवं पीठी से बनाई वस्तु, नूतन मद्य, उड़द, गन्ने का रस, दुग्ध से बनाई वस्तुएँ, वसा, तैल तथा नये चावलों का सेवन करना चाहिये। व्यायाम, उद्वर्तन, अभ्यङ्ग, स्वेदन, धूम्रपान, अंजन तथा आतप (धूप) का सेवन करना चाहिये।[4] शरीर शुद्धि में उष्ण जल का प्रयोग करना चाहिये। गर्भगृह (भीतरी हिस्से) में रहना चाहिये। शय्या के पास अंगीठी रखकर कुथ तथा कम्बल से सुंदर शय्या पर कुंकुम (केशर) अथवा अगरु का घना लेप करके हल्के किन्तु उष्ण धूप से धूपित वस्त्रों को ओढ़कर समय से सो जाना चाहिये। पुष्ट अङ्ग वाली स्त्री का संसर्ग शीतल वायु को निवारित (नष्ट) करता है।[5]

महर्षि चरक ने कुछ आहार-विहार का इस ऋतु में निषेध किया है।[6]

वाल्मीकि रामायण में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है। कवि के शब्दों में शरद् ऋतु बीत गयी और प्रिय हेमन्त का प्रारम्भ हुआ। हेमन्त में श्री राम की चर्या का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—प्रातः श्री राम गोदावरी नदी के तट पर स्नान करने गये, हाथ में कलश लिये सीता व लक्ष्मण उनके साथ थे। इस प्रातः शब्द को स्पष्ट करते हुए आगे कवि ने लक्ष्मण के मुख से यह शब्द कहलवाये, "निश्चय ही भरत भी इसी बेला में स्नान के लिये उद्यत हो मंत्री एवं प्रजाजनों के साथ प्रतिदिन सरयू नदी के तट पर जाते होंगे। अत्यन्त सुख में पले हुए सुकुमार भरत जाड़े का कष्ट सहते हुए रात के पिछले प्रहर में कैसे सरयू नदी के जल में डुबकी लगाते होंगे।"[7] इसके बाद ही जब सूर्योदय हुआ तब तीनों ही निरुपाय व्यक्ति भगवान सूर्य का उपस्थान करके अन्य देवताओं की स्तुति करने लगे।[8] लक्ष्मण ने फिर कहा—भैया इस ऋतु में अधिक ठंडक या पाले के कारण लोगों का शरीर रूखा हो जाता है। जल अधिक शीतल होने के कारण पीने योग्य भी नहीं रहता है और आग बड़ी प्रिय लगती है।[9] इस ऋतु में प्रायः सभी जनपद के निवासियों की उन प्राप्ति-विषयक कामनाएँ, प्रचुर रूप में पूर्ण हो जाती हैं। गो रस की भी बहुतायत होती है। सूर्य देव इन दिनों यम सेवित दक्षिण दिशा का दृढ़तापूर्ण सेवन करने लगते हैं।[10] कुहासों से फैलती हुई और ढकी हुई किरणों से उपलक्षित होने वाले दूरोदित सूर्य चन्द्रमा के समान दिखाई देते हैं। पूर्वान्ह में तो इनका बल जान ही नहीं पड़ता, मध्यान्ह में इसके स्पर्श से सुख अनुभव होता है।[11] मध्यान्ह काल में धूप का स्पर्श होने से हेमन्त के सुखमय दिन अत्यन्त सुख से इधर-उधर घूमने विचरने योग्य होते हैं। इन दिनों सुसेव्य होने के कारण सूर्य-देव सौभाग्यशाली जान पड़ते हैं। परन्तु सेवन योग्य न होने के कारण छाँह तथा जल अभागे प्रतीत होते हैं।[12] आजकल के दिन ऐसे हैं कि सूर्य की किरणों का स्पर्श कोमल जान पड़ता है। कुहासे अधिक पड़ते हैं, सर्दी सबल होती है। कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगता

है, साथ ही ठंडी हवा भी चलती है।[13] चन्द्रमा का सौभग्य सूर्य देव में चला जाता है। चन्द्रमण्डल हिमकणों से ढककर धूमिल हो जाता है।[14] पूर्णिमा की चाँदनी रात तुहिन बिन्दुओं से मलिन दिखाई देती है।[15] पछुआ पवन जिसका स्पर्श स्वभाव से ही शीतल है, हिम कणों से व्याप्त हो जाने के कारण दुगनी सर्दी लेकर वेग से बढ़ रही है।[16] ओस कण पड़ जाने से घास भीगी हुई सी जान पड़ती है। वह धूप का प्रवेश होने पर अद्भुत शोभा पा रही है।[17]

इस ऋतु में रातें बड़ी होने लगती हैं। इसमें सर्दी बहुत बढ़ जाती है। खुले आकाश के नीचे कोई नहीं सोता। पौष की ये रातें हिमपात के कारण धूसर प्रतीत होती हैं।[18] हिमालय पर्वत तो स्वभाव से ही घनीभूत हिम के खजाने से भरा-पूरा होता है परन्तु इस समय सूर्य-देव भी दक्षिणायन में चले जाने के कारण उससे दूर हो गये हैं अतः अब अधिक हिम संचय से सम्पन्न होकर हिमवान गिरि स्पष्ट ही अपने नाम को सार्थक कर रहा है।[19]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में हेमन्त ऋतु चर्या का उल्लेख प्राप्त होता है।

शिशिर ऋतुचर्या

शिशिर ऋतु में मेघ, वायु तथा वर्षा के कारण शीत अधिक होता है तथा आदान काल होने से रुक्षता उत्पन्न होती है, इसलिये इस ऋतु में हेमन्त ऋतु की चर्या का सेवन कुछ अधिक करना चाहिये।[20]

वाल्मीकि रामायण में शिशिर ऋतु चर्या का प्रथक् से उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। हेमन्तऋतुचर्या में ही इसका भी समावेश मान लेना चाहिये।

वसन्त ऋतुचर्या

वसन्त ऋतु का लक्षण बताते हुए वाग्भट ने कहा है--वसन्त ऋतु में दक्षिण दिशा की वायु बहती है, सूर्य की किरणें लोहित (लाल) होती हैं, वृक्षों में नव प्रवाल तथा नई त्वचा आ जाते हैं। ककुभ (दिशा) अमला (निर्मल) हो जाती हैं। किंशुक, अशोक तथा आम्र से वन पंक्तियाँ शोभित होती हैं अर्थात् उनमें पुष्प आने लगते हैं और दिशाएँ कोयल तथा भ्रमरों के आलापों के मधुर कोलाहल से व्याप्त हो जाते हैं, इस ऋतु में शिशिर ऋतु में संचित श्लेष्मा सूर्य की किरणों से पिघलकर अग्नि को नष्ट करता हुआ बहुत से रोगों को उत्पन्न कर देता है।[21]

वसन्त ऋतु में आहार-विहार

अतः इस ऋतु में तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण धूम्रपान, तीक्ष्ण-गण्डूष तथा तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग करना चाहिये। व्यायाम, उद्वर्तन, क्षौद्र, यव, गोधूम तथा जांगल पशु-पक्षियों का मांस सेवन करना चाहिये। सुहृदजनों की संगति, उद्यान-गोष्ठी तथा मनोहर युवतियों (रति-क्रीड़ा) का सेवन करना चाहिये। स्नान करके अलंकारों से शोभित होकर स्त्रग्वी फूलों की माला को धारण करना चाहिये।[22] चन्दन एवं अगरु का लेप शरीर पर करें। सहकार (आम) एवं उत्पल के चित्रों से अंकित विचित्र पात्रों में निर्गद आसव अरिष्ट, सीधु (इक्षुरस से बना मद्य), माद्वीक (द्राक्षासुरा) तथा माधव (महुआ की सुरा) का पान करें। पकाया हुआ जल या मोथा

एवं शुण्डी का पका पानी या साराम्भ से परिपक्व जल या मधु मिश्रित जल पीवें।

अपथ्य

इस ऋतु में गुरु एवं शीतल पदार्थ, दिवा-स्वप्न, स्निग्ध पदार्थ और मधुर तथा अम्ल रस वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।[23]

वाल्मीकि ने वसन्त ऋतु का उल्लेख करते हुए ऋतु शृंगार का वर्णन तो किया ही है साथ ही पक्षियों के कलरव, कूजन तथा रतिक्रीड़ा के पक्ष को भी स्पष्ट किया है। श्री राम इस ऋतु में कामोद्दीपक वातावरण को देखकर अनंग वेदना को उद्‌दीप्त अनुभव करने लगे।[24] वसन्त ऋतु में चलने वाला शीतल तथा सुगन्धित मलयानिल विरही—श्री राम को कामाग्नि में जला डालता रहा है।[25] इस सम्पूर्ण प्रसंग में चैत्रमास (पुष्प-मास) का वर्णन आया है। यह वसन्त अपने सभी उपायों से श्री राम की कामाग्नि को तो उद्‌दीप्त करता ही है साथ ही श्री राम को यह भी शंका है कि जहाँ सीता है वहाँ भी कहीं वसन्त गया हो तो उसकी क्या हालत होगी क्योंकि वह वहाँ परतन्त्र है।[26] वह सभी वातावरण जो कि श्री राम को सीता की उपस्थिति में अच्छा लगता था, वही आज कटु लग रहा है। वायु का प्रवहण, चन्दनों, कमलों, अन्य पुष्पों, वृक्षों, लताओं तथा पहाड़ी आदि के बीच में होकर चलता हुआ श्री राम के लिये आनन्ददायक नहीं है, कामोत्तेजक है जो कि सीता की अनुपस्थिति में कटु लगता है। यहाँ तक कि सीता के वियोग में श्री राम अपने प्राण त्याग करने तक के लिये तत्पर हो जाते हैं। यह सब आचरण श्री राम के लिये इस ऋतु में होना आयुर्वेद मत से स्वाभाविक था।

ग्रीष्मऋतु चर्या

इस ऋतु में सूर्य तेज किरणों वाला, अतसी (अलसी) के पुष्प के समान तथा दावाग्नि (वनाग्नि) की भाँति चमकता है। दिशाएँ और भूमि जलती है। नैऋत (दक्षिण-पश्चिम) कोण से बहने वाली वायु सुखदायक होती है। उष्ण वायु, धूप एवं स्वेद के कारण प्राणी ज्वर की भाँति तप्त हो जाता है। ताप से पीड़ित तुंग मातुंग (हाथी) तथा महिषों द्वारा नदियाँ मैली कर दी जाती हैं। अंगारों के समान सूर्य की किरणों से नदियों का जल सुखा दिया जाता है। इसलिये नदियों के किनारे विस्तृत हो जाते हैं। वृक्ष गर्मी के कारण छायाहीन हो जाते हैं, इनके पते जीर्ण होकर गिर जाते हैं, उनकी छाल सूख जाती है एवं उन पर फैली लतायें भी सूख जाती हैं।[27]

ग्रीष्म ऋतु के आहार-विहार

क्योंकि इस ऋतु में सूर्य जगत् के स्नेहों का आदान (ग्रहण) अधिक मात्रा में कर लेता है, इसलिये व्यायाम, आतप (धूप) कटु, अम्ल, लवण रस वाले एवं उष्ण पदार्थों का सेवन त्याग देना चाहिये। मद्य का सेवन नहीं करना चाहिये। यदि पीना भी हो तो थोड़ी मात्रा में पीवें अथवा उसमें बहुत सा जल मिलाकर सेवन करें। अन्यथा वह मद्य शोष (कृशता), शैथिल्य, दाह एवं मोह को पैदा कर देता है। मिट्टी के नूतन भाण्डों में रखे गये, हृदय को शक्ति देने वाले एवं सुगन्धित शर्करा मिश्रित शीतल पानकं एवं मन्थ (सतू) का घोल पियें। मधुर-शीत-द्रव (पतला

अन्न), जाङ्गल पशु-पक्षी, हरिण का मांस, शालि चावल, दुग्ध, घृत, द्राक्षा, नारियल का जल तथा शर्करा का सेवन करना चाहिये। ताड़ के पंखों की हवा, कमल एवं उत्पल की माला तथा मृणाल के वलय पहनी हुई कान्ता तथा शरीर पर चन्दन का लेप किये हुए तन्वी का सेवन करना चाहिये। दिन में यंत्र के द्वारा पानी जहाँ पड़ रहा हो, ऐसे धारा गृह में सोना चाहिये। सर (तालाब), वापी, सरित् (नदी), शीतल जंगल तथा सुगन्धित हल्के वस्त्रों का सेवन करना चाहिये। रात्रि में आकाश के नीचे सुगन्धित पुष्पों की शय्या पर सोना चाहिये। कपूर तथा चन्दन के घोल से शरीर को आद्र करके कभी-कभी मैथुन करना चाहिये। प्रतिदिन नहीं।[28]

वाल्मीकि रामायण में भी ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया गया है। श्री राम पंपा सरोवर का निरूपण करत हुए लक्ष्मण से कहते हैं—सुमित्रा नन्दन! यह पंपा कैसी शोभा पा रही है ? इसका जल वैदूर्यमणि के समान स्वच्छ एवं श्याम है। इसमें बहुत से पद्म और उत्पल खिले हुए हैं। तट पर उत्तेपन्न हुए नाना प्रकार के वृक्षों की शोभा और भी बढ़ गयी है।[29] तालाब में उत्पल, कमल, मत्स्यों तथा पास के वन में नाना प्रकार के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों का उल्लेख करते हुए कवि ने उसके सौन्दर्य का वर्णन किया है। श्री राम ने पुनः कहा- 'यद्यपि मैं शोक से पीड़ित हूँ तो भी मुझे यह पम्पा बड़ी सुहावनी लग रही है। इसके निकटवर्ती वन बड़े विचित्र दिखाई देते हैं। यह नाना प्रकार के फूलों से व्याप्त हैं। इसका जल बहुत शीतल है और यह बहुत सुखदायिनी प्रतीत होती है।[30] नई-नई घासों से ढ़का हुआ यह स्थान अपनी नीली-पीली आभा के कारण अधिक शोभा पा रहा है। यहाँ वृक्षों के नाना प्रकार के पुष्प सब ओर बिखरे हुए हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है मानो यहाँ बहुत से गलीचे बिछा दिये गये हैं।[31] सुमित्रा नन्दन ! इस समय मन्द-मन्द सुखदायिनी हवा चल रही है, जिससे कामना का उद्दीपन हो रहा है। यह चैत्र का महीना है। वृक्षों में फूल और फल लग गये हैं और सब ओर मनोहर सुगन्ध छा रही है।[32] मलय चन्दन का स्पर्श कर बहने वाली यह शीतल वायु शरीर से छू जाने पर कितनी सुखद जान पड़ती है। यह थकावट दूर करती हुई तथा सुगन्ध फैला रही है।[33]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में ग्रीष्म ऋतु का विस्तार से वर्णन किया गया है।

वर्षा ऋतु चर्या

वर्षाऋतु का लक्षण बताते हुए अष्टांग हृदयकार ने कहा है—वर्षा ऋतु में वारुण वायु (मानसून) बहने लगती है, जिससे सब प्रकार का शस्य उत्पन्न होता है, आकाश तोड़े हुए इन्द्रनील नामक रत्न के समान नीले बादलों के समूह से आच्छादित एवं मलिन होता है, वर्षा के नये जल के समूह से दीर्घिका में सीढ़ियों की पंक्ति डूब जाती हैं, वर्षा के पानी के अत्यधिक आघात से कमल खिल जाते हैं, नदियाँ समुद्र के सदृश दिखाई पड़ती हैं। जीमूत (बादल) मन्द-मन्द गर्जने लगते हैं। इन्द्रगोप (वीर बहूटी कृमि), इन्द्र धनुष और विद्युत चमकने लगती है। भूमि पर चारों ओर श्यामल तृण (हरी घास) शिलहिन (छत्रक) तथा कुटज के फूल खिलते हैं।[34]

वर्षाऋतु के आहार-विहार

गत आदान काल के प्रभाव से शरीर दुर्बल एवं जठराग्नि मंद होती है पुनः वृष्टि हो जाने से भूमि से वाष्प निकलने से पिये गये जल का अम्ल विपाक होने से तथा दूषित वातादि के प्रभाव से जठराग्नि और मन्द हो जाती है। वमन और विरेचन से शरीर का संशोधन करके बस्ति कर्म का सेवन करें। पुराने शालि चावल, गेहूँ एवं यव को कृतयूष के साथ लेना चाहिये। निर्गदं (दोष रहित) मदिरा, अरिष्ट, मद्वीक, या थोड़ा पानी पियें। दिव्य (आकाश का जल) पकाकर, कूप का जल, चौण्ड्य का जल अथवा सारस का जल पीवें। जिस दिन वर्षा हो रही हो, वायु बह रही हो उस दिन क्लेद नाशक (रूखा-सूखा) तथा वात-नाशक भोजन करना चाहिये। वर्षा ऋतु में परिशुष्क (सूखा) हल्का, स्निग्ध, उष्ण, अम्ल एवं लवण रसयुक्त भोजन करना चाहिये। प्रायः सभी अन्न-पान मधु-मिश्रित एवं काल योग्य द्रव्यों से संस्कृत होना चाहिये। सरीसृप, भू-वाष्प, शीत-वर्षा की फुहार तथा दंस, मशक, एवं उन्दुर (चूहों) से रहित अंगीठी से गर्म किये गये भवन में रहना चाहिये। प्रघर्षण, उद्वर्तन, स्नान, धूम्रपान तथा सुगन्धित अगरु (Aquilaria agallocha Roxb) का लेप करें। यात्रा करनी हो तो अच्छे तरह की हाथी आदि की सवारी पर बैठकर करनी चाहिये। चित्र-विचित्र पुष्पों की माला तथा सुन्दर वस्त्र से विभूषित होकर रहें।

निषेध

नदियों का जल, मन्थ (सत्तू), दिन में शयन, अति द्रव, अधिक मैथुन, तुषार, पैदल चलना, व्यायाम, तथा सूर्य की किरणों का सेवन त्याग देना चाहिये।[35]

प्रायः सभी अन्न-पान मधु-मिश्रित करने का निर्देश किया गया है। इस ऋतु में वायु का प्रकोप होता है। मधु का गुण भी रुक्ष, लघु, शीत, कषाय तथा अल्पवातल होता है, ऐसी स्थिति में इनका सेवन कैसा होगा इस विषय में चक्रपाणि ने कहा है—"क्षौद्रं च यद्यपिं वात प्रकोपि, तथापि वार्षिक क्लेद शमनार्थं स्वल्पमात्राया क्षौद्रान्वितपदेन विहितम् ।'

वाल्मीकि रामायण में वर्षाऋतु का वर्णन अति विस्तार से प्राप्त होता है- श्री राम वर्षा का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं— "सुमित्रा नन्दन ! अब यह जल की प्राप्ति कराने वाला वह प्रसिद्ध वर्षा काल आ गया। देखो, पर्वत के समान प्रतीत होने वाले मेघों से आकाश मण्डल आच्छन्न हो गया है।[36] यह आकाश स्वरूपा तरुणी सूर्य की किरणों द्वारा समुद्रों का रस पीकर कार्तिक आदि नौ मासों तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जल रूपी रसायन को जन्म दे रही है।[37] रसायन सेवन से जिस प्रकार मानव पुष्ट होता है उसी प्रकार पृथ्वी तथा वनस्पतियाँ वर्षा जल रूपी रसायन को प्राप्त कर पुष्ट होकर वृद्धि को प्राप्त होती हैं। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी कीट आदि पैदा होते हैं, मदमत होते हैं और आनन्द में विभोर होकर वन में बोलते तथा नाचते हैं। यह समय अधिकतर मानव के विश्राम का समय होता है। श्री राम ने यहाँ सुग्रीव के विश्राम की भी चर्चा की है।[38] आगे वायु की सुगन्ध, बूंदों की गिरावट, बादलों के रंग तथा गर्जन, नदियों

के प्रवहरण, तालाब, कूप आदि के आप्लावन का भी कवि ने श्री राम के मुख से उल्लेख कराया है। इस ऋतु में जलाभिषेक, युद्ध यात्राओं के स्थगन, प्रस्थित सेनाओं का पड़ाव आदि का उल्लेख करते हुए श्री राम ने इसे बल-संग्रह-काल बताया है। वेदों के स्वाध्याय की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणों के लिये उपक्रम का समय उपस्थित हुआ है। साम गान करने वाले विद्वानों के स्वाध्याय का भी यही समय है।[39] इस चातुर्मास के आरम्भ होने से पूर्व आवश्यक वस्तुओं के संग्रह पर भी श्री राम ने जोर दिया है और भरत का उदाहरण देते हुए यह अनुमान लगाया है कि भरत ने चार महीने के लिये आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर गत आषाढ़ की पूर्णिमा को निश्चय ही किसी उतम व्रत की दीक्षा ली होगी।[40]

इस प्रकार रामायणगत वर्षा ऋतुचर्या का एक दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है जो आयुर्वेद द्वारा प्रमाणित है।

शरद ऋतु चर्या

शरद् ऋतु में आकाश सफेद बादलों वाला, पृथ्वी थोड़ा-थोड़ा पङ्क वाली होती है। कास, सप्तपर्ण तथा कुमुद खिलने लगते हैं, शालि धान्य की खेती से पृथ्वी सुशोभित होती है। वभ्रु वर्ण का सूर्य होता है। दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो जाती हैं, उनमें क्रौञ्च उड़ते हैं। वर्षा एवं शीत का अनुभव करने वाले अङ्गों में सहसा ही सूर्य की किरणों से तपने पर जो पित्त वर्षा एवं शीत से संचित था, वह अब कुपित हो जाता है।[41]

शरद् ऋतु के आहार-विहार

इस ऋतु में तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत, विरेचन तथा रक्त मोक्षण प्रशस्त है। प्रतिदिन शीतल, हल्का अन्न-पान तथा कषाय मधुर और तिक्त रस वाले द्रव्यों का सेवन पथ्य है। भूख लगने पर शालि चावल, षष्टिक (साठी) चावल, गेहूँ, यव, मूंग शर्करा, मधु, परवल, आमलकी, द्राक्षा तथा जांगल प्राणियों का मांस सेवन करना चाहिये।

जल जो दिन में सूर्य की किरणों से सन्तप्त हो जाता हो रात्रि में चन्द्र किरणों से शीतल हो जाता हो, अगस्त नक्षत्र से निर्विष हो, निर्मल हो, पवित्र हो तथा काल के प्रभाव से पक्व (शुद्ध) हो गया हो, वह जल पीने में अमृत के समान होता है।

जिन झीलों में हंस समूह, पंखों को चलाते हुए तैर रहे हों, भ्रमरों की पंक्तियाँ जहाँ मंडरा रही हों, ऐसे कमल युक्त सेवनीय तालाबों में तैरना चाहिये। हल्के तथा शुद्धवस्त्रों को पहन कर तथा फूलों की माला गले में डालकर, शरीर पर उशीर का लेप लगाकर प्रदोषकाल में छत पर बैठकर चन्द्र किरणों का सेवन करें।

निषेध

तृप्ति, दधि, आतप, क्षार, वसा, तैल, पूर्वी-वायु, तीक्ष्ण मद्य, दिन में शयन तथा ओस का सेवन त्याग देना चाहिये।[42]

वाल्मीकि रामायण में भी शरद् ऋतु का वर्णन कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है- श्री राम ने देखा, आकाश श्वेत वर्ण का हो रहा है, चन्द्र मण्डल स्वच्छ दिखायी देता है तथा शरद ऋतु की रजनी के अङ्गों पर चाँदनी का अङ्गराग लगा हुआ है। यह सब देखकर वे सीता से मिलने के लिये व्याकुल हो उठे।[43] शरद् ऋतु का वर्णन

करते हुए कवि ने कहा—सूर्य, चन्द्र, तारा, जलाशय तथा पृथ्वी स्वच्छ है और शुभ हैं श्री राम सुनहरे रंग की धातुओं से विभूषित पर्वत-शिखर पर बैठे हुए शरद् काल के स्वच्छ आकाश की ओर दृष्टि-पात कर रहे हैं।[44] लक्ष्मण के अनुसार यह ऋतु योग का सहारा लेते हुए मन को एकाग्र करने की है। इससे सभी चिंता दूर हो जाती हैं।[45] इस समय में कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये, मन को प्रसन्न रखना चाहिये तथा चित्त की एकाग्रता को कायम रखना चाहिये। इससे पराक्रम की वृद्धि होगी तथा शक्ति का गुणन होता है।[46] चन्द्र किरणों का पहाड़ों पर पड़ना, सूर्य, चन्द्र, तारों की प्रभा द्वारा शोभा प्रद बनाना, दिशाओं का अंधकार दूर होकर प्रकाशित होना कमलों को स्पर्श कर शीतल मंद वायु का सुगन्धित होकर बहना, धरती के कीचड़ का सूख जाना आदि से दैहिक तथा मानसिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण का उल्लेख रामायण में है। शोभा शाली चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श ही से होने वाले हर्ष के कारण तारे किंचित प्रकाशित हो रहे हैं। चाँदनी की चादर ओढ़े हुए शरद् काल की यह रात्रि श्वेत ढ़के हुए अंग वाली एक सुन्दरी नारी के समान शोभा पा रही है। उदित चन्द्रमा ही उनका सौम्य मुख है और तारे उनकी खुली हुई मनोहर आँखें।[47] इस ऋतु में जल स्वच्छ हो गया है। धान की खेती पक गयी है। वायु मंद गति से चल रही है और चन्द्रमा निर्मल दिखाई दे रहा है।[48] इस ऋतु में विजय के इच्छुक राजाओं के द्वारा युद्ध के निमित उद्योग प्रारम्भ हो जाते हैं। अर्थात् कर्म करने का यह समय है। कूप तडागों का जल भी नितर कर 'हंसोदक' बन चुका है।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण आयुर्वेद की ऋतुचर्या की कसौटी पर खरा उतरता है। रामायण में ऋतु चर्या का वर्णन इस प्रकार सर्वथा आयुर्वेदानुकूल है। अवश्य वह प्रसंगानुसार काव्य धर्म के अनुकूल, लोक-व्यवहार के समीप, साहित्यिक रूप से चित्रित किया गया है। आयुर्वेदीय प्रथा के अनुरूप इसका विवरण नहीं किया गया फिर भी यह सब आयुर्वेद विरोधी नहीं है। निश्चय ही यह सब जो कुछ भी है वह आयुर्वेदीय दृष्टि से भी संतोषप्रद है तथा प्रशंसनीय है।

इस प्रकार रामायण में वर्णित शरीर-शुद्धि एवं वैयक्तिक स्वस्थवृत्त की सामग्री यथा दिनचर्या, सामाजिक स्वस्थवृत्त, सद्वृत्त या आचार-परक स्वस्थवृत्त तथा तत्कालीन भक्ष्याभक्ष्य विचार, भोजनोत्तर कर्म, माध्यनिन्दनीय कर्म, सन्ध्याकाल में निषिद्ध कर्म, रात्रि-भोजन, रात्रिचर्या एवं विविध ऋतुओं के अनुसार वर्णित चर्याओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

ऋतुओं के अनुसार प्राकृतिक स्थितिः

ऋतुएँ	भारतीय मास	अंग्रेजी मास	सूर्य बल	चन्द्र बल	भूमण्डल का स्वभाव	द्रव्यों में रसाभिवृद्धि	प्राणियों का बल	दोष संचय	दोष प्रकोप	दोष शमन
शिशिर (Late- Winter)	माघ फाल्गुन	जनवरी-फरवरी फरवरी-मार्च	पूर्ण	क्षीण	रुक्ष	तिक्त	श्रेष्ठ	कफ	—	—
बसन्त (Spring)	चैत्र वैशाख	मार्च-अप्रैल अप्रैल-मई	पूर्णतर	क्षीणतर	रुक्षतर	कषाय	मध्यबल	—	कफ	—
ग्रीष्म (Summer)	ज्येष्ठ आषाढ़	मई-जून जून-जुलाई	पूर्णतम	क्षीणतम	रुक्षतम	कटु	अल्पबल	वात	—	कफ
वर्षा (Rains)	श्रावण भाद्रपद	जुलाई-अगस्त अगस्त-सितम्बर	क्षीण	पूर्ण	स्निग्धर	अम्ल	अल्पबल	पित्त	वात	—
शरद् (Autumn)	आश्विन कार्तिक	सितम्बर-अक्टूबर अक्टूबर-नवम्बर	क्षीणतर	पूर्णतर	स्निधत	लवण	मध्यबल	—	पित्त	वात
हेमन्त (Early	मार्ग शीर्ष पौष	नवम्बर-दिसम्बर दिसम्बर-जनवरी	क्षीरतम	पूर्णतम	स्निग्धतम	मधु	श्रेष्ठबल	—	—	पित्त

सदंर्भ

प्रथम परिच्छेद

1. समदोषः समाग्निश्च समधातुमल क्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। सु.सू. 14/48
2. विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञ कमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।। च.सू. 9/4
3. दिनचर्या-प्रतिदिनं कर्तव्या चर्या दिनचर्या। (इन्दु) अ.सं. 3/2
4. दिने-दिने चर्या, दिनस्य वा चर्या दिनचर्या। (चरणं चर्या) अ.सं. 3/2
5. ततः प्रभाते विमले कृत पूर्वाह्निकक्रियः।
अभिचक्राम, काकुत्स्थो दर्शनं पौरकार्यवित्।। उ. 60/2
6. ब्राह्मे मुहूर्ते उतिष्ठज्जीर्णाजीर्णे निरूपयन्।
रक्षार्थमायुषः स्वस्थो ....। अ.सं. 3/3
7. ब्रह्मे मुहूर्ते बुद्धयेत स्वस्थयो रक्षार्थमायुषः।
तत्र सर्वाधशान्तयर्थंस्मरेच्च मधुसूदनम्। अं.सं. अध्याय 3
8. उद्यन् आदित्यः रश्मिभिः शीर्ष्णोरोगम् अनिनीशत।। अथर्ववेद 9/8
9. ततः प्रभाते विमले विश्वामित्रं तपोधनम्।
उवाच राघवो वाक्यं कृताह्निकमरिंदमः।। बा. 45/5
10. तः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः।
विश्वामित्रं महात्मानमा जुहाव सराघवम्।। बा. 66/1
11. बा. 73/7, 8
12. उ. 60/2
13. .... जात वेगः समुत्सृजेत्।। अ.सं. 3/3
उदङ्गमुखो मूत्रशकृद् दक्षिणाभिमुखो निशि।
वाचं नियम्य प्रयतः संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः।। अ.सं. 3/4
14. प्रवृर्तयेत्प्रचलितं न तु यत्नादुदीरयेत्।
नामेध्यमार्गमृद् भस्म गोस्थाना कीर्णगोमये।। अ.सं. 3/5
15. पुरान्तिकाग्नि वल्मीकरम्योत्कृष्टचितिद्रुमे।
न नारीपूज्यगोऽर्केन्दुवाय्वन्नाग्नि जलं प्रति।। अ.सं. 3/6
न चातिरस्कृत्यं महीं भयाशक्त्योस्तु कामतः। अ.सं. 3/7
16. न वेगितोऽन्यकार्यः स्यात्राजित्वा साध्यमामयम्।। अ.सं. 3/7
17. निः शल्यादुष्टमृत्पिण्डी परिमृष्टमलायनः। अभ्युद्धताभिः शुचिभिरद्भिर्मृद्भिमश्च योजयेत्।। अ.सं. 3/8
18. बा. 45/5, 66/1, 73/7.8
19. स्पृष्ट्वा धातून्मलानश्रु वसा केश नखांश्च्युतान्।। अ.सं. 3/9
स्नात्वाभोक्तुमना भुक्त्वा सुप्त्वा क्षुत्वा सुरार्चने।
रथ्यामाक्रम्य चाचामेदुपविष्ट उदङ्गमुखः। अ.सं. 3/10

प्राङ्मुखो वा विविक्तस्थो न बहिर्जानु नान्यदृक्।
20. अजल्पन्नुतरासंगी स्वच्छैरङ्गुष्ठमूलगैः। अ.सं. 3/11
नोद्धतैर्नानतो नोर्ध्वं नाग्निपक्वैन पूतिभिः।
न फेन बुद्बुद क्षारैर्नैकहस्तार्पितै जलैः।। अ.सं. 3/12
नार्देकपाणिर्नामिध्य हस्तपादो न शब्दवत्। अ.स. 3/12 1/2
21. तत्रोदकमुपस्पृश्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
आश्रमम् प्रविशद् रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः।। उ. 82/2
22. वटासनार्क खदिरकरंज करवीरजम्।। अ.सं. 3/13
सर्जारिमेदापामार्ग मालती ककुभोद्भवम्।
कषायतिक्तकटुकं मूलमन्यदपीदृशम्।। अ.सं. 3/14
23. विज्ञातवृक्षं क्षुण्णाग्रसमृज्वग्रन्थि सुभूमिजम्।
कनीन्यग्रसस्थौल्यं सुकूर्चं द्वादशाङ्गुलम।। अ.सं. 3/15
प्रातुर्भक्त्वा च यतवाग्भक्षयेद्दन्तधावनम्।
व्याप्यत्रिवर्गत्रितयक्षौद्राक्तेन च घर्षयेत्।। अ.सं. 3/16
शनैस्तेन ततो दन्तान्दन्तमांसान्यबाधयत्।
24. निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा।
मधुको मधुरे श्रेष्ठः करञ्ज कटुके तथा। अ.सं. अध्याय 3
25. प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाऽऽह्निकमरिंदमः।
ऋषिं समुपचक्राम गमनाय रघूत्तमः।। उ. 82/5
26. दन्तान्पूर्वमधो घर्षेत्प्रातः सिञ्चेच्च लोचने।
तोयपूर्णमुखो ग्रीष्मशरदोः शीत-वारिणा।। अ.सं. 3/23
27. लिखेदनुसुखं जिह्वा जिह्वानिर्लेखनेन च।। अ.सं. 3/17
तथाऽस्य मलवैरस्य जिह्वागन्धाऽऽस्यदन्तजाः।
रुचिवैशद्यलघुता न भवन्ति भवन्ति च।। अ.सं. 3/18
28. सौवीरमंजन नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्।
लोचने तेन भवतो मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने।। अ.सं. 3/25
व्यक्तत्रिवर्णे विमले सुस्निग्धघनपक्ष्मणी। 3/26
29. मतं स्त्रोतोञ्जनं श्रेष्ठं, विशुद्धं सिन्धु सम्भवम्।
दाहकण्डूमलघ्नं च दृष्टि क्लेदरुजापहम्।।
तेजोरुपावहं चैव सहते मारुतातपौ।
न नेत्ररोगा जायन्ते तस्माद्ञ्जनमाचरेत्।। सु.चि. 24/18-19
30. सौवीरमंजनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्।
पंचरात्रेऽष्टरात्रे वा स्त्राबाणार्थे रसांजनम्।। अ.सं. अध्याय 3
31. चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।। अ.सं. 3/26
योज्येत्सप्तरात्रेऽस्मात्स्रावणार्थं रसांजनम्।
32. प्रायोगिकं ततो धूमं गन्धमाल्यादि चाचरेत्।

धूमादस्योर्ध्वजत्रूत्था न स्युवतिकफामयाः।। अ.सं. 3/32

33. आयामो विविधोऽङ्गनां व्यायाम इति कीर्तितः।। धनुर्वेद
शरीरायासजनकं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।। सुश्रुत
शरीर चेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देहं व्यायामसंख्याता।। चरक सू. 7/31-33

34. स्वेदागमः श्वासवृद्धिर्गात्राणां लाघवं तथा।। चरक
लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेचसः क्षयः।
विभक्तघन गात्रत्वं व्यायामादुपजायते।। अष्टांगहृदय
(स्वास्थ्य विज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य चतुर्थ अध्याय)

35. वात-पित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णीच तं त्यजेत्।। अ.सं. 3/63

36. अर्द्ध शक्त्या निषेप्यस्तु बलिभिः स्निग्ध भोजिभिः।
शीतकाले वसन्ते च मंदमेव ततोऽन्यदा।। अ.सं. 3/64

37. हृदिस्थान स्थितो वायुः यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायाम कुर्वतो जन्तोः तद् वलार्द्धस्य लक्षणम्।। सु.चि. 24/47

38. तं कृत्वाऽनुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः।

39. तृष्णाक्षयः प्रतमको रक्तपितं श्रमः क्लमः।। अ.सं. 3/65
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते।
व्यायामजारराध्वस्त्रीहास्य भाष्यादि साहसम्।। अ.सं. 3/66
गजं सिंह इवाकर्षन् भजन्नति विनश्यति

40. न स्वप्न-जागरण-शयन-अशन-चङ्क्रमण-यान-वाहन-प्रधावन-लघनं-प्लवन-प्रतरण-हास्य-भाष्य-व्यवाय-व्यायामादि उचितान् अपि अतिसेवेत (सु.चि. 24)

41. व्यायाम हास्यभाष्याध्वग्राम्य धर्मप्रजागरान्।
नोचितानापि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया।। च.सू. 7/34

42. ततः शत्रुघ्न वचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन्।। यु. 128/13
विशोधित जटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः। महार्हवसनोतेस्तथौ तत्र श्रिया ज्वलन्।।
यु. 128/15

43. पंचरात्रान्त्खश्मश्रु केश रोमाणि कर्तयेत्।
केशश्मश्रुनखादीनां कल्पनं संप्रधानम्।।
पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपम् विराजनम्।
केश प्रसाधनम् केश्यं रजोजन्तुनिवारणम्।। योगरत्नाकर
(स्वास्थ्य विज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य पेज नं. 178-179)

44. अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सर्वेष्वंगेषु पुष्टिदम्।
शिरः श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।। योग रत्नाकर
स्नेहाभ्यंगाद्यथा कुंभश्चमं स्नेहविमर्दनात्।
तथा शरीरमभ्यंगाद् दृढ़ं सुत्वक् च जायते।। चरक

कषायपहृत स्नेहस्ततो स्नातो यथाविधि। अष्टांग हृदय
(स्वास्थ्य विज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य पेज नं. 180)

45. अथजातान्नपानेच्छो मारुतघ्नैः सुगन्धिभिः।। अ.सं. 3/55
यथर्तुसंस्पर्श सुखैस्तैलेरभ्यङ्ग माचरेत्।
अभ्यङ्गोवातहा पुष्टि स्वप्न दार्ढ्यवृहत्तवकृत्।। 56
दग्ध-भग्न-क्षत रुजाक्लमश्रमजरापहः।
रथाक्षचर्मघटवभ्दवन्त्यभ्यङ्ग तो गुणाः।। अ.सं. 3/57

46. स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रयम्।
त्वच्यश्च परमभ्यंगो यस्मातं शीलदेयतः।। 58
शिरः श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।
स केश्यः शीलितो मूर्ध्नि कपालेन्द्रियतर्पणः।। 59
हनुमन्याशिरः कर्णशूलघ्नं कर्णपूरणम।
पादाभ्यङ्गस्तु तत्स्थैर्यनिद्रादृष्टि प्रसादकृत्।। 60
पाद सुप्ति श्रम स्तम्भ सङ्कोचस्फुटन प्रणुत्।

47. वर्ज्योऽभ्यङ्ग : कफग्रस्तकृत संशुद्धय जीर्णिभिः।। अ.सं. 61

48. सोऽभ्यङ्ग मूर्धि शिरसि शीलितः केश केशेभ्यो हितः कपालस्येन्द्रियाणाश्च तर्पणः तृप्तिकरः।
स्नेहेन कर्णपूरणम् हनुमन्यादिशूलघ्नं। अ.सं.अ. 3

49. नित्यं स्नेहार्द शिरसः शिरः शूलम् न जायते।
न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्ति च .... च.सू. 5/81-83

50. शिरोगतांस्तथा रोगाञ्छिरोभ्यङ्गोऽपकर्षति (सु.चि. 24/25-26)

51. न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसंग्रहः .... च.सू. 5/84

52. हनुमन्याशिरः कर्णशूलघ्न कर्ण-पूरणम् (अ.सं.अ. 3)

53. रथाक्षस्य स्नेहस्पर्शन मात्रेण, चर्मणो मर्दनेन, घटस्य स्नेह-संस्कारेण इति। अ. सं. अ. 3

54. दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम्। अ.सं. 3/68
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रावृऽदाहपाप्मजित्।

55. उष्णाम्बुनाऽधः कायस्य परिषेको बलावहः।। अ.सं. 3/69
तेनैव चोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केश चक्षुषाम्।

56. नानाप्लुत्य शिरः स्नायान्न जलेऽल्पे न शीतले।। 70
स्नानोदकावतरण स्वप्नान्नाग्नो न चाचरेत्।

57. पंचपिण्डाननुद्धव्य न स्नायात्परवारिणि।। 71

58. पवित्रं वृष्यं आयुष्यं श्रम स्वेदमलापहम्।
शरीर बलसन्धानं स्नानं ओजस्करं परम्। (च.सू. 5/94)

59. निद्रा दाह श्रम हरं स्वेद कण्डू तृषापहम्। हृद्यं मल हरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रिविशो धनम्।।
तन्द्रापापमोपशमनं तुष्टिदम् पुंसत्ववर्द्धनम्। रक्त प्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनं। सु.चि. 24

60. उष्णेन शिरसः स्नानं अहितं चक्षुषः सदा! शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यं इति निर्दिशेत्।।
श्लेष्ममारुत कोपे तु ज्ञात्वा व्याधि बलाबलम्! काम मुष्णं शिरः स्नानं भैषज्यार्थं समाचरेत्।।
अति शीताम्बु शीते च श्लेष्ममारुत कोपनम्! अत्युष्णं उष्णकाले च पित्त शोणित वर्धनम्।। सु.चि. 24

61. नात्मानमीक्षेत जले न तटस्थो जलाशयम्।
न प्रतिस्फालयेदम्बुं पाणिना चरणेन वा।। अ.सं. 3/72
स्नात्वा न मृज्याद्गात्राणि धुनुयान्न शिरोरुहान्।
निविसीताऽर्द्र एवाशु सोष्णीषे धौतवाससी।। अ.सं. 3/73
न त्वम्बरं पूर्वधृतं न च तैलवसे स्पृशेत्। वासोऽन्यदन्यच्छयने निर्गमे देवतार्चने।। अ.सं. 3/74
स्नानमर्दित नेत्रास्यकर्णरोगाति सारिषु। आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम्।। अ.सं. 3/75

62. तच्च अतिसार ज्वरित कर्णशूलानिलार्त्तिषु। आध्मानारोचकाजीर्ण भुक्त वस्तु च गर्हितम्।।

63. अग्निपुराण की दार्शनिक एवं आयुर्वेदिक सामग्री-पेज नं. 154

64. बा. 44/14, अयो. 14/34

65. अयो. 7/3

66. अयो. 14/34

67. अयो. 26/13

68. अयो. 56/32

69. अयो. 65/8

70. अरण्य. 17/1

71. वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः।
तेऽस्तं गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः।। बा. 31/20

72. गते पुरोहिते रामः स्नातोनियतमानसः।
सह पत्नया विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्।। अयो. 6/1

73. रामः स्नात्वा तु नियतो गुण बाञ्जप कोविदः।
संग्रहेणाकरोत् सर्वान् मन्त्रान् सत्रावसानिकान्।। अयो. 56/29

74. अयो. 56/32

75. वासो न धारयेज्जीर्णं मलिनं रक्तमुल्बणम्।। अ.सं. 3/34

76. सौभाग्यदं वर्णकरं प्रीति ओजो बल वर्द्धनम्।
स्वेद दौर्गन्ध्यवैवर्ण्य श्रमघ्नं अनुलेपनम्।।
स्नानं येषां निषिद्धं तु तेषां आपि अनुलेपनम्।। सु.चि. 24

77. इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गराग च वैदेही महार्हमनुलेपनम्।।

मयादत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपम संक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति।। अयो. 118/18,19

78. अङ्ग रागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे।
शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम्।। अयो. 118/20

79. इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने।। कि. 3/16
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते।

80. कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्त माल्यानुलेपनाः।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे।। सु. 1/25

81. ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्य-
स्तथा परास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः। .... सु. 5/13

82. लोहितेनानुलिप्ताङ्ग चन्दनेन सुगन्धि ना।
सन्ध्यारक्त मिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम्।। सु. 10/8

83. सु. 10/20, 26, 15/39, 17/17, 22/25, यु. 60/34, 64/28, 128/15, उ. 26/15, 31/31, 69/19

84. गन्ध माल्यादिकं वृष्यमलक्ष्मीहनं प्रसाधनम् अ.सं. 3/34

85. वृष्यं सौगन्ध्यं आयुष्यं काम्यं पुष्टि बलप्रदम्।
सौमनस्यं अलक्ष्मीहनं गन्धमाल्यनिवेषणम्।। च.सू. 5/96

86. माल्यं न लम्बं न बर्हिन रक्तं जलजादृते।
नैव चान्येन विधृतं वस्त्रं पुष्पमुपा नहौ।। अ.सं. 3/35

87. (1) कृत कण्ठगुणाः क्षीणा रक्त माल्यनुलेपनाः।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे।। सुन्दर 1/25
(2) वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम्।
सवृक्षवनगुल्माढयं प्रसुप्तमिव मन्दरम्।। सु. 10/9
(3) विशोधित जटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्।। यु. 128/15

88. प्रणम्यदेवान्वृद्धांश्च मंगलाष्टशतशुभम्।
शृण्वन्कांचनविन्यस्तं सर्पिः पश्येदनन्तरम्।। अ.सं.सू. 3/24

89. को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः।
श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोक भयार्दितम्। अयो. 64/33

90. आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः सन्ध्यामुपासत।
स्मरन् कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः।। यु. 5/23

91. तस्मिन् सन्ध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः।
उतरं सागरं प्रायाद् वह्मानो दशाननम्। उ. 34/29

92. प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम्।
मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः।। उ. 66/14

93. संध्यामुपासितं वीर समयो ह्यतिवर्तते।

एते महर्षयः सर्वे पूर्णकुम्भाः समन्ततः।।
कृतोद का नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासते। उ. 81/21

94. ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः संध्यामुपासितम्।
अपाक्रामत् सरः पुण्यमप्सरोगणसेवितम्।। उ. 82/1

95. उ. 82/2

96. उ. 94/1

97. नैवचान्येनविधृतं वस्त्रं पुष्पमुपानहौ।। अ.सं.सू. 3/35

98. अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः।। अयो. 112/21

99. सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च।
प्रायच्छत् सुमहातेजा भरताय महात्मने।। अयो. 112/22

100. स पादुके सम्प्रणम्य रामं वचनमब्रवीत्।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्।। अयो. 112/23
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन वै नगराद् बहिः।।112/24

101. स पादुके ते भरतः स्वलंकृते
महोज्जवले सम्परिगृह्य धर्मवित्।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं
चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि।। अयो. 112/29

102. अयो. 113/1

103. अयो. 113/12, 13, 14

104. यू. 128/28

105. छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः।।
अपरं चन्द्र संकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः। यु. 128/68.5'

106. तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम्।
अतिकायाय चिक्षेप काल-दण्डमिवान्तकः।। यु. 71/86

107. दिष्टया त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषुच वनेषु च।। अयो. 50/42

108. शारीरो मानसोवापि कच्चिदेनं न बाधते।
संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम्।। अयो. 18/13

109. कच्चित् सकुशली राजा पिता दशरथोमम।
कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि।। अयो. 70/7
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः।। 70/8
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा।। 70/9
अरोगा चापि मे माता कैकेई किमुवाच ह।। 70/10

110. उ. 25/1

111. पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः।
बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः।। यु. 22/42

112. उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः।
त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुञ्जिताः।। अयो. 3/40

113. कामस्त्वं प्रकृत्यैव निर्णीतो गुणवानिति।। अयो. 3/41
गुणवत्यपि तु स्नेहात् पुत्र वक्ष्यामि ते हितम्।
भूयोविनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः।। अयो. 3/42
काम क्रोध समुत्थानि व्यजस्य व्यसनानि च।
परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा।। अयो. 3/43
अमात्यप्रभृतीः सर्वाः प्रजाश्चैवानुरंजय।
कोष्ठगारायु धागारैः कृत्वा संनिचयान् बहून्।। अयो. 3/44
इष्टानुरक्त प्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम्।
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्धावमृत मिवामराः।। अयो. 3/45
तस्मात् पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचर।

114. तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः। मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहिते रताः।। बा. 7/1
अष्टौबभूवुर्षीस्य तस्यमात्या यशस्विनः। शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः।। बा. 7/2
धृष्टिजर्यन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्।। बा. 7/3
ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ। वसिष्ठौ वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे।। बा. 7/4
एतैर्ब्रह्मर्षिर्भिर्नित्यमृत्विजस्तस्य पौर्वकाः। विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः।। बा. 7/6
श्रीमन्तश्च महात्मानः शस्त्रज्ञा दृढ़विक्रमाः। कीर्तिमन्तः प्रणिहिता यथावचनकारिणः।। बा. 7/7 (बा. 7/8 से 24 तक)7112.

115. शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषं सम्प्रजानताम्। नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्कचित्।। बा. 7/14
क्कचिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतिर्नरः। प्रशान्तं सर्वमेवासीद् राष्ट्रं पुखरं च तत।। बा. 7/15

116. स कच्चिद ब्राह्मणो विद्वान् धर्मनित्यो महाद्युतिः।
इक्ष्वाकूणांमूपाध्यायो यथावत् तात पूज्यते।। अयो. 100/9
कच्चिच्छुश्रूषसे तात पितुः सत्य पराक्रम।। अयो. 100/7।।
कच्चिद् विनयसम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः। अयो. 100/11, अयो. 100/12, 13, 15, 16, 18, 20, 21, 22, 23, 24

117. अमात्यानुपूधातीवान् पितृपैतामहांशुचीन्।
श्रेष्ठांछ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु।। अयो. 100/26
118. कच्चिनन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुत।। अयो. 100/27
119. उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसंदुषणे रतम्।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति न स हन्यते।। अयो. 100/29
120. कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमाञ्छुचिः।
कुलीनरचानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः।। अयो. 100/30
121. बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्धविशारदाः।
दुष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्त्कृत्य मानिताः।। अयो. 100/31
122. कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे।। अयो. 100/32
123. कच्चिद् सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः।
कच्चिद् प्राणांस्तवार्थेषु संस्यजन्ति समाहिताः।। अयो. 100/34
124. कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान्।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः।। अयो. 100/35
125. कच्चिद्दृष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः।। अयो. 100/36
126. कच्चिद् व्यपास्तानहितान् प्रतियातांश्च सर्वदा।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन।। अयो. 100/37
127. कच्चिान्न लोकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे।
अनर्थ कुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः।। अयो. 100/38
128. प्रसादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम्।
कच्चित् समुदितां स्फीतांमयोध्यां परिरक्षसे।। अयो. 100/42
129. अयो. 100/43 से 46, 47, 49, 50, 51, 52, 53, 54
130. देवतार्थे च पित्रर्थ ब्राह्मणाभ्यागतेषु च।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद् गच्छति ते व्ययः।। अयो. 100/55
131. कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा।
अदृष्टः शास्त्र कुशलैर्न लोभाद् बध्यते शुचिः।। अयो. 100/56
132. कच्चिद् वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान् मुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्षुभूषसे।। अयों 100/60
133. कच्चिद् गुरुंश्च वृद्धांश्च तापसान देवतातिथीन्।
चैत्यांश्च सर्वान् सिद्धार्थान् ब्राह्मणांश्च नामस्यसि।। 100/61
134. अयो. 100/62
135. अयो. 100/63
136. अयो. 100/64

137. अयो. 100/65, 66, 67

138. अयो. 100/68, 69, 70

139. आचार्यो गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः। यु. 29/9

140. युद्धकाण्ड-63/2

141. युद्धकाण्ड-63/3

142. युद्धकाण्ड-63/4

143. युद्धकाण्ड-63/5

144. युद्धकाण्ड-63/6

145 युद्धकाण्ड-63/10

146. तेजोधृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा।। यु. 128/82

147. यु. 128/98-105

द्वितीय परिच्छेद

1. विधि विहितमन्नपानमिष्टेन्द्रियार्थमायतनमायुषोब्रुवते।
यत्तदायत्तानि ह्योजस्तेजोधात्विन्द्रिय बल तुष्टिपुष्टिप्रतिभारोग्यादीनि।
तदिन्धना चान्तरग्नेः स्थितिः।
अग्नि मूलं च देह धारणमिति।। अ.सं.सू. 10/3

2. बलमारोग्यमायुश्च प्राणश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्ज्वलति व्येति चान्यथा।। च. सू. 27/342

3. न तेष्वहः सु श्रान्तो वा क्षुधितो वा न दृश्यते। बा. 14/11

4. ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणश्चैव भुञ्जते।। बा. 14/12

5. वृद्धाश्च व्याधिताश्चैव स्त्रीबालाश्च तथैव च।
अनिशं भुंजमानानां न तृप्तिरूपलभ्यते।। बा. 14/13

6. बा. 14/15

7. बा. 14/17

8. तत्रस्वभावतो दिव्योदकरक्तशालिषाष्टिक मुद्गैणलावादयोलघवः।
क्षीरेक्षु व्रीहिमाषानूपामिषादयोगुरव इति। अ.सं.सू. 10/5

9. ते खल्वपि संयोगादि विशेषैरन्यथात्वं प्रतिपद्यन्ते।। अ.सं.सू. 10/6

10. तत्र संयोगो नाम द्वयोर्बहूनां वा संहतीभावः।
स विशेषमारभते यन्नै कैशो द्रव्याणि।। अ.सं.सू. 10/7

11. संस्कारस्तु तोयाग्नि सन्निकर्ष शौचमंथन देशकाल भावनाभाजनादिभिरूपजन्यते।।
अ.सं.सू. 10/8

12. करणं पुनः स्वाभाविकानां द्रव्याणां अभिसंस्कारः।
संस्कारो हि गुणान्तराधानम् उच्यते। ते गुणास्तोयाऽग्निसन्निकर्ष शौच-मंथनदेशकाल वासन भावनादिभिः काल प्रकर्ष भाजनादिभिश्चाधीयन्ते।। च.वि0 1/21-2

13. कालस्तु ऋतुव्याध्यपेक्षो जीर्णाजीर्णलक्षणश्च।। अ.सं.सू. 10/11

14. अजीर्ण हि पूर्वस्याहारस्यापरिणतो रस उत्तरेण संसृज्यमानः सर्वान्दोषान्प्रकोपयत्याशु।। अ.सं.सू. 10/12

15. केवलमयमेव कालो भोजनस्य।। अ.सं.सू. 10/14

16. देशो द्रव्यस्योपयोक्तुश्चात्पतयवस्थाने।
तत्र पुनरुपयोक्ता स्वस्थातुरत्वतः प्रकृतिभेदतश्च परीक्ष्यः।। अ.सं.सू. 10/10

17. देशः पुनः स्थानं, स द्रव्याणाम् उत्पत्तिप्रचारौ देशसात्यं चाचष्टे। च.वि0 1/21-5

18. अ+बअष्टांग-संग्रह सूत्र स्थान। 10/16

19. न पर्युषितमन्यत्र मांसोपदंशभक्ष्येभ्यः।। अ.सं.सू. 10/17

20. रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषण कषायकाः।
षट्र द्रव्यमाश्रितास्ते च यथा पूर्पूबलावहाः।। अ.सं.सू. 1/35

21. मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्त कषायकाः।
इत्येते षड्रसा ख्याता नाना द्रव्य समाश्रिताः।। शा.सं.-1961 पेज नं. 18

22. स्नेहप्रीणनाह्लाद मार्दवैरूपलभ्यते।
मुखस्थो मधुराश्चास्य व्याप्नुवल्लिभ्यतानि च।।

23. दन्तहर्षान्मुखस्रावात् स्वेदनान्मुखबोधनात्।
विदाहाच्चास्य कण्ठस्य प्राश्यैवाऽम्लरसं वदेत्।।

24. प्रलीय क्लेद विष्यन्द मार्दवं कुरुते मुखे।
यः शीघ्रं लवणो ज्ञेयः स विदाहान्मुखस्य च।। शार्ङ्गधर संहिता-1961 पे.नं. 19

25. संवेदयेद्यो रसनां निपाते तुदतीव च।
विदहन् मुखनासाक्षि संस्रावी स कटुः स्मृतः।।

26. प्रतिहन्ति निपाते यो रसानां स्वदते न च।
स तिक्तो मुखवैशद्य शोष प्रह्लाद कारकः।

27. वैशद्यस्तम्भजाड्यै र्यो रसनां योजयेद् रसः।
बध्नातीव च यः कण्ठं कषायः स विकाश्यपि।। अष्टांग संग्रह-1961 पेज नं. 19

28. स कथं नु कषायाणि तिक्तानि कटुकानि च।
भक्ष्यन् वन्यमाहारं सुतो मे वर्तयिष्यति।। अयो. 12/97

29. ऐङ्गुदं बदरैमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन वचनमब्रवीत्।। अयो. 103/29

30. इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।। अयो. 103/30

31. ईक्षून, मधूंस्तथा लाजान् मैरेयांश्च वरासवान्।
पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्चोच्चावचानापि।। बा. 53/2

32. दधिकुल्यास्तथैव च।। बा. 53/3

33. यस्य-यस्य यथा कामं षडरसेष्वभिपूजितम्। बा. 52/22

34. वराहवाघ्रणिसकान् दधिसौवर्चलायुतान्।। सु. 11/16

35. इह मे भगवान सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम्।
भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु। अयो. 91/20

36. रसेनान्नेन पानेन लेह्य चोष्येण संयुतम्।
अन्नानां निचयं सर्वं सृजस्व शबलेत्वर।। अयो. 52/23

37. अस्ति मूलफलं चैतान्निषादैः स्वयमर्जितम्।
आर्द्रं शुष्कं तथा मासं वन्यं चोच्चावचं तथा।। अयो. 84/17

38. वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टमांस चयैर्वृताः।
प्रतप्तपिठरैश्चापि मार्गमायूर कौक्कुटैः।। अयो. 91/70

39. मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः।
तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः।। सु. 11/14

40. रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा।। सु. 11/15, सु. 11/16

41. कृकलान् विविधांश्छागांछशकानर्धभक्षितान्।
महिषानेकशल्यांश्च मेषांश्च कृतनिष्ठितान्।। सु. 11/17

42. अन्याः स्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम्।
अपराश्चोदकं शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम्।। अयो. 91/15
विचित्राणि च माल्यानि पादपप्रच्युतानि च।
सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानी च। अयो. 91/21

43. इक्षून् मधूंस्तथा लाजान् मैरेयांश्च वरासवान्।
पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्च्योच्चावचानपि।। बा. 53/2

44. भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदि होक्तवान्
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्य सन्निभम्।। अयो. 109/2

45. तस्यागस्त्यो बहुगुणं कन्दमूलं तथौषधम्।
शल्यादीनि पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत्।। उ. 82/3
स भुक्तवान् नरश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम्।
प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपाविशत्।। उ. 82/4

46. नहि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः।। अयो. 35/17

47. कश्चिदाम्रवणं छित्तवा पलाशांश्च निषिंचिति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गुध्नुः स शोचति फलागमे।। अयो. 63/8

48. मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते।
मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत् पथ्यं तन्न रोचते।। अर. 53/17

49. मलयं दुर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः
उपस्पृश्य ववौ युक्तया सुप्रियात्मा सुखं शिवः।। अयो. 91/24

50. पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः।
बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः।। यु. 22/42

51. कृत शास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत् तस्य कदाचन।

सत्यसंघः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमतेगतः।। अयो. 75/21

52. प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु।
हन्तु पादेन गाः सुप्ता यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/22

53. कारयित्वा महत् कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम्।
अधर्मोयोऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/23

54. परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत्।
ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यार्थोऽनुमते गतः।। अयो. 75/24

55. बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः।
अधर्मोयोऽस्य सोऽस्यास्तुयस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/28

56. संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वैयज्ञदक्षिणाम्।
तां चापलतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/26

57. हस्त्यश्वरथसम्बाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले।
मास्म कार्षीत्सतां धर्मयस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/27

58. उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/28

59. मा च तं व्यूढवाहं सं चन्द्रभास्कर तेजसम्।
द्राक्षीद् राज्यस्थमासीनं यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/29

60. पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः।
गुरुंश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/30

61. गाश्च स्पृशतु पादेन गुरुन् परिवदेत च।
मित्रे दुह्येत सोऽव्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/31

62. विश्वासात् कथितं किंचित् परिवादं मिथः क्वचित्।
विवृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/32

63. अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तात्मा निरपत्रपः।
लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/33

64. पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः।
स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/34

65. अयो. 75/35

66. अयो. 75/36

67. अयो. 75/37

68. अयो. 75/38

69. अयो. 75/39

70. अयो. 75/40

71. 75/41

72. 75/42

73. 75/44/45

74. 75/46
75. 75/47
76. 75/48
77. 75/50
78. 75/51
79. 75/52
80. 75/53
81. ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः।
बालवत्सां च गां दोग्धु यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/54
82. धर्मदारान् परित्यज्य परदारान् निषेवताम्।
त्यक्त धर्मरतिमूढ़ो यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/55
83. अयो. 75/56
84. अयो. 75/57
85. अयो. 75/58
86. द्रवोत्तरभोजनस्तु शय्यां नातिसेवेत्।। अ.सं.सू. 10/59
87. यानप्लवनवाहनाग्न्यातपांश्च भुक्तवान्वर्जयेत्।। अ.सं.सू. 10/60
88. धर्मोत्तराभिरर्थ्याभिः कथाभिस्त्रिगुणात्मभिः।
मध्यं दिनस्य गमयेदिष्टशिष्टसहायवान्।। अ.सं.सू. 3/81
89. रात्रौ तु भोजनं कुर्यात् प्रथम प्रहरान्तरे।
किंचित् ऊनं समश्नीयात् दुर्जरंतम् वर्जयेत्।। भा0प्र0पू0ख0 4/274
90. युक्तोपधानं स्वास्तीर्णं विस्तीर्णाविषम् सुखम्।। अ.सं.सू. स्था0 3/121
91. जानु तुल्यं मृदु शुभं सेवेत शयनासनम्। अ.सं.सू. स्था0 3/122
92. तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः।
इङ्गुदी मूलमागम्य रामशय्यामवैक्षत।। अयो. 88/1
93. अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः।
शर्वरी शयितां भूमाविदमस्य विमर्दितम्।। अयो. 88/2
94. अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये।
शयित्वा पुरुष व्याघ्रः कथं शेते महीतले।। अयो. 88/4
95. इयं शैया मम भ्रातुरिदमावर्तितं शुभम्।
स्थण्डिले कठिने सर्व गात्रैर्विमृदितं तृणम्।। अयो. 88/13
96. परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोऽधिपनिषेविताम्। सु. 9/27
97. अवेक्षमाणो हनुमान् ददर्श शयनासनम्।। सु. 10/1
98. दान्तकाञ्चन चित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः। महाहास्तिरणोपेतैरूपपन्नं महाधनैः।। सु. 10/2
99. सु. 10/3
100. जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रमानोः समप्रभम्। अशोक मालाविततं ददर्श परमासनम्।। सु. 10/4
101. वालव्यंजन हस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः।

गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम्।। सु. 10/5

102. परमास्तरणास्तीर्ण माविकाजिन संवृतम्।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम्।। सु. 10/6

103. भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम्।। सु. 10/11

104. सायं भुक्त्वा लघु हितं समाहित मनाः शुचिः।
शास्तारमनुसंस्मृत्य स्वचर्यां चाथं संविशेत्।। अ.सं.सू. 3/120
देशे शुचावनाकीर्णे द्वित्राप्तपरिचारकः। अ.सं.सू. 3/121
प्राग्दक्षिणशिराः पादवकुर्बाणो गुरुन प्रति।। अ.सं.सू. 3/122
पूर्वापरनिशा भागे धर्म मेवानुचिन्तयेत्।

105. छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनस कासजित्।
सुरासवस्तीक्षणमदः स्वादुस्तीक्ष्णोऽनिलापहः।। अ.सं.सू. 6/130
मैरेयो मधुरो वृष्यः सरः सन्तर्पणो गुरुः।
धातक्यभिषुतो जीर्णो रुक्षो रोचनदीपनः। अ.सं.सू. 6/131
द्राक्षासवो मधुसमः परमं स तु दीपनः।
मार्द्वीकसदृशः प्रोक्तो मृद्वीकेक्षुरसासवः।। अ.सं.सू. 6/132

106. इक्षून् मधूंस्तथा लाजान् मैरेयांश्च वरासवान्।
पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्चोच्चावचनपि।। बा. 53/2

107. पानभूमिगतंहित्वा हैममासव भाजनम्।। सु. 1/23

108. मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम्। सु. 6/42

109. शर्करासव गन्धः स प्रकृत्या सुरभिः सुखः।
तासां वदन् निःश्वासः सिषेवे रावणं तदा।। सु. 9/56

110. शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः।
वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक् पृथक्।। सु. 11/23

111. दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम्।
सस्वादुतिक्त कटुकमम्लपाकरसं सरम्।। अ.सं.सू. 6/115
सकषायं स्वरारोग्य प्रतिभावर्ण कृल्लघु।
नष्टनिद्रातिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम्।। अ.सं.सू. 6/116
कृतस्थूलाहितं रुक्षं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनम्।
वातश्लेष्महरं युक्त्या पीतं विषवदन्यथा।। अ.सं.सू. 6/117

112. गुरु तद्दोषजननं नवं जीर्णमतोऽन्यथा।

113. पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः।। अ.सं.सू. 6/118
नातितीक्ष्णमृदुस्वच्छघनं व्यापन्न मेव वा।

114. सतीं त्वामहमत्यन्तं व्यवस्याम्यसतीं सतीम्।
रूपिणीं विषसंयुक्तां पीत्वेव मदिरां नरः।। अयो. 12/76

115. मत्तोऽयमिति मा मंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे।
मदोऽयं सम्प्रहारेऽस्मिन् वीरपानं समर्थ्यताम्।। कि. 11/38

116. तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वल कुण्डलम्।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम्।। सु. 10/7
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना।
सन्ध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम्।। सु. 10/8

117. वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम्।
सवृक्ष वन गुल्माढयं प्रसुप्तमिव मन्दरम्।। सु. 10/9
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम्।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम्।। सु. 10/10
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम्।। सु. 10/11)

118. चूतपुंनागसुरभिर्बुकलोत्तमसंयुतः।
मृष्टान्नरस संयुक्तः पानगन्धपुरः सरः।। सु. 10/23
तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखात।
शयानस्य वि निः श्वासः पूरयन्निव तद्गृहम्।। सु. 10/24
पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षः पतेर्गृहे।। सु. 10/30
मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः।। सु. 10/35
काचिदाडम्बरं नारी भुजसम्भोगपीड़ितम्।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता।। सु. 10/45

119. चक्षुष्यं छेदितृट्श्लेष्मविषहिध्माऽस्रपित्तनुत्।
कुष्ठमेह कृमिच्छर्दि श्वासकासातिसाराजित्।। अ.सं.सू. 6/91
व्रणशोधनसन्धानरोपणं वातलं मधु।
रुक्षं कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा।। अ.सं.सू. 6/92

120. उष्णमुष्णार्तमुष्णे च युक्तं चोष्णैर्निहन्ति तत्।
विषान्वयत्वेन विष पुष्पेभ्योऽपि यतो मधुः।। अ.सं.सू. 6/93
कुर्वते ते स्वयं यच्च सविषा भ्रमरादयः।
प्रच्छर्दने निरुहे च मधूष्णं न निवार्यते।। अ.सं.सू. 6/94
अलब्धपाकमाश्वेव तयोर्यस्मानिवर्त्तते।

121. गुरुरुक्षकषायत्वाच्छैत्याच्चाल्पं हितं मधु।। अ.सं.सू. 6/95

122. नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं मधु।
वृष्ययोगैरतो युक्तं वृषतामनुवर्तते।। अ.सं.सू. 6/97

123. भ्रामरं पैत्तिकं क्षौद्रं माक्षिकं च यथोतरम्।
वरं जीर्णं च तेष्वन्त्ये द्वे एव ह्युपयोजयेत्। अ.सं.सू. 6/98

124. स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान्।
विमदानुद्धतान सर्वान् मेहमानान् मधूदकम्।। सु. 64/4

125. एकोऽहं भक्षयिष्यामि तां सर्वां हरिवाहिनीम्।
स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तु मधु वारुणीम्।। यु. 8/23

126. निघ्नन् मृगान् कुञ्जरांश्च पिबंश्चारण्यकं मधु।
नदीश्च विविधाः पश्यन् न राज्यं संस्मरिष्यति।। अयो. 36/6

127. पश्य द्रोण प्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण।
मधूनि मधुकारीभिः सम्भृतानि नगे नगे।। अयो. 56/8

128. सुरां सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः।
मासांनि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यो यदिच्छति।। अयो. 91/52

129. वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टामांसचयैर्वृताः। अयो. 91/70

130. मत्तोऽयमिति मां मंत्वा यद्यभीतोऽसि संयुगे।
मदोऽयं सम्प्रहारेऽस्मिन् वीरपानं समर्थ्यताम्।। कि. 11/38

131. कि. 26/23, 33/45, 41/33, 50/32, 34, 67/45, सु. 1/23, 5/17, 6/42, 10/23, 11/4, 20, 32, 36/41 ......

तृतीय परिच्छेद

1. ऋतौ ऋतौ चर्या। ऋतुचर्या। ऋतुः काल विभागः।
चरधातोर्गति भक्षणार्थस्य चर्यामिति रूपम्, तेन आहारो विहारश्च चर्य शब्देनोच्यते।
अन्ये .... चर्या शास्त्र नियमित आचारः, ऋतुषु ऋतुनाम् वा चर्या ऋतुचर्या,
ऋतुचर्यार्थोऽध्यायः ऋतुचर्या (डल्हड़) अ.सं.सू. अ. 4

2. धूम्रधूम्रा रजोमन्दास्तुषाराविलमण्डलाः। दिगादित्या मरुच्छैत्यादुतरो रोमहर्षणः।। 9।।
रोध्र प्रियङ्गु पुन्नागलवल्यः कुसुमोज्ज्वलाः। दृप्ता गजाजमहिष वाजि वायस सूकराः।। 10
हिमानी पटलच्छन्ना जल नमीन विहङ्गमाः।
नद्यः सवाष्पाः सोष्माणः कूपापश्च हिमागमे।। 11।। अ.सं.सू. 4/9, 10, 11

3. देहोष्माणो विशन्तोऽन्तः शीते शीतानिलाहताः। 12।। जठरे पिण्डितोष्माणं प्रबलं कुर्वतेऽनलं।।
विसर्गे बलिनां प्रायः स्वभावादि गुरु क्षमम्। 13।। बृहंणान्यन्नपानानि योजयेत्तस्य युक्तये।।
अनिन्धनोऽन्यथा सीदेदत्युदीर्णतयाऽथवा। 14।। धातूनपि पचेदश्य ततस्तेषां क्षयान्मरुत्।।

4. अतो हिमे भजेत्स्निग्धान्स्वादम्ललवणान् रसान्।।15।।
विलेशयौदकानूप्रसहानां भूतानि च।
मांसानि गुडपिष्टोत्थमद्यान्यभिनवानि च।। 16।।
माषेक्षुक्षीर विकृति वसा तैलनवोदनान्।
व्यायामोद्वर्तनाभ्यङ्ग स्वेद धूमाञ्जनातपान्।। 17।। अ.सं.सू. 4/15, 16, 17

5. सुखोदकम् शौचविधौ भूमि गर्भगृहाणि च।
सङ्गारयानां शय्या च कुथकम्बलसंस्कृताम्।। 18।।

कुङ्कुमेनानुदिग्धाङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपि वा।
लघूष्णैः प्रावृतः स्वप्यात्काले धूपाधिवासितः।। 19।।
पीनाङ्गसंसर्ग निवारितहिमानिलः। अ.सं.सू. 4/18, 19, 20

6. वर्जयेत् अन्नपानानि वातलानि लघूनि च।
प्रवातं प्रमिताऽऽहारं उदमन्थं हिमागमे।। च.सू. 6/18, अ.सं.सू. 4

7. सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्।। अर. 16/29
अत्यन्त सुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते।। अर. 16/30

8. तर्पयित्वाथ सलिलैस्तैः पितृन् दैवतानापि।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानद्याः।। अर. 16/42

9. नीहार परुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः।। अर. 16/5

10. प्राज्यकामा जनपदः सम्पन्नतरगोरसाः।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः।। अर. 16/7
सेवमाने दृढ़ं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम्।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरादिक्प्रकाशते।। अर. 16/8

11. मयूरवैरूपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्कइव लक्ष्यते। अर. 16/18

12. अत्यन्त सुख संचारा मध्यान्हे स्पर्शतः सुखाः।
दिवसाः सुभगादित्याश्छाया सलिलदुर्भगाः।। अर. 16/10

13. मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्।। अर. 16/11

14. अर. 16/13

15. ज्योत्सना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते।। अर. 16/14

16. प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः।। अर. 16/15

17. अवश्याय निपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनानां शोभते भूमिनिर्विष्टतरूणातपाः।। अर. 16/20

18. निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमरूणाः।
शीत वृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम्।। अर. 16/12

19. प्रकृत्याहिमकोशाढदयो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः।। अर. 16/9

20. शिशिरेशीतमधिकं मेघमारुतवर्षजम्।।
रोक्ष्यं चादानजं तत्मात्कार्यः पूर्वोऽधिकं विधि। अ.सं.सू. 4/20

21. वसन्ते दक्षिणो वायुराताम्र किरणो रविः।। अ.सं.सू. 4/21
नवप्रवालत्वक्पत्राः पादपाः कुकुभोऽमलाः।
किंशुकाशोकचूतादि वनराजिविराजिताः।। अ.सं.सू. 4/22
कोकिलालिकुलालापकलकोलाहलाकुलाः।
शिशिरे संचितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः।। अ.सं.सू. 4/23
तदा प्रबाधमानोऽग्निं रोगान्प्रकुरुते बहून्।

22. अतोऽस्मिंस्तीक्ष्ण वमनधूमगण्डूषनावनम्।। अ.सं.सू. 4/24
व्यायामोद्वर्तनक्षौद्रयवगोधूमजाङ्गु लान्।
सेवेत सुहृदुद्यानयुवतीश्च मनोरमाः।। अ.सं.सू. 4/25
स्नातः स्वलंकृतः स्रग्वी चन्दनागुरूषितः।

23. विचित्रामत्रविन्यस्तान् सहकारोत्पलाङ्कितान्।। अ.सं.सू. 4/26
निर्गदांश्चासवारिष्ट सीधुमाद्वीकमाधवान्।
क्वथितं मुस्तशुठ्यम्बु साराम्भः क्षौद्रवारि वा।। अ.सं.सू. 4/27
गुरुशीतदिवास्वप्नस्निग्धाम्लमधुरांस्त्यजेत्।

24. मां हि शोक समाक्रान्तं संतापयति मन्मथः।
हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः।। कि. 1/23
अशोकस्तरबकाङ्गारः षट्पदस्वननिः स्वनः।। कि. 1/29
मां हि पल्लवतामर्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति।

25. मन्मथायाससम्भूतो वसन्तगुणवर्धितः।। कि. 1/32
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव।

26. नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा।
कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत् सा मया विना।। कि. 1/48

27. ग्रीष्मेऽतसीपुष्पनिमस्तीक्ष्णां शुर्दावदीपिताः।। अ.सं.सू. 4/28
दिशो ज्वलन्ति भूमिश्च मारुतो नैऋतः सुखः।
पवनातपसंस्वैदैर्जन्तवो ज्वरिता इव।। अ.सं.सू. 4/29
तापार्ततुङ्गमातङ्ग महिषैः कलुषीकृताः। दिवाकरकराङ्गारनिकरक्षपिताम्भसः।। अ.सं.सू. 4/30
प्रबृद्धरोधसो नद्यश्छायाहीना महीरुहाः।
विशीर्णजीर्णपर्णाश्च शुष्कबल्कलताङ्किताः।। अ.सं.सू. 4/31)

28. आदत्ते जगतः स्नेहांस्तददित्यो भृशं यतः।
व्यायामातपकट्वम्ललवणोष्णं व्यजेदतः।। अ. सं. सू. 4/32
मद्यं न सेव्यं स्वल्पं वा सेव्यं सुबहु वारि वा।
अन्यथा शोष शैथिल्यदाह मोहान्करोति तत्।। 33
नवमृदभाजनस्थानि हृद्यानि सुरभीणि च।
पानकानि समन्थानि सिताढ्यानि हिमानि च।। 34
स्वादु शीतं द्रवं चान्नं जाङ्गलान्मृगपक्षिणः।
शालिक्षीरघृतद्राक्षानारिकेराम्बुशर्कराः।। 35

तालवृन्तानिलान् हारान् स्रजःसकमलोत्पलाः।
तन्वीमृणालवलयाः कान्ताश्चन्दनरुषिताः।। 36
सरांसिवापीः सरितः काननानि हिमानि च।
सुरभीणि निषेवेत वासांसि सुलघूनि च।। 37
निष्पतद्यन्त्र सलिले स्वप्याद् धारा गृहे दिवा।
रात्रौ चाकाशतलके सुगन्धि कुसुमास्वृते।। 38
कर्पूरचन्दनार्द्राङ्गो विरलानङ्गसङ्गमः। अ. सं. सू. 4/32, 33..39

29. सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विवधैर्द्रुमैः।। कि. 1/3

30. शोकार्तस्यपि मे पम्पा शोभते चित्रकानना।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा।। कि. 1/6

31. अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम्।
द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितमं। कि. 1/8

32. सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः।। कि. 1/10

33. स एव सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः।
गन्धमभ्यवहन् पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः।। कि. 1/17

34. वर्षासुवारुणो वायुः सर्वसस्यसमुद्गमः।। अ. सं. सू. 4/39
भिन्नेन्द्र नीलनीलाभ्रवृन्दमन्दाविलं नभः।
दीर्घिका नववायौघमग्नसोपानपङ्क्तयः।। अ. सं. सू. 4/40
वारिधाराभृशाघातविकासित सरोरुहाः।
सरितः सागराकारा भूरव्यक्त जल स्थला।। अ. सं. सू. 4/41
मन्द्रस्तनित जीमूतशिखिदर्दुरनादिता।
इन्द्रगोपधनुः खण्डविद्युदुद्योतदीपिता। अ. सं. सू. 4/42
परितः श्यामलतृणा शिलीन्ध्रकुटजोज्वला।

35. तदाऽऽदानाबले देहे मन्देऽग्नौ बाधिते पुनः।। अ. सं. सू. 4/43
वृष्टिभूवाष्पतोयाम्लपाकदुष्टैश्चलादिभिः।
बस्तिकर्म निषेवेत कृतसंशोधनक्रमः।। 44 ।।
पुराणशालि गोधूमयवान् यूषरसैः कृतैः।
निर्गदं मदिरारिष्टमाद्वीकं स्वल्पमम्बु वा।। 45 ।।
दिव्यं क्वथितकपोत्थं चौण्डयं सारसमेव वा।
वृष्टिवाताकुले त्वह्नि भोजनं क्लेदवातजित्।। 46 ।।
परिशुष्कं लघु स्निग्धमुष्णाम्ललवणं भजेत्।
प्रायोन्नपानं सक्षौद्रं संस्कृतं च घनोदये।। 47 ।।
असरीसृपभूवाष्पशीतमारुतशीकरम्।
सन्नियानं च भवनं निदर्शमशकोन्दुरम्।। 48 ।।

प्रघर्षोद्वर्तनस्नान धूमगन्धागुरुप्रियः।
यायात्करेणु मुख्याभिश्चित्रस्त्रग्वस्त्रभूषितः।। 49 ।।
नदीजलोदमन्थाहः स्वप्नातिद्रवमैथुनम्।
तुषारपादचरणव्यायामार्ककरांस्त्यजेत्।। 50 ।।

36. अयं सकालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।
सम्पश्य त्वं नमो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः।। कि. 28/2

37. नवमास धृतं गर्भे भासकरस्य गर्भस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्।। कि. 28/3

38. एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभि वासितः।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते।। कि. 28/9

39. मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्रह्मणानां विवक्षताम्।
अयमाध्याय समयः सामगानामुपस्थितः।। कि. 28/54

40. विवृतकर्मायतनो नूनं संचित संचयः।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोसलाधिप।। कि. 28/55

41. शरदि व्यौमशुभ्राभ्रं कित्रिचत्पङ्काङ्किता मही।
प्रकाशकाश सप्ताह्वकुमुदा शालिशालिनी।। अ. सं. सू. 4/50
विक्षिप्त तीक्ष्ण किरणो मेघौघविगमाद्रविः।
बभ्रुवर्णोऽति विमलाः क्रौंचमालाकुला दिशः।। अ. सं. सू. 4/51
कमलान्तरसल्लीनमीनहंसांसघट्टनैः।
तरङ्गभङ्गतुङ्गानि सरसि विमलानि च।। अ. सं. सू. 4/52
वर्षाशीतोचिताङ्गानां स सैवार्करश्मिभिः।
तप्तानां संचितं पूर्व तदा पित्त प्रकुप्यति।। 53 ।।

42. शस्तं तिक्त हविः पानं विरेकोऽस्रसुतिः सदा।
शीतं लघ्वन्नपानं च कषायस्वादु तिक्तकम्।। अ. सं. सू. 4/54
शालिषाष्टिक गोधूमयवमुद्गसितामधु।
पटोलामलकं द्राक्षा जाङ्गलं क्षुद्वतां भृशम्।। अ. सं. सू. 4/55
दिवादिवाकर करैर्निशाकर करै र्निशि।
सन्तप्तं ह्लादितं तोयमगस्तेनाविषीकृतम्।। 56 ।।
निर्मलं शुचि कालेन पक्कं पानेऽमृतोपमम्।
हंसौघपक्ष विक्षेप भ्रममद् भ्रमरपङ्क्तिषु ।। 57 ।।
सुसरोरुहसेव्यासु सरसीषु पलवेत च।
लघु शुद्धाम्बरस्रग्वी शीतोशीरविलेपनः।। 58।।
सेवेत चन्द्रकिरणान् प्रदोषे सौधमाश्रितः।
तृप्तिदध्यात् पक्षारवसातैल पुरोऽनिलान।। 59 ।।
तीक्ष्ण मद्य दिवास्वप्नतुषारांश्च विवर्जयेत्।

43. पाण्डुरं गगनं दृष्टवा विमलं चन्द्रमण्डलम्।

शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम्।। कि. 30/2

44. आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते।
शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम्।। कि. 30/6

45. अयं ह्रिया संह्रियते समाधिः।
किमत्र योगेन निवर्तते न ।। कि. 30/16

46. क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं, समाधियोगानुगतं च कालम्।
सहायसामर्थ्य मदनिसत्वः, स्वकर्महेतुम् च कुरुष्व तातः।। कि. 30/17

47. रात्रिः शशाङ्कोदित सौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलित चारुनेत्रा।
ज्योत्स्नां शुकप्रावरणा विभाति। नारीव शुक्लांशुक्रसंवृताङ्गी।। कि. 30/46

48. जलं प्रसन्नं कुसुम प्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्कम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्।। कि. 30/53

चतुर्थ परिवर्त

वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध औषध परिचय एवं द्रव्य गुण शास्त्र की सामग्री

औषधार्थ प्रयुक्त होने वाली सभी वस्तुओं को आयुर्वेद में द्रव्य माना गया है। इस प्रकार जगत में कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है जो द्रव्य होकर औषध रूप में न हो।[1] सभी द्रव्य पञ्चभौतिक हैं। द्रव्यों का आश्रय स्थान (अधिष्ठान) पृथ्वी और उत्पत्ति स्थान उदक है। आकाश, वायु और अग्नि समवाय रूप से रहकर द्रव्य के अभिनिवृत्ति एवं विशेष असादृश्य में कारण होते हैं। यद्यपि सभी द्रव्य पञ्चा भौतिक हैं तथापि जिस द्रव्य में जिस भूत की प्रधानता रहती है, उसी भूत की प्रधानता से उसे पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य एवं आकाशीय कहते हैं।[2] इनमें जिह्वा के साथ द्रव्य का संयोग होने पर जो स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है वह रस है।[3]

प्रथम परिच्छेद

भौतिक एवं प्राकृतिक औषधियाँ

इस समुदाय के अन्तर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि का समावेश किया जाता है।

पृथ्वी

पृथ्वी सभी की जननी है। अतः उससे उत्पन्न सभी द्रव्य औषधि रूप में प्रयोग किये जाते हैं। रामायण में अनेक स्थलों पर पृथ्वी का उल्लेख किया जाता है। यथा-

जब महादेव ने पूछा कि उनके स्खलित तेज को कौन धारण करेगा, तब देवों ने इनका नाम बताया।[4] महादेव के तेज से पर्वत और वनों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो गयी।[5] उमा ने पृथ्वी को बहुतों की भार्या तथा निःसंतान होने का श्राप दिया।[6] सगर के 60,000 पुत्रों ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर यज्ञ-अश्व को ढूंढ़ने का आदेश दिया।[7]

राजा सगर के पुत्रों के विभिन्न आयुधों से अत्यन्त त्रस्त होकर ये आर्तनाद करने लगी।[8] यह विष्णु की महिषी हैं।[9] राजा दशरथ के शपथ पूर्वक वर देने की प्रतिज्ञा करने पर कैकेई ने साक्षी रहने के लिये इनका भी आवाह्न किया।[10] राम के वनवास के समय उनकी रक्षा करने के लिये कौशल्या ने इनका भी आवाह्न किया।[11] राम ने कहा कि यशस्विनी पृथ्वी ने उनका प्रिय करने के लिये ही जानकी के केश से गिरे पुष्पों को सुरक्षित रखा है।[12]

शपथ ग्रहण करते समय सीता ने इनसे अपने भीतर स्थान देने की स्तुति की।[13] उस समय यह एक ऐसे सुन्दर सिंहासन पर आरुढ़ होकर राम की सभा में प्रकट हुई जिसे नागों ने धारण कर रखा था और सीता को लेकर रसातल में प्रवेश कर गयीं।[14] जब श्री राम परम धाम जाने लगे तो ये भी उनके साथ-साथ चलीं।

आज का सभ्य मनुष्य पृथ्वी से दूर होता जा रहा है इसीलिये वह पहले की अपेक्षा अधिक चिन्तित और दुःखी है। हम पृथ्वी को धरती माता कहकर पुकारते हैं। जो चीजें हम खाते-पीते हैं या प्रयोग करते हैं, वे सब धरती से ही आती हैं। फलों और सब्जियों के विटामिन व खनिज लवण भी मिट्टी से ही आते हैं इसी से यह मानना पड़ता है कि मिट्टी में सर्व प्रकार के गुण हैं।

यद्यपि रामायण में औषधि के रूप में पृथ्वी का उल्लेख नहीं है तथापि इसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

जल

'प्राकृतिक चिकित्सा' के अन्तर्गत जल का विशेष महत्त्व है। जल द्वारा चिकित्सा का विशेष-विधान बताया गया है।

रामायण में जल के विविध रूपों का वर्णन होता है यथा—

1- समुद्र का खारा जल।
2- नदी का जल।
3- चन्दन मिश्रित जल।
4- सामान्य जल।
5- तीर्थों का जल आदि।

रामायण में जल को चिकित्सार्थ भी प्रयोग में लाने का उल्लेख मिलता है। जैसे—उग्र-शोक के कारण जब मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है तब उसके उपचार के लिये शीतल जल का छिड़कना, उत्पल, उशीर, अगर, अथवा चन्दन के ठण्डे जल से स्नान कराना या मुख तथा मस्तक धोना रामायण में निर्दिष्ट है।

श्री राम कहते हैं—"सौम्य पवन कुमार ! जैसे बेहोश हुए मनुष्य को होश में लाने के लिये उस पर जल के छींटे दिये जाते हैं, उसी प्रकार विदेह नन्दिनी सीता ने मूर्च्छित हुए से मुझ राम को अपने वाक्य रूपी शीतल जल से सींचते हुए क्या-क्या कहा है ? यह बार-बार बताओ।"[15]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में जल को एक औषधि के रूप में भी व्यवहार में लाया गया है।

अग्नि

अग्नि को भी चिकित्सा कार्य में प्रयोग में लाने के कारण औषधि माना गया है। रामायण में अनेक स्थलों पर अग्नि का उल्लेख किया गया है—संक्षेप में उसकी प्रस्तुति निम्नवत् है।

ब्रह्मा की इच्छा से उन्होंने नील को उत्पन्न किया।[16] जब बलि ने समस्त देवताओं को पराजित कर दिया तब वे विष्णु की सेवा में उपस्थित हुए[17] देवताओं

के निवेदन पर इन्होंने महादेव के तेज को अपने भीतर रख लिया।[18] जब महादेव तपस्या कर रहे थे, उस समय इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता अपने लिये सेनापति की इच्छा लेकर ब्रह्मा के समीप गये और उन्हें प्रणाम करके अपना मनोरथ कहा।[19] ब्रह्मा ने कहा कि शंकर के तेज को उमा की बड़ी बहन आकाश गंगा के गर्भ में स्थापित करके अग्निदेव ऐसे पुत्र को जन्म देंगे जो देवताओं का समर्थ सेनापति होगा।[20] ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर सम्पूर्ण देवताओं ने अग्निदेव को पुत्र उत्पन्न करने के कार्य पर नियुक्त और उनसे रुद्र के महान तेज को गंगा में स्थापित करने का निवेदन किया।[21] देवताओं को अपनी सहमति देने के पश्चात् अग्नि (पावक) ने गंगा के निकट आकर उनसे गर्भ धारण करने के लिये कहा।[22] "अग्नि की बात सुनकर गंगा ने दिव्य रूप धारण कर लिया। उस रूप की महिमा को देखकर अग्नि ने गंगा को सब ओर से उस रुद्र तेज द्वारा अभिषिक्त कर दिया जिससे गंगा के स्रोत उससे परिपूर्ण हो गये।"[23]

तदुपरान्त गंगा ने तेज को धारण करने में अग्नि से अपनी असमर्थता प्रकट की, किन्तु अग्नि के परामर्श से उस गर्भ को हिमवान पर्वत के पार्श्व भाग में स्थापित कर दिया।[24] अग्नि सहित समस्त देवताओं ने मिलकर महातेजस्वी स्कन्द का देवसेनापति के पद पर अभिषेक किया।[25] अण्डकोश से रहित होकर इन्द्र अत्यन्त भयभीत हो गये और उसे पुनः प्राप्त करने के लिये उन्होंने अग्नि आदि देवताओं से प्रार्थना की।[26] इन्द्र का वचन सुनकर मरुतों सहित अग्नि आदि समस्त देवता पितृ-देवों के पास गये।[27] जब विश्वामित्र वशिष्ठ पर ब्रह्मास्त्र से प्रहार करने के लिये उद्यत हुए तब अग्नि अत्यन्त भयभीत हो गये।[28] राम के वनवास गमन के समय उनकी रक्षा के लिये कोसल्या ने अग्नि को आवाहन किया था।[29] जब माण्डकर्णि ने एक जलाशय में रहकर केवल वायु का आहार करते हुए दस सहस्र वर्षों तक तपस्या की तो अग्नि आदि समस्त देवता अत्यन्त व्यथित हो उठे और उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये पाँच अप्सराओं को भेजा।[30] श्री राम ने अगस्ताश्रम में स्थित अग्नि के मंदिर को देखा।[31] राम के दूत के रूप में हनुमान के उपस्थित होने पर तर्क-वितर्क करती हुई सीता ने अन्य देवताओं सहित अग्नि को भी नमस्कार किया।[32] हनुमान की रक्षा के लिये सीता ने अग्नि का आवाहन किया।[33] अग्नि ने कथन नामक बानर यूथपति को एक गन्धर्व-कन्या से उत्पन्न किया था।[34] सीता की अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि देवता सीता को गोद में लेकर चिता से ऊपर उठे और राम को समर्पित करते हुए उसकी पवित्रता को प्रमाणित किया। जिसके पश्चात् राम ने सीता को सहर्ष स्वीकार कर लिया।[35] लवणासुर का वध कर देने पर वर देने के लिये अग्निदेव शत्रुघ्न के सम्मुख उपस्थित हुए[36] और वर देने के बाद ही अन्तर्ध्यान हो गये।[37] शम्बूक का वध कर देने पर अग्नि ने राम को धन्यवाद दिया।[38] वृत्तासुर का वध कर देने के पश्चात् इन्द्र जब ब्रह्महत्या के भय से भाग गये तब अग्नि आदि देवता विष्णु की स्तुति करने लगे।

यद्यपि रामायण में अग्नि का औषधि के रूप में स्पष्ट रूप से प्रयोग नहीं किया गया है तथापि उपरोक्त उद्धरणों पर दृष्टिपात करने से इसका महत्त्व कम नहीं किया जा सकता।

वायु

वाल्मीकि रामायण में 'वायु' का भी विविध सन्दर्भों में अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। सूक्ष्म अवलोकन के आधार पर प्रस्तुति निम्नवत् है–

इन्होंने कुशनाभ की 100 पुत्रियों को अपनी भार्या बन जाने के लिये कहा।[39] कुशनाभ की पुत्रियों ने हंसते हुए अवहेलना पूर्वक इनके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।[40] इन्होंने कुपित होकर उनके शरीर में प्रविष्ट हो उनके अंगों को मोड़कर टेढ़ा कर दिया जिससे वे कुबड़ी हो गयीं।[41] कुब्जत्व को प्राप्त होकर कुशनाभ की पुत्रियों ने अपने पिता को अशुभ मार्ग का अवलम्बन करके बलात्कार करने की वायु की इच्छा को बताया।[42] ब्रह्मदत्त के साथ विवाह के समय उन कन्याओं के कुब्जत्व को इन्होंने दूर किया।[43] देवताओं ने अग्नि को इनके सहयोग से शिव का तेज धारण करने को कहा।[44] इन्द्र ने दिति के गर्भ के जो सात टुकड़े कर दिये उनमें से तीसरा दिव्य वायु के नाम से विख्यात हुआ।[45] श्री राम के वनवास के समय उनकी रक्षा करने के लिये कौसल्या ने इनका आवाह्न किया।[46] श्री राम ने अगस्त्य के आश्रम पर इनके स्थान का दर्शन किया।[47] श्री राम ने इनसे भी सीता का पता पूछा।[48] मैनाक पर्वत ने बताया कि पूर्व काल में जब इन्द्र अपने वज्र से उसका पंख काट देना चाहते थे तो वायु देवता ने सहसा उसे समुद्र में गिरा दिया।[49] वह भी रावण के भय से अशोक वाटिका में अधिक वेग से नहीं बहते थे।[50] हनुमान ने अपनी सफलता के लिये इनकी स्तुति की।[51] रावण को अपना परिचय देते हुए हनुमान ने अपने को इनका औरस पुत्र बताया।[52] सीता ने अग्नि में प्रवेश करते समय अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिये इनका भी आवाह्न किया।[53] ''जब इन्द्र के वज्र प्रहार से आहत होकर इनके पुत्र हनुमान आहत हो गये तो क्रुद्ध होकर इन्होंने अपनी गति रोक दी। इनकी गति रुक जाने से पीड़ित होकर देवगण ब्रह्मा की शरण में आये। ब्रह्मा ने बताया कि इनके पुत्र पर वज्र प्रहार होने के कारण ही वे कुपित हैं। तदनन्तर इन्हें ही सुख और सम्पूर्ण जगत बताते हुए देवों के साथ ब्रह्मा इनके पास आये। उस समय इन्हें गोद में अपने पुत्र को लिये हुए देखकर ब्रह्मा सहित समस्त देवताओं को अत्यन्त दया आयी।''[54] देवताओं ने इनके पुत्र हनुमान को जीवित करके वरदान दिये और उसके बाद ये हनुमान को लेकर अंजना के पास आये।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'वायु' स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है तथा इसके बिना व्यक्ति का जीवित रहना असम्भव है। वायु पाँच प्रकार की होती है-

प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान।

इन सबका रामायण में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मेघ

मेघ से तात्पर्य 'बादल' से है अर्थात् मेघ चिकित्सा कार्य में किस प्रकार सहायक है। रामायण में मेघ का उल्लेख तो अवश्य हुआ है किन्तु बादल के रूप में नहीं अपितु पर्वत के नाम के रूप में। मेघ एक पर्वत का नाम है जिसके उस पार 60,000 पर्वतों के बीच मेरु पर्वत स्थित था।[55]

सूर्य

'सूर्य किरण-चिकित्सा' वर्तमान काल में एक विशेष चिकित्सा प्रणाली है। इसके अन्तर्गत विविध प्रकार से धूप-स्नान आदि के द्वारा चिकित्सा की जाती है।

वाल्मीकि रामायण में सूर्य किरण द्वारा चिकित्सा का कहीं विशेष उल्लेख तो नहीं किया गया है किन्तु 'सूर्य' का अनेकानेक स्थानों पर नामोल्लेख अवश्य मिलता है। यथा–

सूर्य ने सुग्रीव को जन्म दिया।[56] श्री राम के वन-गमन के समय उनकी रक्षा के लिये कौसल्या ने इनका आवाहन किया।[57] श्री राम ने अगस्त्य के आश्रम पर इनके स्थान का दर्शन किया।[58] विश्वेदेव, वसु, मरूदगण आदि देवता सायंकाल के समय मेरु पर्वत पर आकर इनका उपस्थान करते थे।[59] हनुमान ने समुद्र लंघन के समय इनका स्मरण किया।[60] जब रावण से युद्ध करते हुए श्री राम थककर अत्यन्त चिन्तित हुए तो अगस्त मुनि ने इनके पास आकर उन्हें 'आदित्य हृदय' नामक अत्यन्त गोपनीय स्त्रोत का जप करने के लिये कहा।[61] अगस्त्य ने बताया कि सूर्य अपनी अनन्त किरणों से सुशोभित, नित्य उदय होने वाले, देवताओं और असुरों द्वारा नमस्कृत, विवस्वान् प्रभा का विस्तार करने वाले और भुवनेश्वर हैं।[62] समस्त देवता सूर्य के ही स्वरूप हैं। ये तेज की राशि तथा अपनी किरणों से जगत् को सत्ता एवं स्फूर्ति प्रदान करने वाले हैं–और ये ही अपनी रश्मियों का प्रकाश करके देवताओं तथा असुरों सहित सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं।[63] अगस्त्य ने सूर्य की महिमा का विशद् वर्णन किया है।[64] अगस्त्य मुनि ने सूर्य का महत्त्व बताते हुए श्री राम को 'आदित्य हृदय' का तीन बार जप करने का परामर्श दिया।[65] मुनि का उपदेश सुकनर श्री राम ने प्रसन्न होकर शुद्ध चित्त से 'आदित्य हृदय' को धारण किया और तीन बार आचमन करके शुद्ध हो भगवान सूर्य की ओर देखते हुए उनका तीन बार जप किया।[66] उस समय देवताओं के मध्य में खड़े हुए भगवान सूर्य ने प्रसन्न होकर श्री राम की ओर देखा और रावण के विनाश का समय निकट जानकर उनसे शीघ्रता करने के लिये कहा।[67]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में सूर्यदेव का अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है।

चन्द्र

वाल्मीकि रामायण में 'चन्द्र' का भी चिकित्सकीय उल्लेख नहीं किया गया है तथापि इसका जो भी उल्लेख प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है–चन्द्र का क्षीर-समुद्र से प्रादुर्भाव हुआ था। इसे 'शीत रश्मिः निशाकरः' कहा गया है।[68] यह

आकाश-गंगा से 80,000 योजन ऊपर स्थित है।[69] जब रावण इसके निकट आया तो इसने अपनी शीताग्नि से उसका दहन कर दिया।[70] इसने राजसूय यज्ञ के द्वारा इस उच्च स्थान को प्राप्त किया।[71]

इस प्रकार रामायण में चन्द्र का उल्लेख प्राप्त होता है।

द्वितीय परिच्छेद
वानस्पत्य औषधियाँ

वाल्मीकि रामायण एक चिकित्सा ग्रन्थ नहीं है तथापि अनेकानेक वानस्पत्य-औषधियों का नामोल्लेख प्राप्त होता है। इनका गुण-दोष विवेचन प्रस्तुत है–

अगर (अभिष्ट)

नाम

संस्कृत	-	अगुरु, वंशिक, राजार्ह, कृमिजम्।
हिन्दी	-	अगर।
द्राविड़ी	-	अहिलकट्टे।
अरबी	-	ऊद।
फारसी	-	ऊदखाम।
लेटिन	-	Aquilaria Agallocha (एक्वीलेरिया एजेलोका)

वर्णन

अगर के वृक्ष सिलहट, मल्लाबार, मलयाचल, मनीपुर इत्यादि स्थानों पर होते हैं। इसकी ऊँचाई 60 से 100 फीट तथा गोलाई 5 फीट तक होती है। इसके छिद्रों में राल की तरह कोमल और सुगन्धित पदार्थ बहता रहता है जो अगरबत्ती बनाने और शरीर पर मलने के काम आता है।

गुण-दोष

चरक के मतानुसार अगर शीत-प्रशामक और खाँसी को नष्ट करने वाला है। सुश्रुत के मतानुसार यह कांति-वर्धक, कफ नाशक, कुष्ठ, खुजली को नष्ट करने वाला है।

राजनिघण्टुकार के मतानुसार काला अगर कड़ुवा, उष्ण, लेप में शीतल, पीने में पित्त नाशक और किसी-किसी के मत से त्रिदोष नाशक है। काष्ठागरु-चरपरी, गरम लेप में रूखी और कफ नाशक है। दाहागुरु-चरपरी, गरम, केश-वर्धक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाली है और मंगलागुरु शीतल गंध वाही और योगवाही है।

निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार अगर सुगन्धित, गरम, कटु, स्निग्ध मंगलदायक, रुचिकारी, धूपयोग्य, पित्तजनक, तीक्ष्ण तथा वात-कफ, कर्ण-रोग और कीढ़ का नाश करने वाली है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार अगर गरम, चरपरी, त्वचा को हितकारक, कड़वी, तीक्ष्ण, पित्तजनक हल्की तथा कर्ण रोग, नेत्र रोग, शीत, वात और कफ नाशक है।

इसकी लकड़ी-तीक्ष्ण, सुगन्धित, तेलयुक्त, गरम, धातु परिवर्तक, पौष्टिक, पेट के अफारे को दूर करने वाली है। कुक्कुर खाँसी (Whopping Cough) और नेत्र की पीड़ा में लाभकारक है।

उपयोग

त्वचा रोग और कांति-वर्धन के लिये अगर का लेप करना चाहिये।

कामोद्‌दीपन

अगर का चोया पान में लगाकर खाने से अत्यन्त कामोतेजना होती है। बाजीकरण औषधि में भी यह मिलाकर दिया जाता है।

मन्दाग्नि

मन्दाग्नि और हृदय रोग में इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में उनके स्थलों पर अगरु का प्रयोग किया गया है। श्री राम राज्याभिषेक के समय अयोध्या नगरी में धूप,[1] चिता जलाने के लिये,[2] धूप के लिये,[3] श्मशान में चिता पर,[4] बिना राजा के नगर की स्थिति।[5] धूप के निमित्त,[6] लेप के लिये,[7] चित्रकूट में,[8] धूप के निमित्त,[9] लंका में समुद्र तट पर,[10] किष्किन्धापुरी में,[11] दक्षिण गुफा में,[12] रावण के निवास गृह में,[13] शुभ-शकुन,[14] बालक राम की बाहों पर लेप,[15] अगरु जल का प्रयोग,[16] रावण के शव को जलाने के लिये,[17] अयोध्या की अशोक वाटिका में[18], आदि प्रसंगों में अगरु का उल्लेख किया गया है।

अर्जुन

नाम

संस्कृत	अर्जुन, ककुभ।
बंगाली	अर्जुन,
मराठी	अर्जुन, सादड़ा।
लेटिन	Terminalia Arjuna
अंग्रेजी	Arjuna-Myro Balan.

वर्णन

यह वृक्ष हिमालय की तलहटी, बर्मा, बंगाल, मध्य-भारत, दक्षिण विहार, छोटा नागपुर, सीलोन, इत्यादि प्रान्तों में नदी नालों के किनारे पैदा होता है। पंजाब तथा वायव्य प्रान्तों में यह कुदरती तौर पर पैदा नहीं होता है।

अर्जुन के वृक्ष जंगलों में पैदा होते हैं, ऊँचाई 60 से 80 फीट तक गोलाई 10 से 20 फीट होती है।

गुण-दोष और प्रभाव

राजनिघण्टु के अनुसार अर्जुन कसैला, गरम, कफ-नाशक, व्रण-शोधक तथा पित्त, श्रम और तृषा-निवारक है, यह वात को कुपित करता है तथा क्षत, भग्न और मत्र-कृच्छ रोग में हितकारी है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार यह कसैला, उष्ण, मधुर, शीतल, कान्तिजनक, व्रण-शोधक, बल कारक, हल्का तथा अस्थि भंग, अस्थि संहार, कफ, पित्त, श्रम, तृषा, दाह, प्रमेह, हृदय रोग, पाण्डुरोग विष बाधा, क्षत क्षय, मेदवृद्धि, रुधिर-विकार, पसीना, श्वास, क्षत और भस्म रोग को नष्ट करता है।

सुश्रुत के मतानुसार इस पौधे की राख सर्पदंश के काम में ली जाती है। वाग्भट के मतानुसार बिच्छू के डंक पर इसका छिलका प्रयोग में लिया जाता है।

महर्षि चरक् इसको संकोचक व मूत्र को साफ करने वाला बतलाते है।

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रियों में वाग्भट ही पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस औषाधि को हृदय रोग के अन्दर उपयोगी बताया है। उनके पश्चात् तो चक्रदत, भाव मिश्र और आयुर्वेद के अन्य शास्त्रियों ने भी इसको हृदय रोग की महौषधि माना है।

उपयोग

रक्त-पित

अर्जुन की छाल को रात भर जल में भिगोकर रखें, सबेरे उसको मलकर, छानकर या उसको औटाकर उसका क्वाथ पीने से रक्त-पित्त में लाभ पहुँचता है।

शुक्रमेह

शुक्रमेह के रोगी को अर्जुन की छाल या श्वेत चन्दन का रस क्वाथ पिलाने से लाभ पहुँचता है।

क्षय-कास

अर्जुन की छाल के चूर्ण में अडूसे के पतों के पत्तों के स्वरस की सात भावना को देखकर शहद, मिश्री या गो घृत के साथ चटाने से क्षय की खाँसी का-जिसमें कफ में खून जाता हो-नाश होता है।

मूत्राघात

मूत्राघात रोग में अर्जुन की अन्तर छाल का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये। वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर अर्जुन का उल्लेख मिलता है। अप्रत्यक्ष सीता के विषय में राम का प्रश्न,[19] पंपासर के अरण्य में,[20] प्रस्रवण गिरि पर,[21] माल्यवान पर्वत पर,[22] माल्यवान् पर्वत पर,[23] मलय पर्वत कानन में,[24] सेतु निर्माणार्थ,[25] सुवेल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य,[26] कैलाश में,[27] अयोध्या की अशोक वनिका में आदि कई स्थलों पर विविध प्रसंगों में अर्जुन का उल्लेख किया गया है।

अनार

नाम

संस्कृत	दाडिम
हिन्दी	अनार
मराठी	डालिब
गुजराती	दाडम
बंगला	दाड़िम



करनाटकी	दारलिव
तेलंगी	डानिबचेट्टु
तमिल	मादलई चेहेड्डि
फारसी	अनार
अरबी	रुमान हामिज
लेटिन	Punica Granatum.

वर्णन

अनार का वृक्ष प्रायः सर्वत्र बगीचों में होता है।

गुण-दोष और प्रभाव

भाव-प्रकाश के मतानुसार अनार तीन प्रकार का होता है। एक मीठा, दूसरा खट-मीठा, तीसरा केवल खट्टा। मीठा अनार त्रिदोष नाशक, तृषा, दाह, ज्वर, हृदय-रोग, कण्ठ-रोग और मुख-रोग को दूर करने वाला, तृप्ति-कारक, वीर्य-वर्धक, हल्का, किंचित् कसैला, मल-रोधक, स्निग्ध, मेधा-जनक और बल-वर्धक है। खट-मीठा, अनार-दीपन, रुचि कारक, किंचित् पित्त-कारक और हल्का है। खट्टा अनार-पित्त कारक, खट्टा तथा वात और कफ नाशक है।

आयुर्वेद के मतानुसार इसकी छाल और जड़ वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी तथा अतिसार को रोकने वाली और कृमि नाशक है। इसके फूल नाक से बहने वाले खून में बहुत लाभदायक हैं। इसका कच्चा फल पौष्टिक, पाचक, क्षुधा-वर्धक, पित्त कारक और वमन को रोकने वाला है। इसका पका हुआ फल पौष्टिक आँतों को सिकोड़ने वाला-कामोद्दीपक, पित्त-नाशक और त्रिदोष को नाश करने वाला है। प्यास, शरीर की जलन, बुखार, हृदय रोग, गले की बीमारियों और मुख की सूजन में भी इसका पका फल उपयोगी है। इसके फल का छिलका कृमि-नाशक, रक्तातिसार, और खाँसी में लाभदायक है।

मीठा अनार खून पैदा करने वाला, रस क्रिया को दुरस्त करने वाला, मूत्र निस्सारक, पेट को मुलायम करने वाला आदि गुणों को धारण करता है।

खट्टा अनार छाती की जलन तथा आमाशय और यकृत की गर्मी को शान्त करने वाला तथा खून के प्रकोप, ज्वर जन्य अतिसार और वमन में लाभदायक है।

खट्-मीठा अनार पैत्तिक वमन, अतिसार और खुजली में लाभ पहुँचाने वाला है।

उपर्युक्त वर्णन से मालूम होता है कि अनार के अन्दर हृदय को बल देने की और कृमियों को नष्ट करने की अच्छी शक्ति है।

उपयोग

सूखा रोग में अनार की जड़ की छाल का क्वाथ (काढ़ा) बनाकर देने से बहुत लाभ होता है। कामला अनार का रस 6-7 तोले और जरिश्क 6 माशे मिलाकर दोनों समय पिलाने से कामला रोग को लाभ पहुँचता है।

इनके अतिरिक्त बवासीर, खाँसी, अतिसार, उन्माद और हिस्टीरिया, स्त्री-प्रदर,

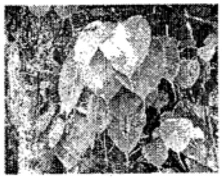
कण्ठ-माला इत्यादि में भी यह लाभप्रद है।

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थानों पर अनार का उल्लेख मिलता है। यथा—विवाह मण्डप में, विरही श्री राम का प्रश्न[29] सेतु निर्माणार्थ,[30] अयोध्या की अशोक वनिका में,[31] आदि।

अश्वत्थ (पीपल)

नाम

संस्कृत- अश्वत्थ, बोधिद्रुम, चैत्यद्रुम, चैत्याक्ष, चल-दल, चल-पत्र, देवात्म, धनुर्वृक्ष, गजभक्षक, गजपत्र, गजाशन, गुह्यपुष्प, गुरु, कपीतन, कृष्णावास, क्षीरद्रुम, महाद्रुम, माँगल्य, नागबन्धु, पवित्रका, पिप्पल, सेव्य, वृक्षराज, शुचिद्रुम इत्यादि।



हिन्दी - पीपल, पीपली।
गुजराती - पीपलो पीपुल, जरी।
बंगाल - अश्वथ, असुद, असवट।
बम्बई - पीपल, अरली बुसरी।
पंजाब - भोर, पीपल।

तमिल- अचुक्तम अटासु, अरशमरम, अस्वतम, माघदुरुमम, नारायणम्, कुजीरावनम् इत्यादि।

तेलगु- अश्वथ्थमु, बोधि, रावीचेट्टु इत्यादि।

फारसी - दरख्त तेंरजो।

English Pipal Tree.

लेटिन- Ficus Religiosa (फायकस रेलीगोसा)

वर्णन

पीपल के वृक्ष हिन्दू धर्म-शास्त्रों के अन्दर बहुत पूज्य माने गये हैं। इस वृक्ष के अन्दर प्राण-वायु को शुद्ध करने का दिव्य गुण रहता है और इसीलिये क्षय, दमा, कुष्ठ, प्लेग, भगन्दर इत्यादि अनेक रोगों पर यह लाभदायक सिद्ध होती है। इसके बड़े-बड़े वृक्ष भारतवर्ष में सब जगह पैदा होते हैं और सब लोग इसको जानते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार पीपल, मधुर, शीतल, कसैला, दुर्जर, भारी, रूखा, कान्ति को उज्ज्वल करने वाला कड़वा, योनि शोधक और रुधिर दोष, दाह, पित्त, कफ और व्रण को दूर करने वाला है। इसके पके हुए फल शीतल, हृदय को हितकारी तथा रक्त-दोष, पित्त, विष, दाह, वमन, शोष व अरुचि को दूर करने वाले हैं।

पीपल की छाल स्तम्भक, रक्त-संग्राहक और पौष्टिक होती है। इसके पत्ते आनुलोमिक तथा फल पाचक, आनुलोमिक, संकोच विकास प्रतिबन्धक और रक्त को शुद्ध करने वाले होते हैं।

उपयोग

मूत्रकृच्छ्र- पीपल की छाल का क्वाथ या फाँट बनाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ मिटता है।

खुजली- इसकी छाल का क्वाथ या फाँट बनाकर पिलाने से खुजली मिटती है।

विसर्प रोग- इसकी जड़ की छाल के क्वाथ से विसर्प रोग मिटता है।

दमा- पीपल के सूखे पत्तों को पीसकर 13 दिन तक जल के साथ फक्की देने से दमा में लाभ होता है।

पित्त की सूजन- इसकी छाल को पानी में पीसकर उसका ठंडा लेप करने से पित्त की सूजन बिखर जाती है।

हिचकी- इसकी छाल को जलाकर उसकी राख को पानी में घोलकर उसके नितरे हुए पानी को पिलाने से हिचकी बन्द हो जाती हैं।

इस प्रकार अश्वत्थ (पीपल) का अनेकानेक रोगों में प्रयोग किया जाता है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका एक दो स्थलों पर उल्लेख देखने को मिलता है- यथा—भारद्वाजाश्रम पर[32] तथा पंपासार के पास[33] आदि।

अर्क (आक)

नाम

संस्कृत - अर्क, राजार्क, क्षीरदल, शुक्रफल, विभावसु।

हिन्दी - आक, मंदार।

बंगाली - आकंद।

मराठी - रुई, पादरी रुई।

तैलंगी - नलिजिल्ले डे घोली, तेलाजिल्ली डे।

फारसी - खरक, दूध।

अरबी - ऊशर।

अंग्रेजी - Ginatic Swallow Wort (जायजेन्टि स्वेलो वर्ट)

लैटिन- Galotropis Gigantica (गेलोट्रोपिस जायजेन्टिका),
Calotropis Proceera (के. प्रोसीरा)

वर्णन

आक के झाड़ सब स्थानों पर मिल जाते हैं। इसकी लाल और सफेद, इस प्रकार दो जातियाँ होती हैं। लाल जाति को लैटिन में Calotropis Gigantica (के. जायजेन्टिका), और सफेद जाति को Calo. Proceera कहते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार दोनों प्रकार के आक रेचक तथा वात, कोढ़, कण्डू, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, श्लेष्मा, उदर, यकृत और कृमि रोग को नष्ट करने वाले हैं।

आक का दूध तिक्त, उष्ण स्निग्ध, लवण रस युक्त, हल्का तथा कोढ़, गुल्म और उदर रोग को नष्ट करने वाला है। यह एक श्रेष्ठ विरेचन है।

इसकी जड़ की छाल पसीना लाने वाली, श्वास को दूर करने वाली, गरम, वमन कारक और उपदंश को नष्ट करने वाली है।

इसका फूल मधुर, तिक्त, ग्राही तथा कुष्ठ, कृमि, चूहे का जहर, रक्त-पित्त, गुल्म और सूजन को दूर करने वाला है।

उपयोग

बवासीर- तीन बूंद आक का दूध लेकर और उस पर कुटा हुआ जवाखार बुरक कर उसे बताशे में रखकर निगल जाये इस प्रयोग से बवासीर बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है।

खाँसी और दमा- आक के कोमल पत्तों का काढ़ा करके उस काढ़े को जौ की धानी की सात भावना देकर सुखा लेना चाहिये। फिर उसका चूर्ण करके छः माशे की मात्रा में शहद के साथ चटाने से श्वास रोगों में लाभ होता है।

इनके अतिरिक्त उदर रोग, विसूचिका, कोढ़, नासूर, रक्त-विकार, दाद, लकवा, फालिज, गठिया, साँप, बिच्छु, पागल कुत्ते के जहर, अपस्मार, नेत्र रोग, कर्ण-रोग, दन्त रोग, पथरी आदि में भी यह बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी अर्क का उल्लेख मिलता है।[34]

अपामार्ग[35]

नाम- संस्कृत - अपामार्ग
हिन्दी - चिरचिरा, लटजीरा, ओंगा।
गुजराती - अधेढ़ो।
मराठी - अधाढ़ा।
बंगाली - आपांग।
मारवाड़ी - आंधी झाड़ो।
सिन्धी - गर्जिका।
कर्नाटकी- उत्तरेणी।
तेलंगी - दुच्चेणीके ।
लेटिन - Achyran thus Aspera (एचीरेन्थस एस्पेरा)
फारसी - खारवाजू।
अरबी - अत्कूमह।

वर्णन

अपामार्ग का छोटा क्षुप होता है, यह वर्षा ऋतु में स्थान-स्थान पर दिखाई देता है, कहीं-कहीं बारह मास भी होता है। इसकी ऊँचाई एक से तीन हाथ तक होती है। पत्ते लम्बाई लिये हुए कुछ गोल तथा नोकदार होते हैं। पत्तों के बीच में से एक मंजरी निकलती है। उसमें सूक्ष्म और काँटे युक्त बीज होते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक लाल दूसरा सफेद।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेद के अंदर अपामार्ग की गणना अत्यन्त प्रभावशाली दिव्य औषधियों में की गयी है। अथर्ववेद के 70 सूक्त के चौथे काण्ड में अपामार्ग की स्तुति की गयी हैं।[36]

राजनिघण्टु के मतानुसार अपामार्ग कड़वा, गरम, चरपरा, कफनाशक तथा कण्डू एवं उदर रोग, आँव और रुधिर-विकार को दूर करता है। यह वमनकारक व मलरोधक भी है।[37]

भाव-प्रकाश के मतानुसार यह दस्तावर, तीक्ष्ण, दीपन, कड्वा, गर्म चरपरा, रुचिकारक तथा वमन, कफ, मेदोरोग, वात, हृदयरोग, आध्मान, बवासीर, कंडू शूल, उदर रोग और पाचन शक्ति की हीनता को दूर करता है।[38]

शोढ़ल के अनुसार अग्नि कारक, तीक्ष्ण, नस्य लेने से सिर के कीड़ों को नष्ट करने वाला, वमन कारक.............।[39]

उपयोग

पथरी- अपामार्ग की छः माशा ताजी ज़ड़ को पानी में घोटकर पिलाने से पथरी रोग में बड़ा लाभ मिलता है। यह औषधि बस्ति की पथरी को टुकड़े-टुकड़े करके निकाल देती है। वृक्क शूल के लिये भी यह महौषधि है।

नासूर- इसके पत्तों का रस नासूर के ऊपर लगाने से नासूर भर जाता है।

इनके अतिरिक्त उदर, कण्ठ, दन्त, बुखार आदि रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में 'अपामार्ग' का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

मन्दार

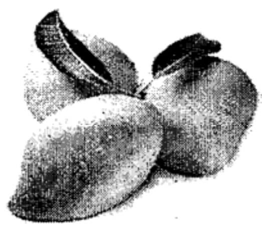
मन्दार 'अर्क' का ही पर्यायवाची है। इसकी विशद् समीक्षा 'अर्क' के अन्तर्गत ही की गयी है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। कैलास पर्वत पर विभिन्न वृक्षों के मध्य मन्दार भी शोभा पा रहा था।[40] रम्भा के सौन्दर्य को भी मन्दार के पुष्प और अधिक बढ़ा रहे थे।[41]

आम

नाम

संस्कृत - आम, फलश्रेष्ठ, कामसर, काम, वल्लभ, वसन्तद्रु इत्यादि।
हिन्दी - आम।
बंगाल - आम।
मराठी - आँबा।
गुजराती - आँवो।
कर्नाटकी - माविनफल।
तेलंगी - माविडी।
इंग्लिश - Mango
फारसी - ऑवा।



अरबी - अबज।
लेटिन - Mangifera Indica ।

वर्णन

आम की कई जातियाँ होती हैं। जो आम जंगलों में पैदा होते हैं, वे रानी आम कहलाते हैं तथा जो बागों में होते हैं वे देशी आम कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त हाफुस, पायरी, सफेदा, लंगड़ा, नीलम, तोतापरी, राज भोग, कृष्ण-भोग, मोहन भोग, गुलाब-खास इत्यादि भी होते हैं।

औषधि-कार्य में कलमी आम की अपेक्षा चूसने के लायक देशी आम ज्यादा गुणकारी होते हैं क्योंकि ये आसानी से पच जाते हैं।

गुण, दोष एवं प्रभाव

आम के वृक्ष का छिलके से लेकर फल तक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग औषधि के कार्य में आता है इसलिये उन सबका अलग-अलग उल्लेख इस प्रकार है—

आयुर्वेदिक मतानुसार **आम का कच्चा फल** कसैला, खट्टा, रुचिकारक तथा वातपित्त को पैदा करने वाला है। यह आँतों को सिकोड़ने वाला, गले की तकलीफों को दूर करने वाला तथा अतिसार, मूत्र-व्याधि और योनि रोग में लाभ पहुँचाने वाला है। कच्चे आम की अमचूर खट्टी, स्वादिष्ट, कसैली, मेदक और कफ, वात को हरने वाली है।

पका हुआ आम

मधुर, स्निग्ध, वीर्य-वर्धक, सुखदायक भारी, वात-विनाशक, कान्तिवर्धक, शीतल प्रमेह नाशक तथा व्रण-श्लेष्म और रुधिर के रोगों को दूर करने वाला है।

आम का मौर

शीतल, वात-कारक मल-रोधक, अग्नि-दीपक, रुचिवर्धक तथा कफ पित्त, प्रमेह का नाश करने वाला है।

आम की जड़

यह कैसली, मलरोधक, रुचिदायक, शीतल, सुगन्धित तथा कफ और वात को नष्ट करने वाली है।

आम के पत्ते

आम के कोमल पते कसैले, मल-रोधक, रुचिकारक तथा वात, पित्त और कफ को हरने वाले हैं।

आम की गुठली

आम की गुठली मीठी, तुरी और कुछ कसैली होती है। यह वमन अतिसार और हृदय के आस-पास की पीड़ा को दूर करती है। इसके बीज का तैल कसैला, स्वादिष्ट, रूखा, कड़वा तथा मुख-रोग, कफ एवं वात को दूर करता है।

उपयोग

श्वेत-प्रदर, खूनी बवासीर तथा फेफड़े के द्वारा रक्त-स्राव होने की दशा में तथा कृमि-रोग में भी आम की छाल का रस या इसका ठंडा काढ़ा 4 तोला और

चूने का नितरा हुआ पानी 1 तोला मिलाकर सात दिन तक लेने से बहुत लाभ होता है।

गले के रोग

आम के सूखे पत्तों को चिलम में रखकर पीने से गले के रोग मिटते हैं।

इसके अतिरिक्त सुजाक, अतिसार बवासीर, कर्ण पीड़ा, नेत्र-पीड़ा, नक्सीर, रक्त-स्राव आदि में आम का विविध रूपों में प्रयोग किया जाता है।

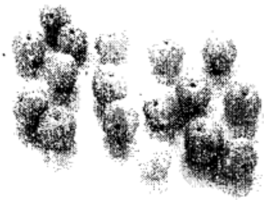
वाल्मीकि रामायण में आम का उल्लेख अनेकानेक स्थलों पर किया गया है, जिनके सन्दर्भ निम्नवत् हैं—अयोध्यापुरी में,[42]

उदाहरण - स्वरूप,[43] जनपद में,[44] उदाहरण स्वरूप,[45] चित्रकूट में,[46] माल्यवान पर्वत पर[47] आदि।

आँवला

नाम

संस्कृत	-	आमल, पंचरसा। शिवा, घातकी, अमृता, व्यस्था, अमृत-फला, श्रीफल इत्यादि।
हिन्दी	-	आँवला।
गुजराती	-	आँवला।
कर्नाटकी	-	नेल्लि।
तेलगू	-	उसरकाय।
फारसी	-	आम्लझम्।
अरबी	-	अम्लज्।
अंग्रेजी	-	Embelic Myrobolan
लैटिन	-	Phyllanthus Embelic (फिलेन्थस इम्बेलिका)



वर्णन

आँवले के वृक्ष भारत-वर्ष के जंगलों में प्राकृतिक रूप से पैदा होते हैं। बनारस का आँवला भारत वर्ष में सर्वाधिक अच्छा होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

महर्षि चरक का कथन है कि संसार के अन्दर अवस्था-स्थापक जितने द्रव्य हैं, उनमें आँवला सबसे प्रधान है। श्रेष्ठ फल होने के कारण तथा ग्राही, मूत्रल, रक्त-शोधक एवं रुचिकारक होने के कारण ये अतिसार, प्रमेह, दाह, कामला, अम्लपित, विस्फोटक, पाण्डु, रक्त-पित्त, वात-रक्त, अर्श, बद्धकोष्ठ, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को नष्ट करता है, दृष्टि को तेज करता है, वीर्य को दृढ़ करता है और आयु की वृद्धि करता है। आँवले के फलों के अतिरिक्त इसके अन्य अंग भी कार्यमें आते हैं। इसके पतों को पानी में उबालकर उस पानी से कुल्ला करने पर मुँह के छाले समाप्त हो जाते हैं।

उपयोग

अतिसार - आँवलों को जल में पीसकर रोगी की नाभि के आस-पास उनकी थाल बाँध दें और उस थाल में अदरक का रस भर दें। इस प्रयोग से अतिसार में बहुत लाभ होता है।

हिचकी - आँवला, केंत का रस और पीपल का चूर्ण शहद के साथ रोगी को सेवन कराने से हिचकी में लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त बवासीर, मूत्रकृच्छ, सोम-रोग, श्वेत-प्रदर, नेत्र-रोग, पित्त-ज्वर और चित की घबराहट, रक्त-पित्त, योनि-दाह, पाण्डु रोग, सुजाक, नक्सीर, आँख की फूली, मूत्र रोग आदि में भी बहुत उपयोगी है।

वाल्मीकि रामायण में भी आँवले का उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है यथा—योग का आश्रय लेकर उन धर्मात्मा महर्षि ने पूर्वकाल में जो जो घटनाएँ घटित हुई थीं, उन सबको यहाँ हाथ पर रखे हुए आँवले की तरह प्रत्यक्ष देखा[48] भरद्वाज मुनि के आश्रम का वर्णन करते हुए भी कहा गया है 'स्थान-स्थान पर बेल कैथ, कटहल, आँवला, बिजौरा तथा आम के वृक्ष लगे थे, जो फलों से सुशोभित हो रहे थे।'[49] आम, जामुन, आँवला आदि घनी छाया वाले वृक्षों से, यह पर्वत (चित्रकूट) अनुपम शोभा का पोषण एवं विस्तार कर रहा है।[50]

भारद्वाज के ही आश्रम का वर्णन में पुनः आँवले का उल्लेख करते हुए कहा गया है, शिशंपा, आमलकी और जम्बू आदि स्त्रीलिङ्ग वृक्ष तथा मालती, मल्लिका और जाति आदि वन की लताएँ नारी का रूप धारण करके भारद्वाज मुनि के आश्रम में आ गयीं।[51] राम की वानर सेना के गमन काल में भी इसका उल्लेख मिलता है- 'उछल-उछल कर चलने वाले वे वीर वानर सैनिक रास्ते के अंकोल करंज, पाकर, बरगद, जामुन, आँवले और नीप आदि वृक्षों को भी तोड़ डालते थे।'[52]

इस प्रकार उपरोक्त स्थलों का दर्शन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायण में आँवले का उल्लेख प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

औदुम्बरम्

नाम

संस्कृत- औदुम्बरम्, उदम्बर, हेमदुग्धक, जंतुफल, क्षीर वृक्ष।
हिन्दी- गूलर, ऊमर, परोआ।
गुजराती - उमरो।
मराठी - ऊंबर, गूलर।
बंगाली - यज्ञ- डुम्बर, जगनी डुम्बर।
पंजाब- ददुरि, काकमाल।
अरबी - जमीक्षा।
तमिल - अतिमरम।
तेलगू- अत्तिमाणु।
फारसी- अंजीरे आदम।
लेटन- Ficus Glomerata (फिकस ग्लोमीरेटा)

वर्णन

औदुम्बर वड़, पीपल और अजार क वर्ग का वृक्ष है। इसका वृक्ष 20 से 30 फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बड़ के पत्तों से मिलते हुए मगर उससे छोटे रहते हैं। इसकी डालियों से इसके फल फूटते हैं। इसके किसी अंग में चीरा देने से उसमें से दूध निकलता है। इसके फल अंजीर के फलों की तरह होते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से गूलर शीतल, गर्भरक्षक, व्रण को भरने वाला, मधुर, रूखा, कसैला, भारी, हड्डी को जोड़ने वाला, वर्ण को उज्ज्वल करने वाला तथा कफ, पित अतिसार एवं योनि रोग को नष्ट करने वाला है। इसकी छाल अत्यन्त शीतल, दुग्ध-वर्धक, कसैली, गर्भ को हितकारी और वर्ण विनाशक है। इसके कोमल फल स्तम्भक, कसैले, रुधिर के रोगों को नष्ट करने वाले और तृषा, पित्त तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं। इसके मध्यम कच्चे फल शीतल, कसैले, रुचिकर तथा प्रदर को नष्ट करने वाले होते हैं। इसके पके हुए फल कसैले, मधुर, कृमि पैदा करने वाले, अत्यन्त शीतल, रुचि-वर्धक, कफ कारक तथा रुधिर-विकार, पित्त, दाह, क्षुधा, श्रम प्रमेह और मूर्च्छा को हरने वाले होते हैं।

मात्रा

छाल की आधे तोले से एक तोले तक, फल की 2 से 4 नग तक और दूध की 10 से 20 बूँद तक है।

उपयोग

घाव

इसकी छाल के क्वाथ से साधारण और जहरीले घाव को धोने से वह जल्दी भर जाता है।

आमातिसार

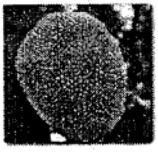
इसके जड़ के चूर्ण को फक्की देने से आमातिसार मिटता है।

बलवृद्धि

इसकी जड़ में छेद करने से एक प्रकार का मद टपकता है। उस मद को लगातार कुछ समय तक लेने से बल बढ़ता है। इनके अतिरिक्त पित्त- विकार, खूनी बवासीर, बहुमूत्र, कर्णमूल, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, दन्तरोग, रक्त-प्रदर, रुधिर की वमन, नक्सीर, गर्भ स्राव, आदि में भी इसका बहुत उपयोग होता है।

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है—लवकुश को किसी ने यज्ञ पात्र दिया, किसी ने गूलर की लकड़ी का बना पीढ़ा अर्पित किया।[53]

कटहल



नाम संस्कृत - पनस, कंटकी फल, पणस, अतिबृहतफल इत्यादि। हिन्दी- कटहर, कटहल, पणस। गुजराती - पणस। मराठी - फणस। बंगला- फणस, काँटोल। तेलगू-फणसचट्ट्ट। तमिल-बला। लेटिन-Artocarpus Inetgrfolia (आरटोकारपस इटेग्रिफोलिया)।

वर्णन

यह भारतवर्ष के अन्दर एक प्रसिद्ध और बड़ा झाड़ होता है। इसका पेड़ चालीस से पचास फुट तक ऊँचा होता है। इसका पिंड छोटा और खड़ा होता है। इसकी छाल बहुत मोटी होती है जिस पर गहरी दरारें होती हैं। इसकी डालियों के रोयें सख्त होते हैं। इसके पत्ते ऊपर से चिकने और नीचे से खुरदरे होते हैं। इसके फूल नहीं आते हैं। इसका फल डालियों पर नहीं लगता बल्कि गूलर की तरह लकड़ी को फोड़कर निकलता है। इसके फल के ऊपर सख्त रोयें होते हैं। इसके फल की लम्बाई गज भर तक होती है। इसका वजन बीस सेर तक होता है। इसमें एक प्रकार का गोंद लगता है, जो पानी में गल जाता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल ग्राही, कसैला, त्रिदोषकारी, बलवर्द्धक और भारी होता है। इसका पका फल शीतल, स्निग्ध, तृप्तिकारी, कामोद्दीपक, मांसवर्द्धक तथा वात, कुष्ठ और व्रण में उपयोगी है। इसके बीज मीठे, मूत्रल, कामोद्दीपक, और कब्जियत करने वाले होते हैं। इसके फल भारी, कड़वे और मुख को साफ करने वाले होते हैं।

उपयोग

इस पेड़ का रस ग्रन्थियों की सूजन पर और अन्य फोड़ों के ऊपर मवाद पैदा करने के लिये लगाया जाता है। इसकी गाँठें यदि कमर के ऊपर बाँधी जाये तो जलार्बुद को दूर कर देती है। इसके छोटे-छोटे पत्ते चर्म-रोगों में काम लिये जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में पनस (कटहल) का उल्लेख अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है—यथा—भारद्वाज के आश्रम में पनस आदि के वृक्षों का उल्लेख भी मिलता है। स्थान-स्थान पर बेल, कैथ, कटहल, आँवला, बिजौरा, तथा आम के वृक्ष लगे थे, जो फलों से सुशोभित हो रहे थे।[54] आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बेल तिन्दुक, बाँस, काश्मरी, अरिष्ट, वरण, महुआ, तिलक, बेर आदि के वृक्ष वहाँ थे।[55]

इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख मिलता है।[56]

कदली

नाम संस्कृत -भानुफल, कदली, राजेष्टा, रम्भा, सुफल, वनलक्ष्मी। हिन्दी—केला, बंगाली—केलि। बम्बई—केला। दक्षिण-केल। गुजराती—केला, तमिल—वालें, अरंबई। तेलगू-अंनति, कदली। लेटिन- Muca Sapientum।

वर्णन

केले का वृक्ष सब तरह प्रसिद्ध है, जिसमें हरी छाल वाली जाति, लाल छाल वाली जाति, पीली छाल वाली जाति, त्रिकोनी जाति, चम्पा चीनी इत्यादि जातियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार इसकी जड़ तीखी, कृमिनाशक, पौष्टिक एवं क्षुधा-वर्द्धक होती है। कफ, पित्त, कान का दर्द, मासिक धर्म की अनियमितता, रक्त-विकार, मधुमेह, अग्नि-मांद्य और कुष्ठ की बीमारी में यह बड़ा लाभदायक है। मधुमेह रोग में भी यह बहुत लाभदायक है। इसके पिंड का रस शीतल और आँतों के लिये संकोचक होता है। यह पेचिश में तथा प्यास, पथरी, बहुमूत्र, कर्ण-रोग, रक्त-विकार और गर्भाशय के रोगों में भी लाभदायक है। इसके फूल मीठे, कसैले और शीतल होते हैं। ये कृमि-नाशक और आँतों को सिकोड़ने वाला होता है। वात-पित्त-क्षय और बच्चों की खाँसी में यह लाभदायक है। इसका कच्चा फल कसैला, शीतल, पौष्टिक और संकोचक होता है। यह वात व कफ पैदा करता है। इसका पका फल मीठा, ठण्डा, पौष्टिक, कामोद्दीपक और क्षुधा-वर्धक है। यह शारीरिक सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है।

उपयोग

सोम रोग

प्रदर का एक भेद

1- केले का पका हुआ फल, आँवलों का स्वरस, शहद और मिश्री इन सबको मिलाकर खाने से स्त्रियों का सोम-रोग और मूत्रातिसार मिट जाता है।

2- केले का फल, विदारी कंद और शतावर इन तीनों को मिलाकर लेने से सोम-रोग नष्ट हो जाता है।

अग्नि से जलना—अग्नि से जले हुए स्थान पर पके हुए केले का पुल्टिस बाँधने से जले हुए स्थान पर शान्ति पहुँचती है। इनके अतिरिक्त मूत्र-दाह, उदर शूल, नक्सीर एवं श्वेत-कुष्ठ आदि में भी यह प्रयोग किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है- जिन्होंने जीवन में कभी दुःख नहीं देखा था—जो दुःख भोगने के योग्य थी ही नहीं, उन्हीं माता कौशल्या को कटी हुई कदली की भाँति अचेत अवस्था में भूमि पर पड़ी देख श्री राम ने हाथ का सहारा देकर उठाया।[57] इसी प्रकार सीता की तुलना भी कदली से करते हुए कहा गया है—दुरात्मा विराध की ये दुष्टता और घमंड से भरी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीता घबरा गयीं और जैसे तेज हवा चलने पर केले का वृक्ष जोर-जोर से हिलने लगता है, उसी प्रकार वे उद्वेग के कारण थर-थर काँपने लगीं।[58] मारीच के भ्रमण में भी केले के वन का उल्लेख आया है—केले के बगीचों में जाकर वह कनेरों के कुंजों में जा पहुँचा, फिर जहाँ सीता की दृष्टि पड़ सके, ऐसे स्थान में जाकर मन्द-गति का आश्रय ले इधर-उधर घूमने लगा।[59] अन्य स्थल भी दृष्टव्य हैं।[60]

कपित्थमूल

नाम—संस्कृत-कपित्थ, दधिस्थ, कुचफल, गन्धफल, ग्राही फल, चिरपाकी। हिन्दी—विलिन, कैथ, कटबेल, कबीट। मराठी—कंबठ, कवीट। गुजराती—कबीट, कोथा। तेलगू-एलाँगाकाय। फारसी—कबीट। उर्दू-कैथ। लेटिन—Feronia

Elephantum (फैरोनिया एलिफेंटम)

वर्णन

कपित्थ का वृक्ष सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। यह वृक्ष बड़ा और बहुत वर्ष जीवी होता है। इसके पत्ते छोटे और चिकने होते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद रंग के होते हैं। इसका फल गोल बेल के फल की तरह होता है। इसके फल की गिरि बहुत खट्टी होती है। उसमें स्थान-स्थान पर बीज जमे हुए होते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार इसका फल मीठा, कसैला, ग्राही, वीर्य-वर्द्धक और पित्त तथा वात को नष्ट करने वाला होता है। इसका कच्चा फल ग्राही, गरम, रूखा, हल्का, खट्टा, रुचि-जनक तथा विष और कफ को नष्ट करने वाला है। इसका पका फल रुचि कारक, खट्टा, कसैला ग्राही, मधुर, कंठशोधक, शीतल, वीर्य-वर्द्धक और दुष्पच्य है। यह श्वास, क्षय, रक्त-दोष, वमन, वायु, त्रिदोष, हिचकी, खाँसी एवं विष को दूर करता है। इसके बीज हृदय-रोग, मस्तक-शूल और विष-विसर्प को दूर करते हैं। इसके बीजों का तैल कसैला, ग्राही, स्वादिष्ट, पित्त-नाशक तथा कफ, हिचकी, वमन और चूहे के विष को दूर करने वाला होता है। इसके पत्ते वमन, अतिसार और हिचकी को दूर करते हैं।

इसका रस कानों में टपकाने से कानों की पीड़ा कम होती है। इसका कच्चा फल वाधा-नाशक एवं आँतों को सिकोड़ने वाला होता है। यह शरीर की खुजली को दूर करता है। इसके फूल विष-प्रतिरोधक होते हैं।

उपयोग

हिचकी- चरक के मतानुसार इसके कच्चे फल का रस साढ़े सात माशे से सवा तोले तक की मात्रा में पीपल और शहद के साथ देने से हिचकी में लाभ होता है।

वमन- सुश्रुत के अनुसार बन्द न होने वाली वमन में इसके कच्चे फल का रस पीपर और शहद के साथ अवलेह के रूप में देने से लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त श्वेत-प्रदर, दमा, चर्म-रोग शीतादि रोग में भी यह लाभकारी सिद्ध होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी ऋषि भारद्वाज के आश्रम में कपित्थ का उल्लेख मिलता है—स्थान-स्थान पर बेल, कैथ, (कपित्थ), कटहल, आँवला, बिजौरा तथा आम के वृक्ष लगे थे, जो फलों से सुशोभित हो रहे थे।[61]

कर्पूर

नाम- संस्कृत- कर्पूर, घनसारः। चन्द्रसंज्ञः, सिताभ्रः इत्यादि। हिन्दी- कपूर । गुजराती- कपूर। मराठी-कार्पूर। बंगाली-कर्पूर। तैलंगी- कर्पूरम्। अरबी-काफूर। फारसी- कापूर। लेटिन- Camphora Officinarum (केफोरा ऑफिसिनेर)।

वर्णन

कपूर के पेड़ चीन और जापान देश में अधिकतर पैदा होते हैं। इसकी छाल ऊपर से खुरदरी एवं भीतर से चिकनी होती है। इस पेड़ के मौर आते हैं और उन

पर मटर के समान फल लगते हैं। इनके बीजों में कपूर के समान गन्ध आती है। इस वृक्ष की छाल को गोदने से एक प्रकार का दूध निकलता है। उसी दूध से कपूर तैयार किया जाता है। भारत वर्ष में केले के झाड़ से पैदा होने वाला कपूर उत्तम माना गया है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

सुश्रुताचार्य के मतानुसार कपूर कड़वा, सुगन्धित, हल्का, लेखन तथा तृषा, मुख शोष (विरसता) और अरुचि को दूर करने वाला है।

भाव प्रकाश के मतानुसार कपूर शीतल, वीर्य जनक, नेत्रों को हितकारी, हल्का, सुगन्धित, मधुर और कड़वा होता है। यह कफ, पित्त, विष, दाह, तृषा, अरुचि, मेद और दुर्गन्ध का नाश करता है। कपूर पक्व व अपक्व भेद से दो प्रकार का होता है। झाड़ के रस को पकाकर जो कपूर बनाया जाता है उसे पक्व कहते हैं और जो बिना पकाये हुए तैयार किया जाता है उसे अपक्व कहते हैं। पकाये हुए कपूर से बिना पकाया हुआ कपूर बहुत साफ और बढ़िया होता है। इसकी कीमत भी बहुत अधिक होती है। कई लोगों के मत से इस बिना पकाये हुए कपूर को ही ब्रास या भीमसेनी कपूर कहते हैं।

आयुर्वेदिक मत में कपूर कई प्रकार का होता है। उसमें भीमसेनीकपूर, हिमकपूर, उदय-भास्कर कपूर, चीनिया कपूर, शंकरावास कपूर इत्यादि भेद विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

राजनिघण्टुकार के अनुसार स्वच्छ भाँगरे के पत्तों के समान छोटे-छोटे टुकड़े वाला, वजन में हल्का, स्वाद में तिक्त, ठंडा, अत्यन्त सुगन्धित, हृदय को प्रिय, तैल रहित कपूर, अत्यन्त उत्तम और राजाओं के योग्य होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार के नकली कपूर खराब होते हैं।

उपयोग

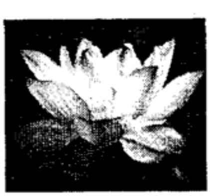
प्रमेह– दो रत्ती कपूर, पाव रत्ती अफीम की गोली बनाकर सोते समय लेने से अपने आप वीर्य का स्खलन होना और प्रमेह की शिकायत मिटती है।

जुकाम– कागज की भोंगली में कपूर को रखकर श्वास के साथ उसकी धूनी से जुकाम मिटता है।

इनके अतिरिक्त निमोनिया, चेचक, सुजाक, दमा, दन्त-शूल, गठिया, हैजा, बिच्छू का जहर, पित्ती आदि में भी कर्पूर लाभदायक है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसकी शीतलता की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि मेघ के उदर से निकली, कपूर की डली के समान ठंडी तथा केवड़े की सुगन्ध से भरी हुई इस बरसाती वायु को मानो अंजलियों में भरकर पीया जा सकता है।[62]

कमल



नाम- संस्कृत-अंबुज, पंकज, कमल, पद्म, पुण्डरीक इत्यादि। हिन्दी—कमल, कंबल, सफेद कमल, लाल कमल, नील कमल इत्यादि। बंगाली—पद्म, श्वेत--पद्म, रक्त पद्म, नील पद्म इत्यादि। मराठी—कमल, ताँवले—कमल,

पाँठरे कमल। गुजराती—कमल, धोला कमल। तेलंगी—कलंग समरा, नेल्लनामर, नल्लकुलब। तमिल-अम्बल, फारसी—नीलूफर, गुलनीलोफर। अरबी—बर्दनीलोफर। लेटिन- Nelumbium Speciosum (नेम्बियम स्पेसिओसम)।

वर्णन

यह पानी में पैदा होने वाली वनस्पति है। यह बड़ी कोमल होती है। इसका प्रकांड लता की तरह फैलने वाला होता है। इसके पत्ते गोल बड़े-बड़े प्याले के आकार के, अरवी के पत्तों की तरह होते हैं। इन पत्तों पर पानी की बूँद नहीं ठहरती। ये चौड़े-चौड़े पत्ते थाली की तरह पानी में तैरते हुए दिखाई देते हैं। इन पत्तों के नीचे जो डन्डी होती है, उसको मृणाल अथवा कमल की नाल कहते हैं। कमल के फूल अत्यन्त सुन्दर और बड़े आकार के रहते हैं। इन फूलों में जो पीला ज़ीरा होता है उसे कमल केशर कहते हैं। इसके फलों को पद्मकोष और बीजों को कमल गट्टे कहते हैं। कमल सफेद, लाल और नीले भेद से तीन प्रकार का होता हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार कमल शीतल, देह को सुंदर करने वाला और मधुर होता है। यह रक्त विकार, विस्फोट, विसर्प और विष को दूर करने वाला है। सफेद कमल शीतल, स्वादिष्ट, नेत्रों को लाभदायक तथा रुधिर-विकार, सूजन, व्रण और सब प्रकार के विस्फोटकों को दूर करने वाला है।

रक्त कमल चरपरा, कड़वा, मधुर, ठंडा, रक्त-शोधक, पित्त, कफ और वात को शांत करने वाला तथा वीर्यवर्धक हैं।

नील-कमल शीतल, पित्त-नाशक रुचिकारक, रसायन कर्म में उत्तम, देह की जड़ को दृढ़ करने वाला और बालों को बढ़ाने वाला है।

नीलोत्पल जिसको फारसी में नीलोफर कहते हैं अत्यन्त स्वादिष्ट, शीतल, पचने में कड़वा और रक्त-पित्त नाशक है।

कमलिनी

जड़, नाल, पत्र और बीजादि से युक्त खिले हुए कमल को पद्मनि कहते हैं। यह कमलिनी मधुर, शीतल, कड़वी, कसैली,स्तनों को दृढ़ करने वाली और रक्त-विकार, विष, सूजन एवं मूत्रकृच्छ में लाभदायक है।

कमल के कोमल पत्ते शीतल, कड़वे होते हैं। यह शरीर की जलन को दूर करने वाले तथा प्यास, अश्मरी तथा बवासीर और कुष्ठ में लाभदायक हैं।

इसकी जड़ कड़वी, कफ-पित्त में लाभदायक और प्यास को बुझाने वाली होती है। इसकी केसर शीतल, वीर्य वर्धक, संकोचक और कफ, पित्त, प्यास, विष, सूजन एवं खूनी बवासीर में लाभदायक है। इसके फूल मीठे शीतल तथा रक्त-विकार, चर्म-रोग एवं नेत्र-रोग में लाभदायक हैं। इनके बीज अर्थात् कमल गट्टे, स्वादिष्ट, रुचिकारक, पाचक, गर्भ-स्थापक, वीर्य-वर्धक तथा पित्त, रक्त-दोष, वमन एवं रक्त-पित्त को नाश करने वाले होते हैं। इसकी शहद अत्यन्त पौष्टिक,

त्रिदोष-नाशक एवं सब प्रकार के नेत्र रोगों को दूर करने वाली होती है।

वाग्भट के मतानुसार बवासीर में इसकी केशर को शक्कर एवं मक्खन के साथ देने से लाभ होता है।

चक्रदत्त के मतानुसार गुदाद्वार के निगमन में कमल के कोमल पते प्रातः काल शक्कर के साथ लेने चाहिये।

भाव प्रकाश के मतानुसार रक्तातिसार युक्त पुराने ज्वर में उत्पल, अनार का छिलका और कमल की केशर इन तीनों को बराबर लेकर, पीसकर चावल के पानी के साथ लेना चाहिये।

चरक के मतानुसार जिन स्त्रियों को हमेशा गर्भ-गिरने की शिकायत हो उनके लिये इसके बीज बहुत ही लाभदायक हैं।

उपयोग

सर्प-विष—इसकी मादा केशर काली मिर्च के साथ पीसकर, पीने और लगाने से साँप के विष में लाभदायक होता है।

रक्त-प्रदर—कमल की केशर, मुल्तानी मिट्टी और मिश्री के चूर्ण की फक्की देने से रक्त-प्रदर और रक्तार्श में लाभ होता है।

इनके अतिरिक्त दाद, गर्भ-स्राव, वमन, स्तनों का ढ़ीलापन इत्यादि में भी इसका प्रयोग लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में तो कमल का अनेकों स्थलों पर वर्णन किया गया है। इसमें कमल के सभी प्रकार यथा श्वेत कमल, रक्त कमल, नील कमल एवं इसके सभी अंगावयवों का भी उल्लेख किया गया है।

मन्दाकिनी नदी की शोभा का वर्णन करते हुए श्री राम सीता से कहते हैं, "भामिनी सीते ! एक सखी दूसरी सखी के साथ जैसे क्रीड़ा करती है, उसी प्रकार तुम मन्दाकिनी नदी में उतरकर इसके लाल एवं श्वेत कमलों को जल में डुबोती हुई इसमें स्नान क्रीड़ा करो।"[63] हेमन्त ऋतु में कमल की क्या स्थिति होती है इसका वर्णन करते हुए लक्ष्मण कहते हैं, "जो पुराने पड़ जाने के कारण जर्जर हो गये हैं, जिनकी कर्णिका और केसर जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, ऐसे दलों से उपलक्षित होने वाले कमलों के समूह पाला पड़ने से गल गये हैं। उनमें डंठल मात्र शेष रह गये हैं। इसलिये उनकी शोभा नष्ट हो गयी है।"[64]

इनके अतिरिक्त रामायण में और भी अनेक[65] स्थलों पर कमल की शोभा एवं सौन्दर्य का वर्णन तथा विविध सन्दर्भों में इसका उल्लेख किया गया है।

कुमुद

नाम—संस्कृत—उत्पलिनी, कुमुदिनी, चन्द्रेष्ठा, कुवलयिनी, नीलोत्पलिनी। हिन्दी—कुमुदनी, कोई। बंगाल—हलाफूल, नालिफल, श्वेतशुद्धि। मराठी—पाँठर कमल। गुजराती-पोयणा। लेटिन—Nymphaca Alba (निम्फया एल्बा)।

वर्णन

यह कमल के ही समान पानी में पैदा होने वाली एक वनस्पति है। यह भी

लाल, नीले, सफेद फूलों के भेद से 3, 4 प्रकार की होती है। इसके फूल रात्रि को चन्द्रमा की रोशनी में खिलते हैं तथा सूर्य के प्रकाश में मुरझा जाते हैं। इसमें एक कोष होता है उस कोष का फल बन जाता है। कच्ची अवस्था में उसमें (भीतर) लाल दाने होते हैं और पकने पर वे काले हो जाते हैं। इसके फल को धंधोल कहते हैं। इसकी जड़ को सालक कहते हैं। यह रक्त-कुमुद एवं नील कुमुद के भेद से दो प्रकार का होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार यह स्वादिष्ट, पचने में कड़वी, कफ नाशक, तथा रुधिर--विकार, दाह, श्रम और पित्तनाश करने वाली है। इसकी जड़ तीक्ष्ण, संकोचक, निद्रा-दायक और पेचिश को दूर करने वाली होती है। लाल कुमुद के फूल कड़वे मधुर, शीतल, रक्त-विकार को नष्ट करने वाले, ज्वर निवारक, कोमोद्दीपक और त्रिदोष को नाश करने वाले होते हैं। नील कुमुद का पुष्प सुगन्धित, शीतल, धातु परिवर्तक, पित्त-नाशक, रुचिकारक, शरीर को मजबूत बनाने वाला और बालों को बढ़ाने वाला होता है।

गायना में इसकी जड़ और डण्डी का काढ़ा स्निग्ध और मूत्रल माना जाता है। इसे मूत्राशय की बीमारियों को दूर करने में तथा मूत्रकृच्छ के रोग के इलाज में काम लेते हैं। इसके फूलों का काढ़ा निद्रादायक और कामेच्छा नाशक होता है।

वाल्मीकि रामायण में वन की शोभा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि- कहीं कुमुद-समूह तथा कहीं कलिकाएँ उन्हें सुशोभित करती हैं।[66] एक अन्य स्थान पर कहा गया है, "कुमुद के फूलों से भरा हुआ उस महान् तालाब का जल- अत्यन्त शोभा पा रहा है।"[67]

इनके अतिरिक्त और भी स्थलों पर कुमुद के दर्शन होते हैं।[68]

कुश

नाम--संस्कृत-दर्भ, कुशा, कुशः, सूच्यग्र, यज्ञ-भूषण। हिन्दी-कुश, डाभ, दबोलि। बंगाल-कुश। बम्बई-दर्भ, मध्य-प्रान्त-चिर-कुशा। गुजराती-दाभ। पंजाब-कुशा, दाभ। तेलगू-अस्वलयन दर्भ, कुश-दर्भा। लेटिन- (1) Desmostachya-Bipinnate (डिसमोसटेचा बिपिनेटा) (2) Eragrostis Cynoscuroides (इराग्रोसटिस सिनोसुराइडिस)।

वर्णन

कुश या डाभ हिन्दू धर्मानुसार पवित्र वस्तु है। ग्रहण-काल में प्रत्येक वस्तु को पवित्र बनाये रखने के लिये उसमें इसको रख दिया जाता है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

इसकी जड़ मधुर एवं शीतल होती है। यह तृषा (प्यास), पीलिया, श्वास एवं रक्त रोगों में लाभकारी है। यह वनस्पति मधुर कसैली, शीतल, कामोद्दीपक और मूत्रल होती है। यह स्निग्ध भी है। यह रक्त-विकार, पित्त, दमा, तृषा और मूत्र

कृच्छ्र रोग में लाभदायक है। पीलिया, मूत्राशय के रोग, विस्फोटक एवं वमन में भी लाभदायक है। यह गर्भवती स्त्री के गर्भाशय को शान्ति पहुँचाता है।

उपयोग

आमातिसार–1. इसकी जड़ का क्वाथ करके पिलाने से आमातिसार मिटता है। **2.** इसकी और बेल की जड़ को चावलों के पानी के साथ पीसकर पिलाने से रक्त-प्रदर मिटता है।

हिचकी–इसमें कुछ घी मिलाकर उसका धुआँ पिलाने से हिचकी मिटती है।

प्रदर–इसकी जड़ को चावलों के पानी के साथ पीसकर तीन दिन तक पिलाने से प्रदर मिटता है।

श्री राम द्वारा वाल्मीकि रामायण में भी कहा गया है, ''भामिनी ! वन में काँटेदार वृक्ष, कुश और कास होते हैं, जिनकी शाखाओं के अग्र भाग सब ओर फैले हुए होते हैं, इसलिये वन विशेष कष्टदायक होता है।'[64] यज्ञ में इसका एक ही बार प्रयोग होता है, इस तथ्य को बताते हुए कहा गया है ''हविष्य, घृत, पुरोडाश, कुश और खदिर (खैर) के यूप-ये एक यज्ञ के उपयोग में आ जाने पर 'यातयाम' उपभुक्त हो जाते हैं, इसलिये विद्वान इनका फिर दूसरे यज्ञ में उपयोग नहीं करते हैं।[70]

रामायण के अन्य उद्धरण भी 'कुश' को दर्शाते हैं।[71]

केवड़ा

नाम–संस्कृत-धूलि-पुष्पिका, गन्धपुष्प, इन्दुकलिका, नृपप्रिया। केतकी। हिन्दी-केवड़ा, केतकी। बंगाली-केवरी, केतकी। बम्बई-केन्दा, केउर। दक्षिण-केवड़ा, गुजराती-केवड़ा। तमिल-केदगई, केदगी। तेलगू-केतकी, गोजंगी। उर्दू-केवरा। लेटिन-Pandanus Odoratissmus (पेडेनस ओडारेटिसिमस) Pandanus Tactoriu (पेंडिनस टिक्टोरियस)।

वर्णन

केवड़े के फूल सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। इसकी सुगन्ध प्राचीन काल से ही भारतवासियों को प्रिय लगती रही है। इसका पौधा गन्ने के पौधे के समान होता है जिसके लम्बे-लम्बे पत्ते होते हैं। इन पत्तों के किनारे पर काँटे होते हैं। इनका भुट्टा 15 से 25 से.मी. तक लम्बा रहता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार इसके पत्ते, तीक्ष्ण, कटु और सुगन्धमय होते हैं। ये विष-नाशक, कामोद्दीपक और पथरी तथा अर्बुद में लाभदायक होते हैं। इसका फूल कड़वा, तीक्ष्ण और शरीर-सौन्दर्य को बढ़ाने वाला होता है। इसकी केशर फेफड़े के ऊपर की झिल्ली (Pruitus) के प्रवाह में उपयोगी होती है। इसका फल वात-कफ और मूत्राशय की तकलीफों में फायदा करता है।

उपयोग

रक्त-प्रदर—गाय के दूध में केवड़े की जड़ 6 माशे से तोला भर तक घिस कर शक्कर मिलाकर प्रतिदिन सुबह शाम पीने से भयंकर रक्त-प्रदर भी शान्त होता है।

गर्भ-पात—जिस स्त्री को हमेशा गर्भ-पात होने की शिकायत हो उसको भी यह औषधि गर्भ रहने के दूसरे महीने से चौथे महीने तक सेवन करने से गर्भ-पात बन्द हो जाता है।

रामायण में भी केवड़े का बहुत स्थानों पर उल्लेख उपलब्ध है यथा—'विभिन्न धातुओं से अलंकृत अचलराज चित्रकूट के प्रदेश कहीं पुखराज कोई स्फटिक तथा कोई केवड़े के फूल के समान दिखाई पड़ रहे हैं।'[72] पंचवटी के वर्णन में कहा गया है—'आम, अशोक, तिलक, केवड़ा, चम्पा आदि वृक्षों से घिरे हुए ये पर्वत बड़ी शोभा पा रहे हैं।'[73]

केवड़े का उल्लेख और भी अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है यथा—विरही राम के प्रश्न में, ऋष्यमूक पर्वत पर, पंपासर के अरण्य में आदि।[74]

केशर

नाम—संस्कृत—कुंकुम, अग्नि-शेखर, अग्निशिखा। हिन्दी-केशर, जाफरान। मराठी-केशर। गुजराती-केशर। बंगाल-जाफरान। काश्मीर-कोंग। अरबी-जाफरान, फारसी-जाफरान। लेटिन- Crocus Satirus (क्रोकस सेटिप्हस)।

वर्णन

केशर सारे भारत-वर्ष में प्रसिद्ध है। इसकी विशेष खेती भारत में काश्मीर में होती है। असली केशर लाल रंग की, बारीक तन्तु वाली, स्वाद में कड़वी, चिकनी और कमल के समान गन्ध वाली होती है। केशर को पानी में भिगोकर कपड़े के ऊपर लगाने से अगर तत्काल पीले रंग का दाग न लगे तो उसे असली समझना चाहिये। अगर उसका दाग लाल रंग का पड़कर फिर पीले रंग का हो जाये तो उसे नकली समझना चाहिये।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार केशर-कड़वी, तिक्त, सुगन्धित, गरम, विष-नाशक, कृमि-नाशक, विरेचक, पौष्टिक सूखी-खाँसी में लाभदायक तथा गले के दर्द, आधा-शीशी, वमन, खुजली, त्रिदोष, पित्त, चर्म-रोग तथा मस्तक-रोग में लाभदायक है। यह अत्यन्त कामोद्दीपक है और वाजीकरण प्रयोग में इसका प्रयोग बहुत अधिक होता है।

उपयोग

उदरशूल

दालचीनी और केशर की गोली बनाकर देने से उदरशूल मिटता है।

कष्ट-प्रद मासिक-धर्म

केशर और अकरकरे की गोली बनाकर देने से मासिक धर्म शुद्ध होने लग जाता है।

यकृत वृद्धि

करेले के रस में केशर को घिसकर पिलाने से यकृत की वृद्धि मिटती है।

इसके अतिरिक्त हृदय-रोग, रक्त-पित्त, मूत्राघात, आधा-शीशी, आदि में भी इसका प्रयोग लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में केसर का वर्णन निम्नलिखित स्थानों पर प्राप्त होता है—वसिष्ठ जी की गौ ने जिन वीरों को उत्पन्न किया; वे महापराक्रमी और तेजस्वी थे। उनके शरीर की कान्ति सुवर्ण तथा केसर के समान थी।[75] इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर कहा गया है, 'जो पुराने पड़ जाने के कारण जर्जर हो गये हैं, जिनकी कर्णिका और केसर जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, ऐसे दलों से उपलक्षित होने वाले कमलों के समूह पाला पड़ने से गल गये हैं।'[76] इनके अतिरिक्त और भी स्थल केसर को दर्शाते हैं।[77]

कैथ

कैथ कपित्थमूल का ही पर्यायवाची है। अतः इसकी समीक्षा कपित्थ में ही समझ लेनी चाहिये।

कुटज

नाम—संस्कृत-कुटज, कोट, वत्सक, गिरि-मल्लिका, कालिङ्ग, शक्रशाखी, मल्लिका-पुष्प, इन्द्र, यवफल, वृक्षक, पाण्डुरद्रुम। हिन्दी-कूड़ा, कोरया, इन्द्र जौ, गुजराती-इन्दर जव। मराठी-कुड़याचे बीज। कर्नाटकी-कोड़ासिगय बीज। फारसी-जबानकुंचिरक। अरबी- लेसानुत असाकीर। बंगाली-इन्द्रयव। लैटिन- Holorrham a Antidysenterica.

वर्णन

कुटज को कुड़े का झाड़ भी कहते हैं। यह 10 फीट तक ऊँचे होते हैं उसकी छाल आधे इंच तक मोटी तथा भूरे रंग की होती है। इसकी शाखाओं पर चार से आठ इंच लम्बे और तीन-चार चौड़े पत्ते आमने-सामने आते हैं। इसके फूल गुच्छेदार और सफेद रंग के होते हैं। इनकी फलियाँ एक से दो फीट लम्बी, पाव इंच मोटी और 2 एक साथ जुड़ी हुई होती हैं, ये फलियाँ लाल रंग की होती हैं। इनके भीतर के बीज जो इन्द्र जौ के नाम से मशहूर हैं कच्ची स्थिति में हरे तथा पकने पर गेहूँ के रंग के होते हैं।

कुटज का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक सफेद और दूसरा काला।

गुण-दोष एवं प्रभाव

कुड़े के झाड़ की छाल और उसके बीज अर्थात् इन्द्र जौ बहुत प्राचीन समय से इस देश में औषधि के रूप में व्यवहृत होते हैं। इसकी छाल कड़वी, शुष्क, गरम, कसैली और कृमिनाशक होती है। अतिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, आमातिसार इत्यादि रोगों पर यह वनस्पति बहुत ही उत्तम कार्य करती है। इससे बवासीर के अन्दर से पड़ने वाला खून बन्द हो जाता है। शरीर में ताकत आती है। चेहरे का पीलापन मिटता है आँखों में चमक आती है।

इसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ ग्राही और शीतल हैं। बच्चों के अतिसार, रक्तातिसार और आँतों की व्याधियों में जब गुदाद्वार से खून गिरता है और साथ में बुखार भी आता है, तब यह औषधि छाछ के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचाती है।

वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है—'इस समय मेघरूपी सोपान पंक्तियों द्वारा आकाश में चढ़कर कुटज और अर्जुन पुष्प की मालाओं से सूर्य-देव को अलंकृत करना सरल सा हो गया है।'[78] 'सुमित्रानन्दन ! देखो इस पर्वत के शिखरों पर खिले हुए कुटज कैसी शोभा पाते हैं ? कहीं तो पहली बार वर्षा होने पर भूमि से निकले हुए भाप से व्याप्त हो रहे हैं और कहीं वर्षा के आगमन से अत्यन्त उत्सुक ये कुटज पुष्प मेरी प्रेमाग्नि को उद्दीप्त कर रहे हैं।'[79]

इसके अतिरिक्त और भी विविध स्थलों पर कुटज का उल्लेख प्राप्त होता है।[80]

कदम्ब

नाम—संस्कृत-कदम्ब, सुरभि, हरिप्रिय, जीर्णपर्ण इत्यादि। हिन्दी-कदम्ब। गुजराती-कदम्ब। मराठी-कदम्ब। बंगाली-कदम। तेलगू-कदीमी। लेटिन-Anthocephaus Cadmba (ऐन्थोसीफेलस कदम्ब)

वर्णन

भारत वर्ष के अन्दर सुगन्धित पुष्पों में कदम्ब का बड़ा महत्त्व है। इसका पुष्प भगवान कृष्ण को बड़ा प्रिय था। यह एक प्रकार का मध्यम आकार का पेड़ होता है। जो भारतवर्ष के पहाड़ों में स्वाभाविक तौर से बहुत पैदा होता है। इसका पुष्प सफेद और कुछ पीले रंग का होता है। इस फूल पर पंखुड़ियाँ नहीं होतीं, बल्कि सफेद-सफेद सुगन्धित तन्तु इसके चारों ओर उठे हुए रहते हैं। इसका फल गोल नींबू के समान होता है।

कदम्ब की कई तरह की जातियाँ होती हैं। जिसमें राजकदम्ब, धारा कदम्ब, धूलिकदम्ब, भूमि-कदम्ब इत्यादि जातियाँ उल्लेखनीय हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार इसकी छाल तेज, कड़वी, मृदु और कसैली होती है। यह कामोद्दीपक, शीतल, दुष्पच्य, दूध बढ़ाने वाली, संकोचक, विष निवारक और घाव को भरने वाली होती है। गर्भाशय की शिकायतों, रक्त रोग, वात, कफ, पित्त और जलन में यह लाभदायक है। इसका फल गरम, कामोद्दीपक और पकने पर पित्त कारक होता है।

महर्षि चरक के मतानुसार इसकी छाल सर्पदंश में उपयोगी है।

उपयोग

ज्वर

इनकी छाल का काढ़ा पिलाने से ज्वर में लाभ होता है।

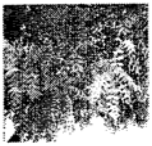
मुँह के छाले—इसके पत्तों के क्वाथ से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

रामायण में इसका उल्लेख इस प्रकार है—

कदम्ब! मेरी प्रिया सीता तुम्हारे पुष्प से बहुत प्रेम करती थी; क्या वह यहाँ पर है?[81] क्यों तुमने उसे देखा है ? अन्य द्रष्टव्य स्थल।[82]

नीम

नाम—संस्कृत-निम्ब, नियमन, नेतर, पिचुमन्द, सतिक्तक, अरिष्ट, सर्वतोभद्रक, हिंगु, पीतसार, रवि-प्रिय इत्यादि। हिन्दी-नीम। बंगाल-नीमगाछ। मराठी-कडुनिम्ब। गुजराती-लीमड़ो। तेलगू-वेष। तमिल-बेंबू। उर्दू-नीम, अंग्रेजी-Indian Lilac (इण्डियन लिलाक)। लेटिन- Azadirachta Indica (एझांडिरेक्टा इण्डिका)



नीम भारतवर्ष की एक अनोखी कृति है। इसके वृक्ष भारत में सब ओर पैदा होते हैं और यहाँ यह जन-समाज में रात-दिन काम में आने वाली एक दवा है। इसे सब कोई जानते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

नीम हल्का, शीतल, कड़वा, ग्राही, व्रण-शोधक, बालकों के लिये हितकारी तथा कृमि, वमन, व्रण, कफ, शोथ, पित्त, विष, वात, कुष्ठ, हृदय की जलन, श्रम, खाँसी, ज्वर, तृषा, अरुचि, रुधिर, विकार एवं प्रमेह को नष्ट करता है।

नीम के पत्ते नेत्रों के लिये हितकारी, पचने में कड़वे और कृमि, पित्त, अरुचि, विषविकार एवं कुष्ठ को नष्ट करते हैं।

नीम की कोंपलें या कोमल पते संकोचक वात-कारक तथा रक्त-पित्त, नेत्र-रोग एवं कुष्ठ को नष्ट करने वाले होते हैं। नीम के फूल पित्त-नाशक, कड़वे तथा कृमि और कफ को नष्ट करने वाले हैं। नीम के डंठल खाँसी, श्वास, बवासीर, गुल्म, कृमि और प्रमेह को दूर करने वाले हैं। नीम के कच्चे फल अथवा कच्ची निबोरी रस में कड़वी, पचने में चरपरी, स्निग्ध, हल्की, गरम तथा कोढ़, बवासीर, कृमि एवं प्रमेह को दूर करने वाली है। पक्की निंबोरी मीठी, कड़वी स्निग्ध तथा रक्त-पित्त, कफ, नेत्र-रोग, उरक्षत और क्षय-रोगों को नष्ट करने वाली है। निंबोरी की मगज कुष्ठ और कृमियों को नष्ट करने वाली है। नीम के बीजों का तैल कड़वा और कुष्ठ तथा कृमि रोग को नष्ट करने वाला होता है।

नीम का पंचाग, रुधिर-विकार, पित्त, खुजली, व्रण, दाह और कुष्ठ को दूर करता है। नीम चर्म-रोग, कुष्ठ, चेचक, इक्जिमा एवं मलेरिया ज्वर आदि में काम आता है। वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर नीम का वर्णन आया है यथा—'सुमंत्र कैकेई से कहते हैं, "भला आम को कुल्हाड़ी से काटकर उसकी जगह नीम का सेवन कौन करेगा ? जो आम की जगह नीम को ही दूध से सींचता है, उसके लिये भी यह नीम मीठा फल देने वाला नहीं हो सकता।[78] कैकेई ! मैं समझता हूँ कि तुम्हारी माता का अपने कुल के अनुरूप जैसा स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी है। लोक में कही जाने वाली यह कहावत सत्य ही है कि नीम से मधु नहीं टपकता।"[84] अन्य स्थल द्रष्टव्य है।[85]

सप्तपर्ण

नाम—संस्कृत-सप्तपर्ण, शारद, गृहनाश, सूति-पत्र, मदगन्ध, देव-वृक्ष, बहुपर्ण,

शाल्मलि-पत्रक, गन्ध-पर्ण इत्यादि। हिन्दी-छतिवन, सतवन, सतोना, छातियान, शैतान का झाड़। बंगाल-छाटीन, छतिनगाछ। गुजराती-सातवण वृक्ष, सप्तपर्ण। मराठी-सातविण। वर्मा-लेटोप, टोगमियोक, कनाड़ी-ऐलेले हेल, हाले, जंप्रहेल, कोडेल, मुधोल, मुडीहवाले। अंग्रेजी- Dita Bark लेटिन- Alstonia Secholaris।

वर्णन

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष है, उसके पत्ते सेंमर के पत्ते की तरह होते हैं इसी से इसका नाम सप्तच्छद रखा गया था। इसका दूध कड़वा होता है। इसका फल लम्ब गोल होता है और इसमें बीज रहता है। औषधि प्रयोग में इसकी छाल काम में आती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेद के अनुसार सप्तपर्ण कड़वा, कसैला, उष्ण-वीर्य, स्निग्ध, भूख बढ़ाने वाला, मृदु-विरेचक, कृमिनाशक और दूध बढ़ाने वाला होता है, यह हृदय रोग, दमा, धवल रोग, व्रण, रक्त-विकार, त्रिदोष, अर्बुद एवं पुराने घावों को नष्ट करता है। दाँतों की सड़न में भी यह लाभ पहुँचाता है। इस वृक्ष की छाल संकोचक, कृमि-नाशक, धातु-परिवर्तक एवं ज्वर-नाशक है। जीर्णातिसार या पुराने पेचिश में भी यह लाभदायक है। इसका दूध व्रण पर लगाने से व्रण जल्दी भर जाता है। इसे तैल के साथ मिलाकर कान में डालने से कान का दर्द मिटता है। इसके नाजुक पत्तों को भूनकर पानी में पीसकर पुल्टिस बनाकर खराब फोड़ों पर बाँधने से फायदा होता है।

वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर सप्तपर्ण का उल्लेख मिलता है। यथा—पम्पासर का वर्णन करते हुए कहा गया है, 'मालती कुन्द, झाड़ी, सप्त पर्ण आदि नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित हुई पम्पा वस्त्राभूषणों से सजी हुई युवती के समान जान पड़ती थीं।[86] शरद् ऋतु के वर्णन में भी कहा गया है—पर्वत के शिखरों पर असन, छितवन, कोविदार, बन्धु-जीव तथा श्याम-तमाल खिले दिखाई देते हैं।[87] अन्य स्थल भी दृष्टव्य हैं।[88]

अशोक

नाम- संस्कृत-अशोकः, मधुपुष्पः, अपशोक-मंजरी, मारवाड़ी- असापालो। गुजराती- आसोपालव। मराठी- अशोक। लैटिन- Jonecia Asoca (जोनेसिया अशोका) Saraca Indica (सराका इण्डिका)।

वर्णन

अशोक का वृक्ष आम के वृक्ष के बराबर होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। एक जाति के पत्ते राम-फल के समान और फूल नारंगी-रंग के होते हैं। जो वसन्त ऋतु में मिलते हैं। दूसरे जाति के अशोक के पत्ते आम के पत्तों की तरह होते हैं तथा कुछ पीली झाँई लिये हुए सफेद रंग के होते हैं। कच्चे फलों का रंग हरा तथा पकने पर ललाई लिये हुए काला हो जाता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार अशोक मधुर, शीतल, हड्डी को जोड़ने वाला, प्रिय, सुगन्धित, कृमि-नाशक, कसैला, गरम, कड़वा, देह की कान्ति को बढ़ाने वाला, स्त्रियों के शोक को दूर करने वाला, मल-रोधक तथा पित्त, दाह, श्रम, गुल्म, उदर-रोग, शूल, विष, बवासीर, व्रण, तृषा, सूजन, अपच और रुधिर-रोग को दूर करने वाला है।

सोढ्ढल के मतानुसार अशोक की छाल रक्त-प्रदर रोग को नष्ट करने वाली है। चक्रधर भी इसको रक्त-प्रदर नाशक मानते हैं लेकिन चरक, सुश्रुत, राज-निघण्टु आदि ग्रन्थों के प्राचीन आचार्यों ने रक्त-प्रदर की चिकित्सा में इसका उल्लेख नहीं किया है।

इसकी छाल का स्वरस बहुत तेज और संकोचक है। अत्यधिक रजः स्राव के ऊपर इसे काम में लिया गया और वह पूर्ण रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है। सुश्रुत के अनुसार इसकी छाल, फूल और फल सांप, बिच्छू के जहर में उपयोगी हैं, किन्तु 'महस्कर' और 'केस' के मतानुसार इस औषधि में कोई भी विषनाशक गुण नहीं है।

उपयोग

रक्त-प्रदर

अशोक की छाल 8 तोला लेकर उसे 64 तोला पानी में उबालना चाहिये, जब तीन चौथाई पानी समाप्त हो जाये तब उसमें 8 तोला गाय का दूध डालकर फिर उबालना चाहिये। जब सब पानी जलकर दूध मात्र शेष रह जाये तब उतारकर मल-छानकर रोगी को पिलाना चाहिये। इससे रक्त-प्रदर में बहुत लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में तो अनेकानेक स्थलों पर ही इसका उल्लेख किया गया है- यथा....उसी समय मद भरे सुंदर नेत्रों वाली सीता जो फूल चुनने में लगी हुई थीं कनेर, अशोक और आम के वृक्षों को लाँघती हुई उधर आ निकलीं।[89]

इसी प्रकार श्री राम कहते हैं–'अशोक ! तुम शोक दूर करने वाले हो इधर मैं शोक से अपनी चेतना खो बैठा हूँ। मुझे मेरी प्रियतमा का दर्शन कराकर शीघ्र ही अपने जैसे नाम वाला बना दो। मुझे अशोक (शोक हीन) कर दो।''[90] वाल्मीकि रामायण में और भी अनेक स्थलों पर अशोक का उल्लेख मिलता है यथा-पंचवटी में,[91] जनस्थान में, भ्रमित श्री राम[92], पंपासर के पास[88] आदि-आदि।[93]

असन

नाम–संस्कृत–असन, बीजक, पीतशाल, महाकुटज, बन्धूक, पुष्प, प्रियक। हिन्दी–असन, विजय सार का गोंद। बंगाली–पिया शाल। मराठी–असाणा, बिबला। गुजराती–बीयां, हीरादखन। कर्नाटकी–केपिन्न होने। तेलंगी–पेदगी, मद्दी। तमिल-कुरिंजी। बम्बई-असन। पंजाबी-विजयसार। फारसी–कमरकस। उर्दू- पमल्स्यन। अंग्रेजी–Indian Kinotree। लेटिन–Pterocarpus Marsupium।

वर्णन

यह एक बड़े किस्म का साल वृक्ष के समान वृक्ष होता है। इसकी छाल मोटी

और भूरे रंग की, कुछ पीलापन लिये हुए होती है। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं जो कि पाँच-पाँच, सात-सात के गुच्छों में लगते हैं। इन पत्तों के दोनों ओर बारीक रूयें होते हैं। इसमें डेढ़-दो इंच लम्बी नोकदार फलियाँ लगती हैं। इसके फल पीले आँवले के समान होते हैं। इसकी लकड़ी कालापन लिये हुए होती है। इसमें एक प्रकार का लाल गोंद लगता है। यही गोंद विशेष करके औषधि के काम में आता है।

गुण दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से यह वृक्ष और इसका गोंद गरम, कड़ुवा और तीखे स्वाद वाला होता है। यह विरेचक, कृमि नाशक, गल-रोग-निवारक, रक्त-मण्डल-नाशक तथा कोढ़-विसर्प, चित्र-कुष्ठ, प्रमेह, गुदा के रोग और रक्त-पित्त को नष्ट करने वाला है। यह त्वचा और केशों को लाभ पहुँचाने वाला और रसायन है। इसके फूल पचने में मधुर, कड़ुवे, पाचक और वात-वर्द्धक हैं।

उपयोग

रक्त-प्रदर

इसका गोंद रक्त-प्रदर में बहुत उपयोगी है।

दन्त पीड़ा

इसके पत्ते के काढ़े से कुल्ले करने से दन्त-पीड़ा दूर होती है।

चोट

इसकी लकड़ी को पानी में घिसकर लेप करने से चोट की पीड़ा दूर होती है।

कुष्ठ

इसकी लकड़ी को जौकुट कर, पानी में भिगोकर, मल छानकर पिलाने से कुष्ठ और रक्त-विकार में लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में राज-प्रसाद में, चित्रकूट पर्वत पर, माल्यवान पर्वत पर, लंका के अशोक वन में आदि स्थलों पर असन का उल्लेख किया गया है यथा—आम, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल आदि वृक्षों से यह पर्वत अनुपम शोभा का पोषण एवं विस्तार कर रहा है।[95] विरही श्री राम भी कहते हैं, 'सुवर्णमय वृक्षों के समान निर्मल एवं खिले हुए असन नामक वृक्षों को देखकर बार-बार उन्हें निहारती हुई भोली-भाली सीता जब मुझे अपने पास नहीं देखती होंगी, तब कैसे उसका मन लगता होगा ?[96] अन्य दृष्टव्य स्थल।[97]

कोविदार

नाम—संस्कृत—काञ्चन, रक्त—पुष्प, कान्तार, कनक प्रभ, कांचनार, कोविदार इत्यादि। हिन्दी—कचनार। बंगाली—सफेद कांचन, मराठी—कांचन वृक्ष, कोरल। गुजराती—चम्पाकासी, चम्पी, कांचनार, फारसी—कचनार। लेटिन—Bauhinia Tancatosa, Bauhinia Racemisa (बोहिनिया टेंकटोसा)।

वर्णन

कचनार का वृक्ष 15 से 20 फीट तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ नाजुक

और झुकी हुई रहती हैं। इसकी छाल एक इंच मोटी, खुरदरी भूरी एवं सफेद रंग की होती है। इसके पत्ते हरे और चौड़े होते हैं। पौष माह में इसके पत्ते गिरते हैं और फाल्गुन से ज्येष्ठ तक नये पत्ते आते हैं। इसकी कलियाँ लम्बी और हरी होती हैं। इसके फूल दो इंच लम्बे, बड़े और सफेद, पीले तथा लाल रंग के होते हैं। इन फूलों में थोड़ी-थोड़ी सुगन्ध आती है, इन फूलों पर एक-एक बालिश्त लम्बी फलियाँ आती हैं। ये फलियाँ कड़वे स्वाद की होती हैं। इस पेड़ में भूरे रंग का एक प्रकार का गोंद लगता है, जो पानी में फूल जाता है। इसकी छाल रँगने के काम आती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार लाल कचनार शीतल, सारक, अग्नि-दीपक, कसैला, ग्राही तथा कफ, पित, व्रण, कृमि, कण्ठमाला, कुष्ठ, वात, गुदाभ्रंश और रक्त-पित्त को दूर करता है। इसके फूल शीतल, कसैले, रूखे, ग्राही, मधुर, हल्के तथा पित्त, क्षय, प्रदर, खाँसी और रक्त-रोग दूर करते हैं।

सफेद कचनार ग्राही, कसैला, मधुर, रुचिकारक, रुक्ष तथा श्वास, खाँसी, पित्त, रक्त-विकार, क्षत और प्रदर-रोग को नष्ट करता है। शेष गुण लाल कचनार के ही समान रहते हैं।

पीली कचनार ग्राही, दीपन, व्रण-रोपक, कसैली तथा मूत्र-कृच्छ, कफ और वात-नाशक है।

सुश्रुत के अनुसार इसके सब हिस्से दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश और बिच्छू के विष पर उपयोग में लिये जाते हैं सर्पदंश में इसके ताजा बीजों की लई बनाकर सिरके के साथ काटे हुए स्थान पर लगाते हैं।

चक्रधर के अनुसार—लाल कचनार के छिलके को चावल के पानी और अदरक के साथ कण्ठमाला और गले की गाँठ पर लगाने से लाभ होता है।

वाग्भट् के मतानुसार कचनार के चूर्ण और कमल वृक्ष के सम्मेलन से तैयार किया हुआ घी मस्तिष्क, बौद्धिक शक्ति और स्मरण शक्ति को बढ़ाने में बहुत सहायता पहुँचाता है।

उपयोग

आँतों की कृमि

इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से आँतों के कीड़े मिटते हैं।

फोड़े

इसकी ज़ड़ का चावलों की धोबन के साथ पुल्टिस बनाकर बाँधने से फोड़ा जल्दी पक जाता है।

इनके अतिरिक्त मुँह के छाले, दन्त-पीड़ा, खूनी बवासीर, गंडमाला आदि में भी इसका प्रयोग लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी कोविदार का कोविदार एवं कचनार दोनों ही नामों से उल्लेख किया गया है यथा—

निश्चय ही इसमें स्वयं दुर्बुद्धि भरत भी आया हुआ है, यह कोविदार के चिन्ह वाली विशाल ध्वजा उसी के रथ पर फहरा रही है।[98]

गुफा का वर्णन करते हुए भी कचनार का उल्लेख किया गया है—

''वहाँ कई ऐसे सरोवर भी देखने में आये, जो बाल-सूर्य की सी आभा वाले विशाल कांचन वृक्षों से आवृत थे।''[99] कचनार का उल्लेख अन्य स्थलों पर भी किया गया है।[100]

बन्धुजीव

नाम—संस्कृत-बन्धूक, बन्धुजीव, रक्त, माध्याह्निक, बन्धुजीवक, अर्कवल्लभा, हरि-प्रिया, ज्वरहन, रक्त-पुष्पा, शरद-पुष्पा, सूर्य भवना। हिन्दी-दुपहरिया। बंगाली-कन्धुलि, दुपहरिया। गुजराती-सौभाग्य सुन्दरी, दुपोरियौ। मराठी-ताम्बड़ी, दुपारी। तमिल-नागपू। पंजाब- गुल दुपहरिया। लेटिन-Pentapets Phocnice (पेन्टापेटस फीनीसिया)

वर्णन

यह एक प्रसिद्ध पुष्पवृक्ष है, जो उत्तर पूर्वीय भारत, बंगाल और गुजरात में पैदा होती है और भी कई स्थानों पर यह बाग बगीचों में लगायी जाती है। यह वनस्पति वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका वृक्ष 3-7 फीट ऊँचा हो जाता है इसकी शाखाएँ और फूल बहुत सुन्दर होते हैं। इसके फूल सफेद, सिंदूरी और लाल रंग के होते हैं। ये फूल दुपहर के साथ खिलते हैं। इसलिये इनको दुपहिया कहते हैं। इसकी फली लम्बी और कुछ गोल होती है। इसके बीजों के ऊपर धब्बे लगे हुए रहते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार इसका फल मल-रोधक, किंचित गरम, भारी, कफ-नाशक, ज्वर-नाशक तथा वात एवं पित्त को दूर करने वाला है।

चरक के अनुसार यह औषधि दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश में काम में ली जाती है। वाल्मीकि रामायण में पर्वत के वर्णन में बन्धु जीव का उल्लेख किया गया है।[96]

काँस (इषीका)

नाम संस्कृत-काशः, सुकाण्डः, काकक्षुः, शिरी। मारवाड़ी-काँस। हिन्दी-काँस। गुजराती-कांसढ़ो। मराठी-कसई, कसाड़। बंगाली-केशोर, कशाड़। पंजाबी-कास, किलक। तेलगू-रेलु। लेटिन- Saccharum Apontaneum (सेकेहरम एपोण्टेनम), Saccharum Semidecumbus (सेकेहरम सेमीडैकम्बरस)।

वर्णन

यह एक प्रकार की घास होती है, इसकी यह विशेषता है कि जिस भूमि पर यह घास पैदा होती है, उस पर अन्य फसल नहीं हो सकती। शरद्-ऋतु में इस घास पर सफेद-सफेद सुन्दर मंजरियाँ लगती हैं जिससे इसे सरलता से जाना जा सकता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार काँस शीतल, मधुर, तृप्ति-कारक, रोचक, बल एवं वीर्य को

बढ़ाने वाला, पचने में मधुर, पेट को मुलायम करने वाला और स्निग्ध होता है।

उपयोग

पित्त, दाह, मूत्र-कृच्छ्र, क्षय, पथरी, उदर-विकार, क्षत-क्षय एवं पित्त-रोगों में यह लाभदायक है। इसकी और गोखरू की जड़ को मिश्री के साथ औटाकर पिलाने से मूत्र-कृच्छ्र में लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में इसकी तीव्रता का उल्लेख करते हुए कहा गया है, 'भामिनी ! वन में काँटेदार वृक्ष, कुश, काँस, होते हैं, जिसकी शाखाओं के अग्रभाग सब ओर फैले हुए होते हैं, इसीलिये वन कष्ट-दायक होता है।'[102]

इनके अतिरिक्त रामायण में अन्य भी कई स्थलों पर काँस का उल्लेख किया गया है।[103]

खजूर



नाम—संस्कृत-दीप्य मुदारिका, पिंडखर्जूरा, पिण्डखर्जूरिका, स्वादपिण्डा। हिन्दी-खाजि, खर्जूर, खारक, अरबी-नखलेह। बंगाल-खजूर। बम्बई-खर्जूर। ब्रह्मा-सुन्नवनुन। कन्नड़ी-कजुरा, कांरिका, खर्जुरा, गुजराती-खारेक, खजूर। मलयालम-इतपालम। मराठी-खजूर। नसीराबाद-खांजे, खुरमा। पंजाब-खाजि, खजूर। सिंध-कुरमा, काजि, तार, पिण्डचरी, तमिल-इचु, इन्जु कर्चुर, पेरेण्डू, पेरिन्जु, तिति। तेलगू-खर्जुरमु, मंजीइता, पेरिड, पेरिता। टर्की-करमा। उर्दू-खुममा। उड़िया-खांर्जुरि। लेटिन-Phoenix Dactylifera (फोनिक्ड डेक्टिलिफेरा)।

वर्णन

यह वनस्पति सिंध में और दक्षिण पंजाब में ज्यादा होती है। इसका वृक्ष ऊँचा होता है। इसके प्रकांड पर पत्रवृन्त के डन्ठल लगे हुए होते हैं। इसके पत्ते कुछ भूरेपन लिए हुए होते हैं और खजूरीं के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं। इसका फल 2.5 से 7.5 सेमी. तक लम्बा रहता है। यह पकने पर कुछ लाल या हल्के बादामी रंग का होता है और मीठा रहता है इसकी कई भिन्न-भिन्न जातियों की खेती की जाती है। इसका बीज लम्ब-गोल रहता है। और इसके फल के बीच में खड़ी लकीर शुरू से आखिर तक रहती है।

गुण—दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा और शीतल रहता है। यह पौष्टिक, मोटा करने वाला, कामोद्दीपक एवं विषहर होता है। यह कुष्ठ, प्यास, श्वास, वायुनलियों का प्रदाह, थकान, क्षय, उदर रोग, ज्वर, वमन, मस्तिष्क-विकार और चेतना नष्ट होने पर लाभदायी होता है। इस वृक्ष से तैयार की हुई मदिरा कामोद्दीपक, नशा लाने वाली, मोटा बनाने वाली और रुचि पैदा करने वाली होती है। यह वायु नलियों के प्रदाह में और वात में उपयोगी तथा पित्तकारक होती है।

रामायण में पंचवटी के वर्णन में कहा गया है कि पुष्पों, गुल्मों तथा

लता-वल्लरियों से युक्त साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, जल कदम्ब, तिनिश, पुंनाग, आम, अशोक, तिलक, केवड़ा आदि वृक्षों से घिरे हुए ये पर्वत बड़ी शोभा पा रहे हैं।[104] अन्य भी स्थल द्रष्टव्य हैं।[105]

गूगल

नाम--संस्कृत-गुग्गुल, कौशिक, कुम्भि, देवधूप, देवेष्य, काल-निर्यास, शिवा, वायुघ्न, मरुदिष्ट। हिन्दी-गूगल। मराठी-गूगल, कण गूगल। बंगाली-गूगल, गूगुल। तमिल-गुग्गल, गूगल। तेलगू- गूगल, महिषाक्षि। अरबी-अफलेतन, मुकल। फारसी-बोए, जहूदान। लेटिन-Balsamodendrom Mukul (बालसेमाडेन्ड्रोन मुकुल) Commiphora Mukul (कॉमिफोरा मुकुल)

वर्णन

गूगल के वृक्ष 4 से 12 फीट तक ऊँचे होते हैं इनकी शाखाओं की डंडियों पर हमेशा भूरे रंग का पतला छिलका उतरता हुआ दिखाई देता है। उस छिलके के नीचे छाल का रंग हरा होता है। इस वृक्ष के छोटी-बड़ी, बाँकी-टेढ़ी, काँटे वाली अनेकों डालियाँ निकलती हैं। इसके पत्ते दलदार और छोटे होते हैं। इसके छोटे और लाल रंग के फूल आते हैं। इसके फल चिकने और चमकदार होते हैं। इनका रंग भूरा और लाल होता है। इस वृक्ष के किसी भी हिस्से को तोड़ने से एक प्रकार की सुगन्ध निकलती है। इस वृक्ष पर सर्दी में एक प्रकार का गोंद निकलता है उसी को गूगल कहते हैं।

यह वृक्ष विशेष कर सिंध, मारवाड़ और काठियावाड़ में पैदा होता है।

भावप्रकाश के मतानुसार गूगल महिषाक्ष, महानील, कुमुद, पद्म और हिरण्य इन भेदों से पाँच प्रकार का होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

भाव-प्रकाश के मत से गूगल कड़वा, उष्ण-वीर्य, पित्तकारक, मृदुविरेचक, पाक में चरपरा, रूखा, हल्का, हड्डी को जोड़ने वाला, वीर्य-वर्द्धक, स्वर को सुधारने वाला, उत्तम-रसायन, दीपक और कफ-वात-व्रण-अजीर्ण, मेद वृद्धि, प्रमेह, पथरी, व्याधि, क्लेद, कुष्ठ, आम-वात-ग्रन्थि-रोग, सूजन, बवासीर, गण्डमाला और कृमि रोग को नष्ट करने वाला होता है। यह मीठा मधुर रस युक्त होने से वात को कसैला होने से पित्त को और कड़वा होने से कफ को नष्ट करता है। इसलिये गूगल त्रिदोष नाशक है। नवीन गूगल वीर्य वर्द्धक और बलकारक होता है। पुराना गूगल शरीर को दुर्बल करने वाला और अनिष्ट कारक होता है।

उपयोग

प्रमेह--दारु हल्दी के क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से प्रमेह में लाभ होता है।

प्रसूति-रोग

प्रसूति रोग में दश-मूल क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से अच्छा लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त पाण्डुरोग एवं सूजन, नेत्र-रोग, उदर रोग एवं नष्टार्तव में भी

यह लाभकारी होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी गुग्गुल का कई स्थलों पर उल्लेख किया गया है यथा राजा दशरथ की अन्त्येष्टि में इसका प्रयोग किया गया है, 'श्मशान' भूमि में पहुँचकर चिता तैयार की जाने लगी, किसी ने चन्दन लाकर रखा तो किसी ने अगर, कोई-कोई गुग्गुल तथा कोई सरल, पद्मक और देवदारु की लकड़ियाँ ला-लाकर चिता में डालने लगा।[106]

गुलाब-(सहस्र) (शत्पुष्पी)

नाम—संस्कृत-महाकुमारी, शतपत्री, अतिमंजुला, तरुशी, शतदला इत्यादि। हिन्दी-गुलाब। बम्बई-गुलाब। मराठी-गुलाब। गुजराती-गुलाब। लेटिन-Rosa Centifolia (रोज सेन्टिफोलिया), Rosa Damascena(रोज डेमेसकेना)

वर्णन

गुलाब के फूल सारे भारत वर्ष में प्रसिद्ध हैं। इसकी सफ़ेद, गुलाबी, आदि कई जातियाँ होती हैं। इसको लैटिन में रोज डेमेस्केना, सेंटीफोलिया, रोज इंडिका, रोज एल्वा इत्यादि नाम से पहचानते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेद के मतानुसार गुलाब कड़वा, शीतल, कसैला, दस्तावर, रुचिकारक, वात-नाशक, कुष्ठ-नाशक, मुँह के मुँहासों को दूर करने वाला, सुगन्धित तथा दाह, ज्वर, रक्त-पित्त और विस्फोटक को नाश करने वाला होता है। यह शीतल, विरेचक, कामोद्दीपक तथा त्रिदोष, पित्त, कोढ़, कफ और रक्त-विकार में लाभदायक है। बिच्छू के विष पर भी यह लाभदायक है। जब गुलाब के फूल की पत्तियाँ झड़ जाती हैं तब उसका फल नजर आता है। पकने के पश्चात् इसका रंग नजर आता है। इसका स्वाद हल्का मीठा होता है इसके अन्दर रुयें और लम्बे सफेद दाने होते हैं।

गुलाब का फूल खुश्क और सर्द है। यह कब्जियत दूर करता है। इसको खाने से यकृत, मेदा और हृदय को बल मिलता है। इसको पीसकर दाँतों पर मलने से दाँत मजबूत होते हैं। इसके काढ़े से कुल्ले करने से गले की सूजन दूर होती है। घाव से बहते हुए खून पर इसको पीसकर भुर-भुराने से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

इसके अधिक प्रयोग से फेफड़ों को नुकसान होकर खाँसी पैदा हो जाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये गुलकन्द और कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण में पंपासर पर इसका उल्लेख मिलता है यथा- यह विशाल वन टिट्टिभों, मोरो, शतपत्रों आदि से व्याप्त है।[107] इस प्रकार रामायण में शतपत्रि का उल्लेख मिलता है।

गूलर

'गूलर' का समीक्षात्मक अध्ययन 'उदुम्बर' के अन्तगत ही किया जाता है क्योंकि 'गूलर' 'उदुम्बर' का ही पर्यायवाची है।

जाती

नाम–संस्कृत-राजपुत्री, प्रियंबदा, मालती, सुवर्ण जाति का तेल मालिनी, वर्ष पुष्पा। हिन्दी-चमेली, चाबेली, चंपेली। बंगाल-जाति। गुजराती-चमेली । बम्बई-चमेली। तमिल-कोंडि मलिकई। तेलगू-जेजी। उर्दू-चमेली। फारसी-हशिम। अरबी-पसमयन। लेटिन-Jasminum Grandifforam।

वर्णन

चमेली सारे भारत वर्ष में पैदा होती है। इसके पुष्प में बहुत अच्छी सुगन्ध आती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार चमेली का फूल कसैला, कड़वा और तीखा होता है। यह गरम, वमन-कारक, विष-नाशक एवं घाव-पूरक है। इसके पत्ते मुख-शोथ, मुख-क्षत, दाँतों की पीड़ा, कान का दर्द, रक्त-विकार कोढ़, व्रण एवं पित्त में लाभ पहुँचाते हैं। इसके फूल की मात्रा 10 माशे तक और रस की मात्रा तीन तोले तक है।

उपयोग

मासिक-धर्म की रुकावट

चमेली के पञ्चाँग का क्वाथ पिलाने से मासिक-धर्म की रुकावट मिटती है और लीवर तथा तिल्ली की क्रिया सुधरती है।

दन्त रोग

इसके पत्तों को पानी में ओटाकर उस पानी के कुल्ले करने से दाँत और दाढ़ का दर्द मिटता है।

इसके अतिरिक्त सिर-दर्द, नपुंसकता एवं ध्वज-भंग, उपदंश, चर्मरोग आदि में भी इसका उपयोग लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में भारद्वाज आश्रम में तथा मरीचि के आश्रम में 'जाती' का उल्लेख किया गया है। यथा–'शिंशपा', आमलकी और जम्बू आदि स्त्रीलिंग वृक्ष तथा मालती, मल्लिका, और जाति आदि वन की लताएँ नारी का रूप धारण करके भारद्वाज मुनि के आश्रम में आ बसीं।[108] मरीचि के आश्रम का वर्णन करते हुए कहा गया है–'कहीं श्रेष्ठ अगरु के वन थे, कहीं उत्तम जाति के सुगन्धित फल वाले तक्कोलों (वृक्षविशेषों) के उपवन थे।'[109]

चन्दन

नाम–संस्कृत-श्री खण्ड, चन्दन, भद्र श्री, तैलपर्णिक, गन्धसार, मलयज और चन्द्रद्युति। हिन्दी-चन्दन, सफेद चन्दन। बंगाली-मराठी-चन्दन। कन्नडी-श्री गन्धमर। गुजराती-सुखड़। तामिल-चन्दन मरं। तेलगू-गन्धपुर चेक्का, फारसी-सन्दले सफेद। अरबी-सन्दले अब्यज। अंग्रेजी- Sandal Mood लेटिन- Santlum Album (सँन्टँलम् अल्बम्)।

वर्णन

चन्दन का वृक्ष सदा हरित 20-30 फीट ऊँचापन एवं अर्द्धपराश्रयी स्वरूप का होता है। इसकी छाल कालापन युक्त भूरे रंग की, अन्तर छाल-लाल, लकड़ी तैल

युक्त दृढ़ और सारभाग पीलापन युक्त भूरे रंग का तथा सुगन्धित होता है। पत्ते-विपरीत, 2-3 इंच लम्बे, अण्डाकार, लटवाकार, एवं उपपत्र रहित होते हैं। फूल-छोटे, निर्गन्ध, जामुनी रंग के तथा गुच्छों में आते हैं। फल-मांसल, गोल एवं कृष्णाभ बैंगनी रंग के होते हैं। इसका केवल काष्ठसार ही सुगन्धित होता है।

प्राचीन निघण्टुकारों ने चन्दन के कई भेद किये हैं। घ. नि. में चन्दन (श्वेत), रक्त चन्दन, कुचन्दन, कालीयक और बर्बरीक ये पाँच प्रकार के चन्दन के भेद लिखे हैं। रा. नि. में बेट्ट और सुक्कडि नामक श्वेत चन्दन के दो भेद एवं रक्त चन्दन, पतंग (कुचन्दन), कालीयक, बर्बरक तथा हरिचंदन ये सब मिलाकर सात प्रकार लिखे हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

श्वेत चन्दन कड़वा, शीतल, रुक्ष, दाह-शामक, पिपासाहर, ग्राही, हृदय-संरक्षक, विषघ्न, वर्ण्य, कण्डूघ्न, वृष्य, आह्लाद-कारक, रक्त-प्रसादक, मूत्रल, दुर्गन्धहर एवं अंगमर्द-शामक है।

इसका उपयोग ज्वर, रक्त-पित्त, पैत्तिक-विकार, तृषा, दाह, वमन, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, रक्तमेह, श्वेत-प्रदर, रक्त-प्रदर, उष्णवात, रक्तातिसार तथा अनेक चर्म-रोगों में किया जाता है। चन्दन शीत-वीर्य, रुक्ष, तिक्त-रस-युक्त, चित को आह्लादित करने वाला और लघु होता है तथा श्रम, शोष, विष, कफ, प्यास, पित्त-विकार, रक्त-दोष और दाह को दूर करने वाला होता है।

उपयोग

वमन

आँवले के रस के साथ चन्दन देने से वमन बन्द होता है।

प्रमेह-प्रदर

दुर्गन्ध युक्त श्वेत-प्रदर, रक्त-प्रदर एवं प्रमेह आदि में चन्दन का क्वाथ उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेकों रोगों में चन्दन लाभकारी सिद्ध होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी चन्दन का अनेकों स्थलों पर उल्लेख किया गया है। यथा—'चन्दन और अगरु की सुगन्ध से मिश्रित तथा धूप की मनोहर गन्ध से व्याप्त निर्मल मनोरम समीर आज पहले की भाँति क्यों नहीं प्रवाहित हो रहा है।'[110] इसी प्रकार श्मशान में भी चन्दन की आवश्यकता होती है, इस बात का परिचय देते हुए रामायण में लिखा है, 'श्मशान भूमि में पहुँचकर चिता तैयार की जाने लगी, किसी ने चन्दन लाकर रखा तो किसी ने अगरू, कोई-कोई गुग्गुल तथा कोई सरल, पद्मक और देवदारु की लकड़ियों को लाये।[111] इनके अतिरिक्त और भी बहुत से स्थलों पर चन्दन का उल्लेख मिलता है।[112]

जामुन

नाम—संस्कृत-जम्बू, सुरभिचला, नीलफवा, महास्कन्धा, मेघमोदिनी, राजफला, शुक्रप्रिया। हिन्दी- जामुन, जामन, काला जामन, फलांदा, फलिंदा। बंगाल-जामगाछ,

काला जाम। बम्बई-जांभूल, जांब जांबूडो। गुजराती-जामू, जांमूडी, जांबो। आसाम-जांबू। मैसूर-नरेली। कनाड़ी-जामुनरेली। पोरबन्दर-जांबू। तामिल-अरुगदम् कोटेनरुम। तेलगू-नेसदू। उर्दू-जामन, फलेंदा। लेटिन-Eugrnia Jambolana (युजेनिया जाम्बोलेना)।



वर्णन

जामुन के वृक्ष भारत में प्रायः सब ओर पैदा होते हैं। इसकी तीन-चार (3-4) जातियाँ होती हैं। एक जाति नदी के किनारे होती है उसके पत्ते कनेर के पत्तों की तरह और फल बहुत छोटे होते हैं। उसको 'जल जामुन' कहते हैं। दूसरी जाति के पत्ते आम के पत्तों की तरह और फल मध्यम कद के होते हैं इस जाति को 'जामुन' कहते हैं। तीसरी जाति के वृक्ष बहुत ऊँचे और फैले हुए होते हैं। इसके पत्ते पीपल के पत्तों की तरह चौड़े, बड़े, चिकने और चमकदार होते हैं। इसके फल भी 2 से 21 इंच तक लम्बे और 1 से 11 इंच तक मोटे होते हैं। इस जाति को 'राज जामुन' कहते हैं। यद्यपि इन तीनों जातियों के गुण-धर्म मिलते-जुलते हैं तथापि औषधि प्रयोग में 'राज जामुन' की जाति विशेष गुणकारी होती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से जामुन की छाल कसैली, मल-रोधक, मधुर, पाचक, रुक्ष, रुचिकारक तथा पित्त और दाह को दूर करने वाली होती है। इसके फल कसैले, मधुर, शीतल, रुचिकारक, रूखे, मल-रोधक, वात वर्द्धक और कफ, पित्त तथा अफारे को दूर करने वाले होते हैं।

जामुन की गुठली मधुर, मलरोधक और मधुमेह को नष्ट करने वाली होती है। इसके अंकुर शीतल, रूखे, ग्राही और अफारे को पैदा करने वाले होते हैं।

राज जामुन

मधुर, गरम, कसैली, स्वर-शोधक, मलरोधक तथा श्वास, श्रम, मुख की जड़ता, अतिसार, कफ और खाँसी को दूर करता है। इसका फल रुचिकर, मधुर, स्तम्भक, भारी, दोषनाशक और स्वादिष्ट होता है।

जल जामुन

कसैली, शीतल, कड़वी, भारी, पाक में मधुर, पुष्टिकारक तथा दाह, अतिसार, रुधिर विकार, कफ, पित्त, भ्रम को दूर करने वाली होती है।

उपयोग

इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से **अतिसार** मिटता है।

इसका ताजा रस बकरी के दूध के साथ पिलाने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

इसकी गुठली के चूर्ण का सेवन करने से मधुमेह रोग मिटता है।

रामायण में जामुन का वर्णन निम्नलिखित स्थलों पर दिखाई देता है यथा—'आम, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य तिनिश, बेल, तिन्दुक,

बाँस, काश्मरि आदि वृक्षों से व्याप्त वह पर्वत शोभा को बढ़ा रहा है।'[113] श्री राम की विरह अवस्था में भी जामुन का उल्लेख आया है। यथा—जामुन जाम्बूनद (सुवर्ण) के समान कांति वाली मेरी प्रिया यदि तुम्हारी दृष्टि में पड़ी हो, यदि तुम उसके विषय में कुछ जानते हो तो निःशंक होकर मुझे बताओ।[114] इनके अतिरिक्त और भी स्थलों पर जामुन का उल्लेख किया गया है।[115]

जौ

नाम—संस्कृत-यव, जव, हिन्दी-जव, जो जौ। मागधी-जौ। कन्नड़-मुंडजयव, मुंडजयवे। तमिल-वालिं, असिसु, वालिं अरिसु। तैलगू-यव धान्य, गोधुमलु यवल नेडधान्यमु। फारसी-जव, जओ। अरबी-शईर, शयईर। बंगाली-जब। नेपाली-टोस, भूटानी- नख। अंग्रेजी-Barley लेटिन-Hordeum Vulgare।

वर्णन

जौ सफेद शूक (सुई या टूंड) से युक्त होता है। अतियव—इसमें शूक नहीं होता है। तोक्य-यह शूक से रहित, हरे रंग का तथा छोटा होता है। शूक धान्यों में यव (जौ) प्रसिद्ध है। जो उत्तर भारत में अधिक होता है। यह तृण जातीय वनस्पति 2-3 फीट ऊँची होती है। पत्ते-पतले और लम्बे होते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

जौ कषाय तथा मधुर रस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त शीतल, लेखन, कोमल, व्रणों में तिल के समान पथ्य रुक्ष, मेधा तथा जठराग्नि को बढ़ाने वाला, किंचित् अभिष्यन्दी, कण्ठ स्वर को उत्तम करने वाला, बलकारक गुरु, अधिक रूप से वात तथा मल को करने वाला, शरीर के वर्ण को स्थिर रखने वाला, पिच्छिल एवं कण्ठ तथा चर्म सम्बन्धी रोग, कफ, पित्त, भेद, पीनस, श्वास, कास, उरुस्तम्भ, रक्त-विकार तथा तृषा को दूर करने वाला है।

अतियव

यह जौ की अपेक्षा न्यून गुण वाला है।

जौ का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त होता है। यथा—हेमन्त ऋतु के वर्णन में लक्ष्मण कह रहे हैं—"जौ एवं गेहूँ के खेतों से युक्त बहु संख्यक वन भाप से ढके हुए हैं तथा क्रौंच और सारस इनमें कलरव कर रहे हैं। सूर्योदय काल में इन वनों की बड़ी शोभा हो रही है।"[116]

तमाल

नाम—संस्कृत—तमाल तापिच्छ, कालस्कन्ध, आर्मतद्रुम, नील ध्वज और नील ताल। हिन्दी—तमाल, श्मालतमाल, पसेंदु। बंगाली-तमाल गाछ । तेलगू-तमालुका, नुगचेट्टु। मगधी—तमाल वृक्ष। गुजराती-तमाल, द्राविड़ी पुङ्ग मरम। कन्नड—होगेमरा। लेटिन—Garcinia Morilla (गर्सिनिया मोरिल्ला)।

वर्णन

तमाल पूर्वी बङ्गाल के जंगलों में और खासिया पहाड़, पश्चिम-प्रायद्वीप, मालाबार और कन्नर आदि के जंगलों में पाया जाता है। इसका वृक्ष छोटा होता है और शाखाएँ

खूब फैली हुई होती हैं। पत्ते 3-4 इंच लम्बे, चौड़े और बर्छीनुमा होते हैं। फूल हरापन युक्त सफेद रङ्ग के आते हैं और फल छोटे-छोटे गोलाकार होते हैं। बीज गुर्दाकार दीख पड़ते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

तमाल कषाय रस युक्त एवं व्रण, स्वेद, कफ, कृमि, ब्रध्न, विद्रधि, बहरापन, योनि तथा कर्ण सम्बन्धी रोग को दूर करने वाला है। यह विशेषतः दाह तथा विस्फोट का नाशक है।

रामायण में भी कई स्थलों पर तमाल का उल्लेख किया गया है। यथा—'तदन्तर देवादारु, ताल, तिलक और तमाल नामक वृक्ष कुबड़े और बौने बनकर बड़े हर्ष के साथ भरत की सेवा में उपस्थित हुए''[117] इनके अतिरिक्त और भी स्थलों पर तमाल का उल्लेख मिलता है।[118]

ताल

नाम—संस्कृत—भूमिपिशाच, चिरायु, ध्वजाद्रुम, दीर्घदारु, दीर्घस्कन्ध, दीर्घ तरु, गुच्छ पत्र, मधुरसा, शतपर्व, तरुराज, तन्तुगर्भा। हिन्दी—ताड़, बंगाल—तल, तलगच्छ। मराठी-ताड़—तामाड़। कोंकड़-ताड़मद। गुजराती—ताड़। तमिल—करदलम। नीलम, तालि। तेलगु—करतलमू, नमताग, पोतातागु। उर्दू—ताड़ । लेटिन—Borassus Flabelifer (बोरेसस फ्लेबिलीफर)

वर्णन

ताल के वृक्ष बहुत ऊँचे और सीधे बढ़ते हैं। इनके पत्ते बहुत बड़े और खूबसूरत होते हैं। ताड़ का वृक्ष 100 फीट तक ऊँचा होता है। उसके स्तम्भ की गोलाई 2 फीट तक होती है। स्तम्भ के सिरे पर 3-5 फीट के घेरे में 60-70 पत्ते एक साथ सटे हुए गोलाकार और झंझरदार होते हैं। पत्र-दण्ड 3-5 फीट का होता है। यह पुरुष और स्त्री जाति के भेद से दो प्रकार का होता है। स्त्री जाति पर नारियल के फूल के समान फल लगते हैं और पुरुष जाति पर बाल आते हैं। इसके रस को ताड़ी कहते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार ताड़ का फल मीठा, शीतल, नशीला, मज्जा-वर्द्धक, कामोद्दीपक, कृमि-नाशक, पौष्टिक, मृदु-विरेचक और विष-नाशक होता है। यह पित्त, जलन, प्यास, थकावट, वात रोग और रक्त रोगों में लाभदायक है। इसके बीज मूत्रल, मृदु-विरेचक, नुकीले और पित-नाशक होते हैं। इसकी जड़ सुगन्धित, कुष्ठ रोग में उपयोगी और प्रसवकाल में लाभदायक है। इसके फूल तिल्ली के बढ़ने पर लाभ पहुँचाते हैं। इसका कच्चा फल स्निग्ध, स्वादिष्ट, भारी, मल-रोधक, बल-कारक, शीतल, धातु-वर्द्धक, तृप्तिकारक, मांस-वर्द्धक है।

उपयोग

हृदय की जलन—इसके सूखे हुए फूलों के गुच्छे की राख को पिलाने से हृदय की जलन मिटती है।

चर्म रोग

इसके पके हुए फल के गूदे का लेप करने से चर्म रोग मिटते हैं।

इसके अतिरिक्त मूत्रातिसार, पित्त के रोग, मूत्र कृच्छ, हिचकी, उपदंश आदि में भी इसका उपयोग लाभ-कारी है।

रामायण में भी कई स्थलों पर इसका उल्लेख उपलब्ध है यथाः—यज्ञशाला के निर्माण में उसका उपयोग होता था/होता है- 'वह शाल, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षां के बहुत से पत्तों द्वारा छायी हुई थीं, अतः यज्ञ-शाला में जिस पर कोमल कुश बिछाये गये हों, उस लम्बी-चौड़ी वेदी के समान शोभा पा रही थी।'[119] इसके अतिरिक्त समुद्र तट पर उत्पन्न वृक्षों में भी ताल शोभा पा रहा था।—'कहीं कदलीवन और कहीं नारियल के कुंज शोभा दे रहे थे। साल, ताल, तमाल तथा सुंदर फूलों से भरे हुए दूसरे वृक्ष उस तट प्रान्त को अलंकृत कर रहे थे।[120] इसके अतिरिक्त और भी कई स्थलों पर ताल का वर्णन प्राप्त होता है।[121]

त्रिफला

लक्षण

नाम एवं गुण

हरड़, बहेड़ा और आँवला इन तीनों के फल यदि समान भाग में एकत्र किये जायें तो यही त्रिफला कहलाता है। इसके फलत्रिक और वरा ये भी नामान्तर हैं। त्रिफला कफ एवं पित्त को नाश करने वाली एवं प्रमेह व कुष्ठ को दूर करने वाली, दस्तावर, नेत्रों के लिये हितकर, अग्नि-दीपक, रुचिकारक एवं विषम ज्वर को नाश करने वाली होती है।

आजकल विद्वान यद्यपि हरड़, बहेड़ा एवं आँवला—इन तीनों को एक साथ मिलाकर त्रिफला मानते हैं तो भी इनके सम भाग होने में मतभेद है। कोई एक भाग हरड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग आँवला एवं कोई एक भाग हरड़, दो भाग बहेड़ा एवं चार भाग आँवला को त्रिफला कहते हैं। एक हरड़, दो बहेड़े और चार आँवले को भी बहुत लोग त्रिफला मानते हैं। उसी प्रकार एक हरड़ से एक भाग, दो बहेड़ा से दो भाग बहेड़ा और चार आँवले से चार भाग आँवला समझते हैं किन्तु यदि एक हरड़, दो बहेड़े और चार आँवले लिये जायें तो ये प्रायः समभाग ही होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में त्रिफला का पृथक से उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु त्रिफला में प्राप्त बहेड़ा एवं आँवला का उल्लेख इसमें स्थान-स्थान पर किया गया है।

तिल

नाम—संस्कृत—तिल, होम धान्य, जटिल, पापघ्न, पितृतर्पण, स्नेह फल, वनोद्भव, तेल फल, पितृ धान्य। हिन्दी-तिल, काला तिल सफेद तिल। बंगाल—तिल गाछ, भादु तिल, कटिल, रासि। गुजराती—तल। मराठी—तिल्ली। बम्बई-कृष्ण तिल, तिल। कुमाऊं—मंगरु तिल। पंजाब—कुँजा, तिल, तिल्ली। फारसी—कुंजेद।

अरबी—जिल्दजिलन, सिमसिम। तेलगू—नुबल्लु, नऊ। तमिल-इलु, एलू। लेटिन—Sesamim Indicum।

वर्णन

तिल की खेती भारतवर्ष में सब ओर होती है। इसका तेल खाने के काम में सारे भारत वर्ष में लिया जाता है। औषधि के लिये कृष्णतिल प्रयोग होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेद के मतानुसार तिल चरपरे, कड़वे, मधुर, कसैले, भारी, कफ-पित्त कारक, बल-वर्द्धक, केशों को हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करने वाले, व्रणरोपक, चर्म-रोगों में हितकारी, दन्त शूल नाशक, मल-रोधक, वात-विनाशक और बुद्धि-वर्द्धक होता है। सब तिलों में काले तिल उत्तम होते हैं। सफेद तिल मध्यम, वीर्य-वर्द्धक होते हैं और दूसरे तिल हल्के होते हैं। तिल्ली की खल मधुर, रुचिकारक, तीक्ष्ण, नेत्र-विकार करने वाली, मल स्तम्भक, रुसी और कफ, वात तथा प्रमेह को नष्ट करने वाली है।

तिल का तेल सब प्रकार के व्रण और जख्मों के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है। गर्मी के दिनों में दूसरे व्रण-रोपक या व्रण शोधक द्रव्यों की अपेक्षा यह तेल अधिक हितकारी होता है।

शारंगधर—के अनुसार इसके बीजों को पानी के साथ पीसकर लेने से रक्तार्श में लाभ होता है।

सुश्रुत—के मतानुसार इसके पत्ते साँप और बिच्छू के विष में लाभदायक हैं।

उपयोग

खूनी बवासीर

तिलों को जल के साथ पीसकर मक्खन में मिलाकर चाटने से खूनी बवासीर का खून बन्द हो जाता है।

मासिक-धर्म की रुकावट

तिल के काढ़े में सोंठ, मिर्च और पीपर का चूर्ण डालकर पिलाने से मासिक धर्म की रुकावट मिटती है।

इनके अतिरिक्त खूनी खाँसी, अग्नि से जलना, मोच, नेत्र-रोग, अतिसार, गर्भाशय सम्बन्धी रोग, नागफनी थूहर का काँटा, मस्तक पीड़ा, पथरी, गर्भाशय की पीड़ा, मुहाँसे, विषम ज्वर मकड़ी का विष, भिलावे की सूजन, बालों की सफेदी आदि रोगों में तिल का उपयोग बहुत लाभकारी होता हे।

वाल्मीकि रामायण में तिल का भी बहुतायत से उल्लेख किया गया है। यथा—रामाश्वमेध में तिल का प्रयोग करने के लिये श्री राम कहते हैं, ''महाबली सुमित्रा कुमार ! लाखों बोझ ढोने वाले पशु खड़े दाने वाले चावल लेकर चलें और दस हजार पशु तिल, मूंग, चना, कुल्थी, उड़द और नमक के बोझ लेकर चलें।''[122] भरत ने भी अपने स्वप्न में अपने पिता को तिल आदि खाते देखा, इस सन्दर्भ में भरत कहते हैं- 'फिर उन्होंने तिल और भात खाया इसके बाद उन्होंने

सारे शरीर में तेल लगाया और फिर वे सिर नीचे किये तैल में ही गोते लगाने लगे।[123]

इसके अतिरिक्त और भी स्थल तिल हेतु द्रष्टव्य हैं, जहाँ रामायण में तिल का उल्लेख किया गया है।[124]

दूर्वा

नाम–संस्कृत-अमरी, अमृता, अनन्ता, अनुवल्लिका, असितालता, बहुवीर्य, भार्गवी, भंतहंत्री, धूर्ता, दूर्वा, गौरी, गुना, हरसालिका, हरिता, हरितालि, जया, महौषधि, महायरी, मंगला, सहस्रार्वा इत्यादि। हिन्दी-दूब, द्रुव, दुर्वा, दूब घास, काली घास, राम घास। गुजराती-दुर्वा, हरियाली, ध्रो। मराठी-दुर्बा, हरियाली। पंजाब-दूब, दुर्वा, कबर, खब्बवल, ताला, तिला। बंगाल-दूब, दुबला, दुर्वा। तमिल-अरूगीमपिल्लू, हरियाली। तेलगू-घोरिचा। अंग्रेजी-Bahama Grass, Couch, Debils Grass, Doob Grass, लेटिन-Cynodon Dactylon.

वर्णन

दूब एक प्रसिद्ध घास है जो प्रायः सारे भारतवर्ष में होती है तथा सभी इसे जानते हैं। इसका पौधा जमीन से ऊँचा नहीं उठता बल्कि जमीन पर ही फैला हुआ रहता है। इसलिये इसकी नम्रता को देखकर गुरुनानक ने एक स्थान पर कहा है–

नानकनी चाहो चले, जैसे नीची दूब।
और घास सूख जायेगा, दूब खूब की खूब।।

दूब की तीन जातियाँ होती हैं–नील, श्वेत एवं गंडदूर्वा।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से दूब कसैली मधुर, शीतल, तथा पित्त, तृषा, अरुचि, वमन, दाह, मूर्छा, ग्रह-पीड़ा, भूत-बाधा, कफ, रक्त-रोग और श्रम को नष्ट करने वाली है और तृप्तिदायक है।

नीली या हरी दूब मधुर, कड़वी, शीतल, रुचिकारक, संजीवन, कसैली, रक्त-शोधक, रक्त-पित्त, अतिसार, ज्वर, वमन, कफ, रक्त-रोग, तृषा, विसर्प, दाद और त्वचा के विकार को दूर करती है। सफेद दूब मधुर, रुचिकारक, कसैली, कड़वी, शीतल तथा वमन विसर्प, तृषा, कफ, पित्त, दाह, आमातिसार रक्त-पित्त और खाँसी को दूर करती है।

गंड दूर्वा अर्थात् गांडर दूब, शीतल, लोहे को गलाने वाली, मल को रोकने वाली, हल्की, कड़वी, कसैली, मधुर, वात कारक, पचने में चरपरी तथा दाह, तृषा, कफ, रुधिर-विकार, कुष्ठ, पित्त एवं ज्वर को दूर करने वाली है। दूब की जड़ का काढ़ा वेदना शामक और मूत्रल होता है। चर्म रोग में इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर दिया जाता है।

उपयोग

नकसीर

इसका ताजा रस नाक में टपकाने से नकसीर तुरन्त बन्द हो जाता है।

घाव

इसके पंचाग को पीसकर लेप करने से घाव से रक्त स्राव तुरन्त बन्द हो जाता है।

आमातिसार

दूब को सोंठ और सौंफ के साथ औटाकर पिलाने से आमातिसार मिटता है।

इसके अतिरिक्त रक्त-प्रदर, पित्त की वमन, जलोदर, नेत्र-रोग, मूत्र में रुधिर बहना, मलेरिया ज्वर, मुँह के छाले, उपदंश के व्रण, खूनी बवासीर, पेशाब की जलन, मूत्रकृच्छ, ज्वर, पित्त की वमन, दाद एवं खुजली आदि में भी दूर्वा का प्रयोग लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में दूर्वा दल का उल्लेख एक-दो स्थलों पर प्राप्त होता है यथा-रामायण में एक स्थल पर उल्लेख आता है, 'श्री राम! पूर्वकाल में हंसों का रंग पूर्णतः श्वेत नहीं था। उनकी पाँखों का अग्रभाग नीला और दोनों भुजाओं के बीच का भाग नूतन दूर्वा दल के अग्रभाग-सा कोमल एवं श्याम-वर्ण से युक्त होता था।'[125]

धान

नाम–संस्कृत–धान्य, शालि, तन्दुल, हिन्दी–चावल, धान। मराठी–ताँदुल, भात। गुजराती–चोखा, भात। सिंध–चाँवर। फारसी–बिरंज। अरबी–अर्ज, अरुज। तामिल–आरिशी, नेलू। तेलगु–बियर धान्यम्, उरलू बदलू। लेटिन–Oryza Sativa।

वर्णन

चावल भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध खाद्य पदार्थ है। आयुर्वेदिक मत से यह शालि धान्य, व्रीहि धान्य, शिम्बी धान्य और क्षुद्र धान्य के भेद से 5 प्रकार का माना गया है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

शालि धान्य मधुर, स्निग्ध, बलकारक, किंचित मल-रोधक, कसैले, हल्के, रुचिकारक, स्वर को शुद्ध करने वाले, वीर्य पौष्टिक, वात-कफ को कुपित करने वाले, शीतल, पित्त-नाशक एवं मूत्रल होते हैं।

रक्त-शालि धान्य के गुण

रक्त शालि-धान्यों में सर्वोत्तम होते हैं। वे बलवर्द्धक, कांति बढ़ाने वाले, त्रिदोष नाशक, मूत्रल, स्वर को श्रेष्ठ करने वाले, शुक्रजनक, प्यास को दूर करने वाले, विष नाशक, ज्वरध्न, व्रण को दूर करने वाले तथा श्वास, खाँसी और दाद को नष्ट करने वाले होते हैं।

राज-शालि धान्य

राजशालिधान्य से तात्पर्य बासमती चावल से है। यह स्निग्ध, मधुर, अग्नि-दीपक,

बलकारक, कांति-जनक, धातुवर्द्धक, त्रिदोष नाशक और हल्के होते हैं।

ब्रीहि धान्य

मधुर, शीतवीर्य, मल-रोधक और शुक्र-रूप तथा बल देने वाले होते हैं।

षष्टिक धान्य

मधुर-मल-रोधक तथा त्रिदोष नाशक, शीतल और सब प्रकार के चावलों में श्रेष्ठ होते हैं।

यूरोप के अन्दर चावल फेफड़ों की बीमारी, क्षय, वक्षस्थल के रोग और कफ के साथ खून जाने की बीमारी में लाभ दायक माना जाता है। उबला हुआ चावल पाचन-क्रिया की विकृति, आँतों के विकार और अतिसार में लाभदायक है। चावल का पानी ज्वर एवं आँतड़ियों की जलन में शान्तिदायक पदार्थ की तरह दिया जाता है।

अतिसार या पेचिश के रोगियों के लिये चावल अधिक लाभकारी है। आँतों के जख्म, खून के दस्त, गुर्दे तथा मसाने की बीमारियों में ये लाभ पहुँचाते हैं। चावल को भूनकर उसको रात भर पानी में भिगोकर उस पानी को प्रातः पीने से मेदे के कीड़े मर जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी धान का उल्लेख अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता हैं- यथा—

'अब ये ऐसे वन में प्रवेश करेंगी, जहाँ मनुष्यों के आने-जाने का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देगा। न धान आदि के खेत होंगे न टहलने के लिये बगीचे।'[126] इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर भी वर्णन मिलता है, 'जैसे इन्द्र वर्षा करके उगे हुए धान के खेत को फल से सम्पन्न करते हैं उसी प्रकार मैं भी वाण का प्रयोग करके वालि के वध द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगा।[127] इनके अतिरिक्त अन्य स्थल भी है।[128]

पलाश

नाम—संस्कृत—लता पलाश, पलाश, किंशुक, पर्ण, यज्ञिय, रक्त—पुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वात—पोथ, ब्रह्म-वृक्ष तथा समिद्वर। हिन्दी—पलाश लता, ढ़ाक, परास, टेसू, केसू, धारा, कांकरिया, छिउल। बंगाली-पलाश, गाछ। मगधी—पलश गुजराती—खाखरी, बेल खाकरा। मराठी-पलाश बेल क. मुतलु, मुदगद गिड़। तेलगू—तुका चेट्टु, मोदगु। तामिल-परशना। द्रा. पेलाशं। पं. पलाश। फारसी—फलह। अंग्रेजी—The Forest Fame लेटिन—Butea Frondosd.

वर्णन

यह प्रायः सब प्रान्तों के वन-उपवनों में पाया जाता है। इसका वृक्ष-मध्यमाकार होता है। पत्ते-गोल-गोल-एक-एक डन्डी पर तीन-तीन लगते हैं। डण्डी की ओर का हिस्सा कुछ पतला होता है और उसके नीचे का भाग कुछ चिकना तथा ऊपर का भाग रोंवेदार होता है। पत्तों का पत्तल बनाया जाता है। फलियाँ-सेम के समान

चिपटी, पतली और लम्बी-लम्बी होती हैं। बीज-गोल तथा चिपटे होते हैं। वसन्त के समय इस पर पत्ते झड़ जाते हैं तथा फूल आता है। किंचित् पीलापन युक्त लाल-लाल फूल बहुत सुहावने दीख पड़ते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

पलाश कषाय, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, अग्नि दीपक, वृष्य, सारक, उष्ण, टूटी अस्थियों को जोड़ने वाला, स्निग्ध एवं व्रण, गुल्म, वातादि दोष, गृहणी, अर्श, कृमि तथा गुदा में उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर करता है।

ढाक के फूल स्वादिष्ट, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, विपाक में कटुरस युक्त, वात जनक, कफ-पित्त, रक्त-विकार तथा मूत्र-कृच्छ्र-नाशक, ग्राही, शीतल, तृषा एवं दाह को शमन करने वाले एवं वात-रक्त तथा कुष्ठ को अत्यन्त दूर करने वाले होते हैं।

ढाक के फल लघु, उष्ण, विपाक में कटु रस युक्त, रुक्ष एवं प्रमेह, अर्श, कृमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म तथा उदर रोग के नाशक हैं।

उपयोग

इसकी पत्तियों का रस बच्चों की फुंसियों को दूर करने के लिये दही और हल्दी के साथ उपयोग में लिया जाता है।

इसकी जड़, छाल, फूल सभी सर्पदंश की औषधि के रूप में काम में लिये जाते हैं। सुश्रुत के मतानुसार बिच्छू का डंक लगने पर इसके फलों का उपयोग करना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण में भी 'पलाश' का अनेक स्थलों पर उल्लेख उपलब्ध होता है यथा—'जैसे दूसरा कोई गंवार मनुष्य पलाश के फूलों पर ही मोहित हो उसके कड़वे फल को नहीं जानता, उसी प्रकार मैं भी 'शब्द-भेदी बाण-विद्या' की प्रशंसा सुनकर उस पर लट्टू हो गया।[129] एक अन्य प्रसंग भी है, 'कोई मनुष्य पलाश का सुंदर फूल देखकर मन ही मन यह अनुमान करके कि इसका फल और भी मनोहर तथा सुस्वादु होगा, फल की अभिलाषा से आम के बगीचे को काटकर वहाँ पलाश के पौधे लगाता व सींचता है; वह फल लगने के समय पछताता है।[130]

पिप्पली

पिप्पली से तात्पर्य पीपल से है इसकी समीक्षा 'अश्वत्थ' के अन्तर्गत ही समाविष्ट है। अश्वत्थ पिप्पली का ही पर्यायवाची शब्द है।

पान

नाम—संस्कृत—नागवल्ली, नागिनी, नागवल्लिका, पर्णलता, तांबूली, तांबूवल्ली, सप्तशिरा, मुखभूषण। हिन्दी-नागरवेल का पान, तम्बूल, बंगलापान। मराठी-नागबेल। गुजराती—नागरवेल, पान, कर्नाटकी—नागरबल्लि, पर्ण। तेलंगी—तामलपाकू, नागबल्ली। तमिल—बेट्टिटली। फारसी—वर्गतम्बोला। अरबी—तम्बोला। उर्दू—पान।

अंग्रेजी—Batel leaf लेटिन—Piper Betel।

वर्णन

ताम्बूल या नागरबेल का पान सारे भारत में भोजन के पश्चात् खाने के काम में लिया जाता है। इसकी खेती मद्रास, बंगाल, बनारस, महोबा, साँची, लंका और मालवा के रामपुरा, मानपुर जिले में बहुत होती है। इन सब पानों में बनारस का पान सर्वोत्तम माना जाता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

पान चरपरा, कड़वा, गरम, मधुर, क्षार गुण युक्त, कसैला तथा वात, कृमि, कफ और दुःख को हरने वाला है। स्त्री सम्भाषण के विषय में यह अलंकार के समान है और धारणा शक्ति और काम शक्ति को बढ़ाता है। पान में जो यह तेरह गुण हैं वह स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार पान चरपरा, तीक्ष्ण, कड़वा और पीनस, वात, कफ तथा खाँसी में लाभदायक है। यह रुचि कारक दाहजनक और अग्नि-दीपक हैं।

भाव प्रकाश के मतानुसार पान विषध्न, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, कसैला, सारक, वशीकरण, चरपरा, रक्त-पित्त कारक, हल्का, वाजीकरण तथा कफ मुँह की दुर्गन्ध, मल, वात और श्रम को दूर करता है।

पुराना पान अत्यन्त रसभरा, रुचिकारक, सुगन्धित, तीक्ष्ण, मधुर, हृदय को हितकारी, जठराग्नि को दीप्त करने वाला, कामोद्दीपक, बलकारक, दस्तावर और मुख को शुद्ध करने वाला है। नवीन पान, त्रिदोष कारक, दाहजनक, अरुचिकारक, रक्त को दूषित करने वाला, विरेचक और वमन कारक है। वही पान अगर बहुत दिनों तक जल से सींचा हुआ हो तो श्रेष्ठ होता है। रुचि को उत्पन्न करता है। शरीर के वर्ण को सुन्दर करता है और त्रिदोष नाशक है।

पान का प्रयोग कफ-प्रधान रोगों में विशेष रूप से होता है।

उपयोग

बच्चों की कब्जियत

पान के डंठल पर तेल चुपड़कर बच्चों की गुदा में रखने से बच्चों की कब्ज और वादी के रोग मिटते हैं।

सूजन

पान पर तेल चुपड़कर गरम करके बाँधने से सूजन का दर्द मिटता है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक रोगों यथा गर्भ-निरोध, जुकाम और सीने का दर्द, नेत्र-रोग, रंतौधी, बच्चों की सूखी खाँसी में पान का उपयोग अत्यन्त लाभ-कारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी पान का उपयोग एवं उल्लेख एक दो स्थलों पर प्राप्त होता है। यथा- कैकेई कहती हैं,—'यदि राम यहाँ से वन को नहीं गये तो मैं न तो भाँति-भाँति के बिछौने, न फूलों के हार, न चन्दन, न अंजन, न पान, न भोजन और न दूसरी ही कोई वस्तु लेना चाहूँगी। उस दशा में तो मैं यहाँ इस

जीवन को भी नहीं रखना चाहूँगी।[131]

पारिजात

नाम—संस्कृत—पारिजात, प्रजापत, हारश्रृंगार, नल कुंकुम, रागपुष्पी खरपत्रक। हिन्दी—हरसिंगार, सियारी, बिनारी कुटी, पारिजात। बंगाल—हारसिंगार, सैफालिका। बम्बई—हार सिंगार, पारिजात, शिउली। मध्य—प्रान्त—शिरालू। देहरादून—हूरी। गढ़वाल—कुरी। गुजराती—जयापारवती। मराठी—खरामली, पारिजातक। पंजाब—हार—सिंगार, कुरी, लादुरी, पकुंरा, शियाली तमिल—मंजतपु, पेरिसादम। तेलगू—कृष्ण वेणी, पारिजातम्। उर्दू—गुलजाफरी, हारसिंगार। लेटिन—Nyctanthes Arbortristis अंग्रेजी—Coral Jasmine।

वर्णन

पारिजात के वृक्ष बड़े सुंदर होते हैं। इनकी ऊँचाई 5 से लेकर 12 फुट तक होती है। इसके फूल सफेद और फूलों की डण्डी केसरिया रंग की होती है। इन फूलों में बहुत मनोहर सुगन्ध आती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेद के अनुसार इसके पत्तों का रस कड़वा और चरपरा होता है, यह ज्वर के अंदर लाभदायक है। पारिजात ज्वर-नाशक कफ को दूर करने वाला, यकृत को उतेजना देने वाला, शामक और चर्म-रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके पत्ते संटीनोन के समान कृमिनाशक और कटुपौष्टिक तथा पित्त-द्रावक होते हैं। इसकी छाल पित्त-नाशक और कफ-नाशक होती है और यह पैत्तिक ज्वरों में उपयोगी होती है।

इसके पत्तों का ताजा रस पित्त-निस्सारक, मृदु-विरेचक और कटु-पौष्टिक होता है। इसको थोड़ी सी शक्कर के साथ बच्चों को देने से उनकी आँतों के गोल और चपटे कीड़े निकल जाते हैं।

उपयोग

गठिया

इसके फूलों का क्वाथ बनाकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है।

जीर्ण-ज्वर

इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाने से जीर्ण-ज्वर मिटता है।

गृध्रसी

बिल्कुल हल्की आँच पर इसके पत्तों का क्वाथ बनाकर पिलाने से किसी भी औषधि से न मिटने वाली गृध्रसी मिटती है।

वाल्मीकि रामायण में इसका प्रयोग मिलता है। रम्भा के सौन्दर्य-वर्णन में कहा गया है—उसके अङ्गों में दिव्य चंदन का अनुलेप लगा था और केश-पाश में पारिजात के पुष्प गुंथे हुए थे......।[132] इसके अतिरिक्त और भी अयोध्या की अशोक-वनिका में भी इसकी प्राप्ति बतायी गयी है—'चम्पा, अशोक, पुंनाग, महुआ, कटहल, असन तथा धूमरहित अग्नि के समान प्रकाशित होने वाले

पारिजात से वह वाटिका सुशोभित थी।[133]

प्रियंगू

नाम– संस्कृत–प्रियंगु, फलिनी, श्यामा, गंधफला, कृष्णपुष्पी, कृशांगी, फल–प्रिया, गौरी, कंगुनी, भंगुरा, पर्णभेदिनी, अंगना प्रिया हिन्दी–प्रियंगू, फूलफेन। बंगाल–प्रियंगू, गंधप्रियंगू। मराठी–प्रियंगू, गव्हला, गुजराती–प्रियंगू, धँवला। तेलगू–कोण्डनदुगा, इत्तदुगा। लेटिन–Agalia Odoratissima।

वर्णन

यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसके पत्ते जुड़वाँ और फूल-पीले रंग के होते हैं। फल लगभग 3/4 इंच मोटे, गोल रुएँदार और ताजे होने पर हरिण के रंग के और सूखने पर रंग बदल लेते हैं। इसके फलों में एक या दो बीज रहते हैं। इन बीजों का स्वाद खट्टा और तूरा तथा ताजी स्थिति में कुछ सुगन्ध युक्त होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मतानुसार इसकी जड़ और इसकी छाल कफ और पित्त को दूर करने वाली कड़वी चरपरी ज्वर-नाशक, कामोद्दीपक, वात और पित्त के प्रकोप को दूर करने वाली तथा रक्तातिसार, धवल-रोग, चर्म-रोग और गलित-कुष्ठ में लाभ दायक है। यह खराब दुर्गन्ध, बुखार की जलन, प्यास, अनैच्छिक वीर्य-स्राव, वमन, शरीर की जलन और खून की खराबी को दूर करती है। इसके पत्ते वमन कारक एवं उदर शूल को रोकने वाले हैं। इसके फूल गलित-कुष्ठ में लाभदायक होते हैं। इसके फल मीठे, चरपरे, पचने में भारी ठन्डे, पौष्टिक, आँतों के लिये संकोचक, व्रण को भरने वाले, कफ और पित के प्रकोप को दूर करने वाले और मूत्र सम्बन्धी शिकायतों में लाभदायक होते हैं। इसके बीज मीठे, चरपरे, ठन्डे, खुश्क, संकोचक, पौष्टिक एवं पित्त तथा कफ को नष्ट करने वाले हैं।

इसके पत्तों को पानी में भिगोकर मलछानकर मिश्री मिलाकर पीने से मूत्र नली का दाह मिटता है। इसके फूलों के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से रक्त-पित्त मिटता है। इसके फल खाने से अतिसार मिटता है और शरीर की शक्ति बढ़ती है।

वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव के अभिषेक के समय प्रिंयगू का उल्लेख मिलता है–'पहले तो वे सब लोग उनके लिये सुवर्ण-भूषित, श्वेत छत्र, सोने की डंडी वाली दो सफेद चँवर, सब प्रकार के रत्न, बीज और औषधियाँ, अक्षत-सोना-प्रियङ्गु आदि सामग्री लेकर वहाँ उपस्थित हुए[134] लंकापुरी के वर्णन में भी प्रियंगू का उल्लेख मिलता है यथा- 'उन कपिश्रेष्ठ ने वहाँ सरल, कनेर, कुटज, केतक, प्रियंगू आदि देखे।[135] इनके अतिरिक्त और भी स्थलों पर प्रयंगु का उल्लेख मिलता है।[136]

बिम्बी

नाम–संस्कृत–बिम्बाफल, रक्त–फला, तुडी, ओष्ठोपमफला। हिन्दी–कन्दूरी, कन्दौरी। मराठी–बिम्बी,गोडतोडली, कोडंबली। बंगाली–तेलाकुचा, गुजराती–गलेदू,

गलुदा, घोलां मीठी। अरबी—कवरेहिन्द। फारसी—कुन्द्रस। तेलगू—दोडतिरो। तमिल—कोवे। लैटिन—Coeeina Indica, Cephalandra-Indica.।

वर्णन

कन्दौरी की लताएँ होती हैं। इसकी बेलें बरसात में पैदा होकर फूलती-बढ़ती हैं। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के, फूल गुल-चाँदनी की तरह और फल परवल की तरह होते हैं। इसके बीज कागजी नींबू के बीज की तरह होते हैं। इसका फल कच्ची स्थिति में हरा, सफेद, धारीदार और पकने पर लाल हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है-एक कड़वा और एक मीठा।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से मीठी कन्दौरी मधुर, शीतल, भारी, स्तनों में दूध पैदा करने वाली, कफ-पित्त नाशक तथा दाह, ज्वर, रक्त-पित्त, खाँसी, श्वास और क्षय रोग को हरने वाली है।

इसके फल भारी, स्वादिष्ट, शीतल, मल स्तम्भक, स्तनों में दूध पैदा करने वाले, दुष्पच्य, वात कारक, संकोचक और ज्वर-निवारक हैं। वे कोढ़, वात, शरीर की जलन, बच्चों की खाँसी, वायु-नलियों के प्रदाह, श्वास, क्षय, पीलिया, रक्त-विकार और पित्त-जन्य प्रदाह को दूर करते हैं। इसके पत्ते मीठे, तिक्त, शीतल और आँतों का संकोचन करने वाले होते हैं। ये ग्राही, वात कारक तथा कफ और पित्त को शक्ति देने वाले होते हैं। इसके फूल खुजली को मिटाने वाले तथा पित्त एवं पीलिया की बीमारी में लाभदायक हैं।

कड़वी कन्दौरी का फल कड़वा, चरपरा, विरेचक, विष-निवारक और वमनकारक है। यह कफ, पित्त, मुँह से दुर्गन्ध आना, अरुचि, खाँसी और रक्त-पित्त को नष्ट करने वाला है।

उपयोग

विरचेन

इसकी जड़ की छाल के दो माशे चूर्ण की फक्की लेने से अच्छी तरह से दस्त लग जाते हैं।

प्रमेह एवं बहु मूत्र

इसकी जड़ की छाल का ताजा रस एक तोले की मात्रा में प्रतिदिन प्रातः काल देने से प्रमेह एवं बहु-मूत्र-रोग में लाभ होता है।

इनके अतिरिक्त यह जिह्वा के घाव एवं कर्ण-रोग आदि में भी लाभकारी होती है।

रामायण में भी बिम्बी का अनेक स्थलों पर उल्लेख प्राप्त होता है यथा—सीता के ओठों की समानता करते हुए कहा गया है, "उनके केश काले-काले और ओष्ठ बिम्ब-फल के समान लाल थे।"[137] उनका बिम्ब फल के समान लाल ओठों, सुंदर नेत्रों, मनोहर भौंहों, रुचिर केशों-वाला मुख राहु-ग्रस्त चन्द्रमा-सा प्रकाशित हो रहा था।[138]

बिल्वा फल

नाम–संस्कृत–बिल्व, श्री फल, पूतिवात, शैल पात्र, लक्ष्मी पुत्र, गन्ध–पत्र, शिवेष्ट इत्यादि। हिन्दी बेल, बिली, श्री फल। बंगाल–बेल, बिल्व। बम्बई–बेल, बिली। मराठी–बेल, गुजराती–बिली। तमिल–बिलूबम। तेलगू–बिल्वमु। उर्दू–बेल अरबी–सफरजले। अंग्रेजी–Bale Friut Tree लेटिन–Aegle Marmelos (इगल मारमेलोस)।

वर्णन

बेल का वृक्ष मध्यम आकार का होता है। शाखाओ में काँटे होते हैं, पत्ते त्रिदल या एक डण्ठल में तीन-तीन लगते हैं। फूल सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसके फल गोल, स्वादिष्ट और सख्त छिलके वाले होते हैं तथा उनमें बहुत से बीज होते हैं और उन बीजों में गोंद होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार बेल मीठा, हृदय को बल देने वाला, गरम, कसैला, रुचिकारक, अग्नि-दीपक, संकोचक, रुखा, पित-कारक, कड़वा, चरपरा, भारी, पाचक तथा वातातिसार और ज्वर को नष्ट करने वाला होता है।

बेल का कच्चा फल स्निग्ध, भारी, रुचिकारक, जठराग्नि को दीप्त करने वाला, मलरोधक, पाचक, कड़वा, हल्का, गरम, कसैला तथा शूल, आमवात, संग्रहणी और कफ के अतिसार को दूर करने वाला होता है।

बेल का पका हुआ फल दाह पैदा करने वाला, मधुर, भारी, कसैला, मल-रोधक, कड़वा, गरम, त्रिदोष कारक, दुष्पच्य और वात-कारक तथा मन्दाग्नि को उत्पन्न करने वाला होता है। बेल की जड़ मधुर तथा त्रिदोष, वमन, शूल को नष्ट करने वाली, हल्की तथा मूत्र-कृच्छ्र, वायु, कफ और पित्त का नाश करने वाली होती है।

बेल के पत्ते कफ, वात, आम और शूल को नष्ट करते हैं।

उपयोग

अतिसार

इसके कच्चे फल के गूदे को सेक कर मिश्री के साथ खिलाने से पुराना अतिसार और आमातिसार मिटता है।

ज्वर

शीत ज्वर एवं ऐसा ज्वर जिसका कारण मालूम न हो, बेल-गिरी के चूर्ण की फक्की देने से दूर होता है।

इनके अतिरिक्त मूत्रकृच्छ्र, विसूचिका, सर्प-विष, खराब-फोड़े, मसूड़े का रोग, मंदाग्नि, ज्वर, पागलपन, आँख का दुखना, संग्रहणी, वमन, गर्भवती स्त्री का वमन, कामलारोग, कानों का बहरापन आदि रोगों में भी बिल्व बहुत उपयोगी है।

वाल्मीकि रामायण में भी स्थान-स्थान पर बेल का उल्लेख किया गया है। श्री राम वन में जाते समय अन्य विविध वृक्षों के मध्य बेल का वृक्ष भी देखते हुए कहते हैं, "सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथी भी इस जंगल की शोभा बढ़ा रहे हैं। धव

(धौरा) अश्वकर्ण, ककुभ, बेल, तिन्दुक, पाटल तथा बेर के वृक्षों से भरा हुआ यह भयंकर वन क्या है ? इसका क्या नाम है?'[139] इसी प्रकार वनवास में भी वन में विचरण करते श्री राम सीता से कहते हैं, 'देखो ये भिलावे और बेल के पेड़ अपने फूलों ओर फलों के भार से झुके हुए हैं.........।[140] इनके अतिरिक्त और भी अनेक स्थानों पर बिल्व का उल्लेख प्राप्त होता है।[134]

बेला

नाम—संस्कृत—बेला, बम्बई—बेलीपाता, बंगाल—बोला, चेलवा। तमिल—निरष्यरुती। तेलगू—इट्टागोबू। उड़िया—बेनिया। लेटिन—Hibiscus Tiliaceus।

वर्णन

बेला का वृक्ष जंगलों में अधिक होता है एवं वाटिकाओं में भी इसे लगाते हैं। इसका वृक्ष 5-7 फीट ऊँचा होता है। पत्ते मल्लिका के समान पर उनसे बड़े होते हैं जो 10 से 12.5 से.मी. तक लम्बे होते हैं। फूल सुंदर एवं सुगन्धित होते हैं, ये वर्षा ऋतु में फूलते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

बेला शीतल, लघु, तिक्त-रस-युक्त एवं त्रिदोष, कान, नेत्र-मुख सम्बन्धी समस्त रोग को दूर करने वाली होती है। इसके तेल के भी ये ही सब गुण हैं। इसकी जड़ ज्वर नाशक होती है और मालिश तथा लेप करने की औषधियों में मिलायी जाती है।

इसकी छाल का चूर्ण वामक द्रव्य की तरह दिया जाता है और पत्तों का निर्यास जख्म को धोने के काम में लिया जाता है। कर्णशूल को मिटाने के लिये इसके फूलों को दूध में उबालकर कान में डालते हैं। त्वचा की शिथिलता को मिटाने के लिये ताजे फल का पीला रस त्वचा के ऊपर रगड़ा जाता है। इसके पत्ते मर्दुविरेचक और व्रण को भरने वाली औषधि की तरह काम में लेते हैं।

वाल्मीकि रामायण में बेला का कहीं स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

बाँस

नाम—संस्कृत—बहुपल्लम, धनुद्रुम, वृहत्तृण, धानुष्य, दृढ़ ग्रन्थ, दृढ़ कांड, दुरारुह, कमठ, कंटकी, कंटालु, कीचक, मृत्यु-बीज, मस्कर, वंश, वेणु, यव—फला इत्यादि। हिन्दी—बांस, कांटा बांस, मगर बांस, मल बांस, कंटक। बंगाली—बांस, बेहूर बांस। बम्बई—दोंगी, कलक मध्य प्रांत—कंटक। गुजराती—बांस। मराठी—कलक। संथाल—मठा। फारसी—नाई। पंजाब—नल, मगर, मगेरी। उर्दू-बाँस, तमिल—अबल, तेलगू—वोगू। अंग्रेजी—Spiny Bamboo। लेटिन Fambusa Arundinacea।

वर्णन

बाँस भारत वर्ष में सभी ओर दूर जंगल और पहाड़ों की तलहटियों में उत्पन्न होते हैं। इसके पौधे एक दम सीधे और लम्बे-लम्बे चले जाते हैं। कहीं-कहीं इनकी

ऊँचाई 40/50 फीट तक हो जाती है। बासों की दो जातियाँ होती हैं, एक नर और एक मादा। नर बाँस ठोस होते हैं और मादा बाँस पोले होते हैं। जब स्वाति नक्षत्र का पानी मादा बाँस के अन्दर गिरता है तब वह जमकर वंशलोचन का रूप धारण कर लेता है। बाँस के सूखने पर वंशलोचन उसमें से निकाल लिया जाता है।

गुण-दोष एवं स्वभाव

आयुर्वेदानुसार दोनों प्रकार के बाँस खट्टे, कसैले, किंचित् कड़वे, शीतल और मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, पित्त, दाह और विकार को हरने वाले होते हैं।

रन्ध्र बाँस अग्नि को दीपन करने वाला, अजीर्ण नाशक, रुचिकारक, पाचक, हृदय को हितकारी तथा शूल और गुल्म को नष्ट करने वाला होता है।

बाँस के अंकुर चरपरे, कड़वे, खट्टे, कसैले, हल्के, शीतल तथा रक्त-पित्त, दाह एवं सुजाक में लाभदायक होते हैं।

बाँस के चावल कसैले, मधुर, पौष्टिक, बल-वर्द्धक तथा कफ-पित्त, विष एवं प्रमेह को दूर करते हैं। कभी-कभी बाँसों के ऊपर जौ के समान फल आते हैं। इनमें से चावल के समान दाने निकलते हैं इन्हीं को बाँस के चावल कहते हैं।

बाँस की प्रधान क्रिया गर्भाशय के ऊपर होती है। इनमें गर्भाशय का संकोचन होता है और इसीलिये इसके कोमल पत्तों का काढ़ा स्त्रियों को प्रसूति के समय पिलाया जाता है जिससे उनके गर्भाशय की गंदगी बिल्कुल साफ हो जाती है और गर्भाशय असली स्थिति में आ जाता है।

उपयोग

प्रमेह एवं सुजाक, कृमि-रोग आदि में भी इसका प्रयोग लाभकारी होता हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी बाँस का उल्लेख निम्नलिखित स्थलों पर प्राप्त होता है—भरत की तुलना दुःख के पर्वत से करते हुए कहा गया है, "......अतिशय मोह ही उसमें अनन्त प्राणी थे। बाहर भीतर की इन्द्रियों में होने वाले संताप ही उस पर्वत की औषधियों तथा बाँस के वृक्ष थे।'[142] चित्रकूट पर्वत पर भी बाँस आदि का होना बताते हुए कहा गया है, "आम, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल बाँस...आदि उस पर्वत की शोभा बढ़ा रहे हैं।"[143] अन्य स्थल भी दृष्टव्य हैं, जहाँ पर वेणु (बाँस) का उल्लेख किया गया है।[144]

शिरीष

नाम—संस्कृत—शिरीष, भण्डीर, शुक्र—पुष्प, विषनासन, स्वर्णपुष्पक इत्यादि। हिन्दी—सिरस, काला सिरस। बंगला—सिरिस। गुजराती—सरसडो, कालियो सरस। मराठी—शिरस। कोंकण—गारसी। फारसी—दरख्ते जकरिया। अरबी—सुलतानुल असजार। उर्दू-दराश। तमिल—सोनागम। तैलगू—सिरशामु। अंग्रेजी—Siris Tree लेटिन—Albizzahebbk।

वर्णन

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। सिरस के वृक्ष बड़े-बड़े और सघन वन और उपवन में तथा प्रायः सब प्रान्तों में होते हैं। इसके पत्ते-इमली के पत्तों

के समान पर इनसे लम्बे, चौड़े एक-एक सींक पर दोनों ओर 9 जोड़े तक लगते हैं। चैत्र, वैशाख में फूलता, फलता है। इसके फूल सुगन्ध युक्त सफेद किंचित पीलायी लिये हरे छोटे-छोटे तन्तुओं से सजे कोमल, मनोहर होते हैं। सेम के समान 8 से 12 इंच लम्बी 2 इंच चौड़ी और पतली और हल्के पीले रंग की फलियाँ होती हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से शिरीष कड़वा, शीतल तथा विष, खुजली, रुधिर-विकार, कुष्ठ, कण्डू एवं त्वचा के दोषों को दूर करने वाला होता है।

सिरस बवासीर, पसीना, चर्म-रोग, सूजन एवं विसर्प को दूर करता है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार सिरस मधुर, अनुष्ण, कड़वा, कसैला, हल्का तथा सूजन, विसर्प, खाँसी, व्रण और विष को हरने वाला होता है।

इसकी जड़ सूयूर्यावर्त या आधी शीशी रोग में लाभ पहुँचाती है। इसकी छाल कड़वी, शीतल, विष-नाशक, कृमि-नाशक तथा वात, रक्त रोग, बवासीर, सूजन, विसर्प, खाँसी और चूहे के विष को दूर करती है। इसके पत्ते आँख-दुःखने को अच्छा करते हैं। इसके फूल दमा एवं सर्प विष में उपयोगी होते हैं और इस वनस्पति के सभी अङ्ग सर्प विष में लाभ पहुँचाते हैं।

उपयोग

गण्डमाला

सिरस के छः माशे बीजों को पीसकर उनकी फक्की लेने से गण्डमाला की पेशियों की सूजन उतरती है। इसके बीजों को पीसकर उनका लेप करने से भी गण्डमाला की सूजन उतरती है।

मसूड़े के रोग

इसकी जड़ की छाल के चूर्ण से मंजन करने से पके हुए मसूड़ों का रोग मिटता है और दाँत मजबूत हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त मूत्र-कृच्छ्र, जलोदर, आधा शीशी, श्वेत-कुष्ठ, कुष्ठ, बवासीर, सर्प-विष आदि रोगों में भी इससे बहुत लाभ होता है।

शिरीष 3 प्रकार का होता है—काला, पीला एवं सफेद।

वाल्मीकि रामायण में शिरीष का भी वर्णन मिलता है—ऋष्यमूक पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुए श्री राम कहते हैं—'मुचुकन्द, अर्जुन, शिरीष, शीशम आदि के वृक्ष भी फूलों से लदे दिखाई पड़ रहें हैं।'[145] प्रस्रवण गिरि के उल्लेख में भी शिरीष का उल्लेख आता है, "मालती और कुंद की झाड़ियों, सिन्दुवार, शिरीष, अर्जुन और सर्ज के फूले हुए वृक्ष इस स्थान की शोभा बढ़ा रहे हैं।"[146]

मौलश्री

नाम—संस्कृत—बकुल, केशर, भ्रामरानन्द, स्त्रीमुख—मधु, अनंगका, कंठ, मधुपंजर इत्यादि। हिन्दी—मौलसरी, बकुल बंगाल—बकुल गाछ। बम्बई—बोरसली। गुजराती—बोलसरी। मराठी—बकुल, वरसोली। पंजाब—मोलसरी। तमिल—अलागु, केसारम्।

तेलगू—केसारी। उर्दू—मोलसरी। लेटिन—Mimusops elengi।

वर्णन

मौलश्री के वृक्ष 20 से लेकर 35 फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते जामुन के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल कुछ मैलापन लिये हुए सफेद, बहुत छोटे और अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। इनकी सुगन्ध सूखने पर भी नहीं जाती। इसके वृक्ष नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। मादा वृक्ष के फल उगते हैं और नरवृक्ष के नहीं आते। नरवृक्ष का फूल कुछ बड़ा और सफेद होता है। मादा वृक्ष का फूल सिंदूरी रंग का होता है और उसका फल पीले रंग का आता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार मौलसिरी की छाल कुछ कड़वी, मीठी, शीतल, हृदय को बल देने वाली, अग्नि-वर्द्धक, कृमिनाशक एवं संकोचक होती है। मसूड़े और दाँत की व्याधियों में यह बहुत उपयोगी होती है। पित्तविकार को यह दूर करती है। इसके फूल मीठे, स्निग्ध, कसैले, विशद, शीतल, आँतों का संकोचन करने वाले रुचिवर्द्धक, दाँतों को मजबूत करने वाले एवं रक्त-विकार को दूर करने वाले होते हैं। इसके फल मीठे, चरपरे, स्निग्ध, आँतों का संकोचन करने वाले और वात को पैदा करने वाले होते हैं। इसके बीज हिलते हुए दाँतों को मजबूत करते हैं। इनको सूँघने से मस्तक शूल दूर होता है।

इसकी छाल कसैली, पौष्टिक एवं फल रोचक, स्निग्ध कारक एवं संग्राहक होती है।

उपयोग

अतिसार

मौलसिरी के बीजों को ठंडे पानी में पीसकर देने से अतिसार दूर होता है, पुराने अतिसार में इसके पके हुए फल का गूदा बहुत लाभदायक होता है।

हृदय रोग

मौलसिरी के फूलों का हार पहनने से और इसके फूलों को सूँघने से और इसकी अन्तर-छाल का काढ़ा पीने से हृदय रोग में लाभ होता है।

इनके अतिरिक्त प्रदर एवं धातु रोग, बच्चों की खाँसी, मुख रोग एवं मूत्राशय के रोगों में भी यह लाभकारी है।

रामायण में मौलश्री का विविध नामों से विविध स्थलों पर उल्लेख किया गया है यथा—श्री राम अरण्य में विविध पेड़ों से सीता के विषय में पूछ रहे हैं, इसी सन्दर्भ में बकुल (मौल श्री) का भी उल्लेख है।[147] पम्पासर के वर्णन में मौलश्री का उल्लेख किया गया है—'उसके तट पर तिलक, अशोक, नाग-केसर, वकुल तथा लिसोड़े के वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे।'[148]

इनके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर बकुल ('मौलश्री') का उल्लेख मिलता है।[149]

माष

नाम—संस्कृत—बीजरत्न, धान्यवीर, माष, कुरुविन्द, वृषांकुर, मांसल, बलाढ्य इत्यादि। हिन्दी—उड़द, उरिद, टिकिरि। गुजराती—अरद्, उड़द। बंगाली—माष कलई। मराठी—उड़िद। तेलगू—मिनमुल। कन्नड़—उददू। तमिल—पटचैप्यरी। फारसी—माष। अरबी—माषा। लैटिन—Phaseolus Radiatus।

वर्णन

माष (उड़द) का उपयोग दाल के रूप में सारे भारत वर्ष में होता है। इसलिये इसके परिचय से सभी परिचित हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार उड़द स्निग्ध, बलकारक, वीर्य-वर्द्धक, पित्तकारक, भारी, तृप्तिजनक, स्वादिष्ट, पौष्टिक, मूत्रल, मल-भेदक एवं दुग्ध पैदा करने वाला, मांस-वर्धक, मेद वर्धक तथा श्वास, श्रम, परिणाम शूल, अर्दित एवं बवासीर को दूर करने वाले हैं। ये प्यास, कफ एवं रक्त-रोग को उत्पन्न करने वाले हैं।

इसके बीज मीठे और तैल युक्त रहते हैं। ये मृदु विरेचक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, भूख बढ़ाने वाले, मूत्रल और दुग्ध वर्धक हैं। ये हृदय के लिये उत्तम एवं थकान को दूर करने वाले हैं। ये प्यास और रक्त-रोग को उत्पन्न करने वाले हैं।

उपयोग

लकवा

उड़द को सोंठ के साथ औटाकर पिलाने से लकवा में लाभ होता है।

गठिया

अरंड के जड़ की छाल के साथ उड़द को औटाकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है।

इनके अतिरिक्त फोड़ा, नकसीर, हिचकी, स्नायु, शक्ति, पित्त की सूजन, अर्दित रोग आदि में भी माष लाभकारी होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है यथा—रामाश्वमेध में इसकी आवश्यकता पड़ी थी, "...........दस हजार पशु तिल, मूंग, चना, कुल्थी, नमक और उड़द के बोझ लेकर आगे चलें।"[150]

रक्त चन्दन

नाम संस्कृत- रक्तचन्दन, रक्ताङ्ग, क्षुद्रचन्दन, तिलपर्ण, रक्तसार, एवं प्रवालफल। हिन्दी—लाल-चन्दन, रक्तचंदन, बंगाली—रक्तचन्दन। गुजराती—रतांजली। तेलगू—रक्तचन्दनम्। तमिल—शेन् चन्दनम्। पं. मा. लालचन्दन। मला. रक्तशन्दनम्, फारसी—सन्दले सुर्ख। अरबी—सन्दले अहमर। अंग्रेजी—Red Sanders Wood; Red Sandal Wood। लेटिन—Pterocarpus Santalinus.

वर्णन

यह दक्षिण भारत में विशेष कर कुडापा, उत्तर आरकोट, कुर्नूल के दक्षिण भाग एवं चिंगलपुट में 1500 फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका वृक्ष 25 फुट तक ऊँचा होता है। छाल कालापन युक्त भूरे रंग की, पत्ते प्रायः एक सींक

पर तीन होते हैं। फूल, अल्प, पीताभ श्वेत एवं सवृन्तकाण्डज गुच्छों में आते हैं। फलियाँ दो इंच लम्बी, टेढ़ी, आधार की ओर कम चौड़ी एवं छोटे से डंठल से युक्त होती हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

यह शीतवीर्य, गुरु, स्वादु तथा तिक्त रस-युक्त तथा वमन, प्यास एवं रक्त-पित्त को दूर करने वाला होता है। यह नेत्रों के लिये हितकर, वृष्य एवं ज्वर, व्रण तथा विष को दूर करने वाला होता है। इसका बाह्य लेप शीतल, शोथघ्न एवं व्रण-रोपक है।

इसका प्रयोग पैत्तिक, विकार, रक्त-दोष, रक्तार्श, अतिसार, संग्रहणी एवं शिरः शूल, शोथ तथा त्वचा के रोगों में किया जाता है। रंजक द्रव्य के रूप में इसका अधिक उपयोग किया जाता है।

उपयोग

शोथ, फोड़े, व्रण, अहोरी तथा शिरः शूल में इसको शीतल प्रलेप के रूप में जल में घिसकर लगाते हैं। पलकों की सूजन पर इसे लगाने से सूजन दूर हो जाती है।

ग्राही होने के कारण अन्य औषधों के साथ इसका क्वाथ अतिसार एवं संग्रहणी आदि में प्रयोग किया जाता है।

रक्तार्श में इसे दूध में पीसकर पिलाते हैं एवं जल में घिसकर लेप भी करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में रक्त चन्दन का उल्लेख सर्वाधिक हुआ है, एक दो स्थलों पर उल्लेख इस प्रकार है—अशोक-वाटिका में भी रक्त चन्दन विद्यमान था, ''दुरात्मा रावण की यह अशोक-वाटिका बड़ी ही रमणीय है। चन्दन, चम्पा और मौल श्री के वृक्ष इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं.....।'[144] एक ओर रावण की अशोक वाटिका थी तो दूसरी ओर अयोध्या की अशोक वनिका—इसमें भी चन्दन के वृक्ष विद्यमान हैं, ''चन्दन, अगरु, आम, तुङ्ग, कालेयक (रक्त चन्दन) तथा देवदारु वन सब ओर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे।[151] अन्य भी स्थल दृष्टव्य है।[152]

हल्दी (शर्वरी)

नाम—संस्कृत—हरिद्रा, पीता, युवती, हेमरागिणी, कांचनी, मेहघ्नी शर्वरी, गौरी इत्यादि। हिन्दी—हलदी। बङ्गला—हल्दी, पीतरास, गुजराती—हलदर। मराठी—हलद। पंजाब—हलदर। अरबी—कुरकम। पारसी—दरजार्दी, तमिल—मंजल। तैलगू—पम्पी। उर्दू—दीहल। अंग्रेजी—Turmeric। लेटन—Cureuma Lonya।

वर्णन

हल्दी के पौधे छोटे, कोमल और वर्ष जीवी होते हैं। इसके पत्ते बहुत बड़े-बड़े होते हैं। इस वृक्ष की जड़ों में जमीन के अंदर हल्दी की गाँठें लगती हैं। ये गाँठे पीले रंग की होती हैं। हल्दी मसाले के रूप में सारे भारतवर्ष में प्रयोग की जाती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से हल्दी चरपरी, कड़वी, सौन्दर्य-वर्धक, उष्ण, रूखी, शोधक और स्त्रियों के लिये भूषण है। यह कफ, वात, रुधिर, दोष, कोढ़, खुजली, प्रमेह,

त्वचा के दोष, घाव, सूजन, पाण्डुरोग, कृमि, विष पीनस, अरुचि, पित्त और अपचन को दूर करने वाली होती है।

उपयोग

इसका उपयोग प्रतिश्याय, कफ-विकार, चर्मरोग, रक्त-विकार, प्रमेह, कामला, आदि में किया जाता है।

प्रमेह

आँवले का रस, हल्दी तथा मधु इसके प्रयोग से सभी प्रकार के प्रमेहों में अच्छा लाभ होता है।

श्लीप्रद

इसमें इसको गुड़ एवं गोमूत्र के साथ प्रयोग कराया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में हल्दी का उल्लेख एक स्थान पर प्राप्त होता है- 'शर्वर्यामरुणोदये'।[154]

शमी

नाम—संस्कृत—शमी, भादरा, दुरितदामिनी, हबिरगन्धा, केशहन्त्रा, लक्ष्मी, पापनाशिनी, शक्तुफला, शांता, शिवा इत्यादि। हिन्दी—छोंकर, छिकुर, खेजड़ा, सफेद कीकर। गुजराती—खेजड़ी, खांजड़ी। बंगाल—शाईगाछ छुई बाबला। मराठी—शमी, लघु-समी। पंजाब—जंड, जड़ी। बम्बई—शमी, शबरी, मारवाड़ी—खेजड़ा, कजरा। तेलगू—जंबी, जांबी, प्रियदर्शिनी। तमिल—जम्बू, कलिसम। अंग्रेजी—Spunge Tree। लेटिन—Prosopies Spicigera.

वर्णन

यह वृक्ष पंजाब, सिंध, राजपूताना, गुजरात, बुंदेलखण्ड इत्यादि प्रान्तों में बहुत अधिक संख्या में होता है। शमी के वृक्ष 15 से 30 फीट तक ऊँचे होते हैं। इनके फूल कुछ सफेदी लिये हुए पीले रंग के और लम्बी कलगी की तरह आते हैं। इसके पापड़े सफेद रंग के 4 से 8 इंच तक लम्बे होते हैं। एक पापड़े में 10 से 15 बीज निकलते हैं। ये पापड़े थोड़ी मात्रा में बैलों के लिये पौष्टिक खाद्य होते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार शमी कड़वा, चरपरा, शीतल, कसैला, रोचक, हल्का तथा कफ, खाँसी, भ्रम, श्वास, कोढ़, बवासीर और कृमि को दूर करता है। इसका फल पित्त-जनक, रूखा, बुद्धिवर्धक और केशों को नष्ट करने वाला होता है।

इसकी छाल खुश्क, कसैली, कटु एवं तेज स्वाद वाली होती है। यह शीतल कृमिनाशक और पौष्टिक है। कोढ़, पेचिश, वायु-नलियों का प्रदाह, दमा, धवल रोग, बवासीर, मस्तिष्क की विकृति और मज्जाओं के कम्पन में यह लाभदायक है।

सुश्रुत एवं योग-रत्नाकर के मतानुसार यह वृक्ष साँप के विष पर लाभदायक है। सुश्रुत के अनुसार इसका छिलका बिच्छू के काटने पर भी उपयोगी है।

उपयोग

आग से जलने पर–शमी के पाले को पीसकर दही में मिलाकर लेप करने से अग्नि से जले हुए स्थान पर शांति मिलती है। नख और दाँतों के जहर पर शमी, नीम की छाल, बड़ की छाल तीनों को पीसकर लेप करने से नख और दाँतों से पहुँचे जङ्गम विष पर लाभ पहुँचता है।

वाल्मीकि रामायण में भी शमी का उल्लेख प्राप्त होता है।[155]

शीशम

नाम–संस्कृत–शिंशपा, कृष्णसारा, पिपला, युगपत्रिका, कपिला, डलपत्री, तीव्र धूमका, श्वेत शिंशपा, कपिलाशिंशपा, पीता इत्यादि। हिन्दी–शीशम, सफेद शीशम, पीली शीशम। बंगाल–शीशू, सीस। बम्बई-सीसू गुजराती-सीसम तनच। मराठी–सीसू, सीसम, उर्दू–शीशम। पंजाब–शीशम, नेलकार, ताली, शेवा। अरबी–सीसम। तमिल–नीसू, गेट्टा। तेलगू–सिसुपा, सीसू। अंग्रेजी–Sissoo लेटिन–Dalbergia Sissoo।

वर्णन

शीशम के वृक्ष प्रायः पूरे भारत में होते हैं। इसका वृक्ष 60 फुट तक ऊँचा होता है। इसके पिंड की छाल एक इंच तक मोटी कुछ पीलापन लिये हुए भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते गोल, और नोकदार बेर के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल बहुत छोटे-छोटे सफेद या चाँदनी के रंग के होते हैं, शीशम की तीन जातियाँ होती हैं- काली, सफेद, और पीली। पीली शीशम को संस्कृत में कपिल शिंशपा, सफेद शीशम को श्वेत शिंशपा और काली शीशम को कृष्णसारा कहते हैं।

इसकी लकड़ी और बीजों में से तेल निकाला जाता है जो औषधि के काम आता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

शीशम कड़वा, तिक्त, कसैला, गरम, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक, कृमि नाशक, ज्वर नाशक, प्यास को बुझाने वाला, गर्भ को गिराने वाला और वमन तथा दाह को शांत करने वाला होता है। यह चर्मरोग, व्रण, रक्त रोग, श्वेत कुष्ठ, अजीर्ण, अतिसार और गुदामार्ग की परेशानियों को दूर करने वाला होता है। इसके पत्तों का रस नेत्र-रोगों में लाभदायक होता है।

सफेद शीशम कड़वा, शीतल तथा पित्त और दाह को दूर करने वाला होता है।

भूरे रंग का शीशम कड़वा, शीतवीर्य, श्रम-नाशक तथा वात, पित्त, ज़्वर, वमन, और हिचकी को दूर करता है।

तीनों प्रकार के शीशम, कांतिवर्धक, बलकारक, रुचिजनक, तथा सूजन, विसर्प, पित्त और दाह को शांत करते हैं।

उपयोग

रक्त-विकार

शीशम के बुरादे का शर्बत बनाकर पिलाने से रक्त-विकार मिटता है।

वमन

इसके पत्ते या बुरादे का क्वाथ पिलाने से वमन बन्द होती है।

इनके अतिरिक्त यह फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, सुजाक, आदि में भी लाभदायक है।

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है। यथा- 'केतक, उद्दालक, शिरीष, शीशम, धव, सेमल, पलाश, लाल कुरवक.......आदि के पेड़ भी फूलों से भरे दिखाई देते थे।'[156] हनुमान जी ने भी शीशम के वृक्ष पर बैठकर ही सीता माता के दर्शन किये थे—'महान् वेगशाली हनुमान जी पत्तों से हरी-भरी उस शिंशपा पर दुःख से आतुर सीता जी को देखने के लिये चढ़ गये।'[157] अन्य स्थलों पर भी शीशम (शिंशपा) का उल्लेख मिलता है।[158]

शर

नाम—संस्कृत—गुन्द, मुंज, सर, तेजनका। पंजाब—सरकण्डा। हिन्दी—सरकण्डा। बंगाल—सर। तमिल-मुंचि। तेलगु—मुंजगहि। अंग्रेजी-Devil Sugar Cane। लेटिन—Saeeharum Arundinaceum।

वर्णन

यह गन्ने के वर्ग की एक वनस्पति होती है, इसका पौधा गन्ने के पौधे की तरह होता है। यह वनस्पति बंगाल, आसाम और वर्मा में पैदा होती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

इसकी जड़े मूत्रल और शांतिदायक होती है। प्रसूतिकाल में प्रसूता के कमरे में इसकी धूनी दी जाती है।

वाल्मीकि रामायण में भी शर का उल्लेख प्राप्त होता है- सीता कहती हैं, "रास्ते में जो कुश-कास, सरकंडे, सींक एवं काँटेदार वृक्ष मिलेंगे, उनका स्पर्श मुझे आपके साथ रहने से रुई और मृगचर्म के समान सुखद प्रतीत होगा।"[159]

श्री राम ने भी अपनी पर्णकुटी बनाने में बाँसों,सरकंडों आदि का प्रयोग किया था, "..............खम्भों के ऊपर बड़े-बड़े बाँस तिरछे करके रखे। बाँसों के रख दिये जाने पर वह कुटी बड़ी सुन्दर दिखाई देने लगी। फिर उन बाँसों पर शमी की शाखाएँ बिछा दीं तत्पश्चात कुश, कास, सरकंडे और पत्ते बिछाकर पर्णशाला को भली-भाँति छा दिया।[160] अन्य दृष्टव्य स्थल।[161]

सरसों



नाम—संस्कृत—सर्षप, गौरसर्षप, तीक्ष्णक, कुष्ठ—नाशक, सिद्ध—प्रयोजन, मूत्र—नाशक, कण्डुघ्न इत्यादि। हिन्दी—सरसों, सफेद सरसों। बंगाल—सरिया। गुजराती—सरसव। मराठी—सरसो, शिरष। पंजाब—सरों। फारसी—सिपन्दान मुफीद। तमिल—करुण्पुकेडुग्गु। अंग्रेजी—Wild Turnip। लेटिन—Brassica Campestris।

वर्णन

सरसों का पौधा राई के पौधे की तरह होता है। इसके बीज कुछ ललाई लिये पीले रंग के होते हैं। एक जाति की सरसों के बीज सफेद होते हैं। इसके एक मन बीजों में करीब 12-13 सेर तेल निकलता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

सरसों चरपरी, कड़वी, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, किंचित् रूखी, पितकारक, रक्तपित जनक, रुक्ष तथा वात, कफ, कण्डू, कुष्ठ, शूल, कृमि एवं ग्रह-पीड़ा को दूर करने वाली होती है।

सफेद सरसों, चरपरी, कड़वी, रुचिकारक, गरम, वात रक्त कारक, तथा ग्रह पीड़ा, बवासीर, त्वचा के दोष, सूजन, व्रण एवं विष को नष्ट करती है।

सरसों के पत्ते का शाक-सारक, अम्ल, पित्तकारक, कसैला, भारी, स्वादिष्ट, गरम, खारी और कफनाशक होता है।

उपयोग

गठिया

सरसों के तेल में कपूर मिलाकर मालिश करने से मांस-पेशियों की गठिया मिटती है।

कर्ण शूल

सरसों के तेल को कान में टपकाने से वादी का कर्णशूल मिटता है।

इनके अतिरिक्त श्लीप्रद, सूजन, तिल्ली का बढ़ना, पामा, खुजली, नासूर, उबटन आदि में भी उपयोग है।

वाल्मीकि रामायण में भी सरसों का उल्लेख प्राप्त होता है यथा- माता कौशल्या ने घी, श्वेत पुष्प एवं माला, समिधा, तथा सरसों आदि वस्तुएँ ब्राह्मण के समीप रखवा दी।[153]

शाल

नाम--संस्कृत—शाल, सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, शस्यशंबरा। हिदी—शाल, साल, साखू, सांखू, सखुआ। बं.—शाल गाछ, लता शाल, म. लघु रालेचावृक्ष, रालचा वृक्ष, सजरा, शालवण, लंधरालचा वृक्ष। गुजराती—सज्जरदामर, गलरालनुं नहानुं झाड। तेलगु—एपचेट्टु। तमिल—कुङ्गलियम्। कन्नड़ी—सज्जर दामर, विलीमते। द्राविड़—कुंगिलियम। लेटिन—Shorea Robusta ।

वर्णन

शाल के वृक्ष बहुत बड़े (विशाल) होते है। ये हिमालय पहाड़, सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूर्वी भाग, बंगाल के पश्चिमी भाग और छोटा नागपुर के जंगलों में होते हैं, इसके पत्ते विशाल होते हैं। फूल-पीले रंग के बसंत ऋतु में खिलते हैं। फल-छोटे-छोटे होते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

यह कषाय रस युक्त एवं व्रण, स्वेद, कफ, कृमि, विद्रधि, बहरापन, योनि तथा कर्ण सम्बन्धी रोग में लाभकारी होते हैं। शाल का एक भेद सर्जक भी है जिसे सर्जक, अजकर्ण, शाल, मरिचपत्रक कहते हैं। वह सर्ज, कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, उष्ण एवं कफ, पाण्डु, कर्ण, सम्बन्धी रोग, प्रमेह, कुष्ठ, विष तथा व्रण को दूर करने वाला होता है।

वाल्मीकि रामायण में शाल का अनेक स्थलों पर उल्लेख प्राप्त होता है- यथा--राम के वनवास को सुनकर कौशल्या की स्थिति बताते हुए लिखा है, "यह अप्रिय बात सुनकर वन में फरसे से काटी हुई शाल वृक्ष की शाखा के समान कौसल्या देवि सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ी।"[163] एक स्थान पर साल वन का उल्लेख करते हुए लिखा है—"फिर एकसाल नगर के पास स्थाणुमती और विनत-ग्राम के निकट गोमती नदी को पार करके वे तुरंत ही कलिंग नगर के पास 'साल वन' में जा पहुँचे।'[164] अन्य अनेक स्थलों पर भी 'साल' का उल्लेख मिलता है।[165]

सेंमल (शाल्मलि) (कूटशलालि)

नाम—संस्कृत—शाल्मलि, रक्तपुष्पा, तूल—वृक्ष, मोचनी इत्यादि। हिन्दी—सेमर, मोचरस, कांटिसेमल, रक्त सेमल, पेगून, गुजराती—सेमला, रक्त सेमला। बंगाल—सिमुल, रक्त शिमुल। मराठी—सेमर,सांवरी, काण्टेरी सेमर। अंग्रेजी—Redsilk Cotton Tree (रेडसिल्क कॉटन ट्री)। लेटिन—Bombea Malabaricum।

वर्णन

सेमर का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इस पर मोटे और तिकोने काँटे होते हैं। बसन्त ऋतु में इस वृक्ष पर लाल रंग के बड़े-बड़े फूल आते हैं। इस पर आक के समान फल आते हैं। यह फल सूखकर जब फटते हैं तब उनमें से रुई निकल आती है। इसके बीज काले रंग के होते हैं। इस वृक्ष के गोंद को मोचरस कहते हैं। मोचरस बहुत हल्का, भुरभुरा और लाल रंग का होता है, यह पानी में डालने से फूल जाता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

सेमल मधुर, वीर्यवर्धक, बलकारक, कसैला, शीतल, हल्का, स्निग्ध, स्वादिष्ट, रसायन, कफ-कारक, कामोद्दीपक तथा रक्त-पित्त, पित्त और रुधिर दोषों को हरता है। इसकी जड़ अथवा सेमर मूसली मीठी, शीतल पौष्टिक होती हैं। इसकी छाल कसैली, कफनाशक, मूत्रल, पौष्टिक, और किंचित् ग्राही होती है। इसके फूल कड़वे, कसैले, स्वादिष्ट, रुक्ष होते हैं। ये तिल्ली की बीमारी और श्वेत प्रदर में बहुत लाभदायक होते हैं इसके फल मीठे, शीतल, पचने में हल्के, उत्तेजक, मूत्रल, पौष्टिक. ....होते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार सेमल के फूल और फल दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर साँप और बिच्छू के विष पर देने से लाभ होता है।

उपयोग

रक्त-पित्त

सेमल के फूलों के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से रक्त-पित्त मिटता है।

प्लीहा

सेमल के फूलों को रात भर पानी में भिगोकर मल छानकर उसमें राई का चूर्ण मिलाकर पिलाने से प्लीहा की वृद्धि मिटती है इसके अतिरिक्त चेचक आदि में भी यह लाभकारी है।

रामायण में भी सेमल का उल्लेख प्राप्त होता है यथा—'हे रावण! तू तीखी

शाल्मली (सेमल) का अब दर्शन करेगा।'[166] पम्पासर के तट प्रान्त पर भी अन्य वृक्षों के साथ इसका उल्लेख है।[167] अन्य स्थानों पर भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[168]

कस्तूरी

नाम—संस्कृत—मृगनाभ, कस्तूरी। हिन्दी—कस्तूरी। बंगाली—मृगनाभि। मराठी—कस्तूरी। गुजराती—कस्तूरी। अंग्रेजी-Musk । फारसी—मुश्क। अरबी—मिस्क। लेटिन—Mosehus Moschifeurs (मासकस मासकी फेरस)।

वर्णन

कस्तूरी एक विशेष जाति के हरिण के निस्राव वाही कोष का सूखा रस हैं इसकी सुगन्ध मादाओं को नर की ओर खींचने वाली होती है। कस्तूरी लगभग एक महीने तक उसकी ग्रन्थियों में रहती है। दो वर्ष की बच्ची की ग्रन्थियों में करीब तीन तोला कस्तूरी रहती है किन्तु यह अपरिपक्व स्थिति में होती है और इसकी गंध भी अप्रिय रहती है। पूरी उम्र के जानवर में प्रायः दो ओंस के लगभग कस्तूरी प्राप्त होती है। यह एक चौकोर या गोल थैली में जिसका व्यास करीब डेढ़ इंच का होता है बन्द रहती है। इसके ऊपर का धरातल चपटा और फिसलना होता है। और अंदर कुछ कड़े बाल रहते हैं इसका छोटा सा मुँह होता है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से कस्तूरी कामोद्दीपक, धातु-परिवर्तक, नेत्रों को लाभ पहुँचाने वाली तथा कुष्ठ, मुखरोग, कफ, दुर्गन्ध, दरिद्रता, वात, तृषा, मूर्च्छा, शोष, विष, खाँसी एवं शीत का नाश करने वाली है।

उपयोग

यह खाँसी, दमा, कफ के दोष, अरुचि, मुँह की बदबू, पीलिया, दृष्टि की कमजोरी, मुँह की झाईं, शरीर का मोटापन, सुजाक, क्षय आदि के लिये बहुत लाभकारी है।

रामायण में लंका दहन के समय एक स्थान पर कस्तूरी का उल्लेख प्राप्त होता है, वह भी अस्पष्ट था।

'योद्धाओं' के कवच, वाण, तोमर, वालज, अण्डज (कस्तूरी) आदि को फैली हुई आग जला रही थी।[169]

गोरोचन

नाम—संस्कृत—गौरोचन, गौपित, बन्दनीया, मनोरमा, मंगला, शिवा, गोपित, सम्भवा, पिङ्गला इत्यादि। हिन्दी—गौलोचन। बंगाल—गोरोचन। मराठी—गोरोचन। गुजराती—गोरो चन्दन, गोरोन। तेलगू—गोरोचनम्। फारसी—गयरोहन। अरबी—हजरुल वक्कर। लेटिन—Bostanrus।

वर्णन

गोरोचन गाय के मस्तक का पित्त होता है। इसका रंग पीला होता है। इसकी गोली, चपटी, लम्बी और कोई-कोई तिकोनी होती है। जब इसको निकालते हैं तब यह मोम की तरह मुलायम होती है और फिर ठण्डी होने पर बुझे हुए चूने के समान सख्त हो जाती है। इसका रंग पीला होता है, किसी-किसी पर काले छींटे होते हैं।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से गोरोचन अत्यन्त शीतल, रुचि-कारक, मंगलदायक, वशीकरण, शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला, कामोद्दीपक तथा भूत-बाधा, गृह की पीड़ा, विष विकार, कोढ़, कृमि, उन्माद, गर्भस्राव, क्षत, रक्त-विकार और नेत्र रोगों को नष्ट करने वाला होता है।

रामायण में सुग्रीव के राज्याभिषेक के समय गोरोचन का उल्लेख किया गया है।[170]

श्यामा

'श्यामा' प्रियङ्गू का ही संस्कृत नाम है। प्रियङ्गू का उल्लेख एवं समीक्षा की जा चुकी है। अतः इसके गुण-दोष को भी उसी मे जान लेना चाहिये।

रामायण में माल्यवान पर्वत पर इसका उल्लेख आता है, "पर्वत के शिखरों पर असन, छितवन, कोविदार बन्धुजीव, तथा श्याम तमाल खिले दिखाई देते हैं।"[171]

सहस्रपत्री

'सहस्रपत्री' गुलाब का ही पर्यायवाची है अतः उसकी समीक्षा 'गुलाब' में ही की गयी है।

शत्पुष्पी

'शत्पुष्पी' से तात्पर्य 'सोया' से है रामायण में सोया का उल्लेख प्राप्त नहीं हो पाया है।

शतावरी

नाम—संस्कृत—शतमूली, शतावरी, भीरु—पत्री आदि। आयुर्वेदिक मत से शतावरी भारी, शीतल, कड़वी, मधुर, रसायन, बुद्धिवर्धक आदि गुणों से युक्त हैं।

सूखी-खाँसी, अनिद्रा, वातज्वर, मूत्र—विकार आदि में यह लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

शंखपुष्प

नाम—संस्कृत—मेध्या, श्यामक्रान्ता, चंडा शंखपुष्पी आदि। आयुर्वेदिक मत से यह बुद्धिवर्धक, आयुवर्द्धक, मानसिक रोगों को हटाने वाली, रसायन, कसैली, गरम आदि गुणों से युक्त है।

प्राचीन खाँसी एवं दमे में इसकी सिगरेट बनाकर पीने से लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में शंखपुष्प का उल्लेख नहीं किया गया है।

सिन्धुफल (समुद्रफल) (निचुल)

नाम—संस्कृत—समुद्रफल, अब्धिफल, अम्बुज, हिज्जल, निचुल इत्यादि। हिन्दी—समुद्रफल, हिज्जल, पनियारी, निओरा, जुअर इत्यादि। बंगाल—हिज्जल, कुमिया समुन्दर। गुजराती-समुन्दर फल। कोकण-निवार मराठी—समुद्रफल, दातेफल, इंगली, नेवार, सठफल, तिवार। उर्दू-समुन्दरफल। तमिल—सेंगाऽम्बु, समुद्र पुल्लानि। तैलग—कनपुचेट्टु। इंग्लिश—Indian-Oak. लेटिन—Barringtonia ocutangula

(बोरिंग टोनिया एक्युटगुला)

वर्णन

यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते लम्बगोल और बादाम के पत्तों से कुछ-कुछ मिलते जुलते होते हैं। इसके फूल कलंगीनुमा लाल रंग के होते हैं। इसके फल में चार कोने रहते हैं इसके फल काबुली हरड़ के समान भूरे रंग के और खड़ी धारियों वाले होते हैं। इनको पानी में डालने से यह मुलायम हो जाते हैं। इनकी छाल पतली और बीज मोटे होते हैं। इसके बीज छोटे जायफल के समान होते हैं। इसके फलों का स्वाद कड़वा एवं वामक होता है। यह वनस्पति विशेषकर कोंकण और बंगाल में उत्पन्न होती है।

गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदानुसार समुद्रफल चरपरा, गरम, वात-विनाशक, भूतवाधा को दूर करने वाला और त्रिदोष, कफ, रोग, भ्रान्ति तथा दावानल दोष को हरने वाला होता है।

इसके पत्तों का रस आमातिसार में दिया जाता है। इसका फल कड़वा, कसैला, आँतों को संकुचित करने वाला, कृमिनाशक, वात-कारक पित को दूर करने वाला तथा रक्त-रोग, खाँसी, आँख के व्रण, मस्तक शूल एवं त्रिदोष को दूर करने वाला होता है।

इसकी जड़ कड़वी होती है। इसके बीज बहुत गरम एवं खुश्क होते हैं। ये सुगन्धित द्रव्य की तरह शूल, प्रसव वेदना एवं नेत्र शुक्ल रोग में दिये जाते हैं।

उपयोग

नेत्र-रोग

इसके बीजों को पीसकर लेप करने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

बहिरापन

समुद्रफल के चूर्ण को गंगेरन के रस में मिलाकर कान में टपकाने से बहिरापन मिटता है।

इनके अतिरिक्त यह बद्धकोष्ठ, उदर-शूल, सर्दी का जमाव आदि रोगों में भी लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में पंपासर के वर्णन में सिंधुफल का उल्लेख 'निचुल' के नाम से प्राप्त होता है। यथा—मालती, कुन्द, झाड़ी, भण्डीर निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, कतक, माधवी लता तथा अन्य नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित हुई पम्पा भाँति-भाँति के वस्त्राभूषणों से सजी हुई युवती के समान जान पड़ती है।[172]

मृत संजीवनी एवं विशल्य करणी

वाल्मीकि रामायण में कुछ दिव्य औषधियों का भी उल्लेख किया गया है जिनमें सर्व-प्रथम मृत संजीवनी का स्थान है।

वानर राज सुषेण ने सुग्रीव का ध्यान अपने एक अनुभव की ओर आकर्षित किया। देवासुर संग्राम के समय देवों को दैत्यों ने बुरी तरह घायल कर दिया। देवों

को अचेत होते देखकर देव चिकित्सक तथा गुरु बृहस्पति जी मंत्र युक्त विद्याओं तथा दिव्य औषधियों द्वारा उनको सचेत तथा स्वस्थ करते रहे।[173] मेरा यह मत है कि उन औषधियों को संपाती और पनस सागर के तट से ले आवें। ये दोनों वानर वहाँ चन्द्र और द्रोण पर्वतों पर प्रतिष्ठित हुई वनौषधियों में से दो महोषधियों को जानते हैं, उनमें से एक का नाम हैं संजीव-करणी (मृत-संजीवनी) तथा दूसरी का नाम है विशल्य-करणी, जिनका निर्माण साक्षात् ब्रह्मा जी ने किया है। क्षीर-सागर का मंथन करते समय देवताओं ने उन दोनों ही पर्वतों को समुद्र के बीच में प्रतिष्ठित किया था।[174]

ऋक्षराज जाम्बवान भी इन औषधियों से भली-भाँति परिचित थे। जब मेघनाद द्वारा सरसठ करोड़ वानरों को हताहत कर दिया गया तथा राम, लक्ष्मण तथा अन्य सभी प्रमुख वानर मूर्छित होकर गिर पड़े तथा मृत्यु के समीप पहुँचे, तब उन्होंने भी इन्हीं संजीवनी, विशल्य-करणी एवं संधानी, सुवर्णकरणी नामक औषधियों का सेवन करा उन सबको स्वस्थ किया।[175]

उपरोक्त चारों औषधियों के नामकरण से ही ज्ञात होता है कि वे दिव्य औषधियाँ क्रमशः **मृतसंजीवनी**-संज्ञा शून्य व्यक्तियों को सचेत करने वाली या मृत प्राय व्यक्तियों को पुनर्जीवित करने वाली, **विशल्य-करणी**-देह में प्रविष्ट हुए शल्यों को बाहर निकाल देने वाली, **सुवर्णकरणी**-मुख की तथा देह की वैवर्ण्यता को सुवर्ण प्रदान करने वाली तथा **संधानी** अस्थिभग्न आदि को पुनः संधान करने वाली थी। ये चारों ही औषधियाँ अचूक तथा सद्य प्रभावकारी थीं।

उन महौषधियों की सुगन्ध लेकर दोनों ही राजकुमार श्री राम और लक्ष्मण स्वस्थ हुए उनके शरीर से बाण निकल गये, घाव भर गये। इसी प्रकार जो दूसरे प्रमुख वानर वीर हताहत हुए थे वे सबके सब उन श्रेष्ठ औषधियों की सुगन्ध से रात के अंत में सोकर उठे हुए प्राणियों की भाँति क्षण भर में निरोग हो, उठकर खड़े हो गये। उनके शरीर से बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा जाती रही।[176]

इसके बाद जब लक्ष्मण जी इन्द्रजित का वध कर अपने बड़े भाई के पास आये तब श्री राम ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और प्रसन्नतापूर्वक सुषेण वैद्य को बुलाकर कहा मित्र ! सुषेण शीघ्र ही ऐसा उपचार करो जिससे युद्ध करने वाले वानर रीछ, सुमित्रा कुमार और विभीषण स्वस्थ हो जायें और इनके बाण निकलकर सारे शरीर के घाव भर जायें और सारी पीड़ा दूर हो जाये।[177] यह सुनकर सुषेण ने लक्ष्मण की नाक में एक बहुत ही उत्तम औषधि लगा दी जिसकी गंध को सूँघते ही लक्ष्मण के शरीर से बाण निकल गये और उनकी [illegible] हो गयी। उनके शरीर के सारे घाव भर गये।[178] श्री राम की आज्ञा से सुषेण ने विभीषण, वानर, रीछ आदि की चिकित्सा भी की।[179]

उपरोक्त प्रसंग में रामायण में कुछ दिव्य औषधियों का नामोल्लेख आया है संभव है वे औषधियाँ आज उपलब्ध न भी हों—फिर भी उस समय उनकी

प्रभावोत्पादकता, दिव्यता, असंदिग्ध थी। वे औषधियाँ-विशल्यकरणी, बला, अतिबला, गजकन्द, संजीवकरणी, सन्धानी, सुवर्णकरणी या सवर्ण करणी थीं।

औषधि-पर्वत

वाल्मीकि रामायण में 'औषधि-पर्वत' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऋक्षराज जाम्बवान ने विभीषण के द्वारा हनुमान को बुलाकर यह आदेश दिया—

हनुमान ! समुद्र के ऊपर-उड़कर बहुत दूर का रास्ता तय करके तुम्हें पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर जाना है।[180] वहाँ पहुँचकर तुम्हें सुवर्णमय ऋषभ तथा कैलाश पर्वतों के दर्शन होंगे।[181] वीर ! उन दोनों शिखरों के बीच में एक औषधियों का पर्वत दिखाई देगा, जो अत्यन्त दीप्तिमान है। उसमें इतनी चमक है जिसकी तुलना नहीं है। वह पर्वत सब प्रकार की औषधियों से सम्पन्न है।[182] इसके शिखर पर उत्पन्न चार औषधियाँ तुम्हें दिखाई देगीं जो अपनी प्रभा से दसों दिशाओं को प्रकाशित किये रहती हैं। उनके नाम मृत संजीवनी, विशल्य-करणी, सुवर्ण-करणी तथा संधानी हैं। ये चारों ही महौषधियाँ हैं।[183] तुम उन सब औषधियों को लेकर शीघ्र लौटो और वानरों को प्राण प्रदान करो।

हनुमान जी उन औषधियों को उस पर्वत पर पहुँचकर ढूँढ़ने लगे। दीप्तमान औषधियों से दैदीप्यमान पर्वत[185] पर हनुमान उन औषधियों को खोजते रहे।[186] महौषधियाँ यह जानकर कि कोई उन्हें लेने आया है तत्काल अदृश्य हो गयीं।[177] हनुमान जी से यह न सहा गया और वे जोर से क्रोध कर उस पर्वत को उखाड़ कर लंका ले चले।[187] सभी को स्वस्थ करने के पश्चात् हनुमान जी ने पुनः उस पर्वत को उसी स्थान पर पहुँचा दिया।

एक अन्य स्थल पर सुषेण ने हनुमान जी से कहा, "सौम्य तुम शीघ्र ही यहाँ से महोदधि पर्वत पर जाओ जिसका पता जामवन्त ने तुम्हें पहले ही बता दिया है। और उसके दक्षिण शिखर पर लगी हुई विशल्य करणी, सावर्ण्य करणी, संजीवन करणी तथा संधानी नाम से प्रसिद्ध महौषधी को यहाँ ले आओ।[188] वीर! उन्हीं से वीरवर लक्ष्मण के जीवन की रक्षा होगी, यह सुनकर हनुमान महोदय गिरि पर्वत पर गये परन्तु औषधियों को न पहचान सकने के कारण विचार करने लगे। इसी शिखर पर वह सुखदायिनी औषधि उत्पन्न होती होगी, ऐसा मुझे अनुमानतः ज्ञात होता है क्योंकि सुषेण ने ऐसा ही कहा था। औषधि को बिना लिये ही लौट जाने से अथवा समय अधिक लग जाने से अधिक दोष की संभावना है। यह सोचकर हनुमान जी ने गिरिश्रृंग को उठाकर सुषेण के पास ले जाकर रख दिया और कहा—महाकपि ! मैं उन औषधियों को पहचानता नहीं हूँ, इसलिये सम्पूर्ण पर्वत-शिखर को ही उठा लाया हूँ। सुषेण ने हनुमान जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए-उन औषधियों को उखाड़ लिया।[189] महातेजस्वी सुषेण ने उस औषधि को कूट-पीस कर लक्ष्मण की नाक में टपका दिया।[190] उस औषधि को सूँघते ही लक्ष्मण स्वस्थ हो गये।[191]

इस प्रकार रामायण में दिव्य औषधियों एवं औषधि पर्वत का उल्लेख आता

है किन्तु यह औषधियाँ दिव्य हैं, अतः इनकी समीक्षा करना थोड़ा जटिल एवं कठिन कार्य है, इसलिये यहाँ उनका केवल उल्लेख एवं वर्णन ही प्रस्तुत किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में कुछ और भी ऐसी वनस्पतियाँ हैं जिनका अभी तक उल्लेख नहीं किया जा सका है। वे संख्या में बहुत अधिक हैं, स्थानाभाव के कारण संक्षेप में ही उनका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

अग्नि मुख भिलावा, भल्लातक

भिलावा के नाम हैं—भल्लातक, अरुष्क, अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुखी, भल्ली, वीर वृक्ष इत्यादि।

गुण

पाक में मधुर लघुयुक्त, लघु, मधुर, कषाय-रस-युक्त, पाचक, स्निग्ध, तीक्ष्ण तथा उष्णवीर्य, छेदा, भेदक, मेध्य एवं अग्निवर्धक होता है।

इसका उपयोग अर्श, वात-विकार, कफ-विकार, फिरंग, गण्डमाला, कृमि, विसूचिका, गुल्म, आम-वात एवं कुष्ठ आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में अग्निमुख[192] तथा भल्लातक[193] दोनों का ही उल्लेख मिलता है।

अतिमुक्त, तिनिश, स्यन्दन, रथद्रु

तिनिश के नाम हैं—अक्षका, अश्मगर्भका, अतिमुक्तका, भस्मगर्भा, तिनिश, स्यन्दन, नेमी, रथद्रू इत्यादि।

गुण

तिनिश कसैला, गरम, संकोचक, कफ-वात-नाशक और रक्तातिसार, कोढ़, प्रमेह, मेद, व्रण, रुधिर-विकार, पित्त, श्वेत कुष्ठ, कृमि, दाह और पांडु रोग का नाश करता है। इसके गोंद की फक्की देने से अतिसार मिटता है। तिनिश की गोंद, सोंठ और मिश्री तीनों बराबर लेकर घी में मिलाकर चटाने से आमातिसार मिटता है। इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से ज्वर छूटता है।

वाल्मीकि रामायण में अतिमुक्त,[194] तिनिश[195] एवं स्यन्दन[196] तीनो ही नामों से इसका उल्लेख किया गया है।

अतिबला (कंघी)

नाम अतिबला, बालिका, बल्या, शीत पुष्पा, वृष-गन्धिका, हिन्दी-कंघी, कंघनी, झम्पी। कंसकी, मुद्रिका, करडि इत्यादि।

गुण

अतिबला चरपरी, कड़वी, वात कृमि, दाह, तृष्णा, विष, वमन और क्लेद को शान्त करने वाली है। यह वीर्य-वर्धक, बलकारक, अवस्थास्थापक वात-पित्तनाशक और मूत्र रोग को दूर करने वाली है।

इसकी छाल कड़वी, ज्वरनिवारक, कृमिनाशक और जहर के दोष को उपशम

करने वाली है।

अतिबला की छाल और पुराने पत्तों को पीसकर उनको पानी में ओटाना चाहिये और जब अष्टमांस पानी शेष रह जाये तब उस काढ़े से गरमी के चट्टों को धोने से लाभ होता है।

अतिबला की जड़ और सोंठ का काढ़ा पिलाने से शीत, कम्प और दाह युक्त ज्वर दो-तीन दिन में नष्ट हो जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में अतिबला[197] को दिव्य-औषधि के रूप में माना गया है। इसे मंत्र के रूप में भी देखा जा सकता है जिसको मुनि ने राम को दिया था।

अरणी, उत्तरा अरणी

अग्निमंथः, जया, तर्कारी, नादेयी, अरनी, टाकली, नरबेल, गनिरी, Premna Integifolia आदि अरणी के नाम हैं।

गुण

अरणी कड़वी, तीखी, उष्ण तथा वात, कफ, पाण्डु रोग, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, कब्जियत इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करने वाली है।

इसकी जड़ विरेचक, अग्नि-वर्धक एवं यकृत की पीड़ा को दूर करने वाली होती है। अरणी की प्रधान क्रिया गर्भाशय पर होती है।

बवासीर, वायु-गोला, सूजन, गठिया तथा स्नायु-पीड़ा, शीत, पित्त, आमाशय का शूल, हृदय की निर्बलता, उपदंश, रुधिर-विकार आदि में इससे लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में अरणी[198] तथा उत्तरा अरणी[199] दोनों का ही उल्लेख मिलता है।

अरिष्ट

अरिष्टः, फेनिलः, रक्तबीजः, मंगल्यः। अरीठा, रीठा, रेठा बन्दक, रिता, Sapindus, Trikoliatus आदि नाम हैं।

गुण

आयुर्वेद के मतानुसार अरीठा पचने में चरपरा, त्रिदोष नाशक, तीक्ष्ण, गरम, भारी, गर्भपातक, वमन-कारक है। यह गर्भाशय को निश्चेष्ट करने वाला और विष के असर को नष्ट करने वाला है।

इसके उपयोग से हिस्टीरिया और मृगी, आधा-शीशी, अनन्त वायु आदि रोगों में लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में अरिष्ट[200] (रीठा) का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

असिपत्र, इक्षु, इक्षुकाण्ड

इक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस, ईख, ऊख, गन्ना, पौण्डा, सांठा। शेरड़ी, शेरड़ीन मूल, नेशकर, Sugar Cane आदि नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से रक्त-पित्त नाशक, बलकारक, वीर्य-वर्धक, कफकारी, पचने में

मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रल, एवं शीतल है।

सूखी खाँसी, पित्त-विकार, रुधिर का वमन, मूत्ररेचन, विरेचन, रक्तातिसार, पितगुल्म आदि रोगों में यह लाभकारी एवं उपयोगी है।

वाल्मीकि रामायण में असिपत्र,[201] इक्षु[202] एवं इक्षुकाण्ड[203] तीनों ही नामों से इसका उल्लेख मिलता है।

आजै (अजवायन)

यवानी, दीप्यक, अजवायन, ओवा, यमानी, Carum Coptieum आदि अजवायन के विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से अजवायन पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हल्की, दीपन, कड़वी, पित्त-वर्धक तथा शूल, वात, कफ, आध्मान, बवासीर, कृमि, वमन, गुल्म, और प्लीहा को नष्ट करने वाली है।

जुकाम व प्रतिश्याय, अफारा, मन्दाग्नि, आँतों की वेदना, सूखी-खाँसी, जोड़ों का दर्द, बच्चों की उल्टी, चर्म-रोग, रजो-दोष, कृमि-रोग, नेत्र-रोग आदि में इसका प्रयोग लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका[195] उल्लेख मिलता है।

इंगुदी (हिंगोट)

इंगुदी, हिंगोट, इंगुद, अंगार वृक्ष, तिक्तक, विषकंटक, इत्यादि तथा Balanites Aegyptiace आदि इंगुदी के विविध नाम हैं।

गुण

हिंगोट मद-गन्धयुक्त,चरपरा, हल्का, कड़वा, गरम, झाग-दार, रसायन तथा कृमि, वात, शूल, श्वेतकुष्ठ, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा और भूत-वाधा को दूर करता है। इसके फूल मधुर, स्निग्ध, गरम, कड़वे तथा वात और कफ को नष्ट करने वाले होते हैं।

इनका उपयोग पेट के कृमि, सूखी खाँसी, उदर शूल, मोतिया बिन्द, रुधिर-विकार आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में इंगुदी[205] का उल्लेख प्राप्त होता है।

उशीर, उशीर बीज

उशीर के नाम दादहरण, हरि प्रिया, जलाशया, सेव्या, शिशिरा, सुगन्धि मूल, शीत मूलका, खस, वाला, बेना, ओनई, पानि। खश, सीरोम, उशीर, Andropog on muricatus आदि हैं।

गुण

खस शीतल, कड़वी और दाह, परिश्रम तथा पित्त ज्वर को शान्त करने वाली होती है। यह पाचक, स्तम्भक, हल्की तथा ज्वर, वमन, मद, कफ, पित्त, तृषा, रुधिर दोष, विष, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रण-रोग को दूर करती है।

इसका उपयोग ज्वर, पित्त-रोग, रुधिर-विकार, मूत्रावरोध तृषा, कम्पवायु,

हैजा, मस्तक-पीड़ा, हृदय-शूल, पित्तोन्माद आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में 'उशीर[206]' तथा 'उशीर बीज[207]' दोनों का ही उल्लेख किया गया है।

अंकोल

अंकोट, दीर्घकील, अंकोल, निकोचक, ढ़ेरा, टेरा, ढ़ेला, बाघ आदि अंकोल के विविध नाम हैं।

गुण

इसकी छाल कड़वी, उष्ण, वामक, स्वेद-जनक, मूत्रल, रेचक, ज्वर-हर, कृमिघ्न एवं विष हर है।

वामक प्रयोग से आमाशय में दाह तथा हृदय एवं रक्त-वाहनियों पर अवसादक प्रभाव पड़ता है।

यह कुष्ठ उपदंश तथा सभी प्रकार के त्वचा रोगों में लाभदायक है। यकृतोदर, जलोदर एवं वृक्क-जन्य शोफ में इसकी मूल-त्वक् देने से लाभ होता है। चूहे के विष में तथा सर्प-विष में यह लाभदायक माना जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी अंकोल[208] के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

कर्णिकार

कर्णिकार, मुशकुन्द, पदोत्पल, परिव्याधि, कनकचम्पा, कठचम्पा, कदियार, थमजम, वइसोक, राजतरु, हटिपैला, वेनगू, मत्सकंद इत्यादि कर्णिकार के विविध नाम हैं।

गुण

इसका फूल कड़वा, कसैला, पौष्टिक, मृदुविरेचक, व कृमि नाशक होता है। यह कफ प्रदाह रक्त सम्बन्धी तकलीफें, उदर पीड़ा व जलोदर का निवारण करता है। व्रण, कुष्ठ, मूत्राशय-सम्बन्धी तकलीफें व अर्बुद में भी यह लाभदायी है। इसके पत्तों के ऊपर का बीट घाव का खून बन्द करने के लिये उपयोग में लिया जाता है। इसके फूल पौष्टिक वस्तु के रूप में काम में लिये जाते हैं। कोकन में इसके फूल और इसका छिलका जलाकर कमल के साथ छोटी माता की फुन्सियों के पीब को बन्द करने के काम में लिया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी कर्णिकार[209] का उल्लेख है।

करंज, नक्तमाल

करंज, अङ्गार वल्लि, वाधाफल , हरित-वारुणी, पूतिकरंज, नक्तमाल, काकछिन, मद-हस्तिनी। करंज, कंज, करंजिका आदि करंज के विविध नाम हैं।

गुण

इसकी जड़ और छाल गरम, कड़वी, कसैली, कृमिनाशक और बाधा निवारक होती है। यह नेत्र, योनि और चर्म रोगों में लाभकारी है। यह अर्बुद, बवासीर, जख्म, फोड़े, खुजली, जलोदर, उदर-रोग आदि में लाभकारी है। इसके कोमल पत्ते अग्नि-वर्धक, विष-नाशक और कृमि नाशक होते हैं। ये भूख बढ़ाने वाले तथा कफ-वात, चर्मरोग

आदि को दूर करते हैं।

चर्म रोगों में इसका तैल बहुत लाभदायक है। इसके फल की लुगदी बनाकर पानी के साथ देने से कुष्ठ एवं विसर्पिका रोग मिटते हैं।

वाल्मीकि रामायण में करंज[210] एवं नक्तमाल[211] दोनों ही नामों से इसका उल्लेख मिलता है।

करवीर

अश्वमारक, चन्दन, कनेर, करवीर, हरिप्रिय, गौरि पुष्प, कर्बी, करवी, कनहेर, पाँढ़री, गनेरु, करवीरम् इत्यादि करवीर के विविध नाम हैं।

गुण

सफेद कनेर कटु, कसैली, तीक्ष्ण-वीर्य, आँतों को सिकोड़ने वाली, तथा प्रमेह, कृमि, कुष्ठ, घाव, बवासीर और वात-रोग को नष्ट करने वाली है। वह नेत्रों को हितकारी हल्की तथा कृमि आदि को दूर करती है। लाल कनेर शोधक, चरपरी होती है।

इसका उपयोग खुजली, चर्मरोग, नेत्र-रोग, नपुंसकता, जोड़ों का दर्द आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[212]

करीर (करील)

करीर, गूढ़पत्र, शाक-पुष्प, तीक्ष्ण, केटक, इत्यादि। हि. करील भा. ढ़ालू बं. करील, कवड़ा, नेपती, इत्यादि करीर के विविध नाम हैं।

गुण

करील कसैला, गरम, चरपरा, रुचिकारक, भेदक, विष नाशक, विरेचक, एवं कृमिनाशक, होता है। यह खाँसी, और श्वास में लाभदायक है। व्रण, अर्बुद, वमन, और बवासीर, में इसका उपयोग अत्यन्त लाभकारी है। इसके फूल एवं फल कफ एवं वात को नष्ट करने वाले हल्के एवं रुचिकारक होते हैं।

इसका उपयोग ज्वर, दन्तपीड़ा, तिल्ली, खूनी-बवासीर, जोड़ का दर्द आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी करीर[213] का उल्लेख प्राप्त होता है।

कलिहारी

अग्निशिखा, अग्निमुखी, गर्भघातिनी, इन्दुपुष्पिका, हरिप्रिया, कलिहारी, कलियारी, लंगाली, लांगुली, राजाराड़, विष-लांगला, ईश लांगला आदि कल्हार के विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से यह एक उपविष है, इसकी गाँठें कड़वी, कसैली और चरपरी होती हैं, यह कृमि-नाशक, विरेचक, विष-निवारक और गर्भघातक होती है। निघण्टु रत्नाकर के अनुसार यह सारक, कड़वी, चरपरी, क्षारयुक्त, पित्त-जनक, तीक्ष्ण, गरम, कसैली, हल्की तथा कफ, वात, कृमि, वस्तिशूल, विष, कोढ़, बवासीर, व्रण, सूजन, शोष, शूल, शुष्क गर्भ एवं गर्भ को नष्ट करने वाली है।

इसका उपयोग, सुजाक, कंठमाला, कृमिरोग, पुरुषार्थ वृद्धि, कामला, योनिशूल,

कर्ण-रोग, बिच्छू एवं कानखजूरे का विष आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका[214] उल्लेख प्राप्त होता है।

काश्मरी

गम्भारी, भद्रपर्णी, श्री पर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृन्ता, मधुरसा, एवं महाकुसुमिका आदि काश्मरी के विविध नाम हैं।

गुण

इसका फल बृंहण (धातु-वर्धक), वृष्य (वीर्य-वर्धक), गुरु, बालों के लिये हितकर, एवं रसायन होता है। यह वात-पित्त, तृषा, रक्त-क्षय, मूत्र-सम्बन्धी विवद्धता का नाशक है और पाक में मधुर रस, स्वाद में कषाय तथा अम्ल-रस-युक्त, शीतवीर्य, स्निग्ध एवं शुद्धि-कारक होता है। यह दाह, तृषा, वात, रक्त-पित्त, क्षत एवं क्षय, इन सब रोगों को दूर करता है।

इसके कोमल पत्तों का स्वरस दुग्ध के साथ सोजाक में देते हैं। ग्रीष्म ऋतु में होने वाले शिरः शूल में पत्तों को दुग्ध में पीसकर सर पर मलते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी काश्मरी[206] का उल्लेख प्राप्त होता है।

कुरवक

श्वेत मंदार रक्त-कुरवक आदि इसके नाम एवं भेद हैं।

आयुर्वेद के प्रणेता आचार्य गण 'नानौषधिभूतं किंचिद् द्रव्यं-जगति' के सिद्धान्त को मानते थे। अतः बिना किसी भेद-भाव के समय-समय पर जिन-जिन द्रव्यों का ज्ञान हुआ, उसके औषधोपयोगी पक्ष पर भी उन्होंने गवेषणा कर आयुर्वेदीय शास्त्र एवं व्यवहार परंपरा के परिवेश में उसका समावेश भी किया। यद्यपि आ. संहिताओं में कुरवक बहुत प्रसिद्ध तो प्रतीत नहीं होता, तथापि सुश्रुत इससे अवगत अवश्य थे, 'सुश्रुत-संहिता' में पुष्प-विशेषके रूप में कषाय-वर्ग में (सु. सू. अ. 46) तथा पुनः (कल्पस्थान अध्याय 5) विषापह 'एकसरौषधगणं' में कुरवक का भी उल्लेख है। वर्तमान में विद्वान इसका प्रयोग सैरेयक के पर्याय में करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[216]

कुरन्ट

कुरटंक, किंकीरात, पीत-पुष्पक, श्वेतपुन्य, मृदुकंट आदि हि. कटसरैया, पीयावासा। म.-कोरांटा, कलसुंदा, गु.-कंटासरियो, बं.-कंटजाति, ते.-नल्लगोरंटे ले.- Barleria Prioniatis आदि 'कुरन्ट' के विविध नाम हैं।

गुण

सफेद फूल की कटसरैया कड़वी, मृदु, गरम, दाँतों को हितकारी और कृमिनाशक होती है। पीले फूल की कटसरैया गरम, भूख बढ़ाने वाली, कड़वी, कसैली तथा चर्म आदि रोगों में लाभकारी है। लाल फूल की कड़वी, कांति कारक

एवं गर्म होती है। नीले फूल की सूजन-व्रण आदि में लाभकारी है।

इसका उपयोग बन्ध्यत्व, उपदंश, खाँसी, अतिसार आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी कुरन्ट[208] का उल्लेख किया गया है।

कुलिप्त (कुलथी)

कुलत्थिका, कुलत्थ, कुलथी, कुरथी, कुथी, कुलिथ, हूरुली, कुलीथ, बुलाबुलु, कुलथी, गुलथी, Two flowered Dolicos ले.- Dolichos biglours आदि इसके विविध नाम हैं।

गुण

कुलथी कषाय रस-युक्त, विपाक में कटुरस युक्त, पित्त तथा रुधिर विकार करने वाली, लघु, विदाही, उष्ण-वीर्य, पसीने को रोकने वाली, सारक एवं श्वास, कास, कफ, वायु, हिचकी, पथरी, शुक्र, दाह, आनाह, पीनस, मेद, ज्वर, तथा कृमि को दूर करने वाली होती है।

यह इस देश में प्रायः सर्वत्र होती है। इसका क्षुप लगभग एक हाथ ऊँचा होता है। इसके लता क्षुप और पत्ते उड़द (माष) के समान होते हैं। फलियाँ-कुछ टेढ़ी और चपटी होती हैं। इसका रंग लाल होता है पर कहीं-कहीं काली और सफेद कुलथी भी होती है। इसका उपयोग ज्वर आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[218]

कुशेशय

'पद्म' एवं 'कर्णिका' का पर्याय है, इन दोनों का ही उल्लेख किया जा चुका है।[219]

कुष्ठ (कूठ)

कुष्ठ, अगद, भासुर, हरिभद्रक, काश्मीरजा, कूट, कोठकुर, पाचक, उपलेट आदि कुष्ठ के विविध नाम हैं।

गुण

इसकी जड़ गरम, कड़वी, तीक्ष्ण, चरबी बढ़ाने वाली, सुगन्धित, दीपक, पाचन, कामोद्दीपक, धातु-परिवर्तन, वात-नाशक, कफ-नाशक, उत्तेजक, मासिक-धर्म-नियामक और व्रण-शोधक होती है। यह मुँह की कांति को सुधारती है। धवल-रोग को मिटाती है। विसर्परोग, दाद, खुजली, रक्त-विकार, वायु-नलियों का प्रदाह, वमन और वात-रोगों में लाभदायक है। इसे सिर-दर्द, उन्माद और अपस्मार रोग में काम में लेते हैं।

इसका उपयोग श्वास, हिचकी, मस्तक-पीड़ा, गठिया आदि रोगों में लाभदायक है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख किया गया है।[220]

कुन्द

अतिमुक्त, अट्टहास, अट्टपुष्पक, व्रणबन्धु, दलकीष, कंद, मकरंद, मनोदन, बसन्त, कुन्दो, कुन्दफल इत्यादि कुन्द के विविध नाम हैं।

गुण

कुन्द शीतल, अत्यन्त मधुर, कसैला, सारक, हल्का, पाचक, दीपक, हृदय के लिये पौष्टिक, चरपरा एवं पित्त-रोग, मस्तक-रोग, विष, सूजन, आम, रुधिर-विकार और वात को हरने वाला है। इसके फूल मृदुविरेचक, पाचक, हृदय को बल देने वाले हैं। ये विष-नाशक और वात-नाशक हैं।

इसका उपयोग पित्त में, प्रदाह में, और रक्त सम्बन्धी शिकायतों में लाभदायक है। इसके सूखे हुए फलों को पानी में भिगोकर उनका पुल्टिस बनाया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[221]

कृत-मालक (अमलतास)

नाम—संस्कृत नृपद्रुमः, आरग्वधः, हेमपुष्पः, दीर्घफलः, व्याधिघातः। हिन्दी—अमलतास, घनबहेड़ा। मा. करमाड़ी। गुजराती—गरमाड़ी। मराठी—वाहवोह बं. सोनालू आदि इसके विविध नाम हैं।

गुण

अमलतास भारी, स्वादिष्ट, शीतल, मृदुरेचक, ज्वर, हृदय—रोग, रक्त—पित्त वात, उदावर्त और शूल को नष्ट करने वाला है। इसकी फली रुचिकारक, कुष्ठ—नाशक, पित—निवारक, कफ नष्ट करने वाली है।

इसका उपयोग चर्मरोग, श्वास और रुकावट, रुन्नवात, गठिया, अण्ड-वृद्धि, कण्ठ-माला, कब्जियत, कर्ण-रोग, कुष्ठ, अफारा, सुख-प्रसव, हरिद्रा-प्रमेह आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[222]

खण्डकानि (खांड)

खण्ड (खांड) के गुण

खंड मधुर रस युक्त, वीर्य-वर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, बृंहण (रस रक्तातिवर्धक) शीत-वीर्य, वात तथा पित्त-नाशक, स्निग्ध, बलकारक एवं अत्यन्त वमन को दूर करने वाली है।

वाल्मीकि रामायण में भी खंड[223] का एक-दो स्थलों पर उल्लेख प्राप्त होता है।

खदिर (खैर)

खदिर, खेदसार, सोमसार, सोमवृक्ष, खैर, खन्टेगाछ इत्यादि खैर के विविध नाम हैं।

गुण

खैर शीतल, कड़वा, दाँतों को दृढ़ करने वाला, कड़वा तथा कसैला होता है।

यह चर्म-रोग, खाँसी, अरुचि, प्रमेह, ज्वर, आदि में लाभदायक है। वा. रा. में भी इसका उल्लेख किया गया है।[224]

गोधूम (गेहूँ)

अरुपा, बहुदुग्धा, गोधूमा, क्षीरी, मलेच्छ भोजन, पवना, गेहूँ, कुनक, नहूँ, गहूँगा इत्यादि गेहूँ के विविध नाम हैं।

गुण

गेहूँ शीतल, पौष्टिक, वीर्य-वर्धक, भारी, मधुर, स्निग्ध, कामोद्दीपक, रुचि-कारक, देह को स्थिर रखने वाला, वात-पित्त नाशक एवम् कुछ दस्तावर है।

गेहूँ का उपयोग खुजली, खाँसी, नारु, पथरी, मूत्र-रोग, मूत्र-कुच्छ्र आदि रोगों में करने से विशेष लाभ होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी गेहूँ का उल्लेख कई स्थलों पर प्राप्त होता है।[215]

गौड़ानि (गुड़)

हि.—गुड़, गुड, मीठा, ते.—वेल्लमु, वेलामु, म.—गूल, मा.—गुल, गु.—गोड, गोल फा.—कन्दे स्याह। क.—हेमरु अ.—कन्दे असवद। अं.—Treacle (ट्रेकल) आदि गुड़ के विविध नाम हैं।

गुण

यह वीर्य-वर्धक, गुरु, स्निग्ध, वात-नाशक, मूत्र-शोधन करने वाला, थोड़ा पित्त-नाशक एवं मेद, कफ, कृमि तथा बल को उत्पन्न करने वाला होता है।

पुराना गुड़, लघु, पथ्य, अनभिष्यन्दी, अग्निजनक, पुष्टि-वर्धक, पित्त-नाशक, मधुर, वीर्य-वर्धक, वात-नाशक है।

नवीन गुड़ कफ, श्वास, तथा कृमि को उत्पन्न करने वाला एवं जठराग्नि की वृद्धि करने वाला होता है।

इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी कई स्थलों पर उपलब्ध होता है।[216]

चणक (चना)

चणक (चना), हरिमन्थ, सकल-प्रिय, हि.—चना, छोला, रहिला, रोहिला, बूंट म.—हरबरा, हरभरे, हर. भरा, हरभव्या, चणें, बं.—छोला आदि चणक के विविध नाम हैं।

गुण

चना कषाय रस युक्त, शीतल, रुक्ष, लघु, विष्टम्भक, वात-कारक, एवं पित्त, रक्त-विकार, कफ तथा ज्वर का नाशक है।

भिगोया हुआ चना-कषाय रस युक्त, अत्यन्त कोमल, रुचि-कारक, शीतल, वात-जनक, ग्राही, लघु एवं पित्त, शुक्र तथा कफ, पित को नष्ट करने वाला होता है।

सूखा हुआ चना अत्यन्त रुक्ष एवं वात तथा कुष्ठको कुपित करनेवाला होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी चने का उल्लेख प्राप्त होता है।[227]

चम्पक (चम्पा)

सं. चम्पक, कंचना, नागपुष्पा, पीतपुष्पा, राजचंपक, उग्रगन्धा, वनमालिका, हि.चंपा, नाग चम्पा, चम्प, चम्पक, चम्पका, सोन चम्पा। गु. चम्पो, रायचम्पो, सोनचम्पा केसरी चम्पा आदि चम्पक के विविध नाम हैं।

गुण

इसकी छाल कड़वी, कसैली एवं चरपरी होती है। यह विष को नष्ट करती है। कृमियों को निकाल देती है। वीर्य-वर्धक है। इसके सेवन से हृदय को बल मिलता है और मूत्र अधिक होता है। कफ, वात एवं पित्त के विकारों को यह दूर करती है। इसके फूल

कड़वे, अग्निवर्धक, मूत्र निस्सारक, पित्त-विकारों को मिटाने वाले तथा कोढ़, चर्म-रोग और व्रण में लाभदायक हैं। इसका उपयोग प्रसूति रोग, मूत्रकृच्छ्र, फोड़ा, सिरदर्द, संधि वात, नेत्र-रोग, उदर-शूल, ज्वर आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[228]

चिरिबिल्व

नाम—सं.—चिरिबिल्व हि.—चिरबिल्व, चिरमिल, चरेल, पापरी, करंजी। मराठी—बावाड़ गु.—कणझो ते. नवीली आदि चिरिबिल्व के विविध नाम हैं।

गुण

यह वनस्पति शोथ-नाशक और संधिवात में लाभ पहुँचाती है। इसकी जड़ की छाल को औटाकर सन्धियों की सूजन पर बाँधने से लाभ होता है। इसके पत्तों की लुगदी से तैल को सिद्ध कर उस तैल को व्रणों पर लगाने से व्रण भर जाते हैं। इसकी डालियों के रस को दाद पर लगाने से दाद नष्ट हो जाता है।

वाल्मीकि रामायण में अन्य वनस्पतियों के मध्य चिरिबिल्व[229] का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

चूर्णाक (चीनाक)

नाम—सं.—चीनाक, काककेगु सुश्लक्ष्ण, तथा कंगुभेद। हि.—चीना, चिन्ना, चैना, बं.—चिने म.—राले, गु.—चीणे, चीणा क.—चीनक। फा.—उरजान, उरजन। अ.—वारेगा। अ. Milletr ys-Panicum, Miliari आदि चीनाकः के विविध नाम हैं।

गुण

चीना कंगुनी का भेद है अतः यह भी उसी के समान टूटी हुई अस्थियों को जोड़ने वाली, वात-कारक, बृंहण, गुरु, रुक्ष, अत्यन्त कफनाशक और घोड़ों के लिए विशेष रूप से गुण करने वाली होती है।

वा. रामायण में भी चूर्णाक[220] का उल्लेख प्राप्त होता है।

जवा (गुड़हल)

अर्क-प्रिया, जवा, जपा, गुड़हल आदि नाम हैं।

गुण

यह शीतल, मधुर, स्निग्ध, संकोचक, बालों को हितकारी, और शरीर की जलन आदि को दूर करने वाला है। यह मूत्र नली के रोग वीर्य की कमजोरी, बवासीर तथा गर्भाशय एवं योनि मार्ग की तकलीफों को दूर करता है।

वा. रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[231]

तगर

नाम—सं.—कालानुसार्प, तगर, कुटिल, लघुष, नत, चक्र, शठ, दीपन, हि. तगर, पाटुका, म.—तगर, गु.—तगर गंठीड़ा। क.—तगर ते.—गन्धि तगर। आदि तगर के विविध नाम हैं।

गुण

तगर गरम, स्वादिष्ट, हल्के तथा विष, अपस्मार, सिर-दर्द, नेत्र-रोग एवं

त्रिदोष को दूर करता है। निघण्टु-रत्नाकर के अनुसार तगर शीतल, पथ्य, कड़वी, मधुर, हल्की, स्निग्ध, पाक में चरपरी, कसैली, विष-विकार को दूर करने वाली तथा नेत्र-रोग, रुधिर-विकार, त्रिदोष, भूतोन्माद और मृगी को दूर करती है।

इसका उपयोग वात-पीड़ा, विष-विकार, नेत्र-रोग आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी तगर का उल्लेख उपलब्ध होता है।[232]

तिन्दुक (तेंदू)

नाम—सं.—तिन्दुक, अनिलसार, अतिमुक्तक, दंतशट, कालस्कन्ध, स्फूर्जय, स्रष्ट, स्यन्दन, रावण, कृष्णसार, केंदू, तिंदू। हिं.—तेंदू, तिंदू। बं.—गाब, मुकुरकेंडी, तेंदू। बं.—गाब, तेंदू, कुसी, टिम्बोरी।

गुण

तिन्दू कसैला, कड़वा, स्निग्ध, गरम, व्रणनाशक, वात को दूर करने वाला, मल-रोधक और दुष्पाच्य होता है। इसका कच्चा फल स्निग्ध, कसैला, हल्का, मलरोधक, शीतल, रूखा, और वात पैदा करने वाला होता है। इसका पका हुआ फल पित्त, प्रमेह, रुधिर-विकार और पथरी को नष्ट करता है।

इसका उपयोग अतिसार, मुँह के छाले, ताजे घाव, श्वेत-प्रदर आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[223]

नारियल, नारिकेल, तुंग

नाम—सं.—नारिकेल, दृढ़फल, लागली, जुँग, स्कन्धफल, श्री-फल, तृणराज, सदाफल, सदापुष्प, महाफल, हि.—नारियल, श्री-फल, खोपर इत्यादि नारियल के विविध नाम हैं।

गुण

नारियल भारी, स्निग्ध, शीतल, वीर्य-वर्धक, कठिनता से पचने वाला, वस्तिशोधक, बलकारक, पौष्टिक, कफ-कारक, स्वादिष्ट, संकोचक तथा शोष, तृषा, दाह, पित्त, वात-पित्त, रुधिर-दोष और क्षत-क्षय का नाश करता है।

इसका उपयोग दाद, अग्निदग्ध, कफक्षय, रक्त-स्राव, चर्म-रोग, हैजे की वमन, पित्त-ज्वर, हिचकी, चोट एवं मोच, आधा-शीशी, शीतला, गर्भाशय की पीड़ा आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में तुंग[234] एवं नारिकेल[235] दोनों ही नामों से इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।

तुम्ब

तुम्बी, लौआ, लौका, लौकी, कद्दू, कदुआ, मीठी, तोम्बी, लम्बा कद्दू आदि तुम्ब के विविध नाम हैं।

गुण

लौकी गुरु, रुचिकारक, वीर्य-वर्धक, हृदय के लिय हितकर, पित्त तथा कफ-नाशक एवं विशेष रूप से धातु की पुष्टि करने वाला होता है।

यह प्रायः सब प्रांतों में रोपण की जाती है। खेत, बाग, मचान, छप्पर आदि पर फैली हुई इसकी लता होती है। पत्ते कुम्हरे के पत्तों के समान 6-7 इंच के घेरे में गोलाकार होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[236]

देवदारु

नाम—सं.—सुरदारु, भद्रदारु, देव-काष्ठ, अमरदास, इन्द्रवृक्ष, इन्द्रदारु, मस्तदारु आदि हि.—देवदारु, बं.—देवदारु, म.—देवदार आदि देवदारु के विविध नाम हैं।

गुण

देवदारु दो प्रकार का होता है। एक स्निग्ध दारु और दूसरा कष्ट-दारु।

स्निग्धदारु पचने में चरपरा, चिकना, गरम, कड़वा, रूखा, तथा कफ, प्रमेह, बवासीर आदि को दूर करनेवाला है। कष्ट देवदारु, गरम, कड़वा, रूखा, तथा कफ, वात-रोग और भूत-बाधा को दूर करता है।

इसका उपयोग पारे का उपद्रव, सिर-दर्द, गल-गण्ड, सीने का दर्द, अण्ड-वृद्धि, श्लीप्रद, नेत्र-रोग आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[237]

धन्व (इन्द्रयव)

'कुटज बीज', यव, इन्द्रयव, कलिङ्ग, कालिङ्ग और भद्रयव आदि इसके विविध नाम हैं। धन्व कुटज के बीजों को कहते हैं।

गुण

यह त्रिदोष-नाशक, संग्राही, कटुरसयुक्त, और शीतल है। यह ज्वर, अतिसार, खूनी-बवासीर, वमन, विसर्प एवं कुष्ठ को दूर करने वाला, अग्नि-दीपक एवं गुदकील, रक्त-दोष, वात रक्त, कफ तथा शूल को दूर करता है।

गुण

यह कड़वा, दीपन, संग्राही, ज्वरहर, कृमिघ्न, वातानुलोमक, वृष्य, बल्य एवं रक्त-संग्राहक है।

इसका प्रयोग रक्तातिसार, ज्वरातिसार, शीत ज्वर, रक्तार्श, संग्रहणी, प्रवाहिका, पथरी तथा श्वास एवं पुराने फुफ्फुस विकारों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[238]

धव

नाम—सं.—धव, धवल, धुरन्धर, दृढ़तरु, गौर, घट, क्षय, मधुर त्वचा, नन्दितरु, पांडुतरु, पिशाच-वृक्ष, पीतफल, शकटाख्य, शुष्कांग, स्थिर, धावड़ा, धोंधंव, इत्यादि धव के विविध नाम हैं।

गुण

धव कसैला, शीतल, मधुर, चरपरा, अग्निदीपक, रुचिकारक और पाण्डुरोग, प्रमेह, कफ, पित्त, बवासीर, और वात को दूर करता है। इसका फल शीतल, स्वादिष्ट, रूखा, कसैला, मलरोधक, वात-वर्धक, और कफ-पित्त नाशक होता है। इसकी जड़ चरपरी,

कसैली, पित्त-कारक और अत्यन्त अग्नि-दीपक होती है। इसका गोंद पौष्टिक एवं कामोद्दीपक होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[239]

न्यग्रोध,[240] (बड़) वट,[241] क्षीर वृक्ष[242] भण्डीर[243]

नाम— सं.—वट, रक्तफल, शुङ्गी, स्कन्धज, ध्रुव, क्षरी, अव-रोहर, भांडीर, भृङ्गी, वृक्षनाथ, यम-प्रिय इत्यादि हैं।

गुण

यह कसैला, मधुर, शीतल, आँतों का संकोचन करने वाला, कफ, पित्त एवं व्रणों को नष्ट करने वाला तथा वमन, ज्वर, योनिदोष, मूर्च्छा एवं विसर्प में लाभदायक है। ये कांति को बढ़ाते हैं। इसके पते व्रणों के लिये लाभदायक हैं। नवीन पत्ते गलित कुष्ठ में लाभ करते हैं। इसका दूध वेदना नाशक और व्रण रोपक होता है।

इसका उपयोग गठिया, चोट, मसूड़ों के रोग, फोड़े आदि में किया जाता है। वा. रा. में इन सबका उल्लेख मिलता है।

नाग वृक्ष, पुन्नाग

नाग—सं.—भुजंगाख्य, चांपेय, हेम, हेमकिंजल्क, केसर, नागकेसर, नाग-पुष्पा, पुन्नाग केसर, हि.—नागकेसर, पुन्नाग, नागचम्पा आदि— नाग-वृक्ष के विवध नाम हैं।

गुण

नागकेशर, कड़वी, कसैली, आम-पाचक, किंचित-गरम, रूखी, हल्की तथा पित्त, कफ, रुधिर विकार, वात, कण्डू, हृदय की पीड़ा, पसीना, दुर्गन्ध, विष, तृषा, कोढ़, विसर्प, वस्ति पीड़ा, वात-रक्त, कण्डू रोग एवं मस्तक शूल को नष्ट करता है।

इसका उपयोग रक्तार्श, पैरों की जलन, सर्प-दंश, गठिया, बिगड़े हुए घाव, श्वेत-प्रदर, गर्भ-पात आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[244]

निम्बा : (अरिष्ट)

नाग—सं.—निम्ब, नियमन, नेतर, पिचुमन्द, सतिक्तक, अरिष्ट, सर्वतोभद्रक, हिंगु, पीतसार, रवि-प्रिय, हि—नीम, बं. नीमगाछ, म.—कडुनिम्ब। गु.—लीमड़ो इत्यादि नीम के विविध नाम हैं।

गुण

नीम हल्का, शीतल, कड़वा, ग्राही, व्रण-शोधक, बच्चों के लिये हितकारी, कृमि, वमन, व्रण, कफ, शोथ, पित्त, विष, वात, कुष्ठ, हृदय की जलन, श्रम, खाँसी, ज्वर, तृषा, अरुचि, रुधिर-विकार एवं प्रमेह को नष्ट करता है।

इसका उपयोग, जीर्ण ज्वर, मलेरिया ज्वर, पित्ती, घाव, कुष्ठ एवं चर्मरोग, विषैले घाव, दमा, फोड़े, हैजा, दस्त, वायु रोग, नासूर आदि अनेक रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।[245]

पर्णास (तुलसी)

नाम—सं. तुलसी, वैष्णवी, वृन्दा, सुगन्धा, गंध-हारिणी, अमृता, पत्र-पुष्पा, पवित्रा, सुरवल्लरी, सुभगा, तीव्रा, पावनी, विष्णु बल्लभा, माधवी आदि तुलसी के विविध नाम हैं।

गुण

सफेद एवं काली तुलसी गरम, दाहजनक, पित्तकारक, हृदय को लाभदायक, कसैली, अग्निदीपक, पचने में हल्की तथा वायु, कफ, श्वास, खाँसी, हिचकी और कृमि को नष्ट करने वाली और वमन, दुर्गन्ध, कुष्ठ, पार्श्वशूल, विष, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-दोष, भूत बाधा, धर्नुवात, हिस्टीरिया, शूल और ज्वर को नष्ट करने वाली है।

इसका उपयोग खाँसी, बादी का दर्द, यकृत के रोग, कर्णशूल, सूखी खाँसी, मलेरिया, ज्वर, दन्त शूल आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी तुलसी[1] का उल्लेख प्राप्त होता है।

प्लक्ष (पाकर)

नाम—सं.—प्लक्ष, कनीनिका, गृहद्वार प्रवेश। हि.—पाकरी, जरी, गु.—पिप्पर, पिपली। बं.—पिपरी, तमिल-इच्चि, कलिच्ची, सीतल, ते.—जबी। उ.—जोरी ले.—Ficus Tiseila।

यह पीपल की जाति का एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके सभी हिस्से चिकने होते हैं। इसके पत्ते पतले होते हैं। 7.5 से लेकर 15 सेमी. तक लम्बे और 3.8 से 9 से. मी. तक चौड़े होते हैं। यह वृक्ष मध्यप्रांत और पश्चिमी घाट में पैदा होता है।

इसकी छाल उदर शूल को दूर करने के काम में ली जाती है।

वाल्मीकि रामायण में भी प्लक्ष (पाकर) का एक दो स्थलों पर उल्लेख उपलब्ध होता है।[247]

पाटला

नाम—सं.—अलिप्रिया, अवल्लभा, अम्बवासी, वसन्त-दूती, कोकिला, कुबेराक्षी, कुम्भी, पाटला, हि.—पाटला, पाड, पाडर, पांडरी। बं.—घण्टा, मुग, पारुल, पं.—माडल इत्यादि पाटला के विविध नाम हैं।

गुण

पाटल कड़वी, चरपरी, गरम, कफ नाशक, तथा सन्निपात, श्वास, वमन, सूजन और अफारे को दूर करती है। इसके फूल स्वादिष्ट, कसैले, हृदय को हितकारी, शीतवार्य तथा रक्त-दोष, दाह, कफ, पित-रोग और पितातिसार को हरने वाले हैं। इसके फल शीतल, भारी, कसैले, कड़वे, मधुर तथा मूत्र-कृच्छ्र, रक्त-पित, हिचकी, वात का नाश करने वाले होते हैं।

इसका उपयोग मधुमेह एवं मूत्राघात आदि रोगों में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[228]

पुरोडोल[249] सोम[250] (सोमरस)

नाम—सं.—सोमवल्ली, सोमलता, द्विज-प्रिया, यज्ञ श्रेष्ठा, सोमा इत्यादि सोमलता के विविध नाम हैं।

गुण

सोमबेल मादक, रसायन, शोथ, दाह, ज्वर तथा कफ को नष्ट करने वाली है। महर्षि सुश्रुत के अनुसार उसके रसपान से शारीरिक स्वास्थ्य मन की स्फूर्ति, बुद्धि-बल, वाणी, और आनन्द में सैकड़ों गुनी वृद्धि होती है। सोमवल्ली आयुर्वेद के अनुसार एक दिव्य-औषधि है। महर्षि सुश्रुत लिखते हैं कि सामेवल्ली 24 प्रकार की होती है। सब प्रकार की सोमवल्लियों पर 15-15 पत्ते होते हैं जो कृष्ण-पक्ष में गिरते हैं और शुक्ल-पक्ष में प्रतिदिन नये फूटते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी कई स्थलों पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

बदरी (बेर)

नाम—सं.—बदरी, अजाप्रिया, बालेष्टा, दीर्घ बीजा, द्विपर्णी, कंटकी, राजबद्री, फलाशयाशिरा, सूक्ष्मपत्रिका, श्रृगाल, कोली, हि.—बैर, बेर, बेरी इत्यादि बदरी के विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से बेर की जड़ कड़वी और ठंडी होती है। यह कफ, पित्त-विकार और मस्तक-शूल में लाभदायक होती है। इसकी छाल बालतोड़ और स्फोटक व्रण को अच्छा करती है और रक्तादि-सार तथा प्रवाहिका में लाभ पहुँचाती है। इसके पत्ते कड़वे और शीतल होते हैं। इसके पके हुए फल (सौबीर बेर) ठंडे, पचने में कठिन, कामोद्दीपक, पौष्टिक, मृदुविरेचक, ओज बढ़ाने वाले और पित्त-नाशक होते हैं।

इसका उपयोग जी-मिचलाना, ज्वर की तृषा, पित्तज्वर, अतिसार आदि में किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उपयोग मिलता है।[251]

बला :

नाम—सं.—बरियार, बरियारा, बरियाल, खरेठी, खरैटी, खिरैटीं बीजबंद बं.—बेडेला म.—चिकणा, गु.—बलदाणा, खरेंटी बल, बला क.—किसंगी, ते.—चिरिबेन्डा ता.—अखिल मनैपुण्डु मा.—खरेंटी आदि बला के विविध नाम हैं।

गुण

बला शीतवीर्य, बल्य, रसायन, वृष्य, प्रजास्थापन, संग्राही वात-पित्त हर एवं स्निग्ध है।

इसका उपयोग रक्त-पित्त, प्रमेह, प्रदर, वात-विकार एवं व्रण में किया जाता है। शुक्र-मेह में इसके पञ्चांग का स्वरस देने से लाभ होता है। श्वेत-प्रदर, बार-बार पेशाब होना तथा सोजाक में इसके जड़ की छाल का चूर्ण शर्करा तथा दुग्ध के साथ प्रयोग करते हैं। नेत्राभिष्यंद में इसके बीज पीसकर बाँधते हैं। उपदंश, फिरंग तथा क्षत में इसकी जड़ को पीसकर बाँधने से व्रण जल्दी अच्छे होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी बला का दिव्य-औषधि के रूप में उल्लेख है।[252]

बिभीतक (बहेड़ा)

नाम—सं.—विभीतक, अक्ष, अनिलघ्नक, बहेड़क, बहुवीर्य, भूतावास, हार्य, विपघ्न, कलिद्रु, कलिद्रुम, कल्पवृक्ष, तेलफल, कासघ्न, हि.—बहेड़ा, वहेड़ा, बुहुरा इत्यादि विविध नाम हैं।

गुण

बहेड़ा चरपरा, कड़वा, कसैला, हल्का, दस्तावर, पाक के समय मधुर, रूखा, नेत्रों को हितकारी, केश-वर्धक, भेदक तथा पलित-रोग, स्वरभङ्ग, नासारोग, रुधिर दोप, कण्ठरोग, नेत्र-रोग, खाँसी, हृदय-रोग और कृमियों को नष्ट करता है।

बहेड़े के फल की मींग आँख के फूल को दूर करती है। इसकी छाल रक्ताल्पता, पांडुरोग एवं श्वेत कुष्ठ में लाभदायक है। इसके बीज कड़वे, नशीले, प्यास, वमन आदि को दूर करने वाले हैं। इसका उपयोग नपुंसकता, पित्त की सूजन, पित्त और कफ का बुखार, मंदाग्नि, खाँसी, अतिसार, आदि में लाभकारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[253]

बीज-पूरक (बिजौरा नीबू)

नाम—सं.—अम्ल-केशर, बीजपूर, बीजक, बीजफलक, बीजपूर्ण, जन्तुघ्न, महाजरण, मातुलुङ्ग, फलपूर, रोचन-फल, सुकेशर, हि. बिजोरा नींबू, बड़ा-नीबू आदि बीजपूरक के नाम हैं।

गुण

इसकी जड़ कृमिनाशक होती है। कब्जियत और अर्बुद या गाँठ के रोग में इसका उपयोग किया जाता है यह पेट के दर्द को दूर करती है, वमन, मूत्र सम्बन्धी, पथरी-रोग और दन्त-रोग में उपयोगी है। इसकी कलियाँ और फूल उत्तेजक और आँतों के लिये संकोचक होते हैं, भूख बढ़ाते हैं, वमन की शिकायत दूर करते हैं, अर्बुद या गाँठ में लाभदायक हैं। पेट की परेशानियों को दूर करता है।

दमा, खाँसी, कुकुर-खाँसी और नशे को दूर करने में लाभदायक है। इसके कच्चे फल वात, पित्त और कफ को बढ़ाते हैं तथा रक्त को भी दूषित करते हैं। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त होता है।[254]

भूर्जपत्र

नाम—सं.—भूर्जपत्र, भूर्ज, बहुलवल्कल, बिंदुपत्र, भूतघ्न, हि.—भोजपत्र। गु.—भोजपत्र बं.—भूच्चिपत्र। पंजाब-भुज, बुरझल इत्यादि भोजपत्र के विविध नाम हैं।

गुण

इसकी छाल कसैली, चरपरी, गरम, पौष्टिक, भूत-बाधा को दूर करने वाली और आक्षेप, खाँसी, रक्त-रोग, कर्ण-रोग, कुष्ठ और त्रिदोष को दूर करने वाली होती है।

यह एक छोटी जाति का झाड़ी नुमा वृक्ष होता है। वृक्ष की छाल को ही भोज-पत्र कहते हैं। यह कागज के समान अथवा केले के सूखे पत्ते के समान होता है। पहले जब कागज नहीं बनता था तब भोज-पत्र का ही कागज के स्थान पर

व्यवहार किया जाता था।

इसकी छाल का शीत, निर्यास, हिस्टीरिया में उपयोगी और शांति-दायक माना जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[253]

मंजिष्ठा (मंजीठ)

नाम—सं.—मंजिष्ठा, विकसा, जिंगी, समंगा, कालमोषिका, भंडीरी, मंजूषा, ज्वरहन्ती, हेमपुष्पी, हि.—मंजीठ, बं.—मंजीठ, म.—मंजिष्ठा, गु.—मंजीठ तमिल मंजीठी आदि इसके विविध नाम हैं।

गुण

मंजिष्ठा मधुर, कड़वी, कसैली, गरम, रक्तातिसार-नाशक, स्वर को शुद्ध करने वाली, कांति-वर्धक, भारी तथा विष, कफ, सूजन, योनि-रोग, नेत्र-रोग, कर्ण-रोग, कुष्ठ, रुधिर विकार, विसर्प, व्रण और प्रमेह को नष्ट करने वाली होती है।

मंजीठ के पत्ते मधुर, हल्के, स्निग्ध, जठराग्नि को दीप्त करने वाले तथा वात और पित्त को हरने वाले होते हैं।

मंजीठ का फल तिल्ली के रोगों को दूर करने वाला है। मंजीठ में स्तम्भक, पौष्टिक, आर्तव-प्रवर्तक, वेदना-नाशक, शोथघ्न, चर्म-रोग-नाशक धर्म रहते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी मंजिष्ठा का उल्लेख प्राप्त होता है।[256]

मधूक[257] (महुआ) महाद्रुम[258]

नाम—सं.—मधुक, मधुवृक्ष, डोलाफल, महाद्रुम, गुड़-पुष्प। हि.—महुआ, महूला। बं.—महूला, मध्वा गु.—महूड़ा, म.—मोहड़ा, मोहो, मोहावा इत्यादि विविध नाम हैं।

गुण

महुए का वृक्ष मधुर, कटु, शीतल, कफ-कारक, कामोद्दीपक, कृमि-नाशक और पित्त-दाह, व्रण, श्रम, और वात को नष्ट करने वाला होता है। इसकी छाल, व्रण और घाव को भरने वाली, रक्त-पित्त नाशक और टूटी हुई अस्थियों को जोड़नेवाली होती है।

इसका उपयोग फोड़े-फुंसी, वादी की पीड़ा, गठिया, पामा, नपुंसकता, अण्ड-वृद्धि, सरदी के रोग, वायु-शूल, मिरगी आदि में किया जाता है। वा. रा. में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[258]

मधूनि

नाम—सं.—मधु, मकरन्द रस, माक्षिक, पुष्पासव, क्षौद्र, पुष्परसोद्भव, भृङ्ग वात, हि.—मधु, शहद। बं.—मधु, मौ, म.—मध। गु.—मध पं.—शहद, मधु आदि शहद के विविध नाम है।।

गुण

मधु शीतल, स्वादिष्ट, रूखा, स्वर को शुद्ध करने वाला, ग्राही नेत्रों को हितकारी, अग्नि-दीपक, व्रण-शोधक, नाड़ी को शुद्ध करने वाला, सूक्ष्म, कांति-वर्धक, मेधा जनक, कामोद्दीपक, रुचि-कारक, आनन्द-जनक, कसैला, कुष्ठ, वात-कारक,

बवासीर, खाँसी, रुधिर-विकार, कफ, प्रमेह, कृमि, मद, ग्लानि को नष्ट करने वाला है।

इसका प्रयोग नेत्र-पीड़ा, हिचकी, बिच्छू का विष, गर्भाशय का मल इत्यादि में लाभकारी होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

मरिच (मिर्च)

नाम—सं.—मिरचीं फला, तीव्र शक्ति, ब्रह्म ऋचा, अजड़ा, कुमऋचा, हि.—लाल मिर्च, लंका मिर्ची, बं.—लंका मुरिच, लाल मरिच। बं.—लाल-मिरची। गु.—मिरची आदि इसके विविध नाम हैं।

गुण

लाल-मिर्च अग्नि-दीपक, दाहजनक, तथा अजीर्ण, विसूचिका, दारुण-व्रण, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वर-भंग, और अरुचि को दूर करती है।

मिर्च दीपन, पाचन और आनुलोमिक होती है। बिच्छू के डंक पर इसको पानी में पीसकर लगाने से लाभ होता है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ आत्रेय संहिता में मिर्च को अग्नि-दीपक, कफ-नाशक, दाह-जनक, और अजीर्ण, विसूचिका, दारुणव्रण, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभंग, अरुचि तथा कफ नाशक बताया है। इसका उपयोग सन्निपात में विशेष गुणकारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी मरिच का उल्लेख प्राप्त होता है।[260]

माधवी[261] **(अतिमुक्ता, वासन्ती)**

नाम—सं.—अतिमुक्ता, माधवी, सुवसन्ता, पराश्रया, कामुक, मण्डक, चन्द्रवल्ली, भृंगप्रिया, भद्रलता, वसन्तदूति, हि. माधवी लता, मदमाती, मधुलोटा इत्यादि विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से माधवी लता चरपरी, कड़वी, कसैली, मादक, गन्ध बाला, तथा पित्त, खाँसी, व्रण, दाह और शोष को दूर करने वाली होती है।

भाव-प्रकाश के अनुसार यह शीतल, हल्की और त्रिदोष-नाशक होती है। इसके पत्ते चर्म-रोग नाशक, और छाल कड़वी और सुगन्धित होती है। इसके पत्तों का रस एक उत्तम, कृमि-नाशक पदार्थ हैं इसका उपयोग चर्म-रोग, पेट के कृमि, गठिया एवं दमा इत्यादि रोगों पर करना विशेष लाभदायक सिद्ध होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[248]

मुग्ध (मूंग)

नाम—सं.—मृद्रग, सूपश्रेष्ठ, मुक्तिप्रद, हयानंद, सुफल, हि.—मूंग, बं.—मुग, बुलट, म.—मूंग, गु.—मग, पंजाब-मूंग, ते.—पाचटा, ता.—पाटचाई। अं.—Green Gram इत्यादि।

गुण

भाव-प्रकाश के अनुसार मूंग रूखा, हल्का, मलरोधक, कफ-पित नाशक, शीतल, स्वादिष्ट, किंचित् वात कारक, नेत्रों को हितकारी और ज्वर को दूर करने

वाला होता है। सब प्रकार के मूंगों में हरा मूंग उत्तम होता है।

मूंग पित्त-कफ-नाशक, व्रण-विनाशक, कंठरोग-निवारक, हल्का तथा वात-रक्त, कृमि-रोग, नेत्र-रोग में हितकारी होता है। यह मन्दाग्नि को दूर करता है, स्वर को सुधारता है और मूत्र-रोगों में लाभ पहुँचाता है। यह एक उत्तम पथ्य है।

इसका उपयोग नासूर, पित्त-ज्वर, अतिसार, विसर्परोग में होता है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[262]

मुचुकन्द

नाम—सं.—मुचकन्द, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रतिविष्णुक, दीर्घपुष्प, हरिवल्लभ, हि.—मुचकन्द, गु.—मुचकन्द, बं.—मुचकन्द ता. सेम्बोलऊ। ते.—लीलेबू ले.—Pterospermun Suberifolium आदि।

गुण

आयुर्वेदिक मत से मुचुकन्द चरपरा, गरम, कड़वा स्वर को सुन्दर करने वाला तथा खाँसी, कफ, त्वचा के विकार, सूजन, सिर की पीड़ा, त्रिदोष, रक्त-पित्त, रुधिर-विकार, और पित के कोप को दूर करने वाला होता है।

इसके फूलों में एक प्रकार का उड़नशील तैल रहता है। इस तैल का प्रधान धर्म-वेदना नाशक होता है।

इसके फूलों को चावल के मांड के साथ पीसकर मस्तिष्क पर लेप करने से आधा शीशी का दर्द बन्द हो जाता है। यह बवासीर में उपयोगी है।

वाल्मीकि रामायण में भी मुचुकन्द का उल्लेख प्राप्त होता है।[263]

रजका (रंजक) कपीला

नाम—सं.—कपिल्लकः, रक्तांगा, रंजनः, बहुपुष्पः, लघुपुत्रक इत्यादि। हि.—कम्बिला, कपीला, गु.—कपीली, म.—कपिला, बं.—कमलागुन्डी। पं.—कमीला आदि विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से कपिला दस्तावर, चरपरा, गरम, व्रण-नाशक, कफ, खाँसी और कृमियों को दूर करने वाला, तथा गुल्म, उदर रोग, अफरा और पथरी को नष्ट करने वाला होता है। इसके पत्ते शीतल और कड़वे होते हैं। यह भूख बढ़ाने वाला है। इसके फल में तैयार किया हुआ चूर्ण कृमि-नाशक है, घावपूरक है और विरेचक है।

कपिला एक सुन्दर हल्के लाल रंग का गन्ध एवं स्वादहीन पदार्थ है। यह ठंडे पानी में नहीं घुलता है। इसका उपयोग, घाव, दाद, खाज, इन्द्रलुप्त, कृमि एवं पसली के दर्द में गुणकारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[264]

लकुच[265] (बड़हर)

नाम—सं.—अम्लक, एरावत, लकुच, निकुच क्षुद्रफणस। हि.—बड़हर, बड़हल, लकुच, घाव। ब.—दाहू, देफल, लकुच, मदार, गु.—लकुच। म.—बधार, क्षुद्रफणस,

घोंटवा। आदि विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल गरम, भारी, कब्जियत करने वाला, मीठा, खट्टा, त्रिदोष को पैदा करने वाला, रुधिर को दूषित करने वाला, नेत्रों को हानिकारक, और वीर्य को नष्ट करने वाला होता है।

इसका पका फल मधुर, खट्टा, वात-पित्त-नाशक, कफ-कारक, रुचि-वर्धक, कामोद्दीपक, एवं कब्जियत करने वाला होता है।

फोड़े-फुन्सी एवं पैर की बिवाई में इसके छिलके का सत्व लगाया जाता है। घावों के ऊपर इसके छिलके को पीसकर लगाने से यह उसके मवाद को खींच लेता है।

वा. रामायण में भी लकुच का उल्लेख प्राप्त होता है।[266]

लवण[267] (नमक)

नाम—लवण, सैधवं हि.—नमक, म.—मीठ, गु.—मीठ् फारसी-नमक, अंग्रेजी-Chioride of Sodium ले. Sodi cloridum । नमक मानवी भोजन में पड़ने वाली एक अनिवार्य वस्तु है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। जैसे सेन्धा नमक, साम्भर नमक, काला नमक, संचर नमक, बीड़ नमक इत्यादि पर इन सबमें सेंधा नमक विशेष उत्तम होता है।

गुण

आयुर्वेद के अनुसार सेंधा नमक रुचिकारक, वीर्य-वर्धक, नेत्र को हितकारी, अग्नि-दीपक, शुद्ध, स्वादिष्ट, हल्का, स्निग्ध, पाचक, शीतल, सूक्ष्म, हृदय को हितकारी, त्रिदोष-नाशक तथा व्रण-दोष, कब्जियत एवं हृदय-रोग को नष्ट करने वाला है।

सेंधा नमक आँख के लिये बहुत लाभदायक है। वाल्मीकि रामायण में भी लवण के कई रूपों का उल्लेख मिलता है।

लाजा

जिन धान्यों के चावल होते हैं, वे धान्य भूसी के साथ ही अर्थात् बिना कुटे ही यदि भून दिया जाये तो खिल जाते हैं। उन्हीं को संस्कृत में लाजाः कहते हैं और हिन्दी में खील कहते हैं।

गुण

खील मधुर रसयुक्त, शीतल, लघु, अग्निदीपक, स्वल्प-मूत्र तथा मल को लाने वाले, रुक्ष, बलकारक, एवं पित्त/कफ, वमन, अतिसार, दाह, रक्त-विकार, प्रमेह, मेद तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी लाजा का उल्लेख अनेक स्थलों पर होता है।[268]

लाख[269] लाक्षा[270] अंलक्त[271]

नाम—सं.—लाक्षा, अलंक्तः, रक्ता, पित्तारि, कृमिजा, रंगमाता, हि.—लाख, लाही, गाला, मराठी लाख, गु.—लाख। va- Shellac ले. Cocus Lacca आदि

नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से लाख शरीर के वर्ण को उज्ज्वल करने वाली शीतल, बलकारक, स्निग्ध, कसैली, हल्की तथा कफ, रक्त-पित्त, हिचकी, खाँसी, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, कुष्ठ, कृमि, विष, रक्त-दोष और विषम ज्वर को हरने वाली होती है।

लाख कड़वा होता है। इसका उपयोग विविध रोगों मे किया जाता है यथा-मासिक-धर्म की अधिकता, रक्त-पित्त, रक्त-प्रसार, वमन, हिचकी, रुधिर की वमन आदि में।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका महावर के रूप में एवं अन्य रूपों में भी उल्लेख प्राप्त होता है।

गुण

नाम—सं.—लोध्र, तिराटक, शाबर, गाल्व, हस्ती, हेमपुष्पक, हि.—लोध्र, गु.—लोद्र म.—लोध, बं.—हुरा, लोध, म.—प्रा.—लोध, निनसाह, तेलगू—लोड्डुगा उर्दू—लोध पठानी आदि विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कसैली, शीतल, पचने में हल्की, आँतों का संकोचन करने वाली, नेत्र-रोग एवं मसूड़े के रोगों में लाभदायक होती है। कफ, पित्त, रक्त-रोग, अतिसार, सूजन, कुष्ठ, प्रदर, गर्भपात, और गर्भ-स्राव में भी यह बहुत लाभदायक होती है। यह योनिपथ के व्रणों को मिटाती है। इसके फूल चरपरे, कसैले, मीठे, कड़वे, शीतल और आँतों का संकोचन करने वाले होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी कई स्थलों पर उल्लेख मिलता है।[260]

वरुणः (बरना)

नाम—सं.—वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक, हि.—वरुन, बरना, बं.—बरन गाछ। म.—बायवरणा, वायवर्णा, पं.—बरना ले. Crataeve Religiosa आदि नाम है।

गुण

बरना कषाय, मधुर, तिक्त तथा कटु रस युक्त, रुक्ष, लघु, पित्त-जनक, मल का भेदन करने वाला, उष्ण, अग्नि-दीपक, एवं कफ, मूत्र-कृच्छ्र, पथरी, वायु, गुल्म, वात रक्त, कृमि को दूर करने वाला होता है।

यह मालवार और कन्नर में नदियों के आस-पास पाया जाता है। इसका वृक्ष-मध्यमाकार का होता है और शाखाएँ-फैली हुई रहती हैं। छाल आधा इंच मोटी खाकी रंग की होती है। शाखाओं के अंत में 2-4 इंच लम्बी डंडियों पर पत्तों के गुच्छे रहते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी वरुण का उल्लेख प्राप्त होता है।[272]

वानीर[273] (वेत्र), वेतस[274]

नाम—सं.—अभ्रपुष्पा, दीर्घपत्रका, दीर्घ-बल्लि, गन्ध पुष्पा हि.—दीर्घपत्रा। तमिल—आरिनी पीर अम्बु। ते.—बेथमा। ले.—Calamus Rotung आदि विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति तीक्ष्ण, कड़वी, सुगन्धित, कसैली, शीतल और विषनाशक होती है। कफ और वात में यह लाभदायक है। पित्त की जलन, बवासीर, पथरी, श्लीपद, पेचिश, प्यास, व्रण, कोढ़, रक्त-रोग और मूत्र सम्बन्धी विकारों में लाभदायक है। गर्भाशय और योनिद्वार के विकारों में भी यह लाभदायक समझी जाती है। इसकी जड़ जीर्ण ज्वर में दी जाती है। इसके पत्ते खून और पित्त की बीमारियों में उपयोगी और मृदु-विरेचक होते हैं। इसके बीज कफ रोग एवं रक्त रोग में लाभदायक होते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी इनका उल्लेख मिलता है।

वाराही कंद

नाम—सं.—वाराही कन्द, शूकर कन्द, ब्राह्मी कन्द, कुष्ठ नाशक, महावीर्य इत्यादि। हि.—बाराही कन्द, सूअरकन्द, मिखोलीकन्द, गेठी, ले. Tacca Aspera। इत्यादि विविध नाम हैं।

यह एक बड़ी जाति की बेल होती है। जो पहाड़ों पर पैदा होती है। इसके पत्ते नागर बेल के पत्तों के समान होते हैं। इसकी जड़ में एक कन्द रहता है जिस पर सूअर के बाल के समान बाल रहते हैं।

गुण

वाराही कन्द चरपरा, कड़वा, बलकारक, पित्त-जनक, रसायन, कामोद्दीपक, वीर्य-वर्धक, भूख बढ़ाने वाला, मधुर, गरम, कांति-वर्धक, स्वर को शुद्ध करने वाला, आयुवर्धक तथा कोढ़, प्रमेह, त्रिदोष, कफवात, कृमि और मूत्र-कृच्छ्र रोग को नष्ट करता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[275]

शर्करा (शक्कर)

नाम सं. शर्करा, हि. चीनी, बुरा, भुरा, शक्कर, सफेद खांड, चिन्नी, बूरा। बं. चिनी, म. पिठी साखर, गु. साकरिया, खाँ। अं. Sugar ले. Saeekrum।

जो खाँड बालू के समान तथा अत्यन्त श्वेत हो उसे 'शर्करा' अथवा 'सिता' कहते हैं।

गुण

चीनी अति मधुर, रुचिकारक, वात-पित्त, रक्त-विकार, तथा दाह को दूर करने वाली, अति शीतल, शुक्र को उत्पन्न करने वाली एवं मूर्च्छा, वमन तथा ज्वर को नष्ट करने वाली होती है।

वाल्मीकि रामायण में भी शर्करा अर्थात् शक्कर का उल्लेख प्राप्त होता है।[276]

शाद्वला (शैवाल)

कांई

नाम—हि.—नाम शैवाल, जल्लील, गु.—जलेसर, पोलाइन, ते.—पंचदूब, इ.—Eelgrass (एलग्रास) ले. Villisneria-Spiralis (व्हेलिसनेरिया स्पिरेलिस)।

गुण

यह वनस्पति शीतल, कड़वी, मधुर, सारक, रुक्ष, सलोनी, पचने में हल्की, और स्निग्ध होती है। यह तृषा, रक्त-पित्त, ज्वर, शोष, दाह, और व्रण को मिटाती है। यह वनस्पति अग्नि-वर्धक होती है और श्वेत-प्रदर में इसका उपयोग किया जाता है।

शैवाल के वर्ग की वनस्पतियाँ विषैली नहीं होतीं।

उपयोग

वीर्य का पतलापन, सुजाक, श्वेत-प्रदर आदि रोगों में इसका उपयोग विशेष लाभ-कारी है।

वाल्मीकि रामायण में भी कई स्थलों पर इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।[277]

श्लेष्मान्तक (लिसोढ़ा)

नाम—सं.—श्लेष्मान्तक, शेलू, उद्दाल, भूकर्बुदार, हि.—लिसोड़ा, बड़गूंदा, बं.—चालता गाछ, बहुबड़ा, गु.—बडगूँदो, मराठी—बड़गूंद भोकर। उर्दू—लिसोड़ा अं.—Sebesten Plum आदि।

गुण

लिसोड़े का फल कुछ मीठा, कुछ शीतल, कृमि नाशक, कफ निस्सारक संकोचक और फेफड़े की सब प्रकार की बीमारियों में बहुत उपयोगी होता है।

इसकी छाल का रस नारियल के तेल के साथ मिलाकर शूल को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसकी छाल और इसके कच्चे फल हल्के पौष्टिक पदार्थ की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इसको पीसकर लेप करने से दाद मिट जाता है। व्रण और मस्तक शूल पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है।

यह अतिसार, मूत्रकृच्छ्र, घाव, बंदगाँठ आदि में प्रयोग करने पर बहुत लाभकारी है। वा. रा. में भी इसके वन का उल्लेख है।[278]

सरल (चीड़)

नाम—सं.—भद्रदारु, धूपवृक्षका, मनोजना, मरीचपत्रिका, पीतदारु, पीतद्रु, पीतद्रु, पूतिकष्ट, सरला, सुरभिदारुका। हि.—चीड़, साला, सारल, सरल, गु.—सरल देवदार ले.—Pinus Longifolia आदि नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से यह मीठा, तीक्ष्ण, कड़वा, गरम, स्निग्ध एवं आँतों के कीड़ों को नष्ट करने वाला है। आँख, कान, गला, रक्त एवं चर्म की बीमारियों में भी यह लाभदायक है इसका गोंद कड़वा, कसैला, गरम एवं स्निग्ध होता है। यह पेट के अफारे को दूर करता है। कामोद्दीपक होता है। मूत्रल, कृमिनाशक, और वेदना शून्यता लाने के गुण भी इसमें विद्यमान हैं। योनि एवं गर्भाशय की

तकलीफों में भी लाभदायक है। मन्दाग्नि, व्रण, खुजली, प्रदाह, और सिरदर्द को यह दूर करता है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[268]

सल्लकी

नाम—सं.—शल्लकी, गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभि, रसा, महेरुणा, कुन्दरुकी, वल्लकी, वहुस्रवा, हि.—सालई, सलई, शालई, सलग, सलैया शलग, ले.—Boswellia Serrata ब.—शलई, शाल-विशेष, सल्लकी। म.—शालई वृक्ष, धूप शलाई, गु.—शालेडुं, धूपेंडो, सालेडा। क.—तदीकु, आने-व्याल। ता.—कुलि, मा. —सेलो। ते.—अन्दगु आदि विविध नाम हैं।

यह पश्चिमी हिमालय के नीचे के जंगलों में मध्य भारत विहार से राजपूताना तक, दक्षिण एवं कोंकण आदि प्रान्तों में होता है। यह 30 फीट तक ऊँचा होता है। कोमल पत्ते एवं शाखाएँ रोवेदार होती हैं। पत्ते आमने-सामने व कुछ अन्तर देकर 8 से 15 जोड़े और 8-15 इंच लम्बे नीम के पत्तों के समान तिखूंटे होते हैं। पीले फल अथवा फल में तीन रेखाएँ होती हैं। इसके गोंद को कुन्दरु कहते हैं।

गुण

यह कषाय-रस-युक्त, शीतल, पुष्टि-कारक एवं पित, कफ, अतिसार, रक्त-पित्त तथा व्रण को दूर करने वाली होती है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।[269]

सिन्दुवार

नाम—सं. सिन्दुवार, सिन्दुर, सिन्दुवारक निर्गुण्डी, शेफाली, सुवहा। हि. निर्गुण्डी, निगोरी, सम्हालू, सिंदूआरी। बं. निर्गुण्डी, निषिन्दा, समालू, ले. Vitex Negundo आदि नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदानुसार निर्गुण्डी कड़वी, तीखी, तूरी, हल्की, गर्म, दीपन, वात-नाशक, वेदना-शामक, कुष्ठघ्न, व्रण-शोधक, व्रण-रोपक, शोथघ्न, कफ-निस्सारक, ज्वर-नाशक. पार्यायिक-ज्वरों को रोकने वाली, खाँसी को दूर करने वाली, मूत्रल, आर्तव-प्रवर्तक, कृमि-नाशक, मज्जा-तन्तुओं को शक्ति देने वाली बल-वर्धक एवं परम्-रसायन है।

सिन्दुवार का सूजन को नष्ट करने वाला, वेदना-नाशक, एवं वात-नाशक गुण बहुत प्रभाव शाली है।

'चरक' और 'सुश्रुत' के मतानुसार इसका पौधा सर्प-विष एवं बिच्छू-विष पर उपयोगी होता है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख है।[270]

क्षोभ (अलसी)

नाम—स.—अतसी, पिच्छिला, उमा, क्षुमा, हि.—अलसी, तीसी, मसीना, बं.—तीसी। म.—जवस, अलशी गु.—अलशी, कर्नाटकी—असगे, ले.—Lini Semina Linam अं.—Lin Seed आदि अलसी के विविध नाम हैं।

गुण

आयुर्वेदिक मत से अलसी मन्दगन्धयुक्त मधुर, बलकारक, किंचित् कफ-वात

कारक, पित्त-नाशक, स्निग्ध, पचने में भारी, गरम, पौष्टिक, कामोद्दीपक, पीठ के दर्द और सूजन को मिटाने वाली है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र की बीमारी और कुष्ठ को नष्ट करती है। नेत्र की ज्योति को हानि पहुँचाती है।

इसका उपयोग फोड़े, सुजाक, पीठ का दर्द, खाँसी, कान की सूजन, गुदा का घाव आदि रोगों पर किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[282]

तृतीय परिच्छेद
धातुज औषधियाँ

प्राचीन काल में आयुर्वेदज्ञों को धातु, उपधातु और अन्य खनिजों, रत्नों, उपरत्नों और मूल्यवान पाषाणों का ज्ञान नहीं था, इसकी शंका की जा सकती है किन्तु रामायण एक आदि काव्य होने के बाद भी इन सबका वर्णन करता है, यह अवश्य ही आश्चर्यजनक बात है। आयुर्वेद के इन मुख्य खनिज द्रव्यों तथा मूल्यवान पाषाणों की चर्चा एक बार नहीं बार-बार इस ग्रन्थ में पढ़ने को मिलती है।

स्वर्ण आदि मूल्यवान धातुओं के विविध प्रकारों का उल्लेख रामायण में उपलब्ध होता है यथा-साधारण-स्वर्ण, तप्त-स्वर्ण, कांतिमान-स्वर्ण, जम्बूनद-स्वर्ण, कांचन-बिन्दु, (स्वर्णप्रवाही) आदि इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय हैं। स्वर्ण के बने हुए पात्र, आभूषण, द्वार, सीढ़ियाँ, स्वर्ण-पात्र, आदि का उल्लेख भी रामायण में स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त चाँदी, (रजत), ताम्र, लौह, चलेन्द (पारद), लोहकिट्ट (मण्डूर), सिन्दूर, गैरिक, मनः शिला, पीतल, नीलांजन, सीसक, आदि का भी स्पष्ट उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है।

वाल्मीकि मुनि को इस बात का भी पूर्ण ज्ञान था कि धातुओं की उत्पत्ति पर्वतों से ही हुआ करती है।[1] एक स्थान पर कवि ने हिमालय पर्वत को ही सभी खनिजों का प्राप्ति-स्थल बताया है।[2] इसके अतिरिक्त रामायण में **'धातु सहस्रजुष्टम्'** कहकर हजारों प्रकार की धातुओं का संकेत किया गया है। जिनके नाम अज्ञात हैं।[3] स्वर्ण की उत्कृष्टता उसके तपने में है। इस बात को स्पष्ट करते हुए कवि ने **'सुनिष्ट तप्नेन सुवर्णेन'** कहा है।

रामायण में धातुओं की तेज वृद्धि के एक निदान पर एक आख्यान है— भगवान शिव तथा पार्वती की रति-क्रीड़ा के फलस्वरूप इनका तेजस्वी स्खलन पृथ्वी न सहन कर सकी तो देवों ने भगवान महेश्वर से प्रार्थना की कि वे इस तेज को गंगा में स्थापित कर दें- (शैल पुन्या महा तेजों गंगायां तेज उत्सृज) गंगा देवी ने दिव्य रूप धारण कर उस तेज को ग्रहण किया, परन्तु गंगा ने थोड़ी ही देर बाद कहा कि वह इस तेज को ग्रहण करने में असमर्थ है—उसका सम्पूर्ण शरीर जल रहा है।[4]

इस पर देवताओं ने गंगा को यह परामर्श दिया कि वह इस तेज को हिमालय के पार्श्व भाग में स्थापित कर दें। देवों की बात सुनकर गंगा ने अपने प्रकाशमान अमित गर्भ को निकाल यथोचित स्थान में रख दिया।

गंगा के गर्भ से जो तेज निकला वह तपाये हुए जम्बूनद नामक स्वर्ण के समान कांतिमान दिखाई देने लगा।

पृथ्वी पर जहाँ वह तेजस्वी गर्भ स्थापित हुआ, वहाँ की भूमि तथा प्रत्येक वस्तु स्वर्णमयी हो गयी। उसके आस-पास का स्थान जन संपन्न प्रभा से प्रकाशित होने वाला रजत हो गया। उस तेज की तीक्ष्णता से ही दूर-वर्ती भू-भाग की वस्तुएँ ताँबे और लोहे के रूप में परिणत हो गयीं। उस तेजस्वी गर्भ का जो मल था, यहाँ राँगा और सीसा। इस प्रकार पृथ्वी पर पड़कर यह तेज नाना प्रकार की धातुओं के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ,[5] इसी कारण अग्नि के समान प्रकाशित होने वाला सुवर्ण का नाम भी 'जातरूप' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[6] क्योंकि उसी समय स्वर्ण का तेजस्वी रूप प्रकट हुआ उस गर्भ के सम्पर्क से सब कुछ स्वर्णमय हो गया।

विविध रत्नों-उपरत्नों का विशद् वर्णन इस प्रकार है

जम्बूनद	-विशेष उच्च कोटिका स्वर्ण	-सु. 3/8
तप्त हाटक	-तपा हुआ सोना	-सु. 3/9
रजत	-चाँदी	-सु. 3/9
हेमजम्बूनद	-स्वर्ण	-सु. 4/30
रुप्य	-चाँदी	-सु. 9/16
कांचन	-सोना	-सु. 7/12
ताम्र	-ताँबा	-सु. 37/38
कांचन बिन्दु	-स्वर्ण बिन्दु	-सु. 44/9
हेम जाल	-सोने की जाली	-सु. 45/9
कालायस	-लौह	-यु. 3/13
गैरिक	-गेरु	-यु. 4/76
तप्त कांचन	-तपा सोना	-यु. 10/5
हेम कोणे	-सोने के डंडे	-उ. 42/34
नीलांजन	-नीला सुरमा	-उ. 67/91
असी	-लौह	-उ. 21/15
हिरण्य	-चाँदी, स्वर्ण	-बा. 37/18
कृष्णायस	-लौह	-बा. 37/19
त्रपु	-राँगा	-बा. 37/19
सीसक	-शीशा	-बा. 37/19
स्वर्ण-प्रतिरूप	-पीतल	-अर. 29/20
मनः शिला	-मेणाशिल	-कि. 26/28

उपरोक्त धातु नामों के अतिरिक्त खनिज मृतिका में गैरिक पाण्डु मृतिका

(अयो. 91/42) आदि मिट्टियों का विवरण भी स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। परन्तु विभिन्न धातुओं के साथ उनकी कृत्रिमता का उल्लेख नहीं है। हाँ, आभूषण रथ, भवन आदि में जहाँ इन धातुओं का उल्लेख है; उनकी कृत्रिमता स्पष्ट है।

रत्नों का उल्लेख करते हुए वाल्मीकि ने हीरक-मुक्ता, वज्रमणि, इन्द्रमणि सामान्य मणि, पद्मराग मणि, पुष्प-राग मणि वैदूर्य-मणि, प्रवाल-मणि, इन्द्रनील मणि, माणिक्य-मणि, महानीलमणि, स्फटिक मणिभुजंग-मणि, नील-मणि, आदि मणियों का उल्लेख बार-बार किया है।

इसके अतिरिक्त रामायण में शंख, शुक्ति, मुक्ता, शुक्ति सामान्य स्फटिक पाषाणों आदि के नाम भी उपलब्ध होते हैं जो स्थान-स्थान पर प्रसंगवश देखे जा सकते हैं :-

वैडूर्य	-नीलम	-सु. 3/8
वज्र	-हीरा	-सु. 3/9
स्फटिक	-स्फटिक मणि	-सु. 3/10
मुक्ता	-मोती	-सु. 3/10
शंख	-शंख	-सु. 7/2
प्रवाल	-मूंगा	-सु. 7/12
इन्द्रनील	-मणि (विशेष)	-सु. 9/17
विद्रुम	-प्रवाल (मूंगा)	-सु. 33/10
कांचन मणि	-दिव्य मणि	-सु. 65/8
शुक्ति	-	-यु. 21/29
कौस्तुभ	-मणि	-यु. 22/21
स्निधा	-मणि	-यु. 75/8
इन्द्रनील	-मणि	-यु. 111/42
		अर. 42/16
मणिवर	-पुखराज	-अर. 29/5
कोयला	-कोयला	-कि. 59/14

यद्यपि रामायण एक आयुर्वेदिक ग्रन्थ नहीं है तथापि इसमें धातु उपधातु, रत्न, तथा प्राणिज-द्रव्यों का नामोल्लेख व्यापक रूप से प्राप्त हुआ है। लंका का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हनुमान जी ने देखा—

स्वर्ण के बने हुए द्वार, नीलम के चबूतरे, हीरे, स्फटिक, मोटे मोती उन चबूतरों पर जड़े हुए माणिक्य, फर्श, दोनों ओर तपाये हुए स्वर्ण के हाथी, उन द्वारों का ऊपरी भाग, चाँदी का स्वच्छ, तथा श्वेत सीढ़ियाँ नीलम की बनी हुई। द्वारों का भीतरी भाग स्फटिक मणि का बना था।[7]

लंका उस समय बहुमूल्य धातुओं, रत्नों आदि से युक्त थी इसका वर्णन कवि ने अनेक स्थलों पर किया है।

हिरण्य (सोना)

स्वर्ण के गुण

सुवर्ण (सोना)-वृंहण, स्निग्ध, रस एवं विपाक में मधुर, त्रिदोष नाशक, शीतवीर्य, किंचित्-कषायरस एवं रसायन होता है।[8]

रस-तरङ्गिणी में उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त शुद्ध स्वर्ण को नेत्र-हितकारी, गर्भधारण, शक्ति वर्धक, हृदय दौर्बल्य में सर्वोत्तम एवं विष-प्रभाव-नाशक माना गया है। स्वर्ण को अन्यान्य औषधियों आदि में मिलाकर स्वर्णलवण (गोल्ड क्लोराइड), स्वर्ण-भस्म इत्यादि रूपों में प्रयुक्त करने से भी अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। स्वर्ण-भस्म क्षय में अति उपयोगी हैं। स्वर्ण मुक्त अवस्था एवं संयुक्त अवस्था दोनों में पाया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में स्वर्ण का निम्न-लिखित स्थलों पर उल्लेख प्राप्त होता है।

जाम्बूनद

विशेष उच्च कोटि का स्वर्ण

इसका उल्लेख करते हुए रामायण में कहा गया है, "स्वर्ण के बने हुए द्वारों से उस नगरी की अपूर्व शोभा हो रही थी। उन सभी द्वारों पर नीलम के चबूतरे बने हुए थे।[9]

तप्त हाटक

तपा हुआ सोना

इसका उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है,—"वे सब द्वार हीरों, स्फटिकों और मोतियों से जड़े गये थे, मणिमय फर्श उनकी शोभा बढ़ा रहे थे, उनके दोनों ओर तपाये हुए स्वर्ण के बने हुए हाथी शोभा पाते थे। उन द्वारों का ऊपरी भाग चाँदी से निर्मित होने के कारण स्वच्छ एवं श्वेत था।[10]

हेम जम्बूनद

स्वर्ण

इस रूप में स्वर्ण का उल्लेख करते हुए रामायण में लिखा है, "तदन्तर जिसके चारों ओर सुवर्ण एवं जम्बूनद का परकोटा था, जिसका ऊपरी भाग बहुमूल्य मोती और मणियों से विभूषित था तथा अत्यन्त काले अगरु एवं चन्दन से जिसकी अर्चना की जाती थी, रावण के अन्तःपुर में हनुमान जी ने प्रवेश किया।[11]

कांचन

स्वर्ण

स्वर्ण का भी वाल्मीकि रामायण में उल्लेख प्राप्त है, "फिर उन्होंने राक्षसराज रावण का उसकी शक्ति के अनुरूप अत्यन्त उत्तम और अनुपम भवन देखा, जो मेघ के समान ऊँचा, सुवर्ण के समान सुन्दर कांति वाला तथा मनोहर था।[12]

कांचन बिन्दु

स्वर्ण जल

स्वर्ण-जल का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है, "......रक्त से रंजित

हुआ उनका वह रक्त-वर्ण का मुख ऐसी शोभा पा रहा था, मानो आकाश में लाल रंग के विशाल कमल को सुवर्णमय जल की बूंदों से सींच दिया गया हो—उस पर सोने का पानी चढ़ा दिया गया हो।[13]

हेमजाल

सोने की जाली

स्वर्ण का उल्लेख करते समय रामायण में सोने की जाली का भी उल्लेख किया गया है,— "उनके घोड़े जुते हुए विशाल रथ सोने की जाली से ढँके हुए थे।"[14]

इनके अतिरिक्त तप्त कांचन,[15] हेमकोणे, हिरण्य,[16] जात-रूप[17] आदि के रूप में भी रामायण में 'हिरण्य' नामक धातुज' औषधि का उल्लेख प्राप्त होता है।

पिङ्गः (स्फटिक) (गोमेद)

वाल्मीकि रामायण में विविध मणियों के मध्य स्फटिक मणि का भी उल्लेख अनेक बार किया गया है।

स्फटिक मणि के गुण

भाव-प्रकाश के अनुसार स्फटिक मणि को हिन्दी में गोमेद मणि, राहुरत्न, जवाहर, बं.—में—गोमेद मणि, तेलगू में गोमेदकं अंग्रेजी में Onya कहते हैं।

गोमेद अर्थात् गाय के मेद यानि गाय की चर्बी के समान वर्ण वाला होता है, इस कारण इसका नाम गोमेद मणि पड़ा। स्वच्छ गो-मूत्र के समान वर्ण वाला, उज्ज्वल (चमकदार) चिकना, समतल, भारी, निर्दल, कोमल और प्रकाशवान, इन आठ लक्षणों से युक्त गोमेद मणि उत्तम होता है। कांति रहित, वजन में हल्का, रूखा, चपटा, परत वाला, प्रभा रहित, काञ्च के समान पीले रंग वाला, ऐसा गोमेद मणि निकृष्ट होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी स्फटिक मणि (पिङ्ग) का यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होत्ता है यथा- '...उनकी सीढ़ियाँ, नीलम की बनी हुई थीं। उन द्वारों के भीतरी भाग स्फटिक मणि के बने हुए और धूल से रहित थे। वे सभी द्वार रमणीय सभा-भवनों से युक्त और सुन्दर थे तथा इतने ऊँचे थे कि आकाश में उठे हुए से जान पड़ते थे"[18]

वज्र (हीरा)

(चन्द्र)

भाव-प्रकाश के मतानुसार हीरक, वज्र, चन्द्र, मणिवर आदि हीरे के संस्कृत नाम हैं। जो हीरा सफेद रङ्ग का होता है, वह ब्राह्मण, लाल रङ्ग का क्षत्रिय, पीले रङ्ग का वैश्य और असित रंग का शूद्र वर्ण का होता है। इस प्रकार हीरा की चार जातियाँ होती हैं।

हीरा एक खनिज, बहुत मूल्यवान् एवं प्रसिद्ध रत्न है। यह रत्न दक्षिण के पूर्व भाग में पिन्नर से सोन तक, मद्रास में कड़ड़ापा, बुंदेलखण्ड के खानों में कहीं-कहीं प्राप्त होता है। ब्राह्मण वर्ग का हीरा रसायन के लिये उपयोगी, सर्वसिद्धियों को देने

वाला होता है। क्षत्रिय वर्ग का हीरा रोगों को नष्ट करने वाला एवं जरा (बुढ़ापा) तथा मृत्यु को दूर करने वाला, वैश्य वर्ण का हीरा धन देने वाला तथा देह को दृढ़ करने वाला और शूद्र वर्ण का हीरा रोगों को नाश करने वाला तथा आयु को स्थिर रखने वाला अर्थात् शरीर में वृद्धावस्था जन्य क्षीणता को नहीं आने देने वाला होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी हीरा (वज्र) का उल्लेख अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है यथा—'वे सब द्वार हीरों, स्फटिकों, और मोतियों से जड़े गये थे।'[19]

इस प्रकार रामायण में हीरा, मोती, मणियों आदि सभी का उल्लेख प्राप्त होता है।

चाँदी Silver

अष्टांग संग्रह के अनुसार चाँदी स्निग्ध, रस में कषाय एवं अम्ल, विपाक में मधुर, सर, वयः स्थापन, शीत-वीर्य, लेखन तथा वात पित्त नाशक होती है।[20]

रसतरङ्गिणी के अनुसार चाँदी शुक्रमेहघ्न, आयुष्य, वयः-स्थापक, वृष्य एवं मेधा-वर्धक भी है। रजत-भस्म को वात-हर, कफ-प्रकोप-नाशक, शिरोविकार-जन्य-भ्रम में लाभकारी एवं गर्भाशय शोधन में अति उत्तम माना गया है।

वाल्मीकि रामायण में भी रजत अर्थात् चाँदी का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है यथा—'उनके दोनों ओर तपाये हुए स्वर्ण से बने हुए हाथी शोभा पाते थे, उन द्वारों का ऊपरी भाग चाँदी से निर्मित होने के कारण स्वच्छ एवं श्वेत था।'

रामायण में और भी स्थलों पर 'रजत' का उल्लेख मिलता है यथा—'उसकी फर्श स्फटिक मणि से बनायी गयी थी, जहाँ बीच-बीच में हाथी के दाँत के द्वारा विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनी हुई थीं। मोती, हीरे, मूँगे, चाँदी और सोने के द्वारा भी उसमें अनेक प्रकार के आकार अंकित किये गये थे।'[21]

इस प्रकार रामायण में चाँदी का भी विविध नामों यथा- रजत, रुप्य, हिरण्य आदि के द्वारा उल्लेख उपलब्ध होता है।

त्रपु (राँगा) तथा सीसा (Tin and Lead)

वाल्मीकि रामायण में राँगा तथा सीसा (धातुओं) का भी उल्लेख प्राप्त होता है। अ. सं. के अनुसार 'राँगा किंचित् तिक्त, लवण, मल का भेदन करने वाला होता है। पाण्डुरोग, कृमिरोग, तथा वायुनाशक होता है। लेखन तथा किंचित् पित्त-कारक भी है। सीसा भी राँगा के समान गुण वाला होता है।'[22]

विधि पूर्वक तैयार की हुई वंग भस्म लघु, शीतल, रुक्ष, मेदोविकार-नाशक, कफ-प्रकोप-जन्य-रोग-शामक, प्रमेह-विकार-नाशक, क्षय-रोग-नाशक, नेत्र-शक्ति-वर्धक एवं शुक्र-वर्धक है। इसके सेवन से कृशकाय व्यक्ति में भी काम-शक्ति, और शारीरिक-बल की वृद्धि होती है।

रसतरङ्गणी के अनुसार सीसे की विधि-पूर्वक बनायी गयी भस्म मधुर, तिक्त, स्निग्ध, उष्ण, गुरु, अग्नि-वर्धक, प्रमेह-नाशक, वात-रोग संहारक,

कफ-प्रकोप-जन्य, व्याधि-नाशक, गुल्म-रोग-नाशक, संग्रहणी तथा अर्श-शामक है।

वाल्मीकि रामायण में भी 'त्रपु' तथा सीसा का उल्लेख है।----उस तेजस्वी गर्भ का जो मल था वही राँगा और सीसा हुआ।'[23] इस प्रकार रामायण में राँगा एवं सीसा का वर्णन प्राप्त होता है।

ताम्र (ताम्बा) Copper

अष्टांग संग्रह के मतानुसार ताँबा किंचित् तिक्त, मधुर, कषाय, लेखन, लघु, रस एवं विपाक में कटु, शीतवीर्य, रोपण तथा कफ-पित्त-नाशक होता है।[25]

ताम्र के उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त रसतङ्गिणी में ताम्र-भस्म वीर्य में उष्ण, अम्ल रस, स्निग्ध, विषहर, पित्त-निःसारक, लेखन, दीपक, कृमि-हर, कुष्ठ-नाशक, कास, श्वास शामक, क्षय-रोग-नाशक, पाण्डु-रोग-हर, ज्वर-नाशक, व्रण-नाशक, रुचि कारक, उदर-रोग-हर, आयुष्य, वामक, विरेचक, शूल-नाशक, अम्ल-पित्त शामक, यकृत-प्लीह-रोग-नाशक, अपस्मार-रोग-हर, विसूचिका तथा वमन रोग निवारक माना गया है।

वाल्मीकि रामायण में भी ताम्र' का उल्लेख प्राप्त होता है यथा—'उस तेज की तीक्ष्णता से ही दूरवर्ती भू-भाग की वस्तुएँ ताँबे और लोहे के रूप में परिणत हो गयीं।'[25]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में ताँबे (ताम्र) का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

लौह (कृष्ण लौह तथा तीक्ष्ण लौह) Iron

अष्टांग संग्रह के मतानुसार कृष्ण-लौह चक्षु के लिये हितकारी, रस में कषाय, मधुर, तिक्त, लेखन, वात-कारक, तथा शीत-वीर्य होता है। कृमि रोग, कुष्ठ-रोग, कफ-विकार, गात्र शैथिल्य, पालित्य, पाण्डुरोग, शोथ एवं शोष को नष्ट करता है। तीक्ष्ण लौह भी इन्हीं गुणों वाला होता है। विशेष रूप से विकासी तथा दुर्जर होता है।[26]

रसतरङ्गिणी में कहा गया है कि लौह का सेवन जीर्ण, अतिसार, नवीन-गण्ड-माला-रोग, वृक्क-शोथ, स्त्रियों में रजोरोध, हृदय-रोग, विशम-ज्वर, फिरंग-जन्य-पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, योषापस्मार, श्वेत-प्रदर, मधुमेह, मांसतान (डिप्थीरिया) विविध प्रकार के क्षय, ताण्डव, सूतिका-ज्वर, गलक्षत, आम-वात, यकृत-रोग, भगन्दर, पीनस और अम्ल-पित्त आदि रोगों को नष्ट करता है। किसी रोग शांति के पश्चात् उत्पन्न दुर्बलता दूर करने में भी लौह विशेष उपयोगी है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में लौह के तीन उल्लिखित भेद हैं। 1. मुण्डलौह या कृष्ण लौह 2. तीक्ष्णलौह 3. कांत लौह। इन तीनों में अंतः प्रयोग में कांत लौह सर्वोतम और कृष्ण लौह निकृष्ट माना गया है।

परन्तु शास्त्रोल्लिखित कांतलौह अति दुर्लभता से ही प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में भी लौह धातु का उल्लेख प्राप्त होता है।

कालायस

इसका उल्लेख इस प्रकार है—'जिन्हें वीर-राक्षस गणों ने बनाया है, जो काले

लोहे की बनी हुई, भयंकर और तीखी हैं तथा जिनका अच्छी तरह संस्कार किया गया है, ऐसी सैकड़ों शतघ्नियाँ (लोहे के काँटों से भरी हुई चार हाथ लंबी गदाएँ) उन दरवाजों पर सजाकर रखी गयी हैं।[27]

असी

इसका उल्लेख इस प्रकार है—'कुछ पापी असिपत्र वन में जिसके पत्ते तलवार की धार के समान तीखे थे, विदीर्ण किये जा रहे थे।'[28]

कृष्णायस

इसका उल्लेख भी रामायण में इस प्रकार प्राप्त होता है। '---- उस तेज की तीक्ष्णता से ही दूरवर्ती भू-भाग की वस्तुएँ ताँबे और लोहे के रूप में परिणत हो गयीं।'[29]

इस प्रकार रामायण में लौह धातु का विविध नामों से उल्लेख होता है।

गेरु

अष्टांग संग्रह के अनुसार गैरिक या गेरु—विशद्, स्निग्ध, कषाय, मधुर तथा शीत-वीर्य होता है।[30]

गैरिक के दो भेद हैं—स्वर्ण गैरिक एवं पाषाण गैरिक। स्वर्ण गैरिक उत्तम, स्निग्ध एवं मृसण होता है, जबकि पाषाण गैरिक अवर तथा रुक्ष। स्वर्ण गैरिक दाह-नाशक, पित्त—ज्वर-नाशक, व्रण—रोपक, हिक्का—वमन— नाशक, रक्त—पित्त तथा रक्त—प्रदर में लाभ—प्रद भी होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी गैरिक का उल्लेख प्राप्त होता है, "वह पर्वतराज गैरिक आदि धातुओं से विभूषित हो, बड़ी शोभा पा रहा था।"[31]

अञ्जन

अष्टांग संग्रह के अनुसार अञ्जन (सुरमा) कषाय, मधुर, शीत वीर्य, लेखन, स्निग्ध होता है। रक्त-पित्त, विष, वमन एवं हिक्का को नष्ट करता है। दृष्टि को निर्मल करता है। इन अंजनों में स्रोतांजन श्रेष्ठ होता है। सौवीरांजन (श्वेत सुरमा) इससे कम उत्तम (काला) होता है। रसाञ्जन (रसोत-दारुहरिद्रा-विकार) कफघ्न, तिक्त, कटु, छेदनीय तथा किंचित् उष्णवीर्य होता है।[32]

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है यथा-नीलाञ्जन।

मनः शिला

अ. सं. के अनुसार मैनशिल कफ-नाशक, रस में तिक्त, कटु, लेखन तथा सर होता है। मैनसिल गुणों में (Realger $As_2 s_2$) गुणों में स्निग्ध, उष्ण एवं गुरु, बिबन्धनाशक, कण्डू-नाशक, जीवाणु-नाशक एवं विष-नाशक भी है।[33]

वाल्मीकि रामायण में भी मनः शिला (मैनशिला) का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा—'पहले तो वे सब लोग—अङ्गराग, गोरोचन एवं मैनासिल आदि सामग्री लेकर वहाँ उपस्थित हुए,'[35]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में सभी धातुओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

मणियाँ

वाल्मीकि रामायण में विविध मणियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

अष्टांग संग्रह के अनुसार पद्मराग (माणिक्य), महानील (नीलम), पुष्पराग (पुखराज), विदूरक (वैदूर्य), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूंगा), वज्र (हीरा), इन्द्रवैदूर्य (उतम कोटि का वैदूर्य), स्फटिक (वैक्रान्त) आदि मणियाँ रत्न हैं। ये सब सर, शीत, वीर्य, रस में कषाय एवं मधुर, लेखन तथा चक्षु के लिये हितकारी होते हैं। इनको धारण करने से पाप, अलक्ष्मी तथा विष का नाश होता है। ये धन, आयुष्य, ओज, हर्ष, उत्साह, को बढ़ाने वाले तथा मंगलकारी होते हैं। नवरत्नों के विभिन्न रत्न विभिन्न ग्रहों के प्रतीक माने जाते हैं। ज्योतिष शास्त्र में रोगोत्पत्ति ग्रह दुष्टि के कारण मानी जाती है अतः उन ग्रहों के शमनार्थ उनके रत्न-प्रयोग का विधान वर्णित है। उपर्युक्त सभी रत्नों की भस्म वृष्य, आयुष्य, बल-वर्धक, मेधा-वर्धक एवं रसायन होती है।[35]

वाल्मीकि रामायण में भी विविध मणियों का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है-

वैडूर्य

भाव प्रकाश के अनुसार 'वैडूर्य मणि' को संस्कृत में 'वैदूर्य दूरजरत्न' तथा 'केतुग्रहवल्लभ' कहते हैं इसका हिन्दी नाम-वैडूर्यमणि, लहसुनिया, बं.—नाम-वैदूर्य। म. —नाम-वैडूर्य्य रत्न गुजराती नाम-लसणियों एवं अंग्रेजी नाम Cat's eye है।

जिसका रंग कालापन युक्त सफेद हो, समतल अर्थात् टेढ़ा-मेढ़ा न हो, निर्मल, वजन में भारी, तेजवान और जिसके अन्दर सफेद रंग की रेखा दिखाई देती है ऐसा वैदूर्य-मणि उत्तम होता है और जो काले रंग का हो, कांति हीन, चपटा, हल्का, खुरदरा और जिसके अन्दर लाल रंग की रेखा दिखती हो ऐसा वैदूर्य मणि निकृष्ट होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी लंकापुरी के वर्णन में नीलम 'वैदूर्यमणि' का नामोल्लेख आया है।[36]

वज्र

वज्र अर्थात् 'हीरा' का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है, इसका वर्णन भी पूर्व में किया जा चुका है।[37]

स्फटिक

स्फटिक मणि का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है, इसका वर्णन भी पूर्व में किया जा चुका है।

मोती

नाम—संस्कृत मौक्तिक, शौक्तिक, मुक्ता तथा मुक्ताफल। हि.—मोती ते.—मोव्यालु, मोत्पालु। बं.—मुक्ता। म., गु.—मोती। क.—मौक्तिक, फा.—मरबारिद, मूर्बारोद अ.—लोलो, लू लू । अं.—Pearl ले.—Margarita आदि मोती के विविध नाम हैं।

सीप, शङ्ख, हाथी, सूअर, साँप, मछली, मेढ़क और बाँस ये आठ मोतियों के निकलने के स्थान मोतियों के विषय में अभिज्ञ लोगों ने बताये हैं।

मोती शीतल, वीर्य-वर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, बल तथा पुष्टि को देने

वाला होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी लंकापुरी के वर्णन में मुक्ता-मोती का नामोल्लेख प्राप्त होता है।[38]

शंख

नाम—सं.—शंख, समुद्रज, कम्बु, सुनाद तथा पावनध्वनि, हि.—संख, शंख, बं.—शंख सांक, द्रा.—शंख पं. क. मा. गु.—शंख, ते.—शंखसु, म.—शंखो, अं.—Conch (कोंच) आदि शंख के विविध नाम हैं।

शंख—एक प्रसिद्ध समुद्री कोशस्थ जीव का अस्थिवत् रक्षक है। जिस प्रकार देशी घोंघे सितुहे के जीव कोश के अंदर रहते हैं, उसी प्रकार यह भी रहता है। शंख को पूजा करते समय बजाते हैं। इसकी आवाज पवित्र समझी जाती है, जिससे देवता लोग प्रसन्न होते हैं। दक्षिणावर्त एवं वामावर्त इन भेदों से शंख दो प्रकार का होता है। इसमें दक्षिणावर्त शंख दुष्प्राप्य है। वामावर्त शंख बहुत मिलता है इसी को औषधि के काम में लेते हैं। जो शंख चिक्कन, भारी और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हो वह उत्तम होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी शंख का उल्लेख उपलब्ध होता है।[39]

प्रवाल (मूंगा) (विद्रुम)

नाम—सं.—प्रवाल एवं विद्रुम, हि.—मूंगा, बं.—पला, मुङ्गा, म.—पोवंले, गु.—पखाला, परवाली, क.—अवलेहवत। तै.—प्रवालक, पागाडालु, पगडमु। फा. —मिरजान, मिरगां, मिरजां, मरजान् अरबी—एहेम, खुस्सुद, कोरल, वसद। पं. मा. मूंगा। कं.—हवलवु। द्रा.—पवलं अं.—Red Coral ले.—Coralium rubrum आदि मूंगे के विविध नाम हैं।

मूंगे का वृक्ष झाड़दार होता है और इसकी माला बनाकर गले में पहनते हैं। जो मूंगा अत्यन्त लाल हो और अपने रंग को न बदले यह उत्तम अन्यथा त्याज्य है।

वाल्मीकि रामायण में भी प्रवाल एवं विद्रुम दोनों ही नामों से इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[40]

शुक्ति सीप

नाम—शुक्ति, मुक्ता शुक्ति, मुक्तागृहा, बं.—झिनुक, पं.—सीप, हि.—सीप, शीप, मोती की सीप आदि शुक्ति के विविध नाम हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी शुक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है।[41]

मणिवर (पुखराज)

नाम—सं.—पुष्पराग, मंजुमणि, तथा वाचस्पति वल्लभ हि.—पुखराज, पोखराज आदि विविध नाम हैं।

जो वजन में भारी, स्निग्ध, चिकना, निर्मल, मोटा, समतल, कोमल कर्कशता-रहित और कर्णिकार के फूल के समान पीले रंग का हो, ऐसा पुखराज श्रेष्ठ होता है और जो कांति-हीन, खुरदुरा, रूखा, काले-पीले मिश्रित रंग का, ऊँचा, नीचा, टेढ़ा, मेढ़ा,

कालापन युक्त, भूरे रंग का और पाण्डु-वर्ण का हो ऐसा पुखराज निकृष्ट होता है।

वाल्मीकि रामायण में पुखराज का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त इन्द्रनील, महानील, काञ्चनमणि, कौस्तुभ-मणि, स्निधा मणि आदि मणियों का भी रामायण में नामोल्लेख प्राप्त होता है।

गृह शांति हेतु विशिष्ट रत्न, दिन एवं विशिष्ट धातु

गृह	**रत्न**	**दिन**	**धातु**
सूर्य	माणिक्य	रविवार	स्वर्ण
चन्द्र	मोती	सोमवार	चाँदी
मंगल	मूंगा	मंगलवार	स्वर्ण
बुद्ध	पन्ना	बुद्धवार	स्वर्ण, काँसा
गुरु	पुखराज	गुरुवार	चाँदी
शुक्र	हीरा	शुक्रवार	चाँदी
शनि	नीलम	शनिवार	लोहा, सीसा
राहु	गोमेद	अमावस्या	पञ्चधातु
केतु	वैडूर्य	पूर्णिमा	पञ्चधातु (सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, लोहा (समभाग)

इस प्रकार रामायण में सभी धातु एवं मणियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

दिव्य-औषधियाँ

वाल्मीकि रामायण में कुछ स्थलों पर कुछ दिव्य औषधियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है यथा–

1. विशल्यकरणी।[42]
2. बला।[43]
3. अतिबला।[43]
4. गजकन्द।[44]
5. संजीवकरणी (संजीवनी)[42]
6. संधानी।[42]
7. सुवर्णकरणी।[42]
8. सोमलता।[45]
9. चन्द्र।[46]
10. द्रोण।[46]

उपरोक्त दिव्य औषधियों का रामायण में नामोल्लेख आया है। सम्भव है वे औषधियाँ आज उपलब्ध न भी हों, फिर भी उस समय उनकी प्रभावोत्पादकता, दिव्यता अवश्य असंदिग्ध थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में सभी प्रकार की औषधियों यथा भौतिक एवं प्राकृतिक, वानस्पत्य, धातुज, मणि-रत्न इत्यादि तथा दिव्य औषधियों एवं सुरा आदि का वर्णन प्राप्त होता है, जो चकित्साजगत् का एक अनिवार्य अंग है।

आवश्यक टिप्पणी--इस अध्याय में वर्णित सभी औषधियों का प्रयोग एवं सेवन योग्य 'वैद्य' अथवा चिकित्सक के परामर्श से ही करें।

संदर्भ

प्रथम परिच्छेद

1. इत्थं च नानौषध भूतं जगति किंचिद
   द्रव्यमस्ति विविधार्थं प्रयोगवशात्। अ. सं. सू. 17/6
2. इह हि द्रव्यं पाञ्चभौतिकम्।
   तस्याधिष्ठानं पृथ्वी योनिरुदकं खानिलानलसमवायन्निर्वृतिविशेषौ....। अ. सं. सू. 17/3
3. तत्र व्यक्तो रसः। अ. सं. सू. 17/4
4. एकमुक्तास्ततो देवाः प्रत्यूचुर्वृषभध्वजम्।
   यत्तेजः क्षुभितं ह्यद्य तद्धरा धारयिष्यति।। बा. 36/15
5. एवमुक्तः सुरपतिः प्रमुमोच महाबलः।
   तेजसा पृथ्वी येन व्याप्ता सगिरि कानना।। बा. 36/16
6. एवमुक्त्वा सुरान् सर्वाञ्शशाप पृथिवीमपि।
   अवने नैकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि।। बा. 36/23
   न च पुत्र कृतां प्रीतिं मत्क्रोधकलुषीकृता।
   प्राप्स्यसि त्वं सुदुर्मेधो मम पुत्रमनिच्छती।। बा. 36/24
7. समुद्रमालिनीं सर्वां पृथिवी मनुगच्छथ।
   एकैकं योजनं पुत्रा विस्तारमभिगच्छत।। बा. 39/14
8. शूलैरशनिकल्पैश्च हलैश्चापि सुदारुणैः।
   भिद्यमाना वसुमती ननाद रघुनन्दन।। बा. 39/19
9. यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः।
   महिषी माधवस्यैषः स एव भगवान प्रभुः।। बा. 40/2
10. चन्द्रादित्यौ नभश्चैव ग्रहा रात्र्यहनी दिशः।
    जगच्च पृथिवी चेयं सगन्धर्वाः सराक्षसाः।। अयो. 11/14
11. शैलाः सर्वे समुद्राश्च राजा वरुण एव च।
    द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी वायुश्च सचराचरः।। अयो. 25/13
12. मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी।। अ. 64/27
13. मनसा, कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
    तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।। उ. 97/15
    यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च।
    तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति।। उ. 97/16
14. तथा शपश्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत् तदद्भुतम्।
    भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्।। उ. 97/17
    तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।

स्वागतेनाभिनन्धैनामासने चोपवेशयत्।। उ. 97/19

15. किमाह सीता वैदेही ब्रूही सौम्य पुनः पुनः।
पुरासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा।। सु. 66/8
16. बा. 17/13
17. बा. 29/6
18. बा. 36/18
19. बा. 27/1-2
20. बा. 37/7
21. बा. 37/10-11
22 बा. 37/12
23. बा. 37/13-14
24. बा. 37/15-16
25. बा. 37/30
26. बा. 49/1
27. बा. 49/5
28. बा. 56/14
29. अयो. 25/24
30. अर. 11/13-15
31. अ. 12/17
32. सु. 32/14
33. सु. 53/25-28
34. यु. 27/20
35. यु. 18/10-11
36. उ. 70/1-3
37. उ. 70/6-7
38. उ. 76/5-6
39. बा. 32/14-16
40. बा. 32/17-21
41. बा. 32/22-23
42. बा. 33/2-3
43. बा. 33/23-24
44. बा. 36/18
45. बा. 47/5-8
46. अयो. 25/13
47. अर. 12/18
48. अर. 63/27

49. सु. 1/126
50. सु. 13/63
51. सु. 13/65
52. सु. 51/15
53. यु. 116/28
54. उ. 35/48-65
55. कि. 42/33
56. बा. 17/10
57. अयो. 25/23
58. अर. 12/17
59. कि. 42/39, 40
60. सु. 1/8
61. यु. 105/1-5
62. यु. 105/6
63. यु. 105/7
64. यु. 105/16-21
65. यु. 105/22-27
66. यु. 105/28-29
67. यु. 105/31
68. उ. 23/22
69. उ. 23 घ/16
70. उ. 23 घ/18
70. उ. 83/7

द्वितीय परिच्छेद

1. अयो. 14/28, 17/1-2, 3-6
2. अयो. 67/16
3. अयो. 71/28
4. अयो. 76/17
5. अयो. 76/28
6. अयो. 88/6
7. अयो. 91/83
8. अयो. 94/24
9. अयो. 114/20, 22
10. अर. 35/22

11. कि. 33/7
12. कि. 50/7
13. सु. 9/27
14. सु. 29/3
15. यु. 21/4
16. यु. 75/8
17. यु. 111/105
18. उ. 42/2
19. अर. 60/14
20. कि. 1/80
21. कि. 27/10
22. कि. 28/4, 9, 34, 41
23. कि. 30/25
24. यु. 4/80
25. यु. 22/56
26. यु. 39/8
27. उ. 26/5
28. उ. 42/4
29. अर. 60/21
30. यु. 22/59
31. उ. 42/5
32. बिल्वा मार्दङ्गिका आसत्र शम्याग्राहा बिभीतकाः।
    अश्वत्था नर्तकाश्चासन् भरद्वाजस्य तेजसा।। अयो. 91/49
33. जम्बूप्रियाल पनसा न्यग्रोधप्लक्ष तिन्दुकाः।
    अश्वत्थाः कर्णिकाराश्च चूताश्चचान्ये च पादपाः।। अर. 73/3
34. पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः।
    विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातु विभूषिताः।। अयो. 94/6,
35. अर. 35/23, लंका के समुद्रतट पर।
36. क्षुधामारं तृषामारं, मगोतामनपत्यताम्।
    अपामार्ग त्वया वयं, सर्व तदपमृज्महे।। 1 ।।
    तृषमारं क्षुधामारं, मारमथो अक्षिपराजयम्।
    अपामार्ग त्वया वयं, सर्व तदपमृज्महे।। 2 ।।
37. वनौषधि चन्द्रोदय (1-5) पेज नं. 45
38. वनौषधि चन्द्रोदय (1-5) पेज नं. 45
39. वनौषधि चन्द्रोदय (1-5) पेज नं. 45
40. चम्पकाशोकपुंनागमन्दार तरुभिस्तथा।

चूतपाटललोध्रैश्च प्रियङ्ग्यर्जुनकेतकैः।। उ. 26/5

41. दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दार कृत मूर्धजा।
दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्य पुष्पाविभूषिता।। उ. 26/15

42. वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्। उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम्।। बा. 5/12

43. आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत् तु कः।
यश्चैनं पयसा सिंचेन्नैवास्य मधुरो भवेत्।। अयो. 35/16

44. उद्यानाम्रवणोपेतान् सम्पन्न सलिलाशयान्।
तुष्टपुष्टजनाकीर्णान् गोकुलाकुलसेवितान्।। अयो. 50/9

45. कश्चिदाम्रवणं छित्वा पलाशांश्च निषिश्चति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे।। अयो. 63/8

46. आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः।। अयो. 94/8

47. ....अनेकवर्णं पवनावधूतं
भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम्।। कि. 28/19)

48. ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा।। बा. 3/6

49. तस्मिन बिल्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः।
आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्च फलभूषिताः।। अयो. 91/30

50. काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्र धन्वन बीजकैः।। अयो. 94/9

51. शिंशपाऽऽमलकीजम्वूर्याश्चान्याः कानने लताः।
मालती मल्लिका जातिर्याश्चान्याः कानने लताः। ....अयो. 91/51

52. अंकोलांश्च करंजाश्च प्लक्षन्यग्रोध पादपान्।
जम्वूकामलकान् नीपान् भंजन्ति स्म प्लवंगमा।। यु. 4/73

53. औदुम्बरीं बृसीमन्यः स्वस्तिकेचित् तदावदन्।
आयुष्यमपरे प्राहुर्मुदा तत्र महर्षयः।। बा. 4/25

54. तस्मिन् बिल्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः।
आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्चफलभूषिताः।। अयो. 91/30

55. आम्रजम्बवसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वन्तिन्दुकवेणुभिः।। अयो. 94/8

56. अर. 11/74, 15/16 18, 60/21, 73/3, यु. 31/20, उ. 26/6, 42/3

57. तामदुःखोचितां दृष्ट्वां पतितां कदली मिव।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्। अयो. 20/33

58. श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा।
सीता प्रवेपितोद्वेगात् प्रवाते कदली यथा।। अयो. 2/15

59. कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः।
समाश्रयन् मंदगतिं सीतासंदर्शनं ततः।। अर. 42/23

60. अर. 25/13, 47/49, 62/4, कि. 13/14, 32/6, उ. 42/4 सु. 58/56

61. तस्मिन बिल्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः।
आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्च फलभूषिताः।। अयो. 91/30

62. मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः।
शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः।। कि. 28/8

63. सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम्।
कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनी।। अयो. 95/14

64. जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः।। अर. 16/26

65. अयो. 64/70, अर. 18/9, 52/35, 72/12, कि. 43/22, सु. 19/15, 57/1, यु. 74/43, उ. 7/48 अर. 50/26 सु. 58/57, अर. 60/26।

66. क्वचित् कुमुदखण्डैश्च कुडालैरुपशोभिताम्।
नाना पुष्परजो ध्वसतां समदामिव च क्वचित्।। अयो. 50/21

67. सुप्तैकहंसं कुमुदैरूपेतं
महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।
घनैर्विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं
तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम्।। कि. 30/48

68. सु. 57/2, यु. 4/85

69. द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनी।
वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम्।। अयो. 28/22

70. हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे।। अयो. 61/17

71. अयो. 30/12, अर. 15/18,22, सु. 33/28, उ. 66/7, अयो. 94/24, अर. 26/33, यु. 88/70, उ. 109/4, अयो. 99/6, 19 अर. 60/7 उ. 1/15

72. पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः।। अयो. 94/6

73. चूतैरशोकैस्तिलकैः केतकैरपि चम्पकैः।
पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तरुभिरावृताः।। अर. 15/17

74. (1) अर. 60/22, कि. 27/17, 18, कि. 49/11, यु. 4/78, (2) अर. 75/10, 24, कि. 28/8, 9, 28, सु. 1/211 उ. 16/5 (3) कि. 1/81 कि. 42/8 सु. 2/9

75. ततोऽस्त्राणि महातेजा विश्वामित्रो मुमोच ह।
तैस्तै यवनकाम्बोजा बर्बराश्चाकुलीकृताः। बा. 54/23

76. जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः।। अर. 16/26

77. अयो. 91/72
सुंदर 7/9, 7/14
78. शक्यमम्बर मारुह्य मेघसोपान पंक्तिभिः।
कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तु दिवाकरः।। कि. 28/4
79. कच्चिद् बाष्पाभिसंरुद्धान् वर्षागमसमुत्सुकान्।
कुटजान् पश्य सौमित्रे पुष्पितान् गिरिसानुषु।
ममशोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान् स्थितान्। कि. 28/14
80. कि. 30/25, यु. 4/93, सु. 2/9, यु. 23/56
81. अस्ति कच्चित्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्।। अर. 60/12
82. अर. 73/4, कि. 27/10, कि. 28/18, 34 42, उ. 26/4, 42/5
83. आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत् तु कः।
यश्चैनं पयसा सिंचेन्नैवास्य मधुरो भवेत्।। अयो. 35/16
84. अभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च।
न हि निम्बात् स्रवेत क्षौद्रं लोके निगदितं वचः।। अयो. 35/17
85. यु. 22/59
86. मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा।
अशोकैः सप्तपर्णैश्च कतकैरतिमुक्तकैः।। अर. 75/24
87. असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः।
दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु।। कि. 30/62
88. कि. 49/17, सु. 14/36, 15/9, यु. 22/57, 39/3, 42/24
89. कुसुमापचये व्यग्रा पादपानव्यवर्तत।
कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा।। अर. 42/31
90. अशोक शोकापनुद शोकोपहृतचेतनम्।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम्।। अर. 60/17
91. अर. 15/17
92. अर. 62/3
93. अर. 73/5
94. अर. 73/16, 24, कि. 1/59, 16/29, 27/17, सु. 10/14, सु. 14/3, सु. 15/7
95. आम्रजम्ब्वसनैर्लोधैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः।। अयो. 94/8
96. पुष्पितांश्चासनान् दृष्टवां कांचनानिव निर्मलान्।
कथं सारमते बाला पश्यन्ती माम पश्यती।। कि. 30/8
97. कि. 30/62, 30, 56, सु. 2/10, उ. 42/3
98. यदा नु खलु दुर्बुद्धि भरतः स्वयमागतः।
स एष हि महाकायः कोविदार ध्वजो रथे।। अयो. 84/3)

99. महद्भि कांचनैर्वृक्षैर्वृता बालकिसंनिभैः।
जातरुपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथ पङ्कजैः।। कि. 50/29

100. अयो. 96/18, कि. 1/80, 30/62, सु. 2/10, यु. 4/80, उ. 4/25. असनाः

101 असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः।
दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु।। कि. 30/62

102. द्रुःमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि।
वने व्याकुल शाखाग्रस्तेन दुःखमतो वनम्।। अयो. 28/22

103. अयो. 30/12, अर. 15/18, 15/22

104. सालैस्तालैतमालैश्च खजूरैः पनसैद्रुमैः।
नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुन्नागैश्चोपशोभिताः।। अर. 15/16

105. अर. 16/17, सु. 2/9

106. चन्दनागुरुनिर्यासान् सरलं पद्मकं तथा।
देवदारुणिचाहृत्यक्षेपयन्तितथापरे।। अयो. 76/16

107. कोयष्टिभिश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीरकैः।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्नादितं तद् वनं महत्।। अर. 75/12

108. शिंशपाऽऽमलकी जम्बूर्याश्चान्याः कानने लताः।
मालतीमल्लिका जातिर्याश्चान्याः कानने लताः।
प्रमदाविग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन्।। अयो. 91/51

109. अगुरुणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च ।
तक्कोलानां च जात्यानां फलिनां च सुगन्धिनाम् ।। अर. 35/22

110. चन्दनागुरुसम्पृक्तो धूपसम्मूर्च्छितोऽम्लः।
प्रवाति पवनः श्रीमान् किं नु नाद्य यथा पुरा।। अयो. 71/28

111. चन्दनागुरुनिर्यासान् सरलं पद्मकं तथा।
देवदारुणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे।। अयो. 76/16

112.

1. अयो. 80/14 2. अयो. 88/6
3. अयो. 91/83 4. अयो. 99/35
5. अयो. 91/78 6. अयो. 114/20, 22
7. अर. 15/18 8. अर. 35/21
9. अर. 60/22 10. अर. 63/8
11. कि. 1/17 12. कि. 1/82
13. कि. 15/18 14. कि. 35/14
15. कि. 27/17 16. कि. 27/84
17. कि. 28/6 18. कि. 32/7
19. कि. 41/14 20. कि. 41/27
21. कि. 46/17 22. कि. 50/53

23. सु. 4/30
24. सु. 6/11
25. सु. 9/18
26. सु. 10/19
27. सु. 11/32, 33
28. सु. 14/44
29. सु. 29/3
30. यु. 26/4
31. यु. 31/43
32. यु. 36/23
33. यु. 60/34
34. यु. 75/8
35. यु. 111/105, 113
36. यु. 121/2
37. उ. 26/25
38. उ. 32/36, 43
39. उ. 42/2

113. आम्रजम्बवसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः।। अयो. 94/8

114. यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनदसमप्रभा।
प्रियां यदि विजानासि निः शङ्क कथयस्व मे।। अर. 60/19

115. अर. 73/3, कि. 28/19, 30 यु. 47/3
अयो. 91/41 उ. 42/5

116. बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेभ्युदिते सूर्ये नदद्भि : क्रौञ्चसारसैः।। अर. 16/16

117. ततः सरलतालाश्च तिलकाः सतमालाकाः।
प्रहृष्टाः तत्र सम्पेतुः कुब्जा भूत्वाथ वामनाः।। अयो. 91/50

118. अयो. 99/19 कि. 42/12
अर.15/16 कि. 50/25
अर. 35/13, 23 यु. 39/3
कि. 37/25 उ. 101/15
कि. 40/56

119. सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम्।
विशालां मृदुभिस्तीर्णां कुशैर्वेदिभिवाध्वरे।। अयो. 99/19

120. कदल्यटविसंशोभे नारिकेशोपशोभितम्।
सालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्च सुपुष्पितैः। अर. 35/13

121. अयो. 91/50, अर. 15/16, 25/32, 29/14, 46/20, 60/18, कि. 31/14, 40/56, कि. 40/76, 42/46, 50/25, सु. 36/34, 56/34, 69/11, यु. 5/14, 22/56, 59, 39/3, 65/39, उ. 105/15

122. शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां व पुष्मताम्।
अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल।। उ. 91/19

123. ततस्तिलोदनं भुक्त्वा पुनः पुनरधः शिराः।
तैलेनाभ्यक्त सर्वाङ्गस्तैलमेवान्वगाहत।। अयो. 69/10

124. बा. 71/24, सु. 21/26, 46/37, यु. 59/137, उ. 22/20

125. हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः।
पक्षा नीलांग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः।। उ. 18/33

126. प्रणष्ट जनसम्बाधं क्षेत्रारामविवर्जितम्।
विषमं च प्रतापं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति।। अयो. 52/98

127. प्रसूतं कलमक्षेत्रं वर्षेणेव शतक्रतुः।
तदाह्लाननिमित्तं वालिनो हेममालिनः।। कि. 14/16

128. अयो. 20/17, 52/101, अर. 35/24, कि. 30/47, कि. 30/53, यु. 4/91, 5/11, उ. 7/3, 84/8, 101/2 ।

129. यथास्यः पुरुषः कश्चित् पलाशैर्मोहितो भवेत्।
एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम्। अयो. 63/13

130. कश्चिदाम्रवणं छित्वा पलाशांश्च निषिंचति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे।। अयो. 63/8
अन्य स्थल—बा. 14/22, अयो. 56/6, अर. 15/17, कि. 1/75, 81, सु. 15/7, यु. 40/14, 45/9, 54/32, 58/28, 67/29, 73/59, 75/26, 80/34, 88/71, 90/37, 103/7 ।

131. अहंहि नैवास्तरणानि न स्रजो
न चन्दनं नांजनपानं भोजनम्।
न किंचिदिच्छामि न चेह जीवनं।
न चेदितो गच्छति राघवो वनम्।। अयो. 9/64

132. दिव्यचन्दन लिप्ताङ्गी मन्दारकृत मूर्धजा।
दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्यपुष्प विभूषिता।। उ. 26/15

133. चम्पकाशोकपुंनागमधूकपनसासनैः।
शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्वलन प्रभैः।। उ. 42/3

134. अक्षतं जातरूपं च प्रियङ्गु मधुसर्पिषी।
दधि-चर्म च वैयाघ्रं परार्ध्ये चाप्युपानहौ।। कि. 26/27

135. प्रियङ्गून् गन्धपूर्णाश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा।
असनान कोविदाराश्च करवीरांश्च पुष्पितान्।। सु. 2/10

136. उ. 26/5, 42/5................. ।

137. तां नीलकण्ठी बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम्। सु. 15/29

138. तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठं,
स्वक्षिभु केशान्त मरालपक्ष्म।.........सु. 29/7

139. सिंह व्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम।
धवाश्वकर्ण ककुभैर्बिल्वतिन्दुक पाटलैः।। बा. 24/15

140. पश्य भल्लातकान् बिल्वान् नरैरनुपसेवितान्।
फलपुष्पैश्वनतान् नूनं शक्ष्यामः जीवितुम्।। अयो. 56/7

141. अयो. 91/30, 49, 94/8-10, अर. 11/74.......... ।

142\. प्रमोहानन्तसत्तवेन संतापौषधिवेणुना।
आक्रान्तो दुःखशैलेन महता कैकेयी सुताः। अयो. 85/20

143\. आम्रजम्बवसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुक वेणुभिः।। अयो. 94/8

144\. कि. 30/50, सु. 56/31, यु. 22/56

145\. मुचुकुन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु।
केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः।। कि. 1/81

146\. मालती कुन्दगुल्मैश्च सिन्दुवारैः शिरीषकैः।
कदम्बार्जुनसर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभिताम्।। कि. 27/10

147\. बकुलानथ पुन्नागांश्चन्दनान् केतकांस्तथा।
पृच्छन् रामो वने भ्रान्त उन्मत्त इव लक्ष्यते।। अर. 60/22

148\. तिलकाशोक पुंनाग बकुलोद्दालकाशिनीम्।। अर. 75/16
रम्योपवन सम्बाधां पदमसम्पीडितोदकाम्।

149\. कि. 1/78 सु. 15/44 उ. 26/4
कि. 27/18 यु. 4/79 उ. 42/5
कि. 42/7 यु. 22/59 उ. 101/15
सु. 14/43 यु. 39/3

150\. अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल।। उ. 91/9
चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च।

151\. अशोक वनिकाचेयं दृढं रम्या दुरात्मनः।
चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता।। सु. 14/43

152\. चन्दनागुरुचूतैश्च तुङ्ग कालेयकैरपि।
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम्।। उ. 42/2

153\. अयो. 88/6 अर. 15/18 कि. 1/82
अयो. 91/83 अर. 35/21 कि. 15/18
अयो. 99/35 अर. 60/22 कि. 35/14
अयो. 114/20, 22 अर. 63/8 कि. 1/17

154\. भरतः क्षिप्रमागच्छत् सुपरिश्रान्तवाहनः।
वनं च समतीत्याशु शर्वर्यामरुणोदये।। अयो. 71/17

155\. स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पर्णासैर्लकुचैरपि।
धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः।। अर. 15/18
शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम्।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा।। अर. 15/22

156\. केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपाः धवाः।। कि. 1/81

157\. सुपुष्पिताग्रान् रुचिरांस्तरुणाङ्कुरपल्लवान्।
तामारुह्य महावेगःशिंशपां पर्णसंवृताम्।। सु. 14/42

158. 31/17 सु. 58/55, 62, 64
सु. 42/19, यु. 4/80
सु. 56/1

159. कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनोद्रुमाः।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया।। अयो. 30/12

160. शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम्।
कुशकाश शरैः पर्णैः सुपरिच्छादिताम् तथा। अर. 15/22

161. उ. 35/22

162. घृतं श्वेतानि माल्यानि समिधश्चैव सर्षपान्।
उपसम्पादयामास कौसल्या परमाङ्गना।। अयो. 25/28

163. सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता।। अयो. 20/32

164. एक साले स्थाणुमतीं विनते गोमतीं नदीम्।
कलिंग नगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा।। अयो. 71/16

165. यु. 59/77 39/3, 93/19 अयो. 20/32 71/16, 72/22,
96/11 97/28 99/19 अ. 15/16, 25/32, 30/16
35/13 60/21 कि. 8/12, 14, 15 11/90, 91 12/35, 27/17,
31/14 40/5,6 50/25 सु. 01/48 14/3 44/13, 14
56/34 यु. 22/56 28/2 39/3, 42/14, 43/34,
59/43, 77 कि. 27/10, 28/18, बा. 24/15
अयो. 99/19 अ. 15/18 कि. 31/14

166. द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णमायासैः कण्टकैश्चिताम्।
नहि त्वमीद्दशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः।। अर. 53/21

167. शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा।
तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाः स्यन्दनास्तथा।। कि. 1/82

168. यु. 7/13, 40/14, 88/71................।

169. रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु।
मुक्तामणि विचित्रांश्च प्रसादाश्चं समन्ततः।। यु. 75/12

170. समालम्भनमादाय गोरोचनं मनः शिलाम्।
आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश।। कि. 26/28

171. असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः।
दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु।। कि. 30/62

172. मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा।
अशोकैः सप्तपर्णैश्च कतकैरति मुक्तकैः।। अर. 75/24

173. तानार्तान् नष्टसंज्ञाश्च गतासूंश्च बृहस्पति।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरौषधीभिरिश्चकित्सति।। यु. 50/28

174. हरयस्तु विजानन्ति पर्वती ते महौषधिम्।
संजीवकरणीं दिव्या विशल्यां देवनिर्मितम्।। यु. 50/30
175. मृतसंजीवनी चैव विशल्यकरणी मपि।
सार्वण्यकरणीं चैव संधानकरणीतथा।। यु. 74/33
176. तावुप्युभौ मानुषराजपुत्रौ, तं गंधं माघ्राय महौषधीनाम्।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुस्ये च हरिः प्रवीराः।।
सर्वे विशल्या विंरुजा क्षणेन हरि प्रवीरा निहताश्च येस्युः।
गन्धेन तास्सां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशन्तेष्विव संप्रबुद्धाः।। यु. 74/73, 74
177. राम सुषेणं मुदितः सभाः भाष्येदमब्रवीत। यु. 91/20
विशल्यो महा प्राज्ञ सौर्भिन्नः वत्सलः।
यदा भवति सु स्वस्थ स्तथा त्वं समुपाचरा।। यु. 91/21
178. एव मुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथमः।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेण परमौषधम्।।
सतस्य गंध माघ्राय विशल्यः समपद्यता।
तदा निर्वेदनश्चेवय संरुढ़ ब्रणस्थता।। यु. 91/24, 25
179. विभीषण मुखाना च सुहृदां राघवाज्ञया।
सर्व वानर मुख्यानां चिकित्साम करोत तदा।।
ततः प्रकृति मापग्नो हुतशल्यो गतल्कमः।
सोमिति युमुदे तत्क्षणेन विगत ज्वरः।। यु. 91/26, 27
180. हिमवन्त नगश्रेष्ठं हनुमन् गन्तुमर्हसि। यु. 74/29
181. ततः कांचनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम्।
कैलाश शिखरं चापि द्रक्ष्यस्यरिनिषूदना।। यु. 74/30
182. तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्त मतुलप्रभम्। यु. 74/31
183. मृत संजीवनी चैव विशल्य करणीमपि।
सावर्ण्यकरणीं चैव संधानकरणी तथा।। यु. 74/33
184. प्रदीप्तमतुलप्रभम्। यु. 74/61
185. आप्लुप्य तं औषधि पर्वतेन्द्रं ततोषधीनां विचयं चकार। यु. 74/62
186. विज्ञायार्थि नमायान्तम् ततो जग्मुरदर्शनम्।। यु. 74/64
187. स तं समुत्पाट्य खमुत्यपात। यु. 74/68
188. सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम्।।
पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता तव।
दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय।।
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा।
संजीव करणीं वीर संधानीं च महौषधीम्।। यु. 101/30-32
189. सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाटय चौषधीः।। यु. 101/42
190. ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः।

लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः समुहाद्युतिः।। यु. 101/44

191. सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्त।। यु. 101/45

192. अग्निमुख्या अशोकाश्च सुरक्ताः पारिभद्रकाः।
तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान् बलात्।। अर. 73/5

193. पश्य भल्लातकान् बिल्वान् नरैरनुपसेवितान्।
फलपुष्पैरवनतान् नूनं शक्ष्याम जीवितुम्।। अयो. 56/7

194. मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा।
अशोकैः सप्तपर्णैश्च कतकैरतिमुक्तकैः।। अर. 75/24

195. शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ता कुरवकास्तथा।
तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाः स्यन्दनस्तथा।। कि. 1/82

196. स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पार्णासैर्लकुचैरपि।
धवाश्वकर्ण खदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः। अर. 15/18

197. मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः।। बा. 22/13

198. सा विद्धा बहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिव गजाङ्गना।
चिरसंनियतं बाष्पं मुमोचाग्निमिवारणिः।। अयो. 30/23

199. दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम्।
दत्वा तु मुसलं चान्यं यथा स्थानं विचक्रमुः।। यु. 111/116

200. काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्र धन्वनबीजकैः।। अयो. 94/9

201. असिपत्रवनेचैव भिद्यमानानधार्मिकान्।
रौखे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि।। उ. 21/15

202. इक्षूंश्च मधुलाजांश्च भोजयन्ति स्म वाहनान्।
इक्ष्वाकुवरयोधानां चोदयन्तो माहबलाः।। अयो. 91/56

203. अन्याः स्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम्।
अपराश्चोदकं शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम्।। अयो. 91/15

204. आजैश्चापि च वाराहैर्निष्ठानवरसंचयैः।
फलनिर्यूह संसिद्धैः सूपैर्गन्धरसान्वितैः।। अयो. 91/67

205. अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान्।
सुमहानिङ्गुदी वृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे।। अयो. 50/28

206. उपरुहयन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव।
पश्यामि वृक्षान् सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान्।। अर. 68/11 ।।

207. ततो मरुतं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः।
उशीर बीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः।। उ. 18/2 ।।

208. आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।

अङ्कोलैर्भव्य तिनिशैर्बिल्व तिन्दुक वेणुभिः।। अयो. 94/8

209. इयं सुमित्रा दुःखार्त्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा।
कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे।। अयो. 92/23

210. अंकोलाश्च करंजाश्च प्लक्षन्यग्रोधपादपान्।
जम्बूकामलाकान् नीपान् भंजन्ति स्म प्लवंगमाः।। यु. 4/73

211. शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा।
तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाः स्यन्दनास्तथा।। कि. 1/82

212. धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका नक्तमालकाः।
नीलाशोका कदम्बाश्च करवीराश्च् पुष्पिताः।। अर. 73/4

213. तालानूदाडिमगुल्मांश्च नारिकेलविभीतकान्।
करीरान् बकुलान् निम्बान् समाजहुरि तस्ततः।। यु. 22/59

214. व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्ण, कृशप्रवाहानि नदी जलानि।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति, तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः।। कि. 30/36

215. काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः।। अयो. 94/9

216. चूतनीपमहासालान् पनसान् कुरवान् धवान्।
दाडिमानपितान् गत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः।। अर. 60/21

217. अङ्कोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः।
चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः।। कि. 1/80

218. चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च।
अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ।। उ. 91/20

219. कुष्ठस्थगरपुंनागभूर्जपत्रोत्तरच्छदान्।

220. कामिनां स्वास्तरान् पश्य कुशेशयदलायुतान्।। अयो. 94/24

221. केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः।
माध्व्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्द गुल्माश्च सर्वशः।। कि. 1/77

222. वानीरैस्तिमिदैश्चैव बकुलैः केतकैरपि।
हिन्तालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैः कृतमालकैः।। कि. 27/18

223. विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च।
न निःसृतं भवत्योष्ठाद् वचनं यावदर्थिनाम्।। उ. 92/12

224. प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन् षड् बैल्वाः खादिरास्तथा।
तावन्तो बिल्वसहिताः पर्णिनश्च तथा परे।। बा. 14/22

225. वाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नद्‌दभि कौंचसारसैः।। अर. 16/16

226. विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च।
न निः सृतं भवत्योष्ठाद् वचनं यावदर्थिनाम्।। उ. 92/12

227. चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च।

अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च।। उ. 91/20

228. सा हि चम्पकवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयकोचिता।
कोमला विलपन्त्यास्तु कान्तायाभक्षिता शुभा।। अर. 60/32

229. नीवारान् पनसान् सालान् वंजुलांस्तिनिशांस्तथा।
चिरिबिल्वान् मधूकांश्च बिल्वानथ च तिन्दुकान्।। अर. 11/74

230. अङ्कोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः।
चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः।। कि. 1/80

231. संध्यया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया।
दृश्यते सम्प्रदीप्तेव दिवसेऽपि वसुंधरा।। यु. 106/23

232. तगरैनारिकेलश्च प्रियालपनसैस्तथा।
एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे।। उ. 26/6

233. सिंहव्याघ्र वराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम्।
धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुक पाटलैः।। बा. 24/15

234. चंदनागुरुश्चूतैश्च तुङ् कालेयकैरपि।
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम्।। उ. 42/2

235. तगरैनारिकेलश्च प्रियालपनसैस्तथा।
एतैस्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे।। उ. 26/6

236. सुमतिस्तु नरव्याध्र गर्भतुम्बं व्यजायत।
षष्टिः पुत्र सहस्राणि तुम्ब भेदाद् विनिःसृताः। बा. 38/17

237. श्लेष्मातकमयो दिष्टो देवदारुमयस्तथा।
द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहौ।। बा. 14/23

238. काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वन बीजकैः।। अयो. 94/9

239. सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम्।
धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुक पाटलैः।। बा. 24/15

240. ततस्तत्र समासीनौ नातिदूरे निरीक्ष्य ताम्।
न्यग्रोधे सुकृतां शय्यां भेजाते धर्मवत्सलौ। अयो. 53/33

241. तिलकैर्बीजपूरैश्च वटैः शुक्लद्रुमैस्तथा।
पुष्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुष्पितैः।। अर. 75/23

242. सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान् कुसुमानि च।
शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम्।। कि. 26/25

243. मालती कुन्द गुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा।। अर. 75/24

244. धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका रक्तमालकाः।
नीलाशोकाः कदम्बाश्च करवीराश्च पुष्पिताः।। अर. 73/4
कुष्ठ स्थगरपुंनाग भूर्जपत्रोत्तरच्छान्।
कामिनां स्वास्तरान् पश्य कुशेशयदलायुतान्।। अयो. 94/24.

245. आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत् तु कः।
यश्चैनं पयसा सिंचेन्नैवास्य मधुरो भवेत्।। अयो. 35/16
246. स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पर्णासैर्लकुचैरपि।
धवाश्वकर्ण खदिरैः शमीकिंशुक पाटलैः।। अर.15/18
247. जम्बूप्रियालपनसा न्यग्रोधप्लक्षतिन्दुकाः।
अश्वत्थाः कर्णिकाराश्च चूताश्चान्ये च पादपाः।। अर. 73/3
248. सिंहव्याघ्र वराहैश्चवारणैश्चापि शोभितम्।
धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः।। बा. 24/15
249. हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे।। अयो. 61/17
250. तथा ह्यात्तमिदं राज्यं हृतसारां सुरामिवं
नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम।। अयो. 61/18
251. क्रोशमात्रं ततोगत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम्।
सल्लकी बदरी मिश्रं रम्यं वंशैश्च यामुनैः।। अयो. 55/8
252. मन्त्रग्रामं गृहाणत्वं बलामतिबलां तथा।
नश्रमो न ज्वरोवाते न रुपस्य विपर्ययः।। बा. 22/13
253. बिल्वामार्दङ्गिका आसञ्शम्याग्राहा विभीतकाः।
अश्वत्था नर्तकाश्चासन् भरद्वाजस्य तेजसा।। अयो. 91/49
254. तस्मिन् बिल्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः।
आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्च फलभूषिताः।। अयो. 91/30
255. कुष्ठस्थगरपुन्नाग भूर्जपत्रोत्तरच्छदान्।
कामिनां स्वास्तरान् पश्य कुशेशय दलायुतान्।। अयो. 94/24
256. केचिद् रजतसंकाशाः केचित् क्षतजसंनिभाः।
पीतमांजिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः।। अयो. 94/5
257. काश्मर्यारिष्ट वरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वन बीजकैः।। अयो. 94/9
258. चिरिबिल्वा मधूकाश्च वंजुला बकुलास्तथा।
रञ्जकातिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः।। यु. 4/79
259. पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण।
मधूनि मधुकारीभिः सम्भृतानि नगे-नगे।। अयो. 56/8
260. पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च।
मुक्तानां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरतः।। अर. 35/23
261. केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः।
माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः।। कि. 1/77
262. शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम्।
अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल।। उ. 91/19

263. मुचुकन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु।
केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिशंपा धवाः।। कि. 1/81

264. चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा।
रञ्जकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः।। यु. 4/79

265. स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पर्णासैर्लकुचैरपि।
धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुक पाटलैः।। अर. 15/18

267. तवापमान प्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम्।
न शक्यते धारयितु लवणाम्भ इवोल्बणम्।। अर. 22/2

268. लाजपूर्णैश्चि पात्राभिरक्षतैरपि संस्कृतैः।
दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्।। बा. 73/23
शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक्च मधुसर्पिषी।
अहतानि च वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि।। अयो. 3/9

269. लाक्षया मधुमांसेन लोहेन च विषेण च।
सदैव बिभृयाद् भृत्यानूयस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/38

270. अंलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ।
अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोशसमप्रभौ।। अयो. 60/18

271. आम्रजम्बवसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुक वेणुभिः।। अयो. 94/8

272. काश्मर्यारिष्ट वरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्र धन्वन बीजकैः।। अयो. 94/9

273. वानीरैस्तिमिदेश्चैव बकुलैः कैतकैरपि।
हिन्तालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैः कृतमालकैः।। कि. 27/18

274. काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्र धन्वन बीजकैः।। अयो. 94/9

275. आजैश्चापि च वाराहैर्निष्ठानवरसंचयैः।
फलनिर्यूहसंसिद्धैः सूपैर्गन्धरसान्वितैः।। अयो. 91/67

276. हृतदाः पूर्णा रसालस्य दध्नः श्वेतस्य चापरे।
बभूवुः पायसस्यान्ये शर्कराणां च संचयाः।। अयो. 91/73

277. सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम्।
तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवलशाद्वलम्।। सु. 57/2

278. एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः।
श्लेष्मान्तकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन् सुखम्।। उ. 10/49

279. चन्दनागुरुनिर्यासान् सरलं पद्मकं तथा।
देवदारुणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे।। अयो. 76/16

280. क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम्।
सल्लकी बदरी मिश्रं रम्यं वंशैश्च यामुनैः।। अयो. 55/8

281. मालती कुन्दगुल्मैश्च सिन्दुवारैः शिरीषकैः।
कदम्बार्जुन सर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभितम्।। कि. 27/10

282. उत्तमानां च गन्धानां क्षौमकौशाम्बरस्य च।
अविद्धाभिश्च मुक्ताभिरुत्तमैः स्फाटिकैरपि।। अयो. 17/4

तृतीय परिच्छेद

1. अधिकं शैलराजस्तु धातुभिस्तु विभूषितः।
धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायु वेगेन घट्टितः।। यु. 4/76

2. धातुनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान्।
तत् क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना।। कि. 15/21

3. यु. 74/67

4. अशक्ता धारणे देव तेज स्तव समुद्धतम्।
दाह्य मानाग्निना तेज संप्रव्यथित चेतना।। बा. 37/16

5. यदस्या निर्गतं तस्मात् तप्त जम्बूनद प्रभम्। बा. 37/18
कांचनं धरणीं प्राप्तं हिरण्य मतुल प्रभम्।
ताम्र कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत।। बा. 37/19
मलं तस्याभवत् तत्र त्रपु सीसकमेव च।
तदेतद्धरणीं प्राप्य नानाधातुरवर्धत।।। बा. 37/20

6. जातरूपमितिख्यातं तदाप्रभृति राघव।
सुवर्णं पुरुषव्याघ्र हुताशनसमप्रभम्..... ।। बा. 37/22

7. सु. 3/8-10

8. सुवर्णं वृंहणं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः।
विषदोषहरं शीत सकषायं रसायनम्। अ. सं. सू. 12/12

9. जाम्बूनदमयैद्वारैवैदूर्यकृत वेदिकैः।। सु. 3/8

10. वज्रस्फटिक मुक्ताभिर्मणिकुट्टिम भूषितैः।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः।। सु. 3/9

11. स हेमजाम्बूनद चक्रवालं महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम्।
परार्ध्यकालागुरुचन्दनार्हं स रावणान्तः पुरमाविवेश।। सु. 4/30

12. ततो ददर्शोच्छ्रिमेघरूपं, मनोहरम् कांचनचारूरूपम्।
रक्षोऽधिपस्यात्मबलानुरूपं, गृहोत्तमं ह्यद्यतिरूपरूपम्।। सु. 7/5

13. ततस्य रक्तं रक्तेन रंजितं शुशुभे मुखम्।
यथाऽऽकाशे महापद्मं सिक्तं कांचनबिन्दुभिः।। सु. 44/9

14. हेमजाल परिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः।
तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः।। सु. 45/3

15. यु. 10/5

16. कांचन धरणीं प्राप्तं हिरण्यमतुलप्रभम्।
ताम्रं कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत।। बा. 37/19

17. बा. 37/18

18. वैदूर्यकृतसोपानैः स्फाटिकान्तर पांसुभिः।
चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः।। सु. 3/10

19. वज्रस्फटिक मुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः।। सु. 3/9

20. रुप्यं स्निग्धं कषायाम्लं विपाके मधुरं सरम्।
वयसः स्थापनं शीतं लेखनं वात-पित्तजित्।। अ. सं. सू. 12/13

21. स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरुपिकाम्।
मुक्तावज्रप्रवालैश्च रुप्यचामीकरैरपि।। सु. 9/23

22. सतिक्त लवणं भेदि पाण्डुत्वकृमिवातनुत्।
लेखनं पित्तलं किंचित् त्रपु सीसं च तद्गुणम्।। अ. सं. सू. 12/16

23. मलं तस्याभवत् तत्र त्रपु सीसकमेव च।
तदेतद्धरणीं प्राप्य नानाधातुरवर्धत्।। बा. 37/20

24. ताम्रसतिक्तमधुरं कषायं लेखनं लघु।
कटु पाक रसं शीतं रोपणं कफपित्तजित्।। अ. सं. सू. 12/14

25. कांचनं धरणीं प्राप्तं हिरण्यमतुलप्रभम्।
ताम्रं कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत्।। बा. 37/19

26. चक्षुष्यं कृष्णलौहं च कषायं स्वादुतिक्तकम्।
लेखनं वातलं शीतं कृमिकुष्ठकफ प्रणुत्।। -अ. सं. सू. 12/17।। अ. सं. सू. 12/18।।

27. द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः।
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः।। यु. 3/13

28. असिपत्र वने चैव भिद्यमानानधार्मिकान्।
रौखे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि।। उ. 21/15

29. काञ्चनं धरणीं प्राप्तं हिरण्यमतुलप्रभम्।
ताम्रं कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत।। बा. 37/19

30. विशदो गैरिकः स्निग्धः कषाय मधुरो हिमः। अ. सं. सू. 12/23

31. अधिकं शैलराजस्तु धातुभिस्तु विभूषितः।

32. कषायं मधुरं शीतं लेखनं स्निग्धमञ्जनम्।
(धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायुवेगेन घट्टितः।। यु. 4/76)
रक्तपित्त विषच्छर्दिहिध्माघ्नं दृक् प्रसादनम्।। अ. सं. सू. 12/25
स्रोतोऽञ्जनं वरं तत्र ततः सौरवीरकाञ्जनम्।
कफघ्नं तिक्तकटुकं छेदि सोष्णं रसाञ्जनम्।। अ. सं. सू. 12/26

33. कफघ्नी तिक्तकटुका मनोह्वा लेखनी सरा। अ. सं. सू. 12/24

34. समालम्भन मादाय गोरोचनं मनः शिलाम्।
आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश।। कि. 26/28

35. पद्मराग महानील पुष्पराग विदूरकाः
मुक्ताविद्रुम वज्रेन्दवैदूर्यस्फटिकादिकम्।। अ. सं. सू. 12/19
मणिरत्न सरशीतं कषायं स्वादु लेखनम्।
चक्षुष्यं धारणातत्सु पापालक्ष्मीविषापहम्। अ. सं. सू. 12/20
धन्यमायुष्यभोजस्वं हर्षोत्साहकरं शिवम्। अ. सं. सू. 12/21

36. जाम्बूनदमयैद्वारैवैदूर्यकृतवैदिकैः।। सु. 3/8

37. वज्रस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिम भूषितैः।
तप्तहाटक निर्यूहै राजतामल पाण्डुरैः।। सु. 3/9

38. वज्रस्फटिक मुक्ताभिर्मणिकुट्टिम भूषितैः।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामल पाण्डुरैः।। सु. 3/9

39. निवेशनानां विविधाश्चशालाः, प्रधानशङ्खायुधचापशालाः।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला, ददर्शवेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः।। सु. 7/2

40. कृताश्च वैदूर्यमया विहङ्गा, रुप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गा।
चित्राश्च नानावसुर्भिर्भुजङ्गा, जात्यानुरुपास्तुरगाः शुभाङ्गाः।। सु. 7/12

41. महोर्मिमालाविततः शङ्खशुक्ति समावृतः।
सधूमः परिवृत्तोर्मि सहसासीन्महोदधिः।। यु. 21/29

42. विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा।
संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम्।। यु. 101/32

43. त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत् सदृशस्तव।
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव।। बा. 22/15

44. ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्।
कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः।। अयो. 56/22

45. तथाह्यात्तमिदं राज्यं हृतसारां सुरामिव।
नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम्।। अयो. 61/18

46. चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी।। यु. 50/31

पंचम् परिवर्त

वाल्मीकि रामायण में रोगोत्पत्ति के कारण

(1) शारीरिक कारण

वात, पित्त, कफ, असात्म्न्द्रियार्थ संयोग आदि।

शरीर में पंचमहाभूतों के विकार वायु आदि त्रियोग, रसादि सप्तधातु एवं पुरीषादि मल के रूप में विद्यमान हैं। वे (दोष, धातु, मल) शरीर के मूल माने गये हैं। सुश्रुत,[1] अष्टाङ्ग संग्रह[2] एवं अष्टाङ्ग हृदय[3] आदि ग्रन्थों में भी यही वर्णन मिलता है।

शरीर की समस्त क्रियाओं का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ रखना ही है। इसके लिये इन सब क्रियाओं में परस्पर तालमेल रहना आवश्यक है। यदि किसी एक क्रिया में विकृति आती है तो उसका विपरीत प्रभाव अन्य शारीरिक क्रियाओं पर भी पड़ता है। शरीर की इन क्रियाओं का ठीक प्रकार से सम्पन्न न होने का नाम ही व्याधि है। शारीरिक क्रियाओं में दोषों की प्रमुखता को प्रकट करने के लिए आचार्यों ने शरीर को 'त्रिस्थूण' के ऊपर आधारित कहा है।[4]

वात (वायु)

उच्छ्वास, निःश्वास, उत्साह, प्रस्पन्दन, इन्द्रिय-पाटव, वेग प्रवर्तन, आदि कार्यों से शरीर का उपकार करती है।

पित्त

पक्ति, (पाचन) ऊष्मा, अभिलाषा, क्षुधा, पिपासा, प्रभा, कान्ति, प्रसाद, दर्शन, मेधा, शौर्य, मार्दव आदि से शरीर का उपकार करती है।

कफ

स्थैर्य, स्नेह, सन्धि-बन्धन, वृषता, क्षमता, धी, बल, अलोक्य आदि से शरीर को अनुगृहीत करता है। शरीर की क्रियाओं में तालमेल उसी समय तक बना रह सकता है जब तक कि प्रत्येक का कार्य-क्षेत्र पृथक्-पथक् हो। शरीर में ऐसा ही होता है। यद्यपि वात, पित्त एवं कफ शरीर की क्रियाओं के जनक हैं, परन्तु प्रत्येक का कार्य एवं क्षेत्र पृथक्-पृथक् है।

वात

महर्षि अग्निवेश ने वायु का प्राकृत कर्म उत्साह, उच्छवास, निःश्वास, चेष्टा-धातु आदि को बताया है।[5]

वायु तन्त्र रूपी यन्त्र को धारण करता है। प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान स्वरूप विविध चेष्टाओं का प्रवर्तक, मन का नियंत्रक एवं प्रवर्तक, सभी इन्द्रियों को उनके अपने-अपने विषयों तक एवं विषय प्रतीति को मस्तिष्क तक पहुँचाता है। शरीर के सभी धातुओं का व्यूह करता है अर्थात् एक दूसरे के साथ गूँथे रखता है। शरीर का सन्धान अर्थात् सभी अवयवों को परस्पर संयुक्त करता है। वाणी का प्रवर्तक है, शब्द एवं स्पर्श का प्रकृति अर्थात् कारण है। श्रवणेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय का उपादान है। शरीर में हर्ष, उत्साह को जन्म देता है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। वृद्ध पित्त एवं कफ का शोषण करता है, मूत्र-पुरीषादि मलों को बाहर निकालता है। स्थूल एवं अणु स्रोतसों का भेदन करके उनमें प्रवेश करता है। गर्भ की आकृतियों को करने वाला है। इस प्रकार अकुपित वायु आयु के परिपालन में कारण होता है।[6]

सुश्रुत के अनुसार प्राकृत वायु मन सहित इन्द्रियों को उनके विषयों के साथ संयुक्त करता है। दोष, धातु एवं अग्नियों को विकार रहित अवस्था में रखता है। तथा अनुलोम क्रियाएँ करता है। आधुनिक दृष्टि से वात का प्राकृत कर्म नाड़ी संस्थान तथा इन्द्रिय व्यापार के समान कहा जा सकता है।[7]

1. प्राणवायु

मस्तिष्कान्तर्गत वायु तत्व को जो इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, स्पर्श, शब्द, गंध आदि को ग्रहण करता है। चिन्तन, मनन, ऊहापोह, निर्धारण आदि का कार्य करता है। आहार पान को (Vagus) द्वारा निकालने का कार्य करता है। (श्वास केन्द्र द्वारा) श्वास लेने का कार्य करता है, प्राण वायु कहते हैं। कहा भी है–'प्राणोऽत्रमूर्धनि' (वाग्भट) तथा 'हृदि प्राणः' (शार्ङ्गधर)।

2. उदान वायु

फुफ्फुस तथा कण्ठ की उस वायु को जो भाषण और यत्न के साथ काम करता है, उदान वायु कहते हैं।

3. समान वायु

पाचक स्थान में विद्यमान वायु को, जो पाचक रसों को प्रवृत्त करने का काम करता है, समान वायु कहते हैं।

4. अपान वायु

वस्ति स्थान में स्थित उस वायु को जो मल-मूत्र को प्रवृत्त करता है, अर्थात् Cerepropudendal Nerve Path में स्थित है, अपान कहते हैं।

5. व्यान वायु

अनैच्छिक नाड़ी मण्डल Autonomic N. System के स्थान मस्तिष्कगत (Hypathalamus) में विद्यमान उस धातु को जो रक्त-लसीका के संचार को तथा मांस पेशियों में होने वाली ऐच्छिक, अनैच्छिक चेष्टाओं को उत्पन्न करने का कार्य करता है, व्यान वायु कहा है।

प्रत्येक सेल में जो कार्य हो रहा है वह वायु तत्व के कारण संचालित हो रहा है। तथापि नाड़ी मण्डल (N. System) को उसका प्रधान स्थान कहा है।

शरीर का यह वायु तत्व बल-प्रद, आहार, विश्राम, निद्रा, मानसिक शान्ति, प्रसन्नता आदि भावों से प्रबल रहता है। पित्त का पचन कर्म, कफ का वृद्धि कर्म ठीक रहे तो भी वायु तत्व को बल मिलता है। वायु तत्व के सम अवस्था में रहने से शरीर स्वस्थ रहता है। आयु दीर्घ होती है।

शरीर की जीवनी शक्ति के निर्बल हो जाने से जो लक्षण हो जाते हैं, उन्हें वायु रोग या वायु प्रकोप कहते हैं। इस अवस्था का प्रधान लक्षण शारीरिक या मानसिक चलता या विक्षोभ शीलता है अर्थात् जब किसी अंग को रक्त, ऑक्सीजन या आहार द्रव्य कम मिलते हैं तो उसमें चलता, वेदना, चमचमाहट, सुप्ति आदि लक्षण होने लगते हैं। इन लक्षणों से वायु रोग का अनुमान होने लगता है।

जिस अंग में वायु तत्व का ह्रास होता है उसमें क्षीणता के सूचक लक्षण होने लगते हैं अर्थात् उस अंग में रुक्षता खरता की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। उस अंग के सेलों में न्यूनता होने लगती है। अर्थात् वहाँ लघुता की विकृति भी होने लगती है उस अंग में तापमान की न्यूनता भी हो सकती है अर्थात् कुछ शीतता का लक्षण भी हो सकता है। उस अंग में चीटियों के चलने की सी प्रतीति, चमचमाहट आदि लक्षण होने लगते हैं। ये लक्षण वायु विकृति के सूचक होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शारीरिक रोगोत्पत्ति का एक प्रमुख कारण वात है।

वाल्मीकि रामायण में 'वात' दोष का विशद् वर्णन मिलता है।

राजा कुशनाभ की सौ कन्याएँ वात दोष के प्रकुपित होने के कारण ही कुब्जता को प्राप्त हुई थीं। इसकी विस्तृत समीक्षा 'वात रोग' षष्ठ परिवर्त में प्रस्तुत है। अतः यहाँ इसकी संक्षेप में ही समीक्षा की जा रही है।

राजा कुशनाभ की सौ कन्याएँ, जो अति सुन्दरी थीं, उद्यान में विहार करने गयीं। उनकी सुन्दरता पर वायु देव मोहित हो गये तथा उनके समक्ष प्रणय-प्रस्ताव रखा। उन कन्याओं ने उस प्रस्ताव पर अपनी अस्वीकृति प्रदान की तथा कहा कि वे अपने पिता के आधीन हैं, पिता जिसे चाहेंगे, उसे सौंप देंगे। इस बात से कुपित हुए वायु देव ने उन सबको कुबड़ी बना दिया। बाद में उनके पिता के प्रयास से वे सभी कुब्जत्व दोष से मुक्त हुईं।[8]

इसके अतिरिक्त रामायण में एक और वर्णन भी मिलता है—शिशु हनुमान पर इन्द्र द्वारा वज्र का प्रहार करने से क्रुद्ध हुए वायु देव ने प्रजा में रहकर अपनी गति संकुचित कर ली। श्वास आदि के रूप में संचार रोक लिया। वायुदेव ने प्रजा के मलाशय को रोककर उन्हें बड़ी पीड़ा दी। उन्होंने सम्पूर्ण भूतों में वायु का संचार अवरुद्ध कर दिया। वायु के प्रकोप से समस्त प्राणियों की सांस बन्द होने लगी, उनके सभी अंगों के जोड़ टूटने लगे और वे सभी काठ के समान चेष्टा-शून्य हो गये। लोगों के नित्य-कर्म बन्द हो गये और वे पीड़ा के मारे कराहने लगे।

वायु के क्रुद्ध होने पर देवों के भी पेट इस प्रकार फूल गये थे मानो उन्हें महोदर

रोग हो गया हो। वायु देव आयु क अधि-पति जो हैं, प्राणों के ईश्वर हैं। परन्तु संचार रोकने पर प्राणियों तथा देवों पर उसका प्रतिकूल प्रभाव होने लगा। देवों ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे वायुदेव को प्रसन्न करें। इस पर ब्रह्मा ने उनसे कहा-

वायु देव स्वयं शरीर धारण न करके समस्त शरीरों में उनकी रक्षा करते हुए विचरते हैं। वायु ही सबका प्राण है। वायु ही सुख है और वायु ही यह सम्पूर्ण जगत है। वायु से परित्यक्त होकर जगत कभी सुख नहीं पा सकता। वायु ही जागत् की आयु है। इस समय वायु ने संसार के प्राणियों को त्याग दिया है इसलिये वे सबके सब निष्प्राण होकर काठ और दीवार के समान हो गये हैं। तदनन्तर वायु देव को ब्रह्मा ने प्रसन्न किया और सभी जगत सुखी हुआ।[9]

उपरोक्त विवरण में वायु के प्रभाव को भली प्रकार से स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार रामायण में वायु धातु तथा वायु दोष और साधारण वायु का वर्णन मिलता है, जो आयुर्वेद के विशाल-साहित्य को विस्तृत करता है।

पित्त

महर्षि चरक ने पित्त का प्राकृत कर्म बतलाया है—दर्शन पंक्ति शरीर में ऊष्मा का नियमित रखना, भूख, प्यास, शरीर में कोमलता, कान्ति, मन की प्रसन्नता तथा मेधा को बनाये रखना पित्त का कार्य है।[10] सुश्रुत के अनुसार पित्त अपनी सिराओं में गति करता हुआ भ्राजिषणुता, अन्न में रुचि, अग्नि की प्रदीप्ति तथा आरोग्य को उत्पन्न करता है। आधुनिक दृष्टि से पित्त का प्राकृत कर्म शरीर में होने वाली सभी रासायनिक क्रियाओं तथा पाचक रस के समान कहा जा सकता है।[11]

शरीर का दूसरा मूल-तत्व देहाग्नि या पित्त-तत्व है। आहार पाक-धातु पाक और मल-पाक का मूल-प्रवर्तक यही है। इसी के कारण शरीर के सेलों में सैकड़ों 'पाचक रस' 'Enzymes' उत्पन्न होते हैं जो शरीर व्यापी पाचन प्रक्रिया अर्थात् Metabolism का संचालन करते हैं। इन पाचक रसों द्वारा आहार द्रव्य साधारण द्रव्यों में परिवर्तित हो जाता है। फिर इन साधारण द्रव्यों के मिलने से शरीर के मांस आदि धातु उत्पन्न होते हैं फिर मांस आदि धातुओं का पाचक रसों द्वारा पाक होला है जिससे मल उत्पन्न होते हैं, फिर इन मलों का पाचक रसों द्वारा पाक होता है जिससे वे साधारण द्रव्यों में परिवर्तित होकर श्वास, स्वेद, मल-मूत्र आदि द्वारा शरीर से बाहर फेंक दिये जाते हैं। इस प्रकार देहाग्नि शरीर को स्वच्छ, सुन्दर और निर्मल बनाये रखती है।

देहाग्नि के इस पचन-कर्म से उत्पन्न ऊष्मा के कारण शरीर गर्म रहता है तथा इस पचन कर्म के रासायनिक परिवर्तन से उत्पन्न शक्ति (Energy) के द्वारा वायु तत्व को बल मिलता है।

शरीर का यह पित्त तत्व सम अवस्था में रहे तो शरीर की ऊष्मा ठीक रहती है, भूख-प्यास ठीक लगती है, त्वचा की कांति ठीक बनी रहती है, नेत्रों की दृष्टि ठीक रहती है, रक्त स्वच्छ रहता है, मस्तिष्क में हर्ष, प्रसाद और शूरता के भाव रहते हैं, बुद्धि निर्मल रहती है।

शरीर की पित्ताग्नि को ठीक रखने के लिये आवश्यक है कि आहार सुपच हो,

मात्रा में थोड़ा हो, अति शीत, अति रुक्ष, अति स्निग्ध न हो, नियत समय पर लिया जाए। व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से पित्ताग्नि प्रबल रहती है।

शरीर का कोई अवयव क्षत हो जाता है तो उस क्षत प्रदेश के पाचन (Liquefaction) के लिये स्वभावतः देहाग्नि प्रबल होती है। शरीर के अवयवों में क्षत सबसे अधिक जीवाणुओं या Viruses के कारण होता है, ऐसी अवस्था में जब शरीर में पित्त-वृद्धि होती है तब ज्वर, दाह, पिपासा, स्वेद, रक्त-क्षय आदि लक्षण हो जाते हैं जिन्हें पित्त-वृद्धि का लक्षण कहते हैं। यह पित्त वृद्धि जीवाणुओं के विनाशार्थ उनके Antibodies को उत्पन्न करने के लिये होती है। रोग के कारण भूत जीवाणु जब नष्ट हो जाते हैं तब पित्त-वृद्धि शान्त हो जाती है। इस प्रकार वस्तुतः ज्वर या पित्त-वृद्धि शरीर की रक्षा के लिये होती है।

पित्त-वृद्धि के रोगी की शक्ति को बढ़ाने के लिये उसे पूर्ण विश्राम देना चाहिये। उसे सुपच पौष्टिक आहार मिलना चाहिये, ताकि उसकी जीवाणु निवारक शक्ति बढ़े। औषध भी उसे शक्ति-वर्धक ही मिलनी चाहिये।

वाल्मीकि रामायण में 'पित्त' का भी वर्णन उपलब्ध होता है। रामायण में सीता की अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—''जनकनन्दिनी सीता के मुख पर आँसुओं की धारा वह रही थी। उन्होंने अपना मुख नीचे की ओर झुका लिया था। वे उपर्युक्त बातें कहती हुई ऐसी जान पड़ती थीं मानों उन्मत्त हो गयी हों—उन पर भूत सवार हो गया हो अथवा **पित्त बढ़ जाने से पागलों का सा प्रलाप कर रही हों** अथवा दिग्भ्रम आदि के कारण उनका चित्त भ्रान्त हो गया हो। वे शोक-मग्न हो धरती पर लोटती हुई बछेड़ी के समान पड़ी-पड़ी छटपटा रही थीं। उसी अवस्था में सरल हृदया सीता ने इस प्रकार विलाप करना प्रारम्भ किया''।[12]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंग के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में पित्त-प्रकोप का उल्लेख किया गया है।

कफ

प्राकृत कफ का कर्म महर्षि 'चरक' ने बताया है—शरीर में स्निग्धता बनाये रखना, सन्धियों को सुसम्बद्ध रखना, शरीर स्थिर, शरीर में गुरुता, बल को स्थिर रखना, क्षमा, धैर्य और अलोभ कफ का प्राकृत कर्म है।[13]

महर्षि 'सुश्रुत' के अनुसार अपनी शिराओं में गति करता कफ अंगों में स्निग्धता, सन्धियों में स्थिरता, बल, सामर्थ्य और अन्य गुणों को उत्पन्न करता है।[14]

आधुनिक दृष्टि से कफ का सामान्य कर्म शरीर संश्लेषण तथा उदक कर्म अर्थात् जल से सींचने के समान शरीर को आप्लावित करना है।

शरीर का तीसरा मूल तत्व कफ है। इस वृद्धि तत्व के कारण शरीर के अवयवों में वृद्धि, रोहण, रोपण, रक्षण आदि कर्म होते हैं। शरीर में किसी क्षत के होते ही तुरन्त उसका रोहण आरम्भ हो जाता है। यदि किसी अवयव में जीवाणु आक्रमण करता है तो वहाँ रक्षण-कर्म (Antibodies Opsonin, Lysozyme आदि की उत्पत्ति के रूप में) आरम्भ हो जाता है।

इस तत्व के कारण शरीर और मस्तिष्क में उचित विकास होता है। शरीर परिपुष्ट होता है। मस्तिष्क में बुद्धि का विकास होता है। मन में उत्साह का उदय होता है। ज्ञान शक्ति, सहन शक्ति और धीरता के गुण उत्पन्न होते हैं। शरीर में जो स्थिरता, दृढ़ता, श्लिष्टता, स्निग्धता के गुण हैं, वे कफ तत्व के कारण हैं।

1. मुख तथा जिह्वा में जिस कफ तत्व के कारण रस का बोध होता है उसे रस बोधक श्लेष्मा कहते हैं।
2. आमाशय में जो श्लेष्मा, अन्न का क्लेदन करता है, उसे क्लेदन श्लेष्मा कहते हैं।
3. फुफ्फुस में जो क्लेदन का कारण है, उसे अवलम्बक श्लेष्मा कहा है।
4. सन्धियों, कण्डराओं और संधियों की थैलियों में जो चिकना द्रव्य रहता है उसे सन्धि श्लेषक श्लेष्मा कहा जाता है।
5. मस्तिष्क के अन्दर विद्यमान स्नेहन, रक्षण आदि कार्य करने वाले द्रव (Cerebrospinal Fluid) को इन्द्रियतर्पक श्लेष्मा कहा है।

इस कफ तत्व का पोषण, पोषक आहार, विश्राम, निद्रा, निश्चिन्तता, प्रसन्नता, वीर्यरक्षा आदि के द्वारा होता है।

स्वास्थ्य कफ और पित्त के सन्तुलन पर निर्भर है। कफ तत्व आहार के द्वारा प्राप्त 'कैलरीज' से शरीर के अवयवों का निर्माण करता है। पित्त तत्व आहार के द्वारा प्राप्त 'कैलरीज' को खर्च करता है।

इस प्रकार कफ और पित्त एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। इन दोनों के संतुलित रूप में कार्य करने से शरीर स्वस्थ रहता है। यदि शरीर में व्यय अधिक और आय कम हो जाये तो उसे पित्त-वृद्धि या पित्त-प्रकोप की अवस्था कहते हैं। ज्वर में ऐसा ही होता है। इसके विपरीत यदि शरीर में आय अधिक और व्यय कम हो अर्थात् कफ कर्म अधिक और पित्त कर्म कम हो तो उसे कफ-वृद्धि, कफ प्रकोप या कफ रोग की संज्ञा देते हैं। इसे अग्नि या पित्त की मंदता भी कहते हैं। इस प्रकार जितने भी कफ रोग हैं, उनका कारण अग्नि की मंदता है।

अग्नि की मंदता से होने वाले रोगों के लिये लंघन, अर्ध-लंघन, परिमित आहार, लघुरुक्ष, उष्णगुण आहार, शारीरिक श्रम, स्वेदन, वमन, विरेचन, कटुतिक्त, कषाय रस प्रधान औषधियों का सेवन उपयोगी है।

प्रकृति भी आयुर्वेद में तीन प्रकार की कही गयी है। जिनमें जन्म से ही प्राणतत्व या जीवनीय तत्व की निर्बलता है उसे वातिक (Asthenic) प्रकृति का कहा है। जिनमें जन्म से अग्नितत्व की प्रबलता है उसे पित्त प्रकृति (Sanguine) का कहा है। जिनमें जन्म से अग्नि तत्व की निर्बलता है उसे श्लैष्मिक प्रकृति का कहा है। उस-उस प्रकृति वाले में उस-उस रोग के होने की प्रवृत्ति रहती है।

वाल्मीकि रामायण में भी कफ तत्व का उल्लेख मिलता है। राक्षस राज सुकेश के तीनों पुत्रों की तुलना वात-पित्त एवं कफ इन तीन से की गयी है।[15]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी रोगों का एक मात्र कारण वातादि तीनों दोष ही हैं। जैसे पक्षी नदी, वन, समुद्र आदि सब स्थानों पर दिन भर उड़ता हुआ भी अपनी छाया

का अतिक्रमण नहीं करता है अथवा जैसे इस विश्व का समस्त विकार समूह नाना रूप में व्यवस्थित होता हुआ भी सत्व, रज, तम इन तीनों से अलग नहीं हो सकते जैस– विद्युत, वर्षा, इन्द्रधनुष आदि आकाश में रहने पर भी बिना कारण दिखाई नहीं पड़ते, वातावरण रूप निमित्त कारण से अवश्य दिखाई देते हैं, उसी प्रकार रोग भी दोषों में सदा रहने पर असात्म्य आदि निमित कारणों के बिना दिखाई नहीं पड़ते।[16]

वाल्मीकि रामायण में भी तीनों दोषों से ही समस्त रोगों की उत्पत्ति को स्वीकार करते हुए कहा गया है–

वे तीनों लोकों के समान सुस्थिर, तीन अग्नियों के समान तेजस्वी, तीन मंत्रों के समान उग्र तथा **तीन रोगों के समान** अत्यन्त भयंकर थे। सुकेश के वे तीनों पुत्र त्रिविध अग्नियों के समान तेजस्वी थे। वे वहाँ उसी तरह बढ़ने लगे, जैसे उपेक्षावश, दवा न करने से रोग बढ़ते हैं।[17]

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोगादि

अष्टाङ्ग संग्रहकार के अनुसार रोगों के कारण तीन प्रकार के होते हैं-

1. असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग 2. प्रज्ञापराध 3. परिणाम।[18]

पुनः इन तीनों में प्रत्येक के क़ारण अतियोग, अयोग एवं मिथ्यारोग भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनमें चक्षु आदि इन्द्रियों का रूप आदि विषयों से अत्यधिक संयोग अतियोग है। स्वल्प अथवा बिल्कुल भी संयोग न होना अयोग है, अति सूक्ष्म, अति दूर, अति निकट, अत्यन्त भास्वर, अति भैरव, अत्यन्त अप्रिय और विकृत आदि वस्तुओं का दर्शन चक्षु इन्द्रिय का रूप के साथ मिथ्या-योग है।

निन्दित, बहुत ऊँचा, कठोर, भीषण आदि शब्दों का सुनना, श्रोत्रेन्द्रिय का अपने विषय के साथ मिथ्या-योग है। पूति (दुर्गन्धित) अमेध्य, अतितीक्ष्ण, उग्र-प्रतिकूल आदि गंधों का सूंघना अपने विषय के साथ मिथ्या-योग है। स्नान आदि शीत, उष्ण आदि स्पर्श का विपरीत प्रकार से सेवन न करना, अपवित्र भूत (प्राणियों) का अभिघात् (दंश), विषैले वायु आदि का संस्पर्श, स्पर्शेन्द्रिय का अपने विषय के साथ मिथ्या-योग है।[19]

प्रज्ञापराध

'अष्टांग संग्रह' के अनुसार-शरीर-वाणी और मन इन तीनों के द्वारा किया जाने वाला अहित कर्म प्रज्ञापराध है।[20]

इनमें शरीर, वाणी और मन द्वारा किये हुए कार्यों की अति प्रवृत्ति अतियोग है, अल्प प्रवृत्ति अथवा सर्वथा अप्रवृति अयोग कहा जाता है। मल, मूत्र आदि वेगों का उदीरण अथवा धारण, स्खलन, कण्डूयन, प्रहार, प्राणयाम् आदि शरीर के मिथ्या-योग हैं। भूख-प्यास, खाते समय बोलना आदि वाणी के मिथ्या योग तथा भय, शोक, ईर्ष्या, मात्यर्स आदि मन के मिथ्या योग हैं। दशविध निन्दित कर्म, हिंसा, चोरी, अगम्य स्त्री गमन, पैशून्यता, पुरुषता, असत्य बोलना, सम्भिन्नालाप, व्यापद, अभिधा (पद, धन की इच्छा), दृगविपर्यय, शरीर, वाणी और मन के मिथ्या योग हैं।[21]

परिणाम

परिणाम काल को कहते हैं[22] अर्थात् शीत, उष्ण, वर्षा भेद से तीन प्रकार का होता है। ग्रीष्म आदि ऋतुओं में अपने स्वाभाविक लक्षणों से उष्णता आदि का अधिक होना काल का अतियोग कहलाता है, अपने लक्षणों से हीन होना हीन योग अथवा अयोग कहलाता है तथा ग्रीष्मादि ऋतुओं में अपने लक्षणों के विपरीत शीत आदि का होना मिथ्या योग कहलाता है। ये सब अतियोग, अयोग तथा मिथ्या योग आदि सामान्य रूप से शरीर के लिये अनुपशय (अहित) होते हैं और इन सब से न बचना प्रज्ञापराध है। अर्थ, कर्म एवं काल का सम्यक् योग उपशम होने से स्वास्थ्य का कारण होता है। इनमें भी रस नामक विषय को छोड़कर शेष चारों विषय गन्ध, शब्द, स्पर्श, रूप अपने-अपने इन्द्रियों को अतियोग, अयोग तथा मिथ्या योग से पीड़ित करते हैं और सम्यक् योग से अपने-अपने इन्द्रियों का उपचार करते हैं तथ रस नामक विषय (अर्थ) कर्म तथा काल के अतियोग, अयोग तथा मिथ्या योग से सम्पूर्ण शरीर को हानि पहुँचाते हैं और सम्यक् योग से सम्पूर्ण शरीर का उपकार करते हैं।

इसके अतिरिक्त 'माधवनिदान' की मधुकोष टीका में निम्नलिखित कारण व्याधि के बताये गये हैं–

1. सन्निकृष्ट हेतु, विप्रकृष्ट हेतु, व्यभिचारि हेतु तथा प्राधानिक हेतु।
2. दोष हेतु, व्याधि हेतु एवं उभय हेतु।
3. उत्पादक हेतु एवं व्यंजक हेतु।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में शारीरिक रोगोत्पति का कारण वात-पित्त एवं कफ (त्रिदोष) को बताया गया है।

(II) मानसिक कारण

काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, लोभ, रजोगुण-तमोगुण आदि

जिस प्रकार वात-पित्त एवं कफ ये तीन शरीर दोष हैं, इसी प्रकार मन को प्रभावित करने वाले रज एवं तम मानस दोष हैं।[23]

वास्तव में मन को प्रभावित करने वाले तीन कारण हैं, सत्व, रज एवं तम। परन्तु सत्वगुण स्वयं विशुद्ध है अतः उसके द्वारा मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हो सकता है शेष दोनों गुण रज एवं तम ही मन को विकृत करते हैं। इसीलिये मानस दोषां में इन्हीं दोनों की गणना की जाती है। तर्क के लिये यदि सत्व को अविकारी माने तो परिणाम यह होगा कि मन कभी भी विकार रहित स्थिति को प्राप्त नहीं होगा। उस पर तीनों गुणों में किसी न किसी का प्रभाव बना रहेगा और वह सदैव विकृत स्थिति में रहेगा। विना अविकारी मन के यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है और यथार्थ ज्ञान रहित व्यक्ति के लिये मोक्ष असम्भव है। अतः सत्व गुण के द्वारा मन की विकृति नहीं होती है। जब तक मोक्ष की स्थिति नहीं आती तब तक रजोगुण एवं तमोगुण में जो प्रबल होगा मन पर प्रभाव डालेगा और उनके अनुसार मन विकृत होगा। मन के इन विकारों को 'मानस विकार' एवं कारण रज एवं तम को 'मानस दोष' कहते हैं।

मानस दोषों से उत्पन्न विकार हैं-काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार, अभिमान, शोक, चित्त-ग्लानि, भय हर्ष आदि।[25]

मानस विकारों में पहले मन विकृत होता है और फिर उसके प्रभाव से शरीर दोष भी विषम हो शरीर में भी विकृति उत्पन्न करते हैं। यदि मन को विकृत करने वाले कारण हट जाते हैं तो सामान्यतः शरीर में विकार स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं तो इसी प्रकार यदि वात-पित्त कफ आदि में किसी भी भी असाम्यावस्था से शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं तो उनके प्रभाव से मन में भी विकार उत्पन्न होने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है तथा शारीरिक विकार के कारणों के नष्ट हो जाने से मानसिक असंतुलन भी संतुलित हो जाता है।

वात-पित्त एवं कफ की साम्यावस्था शारीरिक क्रियाओं के स्वाभाविक सम्पादन को तथा असाम्यावस्था शरीर में भौतिक, जैविक, एवं रासायनिक क्रियाओं में विकार को इंगित करते हैं। इसी प्रकार रज एवं तम की साम्यावस्था मानसिक क्रियाओं में संतुलन को तथा इनकी असाम्यावस्था मानसिक विकारों को इंगित करते है। धातुओं (दोषों) की विषमता को 'विकार' कहते हैं तथा इनकी समता को 'आरोग्य' कहते हैं। आरोग्य का नाम सुख है तथा विकारों का नाम दुःख है।[25]

असाम्यावस्था के कारण

शरीर एवं मानस दोनों प्रकार की असाम्यावस्था (विषमताओं) के तीन प्रधान कारण हैं।

1. असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग 2. प्रज्ञापराध 3. परिणाम।[26]

1- असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग

इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ असात्म्य संयोग होना। असात्म्य संयोग का अर्थ है इन्द्रियों का अपने-अपने विषय के साथ समयोग न होकर अतियोग, अयोग अथवा मिथ्या योग का होना।

2-प्रज्ञापराध

प्रज्ञा के अन्तर्गत धी (निश्चयात्मक बुद्धि) धृति (धारणात्मक बुद्धि), स्मृति का समावेश है। इनका अतियोग, अयोग अथवा मिथ्या-योग होना प्रज्ञापराध का कारण होता है।

3-परिणाम

काल (ऋतु जन्य अथवा वातावरण जन्य काल) का अतियोग, अयोग अथवा मिथ्यायोग होना।

वाल्मीकि रामायण में भी मानसिक रोगोत्पत्ति के सभी कारणों काम-क्रोध आदि का उल्लेख किया गया है। रामायण में जहाँ भी अस्वस्थ शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार की अवस्था के लिये हुआ है। काम-क्रोध आदि विकारों का उल्लेख इस प्रकार हैं–

काम

महर्षि वाल्मीकि इस बात को बहुत अच्छी तरह जानते थे, इसलिये उन्होंने 'काममोहपरीतस्य'[27] कहकर काम के द्वारा मोह और मोह से उन्माद तथा तदन्तर मूर्च्छा की उत्पत्ति बतायी है। रावण ने स्वयं ''कामोन्माद करामम्''[29] में अपनी उन्मत्त

अवस्था को स्वीकार किया है। ऐसा होने पर इन्द्रिय व्याकुल हो उठती हैं, परन्तु इस रोग की एक चिकित्सा भी कवि ने बतायी है कि मनुष्य यह समझ ले कि "परदारा पराभवम्" अर्थात् पराई स्त्री विनाश का कारण होती है।[30] भरत ने एक स्थान पर गालियाँ देते हुए यह कहा है कि "जिसे राम से द्रोह हो वह नित्य ही मद्यपान तथा पर—स्त्री समागम करे।" इससे यह स्पष्ट है कि नित्यप्रति मद्य-पान तथा स्त्री समागम पाप है तथा रोगकारक हैं। इस प्रकार विकार रूप में काम एक भयंकर व्याधि है जिससे आक्रान्त होकर व्यक्ति अपने विवेक तथा आत्मसंयम को तो भूलता ही है, साथ में अपने स्वास्थ्य, आयु तथा प्रतिष्ठा को भी खो देता है।

क्रोध

क्रोध दूसरा विकार है जो मनुष्य को अस्वस्थ बना देता है—रावण क्रोध से आक्रान्त होकर अपनी विचार शक्ति खो देता है। इसीलिये तो वह श्री राम के बल-पौरुष तथा पराक्रम को नहीं आँक सका। आँखों से हनुमान तथा अंगद के पराक्रम को देखकर भी वह भूल गया कि रामदूत इतने शक्तिशाली हैं। अपने गुप्तचरों, मंत्रियों आदि से सत्य बातें सुनकर भी वह सीता को लौटाकर युद्ध नहीं टाल सका। यहाँ तक कि माल्यवंत तथा विभीषण से सत्परामर्श को सुनकर वह क्रोध से काँप उठा और उसने उनका अपमान किया। परिणामतः वह अपने मानसिक स्वास्थ्य को कायम न रख सका और अन्त में विनाश को प्राप्त हुआ। क्रोध से वह कई बार मूर्च्छित हो जाया करता था। यह मानसिक विकार था जिससे आक्रान्त होकर भी उसने उपेक्षा की और स्वयं को स्वस्थ समझता रहा परन्तु विवेक होने पर वह कहता—"मैंने भ्रम में पड़कर या चित्त मोह से तुम्हारी बात न मानी।"[30]

परन्तु उसके बाद फिर वह विकार ग्रस्त होकर क्रोध-मूर्च्छित हो जाता तो वैसी ही बातें करने लगता एक बार कुंभकरण ने भी रावण को मंदोदरी तथा विभीषण के शब्दों को बल देते हुए समझाने का प्रयत्न किया और कहा, "अब आप रोष (क्रोध) त्यागकर स्वस्थ हो जाइये।"[31] परन्तु परिणाम इच्छित न मिल सका और युद्ध हुआ ही। युद्ध क्षेत्र में विभिन्न योद्धाओं के क्रोध मूर्च्छित होने के प्रसंगों के अतिरिक्त रक्त गन्ध द्वारा उन्मत्त कहकर एक नये कारण को स्पष्ट किया है। क्रोध मूर्च्छित व्यक्ति की चिकित्सा के लिये कवि ने दो उपाय बताये हैं।

1. शीतल जल का अभिषेक तथा 2. मीठे वचनों द्वारा आश्वस्त करना।

मोह

मोह वह मानसिक आवेग है जो मनुष्य को संज्ञा-शून्य कर देता है। मोह की वृद्धि पर मनुष्य मानसिक क्लेश का शिकार हो जाता है और पूर्णतः निरुत्साहित होकर उदासीन हो जाता है। कभी-कभी मद्यपान के द्वारा भी मोह उत्पन्न हो जाता है, यह बात कवि ने बतायी है। रावण "मैं पीड़ित हूँ" ऐसा महसूस करने लगा और इस प्रकार धीरे-धीरे वह 'मोह 'पीड्यमान' हो गया। एक बार श्री राम पर भी यह आघात हुआ वह 'मोह से पीड़ित हुए'। इससे उनके पैर लड़खड़ाने लगे। सारा अंग विह्वल हो गया, वे मृत शरीर से गिर पड़े, उनकी आँखें लाल थीं, अवस्था उन्मत थी। राक्षसों ने

यह घोषणा की कि श्री राम मारे गये। रामादल के लोग भी यही महसूस करने लगे परन्तु ऐसा हुआ नहीं था। वे मोह से पीड़ित थे, उनकी चेष्टा समाप्त हो चुकी थी निःश्वास मंद हो गयी, वे रक्त रंजित थे, परन्त काल-ज्ञान वेत्ता विभीषण ने कहा ये मरे नहीं हैं इनकी मुख श्री नहीं गयी, इसलिये जीवित हैं।[32]

अन्त में राम स्वस्थ हो गये। रामायण में मोह-कारक वायु तथा शब्द का भी उल्लेख प्राप्त होता है। लंका के चैत्यपाल मोहित हो गये। हनुमान जी द्वारा किये जाने वाले तोड़-फोड़ की विध्वंसक आवाज से प्रासाद रक्षक मूर्च्छित हो गये।

जब दोनों रघुवंशी भ्राता पुनः और स्वस्थ और सानन्द हो गये तब रावण ने यह समाचार सुनकर निम्न शब्द कहे—"न जाने कौन से प्रभाव से या किस प्रकार की माया से या किसी प्रकार की मोहिनी औषधि से ये दोनों भाई पुनर्जीवित हो गये।"[33]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि मोहिनी औषधियों का भी उस समय परिचलन था आगे उसने यह भी स्वीकार किया कि श्री राम निश्चय ही साक्षात् भगवान नारायण हैं जो रोग-शोक से सर्वथा परे हैं।[34]

इस प्रकार राम के प्रभाव को देखकर रावण निरुत्साहित हुआ परन्तु फिर वह इस ज्ञान को भूल गया और श्री राम से युद्ध करने के लिये तैयार हो गया।

ईर्ष्या

ईर्ष्या का समावेश काम-क्रोध-मोह-लोभ-मद-मत्सर इन छः तत्वों में ही हो जाता है अतः इसका पृथक् से वर्णन करना उचित नहीं जान पड़ता।

लोभ

रामायण में एक प्रसंग में धन का लोभी व्यक्ति खाद्य में विष मिलाकर किसी को दे देता है यह स्पष्ट है। खाद्य में विष मिलाकर देना एक अपराध है परन्तु इस पाप का आधार लोभ है, धन का लोभ। केवल धन का ही क्यों खाने के लोभ को भी रामायण में दर्शित किया है। निरन्तर खाते रहने पर भी जी नहीं अघाता था और वे लोग लगातार खाते रहते थे। यद्यपि यह कथन स्वादिष्ट भोजन के लिये ही प्रयुक्त हुआ है फिर भी अधिक खाने का लोभ तथा स्वादिष्टता का लोभ उसे रुग्ण बना देता है।

उपरोक्त विशेष लोभ का कारण है—'प्रज्ञापराध'। मनुष्य अपनी सुबुद्धि के अपराध के कारण कई त्रुटियाँ कर बैठता है जो उसे विपत्ति में डाल सकती हैं तथा इच्छानुसार फल प्रदान नहीं करतीं। उदाहरणार्थ—

भला कौन आदमी आम को कुल्हाड़ी से काटकर उसकी जगह नीम लगायेगा? और फिर उस नीम को दूध से सींचता रहेगा और फिर वह आशा करता रहेगा कि वह नीम मधुर फल देगा।[35] यह उसकी बुद्धि का अपराध मात्र है। यदि कोई आशा करे कि नीम से मधु टपकेगा तो वह भी त्रुटि है[36] अथवा कोई मनुष्य पलाश के वृक्ष पर लगे सुन्दर फूलों को देखकर यह अनुमान लगा ले कि इसके फल इससे भी सुन्दर, मनोहर तथा मधुर होंगे और इसी आशा से वह आम के पेड़ों को काटकर उसके स्थान पर पलाश लगवा दे और फिर अपनी चिर प्रतीक्षित अभिलाषा की पूर्ति चाहे, तो वह फल देखकर निश्चय ही पश्चाताप करेगा।[37]

मद

मदिरापान एक बुरा व्यसन है। इसके सेवन करने के बाद मनुष्य अपने सम्पूर्ण विवेक को भूल जाता है और रुग्ण होने पर भी अपने आपको स्वस्थतर महसूस करने लगता है। वह शारीरिक रूप से अधिक शक्तिशाली तथा मानसिक रूप में चिन्ता मुक्त हो जाता है। इसलिये उसकी वार-वार पीने की आदत हो जाती है "मधुपान प्रमत्त" कहकर उसके उन्नत होने की ओर संकेत किया है, इसलिये रावण ने एक स्थान पर कहा है "राक्षसों ! मेरे मदपान कर मतवाला होने को तुम युद्ध स्थल में उत्साह वृद्धि के लिये वीरों द्वारा किया जाने वाला औषधि विशेष का पान समझो।"[39]

मदिरापान की अवस्था का वर्णन करते हुए महर्षि ने कहा है–

मदिरापान से जिसके नेत्र चंचल हो रहे थे जो नशे से विहल हो लड़खड़ाते हुए चलते थे। जिनके वस्त्रों को उनकी प्रेयसियों ने पकड़ रखा था जो शत्रुओं पर कुपित थे जिनके हाथों में गदाशूल तथा खड्ग थे जो खाने-पीने में लगे हुए थे जो बहुमूल्य शैया पर अपनी प्रेयसी के साथ सो रहे थे। उपरोक्त पदों में मदपान के बाद या मदपान के प्रभाव में आकर किये जाने वाले कार्यों का स्पष्ट उल्लेख है।

मदिरापान-काम क्रोध का परस्पर सम्बन्ध है। रावण तो इन सभी दुर्गुणों से आक्रान्त था ही। हनुमान जी ने उसे अपने महल में स्फटिक मणि की वेदी पर नीलम के बने शैयासनों पर जिनके पाये आदि हाथी दाँत थे तथा जो स्वर्ण-जटित थीं, पर सोते देखा। अशोक पुष्पों की माला को धारण किये सो रहा था। चारों ओर स्त्रियाँ चँवर कर रही थीं। भवन उत्तम धूपों से सुवासित था। रावण वस्त्राभूषणों से अलंकृत तो था ही, कानों में कुण्डल चमक रहे थे, आँखें लाल, ऐसा प्रतीत होता था कि वह रात्रि में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता मदिरा पीकर आराम कर रहा है।

वे क्षीण-कटि प्रदेश वाली राक्षस राज की स्त्रियाँ मद के प्रभाव तथा रति-क्रीड़ा के परिश्रम से थककर जहाँ-तहाँ जो जिस अवस्था में थीं, सो गयीं।[39]

इस प्रकार रामायण में मद का प्रभाव स्पष्टतः उल्लिखित है।

शोक

शोक भी उतना ही दुःखदायी है जितने उपरोक्त सभी मानसिक उद्वेग। विनम्र प्रकृति वाले व्यक्ति तो शोक से मूर्च्छित हो ही जाते हैं। वलवान व्यक्ति भी कभी उसके निर्मम शिकार वन जाते हैं। भरत शोक संतप्त होकर संज्ञा शून्य हो गये और दो-घड़ी तक मूर्च्छित रहे।

सीता भी शोक के कारण मूर्च्छित हो गयी थीं।[40] अन्य अनेक स्थलों पर भी सीता की शोकोन्माद अवस्था का उल्लेख मिलता है।[41]

एक वार श्री राम भी शोक से मूर्च्छित हो गये। राजा दशरथ के अभाव में सम्पूर्ण अयोध्या निवासी अस्वस्थ और व्याकुल हो गये। सुग्रीव भी शोक से पीड़ित होकर निरुत्साहित हुए। श्री राम ने उस पीड़ित सुग्रीव को अपने हृदय से लगाकर आश्वस्त किया[42] जो पुरुष उत्साहहीन हो जाते हैं, दीन तथा शोक ग्रस्त रहते हैं उनके सारे काम बिगड़ जाते हैं, और स्वयं बड़ी विपत्ति में पड़ जाते हैं। सुग्रीव के

उक्त शब्दों ने श्री राम को आश्वस्त किया और वे क्रियाशील हुए। शोक मिहिता व्यक्ति के लिए रामायण में एक अन्य चिकित्सा भी दी है और वह है ठंडे जल का प्रयोग।

सुग्रीव ने जब समझा कि दोनों ही राघव मारे गये तो वह शोक संतप्त होकर उर्द्धचेतनावस्था में गिर पड़े तब त्रिभीषण ने उनके नेत्रों को अपने भीगे हाथों से पोंछा और उन पर ठंडा जल छिड़का। जल के प्रयोग से सुग्रीव चेतन हुए और उन दोनों रघुवंशियों की मूर्च्छा ठीक करने का प्रयत्न करने लगे।[43]

रजोगुण

सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण में सतोगुण सर्वश्रेष्ठ है, यदि व्यक्ति इससे सम्पन्न है तो उसे कोई व्याधि पीड़ित नहीं कर सकती तथा वह मोक्ष प्राप्त कर लेगा, किन्तु यदि ऐसा नहीं होता है तो रजोगुण एवं तमोगुण उसके चित्त पर अपना अधिकार जमा लेंगे तथा विकारोत्पन्न कर देगे। रामायण में भी उल्लेख मिलता है–"यह राजसमाज कार्य-साधन में असमर्थ और अव्यवस्थित है, इसे धिक्कार है क्योंकि इस रजोगुण मूलक क्रोध के ही कारण समर्थ होते हुए भी मैंने सीता की रक्षा नहीं की।"[44]

इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि क्रोध आदि मानसिक-विकारों का उत्पत्ति कारण रज एवं तम ही है। यह रामायणकार महर्षि वाल्मीकि ने भी माना है और इसी कारण यत्र-तत्र प्रसंग वश इनका उल्लेख भी किया है।

तमोगुण

तमोगुण ही उपरोक्त सभी प्रकार के विकारों के उत्पन्न करने का मूल-भूत कारण है। रामायण में तामस, तमोमयी महामाया का कई स्थानों पर उल्लेख किया गया है। यथा–

उस तामस युद्ध में समस्त देवता और राक्षस परस्पर जूझते हुए एक दूसरे को पहचान नहीं पाते थे।[45]

पूर्वकाल में पशुपति महादेव जी से उसको जो तपोमयी महामाया प्राप्त हुई थी उसमें प्रवेश करके उसने अपने को छिपा लिया और अत्यन्त क्रोध पूर्वक शत्रु सेना में घुसकर उसे खदेड़ना आरम्भ किया।[46]

इस प्रकार तमोगुण के विकारों एवं परिणामों को देखकर ही महर्षि ने रामायण में वर्णित युद्ध का नाम ही 'तामस युद्ध' रख दिया। अतः स्पष्ट है कि तमो गुण ही मानसिक एवं शारीरिक विकारों का जन्मदाता है।

इस प्रकार रामायण में मानसिक रोगोत्पत्ति के कारणों में काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, लोभ, मद, शोक, रजोगुण एवं तमोगुण का वर्णन किया गया है।

(III) आगन्तुक कारण

आघात जन्य, ऋतु सम्बन्धी, स्थान सम्बन्धी

रामायण में रोगोत्पत्ति के आन्तुक कारणों का भी उल्लेख मिलता है। आगन्तुक रोगों से तात्पर्य ऐसे रोगों से है जो बिना किसी पूर्व कारण के अकस्मात् उत्पन्न हो

जाये जैसे-अस्थि-भंग या शरीर के किसी अंग का अवयव का कटकर गिर जाना इत्यादि। जिस प्रकार शारीरिक रोगों का कारण वात-पित्त कफादि होते हैं तथा मानसिक रोगों का कारण काम-क्रोध, मोह, मद, ईर्ष्या रजो गुण एवं तमो गुण बताये गये हैं उसी प्रकार आगन्तुक रोगों के भी कुछ कारण होते हैं जो आघात जन्य, ऋतु सम्बन्धी एवं स्थान सम्बन्धी कहे जाते हैं।

आघातजन्य

आघातजन्य कारण से तात्पर्य ऐसे कारणों से है जिसमें व्यक्ति को अकस्मात् आघात लगे। यद्यपि आघात का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रज्ञापराध से ही है तथापि वह आगन्तुक ही कहा जा सकता है। रामायण में उल्लिखित है कि महारानी कैकयी राम के राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर जब अकस्मात् ही राम को वन गमन तथा भारत को राज्य की याचना साधिकार करती है तो राजा दशरथ को एक धक्का (आघात) लगता है और परिणाम स्वरूप वह कुछ समय के लिये मूर्च्छित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त आघात से यह भी तात्पर्य लिया जा सकता है कि आघात का अर्थ चोट है—यथा-कवि ने एक स्थान पर रावण के देह का वर्णन करते हुए उसकी छाती पर ऐरावत हाथी के दाँतों के आघात चिन्ह का वर्णन किया है।[47]

इनके अतिरिक्त और भी आकस्मिक आघातों का वर्णन रामायण में मिलता है यथा—अंग विह्वल होना, बुद्धि विचेतन, नष्ट चेतना, दीनता, आतुरता, आँखें लाल होना, उन्मत्तता, संज्ञा-शून्यता, शिथिलता आदि।

रामायण में आकस्मिक मृत्यु भी विशेष स्थान रखती है। कहा जाता है कि राम के समय में कोई पाप नहीं होता था जिसके कारण उनके राज्य में कोई भी व्यक्ति आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त नहीं करता था। कोई पिता अपने पुत्र की मृत्यु नहीं देखता था, स्त्रियाँ विधवा नहीं होती थीं इतना होने पर भी रामायण में जबरदस्ती मृत्यु प्राप्ति के कुछ कारणों का उल्लेख किया गया है। यथा—

1. आपातमरण[48]
2. उपवास द्वारा प्राण त्यागना[49]
3. विष पीकर[50]
4. छुरा भोंककर
5. आग में जलकर[51]
6. गला घोंटकर[52]

इस प्रकार रामायण में रोगोत्पत्ति के आगन्तुक कारणों में आघात जन्य कारण तथा आकस्मिक मृत्यु का उल्लेख प्राप्त होता है।

ऋतु सम्बन्धी

मानव स्वास्थ्य के लिये आयुर्वेद में ऋतु के अनुकूल आचार-व्यवहार को अधिक महत्व दिया गया है। महाकाव्य रामायण में भी परम्परा से ऋतु-वर्णन तथा तदनुसार आचार-व्यवहार को भी उतना ही महत्व मिला है।

आयुर्वेदमतानुसार वर्ष के 12 महीने में सूर्य की गति के अनुसार उत्तरायण

तथा दक्षिणायन दो अयन माने गये हैं। ये ही आयुर्वेद में 'आदान काल' तथा 'विसर्ग काल' के नाम से पुकारे गये हैं। छः ऋतुएँ कही गयी हैं जो अपने-अपने समय में व्यक्ति के शरीर को प्रभावित करती हैं उनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है–

1. ग्रीष्म ऋतु

ग्रीष्म ऋतु का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका वर्णन करते हुए श्री राम लक्ष्मण से कहते हैं, "ग्रीष्म की गर्मी तथा विरहाग्नि से संतृप्त मुझे, पंपासर बड़ी सुहावनी लगती है।"[53] इससे स्पष्ट है कि ऋतु का शरीर पर प्रभाव पड़ता है, ग्रीष्म ऋतु शरीर को झुलसा देती है।

2. वसन्त ऋतु

वसन्त ऋतु का भी शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है, वह कामोद्दीपक है जिसके कारण काम नामक मानस दोष से उत्पन्न होने वाले कामोन्माद इत्यादि शारीरिक एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति संभव होती है। रामायण में भी इस सत्य को स्वीकार किया गया है। श्री राम इस ऋतु में कामोद्दीपक वातारण को देखकर अनंगवेदना को उद्दीप्त अनुभव करने लगे।[54]

वसन्त ऋतु में चलने वाला शीतल एवं सुगन्धित मलयानिल विरही श्री राम को कामाग्नि में जला डालता रहा है।[55]

यह इतनी कामोत्तेजक होती है कि इसके कारण राम अपने प्राण त्याग तक के लिये तैयार हो जाते हैं।

3. वर्षाऋतु

वर्षा ऋतु का भी शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इस ऋतु में सर्वत्र जल ही जल व्याप्त हो जाता है। अतः ज्वर तथा पीनस इत्यादि रोग होने का भय रहता है। इसीलिए इस ऋतु में स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए। रामायण के किष्किंधा काण्ड में भी इस ऋतु का वर्णन प्राप्त होता है।

4. शरद ऋतु

लक्ष्मण के अनुसार यह ऋतु योग का सहारा लेते हुए मन को एकाग्र करने की है इसमें सभी चिन्ता दूर हो जाती है।[56]

इस समय में कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये, मन को प्रसन्न रखना चाहिए तथा चित्त की एकाग्रता को कायम रखना चाहिए। इससे पराक्रम की वृद्धि होगी तथा शक्ति का गुणन होता है।[57]

5. शिशिर एवं हेमन्त ऋतु

इन ऋतुओं का भी शरीर पर स्पष्ट प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ता है क्योंकि इन दिनों में अत्यन्त शीत होता है उसे कष्ट साध्य कहते हैं। राम कहते हैं, "अत्यन्त सुख में फले हुए सुकुमार भरत जाड़े का कष्ट सहते हुए रात के पिछले प्रहर में कैसे सरयू के जल में डुबकी लगाते होंगे।"[58]

लक्ष्मण ने भी राम से कहा है–भैया ! इस ऋतु में अधिक ठंडक या पाले के कारण लोगों का शरीर रूखा हो जाता है। जल अधिक ठंडा होने के कारण पीने के

योग्य नहीं रहता है और आग बड़ी प्रिय लगती है।[59]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ऋतुएँ भी व्यक्ति के शरीर को बहुत प्रभावित करती हैं तथा समसामयिक आगन्तुक रोगों का प्रबल कारण भी बन जाती हैं। अतः ऋतु विशेष की ऋतुचर्या के पालन का विशेष ध्यान रखना चाहिये ऐसा रामायण का निर्देश है।

स्थान सम्बन्धी

स्थानों का भी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। रामायण में भी सभी प्रकार के स्थानों का उल्लेख किया जाता है। क्रमशः देखने पर जहाँ रामायण में अयोध्या, जनकपुरी इत्यादि महानगरों का वर्णन किया गया है वहीं मलय, दर्दुर, मेरु आदि पर्वतों का भी उल्लेख किया गया है। दण्डकारण्य, वन, आश्रम तथा समुद्र तट आदि का भी इसमें यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है।

स्थान व्यक्ति के शरीर में रोगोत्पत्ति का कारण बनते हैं ऐसा रामायण में कहीं स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है फिर भी कुछ स्थानों पर रहने से कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। जैसे–'मलय तथा दर्दुर पर्वतों का स्पर्श करके हवा बहने लगी जो सुखदायिनी स्वास्थ्य कर थीं।'[60]

रामायण में कुछ ऐसे प्रदेशों का नामोल्लेख अवश्य प्राप्त होता है जो प्रकृतितः स्वस्थ एवं निरामय थे। सदा स्वस्थ रखने वाले प्रदेशों में कारूप-पथ तथा चन्द्रकान्त का नाम आता है। ये दोनों ही प्रान्त स्वस्थ थे। "कारूप निरामय" तथा "चन्द्रकान्त निरामय" कहकर स्पष्ट किया है।

राम ने समद्र पर अग्निवाण साधा तब समुद्र घबराया और बोला द्रुमकुल्य नामक विख्यात पवित्र देश है वहाँ रूप एवं कर्म में भयंकर आभीर जाति के लोग निवास करते हैं उन्हीं पर आप अपना वाण सफल करिये। राम ने वैसा ही किया साथ ही वहाँ की पृथ्वी को वरदान भी दिया–

यह मरुभूमि पशुओं के लिये हितकारी होगी, यहाँ रोग कम होंगे। यह भूमि फल-मूल और रसों से सम्पन्न होगी। यहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे। दूध की भी बहुतायत होगी। यहाँ सुगन्ध छायी रहेगी और अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होंगी।[61]

इस भूमि का नाम मरु प्रदेश हुआ जो सभी मनुष्यों को स्वस्थ कर रहा है।

यद्यपि रामायण में विविध स्थानों का वर्णन प्राप्त होता है तथापि उनका व्यक्ति के शरीर पर किस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है, ऐसा कहीं भी निर्देश प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार रामायण में वर्णित रोगोत्पत्ति के विविध कारणों की संक्षेप में समीक्षा की गयी।

संदर्भ

1. दोषधातु मल मूलं हि शरीरम्।। सु.सू. 15/3

2. दोष धातु मलमूलो हि देहः। अ. सं. 19/3
3. दोष धातु मला मूलं सदा देहस्य।। अ. हृ. 11/1
4. वात-प्ति-श्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः।
तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्यो र्ध्वसन्नविष्टैः शरीरमिदं
धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः, अतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके।
त एव च व्यापन्नाः प्रलय हेतवः। सु. सू. 21/2
5. उत्साहोच्छवास्- निश्वास-चेप्टा धातुगतिः समा।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माऽविकारजम्।। च. सू. 18/49
6. च. सू. 12
7. सु. नि. 1
8. बा. 32/16, 17, 19-22-26। बा. 33-1-26 तक
9. अशरीरः शरीरेषु, वायुश्चरति पालयन्।
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारूभिः।। उ. 35/60
वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत्।
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत
अधैव च परित्यक्तः वायुना जगदायुषा।
अद्यैव ते निरूच्छवासाः काष्ठकुड्डयोपमा स्थिताः।। उ. 35/62
10. दर्शनं पक्तिरुष्मा च क्षुत् तृष्णा देहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्त कर्मा विकारजम्।। च. सूत्र 18/50
11. भ्राजिष्णुतामन्नरुचिं अग्निदीप्तिमरोगताम्।
संसर्पत् स्वाः सिराः पित्तं कुर्यात् चान्यान्गुणानपि।। सु. शा. 7
12. प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवंब्रुवती जनकात्मजा।
अधोगतमुखीबाला विलुप्तुमुपचक्रमे।। सु. 26/1
उन्मत्तेव-प्रमत्तेव भ्रान्ताचितेव शोचती।
उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले।। सु. 26/2
13. स्नेहो बन्धः स्थिरत्वं च गौरवं वृषता बलम्।
क्षमा धृतिरलोभश्च कफकर्मा विकारजम्।। च. सू. 18/51
14. स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्यं बलमुदीर्णताम्।
करोत्यन्यान् गुणांश्चापि वलासः स्वाः शिराश्चरन्।। सु. शा. 7
15. वा. रा. उ. 5/7, 8
16. अष्टाङ्ग संग्रह अ. 22/10
17. त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः।। उ. 5/7
त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः।
त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्नि समतेजसः।। उ. 5/8
विवृद्धिमगमस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव।
18. त्रिविध तु निमित्तमेषामसात्म्येन्द्रियार्थ संयोगः प्रज्ञापराधः परिणामश्च। अष्टांग संग्रह 22/11

19. अष्टाङ्ग संग्रह 22/11

20. कायवाङ्मनोभेदेन तु त्रिविधमत्यहिंत प्रज्ञापराधः। अ. स. 22/12

21. अष्टांग संग्रह 22/12

22. अष्टांग संग्रह 22/13 परिणामः पुनः कालः उच्यते।

23. वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोष संग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च।। च. सू. 1/56

24. रजस्तमश्च मानसौ दोषौ-तयोर्विकाराः-काम,
क्रोध-लोभमोहेर्ष्यामानमदशोक चित्तोद्वेगाभयाहर्षादयः। च. वि. 6/6

25. विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।। च. सू. 9/3
रोगस्तु दोष वैषम्यं दोष साम्यमरोगता।। अ. हृ. सू. 1/20

26. तत्र तु खल्वेषां द्वयानामपि दोषाणां त्रिविध प्रकोपणम्।
तद्यथा—असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञापराधः परिणामश्चेति।। च. वि. 6/7

27. तदिदं वीर सम्प्राप्तं यन्मया पूर्वमीरितम्।
काम- मोह परीतस्य यत् तन्न रुचितं तव ।। यु. 109/4

28. नदन्ति कामं शकुना मुदिताः संङ्घशः कलम्।
आह्वयन्त इवानोन्यनं कामोन्माद करामम।। कि. 1/46

29. अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्।। सु. 21/8

30. विभ्रमाच्चित मोहाद् वा बलवीर्याश्रयेण वा।
नाभिपन्न मिदानीं यद् व्यर्था तस्य पुनःकथा ।। यु. 63/24

31. अलं राक्षसराजेन्द्र संतापमुपपद्य ते ।
रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि।। यु. 63/31

32. नैतत् किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति।
नह्येनं हास्यते लक्ष्मीदुर्लभा या गतायुषम्।। यु. 46/40

33. तन्न जाने प्रभावैर्वा मायया मोहनेन वा।। यु. 72/7
शरबन्धाद् विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। यु. 72/7.5

34. यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम्।। यु. 72/11

35. आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत् तु कः।
यश्चैनं पयसा सिचेन्नैवास्य मधुरो भवेत्।। अयो. 35/16

36. अभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च।
न हि निम्बात स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः।। अयो. 35/17

37. कश्चिदाम्रवणं छित्वा पलाशांश्च निषिंचति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे ।। अयो. 63/8

38. मतोऽयमिति मा मंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे।

मदोऽयंसम्प्रहारेऽस्मिन् वीरपानं समर्थ्यताम्।। कि. 11/38

39. मदव्यायायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः।। सु. 10/35

40. लक्षणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा।
परं विषादमागम्य वैदही निपपात ह।। उ. 48/1
सा मुहूर्तमिवा संज्ञा वाष्पपर्याकुलेक्षणा।
लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा।। उ. 48/2

41. उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती।
उपावृता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले।। सु. 26/2

42. निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वाथा व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति।। यु. 2/6

43. एवमुक्त्वा ततस्तास्य जलकिन्नेन पाणिना।
सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः।। यु. 46/34
ततः सलिलमादाय विद्यया परिजप्य च।
सुग्रीवनेत्रे धर्मात्म प्रममार्ज विभीषणः।। यु. 46/35

44. धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम्।
ईश्वरेणापि यद् रागान्मया सीता न रक्षिता।। सु 55/16

45. तस्मिंस्तु तामसो युद्धे सर्वे ते देव राक्षसाः।
अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युध्यमानाः परस्परम्।। उ. 29/3

46. तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां पशुपतेः पुरा।
प्रविवेश सुसंरब्धस्तत् सैन्यं समभिद्रवत्।। उ. 29/23

47. ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ।। सु. 10/16

48. चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौचस्य स्वमिव द्विजाः।। यु. 63/19)

49. यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
अहं प्रायमिहासिष्ये न च शक्ष्यमि जीवितुम्।। अयो. 21/27

50. प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा
सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज।

51. न ते करिष्यामि वचः सुदारुणम्
ममहितं केकयराजपांसने।। अयो. 12/109

52. कण्ठमस्याः नृशंसायाः पीडयामः किमास्यते।
निवेद्यताम् ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह।। सु. 24/42

53. शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा।। कि. 1/6

54. मां हि शोक समाक्रान्तं संतापयति मन्मथः।

हृष्टं प्रनदमानश्च समाह्वयति कोकिलः।। कि. 1/23
स्वनन्ति पादपाश्चेमेममानङ्प्रदीपकाः।
अशोकस्तवकाङ्गारः पट्पदस्वननिः स्वनः।। कि. 1/29

55. मन्मथायाससम्भूतो वसन्तगुणवर्धितः।।
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव। कि. 1/32.5

56. किमार्यकामस्य वंशगतेन, किमात्मपौरुष्यपराभवेन।
अयं हिया संह्रियते समाधिः, किमत्र योगेन निवर्तते न।। कि. 30/16

57. क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं, समाधियोगानुगतं च कालम्।
सहायसामर्थ्यमदीन सत्त्वः स्वकर्महेतुं च कुरुष्व तात।। कि. 30/17)

58. सोऽपिवेलामिमां नूनमाभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयासि सरयूं नदीम्।। अ. 16/29
अत्यन्त सुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपरारात्रेषु सरयूमवगाहते।। अ. 16/30

59. नीहार परुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी।
जलान्युपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः।। अ. 16/5

60. मलयं दर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोहनिलः।।
उपस्पृश्य ववौयुक्त्या सुप्रियात्म सुखं शिवः।। अयो. 91/24

61. विख्यातं त्रिपु लोकेषु, मरुकान्तारमेव च।
शोषयित्वा तु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः।। यु. 22/40
वरं तस्मै ददौ विद्वान् मखेऽमरविक्रमः।। यु. 22/41
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूल रसायुतः।
वहूस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः।। यु. 22/42

षष्ठ परिवर्त

वाल्मीकि रामायण में वर्णित रोग एवं उनका निदान

चरक के अनुसार आयुर्वेद के अष्टांगों में काय-चिकित्सा की सर्वोपरिता स्वीकार की गयी है।[1] काय-चिकित्सा की कोई परिभाषा उल्लिखित नहीं है। सुश्रुत ने काय-चिकित्सा पद की विशद् व्याख्या की है।[2] अष्टांग संग्रह[3] एवं अष्टांग हृदय[4] में 'काय' पद प्रयुक्त हुआ है।

सुश्रुत के अनुसार जिस अंग में सर्वशरीर गत रोगों यथा—ज्वर, रक्त-पित्त, शोध, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, प्रमेह एवं अतिसार आदि की चिकित्सा का वर्णन हो, वह काय-चिकित्सा है।[5]

यद्यपि 'काय' शब्द का सामान्य अर्थ शरीर या देह होता है, किन्तु आयुर्वेदज्ञों द्वारा प्रयुक्त काय शब्द चरक के टीकाकारों के अनुसार अन्तरग्नि का बोधक है। भोजन में रस आदि निर्माण करने वाले पाचक रस एवं जठराग्नि सहित भूत एवं धातुओं की अग्नियाँ इसमें सम्मिलित हैं।[6]

अग्नि के यथावत् रहने पर मनुष्य स्वस्थ एवं नीरोग रहता है, अग्नि के शांत हो जाने पर मनुष्य मृत हो जाता है और अग्नि के विकृत होने पर वह रुग्ण हो जाता है। इसीलिये इस चिकित्सा में अग्नि की चिकित्सा की जाती है। शरीर का आधार अग्नि है, इसलिये सुश्रुत ने कहा है—'जाठरो भगवानग्निः ईश्वरोऽन्तस्य पाचकः'[7] भगवान स्वयं वैश्वानर अग्नि बनकर प्राणियों के शरीर में आश्रित होकर खाद्य, पेय, लेह्य और चर्व्य सब प्रकार के अन्नों को पचाता है। इसी अग्नि की विकृति की चिकित्सा इस अंग में की जाती है।

रामायण एक चिकित्सा—ग्रन्थ नहीं है तथापि विभिन्न रोगों से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों का दर्शन महाकवि ने अपनी लेखनी के माध्यम से कराया है। रामायण में वर्णित विविध रोगों की समीक्षा निम्न प्रकार की जा सकती है-

प्रथम परिच्छेद

1. शारीरिक रोग-अतिसार (आंत्ररोग)

सुश्रुत के अनुसार क्षुद्रांत्र में विक्षोभक गुण आहार-द्रव्य के पहुँचने पर वहाँ अग्नि शांत हो जाती है, कफ स्राव बढ़ जाता है। आहार के विक्षोभक होने से वायु भी प्रकुपित हो जाती है आँत का विक्षुब्ध हुआ यह वायु जब मलयुक्त बढ़े हुए इस श्लेष्मस्राव को नीचे की ओर फेंकने लगता है तो उसे अतिसार कहते हैं।[8]

श्लैष्मिक अतिसार या आमातिसार

अति-मात्रा में गुरु, शीत, स्निग्ध, गुण भोजन के सेवन से अग्नि के मंद हो जाने के कारण उत्पन्न हुए अतिसार को श्लैष्मिक अतिसार (Dyspeptie Diarrhoea) कहते हैं। इसमें मल चिकना, गाढ़ा, पानी में डूबने वाला, श्वेत-वर्ण, श्लेष्म-द्रव युक्त, दुर्गन्धित होता है। रोगों में क्षुधा-नाश, अरुचि, वमन, तन्द्रा, आलस्य, मंदता आदि मंदाग्नि सूचक लक्षण होते हैं।[9]

पित्तातिसार (Toxic Diarrhoea)

किसी उष्ण-तीक्ष्ण गुण विष-द्रव्य के क्षुद्रांत्र में पहुँचने पर उसकी श्लेष्म-कला में तीव्र पैत्तिक शोथ होकर जो हरे-पीले रंग के दुर्गन्ध युक्त पतले दस्त होने लगते हैं, जिस अवस्था में रोगी में ज्वर, सन्ताप, पिपासा, मूर्च्छा, पाक, आदि पित्त प्रकोप सूचक लक्षण होते हैं, उसे पित्तातिसार कहते हैं।[10]

वातातिसार

आंत्र-गत वायु में विक्षोभ से जो अतिसार अल्प-अल्प मात्रा में बार-बार होता है उसे वातातिसार (Irritable Colon) कहते हैं।[11]

भय-शोक आदि मानव भावों से उत्पन्न होने वाले अतिसार को मानस अतिसार कहते हैं।

चिकित्सा

श्लैष्मिक अतिसार की चिकित्सा

इसमें लंघन तथा मंदाग्निहर, दीपन, पाचन तथा स्वल्प-मात्रा में संग्राही औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। निम्नलिखित में से किन्हीं एक-दो योगों का प्रयोग किया जा सकता है-

1. हरीतकी चूर्ण 3-4 माशे के साथ एक-दो माशे पिप्पली या सौंफ या सोंठ को मिलाकर 3-4 बार दें।
2. दाडिमाष्टक चूर्ण वंशलोचन-1 तोला, चतुर्जातक 1-1 तोला, अजवायन, धनिया, जीरा, पिप्पली मूल, त्रिकुट प्रत्येक 5 तोला अनार दाना तथा खाण्ड 32-32 तोला।
3. लवंगचतुः समचूर्ण-लवंग, जातिफल, जीरा, सुहागा, समान भाग, शहद के साथ दें।
4. अभ्यादि चूर्ण-हरड़, अतीस, हींग, त्रिकटु, काला नमक सब समान भाग।
5. आजमोदादि चूर्ण-अजवाइन, सोंठ, मोचरस, धातकी समान भाग दें।

पैत्तिक अतिसार की चिकित्सा

पैत्तिक अतिसार अर्थात् तीव्रातिसार में जिसमें ज्वर, दाह और अतिसार अधिक मात्रा में होते हैं, निम्नलिखित योगों में से किसी का भी प्रयोग करना चाहिये।

1- **गुडूच्यादि कषाय** :- गिलोय, अतीस, धनिया, सौंठ, विल्व, मुस्ता, सुगन्धवाला, पान, कुडा की छाल, चिरायता, चंदन, खस, पित्त-पापड़ा समान भाग।

2- **विल्वादि क्वाथ** :- बिल्व, इन्द्र जौ, मोथा, सुगन्ध वाला, अतीस समान भाग।

3- **लोध्रादि चूर्ण** :- लोध्र, धातकी, विल्व, मुस्ता, इन्द्र जौ, आम की गुठली समान भाग।

वाल्मीकि रामायाण में अन्वेषण के पश्चात् भी जिज्ञासु अनुसंधित्सु को अतिसार अथवा आंत्र-रोग के विषय में विशद् वर्णन प्राप्त नहीं हो सका है किन्तु एक-दो स्थलों पर ही 'आंत्र' शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि यह अंग एवं रोग वैद्यों के संज्ञान में था।

ज्वर

'ज्वर संताप लक्षणम्' वस्तुतः ज्वर तो एक ही प्रकार का होता है, क्योंकि ताप या संताप का मिलना ही इस अवस्था में प्रमुख लक्षण है। तथापि शास्त्रकारों ने ज्वर का विस्तार करते हुए कई प्रकार के भेद किये हैं। यथा—द्विविध, त्रिविध, चतुर्विध, पंचविध, सप्त-विध तथा अष्टविध-प्रकारों का वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त विशिष्ट ज्वरों में भी कुछ उपभेद बताये गये हैं।

ज्वर आठ कारणों से मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होता है जैसे—वात से, पित्त से, कफ से, वात-पित्त से, पित्त-कफ से, वात-कफ से एवं वात-पित्त-कफ से आठवाँ आगन्तुक कारण से।[12]

वायु कोप का कारण

रुक्ष, लघु, शीतल पदार्थों के सेवन से, परिश्रम करने से, वमन, विरेचन, और आस्थापन के अतियोग से। मल-मूत्रादि वेगों को रोकने से, उपवास करेने से, चोट लगने से, मैथुन करने से, उद्वेग और शौच होने से, रक्त के अत्यन्त निकलने से, रात्रि में जागने से, शरीर को ऊँचा, नीचा तिरछा आदि करने से, इन सब कारणों के अधिक सेवन से शरीर में वायु कोप होता है।[13]

वह कुपित हुई वायु-आमाशय में प्रवेश करके आमाशय की गर्माई में मिल जाती है। फिर वह आहार के सारभूत रस नामक धातु का आश्रय लेकर रस और स्वेद के बहने वाले छिद्रों की रोक देती है फिर पाचकाग्नि को हनन करके पंक्ति स्थान की गर्माई को बाहर निकाल देती है। फिर वह वायु शरीर को यथोचित अग्निबल हीन देखकर बल पा जाती है। वह बल पाया हुआ वात-वात ज्वर को उत्पन्न करता है।[14]

लक्षण

उस ज्वर के यह लक्षण होते हैं—जैसे—ज्वर के चढ़ने के साथ और उतरने के समय शरीर के ताप में विषमता, कभी-कभी शरीर का अधिक तपना और कभी थोड़ा

तपना, ज्वर एक सा रहना, कभी ज्वर तीक्ष्ण और कभी मंद होना आदि।[15]

पित्त-प्रकोप का कारण

पुष्प, अम्ल, लवण, क्षार, चर-परे पदार्थों के सेवन से एवं अजीर्ण कर्ता भोजन के अधिक सेवन से तथा अति तीक्ष्ण, धूप, अग्नि, और संताप के सेवन से, परिश्रम करने से तथा विषम भोजन करने से पित्त का प्रकोप होता है।[16] फिर वह पित्त प्रकुपित होकर आमाशय से गर्मी को उत्तेजन करता हुआ आहार का परिणाम रूप जो रस नामक धातु है उसमें मिलकर स्वेद और रस के बहाने वाले छिद्रों को रोक देता है फिर अपने द्रव से जठराग्नि को हनन कर पाचक स्थान की गर्मी को बाहर निकाल देता है। तब अपना अधिकार पाकर शरीर को पीडन करता हुआ पित्त-ज्वर को उत्पन्न करता है।[17]

लक्षण

उस ज्वर के लक्षण इस प्रकार हैं। शरीर में एक-दम ज्वर का होना, भोजन के पाक के समय दिन के मध्य में, अर्द्धरात्रि में, शरद्ऋतु में विशेषकर ज्वर की वृद्धि होना या उत्पन्न होना। मुख में कटुता, नाक, मुख, कण्ठ, ओष्ठ और तालु का पकना आदि पित्त-ज्वर के लक्षण हैं।[18]

कफ-प्रकोप का कारण

चिकने, मधुर, भारी, शीतल, पिच्छिल, अम्ल, एवं लवण पदार्थों के खाने से, दिन में सोने से, हर्ष से, परिश्रम न करने से इत्यादि कफ वर्धक पदार्थों के अधिक सेवन से कफ का कोप होता है।[19]

वह कुपित हुआ कफ आमाशय में प्रवेश करके जठराग्नि के साथ मिलकर आहार के परिणाम रूप रस नामक धातु के साथ जाकर रस और स्वेद के बहाने वाले छिद्रों को रोक देता है। तब जठराग्नि को हनन करके पाचकाग्नि की गर्मी को बाहर निकाल देता है। फिर अपना अधिकार पाकर शरीर को पीड़ित करता हुआ कफ-ज्वर उत्पन्न करता है।[20]

लक्षण

कफ-ज्वर के लक्षण कुछ इस प्रकार हैं—शरीर में एक-दम ज्वर का प्रगट होना। भोजन करते ही पूर्वाह्न में, रात्रि के प्रथम भाग में एवं वसन्तु ऋतु में ज्वर का अधिक होना, शरीर में भारीपन होना आदि कफ ज्वर के लक्षण होते हैं।

ज्वरों के विभिन्न प्रकार निम्न-लिखित हैं-

(I) द्विविध ज्वर

अ. अधिष्ठान भेद से—शारीरिक ज्वर, मानसिक ज्वर।

आ. निमित्त भेद से—निज ज्वर, आगन्तुज ज्वर।

इ. विधि भेद से—सौम्य, आग्नेयज्वर।

ई. प्रभाव भेद से–अंतर्वेग, बहिर्वेग ज्वर।

उ. ऋतु भेद से–प्राकृतिक, वैकृतिक ज्वर।

ऊ. साध्यासाध्य भेद से–साध्य, असाध्य, ज्वर।

ए. काल-भेद से–नव ज्वर, जीर्ण ज्वर।

ऐ. अवस्था भेद से–आम ज्वर, निराम ज्वर।

(II) त्रिविध ज्वर

अ. दोष भेद से–वातज, पित्तज कफज।

ब. अवस्था भेद से–आम, पच्यमान, निराम ज्वर।

(III) चतुर्विध ज्वर

वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सन्निपातज

(IV) पंच-विध-ज्वर

चरक–संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक एवं चातुर्थिक।

सुश्रुत–सतत, अन्येद्युष्क, त्रयाख्य, चातुर्थिक एवं प्रलेपक।

(V) सप्त-विध-ज्वर

अ. दोष भेद से–वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वात-पैत्तिक, वात-श्लैष्मिक, पित्त-श्लैष्मिक एवं सन्निपातिक-ज्वर।

सप्त धातु गत ज्वर-रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर, मांस-गत ज्वर, मेद गत ज्वर, अस्थि गत ज्वर, मज्जा गत ज्वर एवं शुक्र गत ज्वर।

(VI) पंच विशति विध ज्वर (पृथग्दोष से)

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. वात पैतिक ज्वर 5. वात श्लैष्मिक ज्वर 6. पित्त श्लैष्मिक ज्वर 7. सन्निपात ज्वर 8. विषम ज्वर 9. सतत ज्वर 10. संतत ज्वर 11. तृतीयक ज्वर 12. चातुर्थिक ज्वर 13. अभिचारण ज्वर 14. गृहावेशज ज्वर 15. शापज ज्वर 16. श्रमज ज्वर 17. दाहज ज्वर 18. क्षतज ज्वर 19. क्षेदज ज्वर 20. कामज ज्वर 21. भयज ज्वर 22. शोकज ज्वर 23. क्रोधज ज्वर 24. विषज ज्वर 25. औषधि गंधज ज्वर।

(VII)विशिष्ट ज्वर भेद

विषम ज्वर पाँच प्रकार के विषम ज्वरों में से तृतीयक ज्वर एवं चातुर्थिक ज्वर के निम्न प्रभेद किये गये हैं–

तृतीयक 1. त्रिकग्राही 2. पृष्ठ-ग्राही 3. शिरोग्राही।

चातुर्थिक 1. जङ्घाग्राही 2. शिरोग्राही।

सन्निपात ज्वर

चरक ने निम्नांकित तेरह प्रकार के सन्निपात ज्वर बताये हैं–

1. वातपित्तोल्बणहीन कफ सन्निपात ज्वर (बभ्र, बभ्रु, बद्ध)

2. वातपित्तोल्बणहीन पित्त सन्निपात ज्वर (शीघ्र-कारी)
3. वातपित्तोल्बणहीन वात सन्निपात ज्वर (भल्लु, फल्गु)
4. वातपित्तोल्बणहीन कफ-पित्त सन्निपात ज्वर (विस्फारक, विस्फोटक)
5. वातपित्तोल्बणहीन कफ-वात सन्निपात ज्वर (आशुकारी)
6. वातपित्तोल्बणहीन वात-पित्त सन्निपात ज्वर (कम्पन)
7. वातपित्तोल्बणहीन मध्यपित्त हीन पित्त सन्निपात ज्वर (वैदारिक)
8. पित्तोल्वण मध्य कफ हीन सन्निपात ज्वर (याम्य, संग्राम)
9. वातोल्वण मध्य हीन पित्त वात सन्निपात ज्वर (कुकज)
10. कफोल्वण मध्य वात हीन पित सन्निपात ज्वर (कर्कटक, कर्कोटक)
11. वातोल्वण मध्य पित्त हीन कफ सन्निपात ज्वर (सम्मोह)
12. पित्तोल्वण मध्य वात हीन कफ सन्निपात ज्वर (पाकल)
13. त्रिदोषोल्वण सन्निपात ज्वर (कूट पाकल)

सुश्रुत के अनुसार सन्न्पिात ज्वर

1. अभिन्यास सन्निपात ज्वर।
2. हतौजस सन्निपात ज्वर।
3. संन्यास सन्निपात ज्वर।
4. आजोनिरोधज सन्निपात ज्वर।

भाव प्रकाश आदि में तेरह प्रकार के सन्निपात ज्वरों का वर्णन किया गया है—

1. शीताङ्ग ज्वर।
2. तन्द्रिक (तन्त्री) ज्वर।
3. प्रलापक (प्रलापी)।
4. रक्तष्ठीवी ज्वर।
5. भुग्ननेत्र ज्वर।
6. अभिन्यास ज्वर।
7. जिह्वक ज्वर।
8. संन्धिक ज्वर।
9. अन्तक ज्वर।
10. रुग्दाह ज्वर।
11. चित-विभ्रम ज्वर।
12. कर्णिक ज्वर।
13. कण्ठ, कुब्जक (कण्ठ-ग्रह) ज्वर।

भाव प्रकाश आदि के अनुसार तेरह प्रकार के और भी सन्निपात ज्वर होते हैं--

1. कुम्भी पाक ज्वर।
2. प्रोर्णुनाव

3. प्रलापी ज्वर।

4. अन्तर्दाह ज्वर।

5. दण्डपात ज्वर।

6. अन्तक ज्वर।

7. एणीदाह ज्वर।

8. हारिद्र ज्वर।

9. अजघोष ज्वर।

10. भूतहास ज्वर।

11. यन्त्रपीड ज्वर।

12. सन्यास ज्वर।

13. संशोषी ज्वर।

(VIII) मानसिक ज्वर

1. काम-ज्वर।

2. शोकज ज्वर।

3. भयज ज्वर।

4. क्रोधज ज्वर।

(IX) आगन्तुज ज्वर

1. अभिघात ज्वर।

2. अभिषङ्ग ज्वर।

3. अभिचार

4. अभिशाप ज्वर।

5. विषज ज्वर।

6. औषधि गंधज

अभिषङ्ग ज्वर कारण भेद से पाँच प्रकार का होता है—कामज, शोकज, भयज, क्रोधज तथा भूतावेश।

(X) विविध ज्वर

1. औपत्यक ज्वर।

2. मद्य जन्य ज्वर।

3. वात बलासक।

4. गंभीर ज्वर।

5. दाह पूर्वक ज्वर।

6. शीत पूर्वक ज्वर।

7. चेतना जन्य ज्वर।

8. हारिद्रक ज्वर।

9. रात्रिक ज्वर।

10. अर्द्धनारीश्वर ज्वर।

विविध आयुर्वेदीय संहिताओं में वर्णित ज्वरों का वर्गीकरण देखने के पश्चात्

रामायण में वर्णित एवं उल्लिखित ज्वरों की संक्षेप में समीक्षा इस प्रकार प्रस्तुत है–

काम ज्वर

'काम-ज्वर' में चित्त का विभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, भोजन की अनिच्छा, हृदय में वेदना तथा शरीर और मुख का सूखना आदि लक्षण होते हैं।[21] वाग्भटाचार्य ने काम-ज्वर में भ्रम, बेचैनी और दाह का होना तथा लज्जा, निद्रा, बुद्धि और धैर्य का नष्ट होना तथा रुग्ण का एकान्त में किसी (अभीष्ट व अप्राप्त कामिनी) के चिंतन में लगे रहना एवं शोकाकुल ऊँची साँस का छोड़ना आदि लक्षण लिखे हैं–[22]

आयुर्वेद मतानुसार 'ज्वर' को रोग राट् माना गया है। रामायण में भी 'ज्वर' का उल्लेख बार-बार आता है। प्रमुखतः ज्वर तापमान की वृद्धि या ऊष्मा से सम्बन्धित है तथा अन्य रूप से सामान्य पीड़ाओं को (मनुष्य की रुग्णावस्था को) भी ज्वर कहते हैं। 'काम ज्वर' या 'अनंग ज्वर' का नामोल्लेख रामायण में कई बार हुआ है। सीता के विरह में व्याकुल श्री राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं, 'अनंग वेदना से उत्पन्न हुई शोकाग्नि वसन्तऋतु के गुणों का ईधन पाकर बढ़ गयी है, जान पड़ता है यह मुझे शीघ्र ही अविलम्ब जला देगी।[23]

'अपनी उस प्रियतमा पत्नी को मैं नहीं देख पाता हूँ और इन मनोहर वृक्षों को देख रहा हूँ, इसलिये मेरा यह अनङ्ग ज्वर अब और बढ़ जायेगा।'[24]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रामायण में काम ज्वर का विशद् वर्णन प्राप्त होता है।

भयज ज्वर (शोक ज्वर)

भय तथा शोक से उत्पन्न ज्वर में रुग्ण प्रलाप (असम्बद्ध भाषण) करता है एवं कोप से उत्पन्न ज्वर में रुग्ण का शरीर काँपने लगता है एवं अभिचार (मंत्रादि से मारण प्रयोग) तथा ब्रह्मर्षि गुरु सिद्ध आदि के अभिशाप से उत्पन्न ज्वर में मोह (मूर्च्छा) और तृष्णा होती है। इसी प्रकार भूतों (प्रेतों या देवादि ग्रहों) के अभिषङ्ग (सम्बन्ध या आवेग) से उत्पन्न हुए ज्वर में रुग्ण को सभी उद्वेग (चित्त की अशान्ति) कभी हास्य तथा कभी रुदन होता है।[25]

वाग्भटाचार्य ने लिखा है कि अभिचार (श्येनादि याग या विपरीत मंत्र और लौह-स्रुवा) के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले ज्वर से प्रथम दाह, चित्त में होता है तथा बाद में देह में दाह होता है और इसके बाद विस्फोट, तृषा, भ्रम और मूर्च्छा के साथ ज्वर की वृद्धि होती है।[26]

भयादि ज्वर लक्षण

सु. सं. में भय-शोकादि से उत्पन्न ज्वर के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

शोकजे वाष्पं बहुलम् त्रासप्रायं भय ज्वरे।
क्रोधजे बहुसंरम्भं भूतावेशे त्वमानुषम्।।
मूर्च्छामोहमदग्लानि भूयिष्ठं सम्भवे।

केषांचिदेषां लिङ्गानां सन्तापो जायते पुरः।।
पश्चात्तुल्यन्तु केषांचिदेषु काम ज्वरादिषु।
मनस्याऽभिहते पूर्वं कामाद्यैर्न तथा बलम्।।
ज्वरः प्राप्नोति वाताद्यैर्देहोयावन्न दुष्यति।
देहे चाभि द्रुते पूर्वे वाताद्यैर्न तथा बलम्।।
ज्वरः प्राप्नोति कामाद्यैमनो यावन्नदुष्यिति।।

माधवकार ने काम-शोक और भय से वायु, क्रोध से पित्त और भूताभिषङ्ग से तीनों दोषों का कुपित होना लिखा है–

'कामशोक भयाद्वायुः क्रोधात्पितंत्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूत सामान्यलक्षणाः।।'

रामायण में भयज ज्वर अथवा शोक ज्वर का भी उल्लेख किया गया है। 'रावणः स्थितः ज्वरः'[27] कहकर इसके प्रभाव को दर्शित करते हुए यह कहा गया है कि 'स बभूव कृशो'[28] वह कृशकाय अर्थात् कमजोर हो गया। ज्वर के प्रभाव से मानव कृश हो जाता है। केवल मनुष्य मात्र का नहीं हाथी के ज्वर का उल्लेख भी रामायण में है। ज्वर के कारण हाथी काँपने लगता है–और घबराने लगता है–ठीक इसी प्रकार राजा दशरथ काँपने और घबराने लगे[29] ''ज्वरातुरोनाग इव व्याधातुरः'' (ज्वर से पीड़ित एवं व्ययथित हुए हाथी की तरह आतुर होकर राजा घबराने लगे, आँसू बहाने लगे और काँप उठे।)

वाल्मीकि रामायण में ज्वर के कई प्रकारों का वर्णन किया गया है–

1. काम ज्वर (अनङ्ग ज्वर)।
2. शोक ज्वर।
3. हाथी का ज्वर।
4. मानसिक ज्वर।

'सुश्रुत संहिता' में इनके विषय में उल्लेख किया गया है–'भूत-प्रेतादिकों के अभिषंङ् (आवेश) से उत्पन्न हुए ज्वर की चिकित्सा में भूत विद्या तंत्र में कहे हुए मंत्र पूर्वक रज्ज्वादि से बन्धन आवेशन (मंत्र-पूर्वक सर्षपादि से ताड़न) तथा पूजन करना चाहिये तथा काम, क्रोध, शोकादि से उत्पन्न हुए मानस ज्वर को विज्ञानादिक उपायों से शान्त करना चाहिये।'[30]

तन्त्रान्तरोक्त भूत ज्वर चिकित्सा

सहदेवाया मूलं विधिना कण्ठे निबद्ध मपहरति।
एकद्वित्रिचतुर्भिर्दिवसैर्भूत ज्वरं पुंसाम्।। (सु. उ. 39/265)

मानस ज्वर

वास्तव में देह शरीर और मन मे जो संताप होता है, उसी को ज्वर कहते हैं। **'ज्वरः प्रत्यात्मिकं लिङ्ग संतापो देह मानसः'** किंवा देह, इन्द्रिय और मन को तप्त करने

वाला जो हो उसे ज्वर कहते हैं[31]—आश्रय भेद से भी ज्वर के शरीर और मानस ये ही दो मुख्य भेद किये गये हैं[32]—मानस ज्वरोत्पत्ति में काम, शोक, क्रोध और भय ये मुख्य कारण हैं तथा इनसे उत्पन्न ज्वर को अभिषङ्ग ज्वर भी कहा जाता है[33]-काम, शोक और भय से वायु का प्रकोप होता है तथा क्रोध से पित्त और भूताभिषङ्ग से तीनों दोष प्रकुपित होकर ज्वरादि रोग करते हैं।[34] काम ज्वर में भय, अरुचि, दाह होता है तथा लज्जा, निद्रा बुद्धि और धैर्य का क्षय हो जाता है।[35] मानस ज्वर चिकित्सा में विज्ञानादि का जो संकेत किया है उसमें आदि शब्द से धैर्य, स्मृति, ज्ञान और समाधि का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि चरकाचार्य ने कहा है कि बुद्धि, धैर्य, स्मृति, ज्ञान आदि ये मनोदोष की परम् औषध मानी जाती हैं।

'धी धैर्यात्मविज्ञानं मनोदोषौषधं परम् ।' विविध प्रकारोत्थ मानस ज्वर शमनोपाया-
क्रोधजे पित्तजित्कार्ये धार्ये सद्वाक्यमेव च ।
आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ।।
हर्षणैश्च शमं यान्ति काम क्रोध-भय ज्वराः ।
कामैरथ मनोघ्नैश्च पित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः ।।
सद्वाक्यैश्च शमं याति ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ।।

रामायण में मानसिक ज्वर का भी उल्लेख है—विभीषण के हित-प्रद वचनों को सुनकर ''निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितोज्वरः।''[36] रावण को ज्वर हो गया यह मानसिक ज्वर था। इससे राजा 'वभूवः कृशोराज'[37] कमजोर हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायण में 'ज्वर' रोग का विशद् वर्णन किया गया है।

अंग-भेदन

'अंग-भेदन' से तात्पर्य अंगों के विंधने या अस्थि-भंग हो जाने या किसी अंग के कट जाने आदि से लिया जाता है। रामायण में इस प्रकार अंगों के कटने या उनमें घाव हो जाने आदि का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की परिस्थिति में विविधता दिखाई पड़ती है अतः भिन्न-भिन्न स्थितियों की चिकित्सा भी भिन्न-भिन्न प्रकार से ही की जा सकती है।

संक्षेप में रामायण के प्रसंगों का उल्लेख निम्नवत् है—

शरभङ्ग मुनि के शरीरावयवों का अग्नि द्वारा भस्म कर देना भी इसी को सूचित करता है, ''उस समय अग्नि ने उन महात्मा के रोम, केश, नख, जीर्ण-त्वचा, हड्डी, मांस और रक्त सबको जलाकर भस्म कर दिया।''[38] इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर भी इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है, 'उन दोनों में वहाँ प्राणान्तकारी युद्ध छिड़ गया। उस समय वाली ने दुन्दुभि को उठाकर पृथ्वी पर दे मारा, साथ ही अपने शरीर से उसको दबा दिया, जिससे दुन्दुभि पिस गया।' 'गिरते समय उसके शरीर के समस्त छिद्रों से बहुत-सा रक्त बहने लगा। वह महाबाहु असुर पृथ्वी पर गिरा और मर

गया।'[39]

एक अन्य स्थल पर 'उसकी चोट लगते ही समराङ्गण में सुमाली का काम तमाम हो गया। न उसकी हड्डी का पता लगा, न मस्तक का और न कहीं उसका मांस ही दिखाई दिया। वह सब कुछ उस गदा की आग से भस्म हो गया।'[40]

हनुमान का वर्णन करते हुए एक स्थल पर कहा गया है, 'इन्द्र के वज्र की चोट खाकर यह एक पहाड़ पर गिरे। वहाँ गिरते समय इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी।'[41]

अक्षय कुमार तथा हनुमान के युद्ध का वर्णन करते हुए भी ऐसा ही प्रसंग सामने आया है, "नीचे गिरते ही उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छाती के टुकड़े-टुकड़े हो गये, खून की धारा बहने लगी, शरीर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं, अस्थियों के जोड़ टूट गये। और नस-नाड़ियों के बन्धन शिथिल हो गये। इस तरह राक्षस पवन-कुमार हनुमान जी के हाथ से मारा गया।'[42]

राम एवं राक्षसों के युद्ध का वर्णन भी यही प्रदर्शित करता है, "उन राक्षसों के घोर अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से यद्यपि श्री राम का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था तो भी वे व्यथित या विचलित नहीं हुए, जैसे बहुसंख्यक दीप्तिमान वज्रों के आघात सहकर भी महान् पर्वत अडिग बना रहता है।"[43] श्री रामचन्द्र जी के सारे अंगों में घाव हो गया था, वे लहूलुहान हो रहे थे।[44] परन्तु पराक्रमी महाबाहु श्री राम ने रण-भूमि में अपने वाणों द्वारा उनके अस्त्र-शस्त्रों को रोक कर उनके गले काट डाले और प्राण हर लिये।[45] सिर, ढाल और धनुष के कट जाने पर वे निशाचर गरुड़ के पंख की हवा से टूटकर गिरने वाले नन्दन वन के वृक्षों की भाँति धराशायी हो गये।[46] जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती थी वहीं-वहीं वे हजारों राक्षस मरे, गिरे, क्षीण हुए, कटे-पिटे और विदीर्ण हुए दिखाई देते थे।[47] वहाँ श्री राम के वाणों से कटे हुए पगड़ियों सहित मस्तकों, बाजूबंद सहित भुजाओं, जाँघों, बाहों आदि से पटी हुई वह समरभूमि अत्यन्त भयंकर दिखाई देती थी। उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख श्री रामचन्द्र जी ने उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं।[48] श्री राम ने महा कपाल का कपाल एवं सिर उड़ा दिया। प्रमाथी को असंख्य वाण-समूहों से मथ डाला एवं स्थूलाक्ष की स्थूल आँखों को सायकों से भर दिया।[49] एक वाण से तो खर के रथ का जुआ काट दिया, चार वाणों से चारों चितकबरे घोड़े मार डाले और छठे बाण से युद्ध स्थल में खर के सारथि का मस्तक काट गिराया।[50]

रावण ने शूर्पणखा से पूछा किसने तुम्हारी नाक और कान काट डाले हैं।[51]

वज्र के समान तेजस्वी उस उत्तम वाण ने मृगरूपधारी मारीच के शरीर को चीरकर उसके हृदय को भी विदीर्ण कर दिया।[52]

इस प्रकार उपरोक्त स्थलों पर दृष्टि-पात करने से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो

जाता है कि रामायण में 'अंग-भेदन' का विशद्-वर्णन किया गया है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त रामायण में और भी ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पर 'अंग-भेदन' का ही उल्लेख किया गया है। इसका सूक्ष्म अवलोकन इस प्रकार है यथा—

कटे-पिटे, व्यथित, रक्त-वमन करना आदि। ये सभी 'अंग-भेदन' की ओर संकेत करते हैं।

1. कटे-पिटे।[53]
2. व्यथित।[54]
3. रक्त वमन करना अ. 67/14, 68/15, कि. 16/22, 48/21, यु. 52/10, 54/25, 58/16, 59/116, 67/20, 27, 91, 96, 89/50, 90/21 ।

कान से खून बहना	कि. 11/41, यु. 59/116
क्रन्दन करना	सुं. 54/25
कराहना	यु. 44/13
लहूलुहान	यु. 24/38, 31/28, 49/4, 51/31, 53/19, 63/39, 64/25, 66/13, 67/89, 73/41, 51, 80/30, 34 उ. 15/35, 21/31
घाव (व्रण)	यु. 41/25, 105/45, अयो. 73/2 अ. 22/2, कि. 16/24, 61/2, सुं. 38/24, 46/36, यु. 22/38, 54/32, 74/73, 88/55, 102/9, 14, 17, उ. 7/15, 28/36
छाती में आघात	सु. 47/25, 67/7, 8 यु. 77/16, 90/9
छटपटाना	यु. 59/117, अयो. 14/1
घायल	अयो. 11/18, अ. 25/13, कि. 12/22, 22/24, 19/2, यु. 24/38, 44/13, 49/4, 52/7, 54/110, 69/91, 94, 76/56, 90/26, 91/11, 100/11, 103/प्रा. उ. 15/28, 35, 10/22, 23/26, 29, 34, 35/48 ।
शरीर में चिन्ह दागना	सुं. 52/15
तड़पना	यु. 59/117
हताहत	यु. 14/73
क्षत-विक्षत	अयो. 9/14, सुं. 38/18, यु. 43/23, 34, 44/8, 13, 35, 70/30, 57, 71/42, 73/41, 55, 80/30, 85/20, 49, 58, 71, 102/19, उ. 23/41, 28/11
शूल	अयो. 14/21

जर्जर अयो. 9/15

इस प्रकार यदि रामायण में वर्णित उपरोक्त सभी प्रसंग स्थलों पर दृष्टिपात किया जाये तो यह सर्व-विदित हो जायेगा कि 'अंग-भेदन' की प्रचुर सामग्री रामायण में उपलब्ध है।

शिरो-रोग

शिरो-रोग से तात्पर्य मानसिक रोगों से है। रोग दो प्रकार के हुआ करते हैं—शारीरिक तथा मानसिक, दोनों ही रोगों की उत्पत्ति तथा चिकित्सा अलग-अलग होते हुए भी दोनों रोग एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित रहते हैं। जिस मनुष्य का मन रुग्ण है, उसका शरीर भी रोगी है तथा जिस मनुष्य का शरीर रोगी है उसका मन भी आक्रान्त है। परन्तु कभी-कभी अपवाद भी होते हैं यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मानसिक रोग सभी कष्ट साध्य होते हैं जबकि शारीरिक रोग सामान्यतः सुसाध्य। जिस प्रकार शारीरिक रोगों की उत्पत्ति त्रिदोष "वात-पित्त-कफ" से होती है, इसी प्रकार मानसिक रोगों की उत्पत्ति तमोगुण से हुआ करती है। 'काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, शोक' आदि मनो-वेग जो तमो गुण प्रधान होते हैं—मानसिक रोगों के कारण होते हैं।

रामयण में विभिन्न शिरो-रोगों का वर्णन है यथा—

मानसिक ज्वर

(I) उन्माद(भूतोन्माद)
(पिशाचोन्माद)
(गन्धर्वोन्माद)

(II) मूर्च्छा

(III) शोकोन्माद

(IV) कामोन्माद

(V) मद

(VI) पागलपन

(VII) मदाशय

(VIII) दीनता, आतुरता आदि।

इन सभी रोगों की विशद् समीक्षा अन्यत्र की जा रही है, अतः यहाँ सक्षेप में ही तथ्य प्रस्तुत किया गया है[1]

राज-यक्ष्मा

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि 27 नक्षत्र हैं, इन्हें दक्ष-प्रजापति की कन्याएँ माना जाता है। चन्द्रमा ने इन 27 कन्याओं के साथ विवाह किया था। परन्तु चन्द्रमा रोहिणी में ही आसक्त रहने लगा। अन्य कन्याओं ने चन्द्रमा के इस व्यवहार की बात अपने पिता से कही तो वे क्रुद्ध हुए और उन्होंने चन्द्रमा को शाप दिया जिससे उसका शरीर और बल दिन-प्रतिदिन घटता चला गया तब चन्द्रमा ने अपने

ससुर से क्षमायाचना की और सभी पत्नियों के साथ एक-सा व्यवहार करने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् अश्विनी कुमारों ने रसायन और ओजो-वर्धक औषधियों से चन्द्रमा की चिकित्सा की और उसे स्वस्थ किया।

इस पौराणिक कथा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं–

(I) अधिक कामासक्त रहने से शुक्रक्षय के कारण राज-यक्ष्मा होता है।

(II) मानसिक कारणों (शाप -आदि) में भी राज-यक्ष्मा होता है।

(III) राज-यक्ष्मा से सर्व-धातु सार-ओज का क्षय होता है।

यह रोग सर्व-प्रथम नक्षत्र राज चन्द्रमा को हुआ था इसीलिये इसे रोग राट् भी कहते हैं। क्षय (Consumption) शोष (Phthisis) तथा यक्ष्मा (Tuberculoculosis) एक ही व्याधि है।

राज-यक्ष्मा के निदान

साहस, वेग-धारण, क्षय, विषमाशन ।

राज-यक्ष्मा के भेद

1. कारणों के आधार पर चार प्रकार के होते हैं–साहसज, वेगधारणज, क्षयज और विषमाशनज राज-यक्ष्मा।
2. लक्षणों के आधार पर राज-यक्ष्मा तीन प्रकार का होता है–त्रिरूप राज-यक्ष्मा, षट्रूप राज-यक्ष्मा, एकादश रूप राज-यक्ष्मा ।
3. वैसे तो राज-यक्ष्मा एक ही रोग है, त्रिदोषज है, रोग समूह है, रोग राट् है।

राज-यक्ष्मा के पूर्व-रूप

1. प्रतिश्याय
2. दौर्बल्य
3. दोष रहित वस्तु में भी दोष दर्शन
4. बल तथा मांस का क्षय
5. स्वप्न में गिद्धों द्वारा ऊपर उड़ा ले जाना
6. स्त्री, मद्य और मांस में अधिक रुचि होना तथा
7. स्वप्न में नदी, जलाशय एवं वनों को शुष्क देखना।

राज-यक्ष्मा के लक्षण

राज-यक्ष्मा के त्रिरूप–

1. अंसपार्श्वाभिताप
2. करपाद संताप
3. ज्वर

राज-यक्ष्मा के षट् रूप

1. ज्वर 2. कास
3. पार्श्वशूल 4. मल-भेद

5. स्वर भेद 6. अरुचि।

राज-यक्ष्मा के एकादश रूप

1. कास 2. ज्वर
3. पार्श्वशूल 4. मल-भेद
5. अरुचि 6. शिरः शूल
7. श्वास 8. रक्तष्ठीवन
9. कफष्ठीवन 10. अंसाभिताप।

राज-यक्ष्मा के दोषानुसार लक्षण

वायु के लक्षण-स्वर भेद, पार्श्वशूल तथा पार्श्वसंकोच।

पित्त के लक्षण-ज्वर, दाह, अतिसार, रक्तष्ठीवन।

कफ के लक्षण-शिरोगौरव, अरुचि, कास, कण्ठोध्वंस।

साध्यासाध्यता

1. जो रोगी बलवान हो और जिसकी रक्त मांस आदि धातुएँ अधिक क्षीण न हुई हो, वह साध्य होता है।

2. रोगी दुर्बल हो गया हो परन्तु उसकी रक्त मांस आदि धातुएँ क्षीण न हुई हों तो भी साध्य मानना चाहिये।

3. यदि राज-यक्ष्मा के सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं तो असाध्य मानें।

4. राज-यक्ष्मा में अचानक कई विचित्र अरिष्ट लक्षण पैदा हो जाते हैं, तब वह असाध्यावस्था बन जाती है।

5. दौर्बल्य और धातुक्षय बहुत हो गया हो तो कष्ट साध्य समझना चाहिये।

चिकित्सा

1. राज-यक्ष्मा में धातु- क्षय होता है, ओज एवं बल का क्षय होता है अतः बल्य, वृष्य एवं ओजो वर्धक आहार-विहार करना चाहिये।

2. कास हो तो वासा, दाह हो तो द्राक्षा, श्वास हो तो भागी, रक्तष्ठीवन हो तो लाक्षा, कफष्ठीवन हो तो अभ्रक, उरः शूल हो श्रृंग, स्वर- भेद हो तो यष्टी मधु एवं अन्य कोई लक्षण हो तो इसी प्रकार की लाक्षाणिक चिकित्सा भी करनी चाहिये।

पथ्य--शालि, गो-धूम, यवात्र, मुद्गयूष, दाडिम, आमलकी, आम्र, दुग्ध, अजा-दुग्ध, मांस, मद्य।

अपथ्य--बैंगन, करेला, बिल्व, राई तैल साधित वस्तु, मैथुन, दिवा-स्वप्न, क्रोध तथा राज-यक्ष्मा के सभी निदान।

वाल्मीकि रामायण में युद्ध काण्ड के नवें सर्ग के नवें श्लोक में कहा गया है, 'जो महारोग आदि से ग्रस्त होने के कारण दैव से मारे गये हों, उन्हीं पर भली-भाँति परीक्षा करके विधि-पूर्वक किये गये पराक्रम सफल होते हैं।'[55]

उपरोक्त प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि रामायण में 'महारोग' का उल्लेख किया

गया है।प्राचीन काल में जब विज्ञान की प्रगति अधिक नहीं हो पायी थी, तब व्यक्ति ऐसे रोगों से ग्रसित हो जाता था जो असाध्य होते थे—इन्हीं को रामायणकालीन समाज 'महारोग' की संज्ञा देता है। आज यद्यपि समाज ने तथा विज्ञान ने बहुत प्रगति कर ली है तथापि कुछ रोग ऐसे हैं जिनको पूर्णतः समाप्त करने का कोई उपाय नहीं बन पाया है फिर भी यदि समय रहते उनका पता लग जाये तब उनकी चिकित्सा संभव है—महारोग की श्रेणी में मुख्यतः राज-यक्ष्मा, कैंसर, प्लेग, हैजा, आदि असाध्य रोग आते हैं। इनमें से रामायण-काल में केवल राज-यक्ष्मा को 'महारोग' माने जाने की संभावना है अतः महारोग के रूप में राज-यक्ष्मा का ही समावेश किया जा सकता है।

कुष्ठ

इस रोग को संस्कृत में 'कुष्ठ, महाकुष्ठ' हिन्दी में कोढ़, हिकमत में जजाम और अंग्रेजी में लैपरोसी (Leprosy) कहते हैं।

कुष्ठ रोग शरीर में एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं के चले जाने से हो जाता है। वर्षों तक रोगी या डॉक्टर इस रोग का पता नहीं लगा सकता और न ही रोगी को किसी प्रकार का कष्ट होता है।

कुष्ठ रोगी के शरीर में दोष आ जाने से त्वचा पर गुठलियाँ (Nodules) छोटे-छोटे उभार, मस्से पैदा हो जाते, रोग बढ़ जाने पर उनमें तरल व पीप पड़ जाती, चर्म मोटा, खुरदुरा हो जाता, त्वचा फट कर उसमें चीर पड़ जाते हैं। कई बार रोगी की त्वचा पर छाले (Blisters) और घाव भी हो जाते हैं।

चरक ने कुष्ठ के सात भेद, अठारह भेद तथा असंख्य भेद माने हैं।

सुश्रुत ने भी महाकुष्ठ एवं क्षुद्र कुष्ठ भेद से 18 प्रकार के कुष्ठ रोगों का वर्णन किया है।

चरक के अनुसार 7 प्रकार के कुष्ठ- (भाव प्रकाश के अनुसार महाकुष्ठ)-

1. कपाल-कुष्ठ	2. उदुम्बर कुष्ठ	3. मण्डल कुष्ठ
4. ऋष्यजिह्व कुष्ठ	5. पुण्डरीक कुष्ठ	6. सिध्म कुष्ठ
7. काकणक कुष्ठ		

सुश्रुत एवं वाग्भट के अनुसार 7 प्रकार के महाकुष्ठ

1. कपाल-कुष्ठ	2. उदुम्बर कुष्ठ	3. अरुण कुष्ठ
4. ऋष्यजिह्व कुष्ठ	5. पुण्डरीक कुष्ठ	6. दद्रु कुष्ठ
7. काकणक कुष्ठ		

सुश्रुत के अनुसार 11 प्रकार के क्षुद्र-कुष्ठ

1. स्थूलारुष्क	2. महाकुष्ठ	3. एककुष्ठ
4. चर्मदल	5. विसर्प कुष्ठ	6. परिसर्प

7. सिध्म 8. विचर्चिका 9. किटिभ

10. पामा 11. रकसा

वाग्भटानुसार 11 प्रकार के क्षुद्र-कुष्ठ

1. एक कुष्ठ 2. चर्म-कुष्ठ 3. किटिभ

4. विपादिका 5. अलसक 6. सिध्म

7. चर्म-दल 8. पामा 9. विस्फोट

10. शतारु 11. विचर्चिका

साध्यासाध्यता के भेद से सप्त-शाखागत कुष्ठ (सुश्रुत-निदान 5)

1. त्वचागत 2. रक्तगत 3. मांसगत

4. मेदगत 5. अस्थिगत 6. मज्जागत

7. शुक्रगत कुष्ठ

वाल्मीकि रामायण ज्ञान का अथाह सागर है, इसमें काफी खोजने के पश्चात भी 'कुष्ठ' रोग के विषय में किसी भी प्रकार की कोई जानकारी नहीं मिल पायी है।

गुल्म

वाल्मीकि रामायण में 'गुल्म' का प्रयोग लता-वृक्ष-गुल्म आदि के रूप में तो किया गया है किन्तु 'गुल्म' रोग विशेष के रूप में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है।

अतः इसका विशद् विवेचन रामायण के आधार पर करना असम्भव है।

व्रण

'सुश्रुत संहिता' में व्रण का उल्लेख इस प्रकार है, "त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि कोष्ठ और मर्म ये आठ व्रण वस्तुएँ हैं। इन्हीं में सर्वप्रकार के व्रणों का सान्निवेश या स्थिति होती है।"[56] इसमें से दीर्घ, चतुष्कोण, गोल और त्रिकोण ये संक्षेप से चार व्रण की आकृतियाँ होती हैं। इनके अतिरिक्त विकृत आकृति वाले व्रण दुःखसाध्य होते हैं।[57] जो मनुष्य पथ्यकारी आहार-विहार करते हैं तथा सुशिक्षित और अनुभवी वैद्यों के द्वारा चिकित्सा करते हैं, उनके सर्व प्रकार के व्रण शीघ्र ही रोपित हो जाते हैं किन्तु आहार-विहार में कुपथ्य करने तथा अशिक्षित और अनुभवहीन नीम हकीमी चिकित्सा करने वाले मनुष्यों के व्रण-दोषों की वृद्धि हो जाने से दूषित या दुश्चिकित्स्य होते हैं।[58] प्रायः व्रण में सफाई का ध्यान रखने से तथा जन्तुनाशक घोलों से प्रक्षालन आदि न करने से व्रण दूषित (Septic) हो जाते हैं जिससे वे शीघ्र नहीं भरते हैं।

अधिक छोटे मुख वाला, अधिक चौड़े मुख वाला, अति कठिन, अति मृदु, उन्नत (उठा हुआ) मांस, हीन मांस, अधिक ठण्डा, अधिक गर्म, काला, लाल, पीला, और श्वेत रंगों में से किसी एक रंग वाला, देखने में भयानक, दुर्गन्धित पूय, मांस, सिरा, स्नायु आदि से युक्त, दुर्गन्धित पूय के स्राव से युक्त, उन्मार्गी, ऊँचा उठा हुआ, देखने में और गंध में विकृत, अधिक पीड़ा युक्त दाह, पाक, लालिमा, खुजली, शोथ और

पिड़काओं से उपद्रुत, अत्यन्त दूषित रक्त के स्राव से युक्त तथा अधिक समय से अनुबन्धित (विद्यमान) ये दुष्टव्रण के लक्षण हैं। दोषों की अधिकता के अनुसार उस व्रण के 6 विभाग कर यथा दोष चिकित्सा करने में यत्नशील होना चाहिये।[59]

त्वचा के घिस जाने या छिल जाने पर तथा फोड़ों के स्वयं फूट जाने या विदारित करने पर जल के समान स्राव निकलता है जो कि कुछ दुर्गन्धयुक्त तथा पीला होता है। मांस स्थित व्रण का स्राव घृत के समान गाढ़ा और चिपचिपा होता है। सिरा स्थित व्रण की यदि तत्काल सिरा कटी हो तो उसमें से रक्त का अधिक स्राव होता है। पाक हो जाने पर जल की नालियों से जल निकलने के समान व्रण से पूय का स्रवण होता है। इस तरह का स्राव पतला, खण्ड़ित, लसदार, गाढ़ा, काला तथा ओस के समान होता है। स्नायुगत व्रण का स्राव चिकना, गाढ़ा, नासा से निकलने वाले पीत श्लेष्मा के समान तथा रक्त युक्त होता है। अस्थि के टूटने-फूटने भिन्न होने तथा दोषों से विदीर्ण होने पर अस्थि में व्रण हो जाता है तथा दोषों द्वारा अस्थि के भक्षित होने पर अस्थि निःसार (हल्की) तथा धोई हुई सीप के समान हो जाती है तथा उसमें से मज्जा, युक्त, स्निग्ध तथा रक्त-सहित स्राव निकलता है। सन्धि में स्थित व्रण होने पर सन्धि को दबाने पर भी स्राव नहीं निकलता है किन्तु सन्धि को या अंग को कुंचन प्रसारण करने से ऊँचा उठाने या नीचा दबाने से एवं दौड़ने से, जोर से खासने से और प्रवाहण (काँखने) करने से निकलता है तथा वह स्राव चिपचिपा, चासनी के समान तार टपकाने वाला एवं फेन, मवाद तथा रक्त से मथित जैसा होता है। व्रण के कोष्ठ में स्थित होने पर उसमें से रक्त, मूत्र, मल, पूय और जल टपकते हैं।[60]

लक्षण

वायु के कारण–त्वचा गत व्रण स्राव परुष, मांस गत काला, स्नायुगत दही के पानी के समान, सिरागत कुहरे के समान, अस्थिगत क्षारोदक के समान, संधिगत मांस-धावन के समान तथा कोष्ठ-गत व्रण स्राव पुलाकोदक के समान होता है।[61]

पित्त के कारण–क्रमशः त्वगादि स्थानों के व्रणों का स्राव गोमेदक, गोमूत्र, शंख, भस्म, कषायोदक, माध्वीक और तेल के समान होते हैं।[62]

रक्त के कारण–त्वगादि स्थानों के स्राव पित्त के ही समान होते हैं। किन्तु उन स्रावों में आम मांस की तरह दुर्गन्ध अधिक होती है।[63]

कफ के कारण–त्वगादि स्थानों के स्राव मक्खन, कासीस, मज्जा, पिष्टी, तिल, नारियल के जल के सदृश तथा शूकर की चर्बी के समान क्रमशः होते हैं।[64]

सन्निपात के कारण–त्वगादि स्थानों के स्राव नारियल के पानी, ककड़ी के जल, काँजी का स्वच्छ पानी, आरुकोदक, प्रियंगफल, यकृत मूंग के यूष के समान होते हैं।[65]

पक्काशय से फुलकोदक के समान निकलने वाला स्राव असाध्य तथा रक्ताशय से क्षारोदक के समान निकलने वाला स्राव वर्जित है। इसी तरह आमाशय और त्रिक सन्धि से मटर के यूष के समान स्राव असाध्य होता है। इसलिये प्रथम इन स्रावों की

परीक्षा करके चिकित्सा करें।[66] जहाँ तोदन (सुई चुभने के समान), भेदन (विदारण) ताडन, छेदन, आयमन (खींचने के समान), व्रण के भीतर मथने के समान, विक्षेपण, चुभ-चुभायन, जलाने के समान, अवभंजन (वायु से टूटने के समान) फूटने की सी, नखादि से विदारण के समान आदि की सी पीड़ा हो तथा अकारण ही अनेक प्रकार की वेदनाओं का प्रादुर्भाव होना आदि लक्षण हों तब वातिक व्रण जानना चाहिये। जहाँ पर ओष-चोष, परिदाह और व्रण से धूम निकलने की सी प्रतीति हो उसे पैत्तिक व्रण जानना चाहिये। पित्त के समान ही रक्त-दृष्टि से उत्पन्न व्रण के लक्षण समझने चाहिये। जहाँ पर खुजली, भारीपन, सुप्ति, शरीर पर लिप्त-सा रहना आदि लक्षण हों वहाँ कफ दूषित व्रण समझना चाहिये। जहाँ पर तीनों दोषों में कही हुई सर्व-प्रकार की पीड़ाओं की उत्पत्ति हो उसे सन्निपातिक व्रण जानना चाहिये।[67]

वायु के द्वारा दूषित व्रण भस्म, कपोत और अस्थि के समान होता है तथा स्पर्श में कठोर, कुछ लाल और काला होता है। रक्त और पित्त के द्वारा दूषित व्रण नीला, पीला, हरा, आसमानी, काला, लाल, कपिल और पिङ्गल वर्ण का होता है। कफ के द्वारा दूषित व्रण सफेद, चिकना और पाण्डु वर्ण का होता है। सन्निपात से दूषित व्रण उक्त सर्व-प्रकार के वर्णों से युक्त होता है।[68]

न केवलं व्रणेषूक्तो वेदना वर्ण सङ्ग्रहः।
सर्व शोफ विकारेषु व्रणवल्लक्षयेद्भिषक्।।[69]

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर 'व्रण' का उल्लेख मिलता है। यथा-

भरत कैकेई को धिक्कारते हुए कहते हैं, तूने राजा को परलोक वासी तथा श्री राम को तपस्वी बनाकर मुझे दुःख पर दुःख दिया है, घाव पर नमक सा छिड़क दिया है।[70]

खर शूर्पणखा से कहते हैं, बहिन ! तुम्हारे अपमान के कारण मुझे अत्यधिक क्रोध चढ़ आया है। इसे धारण करना उसी प्रकार असम्भव है, जैसे पूर्णिमा को प्रचण्ड वेग से बढ़े हुए खारे पानी के समुद्र जल को (अथवा यह उसी प्रकार असह्य है, जैसे घाव पर नमकीन पानी का छिड़कना)[71]

एक अन्य स्थल पर वर्णन है, 'उस वृक्ष की चोट से वाली के शरीर में घाव हो गया। उस आघात से विह्वल हुआ वह भार से दबी नौका के समान काँपने लगा।'[72]

सम्पाति निशाकर मुनि को अपने पंख जलने का कारण बताते हुए कहते हैं— ''मैंने कहा, भगवन! मेरे शरीर में घाव हो गया है, तथा मेरी इन्द्रियाँ लज्जा से व्याकुल हैं, इसलिये अधिक कष्ट पाने के कारण मैं अच्छी तरह बात भी नहीं कर सकता।'[73]

लक्ष्मण के घावों का वर्णन है—उसकी गन्ध सूंघते ही लक्ष्मण के शरीर से वाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा दूर हो गयी। उनके शरीर में जितने भी घाव थे, भर गये।[74]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंगों पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि रामायण में 'व्रण' का पर्याप्त उल्लेख किया गया है तथा यत्र-तत्र इसकी चिकित्सा का भी

उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक स्थल रामायण में उपलब्ध हैं जो 'व्रण' की ओर इंगित करते हैं।[75]

नाड़ी व्रण

'व्रण' से थोड़ा भिन्न 'नाड़ी व्रण' है। आयुर्वेदाचार्य 'नाड़ी व्रण' के पाँच भेद मानते हैं।

1- वातिक नाड़ी व्रण

2- पैत्तिक नाड़ी व्रण

3- श्लैष्मिक नाड़ी व्रण

4- त्रिदोषज नाड़ी व्रण

5- शल्यज नाड़ी व्रण

वाल्मीकि रामायण में नाड़ी व्रण का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

विसूचिका

'चरक' तथा 'सुश्रुत' में विसूचिका रोग का विशेष वर्णन नहीं हुआ है। 'सुश्रुत'[76] तथा माधव निदान में इसे अजीर्ण से उत्पन्न होने वाला वात-प्रधान रोग कहा जाता है अर्थात् अजीर्ण जनित विष से आमाशय तथा क्षुद्रांत्र की प्राण-शक्ति क्षीण हो जाती है जिससे इनकी दीवार की रक्त वाहिनियाँ शिथिल हो जाती हैं, एवं उनसे रक्त का द्रव भाग प्रभूत मात्रा में बाहर निकलने लगता है। इस रोग की चिकित्सा के लिये रोगी को गर्म रखते हुए उसे उष्ण-दीपन-पाचन गुण औषधियाँ दी जाती हैं—उदाहरणतः अग्नि की वृद्धि के लिये संजीवनी वटी, विडंग, शुण्ठी, बिजली, त्रिफला, वचा, गुडुची, भल्लातक, मीठा विष, समान-समान मात्रा में मिला, गो-मूत्र से 15-16 दिन मर्दन करके 1-1 रत्ती की गोलियाँ बनायी जाती हैं, पोदीने के अर्क या प्याज के रस या अदरक रस के अनुपान से 15-15 मिनट के बाद 2-2 गोली की मात्रा में 12 गोलियाँ तक दी जाती हैं।

लहसुन का भी इस रोग में प्रयोग किया जाता है। 'लहसुनाष्टक चूर्ण' या 'लहसुन वटी' लहसुन 8 भाग, मरीचि 4 भाग, हींग 2 भाग, कपूर 1 भाग निम्ब के स्वरस में पीसकर चने के बराबर गोली बना ली जाती हैं। आधे-आधे घन्टे बाद दी जाती हैं।

लाल-मिर्च तथा अहिफेन का भी इस रोग में प्रयोग किया जाता है। इसके लिये लाल-मिर्च, जाति-फल, हींग, प्रत्येक 2 तोला, कपूर 2 माशा, चन्द्रोदय 2 माशा, अहिफेन 1 माशा मिलाकर प्याज के रस से मूंग बराबर गोली बनाकर आधे-आधे घंटे के बाद इसकी 2-2 गोलियाँ अर्क-पोदीने के अनुपान से दी जाती हैं। कर्पूरासव, को 15-15 बूंद की मात्रा में आधा-आधा घंटे के बाद देने से भी लाभ होता है। कर्पूरादिवटी को लौंग, सूखा पोदीना, एक-एक माशा को पीसकर थोड़ा गर्म जल मिला-छानकर उससे देते हैं। Essential Oils के प्रयोग से Cajuput, Juniper,

Aniseed Oils के समान-समान 28% या अमृतधारा की पाँच-पाँच बूंद की मात्रा में आधा-आधा घंटा बाद देने से भी लाभ हो जाता है।

वाल्मीकि रामायण में आंत्र-रोग का तो उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु विषूचिका का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता।

मंदाग्नि

वाल्मीकि रामायण में 'मंदाग्नि' रोग का भी कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, जबकि इससे थोड़ा मिलता-जुलता रोग आंत्र-रोग है, उसका उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है।

आंत्र-रोग की विशद् समीक्षा अतिसार एवं विषूचिका में की जा चुकी है, अतः उसको दुबारा प्रस्तुत करना अनावश्यक प्रतीत हो रहा है।

वायु रोग

'चरक' ने 80 प्रकार की नानात्मज वात-व्याधियों का वर्णन किया है। अष्टाङ्ग संग्रह में भी चरक के अनुसार लगभग 80 प्रकार के वात के नानात्मज रोग मिलते हैं। शार्ङ्गधर ने भी 80 प्रकार के वात के नानात्मज रोगों का उल्लेख किया है–

चरक के अनुसार

1. नख भेद	2. विपादिका	3. पादशूल
4. पाद-भ्रंश	5. पाद-सुप्तता	6. वातखुड्डता
7. गुल्फग्रह	8. पिण्डकोद्वेष्टन	9. गृध्रसी
10. जानुभेद	11. जानुविश्लेष	12. ऊरुस्तम्भ
13. ऊरुसाद	14. पङ्गु	15. गुदभ्रंश
16. गुदार्ति	17. वृषणाक्षेप	18. शोफः स्तम्भ
19. वङ्क्षणानाह	20. श्रोणिभेद	21. विड्भेद
22. उदावर्त	23. खञ्ज (खंज)	24. कुब्ज
25. वामनत्व	26. तिक्ग्रह	27. पृष्ठग्रह
28. पार्श्वावमर्द	29. उदरावेष्ट	30. हृन्मोह
31. हृदद्रव	32. वक्षोद्घर्ष	33. वक्षोपरोध
34. वक्षस्तोद	35. बाहुशोष	36. ग्रीवास्तम्भ
37. मन्यास्तम्भ	38. कण्ठोध्वन्सं	39. हनुस्तम्भ
40. ओष्ठभेद	41. अक्षिभेद	42. दन्तभेद
43. दन्तशैथिल्य	44. मूकत्व	45. वाक्सु
46. काषायास्यता	47. मुखशोष	48. अरसज्ञता
49. घ्राणनाश	50. कर्णशूल	51. अशब्दश्रवण
52. उच्चैः श्रुति	53. बाधिर्य	54. वर्त्मस्तम्भ
55. वर्त्मसंकोच	56. तिमिर	57. अक्षिशूल

58. अक्षिव्युदास	59. भ्रू व्युदास	60. शङ्खभेद
61. ललाट भेद	62. शिरोरुक	63. केश भूमिस्फुरन
64. अर्दित	65. एकाङ्ग रोग	66. सर्वाङ्ग रोग
67. आक्षेपक	68. दण्डक	69. तम
70. भ्रम	71. वेपथु	72. जृम्भा
73. हिक्का	74. विषाद	75. अतिप्रलाप
76. रौक्ष्य	77. पारुष्य	78. श्यावारुणावभासता
79. अस्वप्न	80. अनवस्थित चित्तत्व	

चरक की कुछ प्रतिलिपियों में पक्ष-वध का भी समावेश वात के नानात्मज व्याधियों में किया जाता है।

शार्ङ्गधर के अनुसार

1. आक्षेपक	2. हनुस्तम्भ	3. उरुस्तम्भ
4. शिरोग्रह	5. बाह्ययाम	6. अन्तरायाम
7. पार्श्वशूल	8. कटिग्रह	9. दण्डापतानक
10. खल्ली	11. जिह्वास्तम्भ	12. अर्दित
13. पक्षाघात	14. क्रोष्टुशीर्ष	15. मन्यास्तम्भ
16. पङ्ग	17. कलायखञ्ज	18. तूनी
19. प्रतितूनी	20. खञ्ज	21. पाद हर्ष
22. गृध्रसी	23. विश्वाची	24. अपबाहुक
25. अपतानक	26. व्रणायाम	27. वातकण्टक
28. अपतन्त्रक	29. अङ्गभेद	30. अङ्गशोष
31. मिनिमनत्व	32. गद्गद	33. प्रत्यष्ठीला
34. अष्ठीला	35. वामनत्व	36. कुब्ज
37. अङ्ग पीड़ा	38. अङ्ग शूलं	39. संकोच
40. स्तम्भ	41. रुक्षता	42. अङ्ग भङ्ग
43. अङ्गविभ्रंश	44. विड्ग्रह	45. बद्धविट्कता
46. मूकत्व	47. अतिजृम्भा	48. अत्युद्गार
49. अन्त्रकूजन	50. वात-प्रवृत्ति	51. स्फुरण
52. शिरापूरण	53. कम्प	54. कार्श्य
55. श्यावता	56. प्रलाप	57. क्षिप्रमूत्रता
58. निद्रानाश	59. स्वेदनाश	60. दुर्बलत्व
61. बलक्षय	62. शुक्र की अति-प्रवृति	
63. कार्श्य	64. रेतसनाश	65. अनवस्थित चित्तत्व

66. काठिन्य	67. विरसास्यता	68. कषायवक्त्रता
69. आध्मान	70. प्रत्याध्मान	71. शीतता
72. रोमहर्ष	73. भीरुत्व	74. तोद
75. कण्डू	76. रसाज्ञता	77. शब्दाज्ञता
78. प्रसुप्ति	79. गन्धाज्ञत्व	80. दृग्क्षय

इन व्याधियों के अतिरिक्त वात-व्याधियों के निम्नलिखित भेद हैं

अधिष्ठान भेद से वात-रोग

1. आमाशय गत कुपित वात	2. पक्वाशयगत कुपित वात
3. स्नायुगत कुपित वात	4. सिरागत कुपित वात
5. सन्धिगत	6. इन्द्रियगत
7. सर्वाङ्ग कुपित	

शाखा गत-दुष्ट-वात

1. त्वचा गत दुष्ट वात	2. रक्त गत दुष्ट वात
3. मांस गत दुष्ट वात	4. मेद् गत दुष्ट वात
5. अस्थि गत दुष्ट वात	6. मज्जा गत दुष्ट वात
7. शुक्रगत दुष्ट वात	

अष्टांग संग्रह के अनुसार वायु के 22 आवरण

1. पित्तावृत वायु	2. कफावृत वायु
3. रक्तावृत वायु	4. मांसावृत वायु
5. मेदावृत वायु	6. अस्थ्यावृत वायु
7. मज्जावृत वायु	8. शुक्रावृत वायु
9. अन्नावृत वायु	10. मूत्रावृत वायु
11. विडावृत वायु	12. सर्वधातु वृत वायु
13. पित्तावृत प्राण-वायु	14. कफावृत प्राण वायु
15. पित्तावृत उदान वायु	16. कफावृत उदान वायु
17. पित्तावृत समान वायु	18. कफावृत समान वायु
19. पित्तावृत व्यान वायु	20. कफावृत व्यान वायु
21. पित्तावृत अपान वायु	22. कफावृत अपान वायु

साध्यासाध्यता की दृष्टि से पक्ष-वध निम्न तीन प्रकार का होता है—

1. शुद्ध वात पक्ष-वध
2. पित्तानुबंधी पक्ष-वध एवं
3. कफानुबंधी पक्ष-वध

आयाम (धनुस्तम्भ, धनुर्वात)

धनुस्तम्भ रोग का वर्णन सुश्रुत ने वात-व्याधियों के अंदर किया है। आयाम दो

प्रकार के होते हैं-

1. बहिरापन
2. अन्तरायाम

गृध्रसी

गृध्रसी रोग दो प्रकार का होता है—

1- वातिक गृध्रसी ।
2- पैत्तिक गृध्रसी।

वाल्मीकि रामायण में वात-रोग से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा प्राप्त होती है—प्राचीन काल में धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभ के घृताची अप्सरा के गर्भ से 100 कन्याएँ जन्मीं। वे सबकी सब सुन्दरता एवं लावण्य से सुशोभित थीं। उनके अंग-प्रत्यंग मनोहर थे। एक दिन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वे सभी कन्याएँ उद्यान-विहार के लिये गयीं। उनको इस प्रकार विहार करते देख वायुदेव उन पर मोहित हो गये और बोले, 'सुंदरियो, मैं तुम सबको अपनी प्रेयसी बनाना चाहता हूँ। तुम सब मेरी भार्याएँ बनकर 'मनुष्य भाव' का त्याग कर देवाँगनाओं भासत दीर्घायुष्य प्राप्त करो। मुझे अंगीकार करने पर तुम सबको अक्षय यौवन प्राप्त होगा। तुम जानती हो मानव शरीर में यौवन कभी स्थिर नहीं रहता, वह प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है।'[76]

कन्याओं ने वायुदेव के उस अनुग्रह को स्वीकार नहीं किया और कहा,—"सुर श्रेष्ठ आप प्राण-वायु के रूप में समस्त प्राणियों के भीतर विचरते रहते हैं। मन की बातें आपसे छिपी नहीं रहतीं अतः आपको यह ज्ञात है कि आपका प्रभाव (कोप) कितना प्रबल है। हम सब राजर्षि कुशनाभ की कन्याएँ हैं। देवता होने पर भी हम आपको शाप देकर वायु-पद से भ्रष्ट कर सकती हैं। परन्तु हम ऐसा करना नहीं चाहतीं, क्योंकि हम अपने तप को सुरक्षित रखना चाहती हैं। फिर आप हमारा अपमान न करें, ऐसी प्रार्थना है। दुर्मति देव ! वह समय कभी न आवे जब हम अपना वर स्वयं ढूंढने लगें। हमारे पिता हमें जिसे देंगे, वही हमारा पति होगा।[77] उनकी यह बात सुनकर वायुदेव अत्यन्त ही कुपित हुए और उन ऐश्वर्यशाली प्रभु ने उनके भीतर प्रविष्ट होकर सब अंगों को मोड़कर टेढ़ा कर दिया। शरीर मुड़ जाने से वे सभी बहनें कुबड़ी हो गयीं। उनकी आकृति मुठ्ठी बाँधे हुए एक हाथ के बराबर हो गयीं। वे सभी भय से व्याकुल हो उठीं। वायुदेव के द्वारा कुबड़ी की हुई उन कन्याओं ने राज-भवन में प्रवेश किया। उनकी यह स्थिति देख कुशनाभ घबड़ा गये और बोले तुम्हारी यह स्थिति कैसे हुई तथा उत्तर जानने के लिये बैठ गये[78]—राजा कुशनाभ के पूछने पर उनकी उन रूपवती पुत्रियों ने राजा को सारा वृत्तान्त क्रमशः कह सुनाया और कहा कि इस प्रकार वायु देव ने हमारा कहना न मानकर हमें गहरी चोट पहुँचायी, बिना अपराध के हमें यह पीड़ा दी।[79] उनकी यह बात सुनकर परम धर्मात्मा महातेजस्वी महाराज ने अपनी परम उत्तम सौ कन्याओं को इस प्रकार उत्तर दिया, "पुत्रियो!

क्षमाशील महापुरुष जिसे कर सकते हैं, वही क्षमा तुमने भी की है। तुम सब लोगों में समान रूप से जैसी क्षमा या सहिष्णुता है, वह विशेषतः देवताओं के लिये भी दुष्कर है। पुत्रियो! क्षमा धन है, क्षमा सत्य है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा यश है और क्षमा धर्म है, क्षमा पर ही यह सम्पूर्ण संसार टिका पड़ा है।[80]

इसके पश्चात् राजा कुशनाभ ने अपनी उन पुत्रियों के विवाह हेतु सुयोग्य मंत्रियों के साथ मंत्रणा प्रारम्भ की। तथा धर्मात्मा राजा कुशनाभ ने ब्रह्म-दत्त के साथ अपनी सौ कन्याओं का विवाह करने का निश्चय किया। विवाह काल में उन कन्याओं के हाथों का ब्रह्मदत के हाथों से स्पर्श होते ही वे सब की सब कन्याएँ कुब्जत्व दोष से रहित हो निरोग तथा उत्तम शोभा से सम्पन्न होने लगीं। वात-रोग के रूप में आये हुए उन वायु देव ने उन कन्याओं को छोड़ दिया। गन्धर्वी सोमदा ने भी अपने पुत्र तथा पुत्र-वधुओं को आशीर्वाद दिया तथा वहाँ से प्रस्थान किया।[81]

उपरोक्त आख्यान में महर्षि ने वात से सम्बन्धित जो बातें कही हैं उनके अधार पर यह कहा जा सकता है–

1. सदाचार रसायन है और उसका पालन करने वाला व्यक्ति सदैव ही सुखी तथा तेजस्वी रहता है। उसे कभी रोग नहीं सताते।
2. वर्षा ऋतु में उत्साह वृद्धि होती है और इस ऋतु की चर्चा बताते हुए महर्षि ने कहा है–वस्त्राभूषणों का धारण, उद्यान-विहार, गाना, बजाना, नृत्य करना तथा अन्य आमोद-प्रमोद करना कारण है।
3. स्वच्छ वायु का उपयोग आयुष्य कर है। देवांगनाएँ भी इसी कारण से दीर्घायु होती थीं। वायु का निरन्तर सेवन यौवन प्रदान करता है और वह अक्षय होता है।
4. परन्तु जब यही वायु प्रकुपित होती है तो मनुष्य को रुग्ण बना देती है।
5. वायु-विकृति कर्मज भी होती है।
6. कितनी भी आपत्ति पड़ने पर मनुष्य को सदाचार नहीं छोड़ना चाहिये। क्षमा, दान, सत्य, यज्ञ, धर्म और यश ये सभी रोगी के लिये आवश्यक हैं, मानव मात्र के ये गुण हैं।
7. काम-क्रोध देह को नाश कर देते हैं और मन को भी रुग्ण बना देने वाले हैं।
8. ब्रह्म तेज से सम्पन्न व्यक्ति, जो स्वयं ब्रह्म-रूप हो गया हो, तपस्वी हो तथा ब्रह्म-शक्ति युक्त हो, एक सच्चा चिकित्सक है और वह अपनी चिकित्सा द्वारा कठिन से कठिन रोगी को भी रोग-मुक्त कर सकता है।

इसी ग्रन्थ में अन्यत्र एक प्रसंग में पवन-पुत्र शिशु हनुमान पर इन्द्र द्वारा वज्र की चोट करने पर पिता वायुदेव कुपित हो उठे और उनका यह प्रकोप प्रजा-जनों के लिये अहितकर सिद्ध हुआ। सामर्थ्यशाली मारुत, जो अब तक प्रजा के पालक तथा पोषक थे, ने प्रजा में रहकर भी अपनी गति संकुचित कर ली। श्वास आदि के रूप में संचार

रोक दिया। वायुदेव ने प्रजा के मलाशय को रोककर उन्हें बड़ी पीड़ा दी। उन्होंने सम्पूर्ण भूतों में प्राण का संचार अवरुद्ध कर दिया। वायु के प्रकोप से समस्त प्राणियों की साँस बन्द होने लगी, उनके सभी अंगों के जोड़ टूटने लगे और वे सभी काठ के समान चेष्टा-शून्य हो गये। लोगों के नित्यकर्म बन्द हो गये और वे पीड़ा के मारे कराहने लगे।

वायु के क्रुद्ध होने पर देवों के भी पेट इस प्रकार फूल गये थे, मानों उन्हें 'महोदर' रोग हो गया हो।[82] वायु देव आयु के अधिपति जो हैं, प्राणों के ईश्वर हैं। परन्तु संचार रोकने पर प्राणियों तथा देवों पर उसका प्रतिकूल प्रभाव होने लगा। देवों ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे वायुदेव को प्रसन्न करें। इस पर ब्रह्मा ने उनसे कहा—वायुदेव स्वयं शरीर धारण न करके समस्त शरीरों में उनकी रक्षा करते हुए विचरते हैं। वायु के बिना यह शरीर सूखे काष्ठ के समान हो जाता है। वायु ही सबका प्राण है। वायु ही सुख है और वायु ही यह समस्त जगत् है। वायु से परित्यक्त होकर यह जगत् कभी सुख नहीं पा सकता वायु ही जगत् की आयु है। इस समय वायु ने संसार के प्राणियों को त्याग दिया है इसलिये वे सबकेसब निष्प्राण होकर काठ और दीवार के समान हो गये हैं। तदनन्तर वायुदेव को ब्रह्मा ने प्रसन्न किया और सभी जगत् सुखी हुआ।[83]

उपरोक्त विवरण में वायु के प्रभाव को भली प्रकार से स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार रामायण में वायु धातु तथा वायु दोष और साधारण वायु का वर्णन मिलता है, जो आयुर्वेद के विशाल साहित्य को विस्तृत करता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में महोदर एवं कुब्जत्व दो वात रोगों का उल्लेख विशेष प्रकार से किया गया है।

महोदर

महोदर उदर में होने वाला एक रोग है जिसमें शूल, शोथ तथा संग होता है। उदर-रोग में कई रोगावस्थाओं का समावेश हो जाता है। चरक ने शूल-रोग का पृथक् वर्णन नहीं किया है। चरक ने 'गुल्म-उदावर्त' तथा 'उदर-रोगों' में विभिन्न प्रकार के शूलों का समावेश कर लिया है। सभी उदर-रोगों में कम या अधिक उदरोत्सेध का होना बताया गया है। साथ ही उदर रोग में अवस्था विशेष में पाक तथा जल-संचय का होना भी बताया गया है। सभी उदर रोगों में मंदाग्नि को विशेष महत्त्व दिया गया है- रोगाः सर्वेपि मन्देग्नौ सुतरामुदराणि तु।

त्वचा रोग

'त्वचा रोग' से तात्पर्य 'चर्म रोग' से है। त्वचा के ऊपर होने वाले सभी रोग त्वचा रोग के अन्तर्गत आते हैं। वाल्मीकि रामायण में 'त्वचा रोग' के अन्तर्गत मसूरिका (चेचक) का उल्लेख किया गया है। इसके भी तीन प्रकार होते हैं—

1. शीतला 2. मसूरिका 3. रोमान्तिका

शीतला

शीतला रोग का वर्णन चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट में नहीं मिलता है। 'माधव निदान' में भी इसका वर्णन नहीं है। 'भाव-प्रकाश' ने इसका वर्णन किया है, ''शीतला नामक देवी के प्रकोप से जो मसूरिका उत्पन्न होती है, उसका नाम शीतला है,'' ऐसा भी कुछ लोगों का मन्तव्य है।

शीतला के भेद

(I) बृहती–ज्वर पूर्वक स्फोट निकलते हैं, 'इसे बड़ी माता निकली है, ऐसा कहते हैं।' 'बृहती' में प्रथम सात दिन तक फोड़े निकलते हैं, दूसरे हफ्ते में उनमें पूय भर जाता है। और तीसरे हफ्ते में वे फोड़े स्वतः फूटकर सूख जाते हैं और पपड़ी जम जाती है।

(II) कोद्रवा–वात तथा कफ से उत्पन्न कोद्रव (कोदों) के दाने के समान शीतला को 'कोद्रवा' कहते हैं। कुछ लोग इसमें पाक की कल्पना भी करते हैं परन्तु वास्तव में इसमें पाक नहीं होता है, यह अपना दाग छोड़ जाता है, प्रायः सात दिन में अपने आप ठीक हो जाता है।

(III) पाणिसहा–गरमी के कारण राई जैसी कण्डूयुक्त स्पर्श प्रिय शीतला -'पाणिसहा' कहलाती है। सात दिन के बाद यह भी स्वतः ठीक हो जाती है।

(IV) सर्षपिका–सर्षप के आकार की, पीत सषर्प के वर्ण की होती है, स्वतः ठीक हो जाती है, इसमें अभ्यंग वर्ज्य है।

(V) दुःखकोद्रवा–गरमी के कारण राई के दाने के समान पिडिकाएँ बालकों के मुख पर हो जाती हैं, उन्हें 'दुःख कोद्रवा' कहते हैं, ये भी अपने आप ठीक हो जाती हैं।

(VI) लोहितोन्नतमण्डला–इसमें ज्वर-पूर्वक कोष्ठवत् रक्तवर्ण तथा व्यथायुक्त शीतला होती है। इसमें स्फोट भी होते हैं, ज्वर तीन दिन रहता है। स्वतः ठीक हो जाता है।

साध्यासाध्यता

शीतला के कई भेद बिना चिकित्सा के भी ठीक हो जाते हैं।

चिकित्सा

निम्ब-बीज, विभीतक बीज तथा हरिद्रा को ठण्डे पानी के साथ मिलाकर देना चाहिये तथा चन्दनवासा तथा यष्टीमधु को मधु के साथ प्रयुक्त करें।

मसूरिका

चरक में एक स्थल पर मसूरिका का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–जो पिडिका पित्त तथा कफ के प्रकोप से सारे शरीर में होती है और जिसका प्रमाण मसूर के दाने के समान होता है उसे मसूरिका कहते हैं।

निदान

1. कटु अम्ल, लवण, क्षार का अधिक सेवन।
2. विरुद्ध आहार।
3. अध्यशन।
4. दूषित-भोजनादि।

सम्प्राप्ति घटक

दोष-पित्त-कफ, दूष्य-रक्त, स्रोतस-रक्त वह, अधिष्ठान-त्वचा।

पूर्वरूप

ज्वर, गात्र-पीड़ा, भ्रम, वैवर्ण्य, कण्डू, अरति, त्वक्-शोथ, नेत्र लाल होते हैं।

लक्षण

स्फोट, कास, कंप, तीव्र ज्वर, दाह, मुख-पाक, कण्डू युक्त आदि।

साध्यासाध्यता

रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज और पित्त कफज मसूरिका साध्य है। सान्निपातिक मसूरिका असाध्य है।

चिकित्सा

1. निम्ब, पर्पटक, पाठा, पटोल, कटुरोहिणी, श्वेत-चन्दन, रक्त-चन्दन, उशीर, धात्री, वासा, दुरालभा-यह निंबादि क्वाथ हैं, इसे शर्करा के साथ पिलायें।
2. कांचनार त्वक्क्वाथस्वर्णमाक्षिक का प्रयोग करें।
3. कदली बीज चूर्ण 1-2 माशा पानी के साथ दें।

रोमान्तिका

यह भी इसी प्रकार का स्फोटयुक्त रोग होता है तथा यह एक ही प्रकार का होता है। इसके भेद-प्रभेद नहीं होते।

वाल्मीकि रामायण में सीता के मुख की सुंदरता एवं निर्मलता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'जो कमल-दल के समान सुंदर, मनोहर एवं प्रशंसनीय नेत्रों से सुशोभित है, जिसमें मीठी-मीठी सुगन्ध निकलती रहती है, जो निर्मल तथा चेचक आदि के चिन्हों से रहित है। जनक-किशोरी के उस दर्शनीय मुख को देखे बिना मेरी सुध-बुध खोयी जा रही है।'[84]

'जिसकी नाक ऊँची और दाँत सफेद हैं, जिसमें चेचक आदि के दाग नहीं हैं, जहाँ पवित्र-मुस्कान की छटा छायी रहती है, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दल के समान सुशोभित होते हैं तथा जो निष्कलंक कलाधर के तुल्य कमनीय कान्ति से युक्त हैं, वह आर्या सीता का मुख मुझे कब दिखाई देगा।'[85]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में त्वचा-रोग के अन्तर्गत 'चेचक' का उल्लेख किया गया है।

गण्डमाला

गण्ड-माला गले में होने वाला रोग विशेष है, इसी को ही कण्ठ माला के नाम से भी जाना जाता है। गण्ड माला रोग के भेद-प्रभेद नहीं होते। गण्ड-माला की ही अवस्थाविशेष 'अपची' है। 'अपची' रोग भी एक ही प्रकार का है।

वाल्मीकि रामायण का गहन अध्ययन करने के पश्चात् भी 'गण्डमाला' या

'कण्ठमाला' का उल्लेख कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

दन्तकृमी

सुश्रुत के अनुसार 'दन्त रोग' 8 प्रकार के होते हैं–

1. दालन	2. कृमिदन्त
3. दन्त हर्ष	4. मञ्जनक
5. दन्त शर्करा	6. कपालिका
7. श्यावदन्तक	8. हनुमोक्ष

शार्ङ्गधर के अनुसार 'दन्तरोग' 10 प्रकार के होते हैं-

1. दालन	2. कृमिदन्त
3. दन्त हर्ष	4. कराल
5. दन्त चाल	6. दन्त-शर्करा
7. कपालिका	8. श्यावदन्त
9. दन्तभेद	10. कपालिका

वाल्मीकि रामायण में 'दन्त रोग' के अन्तर्गत केवल एक स्थान पर 'दन्त-कर्षणा' का उल्लेख किया गया है। 'वाल्मीकि रामायण' एक आयुर्वेदीय ग्रन्थ नहीं है तथापि उसमें बहुत से शरीरवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है। दंत-रोग, मुख-रोग तथा जिह्वा-रोग आदि का मूल सम्बन्ध तत्सम्बन्धी अंगों से ही होता है जिनका रामायण में पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है।

दन्त-रोग सम्बन्धी अंगों का उल्लेख रामायण में इस प्रकार है–

जीभ

मनुष्य अपने शरीर से जो पाप करता है, उसे पहले मन के द्वारा कर्त्तव्य-रूप से निश्चित करता है, फिर जिह्वा की सहायता से उस कर्म को वाणी द्वारा दूसरों से कहता है तत्पश्चात् औरों के सहयोग से उसे शरीर द्वारा सम्पन्न करता है। इस तरह एक ही पातक कायिक, वाचिक और मानसिक भेद से तीन प्रकार का होता है।[86]

इसी प्रकार अन्य अंगों का भी उल्लेख मिलता है यथा–

दाढ़–'उस राक्षस की दाढे बहुत बड़ी थीं तथा वह अपनी लपलपाती हुई जीभ से अपने विशाल मुख को बारम्बार चाट रहा था।'[87]

जबड़ा–'तब पर्वत के समान विशालकाय व्रजहनु नामक राक्षस जीभ से अपने जवड़े को चाटता हुआ बोला-'[88]

अन्य स्थल भी दृष्टव्य हैं–[89]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि रामायण में 'दन्त-रोग' सम्बन्धी सभी शरीरावयवों का उल्लेख तो किया गया है किन्तु 'दन्त-रोग' का कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

पक्षाघात

पक्षाघात में शरीर के आधे-भाग में कार्य-हानि हो जाती है। पक्ष का अर्थ शरीर के ऊपर से नीचे तक का आधा भाग या मध्य से नीचे का या ऊपर का भाग कहते हैं। वाग्भट् ने इसलिये एकांग रोग या एकांगवात का समावेश पक्षाघात में किया है। रक्त के अधिक दबाव के कारण मस्तिष्कगत रक्त-स्राव, मस्तिष्कार्बुद तथा वातवहा नाड़ियों की रचनात्मक विकृति से पक्षाघात हो जाता है।

प्रकुपित वात सिरा तथा स्नायुओं में स्थान-संश्रय करके उनका शोषण करता है जिससे एक ओर का आधा शरीर कार्य नहीं कर पाता, इसे ही पक्षाघात कहते हैं।

लक्षण

1. शरीर के आधे भाग में क्रिया हानि।
2. सिरा-स्नायु शोष।
3. प्रभावित भाग स्थिर, संकुचित और कृश हो जाता है।
4. दाह-संताप-मूर्च्छा पक्षाघात में पित्त का अनुंबध बताते हैं।

साध्यासाध्यता

1. पित्त या कफ के अनुबन्ध वाला पक्षाघात साध्य है।
2. केवल वातज पक्षाघात कृच्छ-साध्य है।
3. धातुक्षय जन्य पक्षाघात असाध्य है।

चिकित्सा

1. बलातैल द्वारा अभ्यंग करना चाहिये। घृतपान भी कराना चाहिये।
2. पश्चात् पिण्डस्वेद या स्नेहधारा स्वेद कराना चाहिये।
3. वात-शामक तथा बृंहणयोग देना चाहिये तथा आक्रान्त भाग के लिये कुछ व्यायाम का प्रबन्ध करना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण रूपी महासागर में पक्षाघात लक्षण, साध्यासाध्यता एवं इसकी चिकित्सा का कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

कर्ण-रोग (कर्ण-वधिरता)

कान शरीर का संवेदन-शील अवयव है। वह सुनने तथा शारीरिक संतुलन को बनाये रखने का कार्य भी करता है। बहरे व्यक्ति को सुनने की क्रिया में व्याघात होने पर उसमें एक प्रकार की लघुता-ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है।

कान की रचना

कान के तीन विभाग होते हैं-

1. बाह्य कर्ण
2. मध्य कर्ण
3. अन्तः कर्ण

(I) बाह्य-कर्ण

इस विभाग में बाहर दिखाई देने वाला कर्ण, कर्ण-नलिका, कान के परदे का समावेश होता है।

(II) मध्य-कर्ण

कान का यह भाग कर्ण-पट के पीछे होता है। खोपड़ी की कनपटी की हड्डी में जो छिद्र होता है उसके पोले भाग में ही वह भाग स्थित है। कर्ण-पट के कम्पन का असर इसी के द्वारा अन्तः कर्ण पर्दे तक पहुँचता है।

(III) आन्तर कर्ण

कान का यह भाग आन्तरिक हिस्से में कनपटी की हड्डी के त्रिभुजाकार भाग में होता है। इसकी रचना गुफा जैसी होती है। अन्तः कर्ण की गुफा के तीन भाग होते हैं—मध्य-भग, शंखाकृति एवं अर्द्धगोलाकार वलय।

कर्ण-रोग (भेद)

'सुश्रुत' के अनुसार 28 प्रकार के कर्ण-रोग होते हैं—

1. कर्ण-शूल
2. कर्ण-नाद
3. कर्ण-बाधिर्य
4. कर्णक्ष्वेड
5. कर्ण स्राव
6. कर्ण कण्डू
7. कर्ण वर्चस्
8. कृमिकर्ण
9. कर्ण प्रतिनाह
10. निजकर्ण विद्रधि
11. आगन्तुक कर्ण विद्रधि
12. कर्ण पाक
13. पूति कर्ण
14. वातज कर्णार्श
15. पैत्तिक कर्णार्श
16. श्लैष्मिक कर्णार्श
17. सन्निपातज कर्णार्श
18. वातज कर्णार्बुद
19. पैत्तिक कर्णार्बुद
20. कफज कर्णार्बुद
21. रक्तज कर्णार्बुद
22. मांसज कर्णार्बुद
23. मेदज कर्णार्बुद
24. सर्वात्मक कर्णार्बुद
25. वातज कर्ण शोफ
26. पैत्तिक कर्ण शोफ
27. कफज कर्ण शोफ
28. सन्निपातज कर्ण शोफ

शार्ङ्गधर के अनुसार 18 प्रकार के कर्ण-रोग

1. वातिक कर्ण रोग
2. पैत्तिक कर्ण रोग
3. श्लैष्मिक कर्ण रोग
4. रक्तज कर्ण रोग
5. सन्निपातज कर्ण रोग
6. कर्ण विद्रधि
7. कर्ण-शोथ
8. कर्णार्बुद
9. पूति कर्ण
10. कर्णार्श

11. कर्णहल्लिका 12. बाधिर्य
13. तन्त्रिका 14. कण्डू
15. शष्कुली 16. कृमि कर्ण
17. कर्ण नाद 19. कर्ण प्रतिनाह

कर्ण रोग के कारण

वायु-पित्त और कफ ये तीनों दोष उनके मिश्रणों को प्रकोपित करने वाले सभी कारण कर्ण-रोगों के कारण बनते हैं और कर्ण-शिरा में प्रविष्ट होकर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

लक्षण

वात जन्य कर्ण-रोग में कान में विविध प्रकार की आवाजें आती हैं, पीड़ा होती है सूजन आ जाती है तथा बहरापन भी महसूस होता है।

पित्त जन्य कर्ण-रोग में कान में सूजन आ जाती है, लाली दिखायी देती है, कान में से पीले रंग का दुर्गन्धयुक्त स्राव होता है।

कफ से होने वाले कर्ण रोग में विपरीत शब्द सुनाई देते हैं। कान में खुजली होती है। कान में सूजन आ जाती है। कान में चिकना गाढ़ा स्राव भी होता है।

सन्निपातज कर्ण रोग में सब दोषों के एकत्रित होने वाले दोषों के लक्षण दिखायी देते हैं और जिस दोष की प्रबलता होती है, उसी के लक्षण वाला स्राव होता है।

विशेष रूप से कर्ण-रोग निम्नलिखित होते हैं–

1. कर्ण शूल 2. कर्ण नाद
3. कर्ण-कृमि 4. कर्ण स्राव
5. कर्ण-कण्डू 6. कर्ण शल्य
7. कर्ण-मल 8. बाधिर्य

वाल्मीकि रामायण में कर्णद्वय के देवता अश्विनी कुमारों को माना गया है। कर्ण-सम्बन्धी कुछ शब्दों का उल्लेख रामायण में इस प्रकार है–

कर्ण
कर्ण मूल
शंख देश
श्रोत
श्रवण

'श्री राम चन्द्र जी के इस प्रकार आदेश देने पर क्रोध में भरे हुए महाबली लक्ष्मण ने उनके देखते-देखते म्यान से तलवार खींच ली, और शूर्पणखा के नाक-कान काट लिये।'

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर-फिर बलपूर्वक उसे धरती पर दे मारा और बड़े जोर से सिंहनाद किया पृथ्वी पर गिराये जाते समय उसके दोनों कानों से खून की धारायें बहने लगीं।[91]

उसके मुख, नेत्र और कानों से बहुत सा रक्त गिरने लगा और वह चक्कर काटता हुआ रथ के पिछले भाग में निश्चेष्ट होकर जा बैठा।[92]

उस जन सभा में होने वाला वह गान सबकी श्रवणेन्द्रियों को अत्यन्त सुखद प्रतीत होता था।[93]

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी कर्ण का उल्लेख किया गया है।[92]

इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायण में कर्ण-रोग के अन्तर्गत कर्ण-विच्छेदन तथा कर्ण से रुधिर का बहना, इन दो ही रोगों का उल्लेख किया गया है।

श्वास रोग

श्वास रोग प्राणवह स्रोतस की एक मुख्य व्याधि है। इस रोग में प्राणवह स्रोतस में अवरोधात्मक विकृति के कारण प्राण वायु के विनिमय में बाधा उत्पन्न हो जाती है, जिससे श्वासोच्छवास में कष्ट होता है। प्राणवह स्रोतोदुष्टि के चार लक्षण बताये गये हैं—दीर्घ श्वास, रुक-रुककर श्वास लेना। श्वास रोग आमाशय समुद्भव है, और इनमें वात और कफ का विशेष कर्त्तव्य है। इसमें आम और आम-विष का भी महत्त्व है, दूष्य की दृष्टि से श्वास रसप्रदोषज विकार है, श्वास रोग की सामान्य सम्प्राप्ति परक वर्णन में चरक ने 'हृदयस्य रसादीनां धातूनांचोपशोषणो' कहकर Core Pulmonale जैसी स्थिति की ओर संकेत किया है।

श्वास रोग निदान

1. **वात प्रकोपक श्वास**—धूप, धूम, अनिल सेवन, शीतल जलादि।

2. **कफ-प्रकोपक श्वास**—निष्पाव, माष, तिल तैल, पिष्ट आदि।

श्वास लक्षणोदक रोग

पाण्डु, अतिसार, ज्वर, छर्दि, प्रतिश्याय, क्षीण, क्षय, रक्त-पित्त, विष, उदावर्त, विषूचिका अलसक, कास वृद्धि से श्वास।

श्वास रोग की सम्प्राप्ति

विभिन्न निदानों से प्रकुपित कफ-पूर्वक वात-प्राण व स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करके उसी स्रोतस में विमार्गगमन करता है, तब श्वास रोग उत्पन्न होता है।[95]

निदान — वात से / कफ दृष्टि—अग्निमांद्य—कफ वृद्धि—प्राणवह स्रोतोवरोध
↓ ↑
आम—रस दृष्टि—प्राण वायु विमार्ग
↓
श्वास रोग

1. दोष-कफानुगत वात (कफ और वात)

2. दूष्य-रस

3. स्रोतस-प्राणवह स्रोतस
4. स्रोतोदुष्टिलक्षण-संग-विमार्ग-गमन
5. आमाशयोत्थ व्याधि है।

श्वास रोग की सम्प्राप्ति बहुत स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण है। श्वास का रोगी मुख्यतः तीन लक्षणों को लेकर चिकित्सक के पास आता है—

श्वास, कास और कफष्ठीवन। श्वास रोग का ऋतुओं के साथ भी सम्बन्ध है। वर्षा, शीत और आसमान में बादल हों या पूर्व की हवा—इनसे श्वास रोग में वेग आते हैं, श्वास रोग बढ़ता है।[96]

श्वास रोग के भेद

1. महाश्वास
2. ऊर्ध्वश्वास
3. छिन्न श्वास
4. तमक श्वास
5. क्षुद्र श्वास

लक्षण

I. जो रोगी उन्मत्त सांड की तरह गर्जना के समान शब्दयुक्त श्वास लेता हो, उसे महाश्वास का रोगी समझना चाहिये।

II. जो रोगी दीर्घ वहि; श्वसन करे लेकिन अन्तः श्वसन में कष्ट हो—उसे ऊर्ध्व श्वास का रोगी कहते हैं।

III. जो रोगी रुक-रुक कर श्वास लेता हो, हृदय आदि मर्म स्थानों पर पीड़ा होने के कारण थोड़ी देर के लिये श्वास लेना बन्द कर देता हो, उसे छिन्न श्वास रोगी समझना चाहिये।

IV. दौर्बल्य के कारण जरा सा परिश्रम किया जाये तो स्वभावतः श्वास तेजी से चलने लगता है और विश्राम करने से स्वतः ठीक हो जाता है—यह क्षुद्र श्वास है।

V. तमक श्वास में तीव्र वेग वाला श्वास होता है। श्वास कष्ट के कारण तमः प्रवेश तथा निश्चेष्ट हो जाना एवं प्राण व स्रोतस में रुके कफ को निकालने के लिये जोर से कास का होना देखा जाता है।

चिकित्सा

अर्क, धतूरमल, मल्ल, अभ्रक, पिप्पली, कुष्ठ, भारंगी, वासा तथा काली मिर्च का विभिन्न श्वासघ्न रोगों में बहुत प्रयोग किया जाता है। इन्हें श्वास रोग की मुख्य औषधियाँ कह सकते हैं।

चरक ने शटी, पुष्कर मूल, अम्लवेतस, एला, हिङ्गु, अगरु, सुरसा, आमलकी तथा जीवन्ती को श्वास हर गण में गिनाया है। सुश्रुत ने विदारी-गंधादिगण, सुरसादिगण

तथा दशमूल को श्वास हर बताया है।

वाल्मीकि रामायण में भी एक-दो स्थलों पर 'श्वास रोग' का उल्लेख किया गया है। लक्ष्मण की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है, 'लक्ष्मण अपने शरीर में धँसे हुए वाणों से अत्यन्त पीड़ित थे, उनके अंगों में जगह-जगह घाव हो गया था। वे बारंबार लम्बी साँस खींचते थे, आघात जनितक्लेष से सन्तप्त हो रहे थे तथा उन्हें साँस लेने में भी पीड़ा होती थी'।[97]

उपरोक्त प्रसंग के आधार पर यह पुष्टि हो जाती है कि वाल्मीकि रामायण में श्वास-रोग का उल्लेख किया गया है।

स्वप्नदोष

वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

नपुंसकता

रामायण में 'नपुंसकता' का भी उल्लेख नहीं किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में इन रोगों के अतिरिक्त नेत्र-रोग, मधुमेह, क्षुधा-वेग, पिपासा वेग, चक्कर आना, घबराहट होना, धूप से पीड़ित होना आदि का भी उल्लेख किया गया है।

नेत्र-रोग

नेत्र एक अत्यन्त संवेदन शील इन्द्रिय है। खोपड़ी के आगे के हिस्से में अस्थियों के गढ़े में आँखें सुरक्षित हैं। इन गढ़ों में चर्बी का आच्छादन होता है जिससे साधारण आघात से नेत्रों को सुरक्षा प्राप्त हो सकती है।

नेत्र-गोलक के तीन आवरण होते हैं–

1. वाह्यआवरण
2. मध्यावरण
3. अन्तरावरण

'सुश्रुत' ने 76 प्रकार के नेत्र-रोग माने हैं तथा इनका वर्गीकरण दोष तथा अधिष्ठान के भेद से किया है। शार्ङगर्धर ने 94 नेत्र-रोगों का उल्लेख किया तथा इनका अधिष्ठान के अनुसार वर्गीकरण किया है।

1. वातिक नेत्र रोग
2. पैत्तिक नेत्र रोग
3. शलैष्मिक नेत्र रोग
4. रक्तज नेत्र रोग
5. सन्निपातज नेत्र रोग
6. वाह्य (आगन्तुक) नेत्र रोग

वाल्मीकि रामायण में नेत्र -रोग का कहीं स्पष्ट उल्लेख तो प्राप्त नहीं होता है किन्तु विशद् दृष्टिपात करने पर कुछ ऐसे शब्द तथा वाक्य अवश्य प्राप्त होते हैं जो नेत्र-रोगों की ओर इंगित करते हैं–

श्री राम लक्ष्मण से कहते हैं–"इस समय मुझे पिता और यशस्वी माता के लिये बड़ा शोक हो रहा है, कहीं ऐसा न हो कि वे निरन्तर रोते रहने के कारण 'अंधे' हो जायें।"[98]

राजा दशरथ कौशल्या को मुनिकुमार के वध तथा उनके असहाय माता-पिता के विषय में बता रहे हैं–"वहाँ पहुँच कर मैंने उनके दुबले, अंधे और बूढ़े माता-पिता को देखा, जिनका दूसरा कोई सहायक नहीं था उनकी अवस्था पंख कटे दो पक्षियों के समान थी।"[99]

मृत मुनिकुमार के लिये विलाप करते हुए मुनि-कुमार के पिता इस प्रकार कहते हैं, "बेटा! तुम्हारी यह तपस्विनी माता अन्धी, बूढ़ी, दीन तथा पुत्र के लिये उत्कण्ठित रहने वाली है। मैं स्वयं अंधा होकर इसका भरण-पोषण कैसे करूँगा।[100]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में यत्र-तत्र कई स्थलों पर 'अंधा' जो कि स्वयं में पूर्ण नेत्र-रोग है, का वर्णन हुआ है।

रावण के क्रोध का वर्णन करते हुए कहा गया है, "वह क्रोध के वशीभूत हो गया। अमर्ष से उसके नेत्र घूमने लगे"।[101]

आँसुओं का भी रामायण में वर्णन है–चिरकाल से माता के हृदय में जिस बात की अभिलाषा थी उसकी पूर्ति को सूचित करने वाली यह बात सुनकर कौशल्या ने आनन्द के आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठ से इस प्रकार कहा- ।[102]

इनके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर आँसू का उल्लेख प्राप्त होता है–

अयो. 24/6-8, 79/16, कि. 18/49, 28/7, सुं. 5/24, यु. 97/24, 110/10, उ. 24/28, 29, 31, 24/16, 17, 47/3, 48/2, 52/6, 68/8, 9, 71/16, 96/9, 98/2, 106/14।

आँखें बाहर निकलने का भी उल्लेख मिलता है–'नीचे गिरते ही उसकी भुजा, आदि के टुकड़े हो गये, शरीर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं।'[103]........रघुनन्दन उस ब्रह्मास्त्र को व्यर्थ नहीं किया जा सकता था, इसलिये आपने उस कौए की दाहिनी आँख फोड़ डाली।[104]

आँख के रोगी को रोशनी अच्छी नहीं लगती, ऐसा वर्णन भी रामायण में प्राप्त होता है,–श्री राम सीता के चरित्र पर शंका करते हुए कहते हैं–'तुम्हारे चरित्र में संदेह का अवसर उपस्थित है, फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो, जैसे–आँख के रोगी को दीपक की रोशनी नहीं सुहाती, उसी प्रकार आज तुम मुझे अप्रिय जान पड़ती हो।'[105]

"देवी के दिव्य-प्रभाव से उस समय मेरी बायीं आँख जल गयी और दूसरी धूल

से भरी हुई सी पिङ्गल वर्ण की हो गयी।''[106] ''देवी पार्वती के रूप पर दृष्टिपात करने से देवी के प्रभाव से जो तुम्हारा बायाँ नेत्र जल गया और दायाँ भी पिङ्गल वर्ण का हो गया, इससे सदा स्थिर रहने वाला तुम्हारा 'एकाक्ष पिङ्गली' यह नाम चिरस्थायी होगा।''[107]

इस प्रकार रामायण में आँख पीली होने का वर्णन भी प्राप्त होता है।

रामायण में दृष्टि घूमने का भी उल्लेख प्राप्त होता है यथा–रघुनन्दन! अब मेरे प्राणों की गति बंद हो रही है, दृष्टि घूम रही है, और समस्त वृक्ष मुझे सुनहरे रंग के दिखाई देते हैं----।[108]

इसी प्रकार नींद का भी अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है–''ऐसा कहकर दिति नींद से अचेत हो गयीं।'[109]

इसी प्रकार उपरोक्त स्थलों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में नेत्र-रोगों का विशद् वर्णन किया गया है।

मधुमेह

प्रमेह को 20 प्रकार का बताया गया है और ये भेद मूत्र की विकृति के आधार पर किये गये हैं, इनका नाम भी मूत्र-गत लक्षणों, वर्णों, धात्वंशों के आधार पर किया गया है। कफज प्रमेह 10 होते हैं, पैत्तिक प्रमेह 6 होते हैं, वातिक प्रमेह 4 होते हैं और इस प्रकार प्रमेह के 20 भेद होते हैं।

कफज प्रमेह

1. उदक मेह या इक्षुमेह
2. इक्षुवालिका रस मेह
3. सान्द्रमेह
4. सान्द्रप्रसाद मेह
5. शुक्ल मेह
6. शुक्रमेह
7. शीतमेह
8. सिकता मेह
9. शनैर्मेह
10. आलाल मेह या लाल मेह

पित्तज प्रमेह

1. क्षार मेह
2. काल मेह
3. नील मेह
4. रक्त मेह
5. मंजिष्ठामेह
6. हारिद्र मेह

वातज प्रमेह

1. वसा मेह
2. हस्ति मेह
3. मज्जा मेह
4. मधु मेह

मधुमेह

दो प्रकार के बताये गये हैं–स्वतन्त्र, परतन्त्र सभी प्रमेह अन्त में मधुमेह में परिवर्तित हो सकते हैं, ऐसा मधुमेह परतन्त्र मधुमेह कहलाता है। जब वात का प्रकोप होकर ओज मूत्र द्वारा निकले तब स्वतन्त्र मधुमेह होता है।

क्षौद्ररस वर्णं क्षौद्रमेही-सुश्रुत

Urine Sugar—मूत्रेभिधावन्ति पिपीलिकाश्च—चरक

माधुर्याच्च तनो रतः ।—चरक

Blood Sugar—मक्षिकोप सर्पेण शरीरमाधुर्यम्—चरक

विश्व के चिकित्सा-विज्ञान के इतिहास में चरक और सुश्रुत ने सर्व-प्रथम मूत्र में शर्करा के निकलने का वर्णन किया तथा रक्तगत शर्कराधिक्य की ओर स्पष्ट संकेत किया।

आयुर्वेदानुसार कफ को बल भी कहा है, और 'प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा विकृतो मल उच्यते, स चैवोजः स्मृतः काये' के अनुसार प्राकृत श्लेष्मा को ही अपर ओज कहते हैं, जिसका मधुमेह में मूत्र द्वारा निष्कासन होता है।

मधुमेह में मूत्र-माधुर्य होता है तथा शरीर माधुर्य भी होता है इसका विभेदक निदान इक्षुवालिका रस मेह तथा शीतमेह से करना चाहिये, अर्थात् कफज मेह जिनमें मूत्र-माधुर्य होता है, उनका वातिक प्रेमह-मधुमेह से विभेदक निदान करना चाहिये।

मधुमेह	**इक्षुवालिका रसमेह**	**शीत मेह**
1. वातज	कफज	कफज
2. रोगीकृश या स्थूल	रोगी स्थूल	रोगी प्रायः स्थूल
3. ओजः क्षय के लक्षण	ओजः क्षय नहीं	ओजः क्षय नहीं
4. असाध्य या याप्य	साध्य	साध्य
5. मूत्र किंचिद उष्ण	मूत्र किंचित उष्ण	मूत्र शीत
6. आविल मूत्र	आविल मूत्र	मूत्र आविल नहीं
7. चिरकारी	आशुकारी	आशुकारी
8. शरीर माधुर्यम्	—	—

मधुमेह की चिकित्सा

जम्बूबीज चूर्ण, गुड़मार, कारवेल्लक, स्वरस, विजयसार, सप्तरंगी, मामज्जक, उदुम्बर, निम्ब, पलाण्डु, लशुन तथा वट इनके अच्छे परिणाम मिले हैं। इनके प्रयोग से मूत्र-गत शर्करा बन्द हो जाती है, परन्तु रक्तगत शर्करा पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। लक्षण शान्त हो जाते हैं तथा रोगी स्वस्थ अनुभव करता है, ये सभी निरुपद्रुत हैं।

चन्द्रप्रभावटी, वसंत-कुसुमाकर तथा त्रिवंग-भस्म का प्रचुर प्रयोग किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में केवल 'मधुमेह' का ही उल्लेख प्राप्त होता है।

वानरों की स्थिति का वर्णन करते हुए रामायण में उल्लिखित है—'मधुवन में प्रविष्ट होकर उन्होंने देखा कि समस्त वानर यूथपति जो पहले उद्दण्ड हो रहे थे, अब मद रहित हो गये हैं—इनका नशा उतर गया है और मधु-मिश्रित जल का मेहन (मूत्रेन्द्रिय द्वारा त्याग) कर रहे हैं।'[110]

इस प्रसंग के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में मधुमेह का

उल्लेख किया गया है।

क्षुधावेग

क्षुधा का वेग रोकने से कृशता, दुर्बलता, विवर्णता, अंगमर्द, अरुचि, भ्रम ये उपद्रव होते हैं।[111] इसमें उत्तम स्निग्ध हल्के भोजन कराना हितकारक है।

वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है 'मेरे राज्य यमलोक में स्थित रहकर जो मानव-भूख से पीड़ित है, उसके पुत्रादि इस भूतल पर जब तुम्हें भोजन करवायेगें तब वे बन्धु-वान्धवों सहित परम् तृप्त होंगे।'[112]

पिपासा वेग

प्यास का वेग रोकने से कंठ और मुख का सूखना, कानों से न सुनना, श्रम, श्वास, हृदय में व्यथा, यह उपद्रव होते हैं। इसमें शीतल और तर्पण (दूध, शर्बत आदि पिलाना) हितकारी है।[113]

वाल्मीकि रामायण में भी इसका यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है—"ये दोनों बहुत दुबले और अन्धे हैं। निश्चय ही प्यास से पीड़ित होकर मेरी प्रतीक्षा में बैठे होंगे। वे देर तक मेरे आगमन की आशा लगाये दुःखदायिनी-प्यास लिये बाट जोहते रहेंगे।[114]

जृम्भा वेग

जृंभा का वेग रोकने से अंगों का नँवना, आक्षेपक, संकोच, तन्द्रा या अंगों का सोना, कंप यह उपद्रव होते हैं। इसमें वातनाशक क्रिया करना हितकारक है।[115]

वाल्मीकि रामायण में जृम्भा का उल्लेख प्राप्त होता है- 'जो कानों को फैलाता है, बारम्बार जँभाई लेता है, मृत्यु से भी नहीं डरता है--।'[116]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायण में विविध शारीरिक रोगों का वर्णन किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद

मानसिक रोग

मूर्च्छा

'चरक' तथा 'वाग्भट' ने 'मूर्च्छा रोग' के चार भेद बताये हैं। 'सुश्रुत' ने छः प्रकार के मूर्च्छा रोगों का वर्णन किया है।

चरक के अनुसार

1. वातिक
2. पैत्तिक
3. कफज
4. सन्निपातज

सुश्रुत के अनुसार

1. वातिक

2. पैत्तिक
3. कफज
4. रक्तज
5. मधु जन्य
6. विष जन्य

'मूर्च्छा' की अवस्था का समावेश मानसिक रोगों में होता है। इसमें 'मोह' प्रत्यात्म लक्षण है, अर्थात् रोगी बेहोश हो जाता है। यद्यपि यह मानसिक रोग है लेकिन इसका विशेष सम्बन्ध लक्षण या उपद्रव के रूप में शारीरिक रोगों के साथ है। ज्वर, विषूचिका, पाण्डु, रक्त-स्रावाधिक्य, अत्यधिक वेदना अवस्थाओं में यह उपद्रव स्वरूप उपस्थित हो सकती है। चरक ने, इस अवस्था का वर्णन 'विधि शोणितीय' अध्याय में किया है जो इस बात का सूचक है कि इन अवस्थाओं में रक्त-दुष्टि का महत्त्व है और आवश्यकता पड़ने पर रक्त-मोक्षण भी कराया जा सकता है।

उन्माद, अपस्मार, अतत्वाभिनिवेश में रोग के वेग आते हैं, मूर्च्छा के वेग नहीं आते।

कारण

मलिन आहार, अशुद्ध आचार-विचार, दोष-प्रकोपक आहार से शारीरिक एवं मानसिक दोष प्रकुपित होकर रसवह स्रोतस, रक्तवह स्रोतस तथा संज्ञावह स्रोतस एवं तन्मूल हृदय में जाकर आवरण उत्पन्न कर देते हैं, तब मन कार्य नहीं कर पाता जिससे संज्ञा नाश हो जाता है।

लक्षण

वातज मूर्च्छा

आकाश का वर्ण नील, कृष्ण या रक्त दीखता है। तमः प्रदेश, शीघ्र होश आ जाना, हृत्पीड़ा, कंप, अंग-मर्द, कार्श्य, रोगी का वर्ण श्यावारुण हो जाता है।

पैत्तिक मूर्च्छा

रोगी को आकाश का वर्ण रक्त, पीत या हरित दिखता है तमः प्रवेश, प्रस्वेद के साथ होश आता है। पिपासा, संताप, नेत्र-पीत एवं रक्त-वर्ण के अतिसार होते हैं।

कफज मूर्च्छा

आकाश मेघाच्छन्न दीखता है, तमः प्रवेश, विलम्ब से होश आता है, ऐसा लगता है जैसे शरीर पर गीला चमड़ा लपेट रखा हो। प्रसेक, हृल्लास।

सन्निपातिक मूर्च्छा

पूर्वोक्त सभी लक्षण मिलते हैं।

चिकित्सा

1. मूर्च्छा में शोधन चिकित्सा करनी चाहिये।
2. अंजन, अवपीड़न, धूम, प्रधमन, नस्य, दाह, नाखून लगाना, बाल खींचना, रोगी के

मुख में तीक्ष्ण मद्य डालना। इन उपायों से रोगी को संज्ञा लाभ होता है।
3. रक्त-दुष्टि के लक्षण अधिक लगें तो रक्त-मोक्षण करें।

वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर 'मूर्च्छा' का उल्लेख किया गया है, यथा–
1. विश्वामित्र का यह शुभ वचन सुनकर महाराजा दशरथ को पुत्र वियोग की आशंका से महान दुःख हुआ। वे उससे पीड़ित हो सहसा काँप उठे और बेहोश हो गये।[2]
2- विश्वामित्र का वचन सुनकर नृपश्रेष्ठ दशरथ दो घड़ी के लिये संज्ञा शून्य से हो गये। फिर सचेत होकर इस प्रकार बोले।[3]
3. इस प्रकार शाप मिलने के कारण ताटका का अमर्ष और भी बढ़ गया। वे क्रोध से मूर्च्छित हो उठी और उन दिनों अगस्त्य जी जहाँ रहते थे, उस सुंदर देश को उजाड़ने लगी।[4]
4. शीतेषु नामक मानवास्त्र से पीड़ित हो मारीच अचेत-सा होकर चक्कर काटता हुआ दूर चला जा रहा है।[5]
5. राजर्षि भगीरथ भी यत्नपूर्वक गङ्गा जी को साथ ले वहाँ गये। उन्होंने शाप से भस्म हुए अपने पितामहों को अचेत सा होकर देखा।[6]

इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर अचेतनता तथा मूर्च्छा का उल्लेख मिलता है जो इस बात का सूचक है कि वाल्मीकि जी ने अपने महाकाव्य में मूर्च्छा का विशद् वर्णन किया है तथा इसको दूर करने के लिये उशीर, चन्दन, अगरू आदि से युक्त जल के छींटे लगाने का भी उललेख किया है।

उन्माद

उन्मादं पुर्नमनो बुद्धि संज्ञा ज्ञान स्मृति भक्ति शील, चेष्टाचार विभ्रमं विद्यात्।[7] यह उन्माद की व्यापक परिभाषा चरक ने बतायी है। उन्माद में मनो-विभ्रम, बुद्धि-विभ्रम, संज्ञा-विभ्रम, ज्ञान-विभ्रम, स्मृति-विभ्रम, भक्ति-विभ्रम, शील-विभ्रम, चेष्टा-विभ्रम तथा आचार-विभ्रम हो जाता है।

इस रोग का नाम 'उन्माद' इसलिये पड़ा है क्योंकि इस रोग में दोष उन्मार्गगामी हो जाते हैं। मन पर मद्य के प्रभाव के समान प्रभाव पड़ता है। तथा यह एक मानसिक व्याधि है।

उन्माद रोग के कारण

विरुद्ध भोजन, दूषित भोजन, अपवित्र-भोजन, देव-ब्राह्मण, गुरु का अपमान करना, मन पर आघात करने वाले कारण, अधिक भय या अधिक हर्ष उत्पन्न करने वाले कारण इन सबसे उन्माद रोग होता है।

सम्प्राप्ति

पूर्वोक्त सामान्य (शारीरिक तथा मानसिक) कारणों से प्रकुपित दोष बुद्धि (मन) के स्थान हृदय तथा मनोवह स्रोतों में जाकर मन को दूषित कर देते हैं जिससे उन्माद हो जाता है। यह रोग अल्पसत्व व्यक्तियों में अधिक होता है और

इसमें मनो-विभ्रंश (प्रमोह) हो जाता है।

लक्षण

उन्माद रोग के निम्नलिखित लक्षण होते हैं।

1. धीविभ्रम
2. मनो-विभ्रम
3. व्याकुल दृष्टि
4. अधीरता
5. अबद्ध वाक्त्व
6. हृदय शून्यता प्रतीति

उन्माद के प्रकार

1. वातज
2. पित्तज
3. कफज
4. सन्निपातज
5. आगन्तुज

वातज उन्माद के निदान

रुक्ष अन्न, अल्प अन्न, शीत अन्न, विरेचन, धातुक्षय, उपवास।

सम्प्राप्ति

पूर्वोक्त कारणों से वात का प्रकोप होता है। प्रकुपित वायु चिन्ता से आक्रान्त हृदय में प्रविष्ट होकर हृदय को दूषित करता है और बुद्धि तथा स्मृति को शीघ्र नष्ट करके उन्माद उत्पन्न करता है।

लक्षण

1- अस्थान हास्य

2- अस्थान मुस्कुराना

3- अस्थान नृत्य

4- अस्थान गीत

5- क्या बोलना, इसका ध्यान न देना

6- अंग विक्षेपण

7- प्रत्यक्ष कारण बिना रोना

8- पारुष्य, कार्श्य, अरुण वर्ण

व्यवहार में वातज उन्माद रोगी अधिक मिलते हैं।

पित्तज उन्माद के निदान

अजीर्ण, कटुरस का अधिक सेवन, अम्ल रस का अधिक सेवन, विदाही अन्न का अधिक सेवन, अधिक उष्ण पदार्थों का सेवन।

सम्प्राप्ति

पूर्वोक्त कारणों से प्रकुपित पित हृदय को दूषित करता है, परिणामतः चित्त-विभ्रंश होकर उन्माद हो जाता है।

लक्षण

शीघ्र क्रुद्ध हो जाना, नंगा हो जाना, तेजी से चलना, लोगों को मारने का प्रयत्न करना, शीतल स्थान तथा शीतल अन्न पान में रुचि, पीत एवं रक्त-वर्णता।

कफज उन्माद के निदान

कफज आहार-विहार तथा चेष्टाहीन रहना।

सम्प्राप्ति

पूर्वोक्त कारणों से प्रकुपित कफ हृदय को दूषित करके बुद्धि विभ्रम तथा स्मृति-विभ्रम करके उन्माद उत्पन्न करता है।

लक्षण

मंदवाक्, अरोचक, कफाधिक्य, वीभत्सता, शौचद्वेष, स्वप्ननित्यता, लाल स्राव छर्दि।

सन्निपातज उन्माद

पूर्वोक्त तीनों दोषों के मिश्रित निदान और लक्षणों से सन्निपातज उन्माद का विनिश्चय किया जाता है।

आगन्तुज उन्माद

आगन्तुज या देवादि प्रकोप निमितज उन्माद के कारणों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं--पूर्वजन्मकृत पाप कर्म तथा इस जन्म में कृत पाप कर्म यथा-देव, गुरु यक्ष, गन्धर्व, राक्षस का अपमान करना।

आचार्य चरक ने स्पष्टतः कहा है कि देव-गन्धर्व या राक्षस स्वयं क्रुद्ध होकर किसी को भी उन्मत्त नहीं करते, ये उसी को उन्मत्त करते हैं जो पूर्व जन्म या इस जन्म में पापी हों। इसमें देवादि का दोष नहीं है, व्यक्ति के कर्मों का दोष है।[8]

देव-यक्ष आदि भी व्यक्ति के कर्मों के अनुसार तीन प्रयोजनों से उन्माद उत्पन्न करते हैं। ये तीन प्रयोजन हैं—हिंसा, रति तथा अभ्यर्चना। जिसमें हिंसा की बात आ जाये वह असाध्य और रति तथा अभ्यर्चना ये दो साध्य होते हैं। देव-यक्ष आदि में भी जिसका अपमान व्यक्ति ने किया हो वही देव-यक्ष आदि उस व्यक्ति को उन्मत्त कर देता है। गुरु, बृद्ध, सिद्ध तथा महर्पि के शाप से भी उन्माद हो जाता है। गन्धर्व स्पर्श करके उन्माद उत्पन्न करता है, यक्ष शरीर में प्रविष्ट होकर उन्माद उत्पन्न करता है, राक्षस अपनी गन्ध से उन्माद उत्पन्न करता है, पिशाच शरीर पर चढ़कर उन्माद उत्पन्न करता है। इसका वर्णन निम्नलिखित शब्दों में भी प्राप्त होता है—

1- अवलोकयन्तो देवाः जन्यन्त्युन्मादम्।

2- गुरुवृद्धसिद्ध महर्षयोऽभिशपन् जन्यन्त्युन्मादम्।

3- पितरो दर्शयन्तः जन्यन्त्युन्मादम्।

4- स्पृशन्तो गंधर्वाः जन्यन्त्युन्मादम्।

5- समाविशन्तो यक्षाः जन्यन्त्युन्मादम्।

6- राक्षसाः गंधमाघ्रापयन्तः जन्यन्त्युन्मादम्।

7- पिशाचाः पुनरारुद्ध बाहयन्तः जन्यन्त्युन्मादम्।

जब देव, यक्ष, राक्षस आदि किसी के शरीर में प्रविष्ट होते हैं, तब वह व्यक्ति स्वयं को मारने का प्रयत्न करता है, तालाब में कूद जाता है, पहाड़ पर से छलांग मारता है, अग्नि में कूदता है। शस्त्र से अपने शरीर पर प्रहार करता है। इस बात का उन्माद असाध्य होता है। इस प्रकार के उन्मादी दूसरे पर भी घातक आक्रमण कर सकते हैं, अतः इन्हें बाँधकर या कमरे में बन्द रखना चाहिये।

आगन्तुज उन्माद के लक्षण

अत्यात्म बल वीर्य पौरुष पराक्रम ग्रहण, धारण, स्मरण, ज्ञान, वचन विज्ञानानि अनियतश्चोन्माद कालः।[9]

आगन्तुज उन्माद में रोगी में उद्भूत बल, पराक्रम, ज्ञान आदि आ जाता है। यह रोग शरीर में प्रविष्ट देव-यक्ष आदि के कारण होता है, ऐसे उन्माद का कोई समय निश्चित नहीं होता है।

देवोन्माद के लक्षण

1- सौम्य दृष्टि

2- गम्भीर

3- अक्रोधी

4- अल्पनिद्रा

5- अल्प-भोजन

6- स्वेद, मूत्र, पुरीष की अल्प प्रवृत्ति

7- शरीर में से अच्छी गंध आना, सुगन्ध-प्रियता

8- प्रसन्न वदन

पितृ उन्माद के लक्षण

1- अप्रसन्न दीखना

2- निद्राधिक्य

3- प्रति हत वाक्

4- अन्नाभिलाषा

5- अरोचक

6- अविपाक

गन्धर्वोन्माद के लक्षण

1- नृत्य, गीत, गंध-स्नान मालादि-धारण में रुचि।

2- रक्तवस्त्र, वलि, हास्यकथा में रुचि।

यक्षोन्मत्त के लक्षण

1- स्वप्न, रोदन, हास्य, नृत्य, गीत, वाद्य में रुचि।

2- नेत्र विस्फारित तथा रक्त वर्ण के।

3- जिस बात का रहस्य नहीं समझता उसे कहने लगता है।

राक्षसोन्मत्त के लक्षण

1- रोगी शस्त्र रक्त तथा मांस की इच्छा करता है।

2- रक्त वर्ण की माला पहनने की इच्छा करता है।

3- बहुत गर्जना करता है।

ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण

1- स्तुति, वेद-मंत्र तथा शास्त्रों की बातें करता है।

2- लकड़ी आदि से अपने शरीर को पीटता है।

भूत-पिशाचोन्मत्त के लक्षण

1- अस्थान एवं असंबद्ध गीत, नृत्य-हास्य।

2- गन्दे वस्त्र तथा गन्दे स्थान में रुचि।

3- रुक्ष तथा भिन्न स्वर।

4- नंगे होकर दौड़ना।

5- प्रलाप

6- अपने दुःखों को दूसरों से कहता फिरता है।

7- स्मृति नाश।

इन सभी प्रकार के आगन्तुज उन्मादों के सम्बन्ध में यह भी वर्णन उपलब्ध होता है कि विशेषतः अमुक प्रकार का उन्माद अमुक तिथि में प्रारम्भ होता है– यथा–

देवोन्माद	-	शुक्ल प्रतिपदा या त्रयोदशी के दिन।
पितृउन्माद	-	अमावस्या या दशमी के दिन।
गन्धर्वोन्माद	-	दशमी या चतुर्दशी के दिन।
यक्षोन्माद	-	शुक्ल त्रयोदशी या सप्तमी के दिन।
राक्षसोन्माद एवं भूत पिशाचोन्माद	-	द्वितीय, तृतीया, अष्टमी के दिन।

इन तथ्यों को रोग विनिश्यात्मक आधार नहीं माना जाना चाहिये। ये मात्र सहायक आधार है।

चिकित्सा

निज कारणोत्थ उन्मादों की चिकित्सा

1- कामोन्माद में सर्व-प्रथम स्नेह पान कराना चाहिये।

2- आवृत-मार्ग की अवस्था में स्नेहनोत्तर मृदु-शोधन।

3- कफज में वमन, पित्तज में विरेचन।

4- सभी प्रकार के उन्मादों में वस्ति एवं शिरो-विरेचन।

5- पश्चात् दोष विनिश्चय करके शमन चिकित्सा।

6- मन को प्रकृतिस्थ करने के लिये कुछ मानसिक तथा कुछ शारीरिक उपचार बताये गये हैं। रोगी को मारना, डाँटना, सान्त्वना देना, डराना, आश्चर्य में डालना, प्रसन्न करना आदि मानसिक उपचार हैं, जबकि प्रदेह, धूम, घृतपान, आदि शारीरिक उपचार हैं, जिससे मन, बुद्धि, स्मृति, संज्ञा सभी ठीक हो जाते हैं। कारण के विपरीत उपचार करना चाहिये। भय कारण हो तो सान्त्वना देनी चाहिये, दुःख कारण हो तो हर्षण करना चाहिये आदि।[10]

7-इष्ट-वस्तु के नाश से या धनहानि से जिस रोगी को मनो-भ्रंश हुआ हो उसे वस्तु की प्राप्ति करा देनी चाहिये तथा सान्त्वना तथा आश्वासन देना ही चिकित्सा है।

काम को शोक से, शोक को हर्ष से, भय को हर्ष, ईर्ष्या तथा लोभ से, ईर्ष्या और लोभ को सद्विचारों से जीतना चाहिये। ऐसा करने पर इन कारणों से उत्पन्न उन्माद ठीक हो जाता है, रोग शान्त हो जाता है।

आगन्तुज उन्माद की चिकित्सा

1- आगन्तुज उन्माद में देव, ऋषि, पितृ तथा गन्धर्व कारण हो तो मारना डराना आदि क्रूर कर्म नहीं करने चाहिये। ऐसी दशा में घृत-पान, मृदु-औषध, पूजा तथा मंत्र का प्रयोग करें।

2- बलि, होम, आराध्य देव का पूजन, सत्य-आचरण, तप ज्ञान, गोष्ठी, गौ, ब्राह्मण, गुरु एवं पूज्य व्यक्तियों का पूजन करना चाहिये। ऐसा करने से मानसिक तनाव की स्थिति में अन्तर आकर रोग शान्त हो जाता है।

3- आगन्तुज उन्माद में सर्पिः, पानः, धूम, अभ्यंग आदि भी करना चाहिये। मंत्रोपचार भी करना चाहिये।

औषध

सभी प्रकार के उन्मादों में उन्मादगज-केशरी-500 मि.ग्रा. ब्राह्मी घृत के साथ (उन्माद गजकेशरी में धतूर, बचा, रास्ना आदि द्रव्य पड़ते हैं)।

वाल्मीकि रामायण में विविध मानसिक रोगों का वर्णन किया गया है। इन रोगों में उन्माद रोग को अधिक महत्त्व देते हुए इसका अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है।

उन्माद रोग के अन्तर्गत रामायण में कामोन्माद, शोकोन्माद, भूतोन्माद, पिशाचोन्माद, मधु पीकर उन्मत्त होना, रक्त-गन्ध से उन्मत्त होना आदि का उल्लेख किया गया है यथा–

रावण काम-वश पागल हो उठा और प्रलाप करने लगा।

इसी प्रकार राम की स्थिति भी बतायी गयी है–

'हर्ष से भरे हुए ये झुंड के झुंड पक्षी एक-दूसरे को बुलाते हुए इच्छानुसार कलरव कर रहें है और मेरे मन में कामोन्माद उत्पन्न किये देते हैं।'[11]

शोकोन्माद का भी वर्णन है। सीता शोक सन्तप्त होकर संज्ञा शून्य हो गयीं और दो घड़ी तक मूर्च्छित रहीं।[12] एक स्थान पर वर्णन है कि वह शोकोन्माद से आक्रान्त हो गयीं।[13] रामायण में भूतोन्माद का उल्लेख भी प्राप्त होता है, कैकेई के लिये राजा दशरथ ने कहा था कि क्या तू भूतों के वश में आ गयी है?[14]

रामायण में मधु पीकर उन्मत्त होना[15] तथा रक्त गन्ध द्वारा उन्मत[16] होने का भी उल्लेख मिलता है।

इसकी चिकित्सा स्वरूप शीतल जल का अभिषेक तथा मीठे वचनों द्वारा आश्वस्त करना बताया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में उन्माद रोग का विशद् विवेचन किया गया है।

अपस्मार

अपस्मार रोग 4 प्रकार का होता है—

1- वातिक अपस्मार

2- पैत्तिक अपस्मार

3- कफज अपस्मार

4- सन्निपातज अपस्मार

वाल्मीकि रामायण में अपस्मार रोग का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

मद रोग

अष्टाङ्ग संग्रह में मद सात प्रकार के माने हैं।

1- वातिक मद

2- पैत्तिक मद

3- कफज मद

4- सन्निपातज मद

5- रक्तज मद

6- मद्यजन्य मद

7- विषजन्य मद

मद रोग में 'मोह' प्रत्यात्म लक्षण है, अर्थात् रोगी बेहोश हो जाता है। मद की अपेक्षा मूर्च्छा में अधिक बेहोशी, मूर्च्छा की अपेक्षा संन्यास में अधिक बेहोशी होती है। यद्यपि ये मानसिक रोग हैं, लेकिन इसका विशेष सम्बन्ध लक्षण या उपद्रव के रूप में शारीरिक रोगों के साथ हैं।

मद के लक्षण

वातिक मद

अस्पष्ट वाणी, लड़खड़ाना, रुक्ष-श्याव-अरुण वर्ण की आकृतियाँ दीखना।

पैत्तिक मद

क्रोध, कर्कश वाणी, रक्त-पीत-कृष्ण वर्ण की आकृतियाँ दीखना।

कफज मद

अल्प एवं असम्बद्ध भाषण, तन्द्रा, आलस्य, पाण्डु।

सन्निपातिक मद

पूर्वोक्त सभी लक्षण मिलते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भी 'मद' का उल्लेख मिलता है।[17]

तृतीय परिच्छेद

आगन्तुक रोग

अर्दित

'अर्दयति पीडयति इति अर्दितः' अर्थात् जिस रोग में (मुखार्ध में) पीड़ा हो उसे 'अर्दित' कहते हैं 'चरक' ने 'अर्दित' को मुखार्ध अथवा शरीरार्ध में होने वाला रोग बताया है, परन्तु सुश्रुत ने अर्दित को मुखार्ध में होने वाला रोग बताया है। सुश्रुत का मत स्पष्ट है ताकि अर्दित और पक्षाघात या एकाँग रोग में स्पष्ट अंतर समझा जा सके। अर्दित को Facial Paralysis समझना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण में कई स्थलों पर मुख रोग का तथा मुख शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है अतः अप्रत्यक्ष रूप से अर्दित का ही उल्लेख माना जा सकता है।[1]

अर्दित के निदान

1. अति उच्च स्वर में भाषण करना।
2. अति कठिन पदार्थों का भाषण।
3. अधिक हँसना या अधिक जृम्भा।
4. अधिक भार उठाना।
5. ऊँची, नीची भूमि पर शयन करना।
6. मुँह टेढ़ा रखकर छींक लेना।
7. अति कठिन धनुष खींचने से।
8. वात-वर्धक आहार-विहार से।
9. गर्भवती स्त्री, सूतिका, बालक, वृद्ध और क्षीण पुरुषों में अधिक रक्तक्षय के कारण।

सम्प्राप्ति

पूर्वोक्त निदानों से वायु का प्रकोप होता है और वह प्रकुपित वायु, मुख, नासिका, ललाट, ओष्ठ, हनु तथा नेत्र की सन्धियों में जाकर उन्हें टेढ़ा कर देता है, तब 'अर्दित' उत्पन्न होता है।

पूर्वरूप

1. रोमहर्ष

2. वेपथु
3. आविल नेत्रता
4. वायु का ऊर्ध्व वेग
5. त्वचा में सुप्ति
6. तोद एवं मन्या-हनुग्रह

लक्षण

1. मुख एक ओर टेढ़ा हो जाता है। आँख, ललाट, गाल तथा ओष्ठ एवं जिह्वा एक ओर वक्र हो जाते हैं।
2. रोगी को बोलने में कष्ट, उसकी आवाज स्पष्ट नहीं होती।
3. उसका आक्रान्त नेत्र नहीं घूमता।
4. उसकी जीभ, बाहर निकालने को कहें तो एक ओर वक्र होकर निकलती है।
5. रोगी खाना खाता है या पानी पीता है तो अन्न उदक आक्रान्त भाग की ओर से बाहर गिर जाते हैं।

'वाग्भट' ने अर्दित को ही 'एकायाम' नाम से कहा है।

चिकित्सा

1. नस्य देकर नाक में स्नेह डालें।
2. 'वलातैल' का अभ्यङ्ग करके नाड़ी स्वेद तथा उपनाह।
3. क्षीर बलातैल की वस्ति दें। शिरोवस्ति भी दें।

आघात

'आघात' का प्रयोग आगन्तुक रोग के रूप में किया जा रहा है। आघात कई प्रकार का होता है यथा—मानसिक आघात, शारीरिक आघात, परिस्थितिजन्य आघात। आघात से तात्पर्य कष्ट से है।

वाल्मीकि रामायण में भी कई स्थानों पर 'आघात' का उल्लेख दृष्टि-गोचर होता है। यथा-

लक्ष्मण अपने शरीर में धँसे हुए वाणों के द्वारा अत्यन्त पीड़ित थे। उनके अङ्गों में जगह-जगह घाव हो गया था। वे बारंबार लम्बी साँस खींचते थे, आघात जनित क्लेष से सन्तप्त हो रहे थे तथा उन्हें साँस लेने में भी पीड़ा होती थी।[2]

तत्पश्चात् उसने काले लोहे के बने हुए और बहुसंख्यक काँटों से जड़े हुए शूल को लेकर भगवान की छाती में गहरा आघात किया।[3]

कवि ने एक स्थान पर रावण के देह का वर्णन करते हुए उसकी छाती पर ऐरावत हाथी के दाँतों के आघात चिन्ह का वर्णन किया है।

इस प्रकार सुस्पष्ट हो जाता है कि रामायण में 'आघात' का पर्याप्त उल्लेख किया गया है।

वज्रपात, रजस्राव, कुत्ता काटना, सर्प काटना,
फफोले पड़ना, वमन, विरेचन स्वेदादि।

आगन्तुक रोगों के अन्तर्गत उपरोक्त सभी का वाल्मीकि रामायण में यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है। 'कुत्ता काटना' का रामायण में कहीं भी वर्णन या उल्लेख प्राप्त नहीं होता है किन्तु अन्य सभी का किसी न किसी रूप में दर्शन अवश्य होता है।

युद्धों का वर्णन करते हुए कवि ने हृदय का फटकर बिखर जाना, हृदय का बिंध जाना, मुख से रक्त-वमन, सफेन रुधिर श्रावण, मुख से मांस युक्त रुधिर का प्रबहण, भुजा, टांग आदि का कट जाना तथा नेत्रों का बिंध जाना आदि आगन्तुक रोगों का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त राम-लक्ष्मण सीता के वन गमन के समय में वन में चलने के कारण उनके पैरों में फफोले पड़ने को भी अस्पष्ट रूप से इंगित किया गया है।

कवि ने परदारा के उपभोग को भी एक घातक रोग माना है तथा इसकी निन्दा की है—परदारा पराभवः, अङ्ग विह्वल होना, बुद्धि विचेतन, नष्ट चेतना, दीनता, आतुरता, चक्कर आना, घबराना, आँखें लाल होना, उन्मत्तता, संज्ञा-शून्यता शिथिलता के कारण उठना, गिरना, दीनता आना आदि सभी आगन्तुक रोग कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त स्थूलता, धूप से पीड़ित होना, रजः स्राव, वज्रपात, वमन, विरेचन आदि आगन्तुक रोग के ही भेद हैं—

युद्ध भूमि का वर्णन दृष्टव्य है-

मारे गये वीरों की लाशें ही जिसके दोनों तट थे। रक्त का प्रवाह ही जिसकी महान जल-राशि थी। टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र ही जिसके तटवर्ती विशाल वृक्षों के समान जान पड़ते थे। जो यमलोक रूपी समुद्र से मिली हुई थी। सैनिकों के यकृत् और प्लीहा (हृदय के दाहिनें और बायें भाग) जिसके महान पंक थे। निकली हुई आँतें, जहाँ सेवार का काम देती थीं। कटे हुए सिर और धड़ जहाँ मत्स्य से प्रतीत होते थे। शरीर के छोटे-छोटे अवयव एवं केश जिसमें घास का भ्रम उत्पन्न करते थे।[4]

जहाँ गीध ही हंस बनकर बैठे थे। कंकारूपी सारस जिसका सेवन करते थे। मेदे ही फेन बनकर जहाँ सब ओर फैले थे। पीड़ितों की कराह जिसकी कलकल ध्वनि थी और कायरों के लिये जिसे पार करना अत्यन्त कठिन था, उस युद्ध-भूमि रूपणी नदी को प्रवाहित करके राक्षस और श्रेष्ठ वानर वर्षा के अन्त में हंसों और सारसों से सेवित सरिता की भाँति उस दुस्तर नदी को उसी तरह पार कर रहे थे, जैसे—गजयूथपति कमलों के पराग से आच्छादित किसी पुष्करिणी को पार करते हैं।[5]

नीचे गिरते हुए राक्षसों की भुजा, जाँघ, कमर व छाती के टुकड़े-टुकड़े हो गये। आँखें बाहर निकल आयीं, खून की धारा बहने लगी, शरीर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, शरीर के जोड़-जोड़ क्षत-विक्षत हो गये तथा नस-नाड़ियों के बन्धन भी शिथिल हो गये।[6]

इसके अतिरिक्त विपरीत प्रकृति, भयातुर, तेजहीन आदि मानवीय अवस्थाओं का जो रोग के रूप में आक्रान्त होती हैं, वर्णन किया गया है।[7]

रोगी की शिथिल अवस्था में भी वह हिम्मत कर उठता है, परन्तु वह आगे नहीं बढ़ सकता और गिर पड़ता है, ऐसा बार-बार होता है—इस प्रकार की शिथिलता का वर्णन कवि ने राजा दशरथ की अंतिम अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है। ठीक इसी के साथ "जिस प्रकार एक रोगी किसी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास करता है, उसे छूना चाहता है परन्तु दुर्बलतावश वहाँ तक नहीं पहुँच पाता और बीच में ही अचेत होकर गिर पड़ता है" ऐसी दुर्बलता की विशेष अवस्था का वर्णन वहाँ किया गया है। राजा दशरथ मर्यादा का उल्लंघन करने वाली उस हठीली स्त्री के वश में पड़कर अनाथ की भाँति विलाप कर रहे थे। वे कैकेई के चरणों को छूना चाहते थे परन्तु उन्हें न पाकर बीच में ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। ठीक उसी तरह, जैसे कोई रोगी किसी वस्तु को छूना चाहता है, किन्तु दुर्बलता के कारण वहाँ तक न पहुँच कर बीच में ही अचेत होकर गिर जाता है।"[8]

आयुर्वेद में अकाल में प्राप्त जरा को भी व्याधि रूप में ही स्वीकार किया गया है। रामायण में भी इसे रोग के रूप में स्वीकार कर मृत्यु का कारण बताया है—"अवसीदन्ति नरा जरा मृत्यु वशंगताः।।"

रामायण में जबरदस्ती मृत्यु प्राप्त करने के निम्न कारण बताये हैं—विष पीकर मृत्यु को प्राप्त, आग में जलकर मृत्यु को प्राप्त होना, उपवास द्वारा, छुरा भौंककर तथा गला घोंटकर मृत्यु को प्राप्त होना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में आगन्तुक रोगों का युद्ध काण्ड में विशेष रूप से विशद् वर्णन किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद

स्त्री रोग एवं गर्भावक्रान्ति

वाल्मीकि रामायण में स्त्री रोग एवं गर्भावस्था के रोगों का विशद् वर्णन मिलता है तथा उनकी चिकित्सा का भी उल्लेख किया गया है यथा—

रामायण में एक स्थान पर सीता के मुख से कहलवाया गया है, "शल्य-चिकित्सक किसी विशेष अवस्था में (शिशु के अप्राकृतिक अवस्था में आ जाने पर या मूढ़ गर्भ बन जाने पर, गर्भ में मृत्यु हो जाने पर) गर्भस्थ शिशु को टूक-टूक कर देता है।"[1] इसी प्रकार रामायण में बिना कष्ट के प्रसव होने का भी उल्लेख है।

गर्भ-धारण, गर्भवती, गर्भ से उत्पन्न, गर्भ-स्राव, गर्भ-पिण्ड,[2] गर्भ के टुकड़े करना, गर्भस्थ बालक, गर्भ के लक्षण, ऋतु-स्नान, ऋतुमती, रजस्वला,[3] योनि देश, रज, वीर्य, बन्ध्या, स्त्री समागम, सूतिका गार, अयोनिजा,[4] गर्भ-परिश्रव[5] (Abortion) तेज (वीर्य, Seman)[6] आदि शब्दों के उल्लेख से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि रामायण में 'स्त्री रोग' एवं 'गर्भावक्रान्ति' की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

इनके अतिरिक्त रामायण में तो यह भी कथन प्राप्त होता है 'खच्चरी को गर्भस्थ शिशु नष्ट कर देता है।'[7]

रजस्वला

'श्री भाव प्रकाश' में गर्भ-प्रकरण में गर्भोत्पत्ति का क्रम बताते हुए सर्व-प्रथम 'रजस्वला' स्त्री के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है, '12 वर्ष की अवस्था से लेकर 50 वर्ष की अवस्था तक की स्त्रियों के भग के मार्ग से प्रत्येक माह आर्तव (रज) निकलता रहता है[8]–ऐसी स्त्री को ही रजस्वला स्त्री कहते हैं।'

वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख इस प्रकार है–राजा इसके श्रवण से भूमण्डल पर विजय पाता है। परदेश में निवास करने वाला पुरुष सकुशल रहता और 'रजस्वला स्त्रियाँ' (स्नान के अनन्तर सोलह दिनों के अंदर) इसे सुनकर श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म देती हैं।[9]

गर्भ-ग्रहण योग्य समय

श्री भाव प्रकाश के अनुसार जिस दिन से रज निकलने लगता है, उस दिन से अर्थात् मासिक धर्म के होने से लेकर 16 वीं रात्रि पर्यन्त समय को 'ऋतुकाल' कहते हैं, पण्डित लोगों ने इसी 16 रात्रि व्यापी 'ऋतुकाल' को गर्भ-धारण करने के योग्य समय बताया है।[10]

वाल्मीकि रामायण में सीता लक्ष्मण से कह रही हैं–मेरी ओर से सारी बातें तुम श्री रघुनाथ जी से कहना और आज तुम भी मुझे देख जाओ। मैं इस समय ऋतुकाल का उल्लंघन करके गर्भवती हो चुकी हूँ।[11]

रजस्वला का कर्त्तव्य

रजस्वला स्त्री ऋतुस्नान करके जिस प्रकार के पुरुष को देखती है, उसी तरह के पुत्र को उत्पन्न करती है।[12]

वाल्मीकि रामायण में भरत का कथन है 'जिसके परामर्श से आर्य का वन गमन हुआ हो, वह दुष्टात्मा ऋतु स्नान-काल प्राप्त होने के कारण अपने पास आयी हुई सती-साध्वी, ऋतु-स्नाता पत्नी को ठुकरा दें।'[13]

गर्भावतरण

काम के वश से स्त्री और पुरुष का परस्पर संयोग होने पर शुद्ध रज और वीर्य से उत्पन्न होकर स्त्री के गर्भ होता है, वही गर्भ उदर से बाहर निकलने पर बालक कहलाता है।[14]

वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है–यह सुनकर वरुण ने कामदेव के वाणों से पीड़ित होकर कहा, "सुन्दर रंग रूप वाली सुश्रोणि ! यदि तुम मुझसे समागम करना नहीं चाहती तो मैं तुम्हारे समीप इस देव निर्मित कुम्भ में अपना वीर्य छोड़ दूँगा और इस प्रकार छोड़कर ही सफल मनोरथ हो जाऊँगा"[15]

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी उल्लेख मिलता है।[16]

गर्भ में जीव का प्रवेश

जिस समय शुक्र और रज का संयोग होता है उसी समय जीव उसी मिले हुए वीर्य और रज के अन्दर प्रवेश करता है। शुक्र के अधिक होने से पुत्र, रज के अधिक होने से कन्या तथा रज का वीर्य का भाग बराबर होने से नपुंसक संतान उत्पन्न होती है।[17]

"पिता जीव के जन्म में निर्मित्त कारण मात्र होता है। वास्तव में ऋतुमती माता के द्वारा गर्भ में धारण किये हुए वीर्य और रज का परस्पर संयोग होने पर ही पुरुष का यहाँ जन्म होता है।"[18]

गर्भ के लक्षण

योनि के द्वार से शुक्र और रज का स्राव न होना, थकावट मालूम पड़ना, पैर का गहराना, प्यास का लगना, ग्लानि, भग का फड़कना ये सब गर्भ-स्थिति के लक्षण मैथुन कर चुकने के बाद स्त्रियों में दिखाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त रोंगटों का खड़ा हो जाना, विशेष रूप से नेत्रों की पलकों का गिरना पथ्य भोजन करने पर भी वमन करना, अच्छे गन्ध वाले द्रव्यों को सूंघने से भी चित का उद्विग्न हो जाना, मुख से लार गिरना अर्थात् जी मिचलाना और शरीर का शिथिल यानि आलस्य युक्त होना ये सब गर्भवती स्त्रियों के लक्षण होते हैं।[19]

वाल्मीकि रामायण में गर्भ के लक्षणों का उल्लेख इस प्रकार है, 'उस वेद ध्वनि को सुनकर वह कन्या उसी ओर गयी और उसने तपोनिधि पुलस्त्य जी का दर्शन किया। महर्षि की दृष्टि पड़ते ही उसके शरीर पर पीलापन छा गया और गर्भ के लक्षण प्रकट हो गये।"[20]

इन्हीं दिनों श्री राम चन्द्र जी ने अपनी पत्नी को गर्भ के मंगलमय चिन्हों से युक्त देखकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और कहा बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।[21]

गर्भाशय गत-शुक्र, रज, जीव और 16 विकारों से युक्त प्रकृति ये सब गर्भ-संज्ञक हैं अर्थात् इन्हीं को गर्भ कहते हैं, काल पाकर बढ़ा हुआ गर्भ जब अङ्गों और उपाङ्गों से युक्त हो जाता है, तब लोग 'शरीरी' इस नाम से कहते हैं।[22]

अंग एवं उपांग

पहला अंग सिर है, केश, मुस्तलुङ (Metabolism) ललाट, दो भौंहे, दो नेत्र, दो पलकें, कान, ओष्ठ, मुख, तालु आदि इसके उपांग हैं।

दूसरा अंग ग्रीवा है। तीसरा अंग दोनों बाहें हैं। चौथा अंग वक्ष स्थल है। पाँचवाँ अंग उदर है तथा छठा अंग दोनों पार्श्व अर्थात् पंसुली हैं। सातवाँ अंग पृष्ठ वंश है। आठवाँ अंग सक्थि अर्थात् दोनों पैर हैं।

शरीर के अन्य सभी अवयव इन्हीं अंगों के उपांग हैं।

गर्भहास

28 सप्ताह के पूर्व यदि गर्भ, गर्भाशय से बाहर निकल जाता है (गर्भावस्था

समाप्त हो जाती है) तब उसको गर्भ-हास कहते हैं। गर्भ-हास प्राकृतिक करणों से ही होता है। गर्भावस्था में प्रारम्भिक महीनों में यदि रक्त-स्राव होता है तब वह प्रायः गर्भपात (95%) के कारण होता है। इनमें से अधिकतर 8 से 12 सप्ताह के अन्दर गर्भ-हास होता है और प्राकृत तथा अवैधानिक (Criminal) गर्भपात का अनुपात बराबर-बराबर होता है।

वाल्मीकि रामायण में भी गर्भस्राव का उल्लेख किया गया है—

देवताओं का यह अनुकूल वचन सुनकर शिव और पार्वती से स्कन्दित (स्खलित) तथा गंगा द्वारा गर्भस्राव होने पर प्रकट हुए अग्नि के समान उत्तम प्रभा से प्रकाशित होने वाले उस बालक को कृत्तिकाओं ने नहलाया।[23]

काकुत्स्थकुल भूषण श्री राम ! अग्नितुल्य तेजस्वी महाबाहु कार्तिकेय गर्भस्राव काल में स्कन्दित हुए थे, इसलिये देवताओं ने उन्हें स्कन्द कहकर पुकारा।[24]

मूढ़गर्भ

कारण

स्त्री संभोग, ताँगा, रथ आदि यान तथा ऊँट, अश्व आदि वाहन पर सवारी, मार्ग में चलना, पाँव फिसलने से गिर पड़ना, ऊँचे से गिरना, भीड़ से दबना, जोर से दौड़ना, उदर पर चोट लगना, ऊँचे-नीचे बिस्तर पर सोना, उकड़ूँ बैठना, अधिक उपवास करना, मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना, अत्यधिक रूक्ष, तिक्त रस वाले द्रव्यों का खाना, शोक करना, क्षारों का अधिक सेवन, मरोड़ के साथ दस्त लगना, वमन और विरेचन, झूलना, अजीर्ण, गर्भ गिराने वाले द्रव्यों का सेवन करना आदि कारणों से गर्भ अपने बन्धन (गर्भाशय सम्बन्ध) से छूट जाता है जैसे कि लकड़ी या पत्थर की चोट से फल अपने वृन्त (डण्ठल) के बन्धन से छूट जाता है।[25]

लक्षण

इस कारण वश बन्धनों (गर्भ-शय्या) से मुक्त हुआ गर्भ गर्भाशय से निकलकर माता के यकृत, प्लीहा और आन्त्र जो कि गर्भवृद्धि जन्य दबाव से ऊपर उठ गये थे, इनके साथ इनके विवर से नीचे की ओर गिरता हुआ कोष्ठ में संक्षोभ उत्पन्न करता है। उस स्त्री के जठर में प्रक्षोभ से अपान वायु मूढ, (क्रियाहीन) होकर पार्श्व-बस्ति, शीर्ष, उदर और योनि में शूल, आनाह तथा मूत्र की रुकावट इनमें से किसी एक रोग को उत्पन्न कर रक्त स्राव के साथ वरुण गर्भ को गिरा देती है। वही गर्भ कुछ काल बाद बढ़कर अनुचित तरीके से अवतरित होकर अपत्यपथ (योनि नलिका) में आकर बाहर न निकले और अपान-वायु के वैगुण्य से मूर्च्छित हो जाता है तब उसे मूढ़गर्भ कहते हैं।[26]

मूढ़गर्भ के भेद

अपान वायु की विगुणता से कील, प्रतिखुर, बीजक और परिध ये मूढ़गर्भ के चार भेद होते हैं।[27]

असाध्य मूढ़-गर्भ लक्षण

जो स्त्री सिर को अधिक हिलाती हो या पटकती हो, जिसके हस्त-पादादि अंग शीतल हो गये हों, जो बेहोश होने से स्वाङ्ग रक्षण में असमर्थ होने से निरपत्रपा (लज्जा-रहित) सी मालूम पड़े तथा जिसकी नसें और उभरी हुई दीखती हों वह गर्भ को मार डालती है तथा मृत बालक उसको मार डालता है।[28]

अन्तर्मृत गर्भ लक्षण

उदर में गर्भ का स्पन्दन नहीं होना, आवी (प्रसव-पीड़ा) का विनाश, चेहरे तथा शरीर पर श्यावता (काला-पन) लिये पाण्डु-वर्णता, श्वास में बदबू आना तथा बस्ति, गर्भाशय एवं उदरादि में शूल ये अन्तर्मृत गर्भ के लक्षण हैं।[29]

वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि शल्य-चिकित्सक किसी विशेष अवस्था में गर्भस्थ शिशु को टूक-टूक कर देता है।[30]

यहाँ जिस विशेष अवस्था की ओर संकेत किया गया है वह शिशु के मूढ़गर्भ बन जाने से ही सम्बन्धित है।

बन्ध्यात्व

यदि सन्तान हो सकती हो, पर न हुई हो उसे Infertility कहते हैं यदि सन्तान हो ही न सकती हो तो उसे Stertility कहते हैं। एक संतान होने के बाद दूसरी सन्तति न हुई हो या एक बार गर्भपात होने के बाद सन्तान न हुई हो तो प्रायः इसका कारण Infection जनित Endo-Salpingitis होता है अर्थात् Tube के अन्दर मार्ग अवरुद्ध हो जाने से ऐसा होता है। इसे Septic Infertility कहते हैं। Vagina गर्भाशय ट्यूब में Hyboplasica हो Cervix का मुख (Os) सूक्ष्म हो, गर्भाशय में Ante या Retroflextion हो या Salpingitis हो या Oraries के कार्य की निर्बलता से आर्तव ठीक न होता हो या Ovulation काल में पुरुष संग न हुआ हो तो सन्तति नहीं होती। इन कारणों का निश्चय करके तभी चिकित्सा होनी चाहिये। आयुर्वेद में वन्ध्या रोग को गर्भाशय या Ovaries में किसी प्रकार की असमर्थता या अशक्ति से उत्पन्न होने वाला रोग होने से इसे वायु प्रकोप जनित रोग कहा गया है। अतः इस रोग की बल्य, प्राण-प्रद चिकित्सा होनी चाहिये।

बन्ध्या रोगोपयोगी प्रयोग

1. **अश्वगंधाघृत**–अश्वगंधा 2 किलो, जल 16 किलो, कषाय 1 चौथाई, घृत 1 किलो, अश्वगंधा कल्क 1 छटांक घृत साधन। आर्तव के बाद 1-2 तोला रोज दें।

2. **बला आदि चूर्ण**–बला बीज, मुलैठी, अति बला, वंटाकुर, मिश्री, नाग-केशर समभाग चूर्ण 3 माशा मधु घृत के साथ रोज दें।

3. **सुवर्णरुप्यताम्रप्रयोग**–सुवर्ण 8, रुप्यक 16, ताम्र 30 मि. ग्रा. की एक मात्रा रोज घृत के साथ दें।

वाल्मीकि रामायण में भी वन्ध्या का उल्लेख मिलता है—कौशल्या राम से कह रही है—'बेटा रघुनन्दन ! यदि तुम्हारा जन्म न हुआ होता तो मुझे इस एक ही बात का शोक रहता। आज तो मुझ पर इतना भारी शोक (दुःख) आ पड़ा है, इसे वन्ध्या होने पर मुझे नहीं देखना पड़ता।[31] बेटा वन्ध्या को एक मानसिक शोक होता है। उसके मन में यह संताप बना रहता है कि मुझे कोई सन्तान नहीं है, इसके सिवा कोई दूसरा दुःख उसे नहीं होता।'[32]

औषधि से पुत्र-प्राप्ति

वाल्मीकि रामायण में औषधि द्वारा पुत्र-प्राप्ति का विशद् उल्लेख किया गया है—

वे शत्रु सूदन महातेजस्वी नरेश पुत्र-हीन होने के कारण उस समय पुत्र-प्राप्ति के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे।[33]

उस समय अग्नि-कुंड से एक विशालकाय पुरुष प्रकट हुआ। वह पुरुष प्रकाश पुंज देह वाला तथा बल-पराक्रम में भी महान था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था—जैसे वह कोई वनवासी जाति का वनस्पति विशेषज्ञ था। अक्षरशः शब्दों पर गौर न कर यदि उसका भावार्थ ग्रहण किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है।

उसकी आकृति सूर्य के समान तेजोमयी थी।.......उसके हाथ में तपाये हुए जाम्बूनद स्वर्ण की बनी हुई एक परात थी जो चाँदी के ढक्कन से ढकी थी, वह बहुत बड़ी एवं दिव्य खीर से भरी हुई थी।[34]

उस पुरुष ने कहा, हे राजन् ! मुझे प्रजापति (आदि वैद्य) का पुरुष जानो। मैं उन्हीं की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। इसके बाद उसने उस (औषध सिद्ध) खीर के गुणों का वर्णन करते हुए कहा[35]—

"नृप श्रेष्ठ ! यह देवताओं की बनाई हुई खीर है जो सन्तान प्रदान कराने वाली है।"[36]

राजन ! यह खीर अपनी योग्य पत्नियों को दो और कहो—"तुम लोग इसे खाओ" ऐसा करने से उनके गर्भ से आपको उनके पुत्रों की प्राप्ति होगी जिसके लिये तुम यज्ञ कर रहे हो।[37]

दिव्य-पुरुष के इन वाक्यों को सुनकर राजा ने "बहुत अच्छा कहा। वह थाली अपने हाथों में लेकर अन्तःपुर में गये और कौशल्या से बोले"-देवी ! यह अपने लिये पुत्र-प्राप्ति कराने वाली खीर ग्रहण करो ।"

ऐसा कहकर राजा ने उस खीर को अपनी तीनों रानियों में बाँट दिया। इस बटवारे के फलस्वरूप तीनों ही रानियाँ गर्भवती हुईं जिनके गर्भ सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी थे। राजा रानियों को गर्भवती देखकर बहुत प्रसन्न हुए।[38]

फलस्वरूप कौशल्या के गर्भ से श्री राम, सुमित्रा के गर्भ से श्री लक्ष्मण और शत्रुघ्न और कैकेई के गर्भ से भरत का जन्म हुआ। उक्त प्रसंग में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राम का जन्म पायस के "विष्णोरर्ध महाभागं" आधे भाग से हुआ, भरत का

जन्म "विष्णोश्चतुर्भागः" तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म उस विष्णु रूप पायस के "विष्णोरर्ध समान्वितं" अर्धभाग से हुआ। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि औषधि सिद्ध पायस के फलस्वरूप सन्तान कितनी उत्तम तथा सर्वगुण सम्पन्न उत्पन्न होती है।[39]

इस प्रकार औषधि से पुत्र-प्राप्ति का उल्लेख रामायण में है।

प्रसव का समय

प्रसव की अवस्थाएँ (Stage of labour)

परिचय

प्रसव की सम्पूर्ण अवधि को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। यह विभाजन पूर्ण रूप से कृत्रिम विभाजन है–

प्रथम भाग

प्रसव की पीड़ा प्रारम्भ होने से जब तक गर्भाशय पूर्ण-रूप से खुल नहीं जाता है, तब तक की अवधि को प्रसव का प्रथम भाग माना जाता है।

द्वितीय भाग

इसको "गर्भ के बाहर निकलने" (Expulsive phase or stage) की अवधि कहा जाता है। गर्भाशय ग्रीवा के पूरी तरह फैल जाने से लेकर गर्भ के बाहर निकल जाने की अवधि को द्वितीय भाग कहते हैं।

तृतीय भाग

इसको अपरा (Placental phase or stage) की अवधि भी कहते हैं। शिशु उत्पन्न होने के बाद अपरा (नाभिनाल तथा झिल्ली) में जो समय लगता है उसको तृतीय भाग कहते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार नवें या दसवें मास में गर्भिणी सन्तान प्रसव करती है और कभी-कभी 11वें या 12वें मास में भी प्रसव करती है और यदि अधिक समय हो जाये तो यह समझना चाहिये कि किसी रोग वश विलम्ब हो रहा है अर्थात् या तो गर्भ की जगह कोई रोग है अथवा गर्भ में कोई विकार हो गया है।[40] वाल्मीकि रामायण में प्रसव का समय न बताकर केवल नामोल्लेख ही प्राप्त होता है।[41]

सूतिका गृह

भाव प्रकाश के मतानुसार 'सूतिका गृह आठ हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा एवं पूर्व अथवा उतर मुख द्वार रख करके देखने में सुन्दर सूतिका गृह का निर्माण करना चाहिये।[42]

वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख इस प्रकार है–'वाल्मीकि जी ने प्रसन्नचित होकर सूतिका गृह में प्रवेश किया और उन दोनों कुमारों को देखा तथा उनके लिये भूतों तथा राक्षसों का विनाश करने वाली रक्षा की व्यवस्था की।'[43]

गर्भपात

अठ्ठाइस सप्ताह से पूर्व यदि गर्भ गर्भाशय से बाहर निकल जाता है तो उसको गर्भपात कहते हैं।

कारण

प्रायः 66% गर्भपात निम्न कारणों से होता है–

1. हाईडैटिडी फार्ममोल
2. अपरा का नीचे होना
3. क्रोमोसोम की गड़वड़ी के कारण डिम्ब (गर्भ) की मृत्यु

गर्भ की विकृति

1. गर्भ का पूर्ण विकास न होना
2. संक्रमण
3. X-Ray का प्रभाव
4. विष का प्रभाव

माता के रोग

1. कालरा, प्लेग, गैस्ट्रो आदि
2. सिफिलिस
3. तीव्र ज्वर
4. जीर्ण रोग
5. **माता को चोट लगना**
6. **प्रोजेस्टेरोन की गड़बड़ी**
7. **योनि-मार्ग की विकृति**
8. **गर्भावस्था की द्वितीय तिमाही में प्रायः गर्भाशयग्रीवा की कार्य-हीनता** (In competence) **के कारण गर्भपात होता है।**
9. **अवैधानिक** (Criminal Abortion) **गर्भपात**
10. **मैथुन**

लक्षण

गर्भपात होने का भय

1. योनि से लाल रंग का स्राव निकलता है।
2. पेट में प्रायः पीड़ा नहीं होती या साधारण होती है।
3. योनि परीक्षा करने से श्लेष्मा व रक्त-मिश्रित स्राव अंगुली पर लग जाता है।
4. गर्भाशय मुलायम रहता है।

निश्चित गर्भपात

इस अवस्था में गर्भाशय ग्रीवा फैल जाता है जिससे गर्भपात निश्चित है, इसमें

गर्भपात रोका नहीं जा सकता। इसमें–

1. साधारण या गम्भीर रक्त-स्राव होता है।

2. उदर के नीचे के भाग में शूल के समान पीड़ा होती है।

3. गर्भावस्था के लक्षण (मासिक न होना) मिलते हैं आदि।

अपूर्ण गर्भपात

इस अवस्था में गर्भपात होने पर गर्भ या अपरा का कुछ भाग गर्भाशय के अन्दर रह जाता है जिसमें जीवाणुओं का संक्रमण होने की अत्यधिक सम्भावना रहती है इसमें–

1. रक्तस्राव लगातार होता रहता है।

2. पीड़ा का होना अनिश्चित है।

3. अंगुली पर लाल या काला रक्त मिलता है।

पूर्ण गर्भपात

इस अवस्था में गर्भ तथा अपरा का सम्पूर्ण भाग गर्भोदक तथा जमा हुआ रक्त आदि सभी बाहर निकल जाते हैं। इसमें–

1. थोड़ी पीड़ा होती है।

2. यह गर्भपात स्वयं ही होता है।

3. योनि से रक्त बहता है।

गर्भपात के पश्चात्

1. कुछ दिन के बाद लोकिया (योनि से स्राव) निकलना बन्द हो जाता है, यदि बन्द न हो तो समझना चाहिये कि गर्भपात अपूर्ण है।

2. साधारण मासिक प्रारम्भ हो जाता है।

पूर्ण गर्भपात की चिकित्सा

स्त्री की बराबर देख-रेख करनी चाहिये। उपद्रव (यदि हो) की उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये तथा रक्ताल्पता के प्रकार के अनुसार उनकी चिकित्सा करें।

गर्भपात का चूक जाना (Missed Abortion)

इस अवस्था में गर्भ मर जाता है और वह गर्भाशय के अन्दर रह जाता है। इसमें–

1. गर्भपात के लक्षण बार-बार होते हैं परन्तु गर्भ व अपरा आदि बाहर नहीं निकलते।

2. योनि से भूरा स्राव निकलता है।

3. प्रायः पीड़ा नहीं होती।

बार-बार गर्भपात होना (Habitual)

कभी-कभी स्त्री को दो-तीन बार लगातार गर्भपात होता है।

गर्भाशय ग्रीवा स्थित गर्भपात (Cervical)

यह एक विरल अवस्था है—इसमें रक्त-स्राव होने से अधिक पीड़ा होती है। इसमें गर्भाशय ग्रीवा फूल जाती है परन्तु इसके नीचे का छिद्र (OS) चौड़ा नहीं होता। परिणाम स्वरूप गर्भाशय से गर्भ, अपरा आदि नीचे निकलकर गर्भाशय ग्रीवा में आकर रुक जाते हैं।

अवैधनिक गर्भपात

चिकित्सा के लिये गर्भपात कराना

गर्भपात की चिकित्सा (गर्भपात के भय में)

1. शैया पर विश्राम कराना।
2. शामक औषधियों का प्रयोग।
3. गर्भाशय को शिथिल करने की औषधियाँ।
4. हार्मोन का प्रयोग आदि।

निश्चित गर्भपात की चिकित्सा

1. अधिक रक्त-स्राव होने पर सिरा द्वारा रक्त दें।
2. गर्भाशय से निकलने वाले सभी पदार्थों की परीक्षा कर लें कि गर्भ के सभी पदार्थ बाहर निकल आये हैं या नहीं।
3. सिरा मार्ग द्वारा ग्लूकोज आदि दें।

अपूर्ण गर्भपात की चिकित्सा

1. गर्भाशय को फैलाना तथा खरोंचना (D.&C.) चाहिये।
2. रोग की प्रारम्भिक अवस्था में निश्चित गर्भपात के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

गर्भपात के साथ जीवाणुओं का संक्रमण होने पर

1. गर्भिणी को अन्य रोगियों से अलग रखना चाहिये।
2. शैया पर विश्राम कराना चाहिये।
3. मुख से पर्याप्त जल देना चाहिये।
4. जीवाणुओं का संक्रमण रोकने के लिये औषधियाँ दें।

वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख इस प्रकार है.........गंगा द्वारा गर्भस्राव होने पर प्रकट हुए अग्नि के समान उत्तम प्रभा से प्रकाशित होने वाले उस बालक को कृत्तिकाओं ने नहलाया।[44] कार्तिकेय गर्भस्राव काल में स्कन्दित हुए थे, इसलिये देवताओं ने उन्हें स्कन्द कहकर पुकारा।[45]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में गर्भपात का उल्लेख मिलता है।

उदर पाटन द्वारा गर्भ निकालना

यह रामायण कालीन शल्य क्रिया (Operation) की ओर स्पष्ट संकेत करता है। रामायण में एक स्थान पर उल्लेख किया गया है—"जैसे शल्यचिकित्सक

किसी विशेष अवस्था में (शिशु के अप्राकृतिक अवस्था में आ जाने पर, गर्भ में मृत्यु हो जाने पर) गर्भस्थ शिशु को टूक-टूक कर देता है।'' 'गर्भस्थ जन्तोरिव शल्य कृन्तः।'[46]

इस उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि गर्भ को विशेष अवस्था में आ जाने पर उदर पाटन द्वारा ही बाहर निकाला जाता होगा।

विभिन्न आयुर्वेदीय संहिताओं के प्रकरण में भ्रूण का मासानुमासिक विकास

मास विकास

1. सिर एव पुच्छ स्तर बन जाते हैं। मस्तिष्क और नेत्रों के बुद् बुद् सरलता से पहचाने जा सकते हैं। श्रोत-बुद्-बुद् प्रगट हो जाते हैं तथा आकृति पहचान में नहीं आती।

2. ऊपरी ओष्ठ बन जाते हैं तथा नासा आगे को निकल आती है।

तालु का अच्छी तरह विकास नहीं होता। वर्त्म विद्यमान रहती है।

बाह्य जनन अंग बन जाते हैं हस्त एवं पाद की अंगुलियाँ स्पष्ट हो जाती हैं (Crownrump) मुकुट परिधि की लम्बाई 30 मि. मी. हो जाती है।

3. शिर बढ़ता है, ग्रीवा लम्बी हो जाती है और शरीर के अंगों (शाखाओं) का सम्यक विकास हो जाता है। नस की उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है और मुकुट परिधि की लम्बाई 10 से.मी. हो जाती है।

4. शरीर पर रोम राजी का प्रादुर्भाव तथा सक्थि सहित समस्त शरीर की लम्बाई 22 से.मी. हो जाती है।

5. भ्रूण में सर्वप्रथम गति दिखाई पड़ती है । सिर पर केशों का उद्गम आरम्भ हो जाता है। उल्व (Vernix Casedsa) एकत्र होना आरम्भ हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर की लम्बाई 30 से.मी. हो जाती है।

6. उल्वक पर्याप्त मात्रा में संचित हो जाते हैं। त्वचा के सूक्ष्म अंकुरों का विकास तथा उनके अन्तः स्तर से नस के प्ररोहों की धारा पृथक् हो जाती है। शरीर की समस्त लम्बाई 40 से.मी. एवं भार 1 किलोग्राम हो जाता है।

7. कनीतक कला अवशुष्क, नेत्र के वर्त्म खुले हुए, अण्ड भाग का अवतरण, त्वचा लाल एवं झुर्रीदार हो जाती है। शरीर की समस्त लम्बाई 40 से.मी. एवं भार 1.5 किलोग्राम हो जाता है।

8. त्वचा पूर्णतया उल्व एवं रोम से आवृत्त होने के पश्चात् उससे अलग होनी आरम्भ हो जाती है। भ्रूण का स्वरूप शरीर में एक लोथड़े (Plump) के रूप में प्रकट हो जाता है।

9. (Trunk) अन्तराधि से लोम अधिकतर विलीन हो जाते हैं तथा नाभि शरीर के मध्य स्थित हो जाती है तथा अण्ड कोषों में आ जाते हैं। सम्पूर्ण शरीर की लम्बाई 50 से.मी. तथा भार 3 से 3.5 Kg. तक हो जाता है।

विभिन्न शरीराङ्गों की उत्पत्ति की निदर्शक तालिका

अंगावयव	अष्टांग संग्रह	सुश्रुत संहिता
यकृत, प्लीहा	पच्यमानशोणित के अच्छ्र भाग से	शोणित से
फुफ्फुस	रक्त के फेन से	शोणित फेन से
उण्डुक	रक्त के किट्ट भाग से	शोणित किट्ट भाग से
वृक्क	मेदस् एवं रक्त के प्रसाद भाग से	रक्त एवं मेदस् के प्रसाद भाग से
अन्त्र	रक्त एवं मांस के प्रसाद भाग से	रक्त एवं श्लेष्म के प्रसाद भाग से अन्त्र, गुद एवं वस्ति का निर्माण
कालेय	रक्त एवं अनिल के संयोग से	--------
हृदय	श्लेष्म एवं रक्त के प्रसाद भाग से	शोणित एवं कफ के प्रसाद भाग से
जिह्वा	मांस, रक्त एवं कफ के प्रसाद भाग से	कफ शोणित एवं मांस के सार भाग से
वृषण	मांस, रक्त कफ एवं मेदस् के प्रसाद भाग से	मांस, रक्त, कफ एवं मेदस् के प्रसाद भाग से

वाल्मीकि रामायण में गर्भावक्रान्ति विषयक समस्त सामग्री प्राप्त होती है किन्तु गर्भ के मासानुमासिक विकास का विशद् वर्णन इसमें प्राप्त नहीं होता है।[1]

मातृज पितृज एवं आत्मज भाव

	चरक संहिता	**सुश्रुत संहिता**
मातृज	त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, वृक्क, बस्ति, पुरीषाधान, आमाशय पक्वाशय उत्तर गुद (Rectum) अधर गुद (Anus), क्षुद्र अन्त्र, स्थूलान्त्र वपा तथा वपा वहन	रक्त, मांस मेदस, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत, प्लीहा अंत्र गुद आदि।
पितृज भाव	केश, श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) नख, रोम, दन्त, अस्थि सिरा, स्नायु, धमनी एवं शुक्र	चरक सदृश
आत्मज भाव	आयु, आत्मज्ञान, मन, इन्द्रिय	इन्द्रिय, ज्ञान-विज्ञान

"विभिन्न आयुर्वेदीय संहिताओं के प्रकाश में भ्रूण का मासानुमासिक विकास"

चरक/शा.	सुश्रुत शा.	वाग्भट शा.	विष्णुधर्मोत्तर	याज्ञवल्क्य	गर्भोपनिषद्	अग्निपुराण
4/9-11-20-25	3/14-16		114/6-8	1/65, 66, 68, 69		369/19-20, 24
1. खेट भूत और अव्यक्त विग्रह	कलल	कलल	कलल	द्रव के रूप में	एक रात्रि में ठहरा हुआ शोणित दो मास के बाद गर्भ का सिर बन जाता है। शुक्र हो जात है। सातरात्रि का बुद्-बुद् आधे मास में पिण्ड तथा एक मास पश्चात् कठोर हो जाता है।	
2. धन, पेशी, पिण्ड, बुंद	शीत, ऊष्मा एवं वायु के द्वारा धनी भूत पिण्ड या पेशी	धन पिण्ड या अर्बुद	पेशी धन	अर्बुद		धन
3. समस्त इन्द्रिया एवं समस्त अंगों के अवयव एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं	पांच अवयव प्रकट हो जाते हैं	पांच अवयव प्रकट हो जाते हैं	शरीर के अवयव प्रकट हो जाते हैं	अंगों एवं इन्द्रियों से युक्त होता है	तृतीय तास के पश्चात पाद के लिये अंकुर निकल आते हैं	अवयव प्रकट हो जाते हैं
4. गर्भ स्थिरता को प्राप्त होता है	सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग विभाग हो जाता है तथा चेतना की अभिव्यक्ति हो जाती है	अंग एवं प्रत्यंग का विभाग स्पष्ट हो जाता है	अंगों में अस्थिरता	जठर एवं कटि बन जाता है	अंगुलि और श्रेणी प्रदेश	अस्थि प्रकट हो जाती है

चरक/शा.	सुश्रुत शा.	वाग्भट शा.	विष्णुधर्मोत्तर	याज्ञवल्क्य	गर्भोपनिषद्	अग्निपुराण
5. मांस और रक्त की अति वृद्धि, शोणित उपचय एवं गर्भिणी कृश हो जाती है।	मन प्रबुद्ध हो जाता है	चेतना की अभिव्यक्ति	त्वचा प्रकट	रुधिर उत्पति	पृष्ठ वंश हो जाता है	मांस त्वचा प्रकट हो जाती है
6. बल और वर्ण का उपचय	बृद्धि प्रगट हो जाती है	स्नायु, सिरा, रोम, बल, वर्ण, नख तथा त्वचा प्रकट हो जाती है	रोम	बल, नख, रंग, रोम मुख, नासिका, विकसित हो जाते हैं	नेत्र और श्रोत	रोम निकल आते हैं
7. सम्पूर्ण भावों की वृद्धि एवं गर्भिणी कृश	सम्पूर्ण अंग विभाग अति स्पष्ट	शरीर सब भावों से पुष्ट तथा सर्वांग में परिपूर्णता हो जाती है	—	—	भ्रूण जीवन से युक्त हो जाता है	वेदना का अनुभव होने लगता है
8. ओज की अस्थिरता	ओज की अस्थिरता	ओज अस्थिर हो जाता है	आठवें एवं नवें मास में उद्वेग होता है	ओज अस्थिर होता है	सम्पूर्ण लक्षण	अष्टम एवं नवम् मास में बड़ा उद्वेग

प्राण, अपान, प्रेरण, धारण, आकृति, स्वर-भेद, सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष, चेतना-बुद्धि, स्मृति अहंकार, प्रयत्न आदि[48]

आयु एवं सुख-दुःख[49]

वाल्मीकि रामायण में मातृज पितृज एवं आत्मज भाव का कहीं भी उल्लेख दृष्टि-गोचर नहीं होता।

पंचम परिच्छेद

वाल्मीकि रामायण में विष-विधान

आयुर्वेद के प्राचीन आर्ष ग्रन्थ 'चरक संहिता' में विष की उत्पत्ति जिस प्रकार बतायी गयी है, ठीक उसी प्रकार का वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी उपलब्ध होता है। चरक के अनुसार देवों तथा दैत्यों के द्वारा अमृत के लिये समुद्र-मन्थन किये जाने के फल-स्वरूप ही विष उत्पन्न हुआ। इसके दर्शन से जगत् को विषाद प्राप्त हुआ इसलिये इसे विष की संज्ञा दी गयी थी।

मुनि वाल्मीकि ने भी विष का अवतरण ठीक इसी प्रकार माना है परन्तु उन्होंने ठीक उससे पूर्व सर्प-विष का भी प्रवहण स्वीकार किया है।[1]

रामायण में उल्लेख मिलता है—एक हजार वर्ष के मन्थन के बाद रस्सी बने हुए सर्प के बहुसंख्यक मुख अत्यन्त विष उगलते हुए मंदराचल पर्वत को अपने दाँतों से डसने लगे। तदन्तर हालाहल विष का अवतरण हुआ।[2] अतः उस समय वहाँ अग्नि के समान दाहक हालाहल नामक भयंकर विष ऊपर को उठा। उसने देवता, असुर और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् को दग्ध करना आरम्भ किया। देवों तथा भगवान विष्णु की प्रार्थना के फल स्वरूप रुद्र ने इसे अंगीकार किया।[3]

ठीक इसी प्रकार का वर्णन चरक संहिता में भी उपलब्ध होता है। यहाँ विष का रूप वर्णन भी किया गया है। यद्यपि यह कथा एक रूपक कथा है तथापि यह घटना सभी ग्रन्थों में आज समान रूप से प्राप्त होती है। आज हालाहल विष कहीं भी उपलब्ध नहीं होता।

वाल्मीकि रामायण तथा अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनुसार सर्वप्रथम अगदकर शंकर हैं। उन्होंने उस व्यापक 'हालाहल' विष को स्वींकार किया तथा उसके प्रभावों को शामित किया है—इसीलिये तो उन्हें 'आदि देव' चिकित्सक के रूप में स्वीकार किया गया है। जिनके प्रयत्नों से सम्पूर्ण जगत् को शान्ति मिली। एक अन्य स्थान पर उग्र-विष 'काल कूट' का भी नामोल्लेख किया गया है।

आयुर्वेद में विष दो प्रकार के स्वीकार किये गये हैं-

1. स्थावर विष
2. जङ्गम विष

दोनों ही प्रकार के विषों का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है।

(I) सर्प-विष

सर्पों का उल्लेख तो रामायण में पर्याप्त रूप से आया है। सर्पों की प्रत्येक अवस्था का वर्णन यहाँ मिलता है। इसमें सविष सर्प, निर्विष सर्प, दो प्रकार के सर्पों का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् सविष सर्प के स्वभाव तथा विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख भी इसमें हुआ है। तीक्ष्ण विष उक्त सर्प या नागिन कंचुकी, त्याग की हुई सर्पिणी विषधर सर्प (क्रुद्धावाशी विषानिव)। क्रुद्ध सर्प (सर्पदुष्टामिवागतः) महा-विषैला सर्प (सर्पानिव महाविषान्) तथा बांबी में बैठा हुआ सर्प आदि। 'व्यालां तीक्ष्ण विषां' अर्थात् तीक्ष्ण विष वाली सर्पिणी। सर्प के पैरों को छूने मात्र से देह का क्या हाल हो जाता है, उसका वाल्मीकि ने स्पष्ट संकेत दिया है। घर में रहने वाला सर्प बार-बार दुःख देता है, यह वाल्मीकि ने बताया है। अत्यन्त विषैले सर्प को नागराज कहकर सम्बोधित किया है। महा विषैली सर्पिणी को 'भुजंगी तीक्ष्ण द्रंष्टां महा विषान्।' कहा है। क्रुद्ध होने पर सर्प बालक को भी डस लेता है, वाल्मीकि ने स्पष्ट घोषित किया है।

सर्प-विष के मारक प्रभाव का उल्लेख करते हुए विभीषण के मुख से रावण को मुनि ने यह समझाया है—हे राजन ! सीता नाम धारी विशालकाय महान सर्प को किसने आपके गले बाँध दिया है। उसके हृदय के भाग ही शरीर हैं। चिन्ता ही विष है, सुंदर मुस्कान की तीखी दाढ़ें हैं और प्रत्येक हाथ की पाँच-पाँच अंगुलियाँ ही उस सर्प के पाँच सिर हैं।[4] परन्तु मुनि का स्पष्ट मत है कि सर्प की दाढ़ों को उखाड़ दिया जाये तो विष अपेक्षाकृत कम हो जाता है। इसलिये उन्होंने कहा है क्या तुम विषधर सर्प के मुख से दाढ़ें उखाड़ देना चाहते हो? चमकदार आँखों वाला सर्प अधिक विषैला होता है। इसके अतिरिक्त सर्प में स्वास्तिक चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते रहे थे, इन स्थूल फणों से विष की भयानक आग उगलते हुए बड़े-बड़े सर्प उस पर्वत की शिलाओं को अपनी दाढ़ों से डसने लगे।[5] क्रोध से भरे हुए उन विषैले सर्पों को काटने पर वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ इस प्रकार जल उठीं, मानों उसमें आग लग उठी हो। उस समय उनके सहस्रों टुकड़े हो गये।[6] इस पर्वत पर जो बहुत सी औषधियाँ उगी थीं, वे विष को नष्ट करने वाली होने पर भी उन नागों के विष को शांत न कर सकीं।[7]

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि विष की ताकत से अधिक ताकत वाली विष शामक औषधि उस विष की चिकित्सा में काम में ली जानी चाहिये। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक विष शामित नहीं हो सकेगा तथा यह भी स्पष्ट होता है कि मस्तक पर स्वास्तिक चिन्ह वाले सर्प अधिक विष वाले होते हैं।

उपरोक्त प्रकार के विष का रामायण में विशद् वर्णन किया गया है।

(II) कन्द विष

कन्द विष का रामायण में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है तथापि रामायण में मुनि ने विष-विधान का पर्याप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

(III) कृत्रिम विष

आयुर्वेद में वर्णित स्थावर तथा जंगम—दोनों ही प्रकार के विषों का रामायण में उल्लेख प्राप्त होता है।

कोप-भवन में पड़ी कैकेई महाराजा दशरथ को यह कहकर भयभीत करना चाहती हैं कि मैं बहुत-सा विष पीकर निश्चय ही मर जाऊँगी।[8] इधर दशरथ भी अधिक त्रस्त होकर क्रोध के आवेश में यह कह बैठते हैं कि तू कोई तीक्ष्ण विष खाकर प्राण दे दे।[9] यदि तुझे राम का राज-तिलक अच्छा नहीं लगता हो तो और यदि तू नहीं मरेगी तो मैं ''विषं पास्या मिचालोऽय'' विष घोल कर पी लूँगा। इन विषों की शक्ति के अनुसार वर्गीकरण भी रामायण में किया गया है जैस—साधारण विष, तीक्ष्ण विष, उच्च्य कोटि का विष, मारक विष आदि।

विष के मारक प्रभावों का उल्लेख करते हुए रामायण में कई प्रसंग जैसे—'सम्मोहादिह कालेन यथा स्याद् भक्षितम् विषम्' अज्ञान वश यदि बालक विष खाले तो उसे वह विष मार डालता है। केवल बालक ही क्यों यदि बड़ा व्यक्ति भी अनजाने में विष मिश्रित भोजन खा ले तो वह उसे मार डालता है।[10]

एक स्थान पर 'अमृत विष सम्पृक्त' कहकर अमृत तथा विष के सम्मिश्रण की ओर इशारा किया है। विष के उग्र प्रभाव का परिचय देते हुए महर्षि ने कहा है कि अत्यन्त उग्र विष मिश्रित अन्न को खाकर कोई भी उसे बल-पूर्वक नहीं पचा सकता।[11]

इस प्रकार विष भक्षण के विविध प्रकारों का भी यहाँ उल्लेख मिलता है—विष खाना,[12] खाद्य में विष मिलाकर खाना,[13] पेय में विष मिलाकर पीना।[15]

विष का प्रभाव मानव देह में कहाँ-कहाँ होता है तथा किस प्रकार होता है अति संक्षेप में रामायण में बताया गया है—

'उदरस्थ विष की भाँति सारे अंगों को दग्ध करता है।' विष उदर में जाकर सभी अंगों-प्रत्यंगों को दग्ध करता है।[15] प्राचीन काल में युद्ध की परिपाटी आज की परिपाटी से भिन्न नहीं थी। उस समय भी यह भय रहता था कि कहीं शत्रु रास्ते में खाद्यों, फल, पेयों तथा जलाशयों आदि को दूषित नहीं कर डाले। इसीलिये कहा है—

''सम्भव है दुरात्मा राक्षस रास्ते में फल-मूल और जल को विष आदि द्वारा दूषित करें।[16]

उपरोक्त जंगम विषों का प्रयोग जहाँ एक ओर खाद्य दूषित करण में आता है वहाँ दूसरी ओर इनको द्रवों द्वारा शस्त्रों को दूषित करने के लिये भी होता था। बाणों को विषों में बुझाकर प्रयोग में लिया जाता था 'विषेण शस्त्रेण शिनेन वापि'। अर्थात् विषशस्त्र से प्राण त्याग दें। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर हथिनी को वश में करने के लिये विष में बुझे हुए बाणों का प्रयोग करने का

उल्लेख भी है—'सा विद्धवा बहुमिवश्चे दिग्धोदि विगजांगना।'

इन सभी अस्त्रों को विषैला बनाने के लिये केवल स्थावर विषों का प्रयोग किया जाता रहा था। ऐसी बात नहीं थी कि इस कार्य के लिये जंगम विषों का भी प्रयोग होता रहता था। जैसे सर्प-विष में वाणों को बुझाना, नाग-पाश या नाग-सिद्ध करना आदि।

चिकित्सा (उपचार)

उपरोक्त सभी प्रकार के विष की चिकित्सा के लिये एक विशेष चिकित्सक का उल्लेख रामायण में किया गया है और वे गरुड़ हैं। गरुड़ 'विष-चिकित्सा' और विशेष रूप से 'सर्प-विष की चिकित्सा' में अद्वितीय थे उनका वेग पवन के समान है। एक बार उन्होंने देव चिकित्सक इन्द्र के यहाँ से अमृत को भी चुरा लिया था, संभव है उन्होंने यह अपनी चिकित्सीय सौष्ठव के पक्ष की वृद्धि के लिये ही किया हो। (गुरुत्मानं ममृतं यथा)।

रामायण में सर्प-विष पर गरुड़ का प्रभाव बार-बार दर्शित किया गया है। सर्पों पर अधिकार दो प्रकार से किया जा सकता है—

1. मंत्रों द्वारा
2. औषधियों द्वारा। 'मंत्रौषधि बलैः व्याधि'

मानों कोई सर्पिणी मंत्र या औषधि या दोनों के बल से गिरायी गयी हो। श्री राम को विषैले वाण स्पर्श करते ही निर्विष हो जाते थे ठीक उसी प्रकार जैसे सर्प गरुड़ को देखकर हो जाया करते थे। फिर भी रामायण में कुछ ऐसे प्रसंग आये हैं जिनमें गरुड़ की 'विष नाशक चिकित्सा' के चमत्कार दिखाये गये। श्री राम तथा लक्ष्मण युद्ध में मेघनाद द्वारा नाग-पाश में बाँध दिये गये। इस पाश में कसकर बँध जाने के कारण दोनों ही वीर भाई मूर्च्छित हो गये हैं। उन्हें मूर्च्छित देखकर सभी वानर सेना व्याकुल हो उठी और हार के चिन्ह दृष्टिगत होने लगे। शत्रुओं ने समझ लिया कि राम लक्ष्मण मर चुके इसलिये दूसरी तरफ हर्षनाद होने लगा, तदन्तर यह सुनकर दो ही घड़ी में विष चिकित्सक महाबलि विनतानन्दन गरुड़ वहाँ आ उपस्थित हुए।[17]

उन्हें आया देखकर जिन महाबली नागों ने वाण के रूप में आकर उन दोनों वीर राजकुमारों को बाँध रखा था, वहाँ से भाग गये, और वे दोनों ही भाई पाश मुक्त हो गये।[18]

तदनन्तर गरुड़ ने इन दोनों ही भाइयों को अपने हाथों से स्पर्श किया और उनके चन्द्रमा के समान कान्तिमान मुखों को पोंछा।[19]

महान चिकित्सक गरुड़ द्वारा स्पर्श होते ही श्री राम तथा लक्ष्मण के घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुंदर कान्तियुक्त हो गये।[20] उनमें तेज, बल, उत्साह, वीर्य, ओज, दृष्टि, शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति आदि महान गुण पहले

से भी दुगने हो गये।[21]

इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण चिकित्सा से स्वस्थ हुए श्री राम ने अपने चिकित्सक को प्रसन्न करने के लिये उद्गार प्रकट किये-श्री राम गरुड़ से कहते हैं–

"इन्द्रजीत के कारण हम लोगों पर जो महान संकट आ पड़ा था, उसे हम आपकी कृपा से लाँघ गये। आप विशिष्ट उपाय के ज्ञाता हैं अतः हम दोनों को शीघ्र ही पूर्ववत् बल से सम्पन्न कर दिया। आपको देखकर मेरा मन अत्यधिक प्रसन्न हुआ जैसा कि अपने पिता तथा पितामह को देखकर हुआ करता है।"[22]

यह देखकर गरुड़ बहुत प्रसन्न हुए और विश्लेषण करते हुए बोले, "मैं विष-चिकित्सक गरुड़ हूँ।" आपके इस प्रकार नाग-पाश द्वारा मूर्च्छित हो जाने के समाचार को सुनकर बड़ी तेजी के साथ मैं यहाँ आया। श्री राम इन्द्रजीत द्वारा माया के बल से नाग रूपी वाणों का बन्धन तैयार किया गया था। यह कद्रू जाति के नाग थे इनके दाँत बड़े तीखे होते हैं। यह नाग बड़े भयंकर विष वाले होते हैं। यह राक्षसी माया के कारण आपके शरीर में लिपट गये थे।[23]

धर्म के ज्ञाता सत्य पराक्रमी श्री राम ! समराङ्गण में शत्रुओं का संहार करने वाले अपने भाई लक्ष्मण के साथ आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। जो अनायास ही इस नाग-पाश से मुक्त हो गये।[24]

मैं देवताओं के मुख से आप लोगों के नाग-पाश में बंधने का समाचार सुनकर बड़ी उतावली के साथ यहाँ आया हूँ। हम दोनों में जो स्नेह है, उससे प्रेरित हो मित्र धर्म का पालन करता हुआ सहसा आ पहुँचा हूँ।[25] "आकर मैंने इस महाभयंकर वाण बन्धन से आप दोनों को छुड़ा दिया। अब आपको सदा ही सावधान रहना चाहिये।"[26]

ऐसी बातें कहकर गरुड़ श्री राम लक्ष्मण को 'निरुज' देखकर वहाँ से चले गये।

'चरक' तथा 'सुश्रुत' ने सर्पों की प्रधानतः दर्वीकर (फणियर), मण्डली (Daboia) तथा राजिमान् (Krait) इन तीनों जातियों का उल्लेख किया है।

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में 'विष चिकित्सा' एवं 'अंगद कर' का विशद् वर्णन किया गया है।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में वर्णित विविध रोगों तथा शारीरिक रोग, मानसिक रोग, आगन्तुक रोग, स्त्री रोग एवं गर्भावक्रान्ति, एवं विष-विधान का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने का सूक्ष्म प्रयास किया गया है।

संदर्भ

प्रथम परिच्छेद

1. च. सू. 30/26
2. सु. सू. 1/11
3. अ. सं. सू. 1/10
4. अ. हृ. सू. 1/5

5. सु. सू. 1/11
6. काय-चिकित्सेति कायस्यान्तरग्नेश्चिकित्सा (गंगाधर)। कायस्यान्तरग्नेश्चिकित्सा (चक्रपाणि)। शिवदास सेन ने 'काय' पद का अर्थ जठराग्नि किया है।
7. सु. सू. 35/17
8. सु. सू. 30/40
9. सु. सू. 30/40
10. सु. सू. 30/40
11. च. चि. 19
12. च. नि. 1/22
13. च. नि. 1/23
14. च. नि. 1/24
15. च. नि. 1/25
16. च. नि. 1/26
17. च. नि. 1/27
18. च. नि. 1/28
19. च. नि. 1/29
20. च. नि. 1/30
21. कामजे चित्त-विभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमरोचकः।
हृदये वेदना चास्य गात्रञ्च परिशुष्यति।। सु. उ. 39/78
22. कामाद् भ्रमोऽरतिर्दाहोह्रीनिधी वृत्तिक्षयः।
ध्याननिः श्वासबहुलं लिङ्ग ज्वरे स्मृतम्।।
23. मन्मथायाससम्भूतो वसन्तगुण वर्धितः।। वा. रा. कि. 1/32
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव। वा. रा. कि. 1/33
24. अपश्यतस्तां वनितां पश्यतो रुचिरान् द्रुमान।। कि. 1/33)
मयायमात्म प्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति। कि. 1/33.5 (34)
25. भयात् प्रलापः शोकाच्च भवेत् कोपाच्च वेपथुः।
अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते।।
भूताभिषङ्गादुद्वेगहास्य कम्पन रोदनम्।। सु. उ. 39/79)
26. तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हयमानस्य तप्यते।
पूर्व चैतस्ततो देहस्ततो विस्फोट तृड्भ्रमैः।।
सदाहमूर्च्छैर्ग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः।।
27. यु. 10/27
28. यु. 11/1
29. अयो. 58/3, 4
वृद्धं परमसंतप्तं नवग्रहमिव द्विपम्।
विनिःश्वसन्तं ध्यायंतमस्वस्थमिव कुञ्जरम्।। 3।।
राजा तु रजसा सूतं ध्वास्ताङ्गसमुपस्थितम्।
अश्रुपूर्ण मुखं दीनमुवाच परमार्तवत्। 4।
30. भूत-विद्या समुद्दिष्टैर्बन्धावेशन पूजनैः।

जयेत् भूताभिषङ्गोत्थं, विज्ञानाद्यैश्च मानसम्।। सु. उ. 39/265

31. 'देहेन्द्रियमनसन्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।' च. चि. अ./3

32. द्विविधो विधि-भेदेन ज्वरः शारीर मानस। च. चि. अ./3
शारीरो जायते पूर्वे देहे, मनसि मानसः।
वैचित्यमरतिर्ग्लानिमनस्ताप लक्षणम्।।
इन्द्रियाणां च वैकृत्यं 'ज्ञेयं संताप लक्षणम्।। च. चि. अ./3

33. 'काम शोक-भय क्रौधेरभिषक्तस्य यो ज्वरः।
सो अभिषङ्ग ज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गजः।।' च. चि. अ./3

34. कामशोक भयाद्वायुः क्रोधातिपत्तं त्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूत सामान्य लक्षणाः।। च. चि. अ./3

35. 'कामाद् भ्रमोरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः।'

36. यु. 10/27। वाल्मीकि रामायण

37. यु. 11/1। वाल्मीकि रामायण

38. तस्य रोमाणि केशांश्च तदा वह्निर्महात्मनः।
जीर्णांत्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम्।। अ. 5/40

39. तं. तु दुन्दुभिमुद्यम्य धरण्यामभ्यपातयत्।
युद्धे प्राण-हरे तस्मिन्निष्पिष्टों दुन्दुभिस्तदा।। कि. 11/45
स्रोतोभ्यो बहुरक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः।
पपात च महाबाहुः क्षितौ पञ्चत्वमागतः।। कि. 11/46

40. तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं ददृशे तदा।। उ. 27/50
गदया भस्मतां नितं निहतस्य रणाजिरे। उ. 27/51

41. ततो गिरौ पपातेष इन्द्र वज्राभि ताडितः।
पतमानस्य चैतस्य वामा हनुरभज्यत।। उ. 35/47

42. स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः
क्षरन्नसृङ्गनिर्मथितास्थि लोचनः।
सम्भिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायु सुतेन राक्षसः।। सु. 47/36

43. सतैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे।। अ. 25/13
रामः प्रदीप्तैर्बहुर्भिर्वज्रैरिव महाचलः।। 25/14

44. स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः।। 25/14

45. तेषां बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य वीर्यवान्।
जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान्।। अ. 25/28

46. ते छिन्न शिरसः पेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः।
सुपर्णवातविक्षिप्ता जगत्यां पादपा यथा।। अ. 25/29

47. निहिताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः।
तत्र-तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः।। अ. 25/42, 43

48. तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः।
द्वाभ्यां शराभ्यां विच्छेद सहस्ता भरणौ भुजौ।। अ. 26/13

49. अ. 26/20-21

50. रथस्ययुगमेकेन चतुर्भिः शबलान् हयान्।
षष्ठेन च शिरः संख्ये विच्छेद खरसारथेः।। अ. 28/29
51. तत्वं ब्रूहि मनोङ्गनाङ्गि केन त्वं च विरूपिता।
इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोध-मूर्च्छित।। अ. 34/4
52. शरीरं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः।। अ. 44/15
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः। अ. 44/16
53. अ. 25/42
54. अ. 26/3, सुं 32/8, 62/27, यु. 12/17, 30/9, 45/18, 67/18,
उ. 15/35, 69/11
55. यु. 9/9
56. त्वङ्गमांससिरास्नारत्रस्थिसन्धि कोष्ठमर्माणीत्यष्टौव्रण वस्तूनि।
अत्र सर्वव्रण सन्निवेशः। सु. सं. (पू.) 22/3
57. सु. सं. पू. 22/5
58. सु. सं. पू. 22/6
59. सु. सं. पू. 22/7 षट्त्वम्- वातपित्तकफरक्तसन्निपातागन्तुमेदतः।
60. सु. सं. (पू.) 22/8
61. सु. सं. (पू.) 22/9
62. सु. सं. (पू.) 22/9
63. (सु. सं. (पू.) 22/9)
64. (सु. सं. (पू.) 22/9)
65. सु. सं. (पू.) 22/9
66. सु. सं. (पू.) 22/10, 11
67. सु. सं. (पू.) 22/12
68. सु. सं. (पू.) 22/13
69. सु. सं. (पू.) 22/14
70. दुःखे मे दुःखम करो व्रणे क्षारमिवाददाः।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम्।। अयो. 73/3
71. तवापमान प्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम।
न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ-इवोल्बणम्।। अर. 22/2
72. स तु वृक्षेण निर्मग्नः सालताङ्नविह्वलः।
गुरुभारभराक्रान्ता नौः ससार्थेव सागरे।। कि. 16/24
73. भगवन् व्रणयुक्तत्वाल्लज्जया चाकुलेन्द्रियः।
परिश्रान्तो न शक्नोमि वचनं परिभाषितुम्।। कि. 61/2
74. स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।
तदा निर्वेदनश्चैव संरुव्रण एव च।। यु. 91/25
75. 'व्रण'-सु. 38/24, 46/36, यु. 22/38, 54/32, 74/73, 88/55, 120/9, 14/17,
उ. 7/15, 28/26
'घायल'— यु. 24/38, 44/13, 49/4, 52/7, 59/110, 69/91, 94, 76/56,
90/26,

91/11, 96/24, 100/11, उ. 15/28, 35, 19/22, 23/26, 29/34, 35/48
घाव भरना– यु. 104/45

76. सु. स. (उ.) 56/2-4

77. अहं वां कामये सर्वाभार्या मम भविष्यथ।
मानुषस्त्यज्यतांभावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ।।
चलं हि यौवनं नित्यं मानुषेषु विशेषतः।
अश्रय यौवनं प्राप्ता अमर्यश्च भविष्यथ।। बा. 32/16, 17

78. अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां सुरसत्तम्। प्रभावाज्ञश्चते सर्वा किमर्थमवमन्यसे कुशनाभसुता देवा समस्र्थास्त्वां सुरोत्तम। स्थानाच्चावयितुं देवं रक्षामस्तु तपोवयम् माभूत सकालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनं। अवमन्य स्वधर्मेण स्वंयवरमुपास्यहे पिताहिप्रभुरस्माकं देवतं परम् च सः। यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति। बा. 32/19 से 22 तक

79. तासां तु वचनं श्रुत्वा हरिः परमकोपनः।
प्रविष्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान प्रभुः।।
अरत्निमात्राकृतयो भिन्न गात्रा भयार्दिताः।
ताः कन्या वायुना भग्ना विविशु स्वपितुः गृहम्।
प्रविष्य च सुसभ्रान्ता-सलज्जाः साऽश्रुलोचनाः।।
सचता दयिता दीनाः कन्याः परम शोभिनाः।
दृष्ट्वा दीनास्तदा राजा सम्भ्रान्ता इदमऽब्रवीत्।।
किमिदं कथ्यते पुत्र्यः को धर्ममवमन्यते।
कुब्जाः केन कृताः सर्वाश्चेष्टन्त्यो नाभिषभाषथ।।
एवं राजा विनिश्वस्य समाधिं संदधेततः। बा. 32/23-26

80. तस्य तदवचनं श्रुत्वा कुशनाभस्य धीमतः।
शिरोभिश्चारणौ स्पष्ट्वा कन्याशतमभाषत।।
वायु सर्वात्मको राजन् प्रघर्षयितुमिच्छति।
अशुभं मार्गमास्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते।।
पितृमत्यः स्म भद्रं ते स्वच्छन्देन वयं स्थिताः।
तेन पापानुबन्धेन वचनं नः प्रतीच्छता।
पितरं नो वृणीश्व त्वं यदि नो दास्यते तव।
एवं ब्रुवन्त्यः सर्वाः स्म वायुनानिहता भृशम्।। बा. 33/1-4

81. तासां तु वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः।
प्रत्युवाच महातेजाः कन्या शतमनुत्तमम्।।
क्षान्तं क्षमावतां पुत्र्यं कर्त्तव्यं सुमहत् कृतम्।
ऐकमत्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम।।
अलकारोहि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्यवा।
दुष्करं तद्धिं वैक्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः।।
यादृशी वः क्षमा पुण्यः सर्वासाम विशेषतः।
क्षमादानं क्षमासत्यं क्षमा यज्ञश्च पुत्रिकाः।
क्षमयशः क्षमा धर्मः क्षमयाधिष्ठितं जगत्।। बा. 33/5-8)

82. तमाहूय महातेजा ब्रह्मदत्तं महीपतिम्।

ददौ कन्याशतं राजा सुप्रीतेनान्तरात्मना।। बा. 33/21
स्पृष्टमात्रे तदा पाणौ विकुब्जा विगतज्वराः।
युक्ताः परमया लक्ष्म्या बभौ कन्याशतं तदा।। बा. 33/23

83. ऊचुः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः।
त्वया तु भगवन् सृष्टाः प्रजानाथ चतुर्विधाः।।
त्वयादत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः।
सोऽस्मान् प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सतम।। उ. 35/54, 55

84. अशरीरः शरीरेषु, वायुश्चरति पालयन्।
शरीरं हि बिना वायुं समतां याति दारुभिः।।
वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वामिदं जगत्।
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत।।
अद्यैव च परित्यक्तः वायुना जगदायुषा।
अद्यैव ते निरुच्छवासाः काष्ठकुड्‌डयोपमा स्थिताः।। उ. 35/60, 61, 62

85. तच्चार्वचिंत पद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम्।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मर्तिमम।। कि. 1/109

86. तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं शुचिस्मितं पद्म पलाश लोचनम्।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदान्वहं प्रसन्नताराधिपतुल्य वर्चसम्।। सु. 13/68

87. अयो. 109/21

88. अरण्य 69/30

89. युद्ध 9/20

90. जीभ— सु. 11/18, 56/47, 58/71 जबड़ा- यु. 8/21 दाँत- अयो. 91/75, अर. 32/8, 46/11, सुं. 5/8, 13/68, 61/24, यु. 4/50, 44/08, 52/11, 58/16, 70/65, उ. 35/37, 56/29, 69/2, दाढ़—सु. 49/5, यु. 12/37

91. इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।
उद्‌धृत्य खड्‌गंविच्छेद कर्ण नासे महाबलः।। अ. 18/21

92. बलाद् व्यापादयां चक्रे ननर्द च महास्वनम्।
श्रोत्राभ्यामथ रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः।। कि. 11/41

93. आस्यैश्च नेत्रैः श्रवणैः पपात रुधिरं वहु।
विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत।। यु. 59/116

94. ह्लादयत सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च।
श्रोत्राश्रय सुखं गेयं तद् बभौ जनसंसदि।। बा. 4/34

95. कर्ण- यु. 44/10 कर्णमूल यु. 98/17, शंखदेश यु. 97/21, Temporal Regien, श्रोत्र-यु. 116/5, श्रवण-यु. 49/116 कर्ण अयो. 45/15, 49/4, 118/48

96. यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफ पूर्वकः।
विष्वक् व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः।। च. चि. 17/45

97. च. चि. 17/62

98. शल्य सम्पीडितम् शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम्।
रामस्तु दुःखसंतप्तं तं तु निःश्वास पीडितम्।। यु. 91/11

99. पितरं चानु शोचामि मातरं च यशस्विनीम्।

अपि नान्धौ भवेतां नौ रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः।। अयो. 46/6

100.तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ।
अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविव द्विजौ।। अयो. 64/4

101.इमामन्धांच वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम्।
कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम्। अयो. 64/35

102.स बद्धवा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः।
अमर्षात् परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत्।। यु. 34/2

103.एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकाङ्क्षितम्।
हर्षवाष्पाकुलं वाक्यमिदं राममभाषत।। अयो. 4/38

104.सभग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्गनिर्मथितास्थि लोचनः।
सम्भिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः।। सु. 47/36

105.मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव।।
भवांस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम्। सु. 67/16

106.प्राप्तचरित्र संदेहा मम प्रतिमुखेस्थिता।
दीपोनेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि में दृढ़ा।। यु. 115/17

107. देव्यादिव्य-प्रभावेण दग्धं सव्यं ममेक्षणम्।
रेणुध्वस्तामिव ज्योतिः पिङ्गलत्व मुपागतम्।। उ. 13/24

108 देव्या दग्धं प्रभावेण यच्च सव्यं तवेक्षणम।।
पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूपनिरीक्षणात्।। उ. 13/30
एकाक्षपिङ्गलीव्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम्।

109. उपरुध्यन्ति मे प्रणा दृष्टिर्भमति राघव।
पश्यामि वृक्षान् सौवर्णानुशीर कृत मूर्धजान्।। अ. 68/11

110. इत्युकत्वा च दितिस्तत्र प्राप्ते मध्यं दिनेश्वरे।
निद्धयापहृता देवी पादौ कत्वायाशीर्षतः।। बा. 46/16

111. स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान्।
विमदानुद्धतान् सर्वान् मेहमानान् मधूदकम्।। सुं. 64/4

112. कार्श्य दौर्बल्यं वैवर्ण्यमङ्गमर्दोऽरुचिर्भ्रमः।
क्षुद्वेगनिग्रहातत्रस्निग्धोष्णंलघु भोजनम्।। च. सं. सू. 7/18

113. ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः।
त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः।। उ. 18/29

114. कण्ठास्याशोषो वाधिर्य्यश्रमः श्वासोहृदिव्यथा।
पिपासानिग्रहातत्र शीतं तर्पणमिष्यते।। च. स. सू. 7/19

115. तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ।। अयो. 63/40
चिरमाशां कृतां कष्टां तृष्णां संधारयिष्यतः। अयो. 63/41

116. विनामाक्षेपसङ्कोचः सुप्तिः कम्पः प्रवेपनम्।
जृम्भायानिग्रहातत्रसर्व वातघ्न मौषधम्।। च. स. सू. 7/17

117. यस्तु कर्णौ विवृणुते जृम्भते च पुनः पुनः।
न तु संविजते मृत्योर्न च सेनां प्रधावति।। यु. 26/33

द्वितीय परिच्छेद

1. यदा तु रक्त वाहीनि रस संज्ञावहानि च।
पृथक् पृथक् समस्ता वा स्रोतांसि कुपिताः मलाः।
मलिनाहार शीलस्य रजोमोहावृतात्मनः।
प्रतिहव्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तदा।
मद मूर्च्छाय सन्यासस्तेषां विद्याद्विचक्षणः।
यथोत्तरं बलाधिक्यं हेतुलिङ्गोपशान्तिषु।। च. सू. 24/23, 24, 25
2. स तन्निशम्य राजेन्द्रो विश्वामित्र वचः शुभम्।।
शोकेन महताविष्टश्च चाल च मुमोह च। बा. 19/20
3. तच्छ्रुत्वा राजाशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्।
मुहूर्तमिव निः संज्ञः संज्ञावानिदम ब्रवीत्।। बा. 20/1
4. सैषा शापकृतामर्षा ताटका क्रोध मूर्च्छिता।
देशमुत्सादयत्येन मगस्त्याचरितं शुभम्।। बा. 25/14
5. विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषु बलपीड़ितम्।
निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।। बा. 30/19
6. भगीरथोऽपि राजर्षिर्गङ्गामादाय यत्नतः।।
पितामहान् भस्मकृतानपश्यद् गतचेतनः।। बा. 43/40
7. च. नि. 7/2
8. नैवदेवाः न गन्धर्वाः न पिशाचाः न राक्षसाः।
न चान्ये स्वयमुत्क्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम्।।
ये त्वेनमनुवर्तन्ते क्लिश्यमानं स्वकर्मणा।
न स तद्धेतुकः क्लेशो न हयस्ति कृतकृत्यया।। च. नि. 7/22, 23
9. चरक निदान 7/16
10. च. नि. 7/8
11. नदन्ति कामं शकुना मुदिताः सङ्घशः कलम्।
आह्वयन्तः इवान्योन्यम् कामोन्मादकरा मम्।। कि. 1/46
12. वैदेही निपपातह (उ. 48/1)। सामुहूर्तमिवा संज्ञा (उ. 48/2)
13. उन्मतेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती।
उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले।। सु. 26/2
14. किं नु मेऽयं दिवास्वप्नश्चितमोहोऽपि वा मम।
अनुभूतोपसर्गो वा मनसो वाप्युपद्रवः।। अयो. 12/2
15. मत्तोऽयमिति यामंस्था यद्यं भीतोऽसि संयुगे।
मदोऽयं सम्प्रहारेऽस्मिन् वीरपानं समर्थ्यताम्।। कि. 11/38
16. शोणित गंधोन्मत्तो-----(युद्ध काण्ड)
17. अर. 23/7

तृतीय परिच्छेद

1. मुख की कान्ति फीकी होना- अयो. 18/10 अ. 20/24, कि. 52/10, 59/27, 65/15
यु. 12/17, 30/3, 48/31, 50/34, 125/44, 127/50 उ. 14/30, 16/8।

मुख—कि. 3/30, सु. 8/7, 9/37, 58/24, 57, 62/27, 64/30, 43, यु. 81/9, उ. 44/12, 46/1 मुख सूखना- कि. 17/54

2. शल्यसम्पीडितम् शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम्।
रामस्तु दुःख सन्तप्तं तं तु निःश्वासपीडितम्।। यु. 91/11

3. ततः कालायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चितम्।
प्रगृह्याभ्यहनद् देवं स्तनयोरन्तरे दृढ़म्।। उ. 8/15

4. हत वीरौधवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम्।
शोणितोघमहातोयां यम सागर गामिनीम्।। यु. 58/29
यकृतप्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम्।
भिन्न काय शिरोमीनामङ्गावयव शाद्वलाम्।। यु. 58/30

5. गृध्रहंसवराकीर्णां कङ्कसारस सेविताम्।
मेदः फेन समाकीर्णामार्तस्तनितनिः स्वनाम्।। यु. 58/31
तां का पुरुषं दुस्तारां युद्ध भूमिमयीं नदीम्।
नदीमिव घनापाये हंस सारस सेविताम्।। यु. 58/32
राक्षसाः कपिमुख्यास्ते तेरुस्तां दुस्तरांनदीम्।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः।। यु. 58/33

6. संभग्न बाहू सकटी पयोधरः क्षरन्न सृऽनिर्मथितास्थि लोचनः।
सम्भिन्न सन्धिः प्रविकीर्ण बन्धनो हतः क्षतो वायु पुत्रेण राक्षसः।।

7. नष्टाचितो यथोन्मत्तो, विपरीतो भयातुरः।
हत तेजो, यथा सर्पो, वभूव जगती पते।।

8. स भूमिपालो विलपन्नाथवत्, स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया।
पपात देव्याश्चरणौ प्रसारिता वुभावसम्प्राप्य यथाऽऽतुरस्तथा।। अयो. 12/112

चतुर्थ परिच्छेद

1. तस्मिन्नागच्छति लोकनाथे, गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः, शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः।। सु. 28/6

2. बा. 37/26

3. यु. 128/116

4. उ. 17/34

5. बा. 38/17

6. बा. 36/14

7. अर. 43/41)

8. द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समाः स्त्रियः।
मासि-मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत।। भा. प्र. 3/1 पूर्व खण्ड

9. विजयेत महीम् राजा प्रवासी स्वस्तिमान् भवेत्।
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान्।। यु. 128/116

10. आर्तवस्रावदिवसादृतुः षोडश रात्रयः।
गर्भ ग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः।। भा. प्र. पू. 3/2

11. इति मद्वचनाद् रामो वक्तव्यो मम संग्रहः।।

निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम्। उ. 48/18.5

12. पूर्व्वं पश्येदृतुस्नाता या दृशं नरमङ्गना।
तादृशं जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम्।। भा. प्र. पू. 3/11

13. ऋतुस्नातां सतीं भार्यामृतुकालानुरोधिनीम्।
अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः।। अयो. 75/52

14. ऋतौस्त्रीपुंसयोर्योगेमकर ध्वज वेगतः।। भा. प्र. पू. 3/28

15. वरुणस्त्वब्रवीद वाक्यं कन्दर्पशरपीडितः।
इदं तेजः समुत्स्रक्ष्ये कुम्भेऽस्मिन् देवनिर्मिते।। 17
एवमुत्सृज्य सुश्रोणि त्वय्यहं वरवर्णिनि।
कृतकामो भविष्यामि यदि नेच्छसि सङ्गमम्। उ. 56/17, 18

16. अयो. 75/41, यु. 13/14, उ. 56/15, 23, 80/16, 89/प्रा.

17. भा. प्र. पू. 3/34

18. बीज मात्रं पिता जन्तोः शुक्रं शोणितमेव च।
संयुक्तमृतुमन्मात्रा पुरुषस्येह जन्म तत्।। अयो. 108/11

19. स्तनयोर्मुख कार्ष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गमस्तथा।
अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः।। भा. प्र. पू. 3/43

20. सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम्।
अभवत् पाण्डु देहा सा सुव्यञ्जित शरीर जा।। उ. 2/17

21. दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधुर्साध्विति चाब्रवीत्।। उ. 42/30

22. गर्भाशयगतं शुक्रमार्तवं जीवसंज्ञकः।
प्रकृतिः सविकारा च तत्सर्वं गर्भ संज्ञकम्।। भा. प्र. पू. 3/63
कालेन बर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्ग संयुतः।
भवेत्तदा स मुनिर्भिः शरीरीति निगद्यते।। भा. प्र. पू. 3/64

23. तेषां तद् वचनम् श्रुत्वा स्कन्नं गर्भपरिश्रवे।
स्नापयन् परया लक्ष्म्या दीप्यमानं यथानलम्।। बा. 27/26

24. स्कन्द इत्यब्रुवन देवाः स्कन्नं गर्भपरिस्रवे।
कार्तिकेयं महाबाहुं काकुत्स्थ ज्वलनोपमम्।। बा. 37/27

25. सु. सं. नि. 8/3

26. सु. सं. नि. 8/4

27. सु. सं. नि. 8/5

28. सु. सं. नि. 08

29. सु. सं. नि. 8/14

30. तस्मिन्ननागगच्छति लोक नाथे, गर्भस्थजन्तोरिव शल्य कृन्तः।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः, शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः।। सु. 28/6

31. यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहम प्रजाः।। अयो. 20/36

32. एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते।। अयो. 20/37

33. स चाप्य पुत्रो नृपतिस्तस्मिन् काले महाद्युतिः।
अयजत् पुत्रियामिष्टिं-पुत्रेप्सुररि सूदन।। बा. 16/9

34. दिवाकर समाकारं दीप्तानलशिखोपमम्।
तप्त जाम्बूनद मयीं राजतान्तपरिच्छदाम्।। बा. 16/14
दिव्य पायस सम्पूर्णां पात्री पत्नीमिवप्रियाम्।
प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव।। बा. 16/15

35. "प्रजापत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृपं।। बा. 16/16

36. इदं तु नृप शार्दूल पायसं देवनिर्मितम्।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्य वर्धनम्।। बा. 16/19

37. भार्याणामनु रूपाणां मश्नीतेति प्रयच्छवै।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप।। बा. 16/20

38. ....कौशल्यामिदमब्रवीत्।
पायस प्रतिगृहणीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः।। बा. 16/26

39. ततस्तु ताः प्राश्य तदुत्तम स्त्रियो, महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्य समानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा।। बा. 16/31
ततस्तु राजा प्रतिवीक्ष्य ताः स्त्रियः प्रारुढगर्भाः प्रतिलब्ध मानसाः।
बभूव हष्टास्त्रिदिवे यथा हरिः सुरेन्द्रसिद्धर्षि गणाभि पूजितः।। बा. 16/32

40. नवमोदशमे मासि नारी गर्भ प्रसूयते।
एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः।। भा. प्र. पू. 3/340

41. ततोऽर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः।
वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम्।। उ. 66/2

42. अष्ट हस्तायतं चारु चतुर्हस्तविशालकम्।
प्राचीनद्वारम् (1) दग्द्वारम् विदध्यात् सूतिका गृहम्।। भा. प्र. पू. 3/341

43. तेषां तद्वचनं श्रुत्वा महर्षिः समुपागमत्।
बालचन्द्रप्रतीकाशौ देव पुत्रौ महौजसौ।। उ. 66/4
जगाम तत्र हष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ।
भूतघ्नीं चाकरोत् ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम्।। उ. 66/5

44. तेषां तद् वचनं श्रुत्वा स्कन्नं गर्भपरिस्रवे।
स्नापयन् परया लक्ष्म्या दीप्यमानं यथानलम्।। बा. 37/26

45. स्कन्द इत्यब्रुवन् देवाः स्कन्नं गर्भपरिस्रवे।
कार्तिकेयं महाबाहुं काकुत्स्थ ज्वलनोपमम्।। बा. 37/27

46. सुंदर 28/6

47. (a) रजस्वला यु. 128/116
(b) अयोनिजा उ. 17/34
(c) गर्भ-परिश्रव बा. 37/26
(d) गर्भ-पिण्ड बा. 38/17

48. च. सं. शा. स्था. 3/12-13

49. सु. सं. शा. स्था. 3/31

पंचम परिछेद

1. "वमवन्तो प्रति वर्ष तत् दर्दशुर्दनैः शिलाः।" बा. 45/19
2. उत्पाताग्नि संकांश हलाहल महा विषं।
   तेन दग्धं जगत् सर्व सदेवासुर मानुषम्।। बा. 45/20
3. हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम्।
   देवान् विसृज्य देवेशो जगाम भगवान हरः।। बा. 46/26
4. वृत्तोहिबाहूवन्तर भोगाराशिश्चिन्ताविषः सुस्मित तीक्ष्णदंष्ट्रः।
   पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोऽतिकायः सीता महाहिस्तव केन राजन्।। यु. 14/2
5. शिरोभिः पृथु भिंनागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणेः।
   वमन्तः पावकं घोरं ददंसुर्दशनैः शिलाः।। सु. 1/19
6. तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितै स्तैमहाँ शिलाः। सु. 1/20
   जज्वलुः पावको द्दीप्ता विमिद्दुश्य सह अधा।। सु. 1/20
7. यानित्वोषधाजातानि तस्मिन जातानि पर्वते।
   विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमिता विपम्।। सु. 1/21
8. अहं हि विषमद्येव पीत्वा बहु तवाग्रतः पश्यश्च मरिष्यामि। अयो. 12/47
9. "भक्षमेयं विष तीक्ष्णम्।" अयो. 12/109

10. विष मिश्रिमिश्रा मिषम्। यु. 13/34
11. विष संस्पृष्ट मत्यर्थं भुक्तमन्नं भिवोजसा। सु. 51/24
12. बा. 70/30
13. बा. 70/34-35
14. अयो. 12/47
15. यु. 5/7
16. दूषये युदुरात्मानः पथि मूल फलोदकम्।
17. ततो मुहुर्ताद गरुड़ वेनतेयं महाबलम। यु. 50/36
18. तमागत मभिप्रेक्ष्य नामास्ते विप्रदुद्रुवुः।
    वैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः।। यु. 50/37
19. ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभनन्द्य च।
    विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्र सम प्रभे।। यु, 50/38
20. वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः।
    सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः।। यु, 50/39
21. यु, 50/40
22. भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत्।
    उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ।। यु, 50/42
23. अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः।
    गुरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात्।। यु, 50/46
    नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम्।
    मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा।। यु, 50/48
    एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्ण दंष्ट्रा विषोल्बणाः।

रक्षोमायाप्रभावेण शरभूतास्त्वदाश्रयाः।। यु, 50/49

24. सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपु घातिना।। यु. 50/50

25. इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तम् त्वरामाणोऽहमागतः।
सहसैवावयोः स्नेहात् सखित्वमनुपालयन्।। यु. 50/51

26. मोक्षितौ च महाघोरादस्मात् सायकबन्धनात्।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि।। यु. 50/52

सप्तम् परिवर्त
वाल्मीकि रामायण में प्राकृतिक चिकित्सा विधान

अग्नि द्वारा (सूर्य-रश्मियों द्वारा) चिकित्सा

सूर्य समस्त प्राणियों व वनस्पतियों को जीवन व गति प्रदान करता है। सूर्य न हो तो प्राणियों व वनस्पतियों का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा। सूर्य को महान मान समस्त ग्रह निरन्तर सूर्य परिक्रमा में रत हैं, सूर्य किरणों से बना सतरंगी इन्द्रधनुष सभी को आकर्षित करता है। मनुष्य शरीर के आंतरिक और वाह्य अवयव भी विविध रंगों वाले हैं, ऐसा स्वीकार किया गया है। यदि मानव शरीर के अवयवों का रंग अपनी स्वाभाविकता छोड़ दे, तो मनुष्य शरीर अस्वस्थ कहा जाता है।

विभिन्न औषधियों के प्रभाव से जब अस्वस्थ अवयव अपने स्वाभाविक रंग को पा लेता है तो मानव शरीर स्वस्थ हो जाता है।

भारतवासी तो आदिकाल से सूर्य-प्रकाश की स्वास्थ्य-वर्धक एवं रोग-नाशक शक्ति को जानते आ रहे हैं, इसका प्रमाण भारतीय आदि ग्रन्थों से प्राप्त होता है।[1-2] इन मंत्रों में स्पष्ट कहा है कि भगवान सूर्य की रोचनामा दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीर के मध्य में मुख्य प्राणरूप होकर रहती है। इसी से सिद्ध होता है कि शरीर का स्वस्थ और दीर्घ-जीवी होना भगवान सूर्य की कृपा पर निर्भर है।

सूर्य की किरणें शरीर के स्वेद प्रवाहित करती हैं और सभी रोगों का नाश करती हैं, वे शरीर में चर्बी को छाँटकर शक्ति और आनन्द प्रदान करती है।[3] सूर्य रश्मियाँ दाद, कष्ट-पूर्ण दाने, कोढ़, जल शोथ, ज्वर अतिसार उदर शूल जैसे रोगों को नष्ट कर देती है। इनमें किंचित भी संदेह नहीं है[4] सूर्य ही स्थावर जंगम की आत्मा है।[5] हृदय रोग एवं पीलक रोग भी सूर्य-किरणों के सम्बन्ध से चला जाता है ऐसा विद्वानों का मत है।[6]

द्वापर युग में भगवान कृष्ण के पुत्र सांब को कुष्ठ रोग हो गया था वह सूर्य की उपासना से ही दूर हुआ था। तब सांब ने सूर्य की महिमा और उपासना सम्बन्धी एक पुराण की रचना की थी जो सांब पुराण के नाम से प्रसिद्ध है।

हमारे आदि ग्रन्थ वेदों में सूर्य-उपासना सम्बन्धी अनेक ऋचाएँ विद्यमान हैं जो इस

बात का प्रमाण हैं कि हम भारतवासी अनादि काल से सूर्य की उपयोगिता मानते आ रहे हैं। हम प्रारम्भ से ही सूर्य को देवता के रूप में पूजते आ रहे हैं क्योंकि सूर्य के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भारत वर्ष ही क्यों रोम, यूनान, मिस्र सभी जगह सूर्य को देवता माना गया है। जापान में सूर्य के अनेक मंदिर हैं, दक्षिण अमेरिका में भी सूर्य का एक विशाल मंदिर है।

सूर्य नमस्कार जो हमारी प्रातः पूजा का एक अंग है, पूजा के साथ-साथ एक उत्तम प्रकार का व्यायाम भी है। इसमें सूर्य-नमस्कार से सूर्द के सामने जल गिराना होता है। इसके करने से अनेक लाभ होते हैं।

धार्मिक रुचि के हिन्दी और पारसी आज भी सूर्य को देवता मानते हैं और नियम-पूर्वक उनकी पूजा करते हैं।

सूर्य केवल प्रकाश और गर्मी ही नहीं देता बल्कि यह बुद्धि, बल और दीर्घायु भी देता है।[7] अर्थात् यह श्रेष्ठ प्रकाश जो विश्व को प्रकाशित कर रहा है, हमें सुबुद्धि और दीर्घ आयुष्य प्रदान करे।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति सूर्य-प्रकाश का जितना अधिक सेवन करेगा उसकी मानसिक शक्ति उतनी ही प्रबल एवं विकसित होगी। सूर्य-प्रकाश के सेवन से मस्तिष्क में एक प्रकार की चुम्बकीय शक्ति आती है, जो मनुष्य को बुद्धिमान बना देती है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि सूर्य-रश्मियों में नीलोत्तर किरणें पायी जाती हैं जो स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभकारी हैं।

एक प्रकार से देखा जाये तो सूर्य ही जगत् का प्रसविता है। क्योंकि सृष्टि के सभी पदार्थों का मूल बीज-सूर्य-रश्मि-माला के विभिन्न प्रकार के संयोग से ही उत्पन्न होता है। रश्मि-भेद और विभिन्न रश्मियों के मिश्रण भेद से जगत् के नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। कहा गया है कि अपनी सतरंगी किरणों में सूर्य अपना वीर्य और चन्द्रमा अपना रज डालकर संसार को उत्पन्न कर देता है। संसार की सभी वस्तुएँ सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता, लोहा आदि धातुएँ हीरा, माणिक, नीलम आदि जवाहरात का पैदा होना इन्हीं रंगीन सूर्य रश्मियों के चमत्कार हैं। प्राण-धारियों और वनस्पतियों के जीवन का भी मात्र आधार सूर्य-रश्मियाँ ही हैं। जर्मन में एक प्राकृतिक चिकित्सक 'अर्नाल्ड रिकली' ने लिखा है कि जीवन के लिये जल जरूरी है, वायु उससे जरूरी है और प्रकाश इन दोनों से भी जरूरी है।

अग्नितत्व के शरीर में अभाव के कारण शरीर निर्जीव हो जाता है और कमी की वजह शरीर में सुस्ती, सिकुड़न, सर्दी की सूजन, वायु जनित पीड़ाएँ, पक्षाघात, गठिया, बुढ़ापे की कमजोरी, मन्दाग्नि, निद्रा की अधिकता, तथा ठंड आदि के उपद्रव आरम्भ हो जाते हैं, और आँख, नख, जिह्वा, विष्ठा तथा पेशाब लाल-पीले या लाल रंग की हो जाती है। मुख का स्वाद खट्टा, कड़वा, हो जाता है, स्वभाव

उग्र एवं क्रोधी हो जाता है तथा दुर्बलता, अंग-अंग में शुष्कता एवं प्यास की अधिकता आदि रोग हो जाते हैं।

सूर्य-किरणों के रंग

सूर्य किरणों में सात रंग पाये जाते हैं।

1. लाल	2. पीला
3. नारंगी	4. हरा
5. नीला	6. आसमानी
7. बैंगनी	

रंगों की अपनी-अपनी प्रकृति है तथा अपना-अपना प्रभाव है। चिकित्सा विशेषज्ञ सातों रंगों का भिन्न-भिन्न रोग में प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु साधारण चिकित्सक के लिये निम्नलिखित तीन समूहों का प्रयोग ही पर्याप्त हो जाता है।

1. लाल—(पीला और नारंगी)
2. हरा
3. नीला—(आसमानी और बैंगनी)

सूर्य-किरण चिकित्सा को अन्य चिकित्साओं की तुलना में अधिक प्रभावशाली बताया गया है। यह अधिक स्वभाविक भी है। इसके अतिरिक्त एक और विशेष कारण इसकी आश्चर्यकारी सूक्ष्मता हैं।

साधारण पानी, चीनी या तेल आदि रंगीन बोतलों में डालकर धूप में रख देने से ही सूर्य किरणों द्वारा उसमें रासायनिक खनिज एवं धातुओं के सम-मात्रा में भिन्न-भिन्न तत्व तीनों रंगों में पृथक्-पृथक् उत्पन्न हो जाते हैं।

भारतीय अथर्ववेद के अनुसार स्वास्थ्य रक्षा और स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये आहार, जल और वायु का ध्यान रखना आवश्यक है। जीवनी शक्ति देने वाली ऑक्सीजन की प्राप्ति के लिये रोजाना हरियाली वाले स्थानों में घूमना या बैठना अति आवश्यक है। जल और आहार की शुद्धता भी उतनी ही जरूरी है। पाचन शक्ति के बिगड़ जाने से अनेक व्याधि उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है। भूख से थोड़ा कम खाने वाला व्यक्ति जल्दी बीमार नहीं होता और अधिक कार्यशील होता है।

'सूर्य-किरण चिकित्सा' में खाने-पीने की वस्तुओं के प्रभाव पर भी लक्ष्य रखा गया है, जैसे लाल-रंग की सब्जियों और फलों का प्रभाव गर्म होता है, हरे-रंग की सब्जियों और फलों का प्रभाव समशीतोष्ण होता है, एवं नीले रंग की सब्जियों का प्रभाव ठंडा होता है।

यही सिद्धान्त वात-पित्त एवं कफ इन तीनों दोषों के आधार पर साधारणतया लागू होता है। यथा—लाल-रंग की सब्जी पित्त-कारक, सफेद रंग की कफ-कारक और हरे-रंग की समशीतोष्ण होती है।

सर्दी, खाँसी आदि कफ जनित रोग वाले को गर्म-प्रकृति वाले पदार्थ देने चाहिये, उसके लिये ठण्डे प्रकृति वाले पदार्थ वर्जित हैं जैसे—दही, चावल, मूली, शलजम, संतरा इत्यादि। इसी प्रकार पित्त-जिनत रोगों में ठंडी प्रकृति के द्रव्य देना चाहिये, गर्मी करने वाले द्रव्य वर्जित हैं। फलों के रस तथा सब्जियों के सूप आदि पीने वाले द्रव्यों पर भी यही नियम लागू होता है।

'सूर्य-किरण-चिकित्सा' की एक और विशेषता है कि कफ-जनित रोगों में अनेक पेय-पदार्थ जैसे—दूध, फलों तथा सब्जियों के रस को आधा घण्टे नारंगी रंग की बोतल में रख कर उनको धूप में रखा जाये तो उनकी कफ बनाने वाली प्रकृति परिवर्तित हो जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रकार से सूर्य-किरण द्वारा चिकित्सा का विधान विभिन्न विद्वानों एवं चिकित्सकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वाल्मीकि रामायण में भी अनेक स्थलों पर सूर्य की शक्ति एवं महत्व को प्रदर्शित एवं वर्णित किया गया है।

रावण से युद्ध करते हुए जब श्री राम थककर अत्यन्त चिन्तित हुए तब अगस्त्य मुनि ने उनके पास आकर उन्हें 'आदित्य हृदय' नामक अत्यन्त गोपनीय स्तोत्र का जप करने के लिये कहा।[8] अगस्त्य ने बताया कि सूर्य अपनी अनन्त किरणों से सुशोभित, नित्य उदय होने वाले (समुद्यन), देवताओं और असुरों द्वारा नमस्कृत विवस्वान प्रभा का विस्तार करने वाले (भास्कर) और भुवनेश्वर हैं।[9] अगस्त्य ने बताया कि सम्पूर्ण देवता सूर्य के ही स्वरूप हैं। ये तेज की राशि तथा अपनी किरणों से जगत् को सत्ता एवं स्फूर्ति प्रदान करने वाले हैं और ये ही अपनी रश्मियों का प्रसार करके देवताओं तथा असुरों सहित सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं।[10]

अगस्त्य मुनि आगे भी सूर्य की महिमा का वर्णन करते हुए उसकी स्तुति करते हैं।[11] अगस्त्य मुनि ने सूर्य का महत्व बताते हुए श्री राम को आदित्य हृदय का तीन बार जप करने का परामर्श दिया।[12] मुनि विश्वामित्र का उपदेश सुनकर श्री राम ने प्रसन्न होकर शुद्ध चित्त से 'आदित्य हृदयं' को धारण किया और तीन बार आचमन करके शुद्ध हो भगवान सूर्य की ओर देखते हुए उसका तीन बार जप किया।[13] सूर्य रश्मियों के ही समान 'अग्नि' का भी रामायण में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। अग्नि द्वारा चिकित्सा से तात्पर्य सूर्य रश्मियों द्वारा चिकित्सा से ही है। रामायण में प्रत्यक्ष रूप से 'अग्नि' द्वारा 'चिकित्सा' का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है तथापि इसका नामोल्लेख अवश्य दृष्टि-गोचर होता है।[14]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंग-स्थलों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य एवं अग्नि का रामायण में अनेक स्थलों पर विभिन्न सन्दर्भों में उल्लेख तो अवश्य हुआ हैं किन्तु इनके द्वारा चिकित्सा-विधान स्पष्ट परिलक्षित नहीं

होता।

सूर्य से सम्बन्धित 'आदित्य हृदय' नामक स्त्रोत अवश्य ही स्फूर्ति दायक बताया गया है जो चिकित्सा की दृष्टि से सहायक सिद्ध हो सकता है। अन्य स्थलों पर भी सूर्य की महिमा शक्ति एवं देवत्व का वर्णन किया गया है सूर्य के ही समान अग्नि का भी वर्णन रामायण में मिलता है और अग्नि को भी देवत्व प्रदान किया गया है तथापि यदि चिकित्सा की दृष्टि से देखा जाये तो इनका विशद् उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

(II) जल द्वारा चिकित्सा

समस्त रोगों का मूल कारण शरीर के अन्दर विजातीय पदार्थों का एकत्र हो जाना ही है। जब वायु दूषित हो जाती है, शरीर मल ग्रसित हो जाता है तभी रोगों का आक्रमण होता है। शरीर की गन्दगियों को निकाल देने से ही शरीर स्वस्थ हो जाता है। कपड़े गन्दे होने पर हम जल से ही उसे साफ करते हैं, ठीक उसी प्रकार शरीर के भीतर एकत्र हुई गन्दगी भी जल के द्वारा ही निकाली जा सकती है, डाक्टरों, वैद्य, हकीमों की दवाइयों की कोई भी जरूरत नहीं है। जल की सहायता दो प्रकार से ली जा सकती है प्रथम जल पीकर तथा द्वितीय स्नान करके।

जल-चिकित्सा से रोगोत्पत्ति का मूल कारण नष्ट हो सकता है क्योंकि जल-चिकित्सा प्राकृतिक-चिकित्सा का मुख्य अंग है।

जल का महत्व

जल का दूसरा नाम 'जीवन' है। इसी शब्द से यह सिद्ध है कि जीवन का आधार जल ही है अर्थात् जीवन रक्षा का प्रधान अवलम्बन जल है।

शीतल वायु में प्रातः सायं भ्रमण करने से त्वचा में कांति आती है तथा कान, आँख आदि इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है। यह शीतलता जल से ही उत्पन्न होती है। जल से भरी हुई शीतल वायु का सेवन बड़ा लाभदायक है। प्रातः सायं तथा अन्य समय में भी प्रत्येक मनुष्य को इसके सेवन से लाभ उठाना चाहिये। असाध्य रोगियों को वृहद् जलाशयों के समीप विशेषतः सागर तट पर भेजा जाता है। वेद के एक सूक्त में वर्णन है कि दिव्य जलों से मनुष्य के अभीष्ट और पीने के कर्म होते हैं। मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करके दिव्य जल चारों ओर से सुख की वर्षा करते हैं। दिव्य-जल वर्षा के जल हैं। वर्षा के जलों से ही खेतियाँ हरी-भरी दिखाई देती हैं। सभी प्रकार की वनस्पतियाँ अन्न-सम्बन्धी या औषध-सम्बन्धी वर्षा से ही उत्पन्न होती हैं। सारांश यह है कि मानव के खाने-पीने आदि जीवन की सम्पूर्ण सामग्री दिव्य-जलों पर आश्रित हैं। जल में सम्पूर्ण भेषज विद्यमान हैं। जलों में एक अग्नि विद्यमान है—जिससे संसार का कल्याण होता है।

जल शरीर की रक्षा के लिये और रोग निवारण के लिये रक्षा के अनेक साधनों को और औषधियों को उत्पन्न करता है जिसके सहाय्य से मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त

होती है।

अथर्ववेद के मंत्र में कहा गया है कि जल निश्चय ही भेषज है, जल ही रोगों को हटाने वाले हैं। जल सब रोगों की औषधि है। उसमें असाध्य, कष्ट-साध्य रोगों को दूर करने की सामर्थ्य है।

औषधि चिकित्सा से जो रोग असाध्य कह दिये गये हैं, वे भी जल चिकित्सा से दूर हो सकते हैं। जल को अग्नि से तपाने से जल की वाष्प बन जाती है, जल फैलते हैं, व्यापक होते हैं। इसका तात्पर्य है जल-वाष्प। शरीर की अगतिशील-निकृष्ट अवस्था को पहुँचे हुए रोगी को यदि वाष्प-स्नान कराया जाये तो वे अंग शीघ्र ही गति करने में समर्थ हो जाते हैं। लकवा आदि भी वाष्प स्नान से अच्छे हो जाते हैं।

जल-स्नान का महत्व

जल स्नान शरीर को शुद्ध बनाता है, स्वास्थ्य प्रदान करता है, चित्त की मलिनता को दूर करता है, प्रफुल्लता का संचार करता है। रोगों को दूर करने के लिये प्राकृतिक स्नान ही उत्तम है।

गरमी में 15-20 मिनट तक स्नान करने से कोई हानि नहीं होती, किन्तु शीत-काल में 3 मिनट में ही स्नान समाप्त कर देना चाहिये। स्नान का ठीक समय नहीं बताया जा सकता। अपनी शारीरिक अवस्था को समझकर स्वयं निर्णय कर लेना चाहिये।

शुद्ध जल में स्नान करना स्वास्थ्य के लिये जिस प्रकार हितकर है, उसी प्रकार पीने का जल भी रखना वाञ्छनीय है। गन्दे जल के व्यवहार में प्राण-घातक महारोगों की उत्पत्ति होती है और ये ही संक्रामक रूप धारण कर असंख्य लोगों की प्राण हानि करते हैं।

जल के विभिन्न चिकित्सकीय उपयोग

स्नानों के भेद—जल स्नान के भेद बहुत से हैं, इनमें से लगभग सभी रोगों को दूर करने के लिये उपयोग में लाये जाते हैं।

1. अवगाहन स्नान
2. वाष्प-स्नान
3. अर्द्ध-स्नान
4. फव्वारा स्नान
5. उदर या कटि स्नान
6. मेहन स्नान
7. गीली चादर को लपेटना
8. मध्य भाग पर भीगा कपड़ा ओढ़ना
9. पेडू-स्नान
10. पाद-स्नान
11. सिर-पीठ का सिंचन

12. सीवन-स्नान

प्राकृतिक स्नान से लाभ

उपरोक्त प्रकार के प्राकृतिक स्नान से शरीर में बल और शांति मिलती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। प्रायः शरीर तेजस्वी बन जाता है। मुर्झाये हुए चेहरे खिल उठते हैं। मन्दाग्नि दूर हो जाती है। इस स्नान से पेट की गर्मी दूर होती है और जठराग्नि इतनी प्रबल हो जाती है कि खाये हुए पदार्थों को पचा डालती है। शरीर के भीतर एकत्र मल-पदार्थों को बल-पूर्वक बाहर फेंक देती है। इस स्नान से मेदे की सफाई होती है। कब्ज की शिकायत नहीं रहती। लकवा, संग्रहणी, मोती-झरा, हैजा, पेट का फोड़ा, क्षय, प्रदर, हिस्टीरिया आदि रोगों में विधि-पूर्वक स्नान से आश्चर्य-जनक लाभ होता है।

रामायण में जल द्वारा स्वास्थ्य प्राप्ति का पर्याप्त उल्लेख किया गया है। स्वस्थ रहने के लिये औषध-जल द्वारा स्नान का उल्लेख किया गया है। जो कई विशेष अवसरों पर कराया जाता था। कमल के सुवासित जल का स्नान इस कार्य के लिये उपयोगी था। सीता तथा राम दोनों की ही शोक निमग्न अवस्था का पूर्ण विवरण रामायण में उपलब्ध है तथा शोक की उग्रावस्था में मूर्च्छित होने का वर्णन भी रामायण में है। उग्र-शोक के कारण जब मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है तब उसके उपचार के लिये शीतल जल का छिड़कना, उत्पल, उशीर, अगर अथवा चन्दन के ठंड़े जल से स्नान कराना या मुख तथा मस्तक धोना रामायण में निर्दिष्ट है (कि.) पित्त विभ्रम अर्थात् पित्त की वृद्धि के कारण चित भ्रमित होने का उपचार भी अगर, चन्दन के प्रलेप के द्वारा किये जाने का निर्देश मुनि ने दिया है ''परासुमिव तोयेन सिंचति काव्य वारिणा'' अर्थात् जैसे बेहोश मनुष्य को होश में लाने के लिये उस पर ठंडे जल के छींटे दिये जाते हैं।[15]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंग स्थलों पर दृष्टि-पात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में जल का चिकित्सार्थ प्रयोग किया जाता था और उसके स्पष्ट लाभ दिखाये गये हैं।

(III) मृत्तिका द्वारा चिकित्सा

मानव शरीर का निर्माण पाँच महातत्वों मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से हुआ है। सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम परमात्मा की प्रेरणा से शब्द तन्मात्र की उत्पत्ति हुई, इस प्रकार आत्मा का बोध कराने वाला आकाश उत्पन्न हुआ। पश्चात् वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार आकाश में 'ईथर' नामक तरंगायित तत्व हैं जो शब्द को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाता है। सबके भीतर बाहर, वर्तमान, प्राण, इन्द्रिय और मन का आश्रय होना आकाश के कार्य-रूप लक्षण हैं। आकाश से गति-शील तत्व वायु का प्रादुर्भाव हुआ। वायु शरीर का एक प्रमुख घटक और प्राकृतिक आहार है। भोजन और पानी के बिना मनुष्य कुछ समय

जीवित रह सकता है किन्तु वायु के बिना कुछ क्षण भी जीवित रहना सम्भव नहीं। वस्तुतः वायु ही प्राण है। वायु में मुख्यतयः प्राण वायु (ऑक्सीजन) भूयाति (नाइट्रोजन) और प्रांगारद्विजा-रेय (कार्बन-डाइ-ऑक्साइड) इन तीनों तत्वों के अतिरिक्त वाष्प, धूल, सेन्द्रिय और खनिज द्रव्यों के कण तथा कुछ गैस भी वायु में रहती हैं। शुद्ध वायु में कोई रंग, रूप, गंध या स्वाद नहीं होता क्योंकि वायु के अन्य तत्व निर्गन्ध और निस्वाद होते हैं। वायु के दो मुख्य गुण हैं—शब्द और स्पर्श। वायु से ही अग्नि की उत्पति हुई है, क्षुधा, तृषा, उत्पन्न करना तथा उनकी निवृति के लिये भोजन-पान कराना या पचाना ये अग्नि या तेजस के कार्य-रूप लक्षण हैं। पुनः अग्नि के विकृत होने पर उससे द्रव तत्व जल की उत्पत्ति हुई। वस्तुओं को सिक्त करना, ताप से निवृत्ति करना, प्यास शांत करना तथा जीवित रखना आदि जल के कार्य रूप लक्षण हैं। जल के चार गुण हैं—शब्द, स्पर्श, रूप और रस। जल से गन्ध गुणमयी पृथ्वी अर्थात् मिट्टी की उत्पत्ति हुई। दूसरे तत्वों का आधार लिये बिना अपने ही आधार पर स्थित रहना, जल-वृक्षादि पदार्थों को धारण करना, आकाशादि का अवच्छेदक होना तथा सम्पूर्ण प्राणियों के स्त्रीत्व, पुरुषत्व गुणों को प्रकट करना-पृथ्वी के कार्य-रूप लक्षण हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पंच महाभूतों में आकाश में केवल एक गुण शब्द, वायु में दो गुण शब्द, स्पर्श, अग्नि में तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप, जल में चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँच गुण होते हैं। इस प्रकार यह तथ्य प्रामाणित होता है कि जिन पाँच महातत्वों से शरीर का निर्माण हुआ है, मिट्टी उनमें सर्वोपरि प्रधान तत्व है। इसी तत्व में सर्वगुण समुपस्थित हैं। हमारे शरीर का अस्तित्व मिट्टी पर ही निर्भर है।

मिट्टी के गुण, धर्म, पर्याय और भेद

'सर्वद्रव्यं पञ्च भौतिकमस्मिनर्थे' अर्थात् निखिल विश्व के द्रव्य पाँच भौतिक हैं, उनके भीतर पार्थिव तत्व विद्यमान हैं। पृथ्वी सर्वगुण सम्पन्न होने के साथ ही सर्व-सुलभ और बिना मूल्य मिलने वाली अमूल्य गुणकारी वस्तु है।

मिट्टी को संस्कृत में मृत्तिका, मृदा और क्षेत्रजा कहते हैं। हिन्दी में मिट्टी या माटी कहते हैं। लेटिन में (Hydrosis Silicate of Aluminiam) कहा जाता है।

देश-भेद से कई प्रकार की मिट्टी होती है—

1. काली मिट्टी
2. पीली मिट्टी
3. लाल मिट्टी
4. मुल्तानी मिट्टी
5. खड़िया मिट्टी
6. गेरु
7. सज्जी मिट्टी
8. गोपी चन्दन
9. बलुई मिट्टी
10. पिंडोल मिट्टी
11. बालू

उपरोक्त विभिन्न मिट्टियों की पट्टी बनाकर विभिन्न रोगों में प्रयोग में लाया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में मिट्टी का चिकित्सकीय दृष्टि से कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। तथापि एक-दो स्थलों पर 'मृत्तिका' शब्द अवश्य प्राप्त होता है[16] जिससे यह प्रमाणित हो जाता है कि महाकवि की दृष्टि से मिट्टी अछूती नहीं है।

(IV) वायु द्वारा चिकित्सा

पञ्च महाभूतों में आकाश के बाद वायु का स्थान है और वायु में सूर्य, चन्द्रमा, जल एवं पृथ्वी लीन हो जाते हैं। उपनिषद् में संवर्ग विद्या के उपदेश में कहा गया है[17]

जीवन में वायु का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। अन्न-पानी-धूप के बिना तो हम कुछ दिन जीवित भी रह सकते हैं पर वायु के अभाव में कुछ क्षण में ही दम घुटने लगता है अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'वायु ही जीवन है।' और कहावत भी है कि "जब तक साँस तब तक आस"। वायु में जो ओषजन तत्व हैं, वही हमें जीवन, शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करते हैं। अतः इस महत्वपूर्ण वायु के सम्बन्ध में प्रत्येक प्राणी को अच्छी तरह जान लेना चाहिये ताकि हमें अनिवार्य रूप से सदा शुद्ध वायु सेवन की प्रेरणा मिलती रहे और हम में स्फूर्ति एवं उत्साह का निरंतर संचार हो।

वायु की आवश्यकता

हम अनुभव करते हैं कि यदि नाक एवं मुँह दबाकर थोड़ी देर के लिये भी साँस बन्द कर लें तो तत्काल दम घुटने लगता है। अतः यह प्रत्यक्ष है कि समस्त प्राणी एवं वनस्पति वर्ग के जीवन के लिये निरन्तर शुद्ध वायु का मिलना अनिवार्य है। हमारे अन्दर धीरे-धीरे होने वाली दहन-क्रिया के लिये प्राणवायु की आवश्यकता होती है और यह प्राणवायु श्वास लेते समय वायु द्वारा रक्त में प्राप्त की जाती है और रक्त के माध्यम से ही समस्त भागों में यह पहुँचायी जाती है। अतः स्वास्थ्य के लिये शुद्ध वायु परमावश्यक है और यदि शुद्ध वायु के अभाव में मनुष्य को दूषित वायु में रहना पड़े तो उसका रोग-ग्रसित होना निश्चित है।

स्वास्थ्य के लिये पर्याप्त मात्रा में शुद्ध वायु की आवश्यकता होती है। शुद्ध वायु में रहने से मनुष्य का तन-मन दोनों स्वस्थ रहते हैं। अशुद्ध वायु से त्वचा के कार्य में रुकावट होती है। जिससे शरीर के ताप का नियमन ठीक-ठाक नहीं हो पाता एवं रोग-प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होता है।

खुले स्थान, पर्वत, नदी, झरना, समुद्र, झील एवं तालाब आदि के किनारे, सुन्दर हरे-भरे सुगन्धित उद्यान में जहाँ वायु के मंद-मंद झोंकों से स्पन्दन उत्पन्न होता है वहाँ नंगे बदन वायु स्नान लेना चाहिये। जमीन पर पेट अथवा पीठ के बल लेट या यों ही बैठकर अथवा खड़े होकर भी वायु स्नान लिया जा सकता है। इससे धरती माता की भी चुम्बकीय शक्ति हमें प्राप्त होती है। इस प्रकार वायु सेवन तो प्राप्त होता ही है साथ ही साथ स्नायु संस्थान को भी पोषण मिलता है।

यदि इसकी सुविधा न हो तो कहीं भी स्वच्छ खुली हवा में चलते फिरते वायु स्नान लिया जा सकता है।

आधुनिक मानव भौतिक उतरदायित्व तथा-कथित सभ्यता, भीड़-भाड़, संकरे मार्ग, बन्द कमरे, गन्दगी एवं कल-कारखाने आदि के कारण जीवन वायु ओष-जन से सदा वंचित रहने के कारण रोग-ग्रसित होता है। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि स्वास्थ्य के लिये शुद्ध वायु का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है और इसकी पूर्ति किसी भी प्रकार की औषधि द्वारा नहीं की जा सकती। अतः वायु दीर्घ जीवन, स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता का स्रोत है और रोग के आक्रमण से बचाने वाला है।

वायु धारण की विशेष विधि होती है, जिसे 'प्राणायाम' कहा जाता है।

रामायण में चिकित्सा के साधन के रूप में वायु का उल्लेख प्राप्त होता है। सामान्यतः स्वस्थकर वायु का बहना, मलय तथा दुर्दर वायु का बहना तथा दिव्य हवा का बहना। ये तीनों ही स्वस्थकर साधन हैं। लंका के जलते समय सीता को ऐसी ही हवा ने स्पर्श किया था।[18]

उपरोक्त तथ्यों पर दृष्टि-पात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य में प्राकृतिक चिकित्सा का भी उल्लेख किया है इसके अन्तर्गत उन्होंने प्राकृतिक साधनों यथा अग्नि (सूर्य-रश्मियों द्वारा) चिकित्सा, जल द्वारा चिकित्सा, मृत्तिका द्वारा चिकित्सा एवं वायु द्वारा चिकित्सा का वर्णन किया है।

संदर्भ

1. आरोग्य भास्करादिच्छेत।। श्रीमद् भागवत
2. अन्तरचरित रोचनाश्य प्राणादपानती व्याख्यनमहिषो दिवम्। ऋ0 10/189
3. सूर्यातपः स्वेदवंलह सर्व रोग विनाशकः।
   मेदच्छेद करश्चैव बलोत्साह विवर्धनः।। ऋ. वे.
4. दद्र विस्फोट कुष्ठघ्न कामला शोध नाशकः।
   ज्वरातिसार शूलानां हारको नात्र संशयः।।
5. सूर्य आत्मायतस्तस्थुषव। ऋ. वे.
6. अनुसूर्यमुदयतां हृदद्योतो हरिमाचते।
   रोगी हितस्य वरोनि तेनत्वा परिदध्मसि।।
7. सविता नः सुवतु सर्वातीतां सवितानोरासतांदीर्घमायुः।
8. आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
   जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमांशिवम्।।
   सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्
   चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम्।। यु. 105/4, 5
9. रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम्।
   पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम्।। यु. 105/6
10. सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः।

एष देवासुरगणांल्लोकान् पाति गर्भास्तिभिः।। यु. 105/7

11. एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः।। यु. 105/8
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः।
वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः।। यु. 105/9
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः।। यु. 105/10
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान्।
तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टामार्तण्डकोऽंशुमान्।। यु. 105/11
हिरण्य गर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः।
अग्निगर्भो अदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः।। यु. 105/12
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुः सामपारगः।
धनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथी प्लवंगमः।। यु. 105/13
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वत्तापनः।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवो द्भवः।। यु. 105/14
नक्षत्र-ग्रहताराणामधिपो विश्व भावनः।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते।। यु. 105/15
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः।। यु. 105/16
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः।। यु. 105/17
नमः उग्राय वीराय सारङ्गय नमो नमः।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते।। यु. 105/18
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः।। यु. 105/19
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः।। यु. 105/20
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे।
तमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे।। यु. 105/21
नाशयत्येष वैभूतं तमेव सृजति प्रभुः।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः।। यु. 105/22

12. एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः।
एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम्।। यु. 105/23
देवाश्च कतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः।। यु. 105/24
एनमापस्तुकृच्छ्रेसु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव।। यु. 105/25
पूजयस्वैनमेकाग्रो देव देवं जगत्पतिम्।
एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यति।। यु. 105/26

अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्।। यु. 105/27

13. एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत् तदा।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान्।। यु. 105/28
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्।। यु. 105/29

14. बा. 17/3, 29/6, 36/18, 37/1-2, 7, 10-11, 12, 13, 14, 15, 16, 30, 49/1, 5, 54/14, अयो. 25/24, अर. 11/13-15, 12/17, सु. 32/14, 53/25-28, यु. 27/20, 18/11-10, 118/5, उ. 69/36, 70/1-3, 6-7, 76/5-6, 85/15-17।)

15. सु. 26/2

16. आसामुभयतः कूलं पाण्डुमृत्तिक लेपनाः।
रम्याश्चावसथा दिव्या ब्रह्मणस्थ प्रसादजाः।। अयो. 91/42

17. वायुर्वावसंवर्गो यदा वा अग्नि रुद्वायति वायुमेवाप्येति
यदा सूर्योऽस्तयेति वायुमेवाप्येति यदा चंद्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति।।
यदाप उच्छुष्यन्त्युच्छोषमाप्नुवन्ति तदा वायु मेवापियन्ति।
प्राकृतिक चि. डॉ. हीरालाल - पृ. नं. 149

18. युगान्तकालानल तुल्य रूपः समारुतोऽग्निर्ववृधे दिवस्पृक।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो। रक्षः शरीराज्य समर्पितार्चिः।। सु. 54/32

अष्टम् परिवर्त

वाल्मीकि रामायण में तांत्रिक चिकित्सा एवं भूतविद्या विषयक सामग्री

भूत-विद्या आयुर्वेद का प्राचीनतम अंग है जिसका वर्णन 'छान्दोग्योपनिषद्' (7/1/2) में भी प्राप्त होता है। चरक ने इसे उन्माद रोग के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। इसमें देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, नाग ग्रह आदि से दूषित मन वालों के लिये शांति कर्म बलि आदि किये जाते हैं। आज भी भूत विद्या, झाड़ना-फूँकना आदि अपने देश में हैं। अशिक्षित लोगों में इसका प्रचार है। आज भी वैज्ञानिक चिकित्सा में जो महत्व जीवाणुओं का है वही महत्व प्राचीन काल में भूतों का था। भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाच, निशाचर इन सबकी प्रवृत्ति, इनका व्यवहार आधुनिक-जीवाणु-विज्ञान के ज्ञान के साथ ठीक-ठीक मिलता है। दोनों की रक्त, मांस एवं वसा से प्रीति रहती है, दोनों ही अंधकार या रात्रि को पसन्द करते हैं। ये धूप, सूर्य, अग्नि एवं धूम से भागते हैं।[1]

चरक[2] एवं सुश्रुत[3] ने इसे 'भूत-विद्या' एवं अष्टांग-संग्रह[4] और अष्टांग हृदय[5] ने इसे 'गृह-चिकित्सा' नाम दिया है। सुश्रुतानुसार जिस अंग में देव, दैत्य (असुर), गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ, पिशाच, नागधारि ग्रहों से पीड़ित चित वाले रोगियों के शांति के लिये शांति कर्म, बलि-प्रदान एवं ग्रहोपशमनार्थ वर्णन होता है वह भूत-विद्या है। 'भूतविद्यानामदेवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्ट चेतसां शान्ति कर्म बलिहरषादि ग्रहोपशमनार्थम्।'[6]

इसी प्रकरण में रोगों की मन्त्र, हवन चिकित्सा आदि भी प्रतिपादित है। चरक ने देवव्यपाश्रय,[7] युक्ति व्यपाश्रय एवं सत्वावजय भेद से तीन प्रकार की औषधि का निर्देश किया है। इनमें से दैव व्यपाश्रय के अन्तर्गत मन्त्र, औषधि, मणि-धारण, मंगल-कर्म, बलि-उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात, तीर्थ-गमन आदि का सन्निवेश होता है। युक्तिव्यपाश्रय में ओषध-चिकित्सा आती है। मन को ततद विषयों से हटाकर स्थिर करना सत्वावजय है।

इसके अतिरिक्त सुश्रुत ने अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध, अपस्मार, प्रतिषेध एवं उन्माद प्रतिषेध को भी भूत-विद्या के अन्तर्गत माना है।[8]

प्रथम परिच्छेद

मणि बन्धन (डोरा, गण्डा, ताबीज आदि)

रामायण एक सागर है जिसमें विविध प्रकार के तत्व दृष्टि-गोचर होते हैं। चिकित्सा की दृष्टि से मणि, डोरा, गण्डा, ताबीज आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा रामायण-कार का मत है। रामायण में बहुत से ऐसे पात्र हैं जो सामान्य पात्र होने के साथ-साथ युद्ध-चिकित्सक तथा अन्य चिकित्सा कार्य में कुशल भी थे जैसे—

क्षत्राणी होने के नाते माता कौशल्या को भी यह ज्ञान था कि युद्ध में या आकस्मिक आघात के पश्चात् कौन-सी दिव्य-औषधि उपादेय होती है। संभव है यह ज्ञान उन्हें राजा दशरथ के द्वारा या राजकीय अन्य सफल चिकित्सकों के द्वारा ही प्राप्त हुआ हो। अपने पुत्र श्री राम के वनगमन के समय उन्होंने उनके लिये हृदय से मंगल-कामना व्यक्त की। उस विशाल-लोचना माता ने पुत्र के मस्तक पर अक्षत, चंदन और रोली लगायी तथा सिद्ध (सफलता) करने वाली विशल्यकरणी नामक शुभ-ओषधि लेकर अपने पुत्र की रक्षा के उद्देश्य से मन्त्र पढ़ते हुए उसको (दिव्य ओषधि को) श्री राम के हाथ में बाँध दिया और उसके गुणों में उत्कर्ष लाने के लिए मन्त्र का जप भी किया।[9]

रामायण में विविध मणियों का भी वर्णन किया गया है यथा—वैदूर्य-नीलम,[10] वज्र-हीरा,[11] स्फटिक,[12] मुक्ता-मोती,[13] शंख,[14] प्रवाल-मूंगा,[15] इन्द्र-नील[16], महानील,[17] विद्रुम-प्रवाल,[18] कांचन-मणि-दिव्य-मणि,[19] शुक्ति,[20] कौस्तुभ,[21] स्निग्धा,[22] इन्द्रनील,[23] मणिवर-पुखराज[24]।

रामायण में उल्लिखित सभी प्रकार के रत्न विविध धातुओं तथा अन्य स्वतंत्र रूप से शरीर पर धारण करने से विभिन्न प्रकार के रोगों में लाभकारी सिद्ध होते हैं जैसे अंगूठी में रत्न जड़कर पहनना या हार इत्यादि के रूप में रत्न धारण करना। इनकी रोग दूर करने की प्रक्रिया इस प्रकार है कि रत्न से निकलने वाली किरणें जब व्यक्ति के शरीर का स्पर्श करती हैं तो अवश्य ही अपना सकारात्मक प्रभाव डालती हैं और रोग को दूर करती हैं।

द्वितीय परिच्छेद

अभिमार्जन (झाड़ा, फूंका आदि)

श्री राम ने प्रजाजनों के आक्षेपों से तंग आकर उनका समाधान करने की दृष्टि से सीता को वन में भेज दिया। इस अवसर के कुछ दिन पूर्व जब श्री राम ने गर्भिणी सीता से पूछा कि तुम्हारा क्या दोहद (गर्भकाल की इच्छा) है तब उन्होंने बताया कि मैं ऋषियों के पावन आश्रम में जाकर उनके दर्शन करना चाहती हूँ। इसका उत्तर देते हुए श्री राम ने कहा ऐसा ही होगा। फलतः एक दिन सीता को वाल्मीकि के आश्रम

के पास लक्ष्मण छोड़ आये। मधु (राक्षस) पर विजय प्राप्त करने के लिये शत्रुघ्न मुनि वाल्मीकि के आश्रम में पधारे। वाल्मीकि से सत्संग तथा कथा वार्ता करते हुए उन्हें पर्याप्त रात्रि बीत गयी। इसके बाद ज्यों ही शत्रुघ्न ने उस रात शयन के लिये वहाँ की एक पर्ण-शाला में प्रवेश किया, सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। यह संदेश कुछ मुनिकुमारों ने ऋषि वाल्मीकि जी को उनके पास आकर दिया और कहा,—भगवन ! श्री राम-चन्द्र जी की धर्म-पत्नी सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। अतः महातेजस्वी महर्षे ! आप उनकी बाल-ग्रह जनित बाधा की निवृत्ति करें।[25]

उन कुमारों की इस बात को सुनकर महर्षि उस स्थान पर गये। सीता के वे दोनों ही पुत्र बाल-चन्द्रमा के समान सुंदर तथा देव-कुमारों के समान तेजस्वी थे। वाल्मीकि मुनि ने सूतिकागार में प्रवेश किया और प्रसन्न-चित्त होकर उन दोनों कुमारों को देखा तथा उनके लिये भूतों और राक्षसों का विनाश करने वाली रक्षा व्यवस्था की।[26] महर्षि वाल्मीकि ने कुशाओं का मुठ्ठा और उनके लव लेकर उनके द्वारा उन बालकों की भूत-बाधा का निवारण करने के लिये रक्षा-विधि का उपदेश किया।

यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैमंत्र सत्कृतैः।
निमर्जिनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत्।।
याश्चातरो भवेत् ताभ्यां लवेन सुसमाहितः।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिः लवेति च स नामतः।।[27]

मुनि ने कहा—"वृद्धा स्त्रियों को चाहिये कि इन दोनों ही कुमारों में जो पहले जन्मा है उसका मंत्रों द्वारा संस्कार किये हुए इन कुशों से मार्जन करें। ऐसा करने पर उस बालक का नाम कुश होगा और जो छोटा है उसका लव से मार्जन करें, उससे उसका नाम लव होगा। इस प्रकार वे यमज सन्तान क्रमशः कुश तथा लव के नाम धारण करेंगे और मेरे द्वारा निश्चित किये गये इन्हीं नामों से भूमण्डल में विख्यात होंगे।"

यह सुनकर निष्पाप वृद्ध स्त्रियों ने एकाग्रचित्त होकर मुनि के हाथ से रक्षा साधन भूत उन कुशों को ले लिया और उनके द्वारा उन दोनों ही बालकों का मार्जन (शुद्धि करण) एवं संरक्षण किया। जब वृद्धा स्त्रियाँ इस प्रकार रक्षा करने लगीं उस समय आधी रात को श्री राम तथा सीता के नाम गोत्रोच्चारण की ध्वनि शत्रुघ्न के कानों में पड़ी। साथ ही उन्हें सीता के दो सुंदर पुत्र होने की सूचना भी प्राप्त हुई, तब वे सीता की पर्ण-शाला में गये और बोले—माता जी सौभाग्य की बात है।[28]

रामायण के उपरोक्त प्रसंग से निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

1. नवजात बालकों में बाल-ग्रह-जनित बाधाएँ सहज ही उत्पन्न हो जाती हैं।
2. इन बाल-ग्रह जनित बाधाओं का निवारण तत्काल ही आवश्यक है।
3. उपरोक्त बाल-ग्रह रोगों के अलावा भूत-बाधा तथा राक्षसी बाधा भी बालकों को शीघ्र ही आक्रान्त कर सकती है।

4. महर्षि वाल्मीकि ने उपरोक्त तीनों प्रकार की बाधाओं के रोक-थाम का प्रबन्ध उन मंत्र-पूत कुशों तथा लवों के मार्जन द्वारा कर दिया।
5. इस कार्य में उन्होंने इस कार्य में अनुभव रखने वाली वृद्ध स्त्रियों का सहयोग लिया।
6. उपरोक्त रक्षा व्यवस्था के बाद रोग उत्पन्न होने का बालकों में भय नहीं रहता।

उपरोक्त प्रसंग में उल्लिखित बाल-ग्रह बाधा तो आज भी अस्पष्ट है। हाँ भूत-बाधा राक्षस बाधा का अर्थ रोगोत्पादक कीटाणुजनित रोगों में किया जा सकता है।

आयुर्वेद में भूत-विद्या का स्पष्टीकरण करते हुए सुश्रुत ने कहा है–

'अमानुषः निषेधश्च तथापस्मारिकोऽधरः।
उन्मादः प्रतिषेधश्च भूत-विद्या निरुच्यते।।'[29]

अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध, अपस्मार प्रतिषेध, उन्माद प्रतिषेध ये भूत-विद्या हैं। इसी ग्रन्थ के उत्तर तन्त्र में–

ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद्वत्यनया भिषक्। यस्माद्वत्यानया विषया भूत-विद्या त्वमतएव निरुच्यते।[30] इन भूतों की संख्या अनन्त मानी गयी है–असंख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयेस्तुये।[31] परन्तु इनकी जाति निम्न मानी गयी हैं–देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, नाग, इत्यादि। इनमें ग्रहादि (बाल-ग्रह) रोग, बालकों पर अपना मारक अधिकार तुरन्त कर लेता है। देव से नाग तक के आठ ग्रह लिखे हैं, वे देव ग्रह मनुष्यों के स्थूल त्रिदोषादि प्रतिष्ठित शरीर को न पकड़कर 'सूक्ष्म त्रिगुणात्मक' मन को पकड़ते हैं और अनेक प्रकार के मानसिक विकारों को उत्पन्न करते हैं। परन्तु बालकों पर इनका प्रभाव पृथक् विधि से होता है।

भूत विद्या नाम देवासुर गन्धर्व यक्ष रक्ष पितर पिशाच, नाग ग्रहग्रहोपसृष्ट चेतसां शान्ति कर्म बलिहरणादि ग्रहोपशमनार्थम्।[32]

इनका आक्रमण–अशुचिर्भिन्नं मर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम्।

हिंस्यु हिंसा विहारार्थ संस्कारार्थ मथापिवा। तेतु संतापिता आत्मवन्तं न हिंस्युः। विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम्।

व्रणों के द्वारा तथा बिना व्रणों के भी इनका आक्रमण हो सकता है। इनका प्रधान कारण अशुचि है। इनका विसर्पण दिखता नहीं हैं। इस प्रकार आयुर्वेद में इन भूतों के तथा राक्षसों के (जो रक्त पीने वाले तथा प्राण हरने वाले होते हैं) दो प्रकार माने गये हैं। प्रथम बड़े आदमियों के मन पर प्रभाव डालने तथा दूसरे बालकों पर आक्रमण करने वाले। बालकों पर आक्रमण करने वाले इन भूतों तथा बाल-ग्रहों का प्रतिकार भी है। इनकी चिकित्सा भी है। उपरोक्त प्रसंग में मुनि वाल्मीकि ने जो लिखा है यह सब उसी को समर्थन देता है। आयुर्वेद में उनके प्रतिकार के लिये मंत्र-पूत जल से स्नान, धूप आदि की व्यवस्था की है–जैसा कि मुनि ने वृद्धा स्त्रियों को बुलाकर आदेश दिया था। उन्होंने मंत्रों द्वारा संस्कार किये हुए कुशों द्वारा नव-जात-शिशु का मार्जन

कराया। सुश्रुत ने भी एक स्थान पर संक्रमण निषेध की औषधियों का उल्लेख करते हुए सिर पर धारण करने के लिये सहश्रवीर्या (श्वेत दूर्वा, दूर्वा) द्रव्य का प्रयोग किया है।[33]

आयुर्वेद में ऐसा निर्देश है कि अमुक मंत्र पढ़कर बालक के सिर पर हाथ रखते हुए उसे स्नान करावें।

अनेक मंत्र-तंत्र धूप-जल आदि के उल्लेख आयुर्वेद में प्राप्त हो सकते हैं जिनके द्वारा बालकों को भूत-व्यवस्था, भूत-बाधा ग्रह-बाधा से मुक्त कराया जा सकता है। रामायण में भी इसी के आधार पर मुनि वाल्मीकि ने वर्णन किया है जिसके द्वारा सीता के नवजात शिशु लव तथा कुश की रोग-निरोधक चिकित्सा की गयी है।

तृतीय परिच्छेद
कृत्या (प्रयोग एवं अपहरण आदि)

कृत्या से तात्पर्य तन्त्र-शास्त्र के विशद् रूप से ही लिया जा सकता है जिसे हम सामान्य भाषा में जादू, टोने टोटके आदि कह सकते हैं।

रामायण में मंत्र-तंत्र का तो कई स्थलों पर उल्लेख किया गया है तथा राक्षसी माया का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इसका टोने, टोटके के रूप में कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया।

चतुर्थ परिच्छेद
मंत्र

'मंत्र' शब्द का अर्थ असीमित है। वैदिक ऋचाओं के प्रत्येक छन्द भी मंत्र कहे जाते हैं तथा देवी-देवताओं की स्तुतियाँ व यज्ञ हवन के निमित्त निश्चित किये गये शब्द-समूहों को भी मंत्र कहा जाता है। तन्त्र-शास्त्र में मंत्र का भिन्न अर्थ है। तन्त्र-शास्त्र के अनुसार मंत्र उसे कहते हैं—'जो शब्द पद या पद समूह जिस-जिस देवता या शक्ति को प्रकट करता है वह उस देवता या शक्ति को मंत्र कहा जाता है। दूसरे रूप में हम मंत्र की परिभाषा इस प्रकार भी कह सकते हैं कि निश्चित वर्ण-समूह द्वारा उच्चारित ध्वनि को मंत्र कहते हैं। जिसे हम उच्चारण करते हैं अथवा उन वर्ण समूहों से निर्मित वाक्य जो कि अपना प्रभाव दिखाते हैं उन्हें मंत्र कहते हैं।'

कतिपय विद्वजनों द्वारा मंत्र की परिभाषाएँ निम्नलिखित प्रकार भी की गयी हैं—

1. धर्म, कर्म, और मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रेरणा देने वाली शक्ति को मंत्र कहते हैं।
2. देवता के सूक्ष्म शरीर को या इष्ट देव की कृपा को मंत्र कहते हैं।
3. दिव्य शक्तियों की कृपा को प्राप्त करने में उपयोगी शब्द शक्ति को मंत्र कहते हैं।
4. विश्व में व्याप्त गुप्त शक्ति को जागृत करके अपने अनुकूल बनाने वाली विद्या को मंत्र कहते हैं।
5. गुप्त शक्ति को विकसित करने वाली विद्या को मंत्र कहते हैं।

इस प्रकार से मंत्र के अनेक अर्थ हैं।

मंत्र-तन्त्र को यदि एक दृष्टि से देखा जाये तो इस प्रकार कहा जा सकता है–

1. जो शब्द या पद-समूह जिस देवता या शक्ति को प्रकट करता है वह उस देवता या शक्ति का मन्त्र कहा जाता है।
2. निश्चित वर्ण-समूह द्वारा उच्चारित ध्वनि को मन्त्र कहते हैं।
3. उन वर्ण-समूहों से निर्मित वाक्य जो कि अपना विशेष प्रभाव दिखाते हैं उन्हें मंत्र कहते हैं।
4. मन्त्रों में स्थित भिन्न-भिन्न देवताओं के भिन्न-भिन्न संकेत होते हैं।
5. एक इष्ट के लिये एक ही मन्त्र अपरिवर्तनीय होता है जबकि स्तोत्र अनेकों व परिवर्तित हो सकते हैं।
6. मन्त्र सिद्धि हेतु गुरु का होना नितान्त आवश्यक है।
7. गुरु कृपा से प्राप्त मन्त्र को गुप्त रखना चाहिये।
8. गुरु की महानता, श्रेष्ठता, सर्वोपरि व निर्विवाद है।
9. साधक को अपने मन तथा इन्द्रियों पर सदा ही नियन्त्रण बनाये रखना चाहिये तभी साधना में सफलता मिलती है अन्यथा नहीं।
10. तन्त्र-शास्त्र, मन्त्र-शास्त्र का ही उपजीव्य है।
11. तन्त्र का मूलाधार मन्त्र है।
12. मन्त्र और यन्त्र के द्वारा कार्य करने की विधि को तन्त्र कहते हैं।
13. तन्त्र-विज्ञान प्रायः गुप्त रखने वाला विज्ञान बनकर रह गया है।
14. तन्त्र-शास्त्र में मन्त्र सिद्धि के लिये तीन बातें आवश्यक होनी हैं– 1. काल 2. द्रव्य 3. शब्द।
15. यन्त्र-विद्या भी मन्त्र साधना का एक अंग है।
16. तन्त्र आराधना का मार्ग है तो यन्त्र उनका प्रभावशाली मार्ग है।
17. मन्त्र साधक व ईश्वर को मिलाने में माध्यम का कार्य करता है।
18. मंत्रों की शक्ति का स्फुरण साधक की अन्तश्चेतना के माध्यम से होता है।
19. दीक्षा एक शक्ति व तेज का समूह है।
20. गुरुदीक्षा रूपी अमूल्य व महान शक्तिदान की तुलना में कोई अन्य दान नहीं होता।
21. कुछ विद्वानों के अनुसार (साधकों) जप काल में इन्द्रियों को संयमित रखने व साथ-साथ मन को भी नियंत्रित रखना अति आवश्यक है।
22. साधक को मंत्र पर पूर्ण श्रद्धा, भक्ति व विश्वास का होना आवश्यक है अन्यथा मंत्र-सिद्धि कठिन ही नहीं अपितु दुर्लभ है।
23. साधन काल में साधक को आवश्यक दिनचर्या का पालनीय नियम पालन करना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

वाल्मीकि रामायण में कई स्थलों पर विभिन्न मंत्रों का नामोल्लेख आता है। किन्तु यहाँ मंत्रों से तात्पर्य चिकित्सा हेतु है अर्थात् मंत्र-तंत्र द्वारा किस प्रकार चिकित्सा कार्य सम्भव है।

मुनि विश्वामित्र ने श्री राम को बला तथा अतिबला नाम से प्रसिद्ध मंत्र प्रदान किये, ये मंत्र श्री राम को श्रम, ज्वर, (रोग या चिन्ता) तथा रूप विकृति आदि से बचाने वाला बताया गया है।[34] मुनि ने कहा 'बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध इस मंत्र समुदाय को ग्रहण करो इसके प्रभाव से तुम्हें कभी श्रम का अनुभव नहीं होगा। ज्वर नहीं होगा। तुम्हारे रूप में किसी प्रकार का विकार या उलट-फेर नहीं होने पायेगा।' इसके अतिरिक्त मुनि ने इन दोनों मत्रों के गुणों का वर्णन करते हुए श्री राम से इस प्रकार कहा–

सोते समय अथवा असावधानी की अवस्था में भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस भूतल पर बाहुबल में तुम्हारी समानता करने वाला कोई न होगा।[35] तात ! रघुकुल नन्दन राम बला और अतिबला का अभ्यास करने से तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं रह जायेगा।[36] अनघ! सौभाग्य, चातुर्य, ज्ञान और बुद्धि सम्बन्धी निश्चय में तथा किसी के प्रश्न का उत्तर देने में भी कोई तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा।[37]

इन दोनों विद्याओं के प्राप्त हो जाने पर कोई तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा, क्योंकि यह बला और अतिबला नामक विद्याएँ सब प्रकार के ज्ञान की जननी हैं।[38]

नरश्रेष्ठ श्री राम ! तात रघुनन्दन बला और अतिबला का अभ्यास कर लेने पर तुम्हें भूख-प्यास का भी कष्ट नहीं होगा। रघुकुल को आनन्दित करने वाले राम तुम सम्पूर्ण जगत की रक्षा के लिये इन दोनों विद्याओं को ग्रहण करो।[39]

इन दोनों विद्याओं का अध्ययन कर लेने पर भूतल पर तुम्हारे यश का विस्तार होगा। यह दोनों विद्याएँ ब्रह्मा जी की तेजस्विनी पुत्रियाँ हैं।[40]

काकुत्स्थनन्दन ! मैंने इन दोनों को तुम्हें देने का विचार किया है। राजकुमार! तुम्हीं इनके योग्य पात्र हो। यद्यपि तुममें इस विद्या को प्राप्त करने के बहुत से गुण हैं अथवा सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है तथापि मैंने तपोबल से इसका अर्जन किया है अतः मेरी तपस्या से परिपूर्ण होकर यह तुम्हारे लिये बहुरूपणी होगी अनेक प्रकार के फल प्रदान करेगी।[41]

तब श्री राम ने पवित्र होकर यह विद्याएँ ग्रहण कीं।[42] विद्या से सम्पन्न होकर भयंकर पराक्रमी श्री राम सहस्रों किरणों से युक्त शरत्कालीन भगवान सूर्य के समान शोभा पाने लगे।[43]

बला और अतिबला नामक मंत्रों के अतिरिक्त गायत्री मंत्र का भी रामायण में उल्लेख आता है जो सभी प्रकार के सुखदायक फलों का प्रदाता है।[44] महर्षि का परम उदार वचन सुनकर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरों ने स्नान करके देवताओं का तर्पण किया

और फिर वे परम उत्तम जपनीय मंत्र 'गायत्री' का जप करने लगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रामायण में मंत्र-तंत्र द्वारा चिकित्सा का उल्लेख किया गया है।

आशीर्वाद

वाल्मीकि रामायण में आशीर्वाद के बल से रोगों को दूर करने का उल्लेख प्राप्त होता है जो वास्तव में अपनें दोहरे स्वरूप को प्रदर्शित करता है। प्रथम—आशीर्वाद के बल से रोग दूर होना और द्वितीय यौन-परिवर्तन (उभयलिंगी व्यक्तित्व) एक पुरुष धीरे-धीरे परिवर्तन करता हुआ स्त्री बन जाता है तथा दूसरी स्त्री दैहिक परिवर्तन को पार करती हुई पुरुष बन जाती है, यह विषय जिस प्रकार देखने में रोचक हैं उसी प्रकार पढ़ने में भी उतना ही रोचक है।

रामायण में भी उसी प्रकार की रोचक कथा उपस्थित की गयी है जो पठनीय है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी इस कथा का महत्व कम नहीं है। श्री राम ने लक्ष्मण से कहा, 'नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ! पूर्व काल में प्रजापति कर्दम के पुत्र श्री मान् इल्वाहीक देश के राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा थे। वे महा-यशस्वी राजा सारी पृथ्वी को अपने व्यवहार से वश में करते हुये प्रजा का पुत्र की तरह पालन करते थे। परम-उदार देवता, महाधर्म धनी दैत्य, नाग, राक्षस, गन्धर्व और महामनस्वी यक्ष ये सब भयभीत होकर सदा राजा इल की स्तुति-पूजा करते रहते थे तथा उन महात्मा नरेश के रुष्ट हो जाने पर तीनों लोकों के प्राणी भय से थर्रा उठते थे, ऐसे प्रभावशाली होने पर भी वाल्हीक देश के स्वामी महा-यशस्वी परम उदार राजा इल धर्म और पराक्रम में दृढ़ता-पूर्वक स्थित रहते थे और उनकी बुद्धि भी स्थित रहती थी। एक समय सेवक, सेना और सवारियों सहित उन महाबाहु नरेश ने मनोरम चैत्रमास में एक सुंदर वन में शिकार खेलना आरम्भ किया। राजा ने उस वन में सैकड़ों हजारों हिंसक जन्तुओं का वध किया किन्तु इतने जन्तुओं का वध करने पर भी उन महा मनस्वी नरेश को तृप्ति नहीं हुई, फिर उन महामना इल के हाथ से नाना प्रकार के दस हजार हिंसक जन्तु मारे गये। पश्चात् ये उस प्रदेश में गये जहाँ स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ था। उस स्थान पर देवताओं के स्वामी दुर्जय देवता भगवान शिव अपने समस्त सेवकों के साथ रहकर गिरिराज कुमारी उमा का मनोरंजन करते थे। जिनकी ध्वजा पर वृषभ चिन्ह सुशोभित होता था, वे भगवान उमा-वल्लभ अपने आप को भी स्त्री रूप में प्रकट करके देवी पार्वती का प्रिय करने की इच्छा से वहाँ के पर्वतीय झरने के पास उनके साथ विहार करते थे। उस वन के विभिन्न भागों में जहाँ पुल्लिंग नाम धारी जन्तु अथवा वृक्ष थे वे सब के सब स्त्रीलिंग में परिवर्तित हो गये थे। वहाँ जो कुछ भी चराचर प्राणियों का समूह था वे सब स्त्री नामधारी हो गया। उसी समय कर्दम के पुत्र राजा इल सहस्रों हिंसक पशुओं का वध करते हुए उस देश में आ गये। वहाँ आकर उन्होंने देखा—सर्प, पशु और पक्षियों सहित उस वन का सारा प्राणी समुदाय स्त्री-रूप में हो गया है। सेवकों

सहित अपने आपको भी उन्होंने स्त्री रूप में परिणित हुए देखा। अपने आपको उस अवस्था में देखकर राजा को बड़ा दुःख हुआ यह सारा कार्य उमा-वल्लभ महादेव जी की इच्छा से हुआ यह जानकर वह भय भीत हो उठे। तदन्तर सेवक, सेना और सवारियों सहित राजा इल जटा-जूट धारी महात्मा भगवान नील-कण्ठ की शरण में गये। तब पार्वती देवी के साथ विराजमान वरदायकदेवता महेश्वर हंसकर प्रजापति इल से स्वयं बोले–'कर्दम कुमार महाबली राजर्षि उठो-उठो। उत्तम व्रत का पालन करने वाले सौम्य 'नरेश! पुरुषत्व छोड़कर जो चाहो वह माँग लो।' भगवान शंकर के इस प्रकार पुरुषत्व देने से इंकार कर देने पर स्त्री रूप हुए राजा इल शोक से व्याकुल हो गये। उन्होंने उन सुर श्रेष्ठ महादेव जी से दूसरा वर ग्रहण नहीं किया। तदन्तर महान् शोक से पीड़ित राजा ने गिरि कुमारी उमा देवी के चरणों में सम्पूर्ण हृदय से प्रणाम करके यह प्रार्थना कि सम्पूर्ण वरों की अधीश्वरी देवी आप मानिनी हैं। समस्त लोकों को वर देने वाली हैं। देवि! आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता। अतः आप अपनी सौम्य दृष्टि से मुझ पर अनुग्रह कीजिये। राजर्षि इल के हृदय के अभिप्राय को जानकर रुद्रप्रिया देवी पार्वती ने महादेव जी के समीप यह शुभ बात कही- 'राजन्! तुम पुरुषत्व प्राप्ति रूप जो वर चाहते हो, उसके आधे भाग के दाता तो महादेव जी हैं और आधा वर तुम्हें मैं दे सकती हूँ इसलिये तुम मेरा दिया हुआ आधा वर स्वीकार करो। तुम जितने-जितने काल तक स्त्री और पुरुष रहना चाहो, उसे मेरे सामने कहो।' देवी पार्वती का यह परम् उत्तम वर और अत्यन्त अद्भुत वर सुनकर राजा इल के मन में बड़ा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले, 'देवी ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं एक मास तक भूतल पर अनुपम रूपवती स्त्री के रूप में रहकर, फिर एक मास तक पुरुष होकर रहूँ।' राजा के मनोभावों को जानकर सुंदर मुख वाली पार्वती देवी ने यह शुभ वचन कहा–ऐसा ही होगा। राजन् ! जब तुम पुरुष रूप में रहोगे उस समय तुम्हें अपनी स्त्री जीवन की याद नहीं रहेगी और जब तुम स्त्री रूप में रहोगे तो उस समय तुम्हें एक मास तक अपने पुरुष अभाव का स्मरण नहीं होगा। इस प्रकार कर्दम कुमार राजा इल एक मास तक पुरुष रहकर फिर एक मास त्रिलोक सुंदरी नारी इला के रूप में रहने लगे।[45]

.............सोमपुत्र बुध के यहाँ एक वर्ष तक निवास करने के पश्चात् तथा सोमपुत्र बुध तथा इला द्वारा पुरुरवा की उत्पत्ति होने के पश्चात् इला ने क्या किया ? ठीक-ठीक बताने की कृपा करें, यह प्रश्न भरत और लक्ष्मण ने श्री राम से किया। श्री राम ने इस पर आगे कहना प्रारम्भ किया, शूरवीर इल जब एक मास के लिये पुरुष भाव को प्राप्त हुए तब परम् बुद्धिमान, महायशस्वी बुध ने परम् उदार महात्मा सम्वर्त को बुलाया। भृगुपुत्र, च्यवन, अरिष्टनेमि, प्रमोदन और दुर्वासा को भी आमंत्रित किया। इन सबसे बुध ने कहा, यह महाबाहु राजा इल प्रजापति कर्दम के पुत्र हैं, इनकी जैसी स्थिति है, इसे आप सब लोग जानते हैं। अतः इस विषय में ऐसा कोई

उपाय कीजिये, जिससे इनका कल्याण हो, वे इस विषय में इस प्रकार की बात-चीत कर रहे थे कि महात्मा द्विजों के साथ महातेजस्वी प्रजापति कर्दम भी उस आश्रम पर आ पहुँचे, उनके साथ ही साथ पुलस्त्य, कृतु, वषटकार तथा महा तेजस्वी ओऽमकार भी इस आश्रम पर आ पहुँचे। परस्पर मिलने पर वे सभी महर्षि प्रसन्नचित्त हो वाल्हीक देश के स्वामी राजा इल का हित चाहते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार का परामर्श देने लगे। कर्दम ने पुत्र के लिये अत्यन्त हितकर बात कही। ब्राह्मणो ! आप लोग मेरी बात सुनो जो इस राजा के लिये कल्याण-कारिणी होगी। मैं भगवान शंकर के अतिरिक्त किसी अन्य को ऐसा नहीं देखता जो इस रोग की दवा कर सके तथा अश्वमेध यज्ञ से बढ़ कर कोई ऐसा यज्ञ नहीं है जो महात्मा महादेव को प्रिय हो। अतः हम सब लोग इल के हित के लिये उस दुष्कर यज्ञ का अनुष्ठान करें, कर्दम के ऐसा कहने पर उन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने भगवान रूद्र की आराधना के लिये उस यज्ञ का अनुष्ठान ही अच्छा समझा। साम्वर्त के शिष्य तथा शत्रु नगरी पर विजय पाने वाले सुप्रसिद्ध राजर्षि मरुत ने इस यज्ञ का आयोजन किया। फिर तो बुध के आश्रम के निकट वह महान यज्ञ सम्पन्न हुआ। तथा इससे महा-यशस्वी रुद्र देव को बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। यज्ञ समाप्त होने पर परमानन्द से परिपूर्ण चित हुए भगवान उमापति ने इल के पास ही उन सब ब्राह्मणों से कहा, द्विज श्रेष्ठ गण ! मैं तुम्हारी भक्ति तथा इस अश्वमेघ यज्ञ के अनुष्ठान से बहुत प्रसन्न हूँ। बताओ मैं वाल्हीक नरेश इल का कौन सा शुभ एवं प्रिय कार्य करूँ। देवेश शिव के ऐसा कहने पर वे सब ब्राह्मण एकाग्रचित होकर उन देवाधिपति को इस तरह प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे, इससे नारी इला को सदा के लिये पुरुषत्व प्रदान कर दिया, और ऐसा करके ही वे वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर जब महादेव दर्शन देकर अदृश्य हो गये तब सभी दीर्घ दर्शी ब्राह्मण भी जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। राजा इल ने वाल्हीक देश को दोड़कर मध्य प्रदेश में एक उतम एवं यशस्वी नगर बसाया जिसका नाम था प्रतिष्ठानपुर तथा शशबिन्दु ने वाल्हीक देश का राज्य ग्रहण किया।[46]

उपरोक्त प्रसंग को केवल धर्म तथा चमत्कार तथा केवल कहानी के रूप में स्वीकार न कर हमें वैज्ञानिक दृष्टि से देखना चाहिये। किसी स्थान विशेष में जलवायु के प्रभाव से या किसी खाद्य-औषधि के प्रभाव से मनुष्य (पुरुष) स्त्रीत्व को प्राप्त कर लेता है। पूर्ण नारीत्व प्राप्त न होकर वह पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व के बीच में झूलता रहता है, परन्तु अश्वमेध यज्ञ के प्रभाव से या आद्य-चिकित्सक महादेव के प्रताप से किसी विशेष प्रकार की खाद्य सामग्री द्वारा या औषधि चिकित्सा के चमत्कार से उसे पुनः स्थायी रूप से पुरुषत्व की प्राप्ति हो जाती है।

वास्तव में आशीर्वाद के बल से रोग दूर करना अत्यन्त ही कठिन एवं दुष्कर कार्य है जहाँ तक यौन-परिवर्तन का प्रश्न है, वह भी बड़ा ही आश्चर्य जनक, कौतूहल-प्रद

तथा निराशाजनक भी है। यह भी स्पष्ट है कि इसकी चिकित्सा भी उतनी ही कठिन तथा कृच्छ साध्य है। सुयशस्वी चिकित्सक ही इसकी चिकित्सा करने में समर्थ हो सकते हैं।

पुत्रेष्टि-यज्ञ

मनुष्य ईश्वर का एक बुद्धि प्रधान सृजन है। सृष्टि में आकर मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा जीवन यात्रा को सुगमता तथा साधन युक्त बनाता है अपने जीवन काल में उसकी तीन एषणाएँ मुख्य रहती हैं। इन तीनों एषणाओं को प्राणैषणा, धनैषणा तथा परलोकैषणा के नाम से पुकारा जाता है। पूर्व की दो एषणायें एहलौकिक होती हैं और अन्तिम तीसरी एषणा परलोक यात्रा से सम्बन्धित रहती है। इन तीनों ही एषणाओं के लिये उसे जीवन भर प्रयत्न करना पड़ता है। पूर्व दोनों ही एषणाएँ जीवन में ही फल देती हैं, परन्तु तीसरी एषणा (परलोक) जीवन की इस अवधि के बाद फल-प्रद होती है। इसके लिये मनुष्य निरन्तर प्रयत्न करता रहता है।

उपरोक्त इच्छाओं के बाद परन्तु इससे कम महत्वपूर्ण नहीं एक इच्छा और उसमें रहती है और वह है पुत्रैषणा। यद्यपि पुत्रैषणा को उपरोक्त तीनों एषणाओं में नहीं स्वीकार किया गया है फिर भी किसी भी प्रकार इसकी प्रधानता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हर साधन सम्पन्न तथा ऐश्वर्यशाली पिता यह चाहता है कि उसका उत्तराधिकारी पुत्र उसके इस साधन का लाभ उठावे तथा उसके इस विशाल ऐश्वर्य का भोग करे। यही इच्छा ऐश्वर्यशाली दशरथ में पैदा हुई और उन्होंने यह निश्चय किया कि उन्हें पुत्र-प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह निश्चय कर राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ के पास गये और उनसे सलाह माँगी। राजा ने गुरु की आज्ञा का पालन कर उन्हीं के सहयोग से ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में पुत्रेष्टि यज्ञ करने का निश्चय किया।

महात्मा ऋष्यश्रृंग बड़े मेधावी और वेदों के ज्ञाता थे। उन्होंने थोड़ी देर तक ध्यान लगाकर अपने भावी कर्तव्य का निश्चय किया। फिर ध्यान से विरत हो वह राजा से इस प्रकार बोले--[47]

'महाराज ! मैं आपको पुत्र की प्राप्ति कराने के लिये अथर्ववेद के मंत्रों से 'पुत्रेष्टि' नामक यज्ञ करूँगा। वेदोक्त विधि के अनुसार अनुष्ठान करने पर वह यज्ञ अवश्य सफल होगा।'[48] यह कहकर उन तेजस्वी ऋषि ने पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ प्रारम्भ किया और श्रौत विधि के अनुसार अग्नि में आहुति डाली।[549] तब देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षिगण विधि के अनुसार अपना-अपना भाग ग्रहण करने के लिये उस यज्ञ में एकत्र हुये।[50] समस्त जीवात्माओं को वश में रखने वाले भगवान विष्णु ने देवताओं की यह बात सुनकर अवतार काल में राजा दशरथ को ही पिता बनाने की इच्छा की।[51] उसी समय वे शत्रुसूदन महातेजस्वी नरेश पुत्र-हीन होने के कारण पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से पुत्रेष्टि-यज्ञ कर रहे थे।[52] उन्हें पिता बनाने का निश्चय करके भगवान विष्णु पिता-मह की अनुमति ले देवताओं और

महर्षियों से पूजित हो वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये।[53] तत्पश्चात् पुत्रेष्टि यज्ञ करते हुए राजा दशरथ के यज्ञ में अग्नि कुंड से एक विशाल-काय पुरुष प्रकट हुआ। उसके शरीर में इतना प्रकाश था जिसकी कहीं तुलना नहीं थी। उसका बल-पराक्रम महान था।[54] उसके हाथ में तपाये हुए जम्बूनद नामक स्वर्ण की बनी हुई परात थी जो चाँदी के ढक्कन से ढकी हुई थी। वह (परात) बहुत बड़ी थी और दिव्य खीर से भरी हुई थी। उसे उस पुरुष ने अपनी दोनों भुजाओं पर इस तरह उठा रखा था, मानो कोई रसिक अपनी प्रियतमा पत्नी को अंग में लिये हुए हो। वह अद्भुत परात मायामयी सी जान पड़ती थी।[55] उसने राजा दशरथ की ओर देखकर कहा- 'नरेश्वर ! मुझे प्रजापति लोक का पुरुष जानो। मैं प्रजापति की आज्ञा से ही यहाँ आया हूँ।'[56]

तब राजा दशरथ ने हाथ जोड़कर उससे कहा–'भगवन् ! आपका स्वागत है। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?[57] फिर उस प्रजापत्य पुरुष ने पुनः यह बात कही- 'राजन तुम देवताओं की आराधना करते हो, इसलिये आज तुम्हें यह वस्तु प्राप्त हुई है।[58] नृप श्रेष्ठ! यह देवताओं की बनाई हुई खीर हैं, जो सन्तान की प्राप्ति कराने वाली है। तुम इसे ग्रहण करो। यह धन और आरोग्य की भी वृद्धि करने वाली है।[59] राजन्! यह खीर अपनी योग्य पत्नियों को दो और कहो- 'तुम लोग इसे खाओ' ऐसा करने पर उनके गर्भ से आपको अनेक पुत्रों की प्राप्ति होगी, जिनके लिये तुम यह यज्ञ कर रहे हो।[60] राजा ने प्रसन्नता पूर्वक 'बहुत अच्छा' कहकर उस दिव्य पुरुष की दी हुई देवान्न से परिपूर्ण सोने की थाली को लेकर उसे अपने मस्तक पर धारण किया, फिर उस अद्भुत एव प्रिय-दर्शन पुरुष को प्रणाम करके बड़े आनन्द के साथ उसकी परिक्रमा की।[61] इस प्रकार देवताओं की बनाई उस खीर को पाकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए, मानो निर्धन को धन मिल गया हो। इसके बाद वह परम् तेजस्वी अद्भुत पुरुष अपना वह काम पूरा करके वहीं अन्तर्धान हो गया।[62] उस समय राजा के अन्तःपुर में स्त्रियाँ हर्षोल्लास से बढ़ी हुई कान्तिमयी किरणों से प्रकाशित हो ठीक उसी तरह शोभा पाने लगीं, जसे शरत्काल के नयनाभिराम चन्द्रमा की रम्य रश्मियों से उद्भासित होने वाला आकाश सुशोभित होता है। राजा दशरथ यह खीर लेकर अन्तःपुर में गये और कौशल्या से बोले, ''देवि! यह अपने लिये पुत्र की प्राप्ति कराने वाली खीर ग्रहण करो''।[63] ऐसा कहकर नरेश ने उस समय खीर का आधा-भाग महारानी कौशल्या को दे दिया। फिर बचे हुए आधे का-आधा रानी सुमित्रा को अर्पण किया।[64] उन दोनों को देने के बाद जितनी खीर बच रही उसका आधा भाग तो उन्होंने पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से कैकयी को दे दिया। तत्पश्चात् उस खीर का जो अवशिष्ट आधा भाग था, उस अमृतोपम भाग को महाबुद्धिमान नरेश ने कुछ सोच-विचार कर पुनः सुमित्रा को ही अर्पित कर दिया। इस प्रकार राजा ने अपनी सभी रानियों को अलग-अलग खीर बाँट दी।[65]

महाराजा की उन सभी साध्वी रानियों ने उनके हाथ से वह खीर पाकर अपना

सम्मान समझा। उनके चित्त में अत्यन्त हर्षोल्लास छा गया।[66] उस उत्तम खीर को खाकर महाराज की तीनों साध्वी महारानियो ने शीघ्र पृथक-पृथक गर्भ धारण किया। उनके वे गर्भ अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी थे।[67] तदनन्तर अपनी उन रानियों को गर्भवती देख राजा दशरथ को बड़ी प्रसन्न्ता हुई। उन्होंने समझा, मेरा मनोरथ सफल हो गया............।[58]

महामना राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त होने पर देवता लोग अपना-अपना भाग ले जैसे आये थे, वैसे लौट गये।[69] यज्ञ समाप्ति के पश्चात् जब छः ऋतुएँ बीत गयीं, तब 12वें मास में चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमीं तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में कौशल्या देवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त, सर्वलोक वन्दित जगदीश्वर श्री राम को जन्म दिया। उस समय (सूर्य, मंगल, शनि, गुरु और शुक्र) ये पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानों में विद्यमान थे। तथा लग्न में चन्द्रमा के साथ बृहस्पति विराजमान थे।[70]वे विष्णु स्वरूप हविष्य या खीर के आधे भाग से प्रकट हुए थे। ये समस्त सद्गुणों से सम्पन्न थे।[71] इसके बाद रानी सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया। ये दोनों भगवान के अर्धभाग से सम्पन्न थे। इस प्रकार पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन है।

मंत्र द्वारा सर्प पकड़ना

मंत्रों द्वारा सर्प पकड़ने का विशद् वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता है, किन्तु रामायण में गरुड़ को सर्प विष-चिकित्सा का चिकित्सक मानते हुए विशद् वर्णन प्राप्त होता है।

युद्ध के समय अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता तथा लक्ष्य भेद में कुशल देवताओं को बार-बार वाणों से आच्छादित करते हुये दानवों ने बहुत घायल कर दिया था।[72] उस युद्ध में जो देवता अस्त्र शस्त्र से पीड़ित, अचेत और प्राण-शून्य हो जाते थे, उन सबकी रक्षा के लिये बृहस्पति जी मंत्र-युक्त विद्याओं तथा दिव्य-औषधियों द्वारा उनकी चिकित्सा करते थे।[73] औषधियों को लाने के लिये वहाँ वार्ता चल ही रही थी कि बड़े जोर से वायु प्रकट हुई, मेघों की घटा घिर आयी और बिजलियाँ चमकने लगीं व वायु सागर के जल में हलचल मचा कर पर्वतों को कम्पित सी करने लगी।[74] गरुड़ के पंख से उठी हुई प्रचण्ड वायु ने सम्पूर्ण द्वीप के बड़े-बड़े वृक्षों की डालियाँ तोड़ डाली और उन्हें लवण समुद्र के जल में गिरा दिया।[75] लंकावासी महाक्राय सर्प भय से थर्रा उठे। सम्पूर्ण जल जन्तु शीघ्रता-पूर्वक समुद्र के जल में घुस गये।[76] तदनन्तर दो ही घड़ी में समस्त वानरों ने प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी विनतानन्दन गरुण को वहाँ उपस्थित देखा।[77] उन्हें आया देख जिन महाबली नागों ने वाण के रूप में आकर उन दोनों महापुरुषों को बांध रखा था, वे सब के सब भाग खड़े हुए।[78] तत्पश्चात् गरुण ने उन दोनों रघुवंशी बंधुओं को स्पर्श करके अभिनन्दन किया और अपने हाथों से उनके चन्द्रमा के समान कांतिमान मुखों को पोंछा।[79]

गरुण जी का स्पर्श पाते ही श्री राम और लक्ष्मण के सारे घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दर कान्ति से युक्त एवं स्निग्ध हो गये।[80] उनमें तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, दृष्टि-शक्ति, बुद्धि और स्मरण-शक्ति आदि महान गुण पहले से भी दुगने हो गये।[81]

श्री राम से गरुण इस प्रकार बोले, "काकुत्स्थ ! मैं आपका प्रिय मित्र गरुण हूँ। बाहर विचरने वाला आपका प्राण हूँ.......।[82] क्रूरकर्मा 'इन्द्रजीत' ने माया के बल से जिन नाग रूपी वाणों का बन्धन तैयार किया था, वे नाग ये कद्रू के पुत्र ही थे। इनके दाँत बड़े तीव्र होते हैं। इन नागों का विष बड़ा भयंकर होता है। ये राक्षस की माया के प्रभाव से बाण बनकर आपके शरीर में लिपट गये थे।[83] मैं देवताओं के मुख से आप लोगों के नाग पाश में बंधने का समाचार सुनकर बड़ी व्यग्रता के साथ यहाँ आया हूँ। हम दोनों में जो स्नेह है, उससे प्रेरित हो मित्र-धर्म का पालन करता हुआ सहसा आ पहुँचा हूँ[84] आकर मैंने इस महाभयंकर वाण-बन्धन से आप दोनों को छुड़ा दिया।[85]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंग के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में मंत्र द्वारा सर्प से मुक्ति का उपाय बताया गया है। यद्यपि इसमें सर्प पकड़ने का उल्लेख नहीं किया गया तथापि सर्प के बंधन से छूटने का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता हैं।

शिव की कृपा से घाव रहित होकर मुर्दे जी उठे,
अमृत छिड़कने से अंग क्षत रहित होना आदि

रामायण में विविध प्रकार के चिकित्सा स्वरूपों का वर्णन किया गया है। इन सबसे हटकर विशेष बात रामायण में उल्लिखित है और यह है—देवताओं की कृपा एवं आशीर्वाद से मुर्दे जीवित होना तथा अंग क्षत-रहित होना। जिसका वर्णन रामायण में इस प्रकार प्राप्त होता है।

युद्ध समाप्त हो जाने पर सभी देवताओं सहित राजा दशरथ भी वहाँ पधारे तथा राम, लक्ष्मण और सीता को आशीर्वाद दे, वहाँ से विदा हो गये।[86]

महाराज दशरथ के लौट जाने पर पाक-शासन इन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़े खड़े हुए श्री रघुनाथ जी से कहा, "नरश्रेष्ठ श्री राम! तुम्हें जो हमारा दर्शन हुआ, वह व्यर्थ नहीं जाना चाहिये और हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। इसलिये तुम्हारे मन में जो इच्छा हो वह मुझसे कहो।[87] महात्मा इन्द्र ने जब प्रसन्न होकर ऐसी बात कही, तब श्री रघुनाथ जी के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने हर्ष से भरकर कहा—[88]

'वक्ताओं में श्रेष्ठ देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा। आप मेरी उस प्रार्थना को सफल करें।[89] मेरे लिये युद्ध में पराक्रम करने वाले जो वानर यमलोक को चले गये हैं वे सब नया जीवन पाकर उठ खड़े हों।'[90]

'मानद ! जो वानर मेरे लिये अपनी स्त्री-पुरुषों से बिछुड़ गये हैं, उन सबको मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ।[91] पुरन्दर ! वे पराक्रमी और शूरवीर थे तथा मृत्यु को कुछ भी नहीं गिनते थे उन्होंने मेरे लिये बड़ा प्रयत्न किया है और अंत में काल के गाल में चले गये हैं, आप उन सबको जीवित कर दें।[92] जो वानर सदा मेरा प्रिय करने में लगे रहते थे और मृत्यु को कुछ नहीं समझते थे, वे सब आपकी कृपा से फिर मुझसे मिलें यह वर मैं चाहता हूँ।[93] दूसरों को मान देने वाले देवराज ! मैं उन वानर, लंगूर, और भालुओं को निरोग, व्रण-हीन एवं बल-पौरुष से सम्पन्न देखना चाहता हूँ।[94] 'ये वानर जिस स्थान पर रहें, वहाँ असमय में भी फल-मूल और पुष्पों की भरमार रहे तथा निर्मल जल वाली नदियाँ बहती रहें।[95] महात्मा श्री रघुनाथ जी की बात सुनकर महेन्द्र ने प्रसन्नता पूर्वक यों उत्तर दिया-[96] तात ! रघुवंश विभूषण ! आपने जो वर मांगा है, यह बहुत बड़ा है, तथापि मैंने कभी दो तरह की बात नहीं की है, इसलिये यह वर अवश्य सफल होगा।[97] जो युद्ध में मारे गये है। और जिनके मस्तक तथा भुजाएँ काट डाली हैं, वे सब वानर, भालू और लंगूर जी उठे।[98] नींद टूटने पर सोकर उठे हुए मनुष्यों की भाँति वे सभी वानर निरोग, व्रण-हीन तथा बल-पौरुष से सम्पन्न होकर उठ बैठेंगे।[99] सभी परमानन्द से युक्त हो अपने सुहृदों, बान्धवों, जाति-भाइयों तथा स्वजनों से मिलेंगे।[100] महाधनुर्धर वीर! ये वानर जहाँ रहेंगे, वहाँ असमय में भी वृक्ष-फल-फूलों से लद जायेंगे और नदियाँ जल से भरी रहेंगी।[101] इन्द्र के इस प्रकार कहने पर वे सब श्रेष्ठ वानर जिनके सब अंग पहले घावों से भरे थे, उस समय घाव रहित हो गये और सभी सोकर जगे हुए की भाँति सहसा उठकर खड़े हो गये।'[102]

इस प्रकार उपरोक्त सभी दृश्यों तथा स्थलों पर दृष्टि-पात करने से यह ज्ञात होता है कि रामायण में इस प्रकार के दिव्य-वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

वशीकरण

'वशीकरण' का रामायण में कहीं स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। किन्तु जब रामराज्याभिषेक के समय कैकयी राजा दशरथ को अपने वशीभूत कर उनसे बर प्राप्त कर लेती हैं, उससे 'वशीकरण' परिभाषित होता है।

प्रसूति गृह

'भाव प्रकाश'—गर्भ प्रकरण में सूतिकागार की परिभाषा इस प्रकार है—'अष्टहस्तायतं चारु चतुर्हस्तविशालकम्। प्राचीद्वारमु (1) दग्द्वारं बिदध्यात्सूतिकागृहम्।'[103]

आठ हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा एवं पूर्व अथवा उत्तर मुख-द्वार रख करके, देखने में सुंदर, सूतिकागार का निर्माण करना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण में सूतिकागार का उल्लेख महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में वर्णित है "भगवान श्री रामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। अतः महातेजस्वी महर्षे ! आप उनकी बाल-ग्रह जनित वाधा निवृत्त करने वाली रक्षा करें।[104] उन कुमारों की इस बात को सुनकर महर्षि उस स्थान पर गये। सीता के वे दोनों ही

पुत्र बाल-चन्द्रमा के समान सुंदर तथा देवकुमारों के समान तेजस्वी थे। वाल्मीकि मुनि ने 'सूतिकागार' में प्रवेश किया और प्रसन्नचित्त होकर उन दोनों कुमारों को देखा तथा उनके लिये भूतों तथा राक्षसों का विनाश करने वाली रक्षा व्यवस्था की।[105]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में 'सूतिकागार' का उल्लेख प्राप्त होता है।

शकुन विज्ञान

परम्परा से चले आ रहे भविष्य ज्ञान के सम्बन्ध में दो प्रमुख विद्याएँ प्रचलित थीं। उन दोनों ही विद्याओं के ज्ञान तथा अध्ययन द्वारा निकट भविष्य में होने वाली शुभ-अशुभ घटनाओं का परिचय प्राप्त हो सकता था। ये विद्याएँ हैं शकुन विज्ञान तथा स्वप्न विज्ञान।

रामायण में भी इसको स्वतन्त्र रूप से स्वीकार किया गया है। रावण के प्रमदावन में सीता निराश बैठी थी। वह निरुत्साहित होकर चोटी से फाँसी खाकर मरने को उद्यत भी हो गयी थी कि उसी समय उन्हें शुभ-शकुन दिखाई दिये।

तस्या विशोकानि तदा बहूनि, धैर्यार्जितानि प्रवशणिलोके।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि।।[106]

उस समय शुभांगी सीता के समक्ष बहुत से ऐसे लोक प्रसिद्ध श्रेष्ठ शकुन प्रकट हुए जो शोक-निवृत्त करने वाले तथा उन्हें ढाँढस बँधाने वाले थे। उन शकुनों का दर्शन तथा उनके शुभ फलों का अनुभव उन्हें पहले भी हो चुका था।

एक के बाद एक शुभ शकुन इस प्रकार प्रकट होने लगे जैसे श्री सम्पन्न पुरुष के पास सेवा करने वाले लोग स्वयं आ पहुँचते हैं।[107] उस समय उनका बायाँ नेत्र फड़कने लगा[108] उनकी बाँयी भुजा फड़कने लगी।[109] उनकी बाँयी जाँघ फड़कने लगी, उनके सिर से सोने के रंग वाला मलिन रेशमी वस्त्र तनिक सा सरक गया और भावी शुभ की सूचना देने लगा[110] परिणाम स्वरूप उनका हृदय हर्ष से विह्वल हो उठा और वह शुक्ल पक्ष में उदित हुए शीत रश्मि चन्द्रमा से सुशोभित रात्रि की भाँति अपने मनोहर मुख से शोभा पाने लगी।[111] शकुन का चमत्कार रामायण में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। विभीषण ने रावण के पास जाकर कहा, 'हमें अमंगल सूचक अपशकुन दिखाई दे रहे हैं वे अपशकुन—

1. मंत्रों द्वारा विधि-पूर्वक धधकाने पर भी आग अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं होती उससे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं।
2. रसोईघर में, अग्नि-शालाओं में तथा वेदाध्ययन के स्थानों में साँप दिखाई देते हैं।
3. हवन सामग्री में चीटियाँ पड़ी दिखाई देती हैं।
4. गायों का दूध सूख गया है।
5. बड़े-बड़े गजराज मद से रहित हो गये हैं।
6. घोड़े नये ग्रास से तृप्त होने के बावजूद भी दीन स्वर में हिनहिनाते हैं।
7. गधों, ऊँटों तथा खच्चरों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं ----।

8. कौवे झुण्ड के झुण्ड होकर कर्कश स्वर में काँव-काँव करने लगते है। ---।
9. लंकापुरी के ऊपर झुण्ड के झुण्ड गीध उसका स्पर्श करते हुए मँडरा रहे हैं।
10. सन्ध्याओं में सियारनियें शब्द करती हैं।
11. नगर के सभी फाटकों पर एकत्र मांसभक्षी पशुओं द्वारा किये जाने वाले चीत्कार बिजली की गड़गड़ाहट के समान सुनाई पड़ते हैं।[112]

कुछ दिन बाद रावण के मंत्री माल्यवान ने भी कुछ अपशकुनों की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया।

1. घोर एवं भयंकर मेघ प्रचण्ड गर्जन के साथ लंका पर गर्मरक्त की वर्षा कर रहे हैं।
2. घोड़े-हाथी आदि वाहन रो रहे हैं।
3. दिशाएँ धूल से भर जाने के कारण मलिन हो रही हैं।
4. गौवों से गधे और नेवले से चूहे पैदा होते हैं।
5. पक्षी और मृग सभी सूर्य की ओर मुँह करके रोते हैं।
6. विकराल विकट काले और भूरे रंग के मूंड मुंडाये हुए काल-पुरुष का रूप धारण कर समय-समय पर हम सबके घरों की ओर देखते हैं।[113]

विभीषण तथा माल्यवान की तरह श्री राम भी शकुन विज्ञान के परम् ज्ञाता थे। लंका में युद्ध से पूर्व जब वे अपनी सेना को व्यवस्थित कर रहे थे तथा सेनापतियों की नियुक्ति कर रहे थे उस समय उन्होंने कुछ ऐसे दृश्य देखे जो लोक संहार सूचक थे।

लोकक्षयकरं भीमं भयंपश्याम्युपस्थितम्।
निबर्हणं प्रवीराणांमृक्ष वानर राक्षसाम्।।[114]

ये सूचनाएँ अपशकुन के रूप में थीं। श्री राम ने कहा इससे सिद्ध होता है कि रीछों, वानरों और राक्षसों के मुख्य-मुख्य वीरों का संहार होगा। उन्होंने बताया—प्रचण्ड आँधी चल रही है, पृथ्वी काँपने लगी है, पर्वतों के शिखर हिलने लगे हैं और दिग्गज चीत्कार करते हैं---रात में चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो जाता है, वे शीतलता की जगह संताप देते हैं, उनके किनारे का भाग काला और लाल दिखाई देता है। समस्त लोकों के संहार काल में चन्द्रमा का जैसा रूप रहता है, वैसा ही इस समय भी देखा जा रहा है---वे नक्षत्र अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो रहे हैं--कौऐ, गिद्ध और बाज नीचे गिरते हैं, भूतल पर आ बैठते हैं और गीदड़ियाँ बड़े जोर से अमंगल सूचक बोली बोलती हैं इससे यह सूचित होता है कि वानरों और राक्षसों द्वारा चलाये गये शिला खण्डों, शूलों खड्गों से यह धरती पट जायेगी और यहाँ रक्त, मांस की कीच जम जायेगी।[115]

रावण का भाई कुम्भकर्ण जब युद्ध के लिये आया और उसने श्री राम पर अपना वाल्मीकि रामायण में तांत्रिाक चिकित्सा एवं....वार करना चाहा तब ही कुछ अपशकुन इस प्रकार हुए—गदहों के समान भूरे रंग वाले बादल घिर आये, साथ ही उल्कापात हुआ और बिजलियाँ गिरी। समुद्र और वनों सहित सारी पृथ्वी काँपने लगी। रास्ते चलते कुम्भकर्ण के शूल पर गिद्ध आ बैठा। उसकी बाँयीं आँख फड़कने लगी

और बाँयीं भुजा कम्पित होने लगी फिर उसी समय जलती हुई उल्का भयंकर आवाज के साथ गिरी सूर्य की प्रभा क्षीण हो गयी और हवा इतने वेग से चल रही थी, कि सुखद नहीं जान पड़ती थी।[1116] इस प्रकार रोमाञ्चकारी अनेक अपशकुन प्रकट हुए परन्तु कुम्भकर्ण एक की भी परवाह न करके युद्ध के लिये आगे बढ़ा। परिणाम यह हुआ कि वह मारा गया।

एक बार फिर ऐसे ही अपशकुन रावण के वध के पूर्व देखे गये। रावण श्री राम से युद्ध करने के लिये रणभूमि में लंका से बाहर आया, उस समय सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गयी, समस्त दिशाओं में अंधकार छा गया। ध्वज के अग्र भाग पर गिद्ध आ बैठा और गीदड़ियाँ अमंगल सूचक बोलियाँ बोलने लगी। रावण की बाँयीं आँख फड़कने लगी बाँयी भुजा काँप उठी, उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया और आवाज कुछ बदल गयी। राक्षस दशग्रीव ज्यों की युद्ध के लिये आगे बढ़ा त्यों ही रणभूमि में उसकी मृत्यु के सूचक लक्षण प्रकट होने लगे।[117] परन्तु रावण ने अपने बल अभिमान के कारण उसकी कोई चिन्ता नहीं की, परिणाम हुआ, कि उसका वध श्री रामचन्द्र के हाथों हुआ।

बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा भी शकुन जान लेने में पारंगत थी उसने सीता के शरीर में होने वाले शकुनों को भली प्रकार जान लिया था।[118]

इस प्रकार शकुनों का प्रभाव जाने-अनजाने में व्यक्ति पर समान रूप से पड़ता है जिस व्यक्ति के प्रति वे शकुन या अपशकुन होते हैं वे उसका फल उसे अवश्य ही देते हैं चाहे कोई उसकी परवाह करे या न करे। उसके इन शकुनों के फलों पर कोई कम या अधिक असर नहीं पड़ता। रामायण का शकुन विज्ञान एक वैज्ञानिक विचार-धारा पर आश्रित है; जो विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहता। आयुर्वेद में भी रोगी के जीवन तथा मरण की अग्रिम सूचना प्राप्त करने के लिये शकुनों के महत्व को स्वीकार किया गया है।

स्वप्न-विज्ञान

आयुर्वेद में निद्रा को जीवन का दूसरा स्तम्भ स्वीकार किया है। निद्रा और स्वप्न का सम्बन्ध एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित है। रामायण में कवि ने उन स्वप्नों का उल्लेख किया है जो निकट भविष्य में आने वाली शुभ तथा अशुभ घटनाओं की अग्रिम सूचना देते हैं। आयुर्वेद में तो स्वप्न विज्ञान का इतना महत्व है कि रोग-परिचय, साध्या-साध्यता तथा रोग निदान सभी बातों की सूचना इनके द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

राजा दशरथ ने जब कैकई के परामर्श से श्री राम को वनवास दे दिया तब भरत ननिहाल गये हुए थे। इसी बीच में भरत ने एक स्वप्न देखा; इस स्वप्न के कारण भरत कुछ अस्वस्थ से दिखने लगे। चिन्ताग्रस्त भरत से जब उनकी उदासीनता का कारण पूछा गया तब उन्होंने बताया, "मैंने आज एक स्वप्न में अपने पिताजी को देखा है उनका मुख मलिन था, बाल खुले हुए थे और वे पर्वत की चोटी से एक ऐसे गड्ढे में

गिर पड़े हैं; जिसमें गोबर भरा था; मैंने उन्हें उस गोबर के कुंड में तैरते देखा थी। वे अंजलि में तेल लेकर पी रहे थे; और बार-बार हँसते प्रतीत होते थे। फिर उन्होंने तिल और भात खाया। इसके बाद उनके सारे शरीर में तेल लगाया गया और फिर वे सिर नीचे किये तेल में ही गोते लगाने लगे, मैंने देखा समुद्र सूख गया, चन्द्रमा, पृथ्वी उपद्रव से ग्रस्त और अन्धकार से आच्छादित सी हो गयी है। महाराज की सवारी में आने वाले हाथी का दाँत टूक-टूक हो गया है और पहले से प्रज्वलित होने वाली अग्नि सहसा ही बुझ गयी। मैंने यह भी देखा कि पृथ्वी फट गयी है। नाना प्रकार के वृक्ष सूख गये हैं; तथा पर्वत ढह गये हैं और उनसे धुआँ निकल रहा है काले लोहे की चौकी पर महाराज दशरथ बैठे हैं। उन्होंने काला वस्त्र ही पहन रखा है और काले एवं पिंगल वर्ण की स्त्रियाँ उन पर प्रहार कर रही हैं धर्मात्मा राजा दशरथ लाल रंग के फूलों की माला पहने लाल चन्दन लगाये गधे जुते हुये रथ पर बैठकर बड़ी तेजी के साथ दक्षिण दिशा की ओर गये हैं। लाल-वस्त्र धारण करने वाली एक स्त्री जो विकराल मुख वाली राक्षसी सी प्रतीत होती थी महाराजा को हँसती हुई सी खींचकर लिये जा रही थीं।[119]

भरत ने जो स्वप्न विज्ञान के परम ज्ञाता थे उस दुःखद स्वप्न का यह अर्थ लगाया कि श्री राम लक्ष्मण अथवा राजा दशरथ तीनों में से एक की अवश्य मृत्यु होगी---।[120]

दूसरी स्वप्नवेता थी त्रिजटा। उसने एक स्वप्न देखा जिसे सभी राक्षसियों को सुनाया उसने कहा, ''आज मैंने एक बड़ा भयंकर एवं रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है जो राक्षसों के विनाश और सीता पति के अभ्युदय की सूचना देने वाला है। यह था उस स्वप्न का संकेत जो त्रिजटा ने ग्रहण किया।''[121] त्रिजटा के उस स्वप्न का अर्थ स्पष्ट है—राम की विजय, रावण और कुम्भ कर्ण का वध तथा विभीषण को राज्य-प्राप्ति। इस स्वप्न को सुनाकर त्रिजटा ने राक्षसियों को समझाया[122] और सीता से प्रिय भाषण करने को कहा तथा भय दिखाया कि श्री राम तुम्हें मरवा डालेंगे। अतः सीता से अपने अब तक के कटु व्यवहार के लिये क्षमा याचना करो। त्रिजटा ने इस स्वप्न का साधारण तात्पर्य बताते हुए कहा-

यस्या ह्येवं विधाः स्वप्नौ दुःखितायाः प्रदृश्यते।
सा दुःखे बहुर्भिमुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।।[123]

जिस दुःखिनी नारी के विषय में ऐसा स्वप्न देखा जाता है वह दुःखों से छुटकारा पाकर परम उत्तम प्रिय वस्तु प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार त्रिजटा ने स्वप्नों के आधार पर यह भविष्यवाणी की। राक्षसियाँ इस भविष्यवाणी से भयक्लान्त होकर सीता के अनुकूल आचरण करने लगीं।

रावण के महामंत्री माल्यवन्त भी स्वप्न समझने में प्रवीण थे। उन्होंने राजा को बताया कि स्वप्न में काले रंग की स्त्रियाँ अपने पीले दाँतों को दिखाती हुई सामने आकर खड़ी हो जाती हैं और प्रतिकूल बातें कहकर घर के सामान चुराती हुई जोर-जोर से हँसती हैं।

कालिकाः पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिताः।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभाष्यच।।[124]

उपरोक्त स्वप्नों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्वप्न में श्वेत रंग, हाथी, घोड़े, सूर्य, चन्द्रमा, विमान, श्वेत-पुष्प, श्वेत-वस्त्र, पर्वत, शिखर, उत्तर दिशा आदि शुभ हैं तथा काला रंग, लाल रंग, पंक, सिर मुंडाया आदमी, तेल, ऊपर से पतन, गधा, हँसना, सिर नीचे पैर ऊपर, निर्वस्त्र पुरुष, शूकर, शिशुमार ऊँट आदि सवारी तथा दक्षिण दिशा की ओर गमन अशुभ है।

उपरोक्त तथ्यों को यदि आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित स्वप्न विज्ञान से तुलना की जाये तो शत-प्रतिशत सही उतरेंगे।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में तान्त्रिक चिकित्सा एवं भूत-विद्या विषयक सामग्री का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ

1. अष्टाग्वसा मांसभुजः सुभीमा, निशाविहाराश्च तमाविशन्ति....। सु. चि. 60/22
2. चरक, सूत्र 30/26
3. सुश्रुत, सूत्र 1/12
4. सूत्र 1/10
5. सूत्र 1/5
6. सु. सू. 1/12
7. च. सू. 11/63
8. सु. सू. 3/41
9. इतिपुत्रस्याशिषश्च कृत्वा शिरसि भामिनी।
   गंधैश्चापि समालेप्य राम-मायत लोचना।।
   औषधिं च सुसिद्धार्थां विशल्य करणी शुभाम्।
   चकार रक्षां कौशल्या मत्रमभिजजाप च।। अयो. 25/37, 38

10. सु. 3/8
11. सु. 3/9
12. सु. 3/10
13. सु. 7/12
14. सु. 7/12
15. सु. 9/17
16. सु. 9/17
17. सु. 33/10
18. सु. 65/8
19. यु. 21/29
20. यु. 22/21
21. यु. 75/8
22. यु. 111/42
23. अरण्य 42/16
24. अ. 29/5
25. भगवन् रामपत्नीसा प्रसूता द्वारकद्वयम्।
ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम्।। उ. 66/3
26. उ. 66/4, 5, 6
28. उ. 66/7, 8
29. उ. 66/10, 11, 12
30. सु. उ. 3/40
31. सु. उ. 60/29

32. सु. उ. 60/6
33. सु. सू. अ. 1
34. मंत्र-तंत्रां गृहाणं त्वं बलामति बलां तथा।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययम्।। बा. 22/13
35. बा. 22/14
36. बा. 22/15
37. बा. 22/16
38. बा. 22/17
39. बा. 22/18
40. बा. 22/19
41. बा. 22/20
42. बा. 22/21
43. बा. 22/22
44. बा. 23/3
45. उ. 87/12 ....
46. उ. 90/......
47. बा. 15/1
48. बा. 15/2
49. बा. 15/3
50. बा. 15/4
51. बा. 15/8
52. बा. 15/9
53. बा. 15/10
54. बा. 15/11
55. बा. 15/14, 15
56. बा. 15/16
57. बा. 15/17
58. बा. 15/18
59. बा. 15/19
60. बा. 15/20
61. बा. 15/21, 22
62. बा. 15/23, 24
63. बा. 15/26
64. बा. 15/27
65. बा. 15/28, 29
66. बा. 15/30
67. बा. 15/31
68. बा. 15/32
69. वा. 18/1

70. बा. 18/8-10
71. बा. 18/13
72. यु. 50/27
73. यु. 50/28
74. यु. 50/33
75. यु. 50/34
76. यु. 50/35
77. यु. 50/36
78. यु. 50/37
79. यु. 50/38
80. यु. 50/39
80. यु. 50/40
82. यु. 50/46
83. यु. 50/48-49
84. यु. 50/51
85. यु. 50/52
86. यु. 120/प्रा.
87. यु. 120/1
88. यु. 120/2
89. यु. 120/3
90. यु. 120/4
91. यु. 120/5
92. यु. 120/6
93. यु. 120/7
94. यु. 120/8
95. यु. 120/9
96. यु. 120/10
97. यु. 120/111.
98. यु. 120/12
99. यु. 120/13
100. यु. 120/14
101. यु. 120/15
102. यु. 120/16, 17
103. भाव प्रकाश- गर्भ प्रकरण-3/340
104. उ. 66/4
105. उ. 66/5, 6
06. सु. 28/19
07. शुभनिमितानि शुभानि भेजरे, नरं श्रियाजुष्टमिवोपसेविनः सु. 29/1
08. प्रास्पन्द तैकं नयन सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवामिताभ्रम। सुं.29/2

109. चिरेण वामः समवेपताशुः। सु. 29/3
110. शुभं पुनर्हेम समान वर्ण ....किंचित परिभ्रंसित चारुगाच्याः। सु. 29/5
111. सु. 29/6
112. यु. 10 वाँ सर्ग/15, 16, 17, 18, 19, 20, 21
113. यु. 10/24, 25, 26, 27, 28, 29
114. यु. 41/12
115. यु. 41/13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20
116. यु. 66/48, 49, 50, 51.
117. यु. 95/43, 44, 45, 46, 47
118. सु. 27/50, 51, 52, 53
119. अयो. 69/8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17
120. अयो. 69/18, 19, 20
121. सु. 27/9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18
122. सु. 27/22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39,40
123. सु. 27/44
124. यु. 35/28

नवम् परिवर्त
वाल्मीकि रामायण में शल्य चिकित्सा विधान

1. शल्य एवं शल्य अवस्था

शल्य को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में General - Surgery कहा जाता है। शल्य शब्द 'शल् हिंसायाम्' अथवा 'शल् श्वल् आशुगमने धातुः'[1] तस्य शल्यमिति रूपम् अर्थात् शलत्याशु गच्छति वेगेनान्तः शरीरमनुप्रविशतीति शल्यम्, शलेर्यत, औणादिको यत् प्रत्ययः, इस प्रकार निष्पन्न हुआ है। जिससे शरीर में पीड़ा या तन्तुओं की हिंसा हो वह शल्य है, उसका जिससे ज्ञान हो वह शल्य तन्त्र है। चरक ने शल्य का पर्याय शल्यापहर्तृक दिया है।[2] सभी संहिताएँ- सुश्रुत, अष्टांग-संग्रह एवं अष्टांग-हृदय शल्य-पद का ही प्रयोग करती हैं।[3]

सुश्रुत के अनुसार जिस अंग में अनेक प्रकार के तृण काष्ठ, पाषाण, पांशु, लोह, अस्थि, बाल, नख, पूय, आस्राव, दुष्टव्रण, अन्तःशल्य, गर्भ-शल्य आदि को निकालने के लिये यंत्र, शस्त्र, क्षीर एवं अग्नि प्रणिधान और व्रण का विनिश्चय किया जाता है वह शल्य-तन्त्र है।[4]

शरीर में जिससे भी पीड़ा हो वह सब शल्य है। यह पीड़ा चाहे स्वतः शरीर के अन्दर हो अथवा बाहर से। इस पीड़ा या शल्य के हटाने के उपायों का वर्णन शल्यतन्त्र में आता है।

शालाक्य तन्त्र ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा है। चरक[5] एवं सुश्रुत[6] दोनों ने इसके लिये शालाक्य पद का प्रयोग किया है जबकि अष्टांग संग्रह[7] तथा अष्टांग हृदय[8] इसके स्थान पर ऊर्ध्वाङ्ग पद का प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद के जिस अंग में जत्रु के ऊर्ध्व भाग स्थित वर्ण नेत्र, मुख, नासिका आदि अंगों में संश्रित व्याधियों के शान्ति का तथा रोग परीक्षणार्थ 'शलाका प्रणिधान' का उल्लेख हो वह शालाक्य तन्त्र है।[9]

आकृति के अनुसार शल्य के प्रकार

अष्टांग संग्रह के अनुसार शल्य चार प्रकार के होते हैं–

1. वृत्त (गोल)
2. द्विकोण (दो कोणों वाला)
3. त्रिकोण (तीन कोण वाला)
4. चतुष्कोण (चार कोणों वाला)। इन दिखाई न पड़ने वाले शल्यों का अनुमान

व्रण के संस्थान (वाह्य रूप) को देखकर ही करना चाहिये।[10]

तात्पर्य यह है कि अन्तःशल्य के आकार-प्रकार का अनुमान शरीर के वाह्य सतह पर स्थित व्रण के आकार को देखकर लगाना चाहिये।

शस्त्र-कर्म का विषय

अष्टांग संग्रह निज एवं आगन्तुक दोनों ही प्रकार के रोग शांति के लिये विविध प्रकार के उपायों की अपेक्षा रखते हैं। इस हेतु पहले औषधियों का प्रयोग किया जाता है, जब ये सफल सिद्ध नहीं होतीं, तब इनकी प्रशान्ति के लिये शस्त्र कर्म किया जाता है और यह (शस्त्र-साध्य) रोग प्रायः श्वयथु (शोध) होने के बाद ही होता है। अतएव जब भी शोफ होना शुरू हो, तभी से ही वात-पित-कफ-रक्त-संसर्ग, सन्निपात आदि का विचार करके यथोचित दोषानुसार उपवास, लेप, सेक, असृक्मोक्षण, कषाय एवं घृतपान तथा शोधन आदि का प्रयोग करें, जिससे शोफ पकने न पाये। यदि इन विधियों का प्रयोग करने पर भी शोफ की शांति न होने पाये, तो उसका प्रविलयन हो जाये, ऐसा उपाय करना चाहिये। यदि प्रविलयन भी न होने पाये, तो उपनाह (पुल्टिस) बाँधना चाहिये।[11]

अर्थात् औषधियों द्वारा जो रोग शांत नहीं होते, उनकी चिकित्सा शस्त्रकर्म द्वारा करनी चाहिये। ये शस्त्र साध्य रोग प्रायः शोथ होने के बाद ही होते हैं। अतएव जैसे ही शोथ प्रारम्भ हो, वैसे ही उसकी उचित चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिये। एतदर्थ पहले स्नेहन, स्वेदन, लंघन, रक्त-मोक्षण आदि का प्रयोग करना चाहिये। इससे भी शोफ दब सकता है। न दबे तो ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये कि उसका प्रविलयन हो जाये। यदि इस पर भी शोफ नियंत्रित न हो तो उपनाह (पुल्टिस) बाँध देना चाहिये।

शस्त्र-कर्म के प्रकार

शस्त्र-कर्म आठ प्रकार का होता है जैसे—छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, एषण, आहरण, विस्रावंण, सीवन। सुश्रुत ने उक्त आठ प्रकार के शस्त्र-कर्म माने हैं।[12] चरक ने एषण और आहरण को यन्त्र-कर्म मानकर शस्त्र-कर्म छः ही माने हैं—'पाटनं व्यधनं चैव छेदनं लेखनं तथा। प्रोच्छनं सीवनं चैव षड्विधं शस्त्र कर्म तत्।'[13]

1. छेदन (Excision) काटकर अलग कर देना जैसे-अर्श, चर्मकील और भगन्दर। 'छेद्या भगन्दरो ग्रन्थिःश्लैष्मिकस्तिलकालकः।'

2. भेदन (Incision) चीरना जैसे-विद्रधि। भेद्याविद्रधयोऽन्यत्र सर्व आदू ग्रन्थयस्त्रयः।

3. लेखन (Scraping or Scarification) खुरचना, 'लेख्याचश्रतस्त्रो रोहिण्यः किलासमुपलिहिकां'।

4. वेधन (Puncturing) नोकदार शस्त्र से छेद करना जैसे—'सिरोवेध' आदि 'वेध्याः सिरा बहुविधा मूत्रवृद्धिर्दकोदरम्'।

वाल्मीकि रामायण में शल्य चिकित्सा विधान5. एषण (Probing, exploration) शलाका द्वारा नाड़ी व्रणादि का पता लगाना— 'एष्या नाड्या सशल्याश्च

व्रणाउन्मागिंणश्चये।''

6. आहरण (Extraction) बाहर खीचकर निकालना। 'आहार्याः शर्करास्तिस्रोदन्तकर्णमलोऽश्मरी। शल्यानि मूढगर्भाश्च वर्चश्र निचिंतगुदे'।

7. विस्रावण (Driainage) रक्त, लसीका और पूय को नली आदि से बाहर निकालना। 'स्राव्या विद्रधयः पश्चभवेयुः सर्वलादृते।'

8. सीवन (Suturing Stitehing) टाँके लगाना, 'सीव्या मेदः समुत्याश्च भिन्नाः सुलिखिता गदाः। सद्योव्रणाश्च ये चैव चल सन्धिव्यपाश्रिता।'

वाग्भट ने उत्पाटन, कुट्टन, मन्थन, ग्रहण और दहन ये पाँच कर्म और मानकर शस्त्र-कर्म के तेरह भेद माने हैं–

9. कुट्टन (Pricping) सुई द्वारा त्वचा में छेदन करना।

10. मन्थन (Drilling) मथते हुए छेद करना।

11. ग्रहण (Catching) पकड़ना।

12. दहन (Cautery) शस्त्र-यन्त्र आदि से दाह करना।[14]

आजकल (Cautory knfe) का प्रयोग शस्त्र कर्म में बहुत बढ़ गया है। सुश्रुत में भी इसी प्रकार का वर्णन है–'अग्नि तप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यात्'।[15]

उपकरण

विविध संहिताओं में उल्लिखित उपरोक्त अष्ट-शस्त्र कर्मों में से किसी एक कर्म करने की इच्छा वाले वैद्य को प्रथम ही निम्नलिखित सामग्री तैयार कर लेनी चाहिये–यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका, श्रृंङ्ग, जोंक, अलाबू (तुम्बी) जाम्बवौष्ठ पिचु (रुई), प्रोत (वस्त्र), सूत्र, पत्र, पट, मधु, घृत, चर्बी, दुग्ध, तैल, सन्तर्पण, द्रव्य, क्वाथ और लेप की औषधियाँ, कल्क (लुग्दी), पंखा, ठंडा और गरम पानी, कटाह आदि लौह निर्मित पात्र एवं स्निग्ध (अनुरक्त) स्थिर चित्त और बलवान भृत्य सुश्रुत ने भी इसी प्रकार का वर्णन किया है–

अतोऽन्यतमं कर्म चिकीर्षता वैद्येन पूर्वमेवोपलल्पयितव्यानियन्त्र-शस्त्राक्षाराग्निशलाकाश्रृंग जलौकालाबू जाम्बवौष्ठापिचु प्रोतसूत्र पत्र पट्टमथुघृतवसापयस्तैलतर्पण कषायालेप कल्कव्यजन शीतोष्णोदक कटाहादीनि, परिकर्मिणश्र स्निग्धाः स्थिरा बलवन्तः।[16]

शल्य जब शरीर में प्रविष्ट करके पीड़ित करने लगते हैं तब इनके आहरण हेतु जो उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं वे यन्त्र कहलाते हैं–'तत्र मनः शरीराबाधकराणि शल्यानि, तेषां आहरणोपायो यंत्राणि'।[17] अष्टांग हृदय ने भी यही परिभाषा बतायी है–'नाना विधानां शल्यानां नानादेश प्रबाधिनाम्। आहर्तुमभ्युपायो यस्तद्यन्त्रं तच्च दर्शने।।'[18] यन्त्रों की संख्या अन्य आचार्य 101 मानते हैं, किन्तु वाग्भट् ने यन्त्र छः प्रकार के माने हैं–1. स्वास्तिक यन्त्र 2. संदंश यन्त्र 3. ताल यन्त्र 4. नाड़ी यन्त्र 5. शलाका यन्त्र 6. अनुयन्त्र।[19]

इस प्रकार यन्त्रों के छः प्रकारों का वर्गीकरण उनके आकार के आधार पर किया गया है। आधुनिक शल्य चिकित्सा की दृष्टि से स्वास्तिक यंत्रों को क्रूसी फार्म इन्स्ट्रूमेन्ट (Cruciform Instruments), संदंश यन्त्रों को (Pincher Lipe Forceps) ताल यन्त्रों को (Pick Lock Lipe Instruments), और नाड़ी यन्त्रों को ट्यूबलर इन्स्ट्रूमेन्ट (Tubeler Instruments) और शलाका यन्त्रों को प्रोब्स (Probes) कह सकते हैं।

सुश्रुत संहिता में इन छः प्रकार के कुल 101 यन्त्रों का उल्लेख मिलता है।

शस्त्र-कर्म से पूर्व भोजन तथा मद्यपान

अष्टांग संग्रह के अनुसार मूढ-गर्भ, उदर रोग, अश्मरी तथा मुख रोग से पीड़ित व्यक्तियों को छोड़कर अन्य रोगों से पीड़ित रोगियों में शस्त्र-प्रयोग करने से पूर्व रोगी को इष्ट (इच्छित) भोजन तथा तीक्ष्ण मद्य का पान कराना चाहिये क्योंकि इष्ट अन्न खिलाने के बाद शस्त्र-कर्म करने से अन्न के संयोग से रोगी को मूर्च्छा नहीं उत्पन्न होती तथा मद्यपान से उन्मत रोगी को शस्त्र-कर्म से होने वाली पीड़ा का ज्ञान नहीं होता—'प्राक् शस्त्राद् भोजयोदिष्टमूमद्यं तीक्ष्णं च पाययेत्।'

न मूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते।
अन्यत्र मूढ़-गर्भोदशश्मरी मुख रोगेभ्यः।।[20]

आचार्य सुश्रुत ने तीन प्रकार के कर्मों का उल्लेख किया है—त्रिविध कर्म-पूर्व कर्म, प्रधान कर्म, पश्चात्कर्मेति तत् व्याधि प्रति प्रत्युपदेक्ष्यामः।[21] सुश्रुत संहिता के टीकाकार आचार्य डल्हण ने पूर्व-कर्म के विषय में कहा है—लंघनादि विरेकान्तं पूर्वकर्म व्रणस्य च। अर्थात् लंघन से विरेचन तक व्रण के सब कर्म पूर्व-कर्म हैं। वे 12 हैं—

1. अपतर्पण (Fasting)
2. आलेप (Plastering)
3. परिषेक (Spraying)
4. अश्यङ्ग (Massaging)
5. स्वेद (Fomentation)
6. विम्लापन (Rubbing)
7. उपनाह (Poul tice)
8. पाचन (Inducing Supperation)
9. विस्रवण (Draining)
10. स्नेह (Ingestion of Fasts)
11. वमन (Emesis)
12. विरेचन (Purgation)

उपर्युक्त कथन में उल्लिखित मद्यपान आधुनिक अनीस्थीसिया के समान ही है, जो प्रमाणित करता है कि प्राचीन काल में भारतीय चिकित्सक भी संज्ञाहर औषधियाँ

प्रयुक्त करते थे।

शस्त्र-कर्म-विधि

अष्टांग संग्रह के अनुसार मंगलाचरण करके यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, जाम्बवौष्ठ, पिचु (रुई का फाहा), प्लोत (सूती वस्त्र की पट्टी), पत्र (विभिन्न वृक्षों के पते), सूत्र (डोरी), चर्म-पट्ट (चमड़े का पट्टा), मधु, स्नेह कषाय (स्वरस, कल्क आदि पंच कषाय अथवा कषाय रस वाले द्रव्य), आलेप, कल्क (यथावश्यक औषधियों का कल्क), सेक, उद्कम्भ (जल से भरा छोटा घड़ा), शीतल जल, गर्म जल, कटाह (कड़ाही) तथा व्यजन (पंख) आदि व्रणोपयोगी सभी द्रव्यों को एकत्रित करना चाहिये। इसके पश्चात् सुव्यवस्थित शैया पर रोगी को लिटाना चाहिये। स्नेहन कराकर बलवान पुरुषों के सहारे रोगी को स्थिरकर इष्ट दिन एवं इष्ट मुहूर्त में दधि, अक्षत, अन्न, पान, रुक्म (स्वर्ण) एवं रत्नादि से ब्राह्मण की पूजा करके, इष्ट देवता को प्रणाम करके तथा मंगल वाचक कार्य करके, रोगी को भोजन कराकर, पूर्वाभिमुख शैया पर बैठाकर या लिटाकर रोगी को बाँध देना चाहिये। तत्पश्चात् वैद्य रोगी ने जिधर मुख किया है उसके विपरीत दिशा (पश्चिम) की ओर मुख करके मर्म, सिरा, स्नायु, सुंधि, अस्थि, धमनी, आदि को बचाते हुए शस्त्र द्वारा अनुलोम रूप से पूय, दिखाई पड़ने तक, एक ही बार में शीघ्रता से चीरा लगायें। बड़े शोथ-पाक में भी दो अंगुल में ही शस्त्र-पद (चीरा) लगायें। तत्पश्चात् दो अंगुल अथवा तीन अंगुल के अन्तर पर यदि आवश्यक हो तो विचार करके एक व्रण और दें। शस्त्र-पद करने से विवृत हुए इस स्थान में बायें प्रदेशिनी (तर्जनी) अंगुली से पूय व्रण की प्रतीक्षा करें। यदि शस्त्र-पद करने के बाद व्रण का मुख नाति विवृत (अधिक चौड़ा न हो) तथा व्रण स्थान गंभीर तथा मांसल हो, तो एषणी से तथा विपरीत प्रकार के (जो गंभीर तथा मांसल न हो), व्रणों में करीर कमल आदि के नाल से तथा अति संवृत्त (सूक्ष्म) मुख वाले व्रणों में सूअर के बाल से पूयव्रण की परीक्षा करनी चाहिये।

जहाँ-जहाँ पर पूय की गति को देखें और जहाँ-जहाँ उत्सुङ (उभार-उत्सेध) देखें, वहाँ-वहाँ पर शस्त्र द्वारा व्रण बनायें। यह ध्यान रखें कि यह व्रण सुविभक्त (एक दूसरे से पृथक्) तथा निराशय पूय आदि के आशय से रहित हों। शस्त्र द्वारा किया गया व्रण आयताकार, दीर्घ और विशाल तथा ऐसा होना चाहिये, जिससे पूय आदि विविध प्रकार के दोष उसमें ठहर न सकें।[22]

आचार्य डल्हण ने लिखा है कि पाटन, रोपण आदि शस्त्र-कर्म (व्रण-कर्म) के प्रधान कर्म हैं। 'पाटनं रोपणं यच्च प्रधानं कर्म्म तत्स्मृतम्'। शल्य-कर्म के अन्तर्गत महर्षि सुश्रुत[23] ने आठ प्रकार के महर्षि चरक[24] ने छः प्रकार के एवं अष्टांग हृदयकार आचार्य वाग्भट ने तेरह प्रकार के प्रधान कर्मों का निरूपण किया है उत्पाट्य पाट्य सीव्यैष्य लेख्यप्रच्छनकुट्टनम् छेद्यं भेद्यं व्यधो मन्थो ग्रहो दाहश्च तत्क्रियाः।।[25]

रोगी

वाल्मीकि रामायण में शल्य -क्रिया के रोगी का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

शल्य-चिकित्सक के गुण

अष्टांग संग्रहकार के अनुसार वैद्य (शल्य-चिकित्सक) को शौर्य-शाली (शस्त्र-कर्म में निपुण) आशु-क्रियावान (अपने हस्त कौशल से शीघ्र शस्त्र-कर्म करने वाला), तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों को रखने वाला, अस्वेदवेपथु (शल्य-कर्म करते समय जिसे पसीना तथा कँपकँपी न हो) तथा असंमोहवान् (कार्य करते समय जिसके मस्तिष्क में अनिश्चितता न हो) होना चाहिये। ये शल्य चिकित्सक के प्रशस्त गुण हैं—

शौर्यमाशुक्रिया तीक्ष्णं शस्त्रमस्वदवेपथु।
असम्मोहश्च वैद्यस्य शस्त्र-कर्मणि शस्यते।[26]

सुश्रुत के अनुसार

शौर्यमाशुक्रियाशस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथु।
असम्मोहश्च वैद्यस्य शस्त्र-कर्मणि शस्यते।।

अर्थात् शूरता (उत्साह, निर्भयता), शस्त्रपातादि क्रियाओं में शीघ्रता (लघु-हस्तता), शस्त्र की धार का उचित तीक्ष्ण होना, शस्त्र कर्म करते समय वैद्य-सर्जन को पसीना न आना तथा हाथ का न काँपना तथा रोगोल्वणता या बड़े शस्त्र-कर्म की दिशा में या निकलते हुए रक्तादि को देखकर मूर्च्छित न होना ये शस्त्र चिकित्सक् के गुण हैं और ऐसे ही सर्जन शस्त्र-कर्म में प्रशस्त होते हैं।[27]

शस्त्रावचारण में पश्चात् कर्म (परिचर्या)

अष्टांग संग्रह के अनुसार शीतल जल से रोगी को आश्वासित करके, व्रण स्थान को अंगुलियों द्वारा चारों ओर से पीड़न करके (दबा करके), प्लोत (वस्त्र) से व्रण पर लगे जल को पोंछकर वेदना शामक एवं रक्षोहन गण की औषधियों-गुग्गुल, अगरु, सर्जरस, वचा श्वेत सर्षप, हिङ्गु, सैंधव लवण निम्ब-पत्र को घी के साथ मिलाकर इनसे व्रण का धूपन करें। तत्पश्चात् दोषानुसार वात-विकारों में तिल कल्क (Sisamum Indicum Lirn) से, पित्तज विकारों में घृत से तथा कफज विकारों में मधु से युक्त वर्ति को व्रण में रखकर औषधियों के कल्क से भर दें। तत्पश्चात् अधिक न भूने गये यव के सत में घृत मिलाकर फिर एक पत्र में रखकर दाहिनी अंगुली द्वारा उसमें पानी मिलाकर, उसे व्रण के ऊपर रखकर, एक मोटी कवलिका रखकर वस्त्र से पट्टी बाँध दें। पट्टी को बाँये या दाँये किसी एक पार्श्व में घुमाते हुए बाँध दें। पट्टी मृदु, कोमल, न चुभने वाली, सलवटों से रहित तथा ऋजु होनी चाहिये तथा इसकी गाँठ दाँये या बाँये पार्श्व में बाँध देनी चाहिये।

वात-कफ प्रधान व्रणों में दो-तीन बार, पित्त रक्त प्रधान व्रणों में तथा अभिघात जन्य (चोट) व्रणों में एक बार पट्टी को लपेटना चाहिये। शस्त्र-क्षत से उत्पन्न पीड़ा जो लगातार हो रही हो उसमें मुलैठी तथा घृत को गरम करके व्रण का सेंक करें। जल वाले पात्र से जल निकालकर प्रोक्षण करना चाहिये। याचक, आर्य, पर्ण-शबरी आदि से रोगी की रक्षा करनी चाहिये। एतदर्थ गुग्गुल आदि से धूपन करना चाहिये। इनको

बलि भी दें। लक्ष्मी, गुहा अति गुहा, जटिला, ब्रह्मचारिणी, वचा, छत्रा, अतिछत्रा, दूर्वा एवं सिद्धार्थक को शिर पर धारण करना चाहिये। गुग्गुल आदि द्रव्यों के धूपों से दिन में दो बार धूपन करना चाहिये।[28] 'सुश्रुत के अनुसार—ततः शस्त्रमवचार्य शीताभिरद्भिरातुरमाश्वास्य, समन्तात् परिपीड्याङ्गुल्या, व्रणमभिमृद्य (ज्य), प्रक्षाल्य, कषायेण, प्रोतेनोदकमादाय, तिल कल्क मधुसर्पिः प्रगाढामौषधयुक्तां नातिस्निग्धां नातिरुक्षां, वर्ति प्रणिदध्यात्। ततः कल्केनोच्छाद्य घनां कवलिकां दत्तवा वस्त्रपट्टेन बध्नीयात। वेदना रक्षोघ्नै धूपैर्धूपयेद् रक्षोघ्नैश्च मन्त्रै रक्षां कुर्वन्ति।[29] अर्थात् तदनन्तर व्रण से शस्त्र को निकालकर रोगी को शीतल जल से (मुख-हस्तादि पर सिंचन द्वारा) आश्वासन या शांति देकर चारों ओर (बाहर और अंदर से) अंगुलियों द्वारा व्रण को धीरे-धीरे दबाकर कषाय से व्रण का प्रक्षालन करें। पश्चात् प्रोत से व्रण के भीतर के शेष कषाय जल को पोंछकर तिल, कल्क, शहद और घृत से लिप्त तथा न अति स्निग्ध और न अति रुक्ष कल्क से ढककर तथा उस पर मोटी कवलिका (गद्दी या स्वच्छ रुई) रखकर वस्त्र पट्ट से बाँध देना चाहिये। पश्चात् वेदना हर और राक्षस (जीवाणु) नाशक द्रव्यों की धूनी से उस स्थान को धूपित करें तथा रक्षोघ्न मंत्रों से व्रण की रखा करनी चाहिये। 'वाग्भट' के अनुसार—शुचिसूक्ष्मेदृढाः पटाः कवल्यः सविकेशिकाः धूपितः भृदुवः श्लक्ष्णा निर्वलीका व्रणे हिताः। इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्य सभी संहिताओं में भी यही वर्णन प्राप्त होता है।

शस्त्र-कर्म में अपथ्य

अष्टांग संग्रहकार के अनुसार विशेषतः दिवा स्वप्न करने से व्रण में शोफ, कण्डू, राग, रुक् (पीड़ा), पूयवृद्धि आदि उत्पन्न हो जाती है। संसर्ग के बिना भी स्त्रियों का स्मरण, स्पर्श, दर्शन आदि करने से शुक्र के स्खलित हो जाने के फलस्वरूप व्यवायजन्य दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव स्त्री का स्पर्श, स्मरण आदि निषिद्ध है।[30] महर्षि सुश्रुत ने आयास (श्रम) से व्रण में श्वयथु की उत्पत्ति, रात्रि जागरण से शोथ एवं राग का प्रादुर्भाव, दिवा स्वप्न से शोथ, राग एवं वेदना की उत्पत्ति एवं मैथुन करने से शोथ, राग, वेदना के साथ-साथ मृत्यु की भी सम्भावना का उल्लेख किया है।[31] इसलिये व्रण के रोपण काल में तथा जब तक दृढ़ता पूरी तरह प्राप्त न हो जाये, उस काल तक अजीर्ण, व्यायाम, व्यवाय एवं हर्ष, क्रोध, भय, को भी त्याज्य माना गया है।[32]

शस्त्र-कर्म में पथ्याहार

अष्टांग संग्रह के अनुसार रोगी को जो सात्म्य भोजन हो वह करायें। समातीत (एक वर्ष पुराना) शालि, षष्टी धान्य, यव में से किसी भी एक एवं मूंग, मसूर, आढकी (अरहर), सतीन (मटर) इनमें से किसी एक से यूष अथवा जांगल मांस रस के साथ भोजन दें। जीवंती, सुनिष्णक, तन्दुलीयक (चौलाई), वास्तूक (बथुआ), वार्ताकु (बैंगन), पटोल (परवल), कारबेल्लक (करेला), बालमूली (कच्ची मूली) के साथ को दाड़िम (अनार), आमलक, सैन्धव लवण से युक्त करके, घी से स्निग्ध करके लघु एवं अल्प

परिमाण में खाना चाहिये। तत्पश्चात् उष्णोदक पीना चाहिये। इस प्रकार उस रोगी द्वारा खाया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है।[33]

अन्यान्य निर्देश

वाग्भट् के अनुसार बाल वाले पंखों (चंवर) अथवा उशीर (खस) के पंखों से व्यजन (पंखा) करना चाहिये और इसका परिघट्टन (घर्षण) नहीं करना चाहिये। स्नेही पुरुष, वृद्ध पुरुष एवं द्वि जातियों (ब्राह्मणों) द्वारा मनोनुकूल कथाओं का श्रवण करने से रोग से छुटकारा अवश्य मिल जायेगा, ऐसा मन में विश्वास रखने से व्रण का शीघ्र ही रोहण (रोपण डमंसपदह) होता है।[34]

पुनः प्रक्षालन

अष्टांग संग्रह कार के अनुसार पुनः तीसरे दिन प्रक्षालन आदि कार्य करने चाहिये। यदि दूसरे दिन ही पट्टी खोल दी जाये तो व्रण छोटी-छोटी ग्रन्थियों से युक्त चिरकाल में भरने वाला तथा तीव्र पीड़ा युक्त हो जाता है।[35]

महाकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण के माध्यम से प्राचीन भारत की शल्य व्यवस्था की स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत की है। इसके अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि आदि कवि के समय से ही हमारा शल्य-चिकित्सा-शास्त्र कितना उन्नत था।

रामायण में एक वाण का नाम भी शल्य बताया गया है। जिसका अग्रभाग तीक्ष्ण होता था वास्तव में प्राचीन काल में शल्य दो प्रकार से निकाले जाते थे। प्रथम औषधियों की सहायता से और द्वितीय यन्त्र शास्त्रों की सहायता से। रामायण में शल्य निष्कासन कर्त्ता वनौषधियों के उपलब्ध होने के कारण एक जनपद का नाम शल्याकर्षण प्रदेश रख दिया गया।[36] अपने ननिहाल से अयोध्या लौटते समय भरत एलधान के पास की नदी को पार कर ऊपर पर्वत जनपद में पधारे। वहाँ से शिला नामक नदी को पार कर भरत वहाँ से आग्नेय कोण में स्थित शल्याकर्षण नामक देश में गये। इस प्रदेश में देह के शल्य निकालने में सहायक औषधियाँ उपलब्ध होती हैं।

रामायण में ऐसी औषधियों का भी परिचय प्राप्त होता है जो आने वाले शल्यों से देह की रक्षा करने में समर्थ होती थीं। उन औषधियों में बला, अतिबला, विशल्यकरणी प्रमुख हैं। यहाँ भी यह स्पष्ट किया गया है कि यह चमत्कारी महौषधियाँ मंत्रपूर्ण होकर अपना प्रभाव और भी उग्र कर देती हैं। महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के निमित्त श्री राम और लक्ष्मण को अपने साथ इस प्रकार लिये जा रहे थे जैसे ब्रह्मा जी के पीछे दोनों अश्विनी कुमार जा रहे हैं[37] अयोध्या से डेढ़ योजन दूर आकर उन्होंने श्री राम और लक्ष्मण से कहा वत्स! सरयू जल से आचमन करो और बला और अतिबला औषधियों को मंत्र द्वारा ग्रहण करो। इनके प्रभाव से तुम्हें कभी थकावट का अनुभव नहीं होगा। किसी प्रकार ज्वर (रोग) नहीं होगा और तुम्हारे रूप में किसी प्रकार की विकृति नहीं होने पायेगी।[38] सोते समय या असावधानी में भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस भूतल पर बाहुबल में तुम्हारी

समानता करने वाला कोई नहीं रहेगा। तात! बला और अतिबला को मंत्र-पूत कर सेवन करने से तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं रह पायेगा। यह चातुर्य, ज्ञान, बुद्धि सम्बन्धी विकास करेगी। इन्हें ग्रहण कर लेने पर तुम्हें भूख-प्यास से भी कष्ट नहीं होगा। इस प्रकार अनेक गुणों से युक्त श्री राम को महामुनि विश्वामित्र ने बला तथा अतिबला को मंत्र-पूत कर सेवन कराया।

इसी प्रकार जब राम चौदह वर्ष के लिये वन में जाने के लिये तैयार हुए तब माता कौशल्या ने मंगलकामना तथा शुभाशीर्वाद प्रदान कर उनके मस्तक पर अक्षत रखकर चन्दन और रोली लगायी और सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली विशल्य करणी नामक शुभ औषधि लेकर रक्षा के उद्‌देश्य से मंत्र पढ़ते हुए उसको श्री राम के हाथ पर बाँध दिया और फिर उसके गुणों में उत्कर्ष लाने के लिये मंत्र का जप भी किया।[39] यह मंत्रोच्चारण माता के मुख से स्पष्ट न हो सका होगा क्योंकि वह पुत्र के होने वाले वियोग से दुःखी थीं। इस सब की पृष्ठभूमि में माँ का आशीर्वाद, औषधि का ज्ञान माता को अपने गृह परम्परा से गुरु परम्परा से या राजकीय चिकित्सकों से ही प्राप्त हुआ होगा।

रामायण में शल्य चिकित्सकों का पृथक् उल्लेख भी प्राप्त होता है। अन्य चिकित्सकों से इनको अलग माना गया है। सीता ने अशोक वन में त्रस्त होकर यह कल्पना की कि रावण निश्चय की अपने तीखे शस्त्रों से मेरे अंगों के टुकड़े कर डालेगा जैसे शल्य चिकित्सक किसी विशेष अवस्था में गर्भस्थ शिशु के टूक-टूक कर देता है।[40] यहाँ शल्य चिकित्सक के सिवाय उसके पैने शस्त्रों का तथा गर्भस्थ शिशु को किसी विशेष अवस्था में शल्य क्रिया द्वारा निकालने के कर्म का उल्लेख है।

रामायण में यह स्पष्ट है कि वीर योद्धा श्री राम, लक्ष्मण, मेघनाद तथा रावण मानव देह के मर्मों से भली-भाँति परिचित थे। वे यह भी जानते थे कि अमुक मर्म पर प्रहार करने से सामने वाला योद्धा अमुक स्थिति में आ जायेगा।[41] मर्म को जानने वाला मेघनाद समर में श्री राम तथा लक्ष्मण के मर्मों को अपने वाणों द्वारा भेदने लगा परिणामस्वरूप वे महान धनुर्धर वीर भूपाल मर्मस्थल के भेदन से विचलित एवं कृशकाय होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।[42] सर्वप्रथम—'पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः।' राम मर्म भेदन से गिरे। इस प्रकार सद्य प्राण हर मर्म तथा कालान्तर प्राण हर मर्म का उन्हें पर्याप्त ज्ञान प्राप्त था जिसका वे अस्त्र-प्रहार के समय सदैव स्मरण रखते थे।

सीता ने रावण का तिरस्कार करते हुए राम के बैर को ''अक्षि सूच्या प्रभृजसि जिह्वया लेढ़ि च क्षुरम्'' आँख में सुई चुभोना तथा जीभ से छुरे को चाटने के बराबर बताया है। अर्थात् न तो सुई से आँख सुरक्षित रह सकती है और न छुरी को जीभ से चाटने पर जीभ ही फटती या कटती है। आगे पुनः उसके इसे—''अयोमुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छसि'' तीक्ष्ण मुख वाले लोहे के शूलों पर चलने की अभिलाषा

करना बताया है। आँख एक नम्र स्थान है उसमें पीड़ा हो जाने पर दीप की ज्योति भी उसे सहन नहीं होती।[43] अंगद भी हृदय के मर्म से परिचित थे उन्होंने भी महोदर राक्षस के स्तनों के निकट छाती में इन्द्र के वज्र की तरह भयंकर मुक्के का प्रहार किया। परिणामतः महोदर मृत्यु को प्राप्त हुए।[44] शल्य-निष्कासन के समय या प्रहार होते-होते यदि रोगी मूर्च्छित हो जाये तो रामायण में "परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ति वाक्यवारिणा"[45] ठण्डे पानी से बेहोश हुए व्यक्ति के मुख पर छीटें लगावें या "ततस्य जल क्लिन्नेन पाणिना"[46] करें। जैसा कि विभीषण ने सुग्रीव को होश में लाने के लिये गीले हाथ से मुख पोंछ दिया था। यदि इस क्रिया को अधिक शक्तिशाली बनाना हो तो "सलिलमादाय विद्या परिजप्य च'[47] पवित्र जल को मंत्र पूत करके उसका प्रयोग किया जाये। यदि शल्य-प्रहार से या चिकित्सा करते समय व्यक्ति मृत-प्रायः हो जाये तो वह मृत है या जीवित उसकी परीक्षा भी आदिकवि ने विभीषण के मुख से करायी है- "न्ह्येनं हास्यते लक्ष्मी दुर्लभा या गतायुषम्"[48] जिनकी आयु समाप्त हो चली है उनके लिये जो दुर्लभ लक्ष्मी है (शोभा है) वह उनका त्याग कर देती है अर्थात् उनके मुख पर नूर नहीं रहता। मूर्च्छित श्री राम को चेतना में लाने के लिये वानरों ने "असिन्चन् सलिलैश्चैनं पदमोत्पल सुगन्धिभिः।"[49] कमल तथा उत्पल द्वारा सुगन्धित जल से उन पर असिंचन करने लगे।

रामायण में 'सुस्राव' बहने लगा घाव, 'निर्व्रण' घावरहित, 'सनियांसेववल्लरी', गोंद से लथ-पथ बेल के समान व्रणस्राव के खून से लथ-पथ शरीर आदि व्रणों की विभिन्न अवस्थाओं का भी उल्लेख है। 'रुधिरं प्रसृतास्तत्र रस सारमिव द्रुमाः' ।[50] घाव पर नमक छिड़कने "धारयितुं लवणाम्भइवोल्वणम्"[51] का उल्लेख भी रामायण में है। अस्त्र-प्रहार से विभिन्न प्रकार के रक्त-वमनों का उल्लेख भी रामायण में किया गया है—"धूम्रशोणितोद्गारी। सफेन शोणितोद्गार। आदि रुधिरं प्रसृतास्तत्र रस सारमिव द्रुमाः।।"[52] व्रणों से रक्त, मांस तथा मेद, चरबी का स्राव भी वर्णित है। इनमें एक प्रकार की गंध का उल्लेख भी इस काव्य में है।

इस प्रकार युद्ध पीड़ित योद्धाओं के शल्य-निष्कासन के लिये लक्ष्मण सहित श्री राम सक्रिय हो गये और उन्होंने युद्ध के मुहाने पर वानरों के शरीर से वाण निकाले। "हरी विशल्यान् सहलक्ष्मणेन, चकार रामः परमाहवाग्रे"[53] रामायण में मोहनी औषधि[54] का भी उल्लेख हैं। इसी प्रकार इन्द्रजीत को हराकर लक्ष्मण जब श्री राम से मिले तो श्री राम ने उन्हें हृदय से लगाया और प्रसन्नतापूर्वक सुषेण वैद्य को बुलाकर कहा, - "परम् बुद्धिमान सुषेण! तुम शीघ्र ही ऐसा उपचार करो जिससे ये मित्र वत्सल सुमित्रा कुमार पूर्णतः स्वस्थ हो जायें और इनके शरीर से सभी वाण निकलकर घाव भर कर सारी पीड़ा दूर हो जाये।" इसी प्रकार श्री राम ने उन्हें योद्धाओं तथा विभीषण को भी निर्व्रण स्वस्थ कर उपचार करने की आज्ञा दी—

विशल्योऽयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः।
यथा भवति सुस्वस्था तथा त्वं समुपाचर।[55]

विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः।
ऋक्षवानर सैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम्।।[56]

सुषेण ने आज्ञा पाकर लक्ष्मण के नाक में एक बहुत ही उत्तम औषधि लगा दी जिसकी गंध को सूंघते ही लक्ष्मण के शरीर के वाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा घाव भर कर दूर हो गयी। इसी प्रकार सुषेण ने सभी वानरों तथा विभीषण की भी चिकित्सा की और वे स्वस्थ तथा हर्षित हों गये।[57] इस प्रकार की चिकित्सा सुषेण ने एक बार नहीं अनेक बार की और जब आवश्यकता पड़ी करते रहे। कई बार तो योद्धा स्वयं ही अपने शल्यों का निष्कासन कर लिया करते थे।

एक बार लक्ष्मण रावण के द्वारा छोड़ी गयी महान प्रज्वलित शक्ति के प्रहार से अचेत होकर गिर पड़े। वह शक्ति उनके हृदय में लगी थी और पार होकर धरती तक पहुँच गयी थी। महाबली रघुनाथ जी ने उस शक्ति को अपने दोनों हाथों से पकड़कर लक्ष्मण के शरीर से निकाला और उसे तोड़ डाला। इस बार भी मृत प्रायः लक्ष्मण को सुषेण ने ही जीवित किया। सुषेण ने श्री राम को स्वस्थ करते हुए कहा—आपके भाई शोभा-वर्धन लक्ष्मण मरे नहीं हैं। देखिये इनके मुख की आकृति अभी बिगड़ी नहीं है और न इनके चेहरे पर कालापन आया है, इनका मुख प्रसन्न एवं कांतिमान दिखाई दे रहा है। इनके हाथों की हथेलियाँ कमल जैसी कोमल हैं, आँखें भी बहुत साफ हैं मरे हुए प्राणियों का ऐसा रूप नहीं होता। इनकी साँस चल रही हैं और हृदय बार-बार कम्पित हो रहा है। ये सभी लक्ष्मण जी के जीवित होने की सूचना दे रहे हैं।[58]

फलतः सुदूर पर्वत से विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी तथा संधानी नामक प्रसिद्ध औषधियाँ मँगायी गयीं जिन्हें हनुमान लेकर आये थे; और उन्हें सूंघते ही लक्ष्मण विशल्य तथा विरुज हुए यानि वह मृत्यु के मुख से लौट आये। इसी प्रकार एक बार और इन्द्रजीत के अधीन राक्षसों द्वारा श्री राम, लक्ष्मण तथा अन्य सेना नायक मृतप्रायः हो गये उस समय भी जाम्बवान, विभीषण ने परस्पर सलाह कर हनुमान जी को पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर जाने को कहा। जाम्बवान ने उन औषधियों का विस्तृत परिचय देते हुए कहा—ऋषभक़ तथा कैलाश पर्वत शिखरों के बीच में एक दिव्य औषधियों का पर्वत दिखाई देगा जो अत्यन्त ही प्रदीप्त है। वानर सिंह उस पर्वत-शिखर पर उत्पन्न चार औषधियों को तुम्हें लाना है वे हैं—मृत संजीवनी, विशल्य करणी, सवर्ण करणी और संधानी। हनुमान जी वहाँ गये—वे दिव्य औषधियाँ, ये जानकर कि कोई उन्हें लेने आया है तत्काल अदृश्य हो गयीं। फलतः शिखर को उखाड़कर वे उसे उठाकर ले आये। उन औषधियों के प्रयोग से सभी योद्धा स्वस्थ हो गये, उनमें श्री राम और लक्ष्मण भी थे। हनुमान जी ने उस पर्वत को पुनः उठा लिया और उसके स्थान पर ले जाकर रख दिया। इस प्रकार ये चारों औषधियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपलब्ध थीं तथा इन्हें सुषेण तथा जाम्बवान भी जानते थे। क्षीर सागर के तट पर चन्द्र और द्रोण पर्वतों पर भी विशल्यकरणी तथा संजीवकरणी औषधियाँ प्राप्त

होती थीं। एक बार और लक्ष्मण शक्ति के प्रहार के बाद अपने विष्णु के अंश रूप का स्मरण कर अर्थात् आत्म-विश्वास द्वारा ही स्वस्थ हो गये।

आज के युग में विशल्य-करणी, सुवर्णकरणी, मृत संजीवनी तथा संधानी औषधियाँ अपने मौलिक रूप में अप्राप्य हैं। यह संभव भी है क्योंकि आदि काव्य बने 8 हजार वर्ष बीत चुके होंगे परन्तु उनके गुणों को यादकर आज भी उनकी दिव्यता के विषय में संदेह नहीं रहता। जैसाकि उनके नाम से स्पष्ट है—

विशल्य-करणी शल्य निष्कासन में उपयोगी थी, तथा सुवर्ण-करणी मानव देह की वैवर्ण्यता को ठीक करती थी, मृत संजीवनी मृत व्यक्ति को जीवित करने में समर्थ थी तथा संधानी अस्थि संधान करने में सहायक होती थी।

सम्पूर्ण युद्ध के बाद जब इन्द्र आदि देव श्री राम को बधाई देने आये तब इन्द्रादि देव ने प्रसन्न होकर श्री राम से कहा ''जो इच्छा हो सो मुझसे कह दो''। श्री राम ने देवेश्वर को प्रसन्न जानकर कहा—देवेश्वर मेरे लिये युद्ध करते हुए मारे गये ये वानर, भालू आदि योद्धा पुनः जीवित हो उठें। मैं इन्हें निरोग, निर्व्रण तथा बलपौरुष से सम्पन्न देखना चाहता हूँ।

इन्द्र के उपचार तथा उनकी कृपा से बानर, लंगूर तथा रीछ, भालू नींद टूटने से सोकर उठे मनुष्यों की भाँति नीरोग, व्रणहीन तथा बल-पौरुष से सम्पन्न होकर उठ बैठे।[59] वे सब वानर श्रेष्ठ जिनके सब अंग पहले घावों से भरे थे उस समय घाव रहित हो गये और सभी सोकर जागे हुए की भांति सहसा उठ खड़े हो गये।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज से आठ हजार वर्ष पूर्व अर्थात् वाल्मीकि रामायण के निर्माणकाल में भारतीय-शल्य-शास्त्र (शालाक्य) पर्याप्त रूप से उन्नत था और उस समय ऐसी पर्याप्त औषधियाँ भी उपलब्ध थीं जो अपने चमत्कार द्वारा आने वाले शस्त्र-प्रहार से मनुष्य की रक्षा कर सकती थीं तथा मरणासन्न शल्याक्रान्त रोगी को भी समुचित रूप से शल्य से मुक्ति दिला सकती थीं।

वर्तमान चिकित्सा-प्रणाली अत्यन्त विकसित मानी जाती है, आज के विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है यदि किसी व्यक्ति का कोई अंग कट जाये या बेकार हो जाये तो उसके स्थान पर दूसरे अंग का प्रत्यारोपण कर दिया जाता है किन्तु यह प्रत्यारोपण का विचार नवीन नहीं है। रामायण काल में भी बहुत विद्वान एवं कुशल शल्य-चिकित्सक थे जो व्यक्ति के अंगों के कट जाने पर उसके स्थान पर अन्य किसी के अंगों का प्रत्यारोपण कर दिया करते थे और व्यक्ति पुनः पूर्ववत् अनुभव करने लगता था। रामायण में 'मेषवृषण' का उल्लेख इसका स्पष्ट उदाहरण है—

मेषवृषण

एक बार इन्द्र महात्मा गौतम का वेष धारण कर पत्नी अहिल्या के पास आश्रम में गये और अहिल्या ने उनको अपना पति ही मानकर वैसा ही आचरण एवं व्यवहार किया। यद्यपि वह यह समझ गयी थीं कि यह इन्द्र हैं तथापि 'देवेश्वर मुझ पर प्रसन्न

हुए हैं' ऐसा मन में सोचकर उन्होंने इन्द्र के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और जब महर्षि गौतम वहाँ पधारे तो उन्हें आया देख इन्द्र वहाँ से भागने लगे। महर्षि ने उन्हें अपने वेष में देखा तो सारी स्थिति समझकर वह उन पर क्रोधित हो गये और श्राप दे दिया; "दुर्मते! तूने मेरा रूप धारण करके यह न करने योग्य पाप-कर्म किया है, इसलिये तू विफल (अण्डकोषों से रहित) हो जायेगा।[60] रोष में भरे हुए महात्मा गौतम के ऐसा कहते ही इन्द्र के दोनों अण्ड कोष उसी क्षण पृथ्वी पर गिर पड़े।[61] तदनन्तर अण्डकोषों से रहित होकर वह बहुत डर गये। वे अग्नि आदि देवों से इस प्रकार बोले—'देवताओ ! महात्मा गौतम की तपस्या में विघ्न डालने के लिये मैंने उन्हें क्रोध दिलाया है, मुनि ने क्रोध पूर्वक भारी श्राप देकर मुझे अण्ड कोष से रहित कर दिया है।[62] इन्द्र का यह वचन सुनकर मरुद्रगणों सहित अग्नि आदि समस्त देवता काव्य वाहन आदि पितृ-देवताओं के पास जाकर बोले,[63] 'पितृगण! यह आपका भेड़ा अण्ड-कोष से युक्त है और इन्द्र अण्ड-कोष रहित कर दिये गये हैं। अतः इस भेड़े के दोनों अण्डकोषों को लेकर आप शीघ्र ही इन्द्र को अर्पित कर दें।[64] अण्डकोषों से रहित किया हुआ यह भेड़ा इसी स्थान में आप लोगों को परम संतोष प्रदान करेगा। अतः जो मनुष्य आप लोगों की प्रसन्नता के लिये अण्डकोष रहित भेड़ा दान करेंगे, उन्हें आप लोग उस दान का उत्तम एवं पूर्ण फल प्रदान करेंगे।[65] अग्नि की यह बात सुनकर पितृ-देवताओं ने एकत्र हो भेड़े के अण्ड कोषों को उखाड़कर इन्द्र के शरीर में उचित स्थान पर जोड़ दिया।[66]

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंग के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पितृ-देव-गण कुशल-शल्य-चिकित्सक थे जो एक-दूसरे के अंगों का प्रत्यारोपण एवं शल्य-क्रिया सफलतापूर्वक करने में कुशल थे।

गर्भस्थ शिशु के अंगों को काटकर निकालना आदि

वाल्मीकि रामायण में गर्भस्थ शिशु को शल्य-चिकित्सक द्वारा शल्य-क्रिया के माध्यम से टुकड़े-टुकड़े कर बाहर निकालने का भी उल्लेख मिलता है यथा—सीता ने अशोक-वन में अत्यन्त दुःखी होकर यह कल्पना की, कि रावण निश्चय ही अपने तीखे शस्त्रों से मेरे अंगों के टुकड़े कर डालेगा जैसे शल्य चिकित्सक किसी विशेष अवस्था में गर्भस्थ शिशु के टूक-टूक कर देता है।[67]

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में रामायण में वर्णित शल्य-सामग्री का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत किया गया है, जो तत्कालीन समाज की प्राचीनता के आधार पर अत्यन्त उत्कृष्ट एवं उच्च कोटि का है।

संदर्भ

1. सु. सू. 26/3
2. च. सू. 30/26
3. सु. सू. 19 अ. सं. सू. 1/10, अ. हृ. सू. 1/5
4. शल्यं नाम विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोह लोष्ठास्थिवालनखपूयास्राव दुष्टव्रणान्तर्गर्भ शल्योद्वाराणार्थ यन्त्र शस्त्र क्षाराग्निप्राणिधानार्थं व्रणविनिश्चयार्थञ्च सु. सू. 1/9

5. च. सू. 30/26
6. सु. सू. 1/10
7. सू. 1/10 (सु.सू.)
8. सूत्र 1/5 (सु.सू.)
9. शालाक्यं नामोर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवण-नयन-वदन-घ्राणादि संश्रितानां व्याधीनां प्रणिधानार्थं च । सु. सू. 1/10
10. समासतश्चतुर्विधं शल्यं भवति वृत्तद्वित्रिचतुष्कोभेदेन।
    तददृश्यमानं व्रणसंस्यानादनुमिमीत।। अ. सं. 37/13)
11. अष्टांग संग्रह 38/3
12. तश्च शस्त्रकर्माष्टविधा। तद्यथा-छेद्यं, भेद्यं, लेख्यं, वेध्यं, एण्यम् आहार्यम, विस्राव्यं सीव्यमिति।। सुश्रुत 5/5
13. च. चि. अ. 25
14. सुश्रुत संहिता पूर्वाद्ध 5/5
15. सुश्रुत संहिता पूर्वाद्ध 5/5
16. सुश्रुत पूर्वाद्ध 5/6
17. सु. सू. 7
18. अ. हृ. सू. 25
19. अ. सं. 34/4
20. अष्टांग सं. 38/13, 14
21. सु. सू. 5
22. अष्टांग संग्रह 38/15, 16, 17
23. तत्र शस्त्र कर्म अष्टिवधम्। सु. 1
24. पाटनं व्यधन चैव देदनं लेचानं तथा प्रोच्छनं सीवक चैव षड्विधं शस्त्रकर्म तत् (चरक)।
25. अ. हृ. सू. 29
26. अष्टांग संग्रह 38/18
27. सु. सू. 5/10
28. अष्टांग संग्रह 38/20, 21, 22 23
29. सु. सू. 5/17
30. विशेषतश्च दिवास्वप्नादव्रणे शोफ कण्डू राग रुक् पूय वृद्धिः।।
    स्त्रीणां तु स्मृति संस्पर्शदशनैश्चलिते स्रुते।
    शुक्रे व्यवाजयानृदोषानसंसर्गेऽप्यवाप्नुयात्।। अ. सं. 38/25, 26
31. व्रणे श्वयथुः अयासात् स च रागश्च जागरात्।
    तौ च रुक् च दिवास्वापात् ताश्च मृत्युश्च मैथुनात्।। सु. सू. 19/36
32. तस्माद् अन्तर्बहिश्चैव सुशुद्धं रोपयेद व्रणम्।
    रूढेऽपि अजीर्णव्यायामव्यवायादीन् विवर्जयेत्।।
33. हर्षं क्रोधं भयं चापि यावत् स्थैर्योपसंभवात्।।
    सु सू. 5/38अष्टांग संग्रह 38/27
34. बालोशीरैश्च वीज्येत न चैनं परिघट्टयेत।
    न तुदेन्न च कण्डूयेच्चेष्टमानश्च पालयेत्।।

स्निग्ध वृद्धद्विजातीनां कथाः श्रृण्वन्मनः प्रियाः।
आशावान्याधिमोक्षाय क्षिप्रं व्रणमपोहति।। अ. सं. 38/31, 32

35. पुनश्च तृतीयेऽहनि प्रक्षालनादि पूर्ववद्व्रणकर्म कुर्यात्।
द्वितीये दिवसे मोक्षणदादौ विग्रथितो व्रणश्चिरादुपरोहत्युग्ररुजश्च भवति।। अ. संग्रह 38/33

36. वाल्मीकि रामायण अयो. 71/3
एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्।

37. पितामह मिवाश्विन्यौ बा. 28/8
शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम्।।

38. मंत्रग्रामं गृहाणत्वं बलामतिबलां तथा।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रुपस्य विपर्ययम्।। बा. 22/13

39. औषधिं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम्।
चकार रक्षां कौसल्या मंत्रैरभिजजाप च।। अ. 25/38

40. तस्मिन्ननागच्छति लोक नाथे गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः।
नूनं मामांगान्य चिरादनार्यः शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः।। सु. 28/6

41. ततो मर्मसुमर्मज्ञो। यु. 45/15

42. तौ सम्प्रचलितौ वीरौ मर्म भेदेन कर्षितौ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगती पतिः।। यु. 45/18

43. दीपो नेत्रातुरस्येव यु. 116/17

44. राक्षसस्य स्तनाभ्याशे मर्मज्ञो हृदयं प्रति। यु. 98/21

45. सु. 67/8

46. यु. 46/34

47. यु. 46/35

48. यु. 46/40

49. यु. 83/12

50. यु. 69/60

51. अर. 22/2

52. यु. 69/60

53. यु. 59/145

54. मोहनेन वा. यु. 72/7

55. यु. 91/21

56. यु. 91/22

57. यु. 91/27

58. नैवपंचत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
न हास्यविकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम्।
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम्।। यु. 101/25-26

59. सव्रणैः प्रथमं गात्रैरिदानीं निर्व्रणैः समैः।
ततः समुत्थिताः सर्वेः सुप्त्वैव हरिसत्तमाः।। यु. 120/17

60. बा. 48/27

61. बा. 48/28

62. बा. 49/1-3

63. बा. 49/5

64. बा. 49/6

65. बा. 49/7

66. बा. 49/8

67. तसिमन्नगच्छति लोकनाथे गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः।
नूनं मामांगान्य चिरादनार्थः शस्त्रेः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः।। सु. 28/6

दशम परिवर्त

उपसंहार

निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

"वाल्मीकि रामायण तथा आयुर्वेद" नामक दस अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत ग्रन्थ रामायण पर आधारित सभी आयुर्वेदिक सामग्री की समीक्षा करता है। उक्त कार्य के लिये वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य एवं औदीच्य संस्करणों का उपयोग किया गया है। इस कार्य के लिये गीता-प्रेस गोरखपुर का तीसरा संस्करण संवत् 2033 ही स्वीकार कर मुख्य रूप से उसी को मार्ग-दर्शक मानकर कार्य किया गया है। विवेच्य सामग्री के पाठों की शुद्धि के अनन्तर ही यह कार्य आरम्भ किया गया।

लौकिक संस्कृत साहित्य में आदिकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस महाकाव्य में ज्योतिष, तन्त्र, आयुर्वेद, शकुन आदि शास्त्रों का भी समावेश किया गया है। रामायण में राजनीति, मनोविज्ञान आदि के तत्वों को भी रखा गया है।

इन सभी गुणों के आकर होने से ही यह काव्य सर्वाधिक लोक-प्रिय, अजर, अमर, दिव्य तथा कल्याण कर है। इसका प्रभाव अठारह पुराणों, महाभारत, शत्रुञ्जयमहात्म्य, रघुवंश, सेतुबन्ध, भट्टिकाव्य, महानाटक, अनर्घराघव, बाल रामायण, कादम्बरी एवं वृहत्संहिता पर सुस्पष्ट रूप से है। किमधिकं, सन्तों के शब्दों में यह रामायण 'श्री राम तनु' है। इसलिये अनादि काल से ही इसके श्रवण-पठन-अनुष्ठानादि की परम्परा है।

प्राक्कथन, भूमिका, अध्ययन का उद्देश्य—में इस महाकाव्य के अद्यावधि प्रकाशित सभी संस्करणों एवं टीकाओं की चर्चा की गयी है। इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य का विशिष्ट अध्ययन जिन पाश्चात्य एवं प्राच्य विद्वानों द्वारा हुआ है उनका भी सग्रन्थ नाम निर्देश कर दिया गया है। इस महाकाव्य के विभिन्न विषयों पर जो भी प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध हैं उनका भी संकेत यहाँ कर दिया गया है। आयुर्वेदीय विषयों पर भी जो निबन्ध पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे गये उनका भी सन्निवेश कर देना यहाँ उचित समझा गया। उक्त ग्रन्थ महाकाव्यगत उस अध्ययन की न्यूनता की पूर्ति करता है जिस पर अभी तक कोई कार्य नहीं किया गया। अपने इस कार्य की उपलब्धि एवं वैशिष्ट्य का

भी यहाँ चित्रण कर दिया गया है।

प्रथम परिवर्त का शीर्षक 'विषयावतरण-संस्कृत साहित्य एवं आयुर्वेद विवेचन' है। यह पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में संस्कृत साहित्य की विशालता का वर्णन है, इसके अन्तर्गत वैदिक युग से आधुनिक तक सभी रचनाओं का नामोल्लेख प्रस्तुत किया गया है। इसी परिच्छेद में 'वाल्मीकि रामायण' का विविध-दृष्टि-कोणों से अवलोकन किया गया है। यशा—उपजीव्य काव्य वाल्मीकि रामायण, आदि काव्य रामायण, रामायण का आकार, विषय वस्तु—उत्पत्ति काल, रामायण के प्रक्षिप्ताँश, रचना काल, रामायण का महाकाव्यत्व-रामायण कालीन समाज एवं संस्कृति, रामायण के सभी संस्करण-टीकाएँ एवं प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में जिन-जिन संस्करणों का प्रयोग किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में यह वर्णन प्राप्त होता है कि अब तक विविध साहित्यिक ग्रन्थों में आयुर्वेदिक दृष्टि से शोध कार्य हुए हैं, वे अनुमानतः कौन-कौन से हैं अर्थात् उनके एवं उनके रचनाकारों का नामोल्लेख किया गया है साथ ही उनका शोध-दृष्टि से क्या महत्व है यह भी बताया गया है। तृतीय परिच्छेद आयुर्वेद का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय प्रस्तुत करता है—इसके अन्तर्गत काय चिकित्सा, कौमारभृत्य, गृह-चिकित्सा, शालाक्य तन्त्र, शल्य-चिकित्सा, विष चिकित्सा, जरा-चिकित्सा एवं वाजीकरण चिकित्सा—इन आठ आयुर्वेदिक अष्टाङ्गों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ परिच्छेद में आयुर्वेद-साहित्य का काल-क्रम से विभाजन प्रस्तुत किया गया है—यथा 1. संहिता काल-5 से 6 शताब्दी, 2. व्याख्या काल-7 से 15 शताब्दी एवं विवृति काल 16 से आधुनिक काल तक। पंचम परिच्छेद में यह बताया गया है कि वाल्मीकि रामायण के काल में आयुर्वेदिक साहित्य की क्या स्थिति थी, अर्थात् उसका अस्तित्व समाज में था भी या नहीं। इसके साथ ही तत्कालीन चिकित्सकों का सामाजिक स्तर एवं सम्मान क्या था? तथा इसी में 'वैद्य' एवं 'भिषक्' शब्दों की व्याख्या भी प्रस्तुत की गयी है।

द्वितीय परिवर्त का शीर्षक है—'वाल्मीकि रामायण में शरीर-विज्ञान प्रकरण।' यह परिवर्त 4 अध्यायों में विभक्त है तथा शरीर-विज्ञान-विषयक सामग्री का परिचायक है। इसके प्रथम परिच्छेद में छः उपखण्ड हैं—1. 'आयु और उसका आधार' इसके अन्तर्गत वा. रा. में आयु का कहाँ-कहाँ उल्लेख है तथा चरक, सुश्रुत आदि चिकित्सा ग्रन्थ इसके विषय में क्या बता रहे हैं, इसी प्रकार 2. आत्म बल, 3. शरीर की रचना, शरीर का प्राविभाग, त्वचा, कला, दोष, मल 4. अन्तःकरण, 5. इन्द्रियाँ 6. प्रकृति भेद—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक प्रकृति आदि का रामायण के सन्दर्भ में उल्लेख एवं चरक संहिता आदि चिकित्सा ग्रन्थों के आधार पर समीक्षा भी प्रस्तुत की गयी है। द्वितीय परिच्छेद में प्रशस्त सामुद्रिक लक्षणों का उल्लेख किया गया है। राजा राम, लक्ष्मण आदि का हनुमान द्वारा तथा

सीता के शरीर में विद्यमान प्रशस्त सामुद्रिक लक्षणों की ससन्दर्भ प्रस्तुति एवं सामुद्रिक शास्त्र के ग्रन्थों के आधार पर उनकी समीक्षा भी इसी परिच्छेद में प्रस्तुत की गयी है। तृतीय परिच्छेद स्वास्थ्य का महत्व एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्वों का प्रतिपादन करता है। इसमें वंशानुक्रम, वातावरण, आहार की समीक्षा की गयी है तथा चतुर्थ परिच्छेद में मांस तत्व (प्रोटीन) एवं उसके कार्य तथा कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण, जीवनीय द्रव्य, जल, स्वस्थ वृत सद्वृत आदि का रामायण के सन्दर्भ में उल्लेख एवं चरकादि ग्रन्थों से समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

तृतीय परिवर्त का शीर्षक 'शरीर शुद्धि एवं वैयक्तिक स्वस्थ वृत्त की सामग्री' है। यह भी तीन उपखण्डों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद के अन्तर्गत दिनचर्या का वर्णन किया गया है यथा—प्रातः जागरण, शौच, सन्तोष, आचमन, दन्त-धावन, पूजा, सन्ध्योपासना, पादुका-धारण, छत्र-धारण, दण्ड—धारण, पुष्पाभरण धारण, अनुलेपन आदि तत्वों का रामायण में उल्लेख एवं शास्त्रों द्वारा उनकी सही स्थिति आदि के रूप में समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। द्वितीय परिच्छेद में भक्ष्याभक्ष्य विचार का उल्लेख किया गया है इसमें आहार, भोजन के गुण, समय, भोजन का स्थान, भोक्ता, पक्वान्न भोजन, फलाहार भोजन, मांसाहार भोजन, पेय भोजन, भोजनोत्तर कर्म, माध्यनिदनीय कर्म, शैया, शयनासन, रात्रिचर्या, आसव, मदिरापान, मधुपान आदि की रामायण के सन्दर्भ में समीक्षा की गयी है। तृतीय परिच्छेद ऋतुचर्या विषयक है। इसमें शास्त्रोक्त ग्रीष्म, वर्षा आदि षड्ऋतुचर्या का वाल्मीकि रामायण के सन्दर्भ में उल्लेख किया गया है तथा उसकी समीक्षा भी विविध शास्त्रों के आधार पर की गयी है।

चतुर्थ परिवर्त का शीर्षक है—'वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध औषध-परिचय एवं द्रव्य-गुण-शास्त्र की सामग्री।' इसके अन्तर्गत भी तीन परिच्छेद हैं जो विविध औषधियों का परिचय देते हैं। प्रथम परिच्छेद में भौतिक एवं प्राकृतिक औषधियों का उल्लेख एवं उनके गुण-दोष परक समीक्षा तथा सामान्य जन-जीवन में उनके एक-दो चिकित्सीय उपयोगों का भी उल्लेख किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में वानस्पत्य औषधियों का नामोल्लेख-विविध भाषाओं में नाम, गुण, दोष एवं कुछ चिकित्सीय उपयोग भी बताये गये हैं तथा रामायण में इनकी उपलब्धि भी बताई गयी है। इन औषधियों के साथ-साथ कुछ दिव्य औषधियों यथा— संजीवनी, विशल्य-करणी, संधानी आदि का भी उल्लेख किया गया है। तृतीय परिच्छेद में धातुज औषधियों यथा—हिरण्य, पिङ्ग, नमः वज्रः आदि की गुण-दोष परक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

पञ्चम परिवर्त में रोगोत्पत्ति के कारणों का उल्लेख किया गया है—इसका शीर्षक है 'वाल्मीकि रामायण में रोगोत्पत्ति के कारण।' यह परिवर्त तीन उपखण्डों

में विभक्त है। प्रथम खण्ड में शारीरिक कारण यथा– वात, पित्त, कफ, असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग आदि का शास्त्रोक्त परिचय एवं वा.रा. में उसके सन्दर्भ का उल्लेख किया गया है। द्वितीय खण्ड में मानसिक कारण यथा–काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या आदि की समीक्षा तथा तृतीय खण्ड में आगन्तुक कारणों तथा आघातजन्य, ऋतु-सम्बन्धी आदि कारणों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

षष्ठ परिवर्त में विविध रोग एवं उनका निदान प्रस्तुत किया गया है, इस परिवर्त का शीर्षक है, "वाल्मीकि रामायण में वर्णित रोग एवं उनका निदान।" यह परिवर्त पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में शारीरिक रोगों यथा अतिसार, ज्वर, अंग-भेदन, राजयक्ष्मा आदि विविध रोगों का रामायण के परिप्रेक्ष्य में वर्णन एवं उनका विविध चिकित्सा ग्रन्थों के आधार पर निदान प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में मानसिक रोग यथा–मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार आदि रोगों के लक्षण एवं चिकित्सा तथा प्रकार रामायण एवं चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों के आधार पर बताये गये हैं। तृतीय परिच्छेद में आगन्तुक रोगों की समीक्षा एवं चिकित्सा का वर्णन है जिनमें अर्दित, आघात, वज्रपात आदि विविध रोगों का उल्लेख है। चतुर्थ परिच्छेद में स्त्री रोग एवं गर्भावक्रान्ति विषयक सामग्री है। इसके अन्तर्गत रजस्वला, गर्भह्रास, गर्भपात, मूढ़गर्भ, बन्ध्यात्व, औषधि से पुत्र प्राप्ति आदि तत्वों की समीक्षा एवं रामायण में उनकी प्राप्ति का वर्णन किया गया है साथ ही गर्भ में भ्रूण का मासानुमासिक विकास एवं मातृज, पितृज एवं आत्मजभाव आदि की समीक्षा भी की गयी है। पंचम परिच्छेद में विष-चिकित्सा का वर्णन है। रामायण में उल्लिखित सर्प-विष, कन्द विष आदि का प्रभाव एवं उनकी चिकित्सा भी यहाँ उल्लिखित है।

सप्तम परिवर्त में प्राकृतिक चिकित्सा विधान प्रस्तुत किया गया है। यह भी चार उपखण्डों में विभक्त है। वाल्मीकि रामायण काल में भी प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचलन था, इस तथ्य की पुष्टि प्रस्तुत परिवर्त में की गयी है। प्रथम खण्ड में अग्नि द्वारा या सूर्य रश्मियों द्वारा चिकित्सा का वर्णन है, द्वितीय खण्ड में जल द्वारा चिकित्सा तथा तृतीय खण्ड में मृतिका द्वारा चिकित्सा एवं चतुर्थ खण्ड में वायु द्वारा चिकित्सा का वर्णन है तथा रामायण के सन्दर्भ में इसकी समीक्षा की गयी है।

अष्टम् परिवर्त में तान्त्रिक चिकित्सा एवं भूतविद्या विषयक सामग्री का समावेश किया गया है। इसका शीर्षक है 'वाल्मीकि रामायण में तान्त्रिक चिकित्सा एवं भूत विद्या विषयक सामग्री' यह परिवर्त भी चार परिच्छेदों में वर्णित है। प्रथम परिच्छेद में मणिबन्धन (डोरा, गण्डा, ताबीज) आदि द्वारा चिकित्सा, द्वितीय खण्ड में अभिमार्जन (झाड़ा, फूका आदि) द्वारा चिकित्सा, तृतीय खण्ड में कृत्या (प्रयोग एवं अपहरण) द्वारा चिकित्सा एवं चतुर्थ खण्ड में आशीर्वाद के बल से रोगों को

दूर करने एवं पुत्रेष्टि यज्ञ, मंत्र द्वारा सर्प-पकड़ना, वशीकरण, शकुन-विज्ञान एवं स्वप्न-विज्ञान आदि तत्वों का उल्लेख एवं रामायण के सन्दर्भ में इनकी समीक्षा प्रस्तुत है।

नवम् परिवर्त में शल्य-चिकित्सा विधान बताया गया है। 'वाल्मीकि रामायण में शल्य-चिकित्सा-विधान' इसका शीर्षक है। इसके अन्तर्गत शल्य की शास्त्रोक्त अवस्थाओं, उपकरणों, विधियों, रोगी, परिचर्या, मेषवृषण एवं गर्भस्थ शिशु के अंगों को काटकर निकालना जैसे शल्य सम्बन्धी तत्वों की रामायण के सन्दर्भ में समीक्षा की गयी है।

दशम् परिवर्त में सम्पूर्ण ग्रन्थ का सार स्वरूप उपसंहार है, जिसमें निष्कर्ष एवं मूल्यांकन निहित है। इसके अन्तर्गत दसों परिवर्तों के सार को संक्षेप में एक दृष्टि में विद्वत्जनों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

अंत में अनेक परिशिष्ट हैं जिनके माध्यम से वानस्पतिक औषधियों, औषधि शब्दावलि, रोग नामावलि, खनिज-द्रव्यों, जाङ्गम द्रव्यों, शरीर-विशेषज्ञों एवं शरीरावयवों की ससन्दर्भ परियोजना की गयी है। इस प्रकार परिशिष्टों की संख्या 6 है। ग्रन्थ के अंत में ससन्दर्भ ग्रन्थावलि भी दी गयी है। इस प्रकार लेखिका का यह पूर्ण प्रयास रहा है कि 'आदि काव्य काल' से ही 'आयुर्वेद' जगत की सेवा करता रहा है, इस तथ्य से 'साहित्य जगत' को परिचित करा सके।

परिशिष्ट संख्या I

I. वा. रामायण में उल्लिखित वानस्पतिक औषधियों की सूची

रामायण में द्रव्य का नाम	**हिन्दी तथा लेटिन नाम**	**प्रसंग**	**स्थान का प्रयोग**
अगरु	अगर	अयो. 14/28	श्री राम राज्याभिषेक के समय अयोध्या नगरी में धूप
Aquilaria	Agallacha Roxb	अयो. 17/1-2	श्री राम के अभिषेक में
		अयो. 3/6	अगरु धूप
		अयो. 67/16	चिता जलाने के लिये
		अयो. 71/28	धूप के लिये
		अयो. 76/17	श्मशान में चिता पर
		अयो. 76/28	बिना राजा के नगर की स्थिति
		अयो. 88/6	धूप के निमित्त
		अयो. 91/83	लेप के लिये
		अयो. 94/24	चित्रकूट में

		अयो. 114/20, 22	धूप के निमित्त
		अर. 35/22	लंका के समुद्र तट पर
		कि. 33/7	किष्किन्धापुरी में
		कि. 50/7	दक्षिण गुफा में
		सु. 9/27	रावण के निवास गृह में
		सु. 29/3	शुभ शकुन
		यु. 21/4	बालक राम की बाहों पर लेप
		यु. 75/8	अगरू जल का प्रयोग (अर्क)
		यु. 111/105	रावण के शव को जलाने के लिये
		उ. 42/2	अयोध्या में
अग्नि-मुख	मल्लातक 'कलिहारी'	अर. 73/5	पंपासर के पास
	Seme Car Kicr		
	Anacar dium		
अतिमुक्त	तिनिश	अर. 75/24	पंपासर के पास
	Mountainchonley	कि. 27/17	तुंगभद्रा नदी के किनारे
		उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वनिका में
अतिबला	कंघी	बा. 22/13,15,18	विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त
अभिष्ट	काला अगरु		
	Abutilon Indicum		
अम्बुज	कमल, समुद्र फल	कि. 30/41	माल्यवान पर्वत पर
	Nelumbo		
	Nucifera	उ. 4/18	उपमा प्रयोग
	Gaerlin		
अर्क	आक	अयो. 94/6	अर्क पुष्प (पुष्पार्क)
	Calotropis		
	Procera		
अर्जुन	अर्जुन Terminalia	अर. 60/14	अप्रत्यक्ष सीता के विषय में राम का प्रश्न
	Arjuna		
		कि. 1/80	पंपासर के अरण्य में
		कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 28/4, 9, 34, 41	माल्यवान पर्वत पर

		कि. 30/25	माल्यवान पर्वत पर
		यु. 4/80	मलय पर्वत कानन में
		यु. 22/56	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 39/8	सुवेल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य
		उ. 26/5	कैलाश में
		उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वनिका में
अरणी	अग्निमंथ	अयो. 30/23	अग्नि उत्पन्न करने के लिये
	Cleroden dron		
	Phlomiclis	अयो. 104/26	अग्नि उत्पन्न होकर उसे ही जला डालती है
		यु. 111/116	रावण की चिता जलाने के लिये
		उ. 57/18, 19	मिथि की उत्पति के निमित्त
अरविन्द	कमल	अर. 75/21	पंपासर पर
	Nelumbo Nucifera		
	Gaerlin		
अरिष्ट	रीठा, निम्ब	अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
	Sapindus		
	Trifoliatus		
अलंक्त	महावर	अयो. 60/18	लाल रंग हेतु
	Vitus Vinifera		
अश्वत्थ	पीपल	अयो. 91/49	भारद्वाजाश्रम पर
	Ficus Arnottina	अर. 73/3	पंपासर के पास
अशोक वन	अशोक वनों से युक्त	सु. 58/55	लंका का अशोक वन
अश्व कर्ण	शाल भेद	बा. 24/15	विश्वामित्र तथा श्री राम की वार्ता
	Diptero Carpus		
	Alatus Roxb	अयो. 99/19	चित्रकूट में पर्णकुटी के पास
		अर. 15/18	पंचवटी में
		कि. 31/14	किष्किन्धा की राह में
		यु. 22/56, 57	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 43/20	सम्पाति वानर के हाथ में आयुद्ध
		यु. 59/77	युद्ध में नील के आयुध

		यु. 76/23, 66	युद्धास्त्र के रूप में
अशोक	अशोक	अर. 15/17	पंचवटी में
	Saraca Indica	अर. 42/61	दण्डकारण्य में
		अर. 60/17	वियोगी श्री राम के प्रश्न ("पुष्पिता शोक संकास")
		अर. 62/3	जनस्थान में भ्रमित श्री राम
		अर. 73/5	पंपासर के पास
		अर. 75/16, 24	पंपासर के तट पर
		कि. 1/59	पंपासरोवर के अरण्य में
		कि. 16/39	ऋष्यमूक पर्वत पर बाली गिर पड़े
		कि. 27/17	तुंग भद्रा नदी के किनारे
		सु. 10/4	लंका में मंदोदरी के अशोक पुष्पों की माला
		सु. 14/3	लंका के अशोक वन में
		सु. 15/7, 15	लंका में पुष्पों से झुका अशोक वृक्ष
		सु. 34/11	
		यु. 4/72	सह्य पर्वत के कानन में
		यु. 22/57	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 39/3	सुवेल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य
		यु. 56/28	लंका के अशोक वन में सीता ने अशोक की शाख छोड़ दी
		उ. 15/16	जड़ से कटे अशोक वृक्ष की तरह कुबेर गिर पड़े
		उ. 21/34	उपमा
		उ. 26/5	कैलाश में
		उ. 32/44	पुष्पों के रंग की समानता
		उ. 42/3, 5	अयोध्या की अशोक वनिका में
		यु. 128/45	अयोध्या की अशोक वनिका का राजप्रासाद
असन	असन का वृक्ष Pterocarpus	अयो. 95/8	चित्रकूट में
	Marsupiun	कि. 30/8,62	सीता के लिये विरही श्री राम की कल्पना

		कि. 30/56	माल्यवान पर्वत पर
		सु. 2/10	लंका में हनुमान जी ने देखा
		उ. 42/3	अयोध्या के अशोक वन में
असिपत्र	जिस वृक्ष के पत्ते लोहे की धार के समान तीक्ष्ण हों	उ. 21/15	यमलोक के वर्णन में
असृक चन्दन	लाल चन्दन Ptero Carpus Santalinus	उ. 69/19	अंग में लिप्त रक्त चन्दन
आजै	अजवायण Carium Copticum	अयो. 91/67	पाक में मिश्रण
अक्षत	चावल	अयो. 17/6	श्री राम के अभिषेक के लिये
	Oriza Sobiva	अयो. 20/17	देव पूजन के लिये
		यु. 112/20	रावण के शव पर
आम्र	आम का वृक्ष	बा. 5/12	अयोध्या पुरी में
	Mangifera Indica	अयो. 35/16	उदाहरण (कुल्हाड़ी से आम काटकर नीम बोना)
आम्र	आम	अयो. 50/9	जनपद में
		अयो. 63/8	उदाहरण (आम काटकर पलाश बोना)
		अयो. 94/8	चित्रकूट में
		कि. 28/19	माल्यवान पर्वत पर
आमलकी	आँवला	बा. 3/6	पाणावामलक
	Phyllarthus	अयो. 91/30	भारद्वाज आश्रम में
	Emlelica	अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
आमलकान्	आँवले	यु. 4/73	सह्य कानन में
आमलकी	(लता)	अयो. 91/51	भारद्वाज आश्रम में भरत के स्वागत में
इन्दीवर	नीलकमल Nymbhoea Stellota	अर. 45/25	श्री राम का रंग (राममिन्दीवरः श्यामः)
इषीका	काश तृण	अयो. 30/12	वन-गमन के प्रसंग में सीता

	Saceharum		की कल्पना
	Spontaneum		
इंगुदी	हिंगोट	अयो. 50/28, 30	राम वन-गमन के समय राम के विश्राम का स्थान
	Balanites	अयो. 87/22	भरत का निरीक्षण
	Aegyptiaca	अयो. 88/1	पिण्याक के लिये
	Delile	अयो.103/20, 29, 13, 14	पिण्याक के लिये
इक्षु	इटव	अयो. 91/56	भारद्वाज आश्रम में
	Sucetiarum		
	Officinurum		
इक्षु काण्ड	ईख पौर	अयो. 91/15,16	भारद्वाज आश्रम में (भरत के स्वागत में)
उत्तरच्छद		अयो. 94/24	चित्रकूट के प्रसंग में
उत्तराअरणी		यु. 111/116	रावण की चिता जलाने के लिये
उत्पल	कमल	अयो. 50/28	वन की शोभा
	(इर्षन्नील वर्ण)	अयो. 104/25	मुख की समानता
		अयो. 73/21	पंपासर में
	Nymphoea Stellata	अर. 75/21	पंपासर में
		कि. 1/1	पंपासर में
		कि. 43/22	कुबेर के भवन में
		सु. 2/12, 14	लंका में हनुमान जी ने देखा
		सु. 15/4, 9	लंका के अशोक वन में चैत्य प्रासाद में
		सु. 57/1	हनुमान जी की उपमा
		यु. 4/85	सह्य गिरि के जलाशय में
		यु. 54/43	हनुमान जी के आकाश गमन के बाद लंका में
		यु. 83/12	मूर्छा हरण के लिये उत्पन्न जल प्रयोग
		उ. 26/22	श्रृंगार वर्णन
		उ. 42/11	अयोध्या की अशोक वनिका में
		उ. 77/5	वन में सरोवर में
उत्पल	नीलकमल समान नेत्रों वाली	सु. 13/16	सीता जी के नेत्रों की समानता हनुमान द्वारा

उद्दालक	बहुवार	अर. 75/16	पंपासर में
	Cordia Myxa	कि. 1/81	पंपासर के अरण्य में
		कि. 42/7	कुक्षि देश में
		सु. 1/211	लम्ब पर्वत पर
		सु. 14/3, 36	लंका के अशोक वन में
		सु. 15/9	लंका में
उशीर	खस	अयो. 55/10	नाव बनाने हेतु
		अर. 68/18	सीता के केश की समानता
	Vetiveria Zianioides	यु. 111/113	रावण के शव की चिता बनाने के लिये
उशीर बीज	खस के बीज	उ. 18/2	देश के नाम पर
एणोय	गजकन्द	अयो. 56/22, 23, 25, 26, 27, 28	चित्रकूट में
औदुम्बरी	गूलर की लकड़ी Flcu Racemara	बा. 4/25	लव-कुश की भेंट (रामायण पाठ के उपलक्ष्य में)
औषधि	औषधि जल	अयो. 94/21	चित्रकूट में
		कि. 26/6	सुग्रीव के राज्याभिषेक में
		कि. 48/11	दक्षिण प्रदेश में
		सु. 1/21	विष नाशक
अंकुर	यव की खीलें Hordcum Vulgere	बा. 23/21, 22	मण्डप सजाने के लिये
अंकोल	अंकोल	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में
	Alungium	कि. 1/80	पंपासर के अरण्य
	Lamarekii	यु. 4/73, 81	मलय पर्वत के कानन में
कर्ण	लम्बे पते का स्वनाम वृक्ष	सु. 56/24	अरिष्ट गिरि पर लंका में
कर्णिकार	कणेर	अयो. 92/23	सुमित्रा को उपमा
उत्पल	Cassia	अर. 42/23, 31	पंचवटी के पास
	Fislula	अर. 49/30	जन स्थान में
		अर. 60/20	श्री राम का प्रलाप प्रश्न
		अर. 62/05	वियोगी श्री राम का प्रश्न
		अर. 73/3	पंपासर के पास
		कि. 1/21,73	पंपासर के अरण्य में दक्षिण भाग में

		कि. 40/56	पूर्व दिशा के उदय पर्वत के सुवर्ण शिखर का दृश्य
		कि. 50/26	लंका में हनुमान जी द्वारा दृष्ट
		सु. 2/9	लंका के पर्वत पर
		सु. 15/8	लंका के अशोक वन में
		सु. 22/56, 57	सेतु निर्माणार्थ कार्णिकारैश्चपुष्पितैः
		यु. 39/4	सुबेल शिखर से लंका में दृष्ट
		उ. 26/4	कैलाश पर्वत पर
कदली	केले का वृक्ष	अयो. 20/33	कौशल्या कटी हुई कदली के समान
		अरण्य 2/15	सीता कदली के समान जोर-जोर से हिलने लगी
		अर. 25/13	लंका के तट पर
		अर. 42/23	पंचवटी के पास
		अर. 47/49	सीता की तुलना
		अर. 62/4	श्री राम का श्रमित होना
		कि. 13/14	ऋष्यमक पर्वत पर
		कि. 32/6	सीता की तुलना
		उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वनिका में
कदली फल	केला फल		
कदली वृक्ष	केला वृक्ष	अर. 2/15	उपमा
कदली वन	केला का वन	सु. 58/56	लंका के अशोक वन के पास
कदम्ब	कदम	अर. 60/12	पंचवटी में विरही श्री राम का प्रश्न
	Anthocephalns Indians		
	A. Rich	अर. 73/4	पंपासर के पास
		कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 28/18,34,42	माल्यवान पर्वत पर
		उ. 26/4	कैलाश में
		उ. 42/5	अयोध्या की अशोक वनिका में
कपित्थ	कैथ	अयो. 91/3	भारद्वाज आश्रम में

	Feronia		
	Elephantum		
कर्पूर	केशर	अयो. 91/72	भरत के स्वागत में भारद्वाज आश्रम में
	कपूर	कि. 28/8	वर्षा वायु में सुगन्ध
Cimamomum Camphares			
कमल	कमल का पेड़	अयो. 64/70	मुख कमल
(कमल पत्र दल)	कमल की पंखुड़ियाँ	अयो. 95/14	मन्दाकिनी नदी के पास
(कमल पुष्प)	कमल पुष्प	अर. 16/26	पंचवटी में (डंठल मात्र)
(कमल पत्र)	(सूर्य विकासी)	अर. 52/35	भयत्रस्त सीता की तुलना
	Nelumho Nuciferes		(ध्वस्त कमल)
	Gachin		
		अर. 72/12	पंपासर में
		कि. 43/22	कुबेर के स्थान में
		सु. 19/15	उत्कृष्ट पर्ण कमल
		सु. 57/1	हनुमान जी का आकाश गमन
		सु. 74/43	लंका में
		उ. 7/48	मुख से तुलना
कमल पत्राक्षी	कमल की पंखुड़ियों के समान	अर. 50/26	सीता के लिये प्रयुक्त
	आँखों वाली	सु. 58/57	सीता के लिये
कमल विलोचन	कमल के समान आँखों वाली	अर. 60/26	सीता के सम्बोधन
कमलिनी करंज	कुल कच	यु. 4/73, 75	मलय पर्वत कानन में
	Pongamia Glalern		
करवीरान्	कणेर	अर. 73/4	पंपासर के पास
	Nerium odorum		
		अर. 75/23	पंपासर के पास
		कि. 1/76	पंपासर के अरण्य में
		सु. 2/10	लंका में हनुमान जी द्वारा दृष्ट
		सु. 14/26	अशोक वन में
		सु. 27/23	त्रिजटा के स्वप्न में
		यु. 4/72	मलय पर्वत के कानन में
करीरान्	कैर	यु. 22/59	सेतु-निर्माणार्थ

	Cuppariz Aphylla		
कल्प वृक्ष	कल्प वृक्ष	कि. 34/5	लक्ष्मण की उपमा
कल्हार	लाल कुमुद पुष्प Nympholalotus	कि. 30/36	माल्यवान् पर्वत पर
काला अगरु	काला अगर Agnilaria Agallocha	सु. 4/30	लंका के परकोटे का वर्णन करते हुए
कल्प वृक्ष	कल्प वृक्ष	अर. 56/33	सर्वकाम फलैः वृक्षैः
कालेयक	चन्दन पीत Santalumalbum	उ. 42/2	अयोध्या की अशोक वनिका में
काश्मरी	काश्मरी (गम्भारी) Gmelina Artorees	अयो. 94/9,10	चित्रकूट में
कास	कास घास Succhurum Spentanum	अयो. 28/22	वन में
(काश)		अयो. 30/12	वन में उपलब्ध होने का भय
		अर. 15/18, 22	पंचवटी में
किंशुक	पलास Bufa Frondosa	अयो. 56/6	चित्रकूट के पास
		अर. 15/18	पंचवटी में
		कि. 1/75, 82	पंपासर के अरण्य में पत्रहीन
		सु. 15/8	लंका के अशोक वन में
		यु. 40/14	सुग्रीव तथा रावण के युद्ध की उपज
		सु. 9/37	लक्ष्मण तथा इन्द्रजीत की समता
		यु. 45/9	श्री राम तथा लक्ष्मण युद्धाहूत रूप में "पुष्पिताविव किंशुका"
		यु. 67/29	वानरों की समानता
		यु. 73/59	इन्द्रजीत द्वारा वाण विद्ध वानर
		यु. 81/34	राम लक्ष्मण से समता
		यु. 88/71	योद्धाओं की समानता
किंशुक फूल	सुन्दर टेसू के फूल	सु. 54/34	लंका में आग की लपटें

चूड़ फूल			
कीचका वेणवः	वंशी की ध्वनि वाले बाँस	कि. 43/37	शैलेदा नदी के दोनों तटों पर
	Buminish Bamhos Druce		
कुंकुम	कुटज, अर्जुन	बा. 24/15	विश्वामित्र के साथ जाते वन में
	Terminalia Arguna	अर. 60/15	कुंकुमों रुहः
		कि. 27/24	प्रस्रवण गिरि पर
कुन्द	कैथ	अर. 75/23	पंपासर
	Jasminum Ausicularium	कि. 1/77	पंपासरोवर के तट पर
		कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
		यु. 4/78	सह्य पर्वत कानन में
कुटज	कुन्ज	कि. 28/4, 14	माल्यवान पर्वत पर
	कुड़ा	कि. 30/25	माल्यवान पर्वत पर
		सु. 2/9	लंका में हनुमान जी ने देखा
		यु. 4/93	सह्य पर्वत कानन में
		यु. 23/56	सेतु निर्माणार्थ
कुमुद	कमल (नीलोफर)	अयो. 50/21	वन की शोभा
	(चन्द्रोदय विकासी)	कि. 30/48	माल्यवान पर्वत पर
	Nymphoea Lotus	सु. 57/2	चन्द्रमा से तुलना
		यु. 4/85	सह्य गिरि के जलाशय में
कुरवक	रक्त फिण्टी	अर. 60/21	विरही श्री राम का प्रश्न
	Borleria Cristota	कि. 1/82	रक्ताकुबेरकस्तथा-पत्रा
कुरन्ट	पीली कट सरैया	कि. 1/80	पंपासर के अरण्य में
	Yellow Birberia		
कुलिप्त	कुलथी (धान्य)	उ. 92/19	रामाश्वमेध यज्ञ में प्रयोगार्थ
	Dolichas Biflars		
कुवलय	रक्त कमल	अर. 74/27	शबरी के आश्रम में
	Nymphoea, Stellata		
कुशेशय	पद्म या कर्णिका	अयो. 94/24	चित्रकूट में
कुष्ठ	कूठ	अयो. 94/24	चित्रकूट में
	Sulssura Lappa Clarpe		
कुसुमैद्गात	छितवन	कि. 30/35	माल्यवान पर्वत पर
	Alstonea Schalares R.B.		

कुश	कुश	अयो. 28/22	वन में
		अयो. 30/12	वन का भय
		अयो. 61/17	हवि का उपयोग
		अयो. 94/24	शैया के लिये
		अयो. 99/6, 19	चित्रकूट में
		अर. 15/18, 22	पंचवटी
		अर. 26/33	पर्ण-शाला पंचवटी
		अर. 60/7	पंचवटी में बिखरे
		सु. 33/28	लक्ष्मण द्वारा धारण
		यु. 88/70	लक्ष्मण और इन्द्रजीत के युद्ध में
		उ. 1/15	आसन के लिये
		उ. 60/7	मार्जन के लिये
		उ. 109/4	श्री राम के हाथों में
कुठशालालि	काला सेमर	कि. 40/39	शल्मलिद्वीप में
	A Spccies of Simul		
	Silk and Cotton Tree		
केतक	केवड़ा	अयो. 94/6	पुष्पार्क केतकामा रंगहेतु
	Pandunrs Tectorins		
	Saland		
केतक्य		अर. 15/17	पंचवटी में
(केतकी)		अर. 60/22	विरही राम का प्रश्न
		अर. 75/10, 24	ऋष्यमूक पर्वत पर
		कि. 1/81, 77	पंपासर के अरण्य में
		कि. 27/17, 18	तुंग भद्रा नदी के किनारे
		कि. 28/8, 9, 28	माल्यवान पर्वत पर वर्षा ऋतु
		कि. 42/8	कुक्षी देश में
		कि. 49/11	पश्चिमी समुद्री तट पर
		सु. 1/211	लम्ब पर्वत पर
		सु. 2/9	लंका में हनुमान जी ने देखा
		यु. 4/78	सह्य गिरि कानन में
		उ. 16/5	कैलाश में
कोयाष्टिक	जलकुंकुम	अर. 75/12	पंपात्तट पर

कोविखार	लाल कचनार	अयो. 84/3	कोविदार ध्वज
	Banhimia Variegata	अयो. 96/18	कोविदार ध्वज (भरत की)
		कि. 1/80	पंपासर के अरण्य में
		कि. 30/62	माल्यवान पर्वत पर
		सु. 2/10	लंका में हनुमान जी द्वारा दृष्ट
		यु. 4/80	सह्य पर्वत कानन में
		उ. 4/25	अयोध्या के अशोक वन में
कंचन वृक्ष	कचनार	कि. 50/29	दक्षिण प्रदेश की एक गुफा में
	Banhinia Purpared		
कर्जकिंजल्क	कमल केशर	अर. 42/17	माया मृग में
कंटकीनोद्रुमाः	काँटे वाले पेड़	अर. 30/12	वन में उपलब्ध होने का भय
कंदल	स्थल कमल	कि. 18/34	माल्यवान पर्वत पर
	Ionicliam Saffrmbicosum		
कुन्द गुल्मा	कुन्द लता	अर. 75/14	पंपासर पर
	Jasminum Pulicscene	कि. 1/77	पंपासर के पास
		कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
		यु. 4/78	लंका के राह में पर्वत शिखरों पर
कृत मालक	अमलतास	कि. 27/18	प्रस्रवण गिरि पर
	Cassia Fistula		
खण्डकानि	Sugar	उ. 92/19	
खदिर	खैर	बा. 14/22	अश्वमेध यज्ञ का यूप बनाने के लिये
	Acasia Catechu	अयो. 61/17	हवि के लिये
		अर. 15/18	पंचवटी में
खजूरम्	खजूर	अर. 15/16	पंचवटी में
		अर. 16/17	धान्य की बालों से खर्जूर पुष्प
की			की समानता
	Phoenix Sylvestrix Roxb	सु. 2/9	लंका में हनुमान जी ने देखा
खर्जूर पुष्पम्	खजूर के पुष्प	अर. 16/17	पंचवटी के पास
गज़ पुष्पी	(लता)	कि. 12/39, 40	ऋष्यमूक पर्वत पर
गन्ध	(अगरु या चन्दन)	बा. 14/27	पूजा के लिये चन्दन
		बा. 25/37	सिर पर लगाने के लिये

		बा. 73/21	विवाह मण्डप
		अयो. 25/37	श्रीराम को विदा करने के लिये माता कौशल्या ने लगाया
		यु. 73/22	इन्द्रजीत के हवि के लिये
		यु. 75/57	रण-भूमि में सुगन्ध व्याप्त
		यु. 112/118	रावण की चिता पर
		उ. 32/43	नर्वदा के किनारे रावण द्वारा शिव पूजा के लिये प्रयुक्त
गन्ध पूर्णा	स्वनाम वृक्ष	सु. 2/9	हनुमान ने लंका में देखा
	(पीपल अथवा प्रियंगु)	यु. 4/78	लंका की राह में पर्वत शिखरों पर
गोधूम	गेहूँ	अर. 16/16	पंचवटी के खेतों में
	Lniticum Vulgare		
गोशीर्षक	चन्दन की जाति	कि. 41/40	ऋष्यमूक पर्वत पर
गौड़ानि	गुड़	उ. 92/19	
	Gur		
चणक	चने	उ. 93/19	रामाश्वमेध में प्रयोगार्थ
	Cicer Arittlinum		
चन्दाई	चन्दन की तरह	अयो. 3/13	राज्याभिषेक के समय
		अयो. 9/64	कैकयी का प्रण
		अयो. 17/3, 6	राज्याभिषेक के समय
श्वेत चन्दन	सफेद चन्दन	अयो. 71/28	धूप के लिये
शुक्ल चन्दन	सफेद चन्दन	अयो. 76/16	बिना राजा के स्थिति
चन्दन वन	चन्दन वन	अयो. 80/14	जल (चन्दन युक्त)
रक्त चन्दन	लाल चन्दन	अयो. 88/6	धूप के लिये
	Santalum Allium	अयो. 91/83	भारद्वाजाश्रम में
		अयो. 99/35	चित्रकूट में (पुरातन याद)
		अयो. 91/78	अंगों पर प्रलेप
		अयो. 114/20, 22	धूप के लिये
		अर. 15/18	पंचवटी में
		अर. 35/21	लंका के समुद्र तट पर
		अर. 60/22	विरही राम का प्रश्न
		अर. 63/8	चन्दन चर्चित

		कि. 1/17	पंपासर में
		कि. 1/82	पंपासर के वन में
		कि. 15/18	पंचवटी में
		कि. 35/14	बाली का दाह संस्कार
		कि. 27/17	तुंग भद्रा नदी के किनारे
		कि. 27/84	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 28/6	माल्यवान पर्वत पर
		कि. 32/7	किष्किन्धा में
		कि. 41/14	मलय गिरि पर
		कि. 41/27	महानदी ताम्र पर्णी के
		कि. 46/17	विद्वीपों में विन्ध्य पर्वत में
		कि. 50/53	दक्षिणी गुफा में
		सु. 4/30	रावण के अन्तःपुर में
		सु. 6/11	लंका वर्णन
		सु. 9/18	रावण के अंगों पर लेप
		सु. 10/19	रावण की देह पर लिप्त
		सु. 11/32, 33	पुष्पक विमान में
		सु. 14/44	लंका में अशोक वाटिका में
		सु. 29/3	शुभ शकुन
		यु. 26/4	बाल्यकाल में राम पर लेप
		यु. 31/43	रावण द्वारा शिव-पूजन
		यु. 36/23	वानर राज नल का निवास स्थान
		यु. 60/34	देह पर प्रलेप
		यु. 75/8	जल (अर्क प्रयोग)
		यु. 111/105, 113	रावण के शव की दाह क्रिया
		यु. 121/2	उबटन के लिये प्रयुक्त
		उ. 26/25	कैलाश में रम्भा के देह पर प्रलेप
		उ. 32/36, 43	देह प्रलेप (समानता)
		उ. 42/2	अयोध्या की अशोक वनिका में
चन्द्र	दिव्य औषधि	यु. 50/31	मूर्च्छित वानरों को चेत कराने के लिये
चम्पक	चम्पा	अर. 60/32	सीता का रंग

	Artun Otrys Odvatissinus	अर. 15/17	पंचवटी में चम्पक सुपुष्पित
		कि. 1/78	पंपासर के अरण्य में
		कि. 50/26	दक्षिण प्रदेश की गुफा में
		सु. 14/3, 36, 44	लंका की अशोक वाटिका में
		सु. 15/9	लंका की अशोक वाटिका में
		यु. 4/72	सह्य तथा मलय काननों में
		यु. 39/3	सुवैल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य
		उ. 26/4,5	कैलाश में
		उ. 42/3	अयोध्या की अशोक वनिका में
चिरबिल्व	चिरविल्व	अर. 11/74, 76	सुतीक्ष्ण के आश्रम से आगे
	Holopteica Integrifalia	कि. 1/78	पंपासर के अरण्य में
चूर्णक	धान्य विशेष	कि. 1/80	पंपासर के अरण्य में
	सेमल (1) Bonliax Malahiauicum	यु. 4/81	सह्य पर्वत के कानन में
चूतः	आम	अयो. 91/30	भारद्वाज आश्रम पर
	Mangifers Indica	अर. 15/17	पंचवटी में
		अर. 42/31	पंचवटी के पास
		अर. 60/21	विरही राम के प्रश्न
		अर. 73/3	पंपासर के पास
		कि. 1/60, 80	पंपासर के अरण्य में
		सु. 10/23	लंका में अशोक वन में
		सु. 14/3	लंका में
		यु. 4/72, 90	सह्य पर्वत पर
		यु. 22/57	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 59/77	युद्ध में नील का आयुध
		उ. 26/5	कैलाश में
		उ. 42/2	अयोध्या की अशोक वनिका
जवा	गुड़हल Nibiscusrosa Sinenus	यु. 106/23	सन्ध्या की तुलना
(जवा कुसुम)		उ. 35/23	बालू की सूर्य की तुलना
जाम्बव	जामुन	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में

		अर. 60/19	विरही श्री राम के पास
		अर. 73/3	पंपासर के पास
		कि. 28/19, 30	माल्यवान पर्वत पर
		यु. 47/3	सह्य कानन में
		अयो. 91/41	'काननेलता' भारद्वाज आश्रम पर
		उ. 42/5	अयोध्या की अशोक वनिका में
		अयो. 55/15	नाव निर्माणार्थ
जाती	चमेली	अयो. 91/51	भारद्वाजाश्रम में
	Jasminum Grandiflorum	अर. 35/22	मरीचि के आश्रम में
जातिफल	(जात्याफाना)	अर. 35/22	लंका के समुद्र तट पर
	Myristica Fragrans		
तक्कोल	कंकोल वृक्ष	अर. 35/22	लंका के समुद्र तट पर
	Piper Cubeha Cabelia		
	Officinalls		
तगरः	तगर	उ. 26/6	कैलाश में
	Valeriana Hardwickii		
तण्डुला	चावल	उ. 92/19	रामाश्वमेध में प्रयोगार्थ
(तण्डलैः)	Orizasativa	अर. 16/17	पंचवटी के पास
तमाल	तमाल	अयो. 91/50	भारद्वाज आश्रम में
	(दालचीनी)	अयो. 99/19	चित्रकूट में
	Cinnamomun Tamala Necso		
	Eherm	अर. 15/16	पंचवटी में मरिच के आश्रम से
		अर. 35/13, 23	लंका के समुद्र तट पर
		कि. 37/25	तुंगभद्रा नदी के किनारे
		कि. 37/25	क्षीरसागर के किनारे
		कि. 40/56	सुवर्ण-शिखर पर
		कि. 42/12	पश्चिमी समुद्र तट पर
		कि. 50/25	दक्षिण की एक गुफा में
		यु. 39/3	सुवैल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य
		उ. 101/15	भरत द्वारा बनाये गये नये नगर में
ताम्र पद्म	लाल कमल	अर. 75/20	पंपासर में

	Ionidicum Suttruticosum		
ताल	ताल	अयो. 91/50	भारद्वाजाश्रम में चित्रकूट में
	(तालफलोपमम्)	अयो. 99/19	श्री राम की पर्णकुटी
	Barassus Flefellifer	अर. 15/16	पंचवटी में
		अर. 29/14	'ताल फल यथा'
ताल	ताल	अर. 35/13	लंका के समुद्र तट पर
		अर. 46/20	स्तन की तुलना
		अर. 60/18	विरही राम के प्रश्न
		कि. 31/14	किष्किन्धा की राह में
		कि. 40/56	सौमनस पर्वत के पास
		कि. 40/76	सुवर्ण शिखर पर
		कि. 42/46	मेरु और अस्ताचल के बीच
		कि. 50/20	ऋष्यविल से दक्षिण
		सु. 36/34	लंका में अरिष्ट गिरि पर
		सु. 69/11	ताल वृतान्तानि
		यु. 5/14	ताल फलौपमम् सीता की समानता
		यु. 22/56, 59	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 39/3	सुवेल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य
		यु. 65/39	युद्धायुद्ध के रूप में
		उ. 101/15	भरत द्वारा बसाये गये नूतन नगर में
तिनिश	स्वनामख्याता तिरच्छवृक्ष	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में
		अर. 11/47	सुतीक्ष्ण के आश्रम के आगे
	Lager Stracmia Flod		
	Reginae	अर. 15/16	पंचवटी में
		कि. 1/82	पंपासर के अरण्य में
		कि. 28/18	तुंगभद्रा नदी के किनारे
		यु. 4/72, 81	सह्य पर्वत के कानन में
		यु. 20/56	सेतु निर्माणार्थ
तिन्दुक	तेन्दु का पेड़	वा0 24/15	विश्वामित्र के साथ जाते समय राह में

	Diaqsphres Embryopteris	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में
		अर. 11/60	सुतीक्ष्ण आश्रम के निकट
		अर. 73/3	पंपासर के पास
तिमिद	स्वनामख्यात वृक्ष	कि. 27/18	तुंगभद्रा नदी के किनारे प्रस्रवण गिरि प्रर
तिल	तिल के पेड़	उ. 29/19	रामाश्वमेध में प्रयोगार्थ
	Scsumum Indicum		
तिद्धक	स्वनामख्यात वृक्ष	अयो. 91/50	भारद्वाजाश्रम पर
		अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
		अर. 15/57	पंचवटी में
	Wendlandia Exsertade	अर. 73/4, 21	पंपासर के पास
		अर. 75/16, 23	पंपासर के अरण्य में
		कि. 1/58	भ्रमरलीन मंजरी पंपासर के अरण्य में
		कि. 1/78, 83	पंपासर के अरण्य में
		कि. 27/17	तुंगभद्रा के किनारे
		यु. 4/72, 79	सह्य और मलय गिरि के राह कानन में
		यु. 22/56	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 39/4	सुवेल पर्वत से दृष्ट लंका का दृश्य
		उ. 101/15	भरत द्वारा बसाये जाने वाले नगर में
तुंग	नारियल	उ. 42/2	अयोध्या में अशोक वनिका में
	Cocoshucifora		
तुम्ब	लौकी	बा. 38/17	(गर्भ तुम्ब) आकार की समानता
	Lugenaria Vulgaris		
दर्भ	डाभ	अयो. 4/23	शैया के निमित्त
	Cyrodon Clactylon	अयो. 99/28	चित्रकूट की यज्ञ वेदी पर
		अयो. 203/29	पिण्डदान के लिये
		अयो. 104/8	बिछाने के लिये
		अर. 11/52	दर्भ मुष्टि प्रद्धरण

		सु. 4/16	आयुध के रूप में हनुमान जी ने देखा
		सु. 38/29, 30	कौवे की आँख फोड़ने के लिए
		यु. 21/1	अभिमंत्रित गर्भ का प्रयोग
दाडिम	अनार Punica Granatum	बा. 73/23,	विवाह मण्डप में
		अर. 60/29	विरही राम का प्रश्न
		यु. 22/99	सेतु निर्माणार्थ
		उ. 42/5	अयोध्या की अशोक वनिका में
दिव्य अगरु	उच्च कोटि का अगर	अयो. 91/82	भारद्वाज आश्रम में
दिव्य औषधि	उच्च कोटि की औषधि	कि. 37/31	हिमालय की राह में
दिव्य चंदन	उच्च कोटि का चन्दन	अयो. 91/83	भारद्वाज आश्रम में
		उ. 26/19	कैलाश में
देवदारु	देवदार	बा. 14/23	दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के लिये
		अयो. 76/17	चिता जलाने के लिये
		कि. 43/13	हिमालय पर्वत पर
		सु. 56/29	लंका में अरिष्ट गिरि पर
		उ. 42/2	अयोध्या में अशोक वनिका में
द्रोण	स्वनाम दिव्य औषधि	यु. 50/61	क्षीर सागर में उपलब्ध होने वाली दिव्य औषधि। मूर्च्छित वानरों को चेतन करने के लिये
धन्व	इन्द्रयव	अयो. 94/9, 10	पंपासर के पास
(धन्वन)	कुटज बीज Writia Tinctorea	अर. 73/4	चित्रकूट में
नक्तमाल	करञ्ज वृक्ष	कि. 1/82	पंपासर के अरण्य में
	Pongamia Pinnata Merr.	अर. 73/4,21	पंपासर के पास
धवा	धव	बा. 24/15	विश्वामित्र के साथ राम जाते हुए वन में
	Anoglissns Lalifalia	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में
		अर. 15/18	पंचवटी में
		अर. 60/21	विरही राम के प्रश्न

		कि. 1/82	पंपासर के अरण्य में
		कि. 50/15	दक्षिण की एक गुफा है (ऋष्य विल में)
		यु. 22/56	सेतु निर्माणार्थ
न्यग्रोध	बड़	अयो. 53/33	निर्मित शैया पर सोये वृक्ष के नीचे
		अयो. 55/6, 7	छाया में तपस्वी तप करते
		अर. 13/21	भरद्वाज आश्रम से चित्रकूट की
		अर. 35/27, 36	राह में लंका के समुद्र पर
		अर. 73/3	पंपासर के पास
		यु. 4/73	सह्य पर्वत कानन में
		यु. 82/2	वानर सेना की तुलना
न्यूग्रोधक्षीर	बड़दूध	अयो. 52/18	जटा में लगाने के लिये
नलिनी	कमलिनी	अयो. 5/14	तालाब में अयोध्या
	(ईषद् रक्त वर्ण)	अयो. 94/24	चित्रकूट
	Indium	अर. 32/10	चैत्ररथ वन में
	Suffrubic	अर. 61/15	पंचवटी में
	o-Sem	कि. 1/7	पंपासर में
		कि. 27/11	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 30/35	माल्यवान पर्वत पर
		यु. 58/33	समानता
नागवृक्ष	नागकेशर तथा नाग दमन	अर. 73/4	पंपासर के पास
		कि. 1/78, 83	पंपासर के अरण्य में
	Pupalia Hupacca	कि. 50/26	दक्षिण प्रदेश की गुफा ऋष्यविल में
		सु. 14/3	अशोक वाटिका लंका में
		यु. 4/76	सह्य कानन में
		यु. 39/3	सुवेल पर्वत से लंका का दृश्य (नागमाला समावृता)
		उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वनिका
नारिकेल	नारियल	अर. 35/13	लंका के समुद्र तट पर
	Cocos Nucifera	कि. 37/25	क्षीर सागर के किनारे
		कि. 42/12	पश्चिमी समुद्र तट पर

		सु. 1/211	लम्ब पर्वत पर
निम्बाः	नीम	अयो. 35/16	दूध सींचना
	Azadirachta	अयो. 35/17	मधु नहीं टपकता
	Indica	यु. 22/59	सेतु निर्माणार्थ
निवास वृक्षः	कल्पतरु	कि. 15/19	साधुओं के लिये श्री राम तथा लक्ष्मण ऐसे ही वृक्ष हैं—तारा
निर्यास	गूगल	अयो. 76/16	चिता में जलाने के लिये
	Balsamo dendron		
नीचल	Mukul व जुल	अर. 75/24	पंपासर पर
निचुलैः	Barringtonia Acutangula		
नीप	Gaerton कदम्ब	अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
(नीपान्)	Anthocephalus	अर. 15/18	पंचवटी में
	Cadamba	अर. 60/21	विरही श्री राम का प्रश्न
		कि. 27/18	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 28/41	माल्यवान पर्वत पर
		सु. 2/10	लंका में हनुमान जी ने देखा
		यु. 39/4	सुवेल पर्वत कानन में
		उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वनिका
नील पदम्	नील कमल	अर. 75/20	पंपासर
	Nymphoea Stellata		
नील लोहित	लाल तथा नीली मंजीठ	सु. 1/5	महेन्द्र गिरि पर
मंजिष्टा	Rubia Cordi Folio		
नीलाशोक	नीला अशोक	अर. 73/4	पंपासर के पास
		कि. 1/79	पंपासर के कानन में
नीलोत्पलदल	नीलकमल	अर. 42/16	मायावी मृग का वर्णन
	Nymphoea Stellata	कि. 1/63	पंपासर में
		कि. 27/22	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 30/24	माल्यवान पर्वत पर
		कि. 38/34	राम को उपमा
		सु. 54/34	अग्नि की लपटों के समान
नीलोत्पलदल	नील कमल दल स्वनाम	यु. 99/35	नारद अस्त्र की कान्ति
नीवार	तृण (धान्य)		

		अर. 11/74	सुतीक्ष्ण आश्रम से आगे
		अर. 15/16	पंचवटी में
	Wild Varity of Orijza Savita		
नैवार	तिन्नी के चावल	अयो. 61/5	वन में भोजन के लिये
	Panicum Italiecum		
पर्णधन	नलिन अशोक	यु. 14/52	लंका के अशोक वन में
	Saraca Sanctum		
पर्णास	तुलसी	अर. 15/18	पंचवटी में
	Ocinum Sanctum		
पर्णिन	पलास Butea Forndosa	बा. 14/22	अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ का यूप बनाने के लिये
पतत्रिण	अश्वकन्द	बा. 14/36	दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में
	Withania Somnifera		
पद्मानिस केशराणि	केशर युक्त	सु. 7/10	पुष्पक विमान
पद्मरेणु	कमल केशर	यु. 16/16	अशोक वन में लंका में
		कि. 50/10	दक्षिण में
पद्म पत्र	कमल की पंखुड़ियाँ	अयो. 64/19	श्री राम की आँखों से समानता
		सु. 20/50	पद्मपत्रमिवायतम्
		अर. 17/7	नेत्रों से तुलना
		अर. 52/16	माला से विखरने वाले
		कि. 1/67	पद्मपत्र विशालाक्षी
		कि. 40/51	अनन्त भगवान की आँखें
		यु. 99/10	श्री राम की आँखों से समानता
पनस	कटहल	अयो. 91/30	भारद्वाज आश्रम में
	Antiaris Toxicaria	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में
		अर. 11/74	सुतीक्ष्ण के आश्रम से आगे
		अर. 15/16,18	पंचवटी में
		अर. 60/21	विरही श्री राम के प्रश्न
		अर. 73/3	पंपासर के पास
		यु. 31/20	रावण की माया में वानर पनस से समानता
		उ. 26/6	कैलाश

		उ. 42/3	अयोध्या के अशोक वन में
पद्म	कमल "	अयो. 50/20	वन की शोभा
	Nelumba-Nucifera	अयो. 59/7	राम के वियोग में शुष्क पद्म
	सूर्य विकासी	अयो. 61/5	मुख के श्वास गंध
		अयो. 61/8	मुख के श्वास गंध
		अयो. 62/11	दशरथ के हाथ की उपमा
		अयो. 79/15	लक्ष्मी का निवास
		अयो. 98/7	नेत्र की उपमा
		अयो. 104/25	मुख से समानता
		अर. 11/6, 3	सुतीक्ष्ण के आश्रम से आगे
		अर. 15/11,24	पंचवटी में
		अर. 17/7	पद्मपत्रायतेक्षणम् श्री राम के
		अर. 42/17	सुवर्ण मृग के प्रसंग में
		अर. 55/31	सीता का मुख
		अर. 56/20	रावण का सीता की प्रशंसा
		अर. 60/26	जनस्थान में
		अर. 64/1	पंचवटी में
		अर. 75/21	पंपासर में
		कि. 1/1,63, 67, 76, 104	पंपासर में पद्म पलासाक्षी
		कि. 3/12	पद्पत्रैक्षिणौ
		कि. 13/7	ऋष्यमूक पर्वत पर
		कि. 25/2, 6	पद्म माला
		कि. 30/29	माल्यवान पर्वत पर
		कि. 31/49	
		कि. 32/7	किष्किन्धा की गुफा में
		कि. 43/39	उत्तर कुरु देश में
		सु. 2/12	लंका में हनुमान जी ने देखा
		सु. 4/7	लंका में हनुमान जी ने देखा
		सु. 8/14	लक्ष्मी का वर्णन
		सु. 9/34,35,36	लंका का वर्णन
		सु. 14/24	लंका में अशोक वनिका में

		सु. 15/4	अशोक वन के चैत्य प्रासाद में
		सु. 29/2	मीनाहतं पद्ममिवाभिहताभ्रम्
		सु. 24/6	पद्ममिवेक्षणम् (सीता के)
		सु. 31/2	पद्ममिवाभिताभ्रम
		सु. 44/9	हनुमान जी का मुख
		यु. 4/85	सह्यगिरि के जलाशय में
		यु. 30/16	लक्ष्मी के हाथों से गिरना
		यु. 67/176	वानरों के मुख प्रबुद्ध पद्म
		यु. 83/12	मूर्छा के निवारणार्थ शीत पद्म जल का प्रयोग
		उ. 26/22	रंभा का शृंगार
		उ. 42/11	अयोध्या अशोक वनिका में
		उ. 75/5	सरोवर में
		उ. 109/6	लक्ष्मी के हाथों में
पद्मकिंगल्क	कमल केशर	यु. 26/15	अंगद की तुलना
पद्म पीता	कमल केशर	अर. 52/24	सीता की कांति
पद्म कोश	कमल कोश	अयो. 60/18	लाल रंग के लिये
		कि. 1/71	पद्मकोश पलाक्षणि सीता के नेत्र
		यु. 95/15	उपमा
पद्म गर्भा	कमल के अंदर से	अर. 52/19	सीता का रंग
पद्मवक्त्राणि	कमल पुष्प	यु. 95/15	वानरों की तुलना
पद्मगंधी	कमल जल	अर. 73/17	पंपासर का जल
पद्म रज	कमल रज	यु. 58/33	युद्ध स्थल की समता
पद्म केशर	कमल केशर	कि. 39/13	वानरों का रंग
		कि. 1/72	पंपासर के कमलों से वायु का स्पर्श
पद्मपलासाक्षी	कमल सी आँखें	बा. 15/31	श्री हरि के नेत्र
पद्मपलासाक्षी	कमल सी आँखें	सु. 33/31	सीता के नेत्र
		कि. 1/105	कमल नयनी सीता
पद्माक्षी	कमलगट्टा	कि. 1/48	सीता के नेत्र
(पद्माक्षि)		कि. 1/109	सीता के नेत्र
पद्मक	पदमाख	अयो. 76/16	चिता जलाने के लिये

		कि. 1/79	पंपासर के अरण्य में
	Prunus Puddum Roxb	कि. 27/17	तुंगभद्रानदी के तीर पर
		कि. 41/40	ऋष्यमूक पर्वत पर
		कि. 43/13	हिमालय पर्वत पर
		सु. 56/26	लंका के अरिष्ट गिरि पर
		यु. 4/81	सह्य पर्वत पर
		यु. 111/105,113	मृत रावण की चिता बनाने के लिये
पद्मनि	कमलिनी	अयो. 27/18	पतिव्रता सीता का वचन
	Nymphea Lotous	अयो. 59/7	राम के वियोग से शुष्क
		अर. 15/11	पंचवटी में
		अर. 46/16	सीता का वर्णन रावण द्वारा
		अर. 60/5	हेमन्त ऋतु में ध्वस्त
		अर. 61/14	जनस्थान
		सु 11/33	रावण की स्त्रियाँ
		सु. 19/13, 15	अशोक वन में सीता की तुलना
		सु. 59/27	अशोक वन में सीता की तुलना
		सु. 65/15	पालापड़ी कमलिनी
		उ. 26/4	कैलाश में
परमौपधि	दिव्य औषधिनां	यु. 5/31	चन्द्र और द्रोण पर्वत पर उगने वाली
पलाश	ढाक Butea Frondosa	अयो. 63/13	पुष्प को देखकर फलों का अनुमान
		अयो. 63/18	ऋषि कुमार वध के प्रसंग में पिता के वचन
		अयो. 58/28	'पलासैरिव पुष्पितैः' उपमा
प्लक्ष	पाकर	बा. 14/39	हवि के लिये
	(पिलखन)	अर. 73/3	पंपासर के पास
	Ficus Triela Roxb	यु. 4/73	सह्य पर्वत कानन में
पत्र-विटप	दुर्गन्ध खैर Aeacia Fernesiana	सु. 19/25	लंका में हनुमान जी छुपे
पाटला	पाटला Sterea Spermum	बा. 24/15	विश्वामित्र के साथ राम वन जाते राह में

	Suaveolenus De.		
पाटल	शतपुष्पी	अर. 15/18	पंचवटी में
पाटलैः	पाठर का वृक्ष	कि. 1/80	पंपासर के वन में
	Stereospermum Suveolens	उ. 26/5	कैलाश में
पाटली	पाढ़र Stereospermum	कि. 1/80	पंपा के पर्वतीय क्षेत्र के पृष्ठ भाग में
(पाटलिका)	Suaveo Lens	यु. 4/80	सह्य कानन में
परिजात (क)	कमल	उ. 26/15	कैलाश में रंभा के बालों का. शृंगार
	हरसिंगार	उ. 42/3	अयोध्या अशोक वनिका में
	Nyetantbes Arboristis		
पारिभद्रक	नीम, देवदारु, सरला	कि. 1/80	पंपासर के पर्वतीय पृष्ठ भाग में
	Erythrina Indica 1-am		
परिभद्र लीमया	फरहद	अर. 73/5	पंपासर के पास
मंदार	Erythrina Indica	कि. 7/80	पंपा अरण्य में
पिप्पली	पीपल Piper lengum	अर. 11/39,49	अगस्त्य मुनि के आश्रम पर
प्रिय	सप्तपर्ण, कदम्ब या असन	कि. 30/34	माल्यवान पर्वत पर
प्रियका	कदम्ब या असन, प्रियंगू	अयो. 71/12	उज्जिहाना नगरी पर
प्रियंग	फूल प्रियंगू, कंगूनी		
	Colliparpa	कि. 26/27	सुग्रीव के राज्याभिषेक पर
	Macrophyela Vahi	सु. 2/10	लंका में हनुमान जी ने देखा
		उ. 26/5	अयोध्या के अशोक वन. में
		उ. 42/5	कैलाश में
प्रियाल	कदम्ब Buchanamia	अयो. 94/8	चित्रकूट में
	Lanzan Spreng	अर. 73/3	पंपासर के पास
	चिरौंजी	सु. 2/9	लंका में हनुमान जी ने देखा
	Buchanamia Letifolia	उ. 26/2	कैलाश में
पुण्डरीक	अति श्वेत कमल	अयो. 87/2	भरत के नेत्र कमल
	Nelumbo Nucifera	अयो. 99/27	चित्रकूट में भरत
	Gaerion	अर. 19/14	पुण्डरीक विशाला
		कि. 28/33	वर्षा में वन की शोभा
		सु. 33/4	सीता के अश्रुपूर्ण नेत्र

		उ. 77/13	नेत्रों की तुलना
पुण्डरीक पलासाभ्याम्	कमल रूपी नेत्रों में	सु. 33/4	सीता के अश्रुपूर्ण नेत्र
	नाग केशर वृक्ष	अर. 15/16	पंचवटी में
पुन्नाग	Calophy-Ilum Inophyllum		
		अर. 60/62	विरही श्री राम का प्रश्न
		अर. 75/16, 23	पंपासर में
		कि. 1/78	पंपासर के अरण्य में
		कि. 42/7	कुक्षि प्रदेश में
		कि. 50/25	दक्षिण प्रदेश की गुफा में
		सु. 10/23	मुख से सुगन्ध
		सु. 15/9	लंका में चैत्य प्रासाद के पास
		उ. 26/4	कैलाश में
		उ. 42/3	अयोध्या की अशोक वनिका में
पुरोड़ोल	सोमरस या यवपिष्ट	अयो. 61/17	हवि के लिये
पुष्कर	कमल Lotus	अयो. 61/8	कमल नेत्र
		अयो. 91/78	भारद्वाज आश्रम में
		अयो. 95/14	मन्दाकिनी में
		अर. 11/6	सुतीक्ष्ण के आश्रम के आगे
		यु. 28/31	सुग्रीव के गले में पुष्पों की माला
पुष्प	वृक्ष या लता के फूल	बा. 14/27	पूजा के लिये
		बा. 73/21	विवाह मण्डप में
		अयो. 1/10	राज्याभिषेक के लिये
		अर. 64/25, 26	विरही श्री राम की पहचान
पुष्प पराग	पुष्प केशर	अयो. 50/21	पुष्पों की पंखुड़ियाँ
पूर्णक	ताम्र चूर्ण चूड वृक्ष Lucia Ecbinata	कि. 1/80	पंपासर
पंकज	कमल Nelumbo Nucifera Guchtin	अर. 8/14	सुतीक्ष्ण के आश्रम के पास
		अर. 23/13	सूखे कमल पंचवटी
		अर. 52/18	विनालमिव पंकजम्
		अर. 61/26	जन-स्थान में
		अर. 73/21	पंपासर में

		अर. 75/16	पंपासर में
		कि. 1/64, 67	पंपासर में
		कि. 27/16	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 28/52	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 29/52	माल्यवान गिरि पर
		कि. 38/17	किष्किन्धा की राह में
		कि. 48/11	दक्षिण देश में
		कि. 50/29	दक्षिण की एक गुफा में
बकुल	मौलश्री	अर. 60/22	विरही श्री राम के प्रश्न
	Meemusops Elngi	अर. 75/16	
		कि. 1/78	पंपासर के अरण्य में
		कि. 27/18	तुंगभद्रा नदी के किनारे
		कि. 42/7	कुक्षि-प्रदेश में
		सु. 10/23	मुख से सुबास
		सु. 14/43	लंका के अशोक वन में
		सु. 15/44	लंका के अशोक वन में
		यु. 4/79	सह्य-गिरि कानन में
		यु. 22/59	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 39/3	सुवेल पर्वत से दिखने वाला लंका का दृश्य
		उ. 26/4	कैलाश में
		उ. 42/5	अयोध्या के अशोक वन में
		उ. 105/15	भरत द्वारा बसाये गये नगर में
बदरी	बेर	बा. 24/15	विश्वामित्र के साथ वन जाते समय राह में
	Zizyphus-Jujuba	अयो. 55/8	भारद्वाज आश्रम से चित्रकूट की राह में
		अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
		अयो. 103/29	पिण्डदान के लिये
बन्धुजीवा (बन्धुजीव)	दुपहरिया का वृक्ष Pentapetes Phoenicca	कि. 30/62	माल्यवान पर्वत पर

बाणाः	सरकण्डा	कि. 30/56	माल्यवान पर्वत पर
	Saceharuma Citlare		
	S. Sara		
बला	एक महौषधि	बा. 22/13, 15, 18	विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त
विभीतक	Sida Cordifolia बहेड़ा	अयो. 91/49	भारद्वाज आश्रम पर
	Terminalia Belerica	यु. 22/49	सेतु निर्माणार्थ
	Roxb.	यु. 73/23	हवन में समिधा इन्द्रजीत
		यु. 80/73	हवन में सविधा इन्द्रजीत
बिम्बफल	कुकरी	सु. 15/29	अशोक वनिका में सीता के ओठ
	Coscinia Indica	सु. 29/7	बिम्ब फलोपलोपमोष्ठं का लाल रंग
बिल्वोपस्तनी	बिल्वफल के समान स्तन	सु. 60/13	सीता के लिये प्रयुक्त
बीजक	अनार Punica Granatum	अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
बीजपूरक	बीजोरा Citrus Acida	अयो. 91/30	भारद्वाज आश्रम में
(बीजापुर)		अर. 75/15, 23	पंपासर में
वेल्वा	बेला Aegle Marmelos	बा. 14/22, 39	अश्वमेध यज्ञ के धूप के लिये
(बिल्व)		बा. 24/15	विश्वामित्र के साथ वन में
		बा. 56/7	चित्रकूट के पास
		बा. 91/30,49	भारद्वाज आश्रम पर
		बा. 94/8,10	चित्रकूट में
		अर. 11/71	सुतीक्ष्ण के आश्रम के आगे
		यु. 22/57	सेतु निर्माणार्थ
भण्डीर	सिरिथ या बरगद	अर. 75/24	पंपासर पर
	Albizzia Lebeke		
भद्रक	धान्य विशेष भोज पत्ता	अयो. 94/24	चित्रकूट में
भूर्जपत्र	Betulautilis D. Don.		
भल्लातक	भिलावा Semi Carpus	अयो. 56/7	चित्रकूट के पास
	Anacardicum		
	निम्ब या गज पीपल	अयो. 94/8,10	चित्रकूट में
	पीपल (2) Seindapsus	सु. 14/4	अशोक वन में
	Officimals Scbitt.		
मंजिष्ठा	मंजीठ	अयो. 94/5	रंग के लिये

	Rubea Cordifolia	सु. 1/5	दक्षिण का पर्वतीय प्रदेश
		सु. 57/7	मेघों का रंग
मंदार	श्वेत आक	अर. 35/23	लंका के समुद्र तट पर
	बकायन	उ. 26/5, 15	कैलाश में
	Calatropis Procera	उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वानिका में
मधूक	मुलहठी या महुआ	अयो. 94/10	चित्रकूट में
		अर. 11/74, 76	सुतीक्ष्ण आश्रम के आगे
	Madhuca	अर. 13/21	पंचवटी की राह में
	Longifolia	अर. 42/17	मायावी मृग का वर्णन
	Macpr	कि. 1/78	पंपासर के अरण्य में
	Or	यु. 4/79	सह्य गिरि कानन में
	Bassia Late	उ. 42/3	अयो. की अशोक वनिका में
मधूनि	Folia द्राक्षा, शहद Vitis	अयो. 58/8	चित्रकूट की राह
	Vinifera or Honey	यु. 4/88	सह्य पर्वत पर "मणूनि मधु पिंगला"
मरिच	काली मरिच Pipper Nigrum	अर. 35/23	लंका के समुद्र तट पर
मल्लिका	स्वनाम ख्यात पुष्प वृक्ष	अर. 91/51	भारद्वाजाश्रम में
	Jasminum Angusti Folium	कि. 1/76	पंपासर के अरण्य में
महारोही	कन्द-विशेष	अर. 68/32	जटायु को पिण्डदान
महाद्रुम	अश्वत्थ Saraca Indica	सु. 19/34	उदाहरण के रूप में
माधवी	स्वनाम ख्यात पुष्पलता	कि. 1/77	पंपासर के अरण्य में
(माधव्य)	Hiptage Abelmoscus	यु. 4/78	सह्य गिरि कानन में
मालती	स्वनामख्यात पुष्पलता(चमेली)	अयो. 91/57	भारद्वाजाश्रम में
	Jasminum Asboresens Roxb	अर. 75/24	पंपासर में
		कि. 1/76	पंपासर के अरण्य में
		कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
		कि. 28/52	माल्यवान पर्वत पर
माष	उड़द Pharedus Radintus	उ. 92/19	रामाश्वमेध में प्रयोगार्थ
मुग्ध	मूंग Phascolus Mungo	उ. 91/19	रामाश्वमेध में प्रयोगार्थ
मुचुकन्द	पुष्प वृक्ष विशेष	कि. 1/80	पंपासर के अरण्य में

	Pterospermum Sulber Folium		
मुचुकिन्द	स्वनाम तिलक जाति का वृक्ष	सु. 2/9	लंका में हनुमान जी ने देखा
		यु. 4/90	सह्य कानन में
मृग	गजकन्द	अयो. 56/22	पर्ण-कुटी बनाने के लिये
मृणालिनी	कमलिनी	सु. 17/25	सीता की तुलना
	(चन्द्रविकासी) Mymphea Lotus	सु. 19/17	लंका में सीता की समानता
मृत संजीवनी	एक दिव्य औषधि मूर्च्छा दूर करने के निमित	यु. 74/33	हिमाचल में ऋषभ तथा कैलाश के बीच में प्राप्त
यव	जवधान Haerdeum, Vulgare	अर. 16/16	पंचवटी में
रक्त कुरवक	रक्तनन्दी वृक्ष Cedrela Toona	कि. 1/82	पंपासर के अरण्य में
रक्त चन्दन	लाल चन्दन	अयो. 91/58	भरद्वाजाश्रम में
	Santalium album	सु. 10/26	रावण के देह पर लिप्त
		सु. 40/4	रावण के देह पर लिप्त
		सु. 44/4	रावण के देह पर लिप्त
		यु. 23/6	संध्या की तुलना
		यु. 128/55	राज्याभिषेक
रक्तोत्पल	लाल कमल	कि. 27/22	प्रस्रवण गिरि पर
	Nymphoea Stellata	यु. 23/6	संध्या की समानता
रक्तपद्मोत्पल	लाल कमल	अर. 42/16	मायावी मृग के वर्णन में
रक्ताम्बुरुह	लाल कमल	उ. 8/9	नेत्र की तुलना
रजका	(रंजक) कपिलु Mallotus Phili Ppinensis	यु. 4/79	सह्य गिरि कानन में
राजा	सोमलता Ephedra-Geradiana	बा. 14/6	अश्वमेध यज्ञ के लिये सोम रस
राजीव	कमल	अयो. 98/8	"राजीवाक्ष"
	Nelumbo	अर. 43/24	मायावी मृग
	Nucifera, Gaerion	अर. 61/29	नेत्र की उपमा

लकुच	बड़हर वृक्ष	अर. 15/18	पंचवटी में
(लिकुच)	Antiaris Lakooche		
लव	लामज्जकतृण	सु. 11/18	मांस में मिश्रित
	(घास की एक जाति)	उ. 22/2	मार्जन के लिये
लवण	नमक	अर. 22/2	लवण जल
	Salt	उ. 92/19	रामाश्वमेध में प्रयोगार्थ
लाजा	लावा धान्य	बा. 73/23	विवाह मण्डप में
	"ब्रीहि धान्य"	अयो. 3/9, 15	राज्याभिषेक के लिये
		अयो. 17/6	राज्याभिषेक के लिये
		अयो. 20/18	देव पूजा के लिये
		अयो. 91/56	भारद्वाज आश्रम पर भरत
		यु. 73/22	इन्द्रजीत द्वारा अग्नि की पूजा
		यु. 67/83	कुम्भकर्ण के स्वागत में वर्षा
		यु. 114/20	रावण के शव पर रखने के लिये
		उ. 41/13	श्री राम द्वारा पुष्पक का पूजन
लाक्षा	लाख	अयो. 75/38	बेचना पाप है भरत
	Coccus Lacca		
लाक्षारस	लाख रस (पानी)	यु. 70/16	रक्त की तुलना
लोधा	लोद	अयो. 94/8, 10	चित्रकूट में
	Syphloces	कि. 1/79	पंपासर के अरण्य
	Raccmosa Roxb	कि. 43/13	हिमालय पर्वत पर
		कि. 49/17	विंध्य पर्वत पर
		उ. 26/5	कैलाश में
		उ. 42/4	अयोध्या की अशोक वानिका में
लोहिता चन्दन	रक्त चन्दन	सु. 10/8	रावण की देह पर लिप्त
	लाल चन्दन		
	Santalum albwn		
वट	बड़ का पेड़	अर. 75/23	पंपासर के पास
	Ficus Bengalensis		
वन राजी	सेवती नील (कृष्ण राजी)	सु. 56/26	पर्वत के परिधान के रूप में

	Brassica Nigra		
बरुण (बरण)	बरणो	अयो. 94/9, 10	चित्रकूट में
	Crataeva Nurvala		
वानराः	बांस	यु. 22/56	सेतु निर्माणार्थ
	Bambusa arundenacea		
वानीर	वेत्रभेद	कि. 27/18	तुंग भद्रा नदी के किनारे
	Salix Caprea		
बाराहै	बाराही कन्द	अयो. 91/67	भरत के स्वागत में भारद्वाज
आश्रम	Tacca aspera		के आश्रम पर
वासन्ती	मालती लता (जूही)	कि. 1/77	पंपासर के अरण्य में
(वासन्त्य)	Jasminum Arborescens	यु. 4/78	सह्य पर्वत कानन में
विशल्या	एक दिव्यमें प्रविप्ट औषधि जो देह		अयो. 25/38 कौशल्या द्वारा राम के हाथ पर बाँधना
(विशल्यकरणी)	शल्य को आसानी	यु. 50/30	क्षीर सागर में होने वाली दिव्य औपधि
	से वाहर निकाल देती है	यु. 74/33	हिमाचल में ऋणमूक तथा कैलाश के बीच में प्राप्ति
		यु. 101/30,32	महोदय पर्वत के दक्षिण शिखर पर
वेणु	वाँस	अयो. 85/20	दुःख के पर्वत में बाँसों का वन
	Bamlbusa arundencea	अयो. 94/8,10	चित्रकूट में
		कि. 30/50	माल्यवान पर्वत पर
		सु. 56/31	लंका के अरिष्ट गिरि पर
वेतस	वेत	बा. 14/39	चटाई के लिये
	Colamus Rotang	अयो. 55/15	भारद्वाज आश्रम में
		कि. 27/18	प्रस्रवण गिरि पर
बेग (वेत्रक)	वैंत	अयो. 94/9	भारद्वाज आश्रम में चित्रकूट
	Calamus Tenuis		की राह पर
वंज्जुल	वेत्स, अशोक	अर. 11/74	सुतीक्ष्ण के आश्रम के आगे
(वंजुल)	तिनिश	अर. 61/16	पंचवटी जन स्थान में
वंजुला	Salixtera Sperma Roxb	कि. 1/78	पंपासर के अरण्य में
		कि. 50/25	दक्षिण प्रदेश की गुफा में ऋष्यविल में
		यु. 4/79	सह्य पर्वत कानन में

वंश	बाँस	अर. 15/21	पंचवटी में
	Bambusa arundinacea	सु. 56/34	लंका से लौटते समय हनुमान जी की राह में
		यु. 22/56	सेतु निर्माणार्थ
वंशी बाँस		अयो. 55/8	भरद्वाज आश्रम में चित्रकूट की राह में
	Bambusa Arundinacea	अयो. 55/14	शुष्कैर्वशैः
		सु. 56/34	हनुमान जी का लंका से लौटते समय राह में
वृत्त	कुन्दकली Jasminum Ausiculalin Vahi	अयो. 56/24	श्वेत दाँतों की उपमा "वृत्त दंष्टो"
शत पत्र (त्रि)	गुलाब Rosadamascena	अर. 75/12	पंपासर पर
शमी	खेजड़ी Prosopis Spicigera	अर. 15/18,22	पंचवटी में
शर्करा	शक्कर Sugar	अयो. 91/73	भरत के स्वागत में भरद्वाज आश्रम में
शर	शरकण्डा Saccharum Arundinaceum	अयो. 30/12	वन में उपलब्ध होने का भय
	Ratz	अर. 15/22	पंचवटी में
		सु. 56/23	हनुमान जी के लंका से लौटते समय राह में
		उ. 35/22	कुमार कार्तिकेय का जन्म स्थान
शरदीवाम्बुज	शरदऋतु में लाल कमल Nymphoea Stellata	सु. 44/8	जम्बु माली से युद्ध करते हुए हनुमान जी के मुख की तुलना
शरपत्राणि	कुश-पत्र Desmostachya Bipinnata Stapp	यु. 73/23,24	हवन में प्रयोगार्थ इन्द्रजीत द्वारा
शर्वरी	हल्दी	अयो. 71/17	"शर्वयामरुणोदये"
शरवण	शरकण्डे का वन	उ. 16/1,2	रावण की यात्रा
	Saccharum arundinaceum Retz	उ. 35/22	कार्तिकेय का जन्म स्थान
श्यामतमाल (श्यामा)	श्यामतमालपत्र अनन्तमूलया प्रियंगू Calliprapa Macrophylla	कि. 30/62	माल्यवान पर्वत पर

	Vahi		
श्यामन्यग्रोध	काले पत्ते वाला बड़ (गहरे हरे)	अयो. 55/23	भारद्वाज आश्रम से चित्रकूट की राह में
शाल वृक्ष	शाल	यु. 59/77	युद्ध में नील के आयुध
	Shorea Robusha	यु. 39/3	सुवैल पर्वत शिखर से दृश्य लंका
		यु. 93/19	हनुमान जी का आयुध
शालि	चावल जाति (धान्य)	अयो. 16/17	हेमन्त वर्णन में
	Oriza Sativa	अयो. 32/19	दान के लिये
शाद्वला	शैवाल (घास)	कि. 28/24	वर्षा ऋतु वर्णन में
	Pistia Stratiotus	सु. 2/6	लंकापुरी में
		यु. 43/17	सिर के बालों की समानता
		यु. 58/30	केशों की तुलना में
शाल्मली द्रुम	सेमल	अर. 53/21	रावण को सीता की फटकार
	Bombax Malabaricum	कि. 1/82	पंपासर के अरण्य में
		यु. 7/13	रावण की प्रशंसा में राक्षसों के शब्द
		यु. 40/14	सुग्रीव रावण युद्ध की उपमा
		यु. 88/71	लक्ष्मण और इन्द्रजीत के युद्ध की उपमा
शिखरिणी	कुन्दकली	अर. 46/18	सीता के दाँतों की समानता
	Jasminum Ausiculatum		रावण द्वारा
	Vahi		
शिरीष	सरेस	कि. 1/82	पंपासर के वन में
	Albizzia Labbeck Benth	कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
शिंशष	स्त्री जाति का वृक्ष विशेष	अयो. 91/51	"कानेन लता" भारद्वाज आश्रम में
शिंशपा (शिंशप) (शीशम)	शीशम	कि. 1/82	पंपासर के वन में
	Delpergia Sissoo	सु. 14/41	अशोक वाटिका में
		सु. 31/17	लंका के अशोक वन में
		सु. 42/19	सीता का निवास लंका में
		सु. 56/1	अशोक वाटिका में

		सु. 58/55,62,64	अशोक वन में यहाँ यह शब्द अशोक वृक्ष के लिये प्रयुक्त हुआ है
		यु. 4/80	सह्य कानन में
शुक्ल कुमुद	सफ़ेद कमल	कि. 27/22	प्रस्रवण गिरि पर तुंग भद्रा नदी में
	Nelumho Nucifera		
	Gachium		
शुक्ल चन्दन	श्वेत चन्दन	अयो. 62/75	भारद्वाज आश्रम में
	Santalum Flonum		
शुल्क वृक्ष	"अर्जुन" या लोध्र	अर. 75/23	पंपासर पर
(शुक्ल द्रुम)	(i) Terminal Arjuna		
	(ii) Symphlocos Race mosa Roxb		
शुक्ल पद्म	सफेद कमल	अर. 75/20	पंपासर में
	Nelumpo Nucifera Gachin		
शैवाल	जलज, द्रव्य, काई	सु. 57/2	आकाश से तुलना
(शैवालानि)	Pistia Stratiotes	कि. 30/55	माल्यवान पर्वत पर
		यु. 58/30	आंत्र से तुलना
		उ. 77/5	वन में सरोवर में
श्रग्विणी	चन्दन	सु. 4/22	श्रग्विणस्त्वनुलिप्ताश्च
	Cordia Myxa		
श्लेष्मान्तक	(लिसोड़े, बहेड़ा)	बा. 14/23	अश्वमेध यज्ञ हेतु (दशरथ)
	(i) Cordia Obliqua		
	(ii) Terminalia Beleriea Roxb		
श्लेष्मान्तक वन	लिसोड़े का वन	उ. 10/49	रावण आदि का भ्राताओं सहित तपस्या के लिये वन में जाना
सर्ज	पियासाल वृक्ष	कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
	Shorea Robusta Gaertmf	कि. 28/18,34	माल्यवान पर्वत पर
सर्ज-पुष्प	पियासाल वृक्ष का पुष्प	कि. 27/10	प्रावृट् प्रसंग में माल्यवान पर्वत पर
	Flower of Shorea Robusta		
	Gaertnf	कि. 28/18	प्रस्रवण गिरि पर
सन्धान करणी	अस्थि संधानक दिव्य	यु. 74/33	हिमालय में ऋषभ तथा कैलाश केबीच
(सन्धानी)	औषधि	यु. 101/30, 32	महोदय पर्वत के दक्षिण शिखर पर

सप्तच्छद	छितवन	कि. 30/30, 35	माल्यवान् पर्वत पर
	Alstonea Scholaris	कि. 32/13	किष्किन्धा में
	R. Br.	सु. 2/10	लंका में हनुमान जी ने देखा
सप्तवर्ण	छितवन	अर. 75/24	पंपासर के अरण्य में
Alstonea Scholaris R.Br.		कि. 30/62	माल्यवान पर्वत पर
		कि. 49/17	विन्ध्य पर्वत पर
		सु. 14/36	अशोक वाटिका में
		सु. 15/9	अशोक वाटिका में
		यु. 22/57	सेतु निर्माणार्थ
		यु. 39/3	सुवैल पर्वत पर
		यु. 42/24	अयोध्या अशोक वनिका में
सरल	चीड़	अयो. 76/16	राजा दशरथ के शव की दाह क्रिया
	Pinus Roxburghii Sargent	अयो. 91/40	भारद्वाज आश्रम में
		कि. 27/17	
		सु. 2/9	लंका में
		यु. 4/81	सह्य पर्वत पर
सरोरुह	कमल	कि. 28/42	माल्यवान पर्वत पर
	Nelumbo Nucifera Gochin		
सल्लकी	चीड़ की जाति का वृक्ष	अयो. 55/8	भारद्वाज आश्रम में
	Boswellia Serrata Roxb		चित्रकूट की राह में
सन्तान पादमप	कल्प वृक्ष	सु. 14/6	अशोक वाटिका में
		सु. 15/2	अशोक वन लंका में
साल	शाल वृक्ष	अयो. 20/32	कौशल्या की तुलना
	(साल वृक्ष)	अयो. 71/16	कलिंग नगर के पास
	स्वनाम का वृक्ष	अयो. 72/22	गिरते हुए मूर्च्छित भरत की समानता
	Shor Robusta	अयो. 96/11	लक्ष्मण शाल पर चढ़े
		अयो. 97/28	चित्रकूट में
		अयो. 99/19	चित्रकूट में
		अर. 101/74	सुतीक्ष्ण के आश्रम से आगे
		अर. 15/16	पंचवटी में
		अर. 25/32	पंचवटी में युद्ध में प्रयुक्त

		अर. 30/16	पंचवटी में
		अर. 35/13	लंका के समुद्र तट पर
		अर. 60/21	विरही श्री राम का प्रश्न
		कि. 8/12, 14, 15	ऋषभ पर्वत पर
		कि. 11/90, 91	ऋषभ पर्वत पर
		कि. 12, 3, 5	ऋपभ पर्वत पर
		कि. 27/17	तुंग भद्रा नदी के किनारे
		कि. 31/14	किष्किन्धा की राहों में
		कि. 40/5, 6	सुवर्ण शिखर पर
		कि. 50/25	दक्षिण की गुफा में
		सु. 1/48	दक्षिण मं
		सु. 14/3	अशोक वाटिका में
		सु. 44/13, 14	अशोक वाटिका में
		सु. 56/34	अरिष्ट गिरि पर
साल	साल	यु. 22/56	सेतु निर्माणार्थ प्रयुक्त
		यु. 28/2	वानर सेना की तुलना
		यु. 39/3	सुवैल शिखर पर
		यु. 42/14	युद्धास्त्र के रूप में
		यु. 43/34	युद्धास्त्र के रूप में
		यु. 59/43, 77	युद्धास्त्र के रूप में
		यु. 67/153	राम के वाणों का स्वभाव
		यु. 76/53	अंगद का आयुध कुम्भ को मारने हेतु
		यु. 89/25	हनुमान जी का युद्ध आयुध
		यु. 127/29	युद्ध
		उ. 19/23	उपमा
		उ. 32/14,18	सहस्रार्जुन की समानता
सालवन (शालवन)	साल वृक्षों से युक्त वन	यु. 127/29	पुष्पक विमान से दिखने वाला दृश्य
	निर्गुण्डी के आकार का	कि. 1/77	पंपासर में एक वृक्ष
	एक वृक्ष	कि. 27/10	प्रस्रवण गिरि पर
		यु. 4/72,78	सह्य पर्वत कानन में
सुरक्ता	लाल चन्दन	अर. 73/5	पंपासर अरण्य में
	Pterocarpus Santalum		
	album		

सुवर्णकरणी	देह को सुन्दर तथा अव्रण	यु. 74/33	हिमालय पर
	बनाने वाली दिव्य औषधि	यु. 101/30,32	महोदय पर्वत के दक्षिण शिखर पर प्राप्त
सोम	सोमवल्ली	अयो. 61/18	यज्ञ से सम्बन्धित
सोमरस संरक्षित	Ephedra Vilgaris	अर. 32/19	ऋषियों के यहाँ अभिमंत्रित तथा संरक्षित सोम रस को रावण नष्ट कर देता था
सौवर्चल	नमक	सु. 11/16	मांस में दही तथा नमक मिलाकर रखा था
	Rock Salt		
संजीवकरणी	जीवित करने वाली	यु. 50/30	लंका में क्षीर सागर में पैदा होने वाली दिव्य औषधि
(संजीवनी)	दिव्य औषधि	यु. 74/33	(मृत संजीवनी) हिमालय में ऋषभ तथा महोदय के बीच में होने वाली
		यु. 101/30, 32	महोदय पर्वत के दक्षिण में प्राप्त
स्थगर	स्वनाम वृक्ष	अयो. 94/24	चित्रकूट में
स्यन्दन	तिनिश वृक्ष	अर. 15/18	पंचवटी में
	Lagershtraema Flood Reginac	कि. 1/82	पंपासर के अरण्य में
सवौषधि	औषधि वर्ग विशेष	अयो. 3/8	राज्याभिषेक के लिये
	कूठ, जटामान्सी, हल्दी,	यु. 69/18	पंपासर के वन में
	बच, छड़, छरीला, चन्दन,	यु. 74/31,61	हिमालय में ऋषभक तथा कैलाश के बीच
	कर्पूर आदि	यु. 128/73	राज्याभिषेक हेतु
हरिचन्दन	चन्दन जाति	अयो. 65/8	दिवंगत दशरथ के लिये जल
हरिश्याम	चन्दन जाति	कि. 41/40	ऋषभक् पर्वत पर
हेम विपुला	मुकुल Cassia Fistula	सु. 9/51	रावण के महल में सोई सुंदरियों की तुलना
हिन्ताल	स्वनाम प्रसिद्ध ताड़ जाति का एक वृक्ष	कि. 1/83	पंपासर के अरण्य में
(हिन्ताक)	Barringtonia Acutangula	कि. 27/18	प्रस्रवण गिरि पर
		यु. 4/81	सह्य पर्वत कानन में
		यु. 39/4	सुवैल पर्वत से लंका का दृश्य
क्षार	नमक आदि Alcalines	अयो. 73/3	घाव पर नमक छिड़कना

क्षोभ (शौभी)	अलसी Limum Usitatissinum	अयो. 17/4	श्री राम के वस्त्रों से सम्बन्धित
क्षीर वृक्ष	दूध निकालने वाले पेड़ वट, गूलर, पीपल (पारस पिप्पली) पाखर (पाँच वृक्ष)	कि. 26/25	सुग्रीव का राज्याभिषेक

परिशिष्ट संख्या-2

औषधि शब्दावली

रामायण में द्रव्य का नाम	हिन्दी तथा लैटिन नाम	प्रसंग	स्थान का प्रयोग
अगरु	अगर	अयो. 91/83	लेप के लिये
		यु. 21/4	बालक राम की बाँहों पर लेप
अतिबला	कंघी Albutilon Indicum	बा. 22/13, 15, 18	विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त
असृक चन्दन	लाल चन्दन Ptero Carpus Santalinus	उ. 69/19	अंग में लिप्त रक्त चन्दन
औषधि	औषधि जल	सु. 1/21	विष नाशक
चन्द्र	दिव्य औषधि	यु. 50/31	मूर्च्छित वानरों को चेत कराने के लिये
दिव्य औषधि	उच्च कोटि की औषधि	कि. 37/31	हिमालय की राह में
द्रोण	स्वनाम दिव्य औषधि	यु. 50/61	क्षीर सागर में उपलब्ध होने वाली दिव्य औषधि। मूर्च्छित वानरों को चेतन कराने के लिये
परमौषधि	दिव्य औषधियाँ	यु. 5/31	चन्द्र और द्रोण पर्वत पर उगने वाली
मृत संजीवनी	एक महाऔषधि (मूर्च्छा दूर करने के लिये)	यु. 74/33	हिमालय में ऋषभ तथा कैलाश के बीच में प्राप्त
विशल्या (विशल्यकरणी)	एक दिव्य औषधि	अयो. 25/38	कौशल्या द्वारा राम के हाथ पर बाँधना
सन्धान करणी	अस्थि संधानक	यु. 74/33	हिमालय पर प्राप्त
संधानी	दिव्य औषधि	यु. 101/30, 32	
सुवर्णकरणी	देह को सुन्दर बनाने वाली	यु. 74/33	हिमालय पर प्राप्त
संजीवकरणी	जीवित करने वाली	यु. 50/30	क्षीर सागर में प्राप्त
संजीवनी	दिव्य औषधि	यु. 74/33	हिमालय में प्राप्त
सर्वोषधि	औषधि वर्ग	अयो. 3/8	राज्याभिषेक के लिये

बला	एक महाऔषधि	बा. 22/13, 15, 19विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त

परिशिष्ट संख्या-3

रोग नामावली

अंधा	अयो. 46/6, 64/4, 35
अस्थि भंग	सुंदर - 47/36
अमर्ष से नेत्र घूमना	यु. 36/2, ऊ. 93/16, 65/14, 67/16, 105/5
अस्वस्थ	उ. 50/17, 69/21
आधि-व्याधि	अयो. 12/2, 18/13
आर्त एवं संतप्त	अयो. 21/55, 52/43, यु. 59/139
आग में जलना	अयो. 29/21, 74/33, सु. 55/13, 22, 58/161, यु. 57/44, 75/23
आँखें बाहर निकलना	सु. 47/36, यु. 43/23, 70/14
आँख फोड़ना	सु. 67/16, यु. 20/32, 70/65, 66
आपात मरण	यु. 63/19
आघात जनित क्लेष	यु. 91/11, उ. 8/15
उन्माद	अयो. 12/55, 91/44, सु. 26/1, 34/23, 24, यु. 75/61, उ. 6/53, 58, 7/51, 14/1, 17/5, 24/33, 29/1, 47/7, 48/25, 98/9
श्री हीन	सु. 59/22, 28/13
कुब्जता	बा. 32/23, 24, 33/23, अयो. 9/41, 45, 15/39, 66/6, 78/5, 91/50, सुन्दर- 4/19, 17/8
काम मोहित	अयो. 11/17, कि. 1/32, 111, 43/50, 58/74, उ. 17/3, 20, 26/11, 40, 30/29 उ. 32/51, 80/5, 88/10, 12, 84/9
क्लान्त	अयो. 42/23
कृश काय	अयो. 59/4, 64/4, 100/1, कि. 50/23, सु. 15/18, 22, 26, 19/11, 20, 28/13, 53/41, 56/6, 57/39, 59/31, 65/26, यु. 5/18, 11/1, 42/8, 45/18, 81/9, 113/41, 125/29
कान से खून बहना	कि. 11/41, यु. 59/116
काम भोग से अचेत	यु. 60/16, 29
खिन्न बदन	कि. 50/23, सु. 36/21
गर्भ स्राव	बा. 37/26, 27
घायल (घाव)	अयो. 11/18, अरण्य 25/13, कि. 12/22, 22/24, 19/2, यु. 24/38, 44/13, 49/4, 52/7, 59/110, 69/91, 94, 76/56, 90/26, 91/11; 46/24, 100/11, 103/- उ. 15/28, 35, 19/22, 23/26, 29/34, अयो. 73/3, अर. 22/2, 25/14, कि. 16/24, 61/2, सु. 38/24, 46/36, यु. 22/38, 54/32,74/73, 88/55, 120/9, 14/17, उ. 7/15, 28/36
घबराहट	अयो. 30/-, कि. 51/3, 58/158, सु. 64/30, उ. 2/18, 65/24, 86/5

घुटघुटकर मरना	कि. 46/8
चक्कर आना	बा. 30/19, अयो. 12/39, अरण्य 2/26, यु. 59/61, 59/116, 79/26
चेतना लुप्त होना	अयो. 9/16, 12/5, 12, 37, 55, 14/24, 34/61, 64/73, 72/18, कि. 11/47, 17/15, 50/20, सु. 48/38, 45, 46, यु. 2/19, 32/7, 31/4, 40/14, 41/60, 45/16, 46/45, 59/116, 117, 70/43, 66, 74/1, 92/38, 98/4, 35/51
चित्त व्याकुल	अयो. 13/14, 18/5, 34/3, 4, यु. 71/9, 30, 24/34, 44/21
चेचक	कि. 1/109, सु. 13/68
चोट	कि. 34/15, सु. 47/25, यु. 44/35, 98/2, उ. 35/47, 69/12, 85/14
छाती में आघात	सु. 47/25, 67/7, 8, यु. 77/16, 98/19
छटपटाना	यु. 59/117
छींक आना	उ. 76/42
जराशीर्ण	अयो. 2/8, 64/4, 35, 105/20, 24, 117/18, 67/8, उ. 20/9,11, 41/11, 37/23, 89/1, 2, 4, 6, 8, 10, 11, 110/10
ज्वर	अयो. 75/49, यु. 7/14, 10/27
तेज शिथिल होना	कि. 58/4, 64/10, 66/7, सु. 49/17, यु. 50/40, उ. 37/6, 51/14, 50/18, 74/15, 76/44, 45, 104/8
तड़पना	यु. 59/117
धूप से पीड़ित	अयो. 40/20, यु. 104/16
दीन	अयो. 10/3, 64/35, सु. 53/4, 58/58, 58/59, यु. 30/9, 34/28, उ. 48/2, 52/13, 106/1
दुःख से संतप्त	अयो. 10/22, 18/5, 34/1, 2, 39/2, 42/23, 47/3, सु. 15/22, 29/29, 40/3, यु. 47/24, 64/34, उ. 48/3, 16, 6, 49/5, 74/2, 98/2, 17, 99/3, 107/1, 9
दुर्बलता	12/112, 18/5, 42/23, उ. 92/13
दृष्टि घूमना	अर. 68/11, यु. 50/40, उ. 84/5
दिग्भ्रम से चित्त भ्रान्त	सु. 26/1
नसों के बंधन खुलना	सु. 47/36
पिशाचोन्माद	अयो. 10/29, 12/57, 33/10
पीड़ा (दर्द)	अयो. 64/17, 17/54, सु. 48/39, 58/49, 154, यु. 45/19, 47/19, 21, 74/73, 91/11, 114/28, उ. 7/33, 7/39, 23/32, 28/16, 43/21, 102/4
पागल	अर. 39/2, सु. 27/25

पित्त प्रकोप	सु. 26/1, उ. 5/7
बेहोश (अचेत)	बा. 19/20, 21, 20/1, 25/14, 30/19, 20, 43/40, 46/16, 67/19, 74/14, 15, 16, 75/5, अयो. 12/5, 12/112,13/25, 14/1, 20/33, 21/51, 55, 34/ प्रा0 61, 39/1, 3, 8, 47/1, 18, 48/36, 57/26, 27, 33, 58/1, 59/28, 33, 34, 60/1, 61/27, 64/21, 27, 74, 65/24, 25, 75/7, 9, 18, 60, 65, 77/4, 78/24, 26, 87/3, 4, 103/1, अ. 3/12, 18/26,19/2, 21/21, 34/4, 39/27, 56/36, .62/3, कि. 16/39, 18/1, 66, 14/2, 30/15, 49/20, 61/10, सु. 9/61, 10, 40, 33/22, 35/39, 41, 37/45,, 43/7, 62/27, यु. 34/2, 44/34,42/19, 48/31, 49/3, 50/22, 51/35, 52/15, 54/25, 58/59, 59/ प्रा0 41, 52, 59/117, 68/6, 67/29,48, 49, 50, 67, 77, 79, 164, 70/30, 32, 62, 52, 71/99,73/39, 41, 72, 74, 76/2, 46, 56, 58, 84/4, 7, 85/18, 88/1, 10, 92, 45, 90/57, 92/4, 58, 95/9, 96/24, 98/7,99/42, 84/4, 7, 85/18, 88/1, 10, 92, 45, 90/57, 92/4, 58, 95/9, 96/24, 98/7, 99/42, 110/9, 111/86, 125/40, उ. 8/40, 29/22, 35/ प्रा0 40/20, 48/23, 51/15, 55/17, 18, 48/10, 55/20, 58/17, 69/8, 12, 71/6, 16, 17
भूतोन्माद	अयो. 12/2, 18, 57, 58/34, 60/1, सु. 26/1, उ. प्रक्षिप्त सर्ग 1/17, 66/5, 6
मुख सूखना	कि. 17/54
मेहनर	सु. 64/4
महारोग	यु. 9/9
रक्त वमन करना	अर. 67/14, 68/15, कि. 16/22, 48/21, यु. 52/10, 54/25, 58/16, 59/116, 67/20, 27, 91, 96, 89/50, 90/21
लहूलुहान	यु. 24/38, 31/28, 49/4, 51/31, 53/19, 63/39, 64/25, 66/13, 67/89, 73/41, 51, 80/30, 39, उ. 15/35, 21/31
वात रोग	बा. 35/24, सु. 34/23, उ. 5/7, 35/56
विषाद	बा. 75/5, अ. 69/38, कि. 64/6, 8, 9, यु. 74/3, उ. 29/9, 36/16, 47/15, 54/16, 72/13
वंदना	अयो. 14/1
वन्ध्या	अयो. 20/36, 37
व्यथित	अर. 25/13, सु. 32/8, 67/27, यु. 12/17, 30/9, 45/18, 67/18, उ. 15/35, 69/11,

वियोग से कृश	सु. 14/46
सूर्य किरण. से पीड़ित	कि. 58/6, 63/10
साँस लेने में पीड़ा	यु. 91/11
स्थूलता	उ. 1/22
क्षत-विक्षत	अयो. 9/14, सु. 38/18, यु. 42/23, 34, 44/8, 13, 35, 70/30, 37, 71/42, 73/41, 55, 88/30, 85/20, 49, 58, 71, 102/19, उ. 23/41, 28/11
क्षुब्ध	यु. 3/19

परिशिष्ट संख्या-4

खनिज द्रव्य (धातु)

असी	लोह	अयो. 75/38, अरण्य-53/19, उ. 21/15
कृष्णायस	लोह	बा. 37/19
कांचन	स्वर्ण	अयो. 65/14, 19, अरण्य- 35/22, 53/19, कि. 26/23, 33/20, 43/17, 50/32, 37, 51/14, सु. 7/12, 13, 9/62, 15/15, 54/27, 62/12, उ. 31/27, 35/19, 42/1, 9, 53/8, 91/20, 92/15,16
कांचन बिन्दु	स्वर्ण जल	सु. 44/9
कालायस	लोह	यु. 3/13
गैरिक	गेरू	यु. 4/76, अयो. 91/42, कि. 28/18, यु. 26/44, उ. 14/26, 7/15, कि. 67/36
जम्बूनद	उच्चकोटि का स्वर्ण	सु. 3/8
जातरूप	स्वर्ण	बा. 37/19
तप्त हाटक	तपा हुआ सोना	सु. 3/9
ताम्र	ताँबा	सु. 37/38
तप्त कांचन	तपा सोना	यु. 10/5
त्रपु	राँगा (राजा)	बा. 37/19
नीलांजन	नीला सुरमा	उ. 67/91
मनः शिला	मेण शिल	कि. 26/28
रजत	चाँदी	अयो. 94/5, 6, अर. 35/22, 73/16, कि. 33/20, 50/32, सु. 3/9, 7/12, 54/27, उ. 14/24, 91/20, 92/16
रूप्य	चाँदी	सु. 9/16
हिरण्य	चाँदी, स्वर्ण	बा. 37/18
हेम जम्बूनद	स्वर्ण	सु. 4/30
हेमजाल	सोने की जाल	सु. 45/9
हेम कोणे	सोने के डंडे	उ. 42/34

स्वर्ण प्रति रूप	पीतल	अर. 29/20
सीसक	शीशा	बा. 37/19

रत्न

इन्द्रनील	इन्द्रनील मणि	यु. 111/42, अर. 42/16
इन्द्रनील	इन्द्रनील मणि	सु. 9/17, अर. 43/29
कौस्तुभ	कौस्तुभ मणि	यु. 22/21
कांचन मणि	दिव्य मणि	सु. 65/8, कि. 43/42, 50/32, 51/6, सु. 7/9, 9/17, 22, 10/51, 11/26, 15/42, यु. 3/14, 11/3, 75/8, 111/106, उ. 39/9
प्रवाल	मूँगा	सु. 7/12, अयो. 91/44, अर. 35/22, कि. 50/32, सु. 7/12, 13, 9/17, 15/15, 42, 33/1, 54/27, यु. 3/14, 11/3, 75/8, 111/106, उ. 39/19
मुक्ता	मोती	सु. 3/10, अर. 35/22, कि. 43/42, 45, 50/30, सु. 9/17, 10/51, 18/24, 54/27, यु. 3/14,75/8, 11, 111/106, उ. 15/38, 39/9
महानील	मणि	सु. 9/17
मणिवर	पुखराज	अ. 29/5
विद्रुम	प्रवाल	सु. 33/10
वैड्रर्य	नीलम	सु. 3/8, 54/27, यु. 3/14, उ. 14/24, 42/13
वज्र	हीरा	सु. 3/9, 54/27, उ. 39/25
शुक्ति	------	यु. 21/29
स्निधा	स्निधा मणि	यु. 75/8
शंख	शंख	सु. 7/2
स्फटिक	स्फटिक मणि	सु. 3/10, अयो. 94/6, अर. 73/16, कि. 1/36, सु. 10/1, 14/22, 49/9, उ. 31/17, 42/11

परिशिष्ट संख्या-5

जङ्गम द्रव्यों की सूची

आसव	बा. 53/2, सु. 1/23, 6/42, 9/56
इंगुदी	अयो. 50/28, 30, 87/22, 88/5, 183/20, 29, 104/8, 13,14
कन्द	अयो. 20/29, 36/25, 52/102, 64/34, 91/67, 96/2, अरण्य 68/32, कि. 48/9, सु. 1/116, 56/37
खीर	बा. 16/26, 53, 3, अयो. 20/17-18, 50/37, 75/30, 91/41, 69, अर. प्रा0 1/22, कि. 37/29
खाण्डव	बा. 53/4, उ. 92/10

	91/54, 72, 100/50, 114/5, अर. 16/7, 19/8, कि. 37/25, सु. 2/58, 18/24, यु. 10/17, 16/9, 22/15, उ. 23/21, 91/20
दही	बा. 53/3, अयो. 3/14, 15, 14/35, 15/6, 8, 17/6, 20/17-18, 25/30, 26/13, 32/21, 91/72, कि. 26/23, 30/50, 40/43, सु. 61/23, यु. 10/9, 111/164, 112/20, उ. 91/20
फलों का गूदा	अयो. 91/21, 52, सु. 1/23
फेन	अयो. 114/7, अर. 19/2, सु. 18/24, यु. 58/33, 96/33, उ. 18/31, 23/23
बकरी का दूध	अयो. 75/30
बल वर्धक पेय	यु. 60/91
भिलावा	अयो. 56/7, अर. 73/5
भात	अयो. 96/10, 91/67
भेड़े की खाल	सु. 10/6, यु. 75/9
मधु	बा. 3/39, 53/2, अयो. 14/35, 15/6, 8, 25/30, 26/13, 35/17, 36/6, 56/8, 75/38, 84/10, 91/21, 52, 56, 69, 70, 91, 114/14, 20, अर. 74/2, कि. 11/34, 36, 38, 26/23, 33/45, 41/33, 50/32, 34, 67/45, सु. 1/23, 5/17, 6/42, 10/23, 11/4, 20, 32, 36/41, 61/10, 11, 12, 62/1, 6, 16, 64/4, 7, 15..............
मुंज	बा. 4/22
मांस	बा. 19/6, अयो. 48/29, 75/38, 91/70, अर. 5/40, 19/10, 21/2, 13, 26/34, 39/5, सु. 11/14, 15, 16, 17, 18, 21, 17/17, 15, 24/45, 26/34, 27/4, उ. 6/70, 27/50, 34/26, 62/4, 65/21, 23, 25, 27, 67/26, 77/17, 78/14, 100/22, 23
मैरेय	बा. 53/2, अयो. 91/15
मोदक	अयो. 7/4, 20/17, 18
मदिरा	अयो. 12/76, सु. 5/10, 11, 9/58, 10/10, 35, 45, 11/2, 26, 27, 17/15, यु. 8/23, 60/63, 63/58
मिठाई	अयो. 67/27, यु. 112/20, 128/38
मिश्री (मत्स्यण्डी)	अयो. 84/10
मिश्रकेशी	अयो. 91/17
मृग चर्म	कि. 50/34, 40, यु. 11/15, उ. 1/15, 17/2, 25/4
मेदा	यु. 58/32, 59/107, 67/99, 111/36
रक्त	बा. 19/6, अयो. 19/9, 10, 23/34, 56/27, 63/35, 64/27,

	96/28, अरण्य 5/40, 18/23, 24, 26, 19/9, 19, 20, 21, 21/2, 23/7, 9, ...
रस	बा. 53/2, 4, अयो. 2/3, 12/96, 54/18, 63/15, 91/15, अरण्य 11/49, कि. 28/3, 93/44. सु. 15/2, 20/23, 35, यु. 22/42, उ. 42/6
रोही का गूदा	अरण्य 68/32
लेह्य	बा. 52/23, अयो. 50/37, 19/20, सु. 1/23, 11/17
लावा	बा. 53/2, 73/19, 24, अयो. 14/35, 15/6-8, 17/6
व्याघ्र चर्म	कि. 26/23
शहद	अयो. 3/8
शक्कर	अयो. 91/72
सोमलता	बा. 16/6
सरस पदार्थ	बा. 52/23
सुरा	अयो. 36/12, 61/18, 91/15, सु. 11/21, 24/45
सोमरस	अयो. 61/18, अर. 32/19
स्नेह	अर. 13/15, सु. 9/61, उ. 85/4, 13, 89/9
समुद्र का जल	सु. 40/3
हव्य-कव्य	यु. 16/9, उ. 30/11

परिशिष्ट संख्या-6
शरीर विशेषज्ञों की सूची

कौशल्या	अयो. 25/37, 38
जाम्बवान	यु. 74/29, 30, 31, 33
दशरथ	अयो. 10/30
ब्रह्मा	यु. 50/30
भरत	अयो. 72/30
मेघनाद	यु. 45/15, 18
राम	अयो. 56/22, 25, 27, 28
विभीषण	सु. 67/8, यु. 46/34, 35, 40, 83/12, 69/60
सुषेण	यु. 50/28, 30, 91/20, 21, 24, 25, 26, 27,101/27, 30, 32, 42, 44, 45

सीता	सु. 28/6, यु. 116/17
इन्द्र	बा. 49/7, 8
अग्नि	बा. 49/7, 8
वरुण	बा. 45/30, 31, 32
गरुड़	यु. 55/36, 37
शिव	बा. 45/22, 23, 24
विष्णु	बा. 45/22, 23, 24
बृहस्पति	बा. 45/22, 23, 24
अश्विनी कुमार	बा. 49/78
धन्वन्तरि	बा. 45/31, 32

परिशिष्ट संख्या-7

शरीरावयवों की सूची

अस्थीनि	हड्डियाँ	....	Bones
अक्षौ	आँखें	बा. 1/11	Eyes
अवीर्य	बलहीन	बा. 14/555	Weak
अयोनिजा	जो गर्भ से उत्पन्न न हुई हो	उ. 17/34	
अवयव	प्रत्यंग	यु. 58/30	Part of Body
असृक	रक्त	उ. 28/37	Blood
अन्तरात्मा	हृदय	बा. 37/28	
आनन	मुख-मण्डल	बा. 37/28	Face
आंत्र	आँतें	बा. 11/7	Intestines
आस्यम्	चेहरा	बा. 102/36	Face
इन्द्रिय	सम्पूर्ण इन्द्रियाँ	बा. 16/25	Recaptores
उभा	गाँथ	सु. 47/36	Femur
उदर	पेट	यु. 5/7	Stomach
उरू	जाँघ	सु. 45/13	Thigh
उरस	छाती	उ. 46/31	Chest
उरस्क	छाती	यु. 5/13	Chest
उष्ण श्रोणित	गरम रक्त	सु. 30/4	Hot Blood
उत्तमांग	गला मस्तक	यु. 88/25	Throat/Head
ईक्षणा	आँख	यु. 58/16	Eye
ओष्ठ	ओंठ	यु. 5/13	Lips

ओज	ओज	यु. 36/36	Stamen/Vigor
अंक	गोद	यु. 92/56	At Arms
अंग	देह	यु. 45/17	Body
अंजलि	हाथ	अ. 4/10	Palm
अंगुष्ठ	अंगूठा	उ. 9/16	Toe
अंस	कंधा	उ. 43/17	Shoulder
कण्ठ	गला	यु. 44/10	Throat
कर्ण	कान	यु. 44/10	Ear
कर्ण मूल	गाल का एक भाग	यु. 98/17	
कर	हाथ	यु. 54/10	Palm/Hand
कटि	कमर	सु. 47/36	Waish
कबंध	धड़	यु. 54/10	
कराग्रे	अंगुलियाँ	यु. 67/86	Fingers/Nail
कायशिरो	आँतें	यु. 58/30	Intesltines
काया	देह	यु. 54/30	Body
कक्षा	काँख	उ. 14/16	
केश	केश	यु. 93/14	Hair
कुच	स्तन	सु. 17/13	Breast
खरै	स्तन	सु. 30/5	Nail
गर्भ परिश्रव	गर्भ गिरना	बा. 37/26	Abortion
गर्भ तुम्ब	गर्भ पिण्ड	बा. 38/17	
ग्रीव	गर्दन/मुख	यु. 41/89	Neck/Face
गात्र	शरीर	सु. 30/5	Body
गर्भ	....		
चक्षुषा	आँखें	बा. 7/16	Eyes
चरणों	पाँव	अयो. 3/33	Feet
चित्तम्	मन	अयो. 4/27	Brain
चेतसा	हृदय	यु. 71/9	Mind
जटा	लंबे बाल	बा. 1/89	Long Hair
जत्रु	ठोड़ी	बा. 1/1	Sternum
जिह्वा	जीभ	सु. 17/15	Toung
जिह्वा वाणी	जीभ	यु. 67/120	Toung
ज्योति	आँख	उ. 13/24	Eye

जानु	घुटना	बा. 1/1	Knee
त्रिष्यान	हृदय, कंठ, मुख		
तेज	वीर्य	बा. 36/14	Seman
तलेन (हस्त)	हथेली	यु. 68/28	Palm
दंत	दाँत	यु. 5/13	Teeth
ददंषु	दाँत	यु. 17/32	Teeth
दशन	दाँत	यु. 17/32	Teeth
दष्ट्रा	दाँत	बा. 55/9	Teeth
दन्त्या	दाँत	सु. 30/5	Teeth
देह	शरीर	सु. 45/7	Body
दृष्टि	आँख	यु. 101/6	Eye
धी	बुद्धि	बा. 55/22	Wisdom
धृति	धैर्य	....	Wisdom
नेत्राणि	आँखें	यु. 44/10	Eyes
नखै	नख	....	Nail
नासापुटाभ्यां	नथूना	यु. 67/35	Noes
नयन	आँखें	बा. 49/1	Eyes
नाभि	तुण्डी	यु. 67/58	
नासिका	नाक	सु. 17/6	Noes
प्रमुखा	मुख से	यु. 67/27	Mouth
प्लीहा	तिल्ली	यु. 58/30	Spleen
पाद	पैर	यु. 60/28	Leg/Feet
पाद तक	पद तली	यु. 60/29	Feet
पाणि	हाथ	बा. 67/14	Hands
पार्श्व	पँसली	यु. 52/11	Rib
पाणनि	हाथ	यु. 97/9	Hand
बुद्धि	बुद्धि	बा. 1/9	Wisdom
भृकुटी	भौंह	यु. 92/18	Eye Brow
भुजान्तर	छाती	यु. 8/9	Chest (Lungh)
भ्रूः	भौंह	यु. 30/6	Eye Brow
भ्रुवी	भौंह	यु. 76/52	Eye Brow
भुज	भुजा	यु. 30/3	Hand
मनः	मन		Psyche

मति	बुद्धि	यु. 64/3	Wisdom
मस्तक	माथा	यु. 52/34	Head
मध्य	कटि प्रदेश	यु. 24/7	
मांस	मांस	यु. 59/107	Flesh
मानस	मन	बा. 10/25	Mind
मुख	चेहरा	बा. 8/24	Face
मूर्धा	मुख	यु. 22/3	Mouth
मूर्धाजा	बाल	यु. 94/97	Hair
मेद	मेद	यु. 64/3	Fat
मेधा	बुद्धि	यु. 15/1	Wisdom
मेदस्	चर्बी	यु. 50/33	Fat
मौलि	मस्तक	यु. 36/2	Fore Head
यकृत	जिगर	यु. 58/30	Liver
यौनदेश	प्रजनन प्रदेश	बा. 55/3	Female Genllais
योनि	योनि		
रक्त	खून	यु. 50/28	Blood
रुधिर	खून	बा. 19/8	Blood
रोम	रूवें		Har
रेतः	वीर्य		Speman/Sperm
रद	दाँत	यु. 62/87	Teeth
रक्त कण्ठिनः	मधुर स्वर से युक्त	उ. 37/3	Sweet Voice
ललाट	ललाट	यु. 59/104	Fore Head
लोचन	नेत्र	बा. 8/14	Eye
लोम	बाल	यु. 71/1	Hair
वक्ष	सीना	बा. 1/11	Chest
वपु	अंग	बा. 22/10	Body
वरागानि	गले के ऊपर के अंग	बा. 16/10	E.N.T.
वदन	शरीर	यु. 46/30	Body
वसा	उदर के अन्दर की चर्बी		Abdomen Fat
वसा	चर्बी	यु. 67/99	Fat
वलि	झुर्रियाँ	यु. 99/10	Wrincles
वामाहनु	बाई ठोड़ी	उ. 25/47	Left Jaw
वक्त्रम्	मुख	यु. 71/22	Face

वीर्य (महा)	अनन्त शक्ति	बा. 1/8	Greatest Power
सर्वाङ्ग	सम्पूर्ण शरीर	यु. 52/36	Whole Body
स्कन्ध	कन्धे	यु. 15/22	Shoulder
स्तनज	दूध	बा. 37/28	Breast Milk
स्तनाभ्याम्	दोनों स्तनों के बीच का भाग	यु. 99/21	Breast
सृक्किणी	जबड़े	यु. 67/140	Jaws
संज्ञा	होश	यु. 90/77	Consciousness
श्वास	साँस/छाती	यु. 64/27	Breathing Part
शोणित	खून	यु. 67/27	Blood
शोणित गन्ध	खून की गन्ध	यु. 65/32	Smell of Blood
शिरसा	सिर	बा. 37/16	Head
शरीरम्	देह		Body
शरीर क्लेद	पसीना		Body Flind
शिरोधरा	गर्दन	सु. 17/7	Neck
शीर्षम्	सिर	यु. 97/21	Head
श्रवण	कान	यु. 49/116	Ear
हृदय	मस्तिष्क	बा. 10/23	Mind
हस्त	हाथ	बा. 14/33	Hand
हस्त तल	हथेली	यु. 59/61	Palm
हनु	ठोड़ी	उ. 25/47	Chin/Jaw
हीद	हृदय	उ. 45/11	Heart

***